5/11

रसाद्वैतमञ्जरी

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि कचौड़ी
वाराणसी-5

١٠١

विमलो ग्रंथ संग्रह
शिवकुटी. आ. उगाधू

आ [illegible] य–ग्रन्थालय,
[illegible], [illegible]
वाराणसी-5

रसाद्वैत-मञ्जरी

B.T.

राधा माधव रस सुधा

षोड़श गीत की टीका

रचयिता–पू० हनुमान प्रसाद पोद्दार

आम्नाय–ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

टीकाकार–
साधुवेषधारी दीन हीन चरणाश्रित

राधिका–रमण अम्बुज–नयन नन्दनन्दन नाथ हे
गोपिका–प्राण मन्मथ–मथन विश्व–रञ्जन कृष्ण हे

संकलन कर्त्ता
श्री भागीरथ प्रसाद मरदा

राधा माधव प्रकाशन
भागीरथ प्रसाद मरदा मार्ग
चूरू (राजस्थान)

प्रकाशन तिथि राधाष्टमी
विक्रम सम्वत् २०३३
श्रीकृष्ण सम्वत् ५२०२
शकाब्द १७९८
ईस्वी सन् १९७७

२३०:५

प्रकाशक
पं० चन्द्रभान गौड़
राधा माधव प्रकाशन
भागीरथ प्रसाद मरदा मार्ग
चूरू

न्यौछावर
१२-५० न० पैं०

प्राप्ति स्थानः–

गोपाल ग्रन्थालय
१८७ दादी सेठ अग्यारी लेन
बम्बई २

षोडश गीत मन्दिर
अनाथालय के पीछे
बीकानेर

गोविन्दराम बागला
१ नं० बीडन स्ट्रीट,
कलकत्ता ६

गोविन्द बुक डिपो
चौड़ा रास्ता,
जयपुर

श्री महेन्द्रप्रताप एडवोकेट
शारदा सदन,
सवाईमाधोपुर

राधा माधव प्रकाशन
भागीरथप्रसाद मरदा मार्ग
चूरू

हनुमान प्रसाद पोद्दार स्मारक समिति
गीता वाटिका, पो० गीतावाटिका
गोरखपुर

मुद्रकः– पं० चन्द्रभान गौड़
मरु श्री मुद्रणालय
भागीरथ प्रसाद मरदा मार्ग,
चूरू (राजस्थान)

विषय-सूची

आम्नाय--ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

विषय — पृष्ठ संख्या
विषय सूची — ग
निवेदन — ज
शुद्धि पत्र — अ
उत्सर्ग पत्र– — अः
मङ्गलाचरण — ❀

प्रथम अध्याय

अनुक्रमणिका — १
महाभाव रसराज वन्दना — ६
'दोउ' शब्द –का भाव — ७
'चकोर' एवं 'चन्द्रमा' –का भाव — १४
'अलि एवं पंकज' –का भाव — १६
'चातक एवं मेघ' –का भाव — २२
'मछली एवं जल' –का भाव — २४
'लीला आस्वादन निरत महाभाव रसराज' –का भाव — ३३
'वितरत रस दोउ दुहुँन कों' –का भाव — ३७
'रचि विचित्र सुठि साज' –का भाव — ४४
'वचनातीत अचिन्त्य' –का भाव — ५३
'सुषमामय श्री सन्त' –का भाव — ५४
'श्री' शब्द –का भाव — ५५
'राधा माधव चरण बन्दौं बारम्बार' –का भाव — ५६
'एक तत्व दो तनु धरैं नित रस पारावार' –का भाव — ५७

दूसरा अध्याय

अनुक्रमणिका — ६१
'राधिके तुम मम जीवन मूल' –का भाव — ७१
'अनुपम अमर प्राण संजीवनि' –का भाव — ७२

विषय पृष्ठ संख्या

'जस सरीर में निज निज थानहिं सबही शोभित अंग
किन्तु प्रानबिनु सबहिं व्यर्थ नहिं रहत कतहुँ कोउ रंग' –का भाव ७४
"तस तुम प्रिये सबनि के सुखकी एक मात्र आधार
तुम्हरे बिना नहीं जीवन रस जासौं सब कौं प्यार" –का भाव ७८
"तुम्हरे प्राननि सौं अनुप्रानित" से लेकर "तनिक न मानौ ऊन" –का भाव ८४
"तुम्हरो स्वत्व अनन्त नित्य सब भाँति पूर्ण अधिकार
कायव्यूह निज रस वितरन करवावति परम उदार" –का भाव ८३
"सोउ अति मरजादा, अति संभ्रम, भय, दैन्य, संकोच
नहिं कोउ कतहुँ कबहुँ तुमसी रसस्वामिनि निस्संकोच" –का भाव १००

तृतीय अध्याय

अनुक्रमणिका १०८
"हौं तो दासी नित्य तिहारी
प्राणनाथ जीवन धन मेरे हौं तुम पै बलिहारी" –का भाव ११६
'तुम्हरो सुख' से लेकर 'निसदिन साँझ सवेरे' –का भाव १२५
'तुम मोहिं प्राणेश्वरि' से लेकर 'जद्यपि मन सकुचावौं' –का भाव १५१

चतुर्थ अध्याय

अनुक्रमणिका १५३
'हे आराध्या राधा !' से लेकर 'करता हूँ गोकुल में वास' –का भाव १६०
'तेरा ही रसतत्व' से लेकर 'करता वंशीवादन' –का भाव १७०
'इसी हेतु स्नान को जाता' से लेकर 'चित्त अधीर' –का भाव १७७
'इसी हेतु रहता कदम्बतल' से लेकर 'रूप स्वाति का करने पान'–का भाव १८०
'तेरी रूप शील गुण माधुरि' से लेकर 'सदा विभोर' –का भाव १८१

पाँचवा अध्याय

पूर्वराग १८४
व्रजराजकुमार का भाव १९२
'युग युग !' से लेकर 'जीवनाधार' –का भाव १९४
'पद पंकज पराग' से लेकर 'तरुण तमाल'–का भाव २०२
'दासी मैं हो चुकी' से लेकर 'धन्यमहान' –का भाव २०५

विषय — पृष्ठ संख्या
'देख लिया त्रिभुवन में बिना तुम्हारे और कौन मेरा' –का भाव २१५
'कौन पूछता है राधा कह किसने राधा को हेरा' –का भाव २१७
'इस कुल, उस कुल, दोनों कुल, गोकुल में मेरा अपना कौन
अरुण मृदुल पद कमलों की ले शरण अनन्य गई हो मौन' –का भाव २१९
'देखे बिना तुम्हें पलभर भी मुझे नहीं पड़ता है चैन' –का भाव २२३
'रूप-शील-गुण हीन समझकर कितना ही दुत्कारो तुम
चरणधूलि मैं चरणों में ही लगी रहूँगी बस हरदम' –का भाव २२८

छठा अध्याय (सख्य और वात्सल्य)

अनुक्रमणिका २३३
'अतुल प्रेम रस सुधा निधान' –का भाव २४३
'गाय चराता वन वन भटकूँ, क्या समझूँ मैं प्रेम विधान' –का भाव २४५
'प्रेम-सुधा-सरिता तुमसे मुझ तप्त धूलिका कैसा मेल' –का भाव २५४
'तुम स्वामिनि अनुरागिनि' से लेकर
'बढ़ता अमित तुम्हारा ऋण' –का भाव २६२
'कैसे ऋण का शोध करूँ'
से लेकर 'करती रहो निहाल' –का भाव २६५

सातवाँ अध्याय (रति, प्रेम, मान, एवं प्रणय)

अनुक्रमणिका २७२
'सुन्दर श्याम' का भाव २८५
'दुःखमोचन' शब्द –का भाव २८९
'कमल दल लोचन' –का भाव २९२
'लोक मान कुल मर्यादा' से लेकर
'करूँ न तनिक पलक भर दूर' –का भाव २९५
'पर मैं अति गँवार ग्वालिनि' से लेकर
'कुल भूषण सौन्दर्य सुरूप' –का भाव ३०९
'मैं रसज्ञान-रहित रस-वर्जित तुम रस-निपुण रसिक-सिरताज
इतने पर भी दयासिन्धु तुम मेरे उर में रहे विराज' –का भाव ३२३

आठवाँ अध्याय

विषय	पृष्ठ संख्या
(महिमा एवं गुणावली)	
अनुक्रमणिका	३२९
'हे प्रियतमे राधिके तेरी महिमा अनुपम अकथ अनन्त' –का भाव	३३६
श्री राधा द्वारा अपनी समाराधना रूप महिमा से प्रियतम श्रीकृष्ण को अनन्तानन्त स्वरूप गुणों से समलंकृत करना एवं उनके मुख्य २५ गुणों का वर्णन	३४४
प्रियतम श्रीकृष्ण के सुरम्याङ्गत्व का वर्णन	३५०
श्रीकृष्ण की रुचिरता का वर्णन	३५१
श्रीकृष्ण के अङ्गों एवं गुणों में सल्लक्षणता का वर्णन	३५२
श्रीकृष्ण के अनुपमेय सर्वजित् बल का वर्णन	३५८
श्रीकृष्ण की नित्य कैशोर वय का वर्णन	३६०
श्रीकृष्ण की मनोज्ञ वाचालता, बावदूक नामक गुण का वर्णन	३६१
श्रीकृष्ण के 'प्रियंवद' अमृतमय प्रियवाणी नामक गुण का वर्णन	३६२
श्रीकृष्ण के 'अनन्त बुद्धिमत्ता' नामक गुण का वर्णन	३६२
श्रीकृष्ण के प्रतिभा गुण का वर्णन	३६२
श्रीकृष्ण के धैर्य गुण का वर्णन	३६३
श्रीकृष्ण के विदग्ध गुण का वर्णन	३६४
श्रीकृष्ण के चतुरता गुण का वर्णन	३६५
श्रीकृष्ण के कृतज्ञ गुण का वर्णन	३६६
श्रीकृष्ण के प्रेमवश्यता नामक गुण का वर्णन	३६७
श्रीकृष्ण के गाम्भीर्य गुण का वर्णन	३६८
श्रीकृष्ण के वरीयता नामक गुण का वर्णन	३६९
श्रीकृष्ण के कीर्त्तिमत्ता नामक गुण का वर्णन	३७०
श्रीकृष्ण के नारी गुण मनोहारी गुण का वर्णन	३७१
श्रीकृष्ण के नित्य नूतनता नामक गुण का वर्णन	३७३
श्रीकृष्ण की असमोर्ध्व लीला माधुरी का वर्णन	३७३
श्रीकृष्ण के धीरोदात्त, धीर ललित, धीर प्रशांत एवं धीरोद्धत नायकत्व का वर्णन	३८०
प्रिया श्रीराधा के गुणों का वर्णन	३८५

विषय — पृष्ठ संख्या

महाभावरूपा प्रिया श्रीराधा के चतुष्पादों का वर्णन — ४००

तुरीयपाद एवं आनन्दपाद गोलोक धाम का वर्णन — ४०१

सुविद्यापाद का वर्णन — ४०२

अविद्यापाद का वर्णन — ४०४

'जपता तेरा नाम मधुर अनुपम मुरली में नित्य ललाम' –का भाव — ४१०

'नित अतृप्त नयनों से तेरा रूप देखता अति अभिराम' –का भाव — ४१८

'कहीं न मिला प्रेम शुचि ऐसा कहीं न पूरी मन की आस
एक तुम्हीं को पाया मैंने जिसने किया पूर्ण अभिलाष
नित्य तृप्त निष्काम नित्य में मधुर अतृप्ति मधुरतम काम
तेरे दिव्य प्रेम का है यह जादू भरा मधुर परिणाम' –का भाव — ३२०

नवम अध्याय

अनुक्रमणिका — ४३७

सम्पूर्ण पद का भाव — ४४३

आम्नाय–ग्रन्थालय,
भारतनिधि, कचौड़ी
वाराणसी-5

नाय–ग्रन्थालय,
निधि, करौंदी
णसी-5

निवेदन

लीलाप्राप्त पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी) के प्रति मेरी प्रारम्भ से ही बड़ी श्रद्धा रही है। हिन्दू संस्कृति और सभ्यता (सनातन धर्म) की रक्षा में उनका योगदान भगवान वेदव्यास के तुल्य ही रहा है। इसीलिये आज से लगभग तीन वर्ष पूर्व उनके ही चरणानुरागी, नाम रूप से अति विरक्त एक सन्यासी के आग्रह से मैंने उनकी (लघु) जीवनी का प्रकाशन करने का विचार किया था। वह जीवनी प्रकाशित भी हो गई और आस्तिक जनता की सेवा में समर्पित भी हो गई। यद्यपि हिन्दी के मेरे अल्पज्ञान एवं अन्य व्यापारिक कामों में लगे रहने के कारण पूरा मनोयोग न दे सकने से उस जीवनी के प्रकाशन में बहुत अशुद्धियां रह गई थीं।

पूज्य भाईजी श्री राधा–माधव के अनन्य भक्त थे। श्री राधा के सम्बन्ध में आज इस तमसाच्छन्न युग में जितनी भ्रान्तियां हैं, उनका उल्लेख करना भी उचित नहीं है। उन्ही पूज्य विरक्त सन्यासी से पूज्य भाईजी के "षोडश–गीत" जब सुनने को मिले और जब यह भी ज्ञात हुआ कि ये पूज्य भाईजी की समाधि अवस्था में उनके मुख से निकले गीत हैं और इन गीतों का भक्ति मार्ग के साधन जगत में अत्यन्त महत्व है तो ऐसा लगा कि इन गीतों की टीका कहीं देखने को मिलती। कहीं से भी यदि इनका रहस्य सुनने को मिलता तो मेरा अहोभाग्य होता। मेरी यह इच्छा जब उन महाकृपालु महात्मा से मैंने निवेदन की तो उन्होंने एक पाण्डुलिपि मुझे देदी। वह पाण्डुलिपि पढकर तो मैं बहुत ही चमत्कृत हुआ। अद्वैत दर्शन की अत्युच्च ब्रह्मानुभूति, अपरोक्षानुभूति ज्ञान के उपरान्त श्री राधा–माधव के रस विलास की प्रतिष्ठा का ऐसा साङ्गोपाङ्ग वर्णन मुझे अब तक कहीं देखने को नहीं मिला था।

मैंने उन महात्मा से अत्यन्त विनीत विनय की एवं उन्हें अपने ही पास कुछ दिन विराजने का आग्रह भी किया। वे दयालु महात्मा मेरी विनय पर मेरे यहां कुछ दिन ठहरे। मैंने अपने छोटे से प्रेस में इस पुस्तक का प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया। यह पुस्तक इतनी क्लिष्ट एवं गम्भीर तथा तात्त्विक है कि अनेक स्थल तो मेरी समझ में ही नहीं आये। इस दशा में मैं इसका प्रूफ

संशोधन कैसे कर पाता। मैंने प्रूफ संशोधन के लिये मेरे स्नेही श्री चिरंजीलाल जी शर्मा (व्याख्याता, व्यावसायिक प्रशासन, लोहिया कालेज, चूरू) का सहयोग भी लिया, परन्तु फिर भी प्रूफ संशोधन में बहुत भूलें रह गई हैं। कई स्थानों पर तो छपाई की इतनी अशुद्धियां हैं कि अर्थ का अनर्थ ही हो जाता है। पुस्तक के पाँच अध्याय तो पूज्य महात्माजी के सम्मुख ही छपे थे, उनमें भी भूलें प्रेस की अव्यवस्था से रह गईं। प्रेस अत्यन्त पुराना व छोटा सा है। टाइप एवं साधनों का भी प्रेस में अभाव है। चूरू में शिक्षित कम्पोजीटर भी नहीं मिलते। मेरी इच्छा थी कि भक्त शिरोमणि स्वर्गीय सेठ जयदयालजी गोयन्दका की जन्मस्थली व पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार की कृपास्थली चूरू से ही यह पुस्तक मुद्रित व प्रकाशित हो। इसी कारण से इस पुस्तक को जैसा साधन था उसी परिस्थिति में इस प्रेस से प्रकाशित कराया गया। इन सब असमर्थताओं के कारण पुस्तक अच्छी छप नहीं सकी, परन्तु किसी प्रकार छपगई।

पूज्य स्वामीजी महाराज को तो यह चिन्ता थी कि उनकी पाण्डुलिपि कहीं खोगई तो दूसरी बार वे यह पुस्तक लिख भी नहीं पावेंगे। साधना की जिस प्रौढ़ावस्था में यह पुस्तक लिखी गई थी, वैसा एकान्त और भगवत्कृपा का सुअवसर जीवन में बार बार नहीं आता। पूज्य स्वामीजी महाराज की इतनी सेवा मुझ तुच्छ सेवक के द्वारा हो गई कि इस पुस्तक के ६ अध्याय अब जैसे तैसे छप गये हैं।

पुस्तक के सम्बन्ध में मैं क्या कहूं। यह पुस्तक राधा–माधव–भक्ति का मूर्त्तिमान ग्रन्थ है। प्रत्येक पृष्ठ एवं शब्द मेरे लिये तो ब्रह्म वाक्य और तीर्थ के समान हैं। इसमें श्री राधा माधव का चिन्मय गुणगान ही आद्योपान्त वर्णन किया गया है। मेरा तो मात्र इतना ही निवेदन है कि इसमें भूल चूक सब मेरी है, दोष मेरे हैं, और अमृत जो कुछ है, वह सब इस राधा–माधव–रस–ग्रन्थ का ही है।

धन्य हरिभक्त जिनकी कृपा तें सदा।
कृष्ण–गुण गदाधर भट्ट गावै॥

मैं हरिभक्त पूज्य श्री स्वामीजी महाराज का अनन्य अनुग्रहीत हूं जो

उन्होंने मुझे भक्तिरस प्रसार में निमित्त बनाया।

पाठकों से मेरा अत्यन्त विनम्र निवेदन है कि शुद्धिपत्र जो भी छापा गया है, उससे पहले पुस्तक को शुद्ध करलें, तब पढ़ें। वैसे पूरा शुद्धि पत्र भी नहीं छापा जा सका है। कारण यही है, अशुद्धियाँ इतनी अधिक हैं कि शुद्धि पत्र पूरा बनाया भी नहीं जा सकता था। फिर भी इतना शुद्धि पत्र अवश्य छाप दिया गया है, जिससे अर्थ का अनर्थ न हो। पूर्ण विराम, कौमा आदि की सैकड़ों अशुद्धियाँ शेष रह गई हैं। इस सब के लिये मैं पूरा क्षमा-प्रार्थी हूं।

मेरा इसमें अपना कुछ नहीं है, जो कुछ मुझे एक विरक्त सन्यासी संत से प्राप्त हुआ उसे ही मैंने ज्यों का त्यों प्रकाशन करा दिया है। महात्माजी ने अपना नाम प्रगट करने से वर्जित कर दिया है, इसलिये मैं उनका नाम प्रकट करने में असमर्थ हूँ। इसके प्रकाशन में मुझे श्री चिरंजीलालजी शर्मा एवं पंडित चन्द्रभानजी सहल का बहुत ही सहयोग मिला है, जिनका मैं बहुत ही आभारी हूं।

अन्तमें मैं विद्वान् पाठकों से यही प्रार्थना करूंगा कि मैं इस पुस्तक को प्रकाशित करने के सर्वथा योग्य नहीं था फिर भी मेरा बालहठ समझ कर वे मुझे क्षमा कर देंगे। और विशेष क्या कहूं। भगवत्कृपा।

विनीत

चूरू

वसन्त पंचमी सम्वत् २०३३

भागीरथप्रसाद मरदा

आनन्द-ग्रन्थालय,
[illegible]
बाराबंकी

रसाद्वैत-मंजरी

(प्रथम संस्करण का शुद्धिपत्र)

पृष्ठ	पेरा	पंक्तिसंख्या		अशुद्धि	शुद्धि
		बाएँ	दाएँ		
१	१		५	निष्पद	निष्पंद
१	२		१	उज्जवल	उज्वल
१८	१	१४		गुणराशी	गुणराशि
२०	२		७	विचित्रातविचित्र	विचित्रातिविचित्र
२०	२		७	सौन्दर्य माधुर्म राशि,	सौन्दर्य माधुर्य राशि
२०	२	११		विमु	विभु
२१	१	१४		तृष्ण	सतृष्ण
२१	१		१९	अपूण	अपूर्ण
२१	१		२३	ज्योहीं	ज्योंही
२४	१		६	प्रावह	प्रवाह
२४	१		१६	अनसंधान	अनुसंधान
२८	१		४	औढनी	ओढ़नी
२८	१		४	नुपूर	नूपुर
३१	१		२	आकाशभास	आकाशाभास
३३	१	२		मूर्त्तिमति	मूर्त्तिमती
३६	१		६	विहारकत्तृी	विहार कत्तृी
५३	१	२		ही	है।
५८	२		१२	ती	तो
६३	२		८	वेश	प्रवेश
७८	२	३		करैं	करें
७९	३		१४	बाहह्य	बाह्य
८२	२		२	रहीं	रही
८५	१		१	सस	सम

पृष्ठ	पैरा	पंक्ति संख्या		अशुद्धि	शुद्ध
		बाऐं	दाऐं		
९२	१		२	दूसरी	इसकी
९५	३		१	परब्ह्म	परब्रह्म
१००	१		७	का	के
१००	१		७	को	का
१०४	१	१		गौचारण	गोचारण
१०४	२		२४	घेरकार	घेरकार
११४	१	८		प्रया	प्रिया
११५	२		२	परन्नु	परन्तु
११७	२		१०	दारूणता	दारुणता
१२२	१		३	ह	है
१२२	१		५	ह	है
१२२	१		६	ह	है
१२२	१	१०		ह	है
१२२	१	११		ह	है
१२३	१	३		श्रुतियों	श्रुतियाँ
१२५	३	१२		अत्मा	आत्मा
१२६	२	२		सर्व ज्ञान विधान	सर्व ज्ञान निधान
१२७	३		५	भाव विह्म्र	भाव विग्रह
१५२	१		२०	मनो	मानो
१५७	३		२	सौम्दर्य	सौन्दर्य
१६०	४		३	लालातित	लालायित
१६२			३०	अथीर्थी	अर्थार्थी
१६३	५	५		वेदज्ञ ही	वेदज्ञ हो
१६६	३		६	ओंर	और
१६६	२	११		लहरे	लहरें
१७०	१		२५	क्रंन्दन	क्रन्दन
१७४	२		१२	कोमलत	कोमलता
१७५	१		८	एक ही हैं	एक ही है

पृष्ठ	पैरा	पंक्ति संख्या बायें	दायें	अशुद्धि	शुद्धि
१७५	३	११		पार्थिक	पार्थिव
१७५	४	१		प्राथना	प्रार्थना
१७८	२		५	नन्दनन्दजी	नन्दनन्दनजी
१९३	१	४		रस रास	रसराज
१९६	२	७		ह्रहय	हृदय
१९७	३	४		नेत्र जबतक तबतक सत्यहैं	नेत्र जबतक सत्यहैं तबतक
१९९	३		४	असुभूति	अनुभूति
१९९	३	७		इदम् या इदम्	इदम् या इयम्
१९९	३	११		कादपि	कदापि
२०१	३	३		प्राणाधन	प्राणधन
२०४	१	७		पबागनें	परागने
२०५	२	४		कियाशील	क्रियाशील
२१३	१	१४		मुक्ति मुक्ति	भुक्ति मुक्ति
२१३	२		३	बहुस्यॉ	बहुस्यां
२१३	२		८	ज्ञात शक्ति	ज्ञानशक्ति
२१४	२		१५	महा भाग्यवान् कि	महा भाग्यवान् की
२१४	३		१	सुखेक	सुखैक
२१५	२		४	प्रिया इस	इस
२१६	२		५	निमिन्त्त	निमित्त
२१६	३	३		वीच	बीज
२१८	१		३	चामवताम्	चाभवताम्
२१९	३	२		अरुण मदुल	अरुण मृदुल
२१९	४	११		अरितत्व	अस्तित्व
२२६	२		६	अविरत	अविरल
२२९	३		३	बृज	व्रज
२३२	१३		१	आश्यकता	आवश्यकता
२३३	१		११	रस-वैचिन्त्य	रसवैचित्र्य

पृष्ठ	पैरा	पंक्ति संख्या		अशुद्धि	शुद्धि
		बायें	दायें		
२३३	३	३		व्यक्तयों	वक्तव्यों
२३३	३	४		धर्मकाल	धर्म काल
२३४	१	८		कर्म-धर्म	कर्म धर्म
२३५	१	१५		यस्याक्तिन्दे	यस्यालिन्दे
२३५	१		१५	लौटने	लोटने
२३५	१		१६	सर्वकर्मसार	सर्वधर्मसार
२३६	२	४		श्रौतु-	श्रौत
२३६	२		६	निकर्म्य	नैष्कर्म्य
२६८	१	२		शक्तिमान	शक्तिमानकी
२३८	२	४		काम	काय
२५८	४		२	मद्भावायोप पद्यते	मद्भावायोपपद्यते
२३८	५	१		प्रगति	प्रकृति
२३८	६	२		तपस्या	तपसा
२३९	२		४	वृषभानुराव	वृषभानुराज
२४१	१	२		सम्मुख स्थित विपयक्र	सम्मुख स्थित घट विषयक
२४३	२		१३	मुक्त	मुक्ता
२४३	२		१५	बिम्बाघर	बिम्बाधर
२४७	२	६		सुवक	सुबल
२५०	२		१०	अभिव्क्त	अभिव्यक्त
२५०	३		७	कार्यव्यूह	कायव्यूह
२५१	१		५	प्रियसत	प्रियतम
२५२	२		३	ब्राहकनन्द	ब्रह्मानन्द
२५२	३		२	हैं	है
२५२	३		७	सश्लेश	संश्लेश
२५२	३	८		रहेगी	रहेंगी
२५५	४	२		'चित्र'	'चित्'

पृष्ठ	पैरा	पंक्ति संख्या बायें	दायें	अशुद्धि	शुद्धि
२५७	१	२१		धुलि	धूलि
२६०	२		४	पृथुत्र	पृथुल
२६०	२	५		स्मृत	संभृत
२६०	२	६		उस	उरु
२६१	१	१		बन्ध	बँध
२६१	३	६		प्रीती	प्रीति
२६३	१	८		सला	रुला
२६५	२	४		भुक्तिकाम	मुक्तिकाम
२६५	३	१०		देवी	दैवी
२६६	२	१४		ऑसूओं	आँसुओं
२६६	२	२१		भान	मान
२६७	१	४		उठाकार	ठठाकर
२६८	१		१	क्यो	क्यों
२६८	१	३		वसे	वसे
२६८	१	५		होंगमी	होगयी
२६८	२	३		प्राणेश्वरी	प्राणेश्वरी
२६८	२	५		कुरुपा	कुरूपा
२६९	२	३		मुकुट्ट	मुकुट
२७२	२	६		सुन चुकी	सुनचुका
२७४	१	१		काम को	राम को
२७५	३	३		पादार्थ	पदार्थ
२७५	४		१	मुक्ति	भुक्ति
२७५	५		३	ओर	और
२७६	२		२	दाम्भ	दम्भ
२७७	५	४		कदाती	करवाती
२७७	५		६	आने	अपने
२७९	१	५		मित्रविदा	मित्रविंदा
२७९	२	१		भोगरूप	मोक्षरूप

पृष्ठ	पैरा	पंक्ति संख्या		अशुद्धि	शुद्धि
		बायें	दायें		
२७६	२	१०		प्रवेशद्वार	निर्गम
२८०	१	५		अत्यन्ए	अत्यन्त
२८०	३		१	योग	भोग
२८४	५		४	करूँन पलक	करूँन तनिक
				तनिक भर दूर	पलक भर दूर
२८४	५		५	सौ कर्य-स्वरुप	सौन्दर्य-स्वरूप
२८५	६		७	प्रिय' को	प्रियाका
२८६	१		३	कुष्माण्ड	कूष्माण्ड
२८६	१		८	हृदयको	हृदयके
२८७	२		८	सर्वज्ञाता	सर्वज्ञता
१८७	२	१४		हैं	है।
२८८	३	२		शौचती	शौचति
२९१	२	२		है ही	है ही नहीं
२९१	६	५		अभिष्ट	अभीष्ट
२९२	१	१		या	भी
२९४	१	६		पद्मों	पुष्पों
२९४	२	११		हैं	हो
२९४	४	१		उत्तरस्माद्युत्तरस्मापूर्व	उत्तरस्माद्दुत्तरस्मात्पूर्व
२९५	४	१२		छबि को	छबिकी
२९६	३	४		नेत्रोंजो में	जो नेत्रोंमें
२९६	३		६	नेत्रों की	नेत्रों को
२९७	२	२		ध्वंसरहित	ध्वंसरहितं
२९७	६		२	मुँह मुँह	मँह मँह
२९७	३		५	उद्धीपन	उद्दीपन
२९८	१	३		विभिन्न	विचित्र
३०१	४	६		विनिर्युक्त	विनिर्मुक्त
३०३	१	१		द्वैषी	द्वेषी

पृष्ठ	पैरा	पंक्ति संख्या		अशुद्धि	शुद्धि
		बायें	दायें		
३०३	१		२	चिन्त	चित्त
३०३	१	३		विन्त	वित्त
३०३	२		१	अन्तरामों	अन्तरायों
३०३	२		६	नवचित्र	जबचित्त
३०३	४	८		मानविद्य	नानाविध
३०३	४		८	रतिजन्म	रतिजन्य
३०३	४		१२	उनके	उसकी
३०३	४		१२	के	का
३०४	३		५	मुक्त	
३०५	१	४		नामक	नायक
३०७	१	८		भान्ति	भ्रान्ति
३०८	२	७		खुखमय	सुखमय
३०८	२		७	आत्यान्तिक	आत्यन्तिक
३०८	२	८		द्रव्यरूप में	द्रवरूप में
३०९	१	८		वाक्यता	वाम्यता
०	१		११	स्फूरणा	स्फुरणा
		१		मध्यातन	मध्याह्न
३१६	१		३	चरखनख	चरणनख
३१८	१		८	प्रित	प्रति
३१९	४	६		प्रतिहीन	प्रीति हीन
३२०	२		३	अपेक्षा	उपेक्षा
३२१	२		४	सम्मान	समान
३३३	२		२	उत्फुल	उत्फुल्ल
३३४	३	६		संतोद्धोषित	संतोद्घोषित
३३४	३		७	मनिषी	मनीषी
३३५	४	९		नित्यतप्त	नित्य तृप्त
२३६	६	२		विघृत	विधृत
३३७	१		३	अघिपति	अधिपति

पृष्ठ	पैरा	पंक्ति—संख्या बायें	दायें	अशुद्धि	शुद्धि
३३७	३		३	मपि	मयि
३३७	५		४	जगल्प दार्थ	जगत्पदार्थ
३४०	२	६		धिरोदात्त	धीरोदात्त
३४१	२		८	गोधुक्ति	गोधूलि
३४१	२	१७		औग्य	औग्य्र
३४१	२		१७	असूदा	असूया
३४१			२६	द्युत क्रींड़ा	द्यूतक्रीड़ा
३४२	१	२		सम्वभय	सत्वमय
३४२	४	१		व्यक्तिमापनं	व्यक्तिमापन्नं
३४२	४	–	२	ममाव्ययं मनुत्तमम	ममाव्ययमनुत्तमम्
३४२	४	२		परॅ	परं
३४२	४	३		अव जाननि	अवजानन्ति
३४२	४		३	मानुषी	मानुषीं
३४२	४	४		भावमजानन्तौ	भावमजानन्तो
३४२	६	३		परिकर परिकर	परिकर
३४७	२	१		सूची	शुचि
३४७	३		१	लहरें पर लहरें	लहरों पर लहरें
३४८	१		८	परमोच्य	परमोच्च
३५१	४	५		तत्रत्	तत्तत्
३५२	१	२२		प्रेमा भार	प्रेमाधार
३५३	१	१४		निस्मृत	निस्सृत
३५४	२		१०	भोतृत्व	भोक्तृत्व
३५५	२	३		चित्त भौहें	भौहें
३५८	१		१३	सृष्टि का	सृष्टिकर
३५९	५	१		सऽयंत्रीपोऽर्चिसां	सोऽयंदीपोऽर्चिषां
३५९	५		१	स्रोतसॉ	स्रोतसां
३५९	५	२		नृणाँ	नृणां

पृष्ठ	पैरा	पंक्ति संख्या		अशुद्धि	शुद्धि
		बायें	दायें		
३६०	१		४	मद्मसरावतार	मद्मत्सरावतार
३६०	२	६		चित्र	चित्त
३६०	२	११		परिच्छिन	परिच्छिन्न
३६०	४		८	सौन्दर्य स्वादन	सौन्दर्यास्वादन
३६१	१		८	अरुणा	अरुण
३६२	६	१		प्रणव	प्रणय
३६३	१		८	ज्ञान	जान
३६३	१		१०	अतिमय मान	अतिभय मान
३६३	१		१२	दिग	ढ़िग
३६४	३	५		रसमय भुजी	रसमय गुण
३६४	३	५		कला	"कला
३६४	३	६		विलस	विलास
३६६	१		१	कर्मणाम	कर्मणाम्
३६६	४		२	मनाहि	मनहि
३६६	४		४	जागेश्वर	जोगेश्वर
३६७	७	१		चुक	चुका
३६९	१		११	वरीयानि तीर्प्यते	वरीयानितीर्ग्यते
३७०	३	३		मायामति	मायापति
३७१	२	८		सौर	और
३७१	२		१३	इश्वरों	ईश्वरों
३७१			१८	त्रिजन्नारी	त्रिजगन्नारी
३७२	४		४	मूतिमान	मूर्त्तिमान
३७३	३		१	माधुरीर्य	माधुर्य
३७४	१	३		उनको	उनमें
३७५	२		६	अलौकिक	वस्तु अलौकिक
३७६	६		१	कैसे	कैसी
३८०	२	७		चतुविधता	चतुर्विधता
३८०	३		२	आत्माश्लाधा	अत्मश्लाघा

श्री

पृष्ठ	पैरा	पंक्ति संख्या बायें	पंक्ति संख्या दायें	अशुद्धि	शुद्धि
३८०	४		२	सुसत्वमृत्	सुसत्वभृत्
३८१	५		१	भगवन्तनुः	भगवत्तनुः
३८३	२		१५	परमोच्य	परमोच्च
३८६	२		८	ज्ञाती	ज्ञाति
३९१	२	४		अपूर्ण	अपूर्व
३९२	१		६	सुसत्वभृत्व	सुसत्वभृत्
३९२	३		७	सरलता	सरसता
३९४	३		६	प्रकाशिक	प्रकाशिका
३९५	२	२		नीचे दयाधि के	नीचे दयाधिके
३९६	४		२	इतीर्प्यते	इतीर्य्यते
३९७	४		५	विघ्नाकुलादापि	विघ्नाकुलादपि
३९७	६		२	चेष्टटाएँ	चेष्टाएँ
३९८	३		२	माव्र	मात्र
३९८	३		२	भात्र	भाव
४००	१		६	शुकहैं	शुद्ध हैं
४००	२	३		तुरीया	तुरीय
४०२	१		१	एककाम	एकमात्र
४०३	२	५		श्री 'क्ली ह्री'	"श्रीं क्लीं ह्रीं"
४०३	३		४	ब्राह्य रूप	बाह्यरूप
४०५	१		१	हिरएगर्भ	हिरण्यगर्भ
४०७	१	७		प्रियाके	प्रियाकी
४०८	२	२		कहा भावरूप	महाभावरूप
४०९	२	३		चुतुष्पाद	चतुष्पाद
४१०	३		१९	रहे	रह
४११	५		२	सर्वसिद्धोग मीश्वरम्	सर्वसिद्ध्योग- मीश्वरम्
४११	५		३	तत्तव्य	तत्तुल्य
४११	५		३	काव्यमेव च	काल्यमेव च

पृष्ठ	पैरा	पंक्तिसंख्या बायें	पंक्तिसंख्या दायें	अशुद्धि	शुद्धि
४१२	५	१		वन	वह
४१२	५		३	महाभावना	महाभाव का
४१३	२		११	निम्नालिखित	निम्नलिखित
४१४	३	२		कृष्णवामाङ्ग-सम्भुता	कृष्णवामाङ्ग-सम्भूता
४१५	२	१		अधिरूप	अधिरूढ़
४१५	२		१	मदना महाभाव	मादन महाभाव
४१५	२		४	बीच	बीज
४१५	३		४	विर्वेदजनक	निर्वेदजनक
४१५	५		६	देहाशक्ति	देहासक्ति
४१६	१		१	लोकाशक्ति	लोकासक्ति
४१६	२	८		समुज्जवल	समुज्ज्वल
४१७	१	७		जितने	जितनी
४१७	१	१२		उनकी	उनका
४१७	३	५		काम	नाम
४१८	१		१	प्रिया	प्रिय
४१८	२	१		है	हे,
४१८	२		७	अभीरूपता	अभिरूपता
४१८	२		१६	अंगुरीयक	अंगुलीयक
४१९	२	२		सुरसरी	सुरसरि
४२०	३	२		पैन	पै न
४२०	३	३		रहैं	रहै
४२०	३	६		विचि	वीचि
४२०	३	१०		गुनौवा	गुनौ वा
४२०	४	५		करले	करलें
४२०	४	६		प्रिया!	प्रिया।
४२१	२		६	करुण्यादि	कारुण्यादि
४२१	२	१६		करघनी	करधनी

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

पृष्ठ	पैरा	पंक्ति संख्या बायें	पंक्ति संख्या दायें	अशुद्धि	शुद्धि
४२१	२	२६		अंग प्रत्यन्ग	अंग प्रत्यंग
४२४	२		६	धृगू	धृग्
४२५	३	५		भ्रुभंगिमा	भ्रूभंगिमा
४२५	४		१	प्रिययत मात्म- स्वरुपिणी	प्रियतमात्म- स्वरूपिणी
४२६	१		७	स्वमुख	स्वसुख
४२६	४		२	चरणाश्रम	चरणाश्रय
४२६	४	३		उसको	उसके
४२६	४		३	कैसा	कैसे
४२९	५	२		स द्वेधाऽऽ लम्ब- नोद्दीपनात्मकः	सद्वेधाऽऽलम्बनोद्दी- पनात्मकः
४३०	३	१		प्रियतय	प्रियतम
४३०	३		२	गमनमंडन	गमन, मंडन
४३०	३	४		निर्मात्य	निर्माल्य
४३०	३		४	आद्रि	अद्रि
४३०	३	८		प्रोढ	प्रौढ़
४३०	३	९		तरंगायीत	तरंगायित
४३०	५	६		निरचलता	निश्चलता
४३०	५	७		वैशर्ण्य	वैवर्ण्य
४३१	३	५		औत्सुम्य	औत्सुक्य
४३१	३	६		चापत्य	चापल्य
४३१	६		३	पूर्णा	पूर्ण
४३१	६	४		संविन्नय	संविन्मय
४३२	१	१		सम्मुल्लित	समुल्लसित
४३२	२		४	परमोच्च्य	परमोच्च
४३२	३	१४		वे	ये
४३३	३	६		प्रिति	प्रीति
४३३	३		११	मधुमय केस	मधुमय रूप केस

पृष्ठ	पैरा	पंक्ति संख्या		अशुद्धि	शुद्धि
		बायें	दायें		
४३४	१		१	पटतर	पटतर लाज
४३४	१	३		सपने हूँ	सपनेहुँ
४३४	१	१०		रातदिनों	रातदिनाँ
४३४	१		१०	कहिँ	नहिँ
४३४	१	१२		प्रियतम	प्रियतमके
४३४	१		१२	कलेश	क्लेश
४३४	३	७		उच्छवसित	उच्छ्वसित
४३४	३	१०		पदाङ्गादि	पदाङ्कादि
४३५	१	१		आद्रि	अद्रि
४३७	१	४		बिज्गु	बिज्जु
४३८	२		४	रस	इस
४४१	१		१२	कंपा होरही है।	कंप होरहा है।
४४१	३	८		दिशाओं	दिशाओं में
४४१	३		८	भरा	भरा।
४४२	२		१	क्या हूँ	क्यादूँ
४४३	५		२	नक्षेत्रों	नक्षत्रों
४४३	५		५	प्रदार्थ	पदार्थ
४४३	५		६	का	के
४४३	५		११	हों	हो
४४४	२	५		निस्मृत	निस्सृत
४४६	१		१६	चित्र	चित्त
४४९	३		११	उज्जवल	उज्ज्वल
४५१	१		५	प्रयतमाकार	प्रियतमाकार
४५१	१	१०		निस्मृत	निस्सृत
४५१	१		१९	कैसा	कैसी
४५१	१	२१		रचना	रसना
४५२	२		३	विद्युंन्माता	बिद्युन्माला
४५२	२	३		उज्जवलता	उज्ज्वलता

पृष्ठ	पैरा	पंक्ति संख्या		अशुद्धि	शुद्धि
		बायें	दायें		
४५२	२	१०		सम्पति	सम्पत्ति
४५२	१	१		को	की
४५२	२	२		सबसे	सबके
४५३	२		४	क्षणर्ध	क्षणार्ध
४५३	२	२		पक्वानों	पक्वान्नों
४५३	३		३	क्यो	क्यों
४५३	३		१३	जगमताते	जगमगाते
४५४	३		१३	दशन	दर्शन
४५५	१	३		शपित	शमित
४५५	३		१	सखुनिधान	सुखनिधान
४५५	३	७		कुञ्जित	कुञ्चित
४५६	१	३		प्रसारित	प्रसरित
४५६	१		४	जयाकुसुम	जपाकुसुम
४५६	३		६	बरसाती	बरसती
४५६	१		६	प्रसारित	प्रसरित
४५८	१		३	वंधूक	बंधूक
४५८	२		२	प्रेमा उल्लास	प्रेमोल्लास
४५९	१		१	परिजात	पारिजात
४५९	२	६		अचाचित	अयाचित
४५९	३		६	आमूषण	आभूषण
४६१	१		७	रसमतता	रसमयता
४६१	१	१		प्रागवल्लभ	प्राणवल्लभ
४६१	१	१		व	वे
४६१	३	४		ऋषा	ऋपी
४६३	१		१	मुझ	मुझमें
४६३	१		२	वर्धमान रहती	वर्धमान करती
४६४	३		५	उकण्ठा	उत्कण्ठा
४६६	१		३	अँधेर	अँधेरे

पृष्ठ	पैरा	पंक्ति संख्या		अशुद्धि	शुद्धि
		बायें	दायें		
१६७	२		१०	निरावदित रहित	निरावरित
४६७	२		१६	जल धराकार	जलधराकार
४६६	१	१४		प्रदणी	प्राणी
४७०	१		१०	पाताल	पागल
४७३	२		४	भूतस्ततः	इतस्ततः
४७३	२		५	सर्वमुख निधान	सर्वसुख निधान
४७४	१		८	माधुर्म कररहाहै	माधुर्यभर रहा है
४७५	३	३		चूनी	चुकी
४७६	४	१		मेरे साधी	मेरे सभी
४८०	२	१		प्रेम भुक्ता	प्रेम मुक्ता
४८०	२	२०		नृत्व के	नृत्य में

उत्सर्ग--पत्र

उन श्रीराधा-माधव-चरणानुरागी
भक्तों के चरणों में
जो प्रति मध्य रात्रि २ से ४॥ बजे
तक राधा-माधव-रस-सुधा
षोडश गीतों का गान करते हैं,
उनका रस उन्हें ही समर्पित है।

——साधु वेषधारी दीन हीन चरणाश्रित

आम्नाय—ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

मंगलाचरण

(१)

साँवर ही साँवर आगे हैं,
साँवर ही पीछे हैं प्रियतम
साँवर ही साँवर ऊपर हैं
साँवर ही नीचे हैं प्रियतम
साँवर ही साँवर दहिने हैं
साँवर ही बायें हैं प्रियतम
साँवर ही साँवर अब केवल
बस शेष रहे साँवर प्रियतम

(२)

सुन्दर इस निज चरित्र छबि को
मेरे उर पर लिखना प्रियतम
लिखते लिखते जब कर पल्लव
हो जाय अधिक चिकना प्रियतम।
लेना तुम पोंछ उसे अपने
पीले दुकूल पर ही प्रियतम
देखूंगी मैं उन चिह्नों पर
सहचरियों का बिकना प्रियतम ॥

आनन्द-मन्दालय, रसभूमि, रेती, वृन्दावन

★ श्री राधा ★

श्री राधा माधव रस सुधा

श्री षोड्श गीत टीका

प्रथम अध्याय

[उपक्रमणिका]

आनन्द-मन्दालय, रसभूमि, रेती, वृन्दावन

मध्य रात्रि के दो बजे हैं। निशा देवी ने अपने अंग प्रत्यंग कृष्ण-वस्त्रों से आच्छादित किये हुए हैं, एवं नक्षत्रावलियों के आभूषणों को भी मेघ घटाओं से छुपा लिये हैं। सर्वथा निष्पंद वातावरण में एकाकी चुप चाप बैठा हूँ। झींगुरों की झंकार या मेघ गर्जन की आवाज यदा कदा भले ही कोलाहल की रेखा उत्पन्न कर देती हो, अन्यथा सर्वथा निष्पद वातावरण है। चुपचाप एक वृक्ष के नीचे बैठा हूँ। बैठे बैठे ही आँखें मुँद जाती हैं और एक अनिर्वचनीय, अचिन्त्य भावराज्य में डूब जाता हूँ।

कोई एक अनिर्वचनीय, अनुपम विलक्षण देश है, जो उज्जवल आनन्द से सदा परिपूर्ण रहताहै तथा विविध दिव्य सुगन्धित्त समीर से सदा सेवित रहता है। वह महाप्रेमरस तरंगों से नित्य हिल्लोलित है। इस देश की सम्पूर्ण भूमि पूर्णानन्द रस की श्रोतस्विनि चिन्तामणियों से निर्मित है और जल अमृत रस-स्वरूप है। यहां के सम्पूर्ण वृक्ष सुरभी-समूह-सेवित-सुरद्रु मों कल्पवृक्षों के समान हैं। कहीं मत्त कोकिल कुहू कुहू कर रही हैं। कहीं भ्रमरगण मधुर मनोहर शब्द कर रहे हैं। सरोवरों में प्रस्फुटित कमल शोभा पारहे हैं। सहस्त्र सहस्त्र अलिगण उन कमलों पर गुंजार कर रहे हैं। सरोवरों के तट पर मयूरगण अपने पुच्छ फैलाकर अत्यंत आमोद से नृत्य कर रहे हैं। यहां कोई दुखी नहीं, न जरा, न रोग, न शोक, न मृत्यु। सब नित्य, सब चिन्मय, सब शाश्वत। सर्वत्र अत्यंत सुवासित मलय समीर प्रवाहित हो रहा है। नाना वर्णों के पुष्प विकसित हैं, और इतस्ततः पुष्परेणु उड़रही है। यहां सभी मात्सर्यहीन, सभी भेद-ज्ञान रहित, अहंकार शून्य हैं। अपार ममता और उसकी प्रतीति करने योग्य आत्मा की अनुभूति ही यहां का अहंकार है, यहां प्रेमामृतरस अनन्त उत्ताल लहरियों में सदा तरंगायमान रहता है, ऐसा त्रिगुणातीत यह देश है।

मन भाव के पंखों से उड़ने लगता है। उड़ता उड़ता पहुँच जाता है एक वृक्ष के पास। अत्यधिक हरा भरा वृक्ष है। उसकी मोटी मोटी अत्यंत सुन्दर शाखायें हैं। परन्तु शाखाओं पर कहीं भी असुन्दरता, रुक्षता नहीं। शाखाओंका रंग अत्यन्त सुन्दर है। शाखाएं, उपशाखाएं, पत्ते, टहनियां सभी अभिनव सुन्दर हैं। इस वृक्ष को गोलाकार रूप से घेरे पास पास में अनेक वृक्ष हैं। इन सबकी शाखाएं परस्पर एक दूसरे वृक्षों के इतने समीप चली गई हैं, मानो परस्पर गाढ़ मैत्री एवं प्रेम से सभी वृक्ष परस्पर मिलजुल कर खड़े हों। इन वृक्षों की डालियों पर समूह के समूह पक्षी बैठे हैं। अनेक वर्णों के, अनेक आकृति के, अनेक जाति के, सुमधुर शब्द करनेवाले शताधिक पक्षीगणों का यहां अभूतपूर्व सम्मेलन हो रहा है। मेरे मनमें यहां क्या हो रहा है, यह जानने की जिज्ञासा होती है और मैं चुपचाप एक लताजाल की ओट में बैठ जाता हूँ।

सभी पक्षीगण शान्त बैठे हैं। सभी निस्पंद अर्धनिमीलित नेत्रों से मानो किसी विलक्षण छवि का ध्यान कर रहे हों, या किसी गंभीर विषय पर मनन कर रहे हों, उन्हें देखकर यही प्रतीत होता है। इन पक्षियों के मध्य में एक बूढ़ा शुक बैठा है। वह अत्यन्त शान्त, विवेकी तथा धीर प्रकृति का साथ ही परम मननशील चित्तवाला है। कुछ ही समय में वह अत्यन्त गंभीर वाणी में बोल उठता है- "लो वृन्दादेवी भी आ गई। उसकी यह वाणी सुनते ही सभी पक्षीगणों के निमीलित से नेत्र विकसित एवं चंचल हो जाते हैं और वे वृन्दादेवी का स्वागत सा करते हुए प्रतीत होने लगते हैं। उनकी उत्सुक आँखें उत्तर दिशा की ओर गये एक पथ पर लग जाती हैं। मैं भी चुपचाप शान्त चित्त से इसी पथ की ओर देखने लगता हूँ। मैं देखता हूँ अत्यन्त मंद गति से चलती हुई हाथ में एक स्वर्ण पिंजर लिये परम सुन्दर षोड़श वर्षीया एक सुन्दरी चली आ रही है। समग्र वन उसके आगमन मात्र से मुखरित हो उठता है। उसके मुख पर अत्यन्त ही निर्मल मुसकान छायी हुई है। परम सौम्य सौन्दर्य की पवित्र प्रतिमासी वह युवती जिस वृक्ष के पार्श्व से गुजरती है वृक्ष उसके स्वागतार्थ नत हो जाता है। अपने आप वह मुकुलित हो उठता है और अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा से वह उस युवती के चरण प्रान्त में पुष्पांजलि देने लगता है। उस युवती के पवित्र दर्शनों से मेरा मन भी अत्यन्त शान्त होने लगता है।

समस्त विक्षेप जैसे कहीं विलय हो जाते हैं। मन एवं अन्तःकरण अखण्ड शान्ति और शीतलता से भरने लगते हैं। श्रद्धा से अपने आप मेरा मस्तक उस युवती के चरणों में झुक जाता है। मैं चुपचाप उसे प्रणाम करता हूँ परन्तु अपने शरीर की ओर देखते ही मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता है। मैं साश्चर्य देखने लगता हूँ कि मेरे समस्त अंग अवयव पुरुष भाव त्याग कर स्त्री भाव को प्राप्त हो गये हैं एवं विलक्षण सुकुमारता जैसे मेरे रोम रोम में व्याप्त हो गई है। परम दिव्य स्त्री वेश में मेरे भावों में भी अपार आत्म-समर्पण, अभूतपूर्व त्याग भर गया है। मैं उस परम पूत, परम सुन्दरी, परम मधुर देवी के दर्शन पाकर कृतज्ञता से भर जाता हूँ। मेरे नेत्र उसकी छवि में कान उसकी परम मधुर शब्दावली की प्रतीक्षा में एवं नाक उस देवी की अंगगन्ध सूंघने में इतने रत हो जाते हैं कि मुझे एक विलक्षण सी समाधि लगने लगती है।

जैसे कोटि वीणाओं के तार झन्कृत हो उठे हों, पक्षीगण सभी अपनी अपनी बोलियों में उस देवी का स्वागत करने लगते हैं। बूढ़ा विचक्षण शुक उड़कर उसके चरणों के सम्मुख बार बार नत होकर परम गंभीर वाणी में उस देवी की स्तुति करने लगता है। और वह देवी अत्यन्त मधुर, प्रेम से सराबोर दृष्टि से सबको निहारती, सबके प्रेम भरे स्वागत का प्रत्युत्तर देने लगती है।

सहसा पक्षीगण अपने अपने स्थान से उड़ने लगते हैं और एक घने वृक्ष के आलबाल के नीचे बनी चौकी पर अपना एक एक पंख गिराने लगते हैं। कोटि कोटि पक्षीगणों के सुकोमल पंखों से कुछ ही समय में उस चौकी पर एक परम सुखद आसन बन जाता है। जब पर्याप्त मोटा आसन निर्माण हो जाता है तो बूढा शुक अत्यंत गंभीर वाणी में बोल उठता है- "हे वनरानी हम सब तुम्हारा स्वागत करते हैं। आपने हम सबके मध्य आकर हम सबको कृतार्थ किया। हम तो आपकी प्रजा हैं। हमारा अभिनन्दन स्वीकार करें एवं इस आसन को अपने अंगों का स्पर्श देकर पवित्र करें।" बूढे शुक की बात सुनकर अपनी मुसकान छटा बिखेरती वह देवी उस आसन पर विराजित हो जाती है। आसन पर बैठने के पश्चात वह अपने हाथ में लिये स्वर्ण पिंजर का द्वार खोलती है और उसमें बैठी एक सारिका पक्षी को उन्मुक्त कर देती है। श्यामा सारिका पिंजरे से मुक्त होते ही उस देवी के चरणों में प्रणाम कर उसकी वंदना करने लगती है।

"हे वन देवी वृन्दे, आपकी जय हो । मैं आपको आज इस पक्षी सम्मेलन की ओर से हम सबकी सभापति मनोनीत करती हूँ । यह मध्याह्न का समय है । पार्श्व में ही स्थित ललितानन्दद कुंज में हमारे प्राण-सार-सर्वस्व प्रिया प्रियतम श्री राधा माधव विश्राम कर रहे हैं । हम लोगों के कोलाहल से उनके सुख-शयन में किंचित भी बाधा न पड़े । हम लोग तो यहां प्रिया प्रियतम का गुणानुवाद करने ही एकत्रित हुए हैं उनका यश गान त्रिभुवन का परम मंगल करने वाला है । आप आज्ञा दें, जिससे हम लोग अपनी वार्ता प्रारम्भ करें । वृन्दादेवी पक्षीगणों की बात सुनकर अनुमोदन में किंचित मुसकुरा देती हैं । यह देखते ही बस वह सारिका अत्यंत प्यार से वन देवी के पास ही पड़े अपने स्वर्ण पिंजर के शिखर पर बैठ जाती है, एवं प्रेम-पवित्र, अति मधुर वाणी से कहने लगती है—

"हे आचार्य शुकराज देव विचक्षण, आप वेद वेदांग एवं सम्पूर्ण दर्शनों के पंडित हैं । आप द्विज हैं और आपने अनेक वर्षों तक शास्त्राध्यापन भी किया है । सभी पक्षी-वृन्द आपको अपना प्रतिनिधि मानते है और तो क्या कहूँ, प्रियतम श्रीकृष्ण के चरणों में आपका दृढ़ प्रेमानुराग है । प्रियतम आपको अपना सखा ही स्वीकार करते हैं एवं आप उनकी अनेक परम रहस्यमयी, अत्यंत गोपनीय साथ ही साथ अनन्त रसमयी लीलाओं के साक्षी और परिकर हैं । मैं श्रद्धावनत आपको प्रणाम करती हूँ और निवेदन करती हूँ कि आपकी जो भी जिज्ञासा हो किंवा आपकी मित्र मंडली द्वारा जो कुछ जिज्ञासा व्यक्त हो, उसे मेरे सम्मुख प्रकट करें, मैं उसका यथोचित समाधान करने की चेष्टा करूंगी ।

सारिका इतना वक्तव्य देकर अत्यंत शान्त एवं गंभीर हो जाती है । उसके नेत्र निमीलित हो जाते हैं और वह जैसे प्रेम समाधि में डूब गई हो, उसके रोम रोम परम शान्ति, अखण्ड प्रेम और आनन्द की वर्षा करने लगते हैं ।

वृद्ध शुक-नायक विचक्षण भी उसकी परम विनयशील वाणी सुनकर रोमाञ्चित हो उठता है एवं कहने लगता है- "हे देवी सूक्ष्मधी सारिके ! तुम मेरा आदर एवं अभिनन्दन करती हो, यह तुम्हारा परमशील है । वस्तुतः तुम गुणों में, प्रेम में, रस, कला तथा चातुरी, सबमें मुझसे परमोत्कृष्टा है । मेरा

तो नाम मात्र ही विचक्षण है, तुम्हारी विलक्षण रस लीलाचातुरी तो असमोर्ध्व है। प्रियतम भी तुम्हारी रस से सूक्ष्म बुद्धि का लोहा मानते हैं। तुम हमसबकी राजरानी वृन्दावनेश्वरी वृषभानुजा राधारानी की चिरसंगिनी हो। मैं तुम्हारे ऊपर प्रिया-प्रियतम के महा-कृपा-सौभाग्य की बार बार सराहना करता हुआ तुम्हारी वन्दना करता हूँ। हे देवी, हमने प्रेम के अनेक उच्चातिउच्च स्तरों की लीला कथाएं सुनी हैं। प्रिया-प्रियतम की रति, राग, अनुराग, प्रणय, मान, भाव, एवं महाभाव की अति उच्च प्रेमावस्थाओं की मनोहरतम लीलाओं की तुम सदा साक्षी रहती हो। प्रियतमा प्राणेश्वरी श्री राधारानी तुम्हें सदा अपने से अभिन्न मानकर अपने साथ ही रखती हैं। हे देवी, हमनेतो मात्र रस शास्त्रों में पढ़ा है कि प्रिया प्रियतम में जब महाभाव की भी अति उच्च दशा मादनाख्य महाभाव का प्रकाश होता है, उस समय भी तुम उनकी संगिनी रहकर उनके इस महाभाव का रसास्वादन करती हो। हे देवी, हम जानते हैं कि मादन और मोहन महाभाव किंचित भी वाणी के विषय नहीं हैं फिर भी शाखाचन्द्रन्याय से ही यदि हम सब पर तुम्हारी कृपा हो तो प्रिया प्रियतम की मादनाख्य महाभाव की लीलाओं का हमें हे सारिके! आज किंचित रसास्वादन कराओ। हम तुम्हारे परम अनुग्रहीत होंगें।

शुकराज विचक्षण का यह कथन सुनते ही सब ओर से धन्य, धन्य, साधु, साधु की आवाजें आने लगती हैं। मैंने देवी वृन्दा की ओर दृष्टि डाली तो पाया कि वृन्दादेवी परम रोमाञ्चित एवं भावाविष्ट हो गई हैं। सूक्ष्मधी के नेत्रों से भी अश्रु प्रवाहित हो रहे हैं। वे शुकराज के प्रश्न की उत्तमता से अत्यंत प्रभावित हो उठी हैं। पक्षीगणों में ही नहीं, प्रश्न मात्र के श्रवण से सम्पूर्ण बन प्रान्त में बिलक्षण प्रेमोदय हो उठता है। मुझे ऐसा लगा कि यह मेरा परम सौभाग्य है और प्रियाप्रियतम की मुझ पर अपार कृपा है तभी आज ऐसे विलक्षण समारोह में मुझे भी गुप्त प्रवेश प्राप्त हो गया है।

सहसा सब शान्त होकर सूक्ष्मधी सारिका के मुख की ओर देखने लगते हैं। सारिका के मुख पर एक विलक्षण भाव प्रकट होने लगता है और वह भाव ही शब्द बनकर उसके मुख से झरने लगता है।

"मेरे प्रियतम पूर्ण आनन्दमय हैं। आनन्द-रस-सार का घनीभूत

विग्रह प्रियतम श्रीकृष्ण हैं और उनकी प्रतिमूर्ति-प्रेम-विग्रह-रूपा, सम्पूर्ण प्रेम का एकीभूत पुञ्ज, मेरी रानी, प्रियतमा, प्राणेश्वरी श्री राधा हैं। प्रेम-रस-सार विग्रह होने से ही श्री रानी महाभाव रूपा हैं। वे आनन्द-रस-राज प्रियतम श्री कृष्ण की जीवन हैं और नित्य निरन्तर रसराज प्रियतम माधवको अत्युत्कृष्ट आनन्द प्रदान करती रहती हैं। ऐसी महाभाव मूर्ति श्री राधा एवं रसराज प्रियतम माधव की आओ हम सब वंदना करें।" सभी पक्षीगण भाव विभोर हुए जय-जय करने लगते हैं:—

पुनः सर्वत्र शान्ति छा जाती है। सारिका ध्यानस्थ बैठ जाती है। कुछ ही देर में उसके मुख से परम मधुर संगीत निकल उठता है:—

(षोड़श गीत)

(महाभाव रसराज वन्दना)

दोउ चकोर, दोउ चन्द्रमा, दोउ अलि, पंकज दोउ।
दोउ चातक, दोउ मेघ प्रिय, दोउ मछरी जल दोउ॥
आश्रय-आलम्बन दोऊ, विषयालंबन दोउ।
प्रेमी प्रेमास्पद दोऊ तत्सुख-सुखिया दोउ॥
लीला आस्वादन निरत महाभाव रसराज।
वितरत रस दोउ दुहुँन कौं, रचि विचित्र सुठि साज॥
सहित विरोधी धर्मगुण युगपत् नित्य अनंत।
वचनातीत अचिन्त्य अति सुषमामय श्रीमन्त॥
श्री राधा माधव चरण बन्दौं बारंबार।
एक तत्व दो तनु धरैं नित रस पारावार॥

सारिका की परम मधुर स्वरलहरी वन को मानो रोमाञ्चित कर देती है। सभी पक्षीवृन्द अपनी देह सुधि भूलकर किसी अनिर्वचनीय आनन्द में डूब जाते हैं। यहां तक कि समीर भी स्तंभित हो जाती है। वृक्षावली भी स्तम्भित सी गायन में भीग उठती है। लताएं रोमाञ्चित हो उठती हैं। सारिका कह उठती है—

"मेरी रानी और मेरे प्रियतम श्री राधा माधव परस्पर प्रेम में एक दूसरे के लिए चकोर भी हैं और चन्द्रमा भी, भ्रमर भी हैं एवं कमल भी। पपीहा भी हैं और मेघ भी, मछली भी हैं एवं जल भी।"

"मेरी रानी और मेरे प्रियतम श्री राधा माधव एक दूसरे के प्रेमी भी हैं और प्रेमास्पद भी। प्रेमी को कहते हैं आश्रयालम्बन एवं प्रेमास्पद को विषयालम्बन। कहीं श्याम सुन्दर प्रेमी बनते हैं तो हमारी हृदयेश्वरी रानी प्रेमास्पद हो जाती है और जहां हमारी प्राणप्यारी रानी प्रेमिका सजती है वहां प्रियतम प्राणनाथ प्रेमास्पद हो जाते हैं। प्रेम का स्वरूप तो प्रेमास्पद के सुख में सुख मानना ही है। इसी से प्रेमी को तत्सुख सुखिया कहते हैं। हमारी रानी श्री राधा किशोरी और उनके प्राणसार सर्वस्व प्रियतम श्री माधव दोनों ही तत्सुख सुखी हैं। हमारी प्यारी रानी को सुखी देखकर प्रियतम को अपार सुख होता है और प्रियतम श्यामसुन्दर के सुख से रानी का रोम रोम सुखी हो जाता है।"

"प्रेम की सर्वोच्च परिणति का नाम है महा भाव। महाभाव की मूर्त्तिमान विग्रह हैं हमारी प्राणप्यारी रानी। इसी प्रकार रसों में सर्वोत्कृष्ट रस है शृंगार या उज्ज्वलरस। इसके मूर्तिमान स्वरूप हैं प्रियतम श्री कृष्ण। ये दोनों सदा लीला रस का अखण्ड आस्वादन करते रहते हैं। नाना प्रकार की नित्य नूतन विचित्र विचित्र सुन्दर सज्जाओं को धारण कर ये दोनों, दोनों को नित्य नूतन रस वितरण करते रहते हैं।

"मेरी रानी और मेरे प्रियतम दोनों ही एक ही काल में परस्पर विरोधी, अनन्त, नित्य, मनवाणी से अगोचर, अत्यन्त शोभामय, एवं परम दिव्याति दिव्य गुणगणों से विभूषित हैं।"

"मेरी रानी और प्रियतम तत्वतः स्वरूपतः एक होते हुए भी दो भिन्न रूपों में प्रकट होकर लीला कररहे हैं। नित्य रस के समुद्र उन श्री-राधा माधव के चरणों की मैं बार बार वन्दना करती हूँ।"

[दोउ शब्द का भाव]

सारी के इतना कहते ही सबके मस्तक श्रद्धा से झुक जाते हैं। शुकराज भी अत्यन्त श्रद्धा से श्री राधा माधव को प्रणाम करता है। तत्पश्चात् वह

अत्यन्त गंभीर वाणी में बोलता है—"हे सारिके, तुम्हारा आज का उपरोक्त कथन अत्यन्त तात्विक रहस्यों से भरा है। यद्यपि विषय परम क्लिष्ट है फिर भी मेरी कुछ शंकाएं हैं। हे सारिके, मैंने अब तक जितने वेद वेदांग पढ़े हैं, सुने हैं सभी में परम तत्व ब्रह्म को एक अद्वितीय, देश-काल-अवस्था-परिणाम से सर्वथा अनवच्छिन्न आत्म प्रत्यय का सार शान्त, शिव और अद्वैत माना है। हम सबके प्राण प्रियतम श्रीकृष्ण ही एक मात्र परम तत्व हैं, मैं अबतक यही मानता रहा हूँ।

हे देवी, आपने वन्दना की पद्यावली में महाभाव रसराज दोनों को परम तत्व मानकर वंदना की है। पद के प्रथम शब्द में भी 'दोउ' शब्द का प्रयोग किया है। कृपया हे देवी, इसका रहस्य प्रकाश करें।

पुनः प्रश्न की गंभीरता ने सभी को जिज्ञासु बना दिया। सारिका तो जैसे यह प्रश्न सुनने को तैयार ही बैठी थी। वह अत्यन्त शान्त स्वर में कहने लगी–हे शुकराज! परमतत्व एक संख्यक नहीं है–क्योंकि एक संख्या है और संख्या सदा अपूर्ण है। श्रुति कहती है कि पूर्ण ब्रह्म में से पूर्ण ब्रह्म निकाल दीजिये तो भी पूर्ण ब्रह्म ही बचता है, परन्तु यदि एक संख्या में से एक संख्या निकाल दीजिये तो एक नहीं बचता शून्य बचता है। पूर्णब्रह्म परात्पर तत्व द्विसंख्यक भी नहीं है। उसमें गणित की जागृति ही नहीं है। वेदों में ब्रह्म को जहां एक कहा है उसका अर्थ यही है कि वह सब में अनुगत है जैसे एक संख्या सब में अनुगत होती है। परात्परं तत्व सब में अनुगत एवं सबमें व्यावृत्त और सबसे विलक्षण है। इसीलिये उसे अद्वितीय कहा गया है। तत्व न एक है, न दो है,न अनेक। तत्व तो बस तत्व है। सुनो मैं अपने कथन को और विस्तार से समझाती हूँ।

परमतत्व श्रीमहाभाव रसराज राधामाधव नित्य युगल स्वरुप हैं। पर यह युगल स्वरुप वैसा नहींहै जैसे दो परस्पर निरपेक्ष सम्पूर्ण स्वतंत्र व्यक्ति या पदार्थ किसी एक स्थान पर स्थित हों। हे शुकराज! तुम्ही बताओ श्रीराधामाधव वस्तुतःपृथक पृथक हैं या एक ही होकर पृथक पृथक प्रतीत होते हैं ? सत्य कहो ? इनमें से एक का त्याग कर देने पर क्या दूसरे के अस्तित्व का परिचय मिलेगा ? नहीं।

इसी लिए मेरे 'दोउ' शब्द का अर्थ दो संख्या नहीं है। वस्तु और उसकी शक्ति, तत्व और उसका प्रकाश, विशेष्य और उसके विशेषण समूह, पद और उसका अर्थ, सूर्य और उसका तेज, अग्नि और उसका दाहकत्व, इनमें जैसे नित्य युगल भाव विद्यमान है, वैसे ही परात्पर परब्रह्म महाभाव रसराज तत्व में भी युगलभाव है, जो नित्य दो होकर भी नित्य एक है और नित्य एक होकर भी नित्य दो है, जो नित्य भिन्न होकर भी नित्य अभिन्न है और नित्य अभिन्न होकर भी नित्य भिन्न है.जो एक में ही सदा दो है और दो में ही सदा एक है, जो स्वरूपतः एक होकर भी द्वैत भाव के पारस्परिक सम्बन्ध के द्वारा ही अपना परिचय देता और अपने को प्रकट करता है। यह एक ऐसा रहस्यमय परम विलक्षण तत्व है जिसके स्वरूप का दो अयुत सिद्ध रूपों में ही प्रकाश होता है, दो अयुत सिद्ध रूपों में ही परिचय प्राप्त होता है और दो अयुत सिद्ध रूपों में ही जिसकी उपलब्धि होती है।

हे शुकराज ! वेद मूलक उपनिषदों में ही इस युगल स्वरूप का प्रथम और स्पष्ट परिचय प्राप्त होता है। उपनिषद् जिस परम तत्व का वर्णन करते हैं उसके मुख्यतया दो स्वरूप हैं। एक 'सर्वातीत' और दूसरा 'सर्व कारणात्मक'। सर्व कारणात्मक स्वरूप के द्वारा ही सर्वातीत का संधान प्राप्त होता है और सर्वातीत स्वरूप ही सर्व कारणात्मक स्वरूप का आश्रय है।

हे शुकराज ! तुम्ही बताओ औपनिषद् परमतत्व तो ऐसा है "जो न कभी देखा जा सकता है, न ग्रहण किया जा सकता है; न उसका गोत्र है, न उसके चक्षु, कर्ण, हाथ और पैर हैं"

यत्तदद्रष्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तद पाणि पादम् ।

[मुण्डक १।१।६]

"वह न भीतर प्रज्ञावाला है, न बाहर प्रज्ञावाला है, न दोनों प्रकार की प्रज्ञावाला है, न प्रज्ञान घन है, न प्रज्ञ है, न अप्रज्ञ है; वह न देखने में आता है, न उससे कोई व्यवहार किया जा सकता है, न वह पकड़ में आता है, न उसका कोई लक्षण है; जिसके सम्बन्ध में न चित्त से कुछ सोचा जा सकता है न वाणी से कुछ कहा ही जा सकता है। जो आत्म-प्रत्यय का सार

है, प्रपञ्च से रहित है, शान्त, शिव और अद्वैत है, किसी भी दृश्य, ग्राह्य, कथन करने योग्य, चिन्तन करने योग्य, धारणा में लाने योग्य पदार्थ के साथ उसका कोई भी सम्बन्ध या सादृष्य नहीं है। फिर यही देश-कालातीत, अवस्था-परिणामशून्य,इन्द्रिय-मन-बुद्धि से अगोचर, शान्त, शिव, अनन्त, एक मात्र सत्तास्वरूप, अक्षर, परमतत्व अपनी किस विचित्र अचिन्त्य शक्ति के द्वारा अनन्त सौंदर्य; माधुर्य लिये यहां अपने आनन्द की मनोहर झांकी करारहा है ? हे शुकराज ! तुम और मैं एवं हम सभी ध्यान योग में स्थित होकर ही नहीं, प्रत्यक्ष ही तो उस परमदेव परमात्मा की अचिन्त्य स्वरूपभूता शक्ति का भी दर्शन नित्य कर रहे हैं, जिसके द्वारा एक, अद्वितीय, देश-काल-अवस्था-परिणाम से सर्वथा अनवच्छिन्न, सच्चिदानन्द तत्व ,अनन्त, विचित्र, सौन्दर्य, माधुर्य लिये प्रकट है। वह इस वृन्दावन एवं व्रज के समस्त देश, काल में भी छुपा हुआ अपने सच्चिदानन्द स्वरूप की तथा अपनी नित्य सत्ता की मनोहर झांकी करा रहा है। हे शुकराज ! यह बात बहुतों को समझ में नहीं आवेगी कि जो सबसे अतीत है, वह सर्वरूप कैसे हो सकता है ? परन्तु यहां यह प्रत्यक्ष है, और औपनिषद् दृष्टि से भी इसमें कहीं कोई भी विरोध या असामञ्जस्य नहीं है। प्रियतम श्री कृष्ण एक होकर भी अपनी शक्ति सहित युगल हैं, और केवल युगल ही नहीं, वे ही तो यमुना, नद, नदी, सरोवर, फल, फूल, तरुतर, गो, वत्स, भूमि, भवन, जल, थल, सूर्य, व्योम आदि अनन्त रूपों में अपने आपको प्रकट कर रहे हैं।

उनका नित्य एक रहना, नित्य बहुत से रूपों में अपने आस्वादन की कामना करना, और नित्य बहुत से रूपों में अपने आपको ही प्रकट कर देना, साथ ही अपने आपका अपने ही द्वारा संभोग करना, यह सब क्या उनके नित्य स्वरूप के ही अन्तर्गत नहीं है ? कामना, ईक्षणा और आस्वादन, ये सभी क्या उनकी निरवच्छिन्न पूर्ण चेतना के क्षेत्र में समान ही अर्थ नहीं रखते हैं ? महारसराज प्रियतम श्रीकृष्ण वस्तुतः न तो एक अवस्था से किसी दूसरी अवस्था में जाने की कामना करते हैं, और न ही उनकी सहज नित्य स्वरूप स्थिति में कभी कोई परिवर्त्तन ही होता है। उनके बहुत रूपों में प्रकट होने का यह अर्थ कदापि नहीं हैं कि वे एकत्व की अवस्था से बहुत्व की

अवस्था में, अथवा अद्वैत की स्थिति से द्वैतस्थिति में चलकर आते हैं। उनकी सत्ता तथा स्वरूप पर काल का कोई भी प्रभाव नहीं है। अवस्था भेद की कल्पना तो जड़ जगत में है। स्थिति और गति, अव्यक्त और व्यक्त, निवृत्ति और प्रवृत्ति, विरति और भोग, साधन और सिद्धि, कामना और परिणाम, भूत और भविष्य, दूर और समीप, एक और अनेक, ये सभी भेद वस्तुतः जड़ जगत के संकीर्ण धरातल में ही हैं। विशुद्ध, पूर्ण, सच्चिदानन्द-स्वरूप प्रियतम तो सर्वथा भेद शून्य हैं। वे विशुद्ध अभेद भूमि हैं। उनकी स्थिति एवं गति. उनका अव्यक्त तथा व्यक्त होना उनकी निष्क्रियता और सक्रियता, सभी में पूर्ण अभेद है। इसी प्रकार उनका एकत्व और अनेकत्व, उनकी साधना एवं सिद्धि, उनके कामना और भोग, उनके भूत-भविष्य-वर्तमान तथा दूरत्व, और नैकट्य भी अभेद रूप ही हैं। इस अभेद भूमि में चैतन्य घन पूर्ण परमात्मा महारसराज श्रीकृष्ण विरोधी धर्मों को आलिङ्गन किये नित्य विराजित हैं। वे चलते हैं, और नहीं भी चलते, वे दूर भी हैं, समीप भी हैं, वे सबके भीतर हैं, और सबके बाहर भी हैं।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ।।

[ईशावास्योपनिषद् ५]

वे अपने विश्वातीत रूप में स्थित रहते हुए ही अपनी वैचित्र्य-प्रसविनी अचिन्त्य योगमाया शक्ति के द्वारा इस गोकुल, वृन्दावन, गिरि, नदी, निर्झर एवं सम्पूर्ण चराचर का सृजन करके अनादि अनन्तकाल तक उसमें रमण करते हैं एवं उसी के द्वारा अपने विश्वातीतस्वरूप की उपलब्धि और उसका सम्भोग भी करते रहते हैं। हे शुकराज ! उपनिषद् कहते हैं:—

'स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते द्वितीयमैच्छत्...
स इममेवात्मानं द्वेधापातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम् ।'...

[बृहदारण्यक १।४।३]

'वह ब्रह्म पहले एकाकी था, वह रमण नहीं करता था। इसी कारण आज भी एकाकी पुरुष रमण नहीं करता। उसने दूसरे की इच्छा की।...उसने अपने को ही एक से दो कर दिया। वे पति पत्नी हो गये।... "इसका यह

अर्थ नहीं लेना चाहिये कि इससे पूर्व वे अकेले थे, तथा अकेलेपन में रमण का अभाव प्रतीत होने के कारण वे मिथुन (युगल) हो गये। क्योंकि काल परम्परा के क्रम से अवस्था भेद को प्राप्त हो जाना ब्रह्म के लिये संभव ही नहीं है। वे नित्य मिथुन (युगल) हैं, और इस नित्य युगलत्व में ही उनका नित्य पूर्ण एकत्व है। उनका अपने स्वरूप में अपने ही साथ नित्य रमण एवं अपनी अनन्त सत्ता, अनन्त ज्ञान, अनन्त ऐश्वर्य और अनन्त माधुर्य का अनवरत आस्वादन चल रहा है। उनके इस स्वरूपगत आत्ममैथुन, आत्मरमण, और आत्मास्वादन से ही अनादि, अनन्त काल में तथा अनादि, अनन्त देशों में अनन्त-विचित्रता-मण्डित, अनन्त-रस-समन्वित विश्वों के सृजन, पालन और संहार का लीला-प्रवाह चल रहा है। इस युगल स्वरूप में ही ब्रह्म के अद्वैत स्वरूप का परमोत्कृष्ट परिचय प्राप्त होता है। इसीलिये महाभाव महारसराज श्रीराधा माधव युगल स्वरूप नित्य सत्य और प्रकारान्तर से उपनिषद्-प्रतिपादित हैं।

हे शुकराज ! एक ही साथ सर्वातीत और सर्वकारण रूप में, स्थितिशील और गतिशील रूपमें, निष्क्रिय और सक्रिय रूपमें, व्यक्त और अव्यक्त रूपमें एवं सच्चिदानन्दघन पुरुष और विश्वजननी नारी रूप में इस वन्दना नामक पद में इन्ही श्रीराधा माधव के युगल स्वरूप का नमन किया गया है। परन्तु यह विषय है बहुत ही गहन। यह वस्तुतः अनुभवगम्य रहस्य है। प्रगाढ़ अनुभूति जब तार्किकी बुद्धि की द्वन्द्वमयी सीमा का सर्वथा अतिक्रमण कर जाती है, तभी सक्रियत्व और निष्क्रियत्व, साकारत्व और निराकारत्व, परिणामित्व और अपरिणामित्व, एवं बहुरूपत्व और एकरूपत्व के एक ही समय, एक ही साथ सर्वांगीण मिलन का रहस्य खुलता है। तभी इसका यथार्थ अनुभव प्राप्त होता है।

हे शुकराज ! वस्तुतः प्रियतम श्रीकृष्ण के रूप में ब्रह्म के उसी सर्वातीत निर्विकार, निष्क्रिय, निर्विशेष रूप के दर्शन होते हैं एवं हम सबकी प्राणसखी राधा केरूप में उन्हीं की सर्वकारणात्मिका, अनन्त लीला-वैचित्रमयी, स्वरूपा शक्ति का सक्रिय भाव दृष्टिगोचर होता है। श्री कृष्ण रूपमें परमतत्व विश्वातीत है, एक है और सर्वथा निष्क्रिय, अकर्त्ता है, एवं राधारूप में वही

विश्वजननी, बहुप्रसविनि, लीलाविलासिनी के रूप में प्रकाशित है। श्रीकृष्ण-मूर्त्ति में वही परमतत्व सच्चिदानन्द स्वरूप है, और राधामूर्त्ति में उन्हीं की सत्ता का विचित्र प्रकाश, उन्ही के चैतन्य की विचित्र उपलब्धि तथा उन्हीं के आनन्द का विचित्र आस्वादन हो रहा है। अपने इस राधा भाव के संयोग से ही वे परमपुरुष ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता हैं, सृजनकर्त्ता, पालनकर्त्ता, और संहारकर्त्ता हैं। इस राधा भाव के संयोग से ही उनके स्वरूपगत, स्वभावगत, अनन्त ऐश्वर्य, अनन्तवीर्य, अनन्त सौन्दर्य और अनन्त माधुर्य का प्रकाश है। इसी में उनकी भगवत्ता का परिचय है। प्रियतम श्री कृष्ण रूप से वे नित्य निरन्तर अपने अभिन्न राधा रूप का ही आस्वादन करते हैं और राधा रूप से अपने को ही अनन्त आकार-प्रकारों में, लीला रूपमें प्रकट करके नित्य चिद्रूप उसकी उपलब्धि और उपभोग करते हैं, इसीलिये प्रियतम श्रीकृष्ण सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वलोकमहेश्वर, षड़ैश्वर्यपूर्ण भगवान हैं। सच्चिदानन्दमयी, अनन्तवैचित्र्यप्रसविनी, लीला-विलासिनी, महाशक्ति, राधा प्रियतम श्रीकृष्ण की स्वरूपता हैं। श्रीकृष्ण के विश्वातीत, देश-कालातीत, अपरिणामी, सच्चिदानन्द स्वरूप के साथ वे नित्य मिथुनीभूता हैं। श्रीकृष्ण परब्रह्म की सर्वपरिच्छेद रहित सत्ता, चेतनता, और आनन्द को अगणित स्तरों के सत् पदार्थ रूपमें, असंख्य प्रकार की चेतना तथा ज्ञान के रूप में, एवं असंख्य प्रकार के रस तथा आनन्द के रूप में, विलसित करके उनको आस्वादन के योग्य बनाती रहना इसी राधा महाशक्ति का काम है। स्वरूपगत महाशक्ति राधा इस प्रकार अनादि-अनन्त काल ब्रह्म श्रीकृष्ण के स्वरूपगत चित् की सेवा करती रहती हैं। प्राणेश्वरी राधा का यह शक्तिरूप तथा उनकी समस्त लीला, इस महाशक्ति के परिणाम और अर्थ, स्वरूपतः उस परम चित् तत्व श्रीकृष्ण से अभिन्न है। वह राधारूप नारी भाव, स्वयं पुरुषभाव प्रियतम श्रीकृष्ण से सर्वथा अभिन्न है। यह परिणामशील दृष्यरूप समस्त अनन्त अनन्त विचित्र लीलाविलास भी प्रियतम श्रीकृष्ण के कूटस्थ नित्य भाव से पूर्णतया अभिन्न है। इस प्रकार उभय-भाव-अभिन्न होकर ही भिन्न रूप में परस्पर आलिङ्गन किये हुए, एक दूसरे का प्रकाश, सेवा और आस्वादन करते हुए, नित्य निरन्तर ब्रह्म के पूर्ण स्वरूप का ये दोनों परिचय दे रहे हैं। परमपुरुष और उनकी महाशक्ति, प्रियतम भगवान श्रीकृष्ण और उनकी प्रियतमा भगवती प्राणसखी

राधा, भिन्नाभिन्न रूप से एक ही ब्रह्म स्वरूपमें स्वरूपतः प्रतिष्ठित हैं। इसीलिये परब्रह्म पूर्ण सच्चिदानन्द है, और साथ ही नित्य आस्वादनमय है। हे शुकराज! यही वह विचित्र महारास है, जो अनादि, अनन्त-काल से बिना विराम चल रहा है। उपर्युक्त गीत में वर्णित श्री महाभाव-रसराज राधा-माधव रूप युगलतत्व का यही रहस्य है। एवं ऊपर प्रयुक्त 'दोउ' शब्द इसी भाव का वाची है।

सारिका इतना कह कर जैसे शान्त समाधिस्थ हो गई। और उसके रोम रोम में ऐसा विलक्षण भाव सबको दृष्टिगोचर हुआ मानो अनन्त रसार्णव प्रियतम श्रीकृष्ण ही सारिका का तन, मन, रोम रोम बने ललित त्रिभंग रूप में नृत्य कर रहे हैं, एवं साथ ही उसकी सर्वातीत, अहम् प्रत्यय की सार आत्मा, राधा रूप अनन्त, अनन्त भाव बनकर, उनके रस को आधार तथा आश्रय देती हुई, उन्हें विलक्षण से विलक्षण रस-नृत्य करने को गति दे रही है। इस अनिर्वचनीय दर्शन से सभी विलक्षण भावदशा को प्राप्त हो गये। कौन जाने, कितने कालतक सबकी यह दशा रही। क्यों कि प्रकृति रूप मिथ्या दृष्य को प्रकाशित करने वाले भूत, भविष्य, वर्त्तमान रूप मिथ्या काल की तो वहाँ सत्ता ही नहीं थी। सर्वथा असत्, प्राकृतिक बुद्धि की, जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति रूप अवस्थाओं को निर्देश करने वाला, सर्वथा मिथ्या से भी अधिक मिथ्या, परिस्थिति रूप इस विश्व जीवन का प्रकाश करने वाला, और स्वप्न से भी अधिक असत्, अस्थिर, अनित्य, क्षणभंगुर, वस्तु रूप देह को भासित होने वाला यह काल, उस महामहा रस भूमि और उसकी आश्रय भावस्थली को स्पर्श करने का भी साहस कैसे कर सकता था। नहीं ही कर सकता था। कदापि नहीं कर सकता था।

[चकोर एवं चन्द्रमा का भाव]

लील-रस-समुद्र पुनः आन्दोलित हुआ। परमातिपरम निर्मल एक रस लहर आई और उसी रस लहर में, जैसे शुकराज विचक्षण की रस-समाधि टूट गई हो, वह अपने परम रसमय नेत्रों से बाह्य-दर्शन करने लगा। सर्वत्र राधा कृष्ण, प्रिया प्रियतम, पक्षी-पक्षी में, वृक्ष-वृक्ष में, अणु-अणु में, व्योम में, वायु में, भूमि में, सर्वत्र छिटकी प्रकाशमयी ज्योत्सना में, परमाणु परमाणु में,

वाराणसी-5

मात्र प्रिया प्रियतम ही प्रिया प्रियतम, रस-निमग्न तथा भाव विमुग्ध हैं। शुकराज क्षणभर के लिये पुनः रस निमग्न सा होता हुआ आँखें मूँद लेता है, फिर आँख खोलता है। मानो रस सागर ही लहराता हो, वह आनन्दरस में डूबा पुनः बोल उठा।

"धन्य, सारिके, महाभाग, तुम्हारे रोम रोम की परम जय हो। हे महादेवी, तुम्हारी कृपा से हम सभी जिज्ञासा निवृत्त हुए। हमें भली प्रकार ज्ञात हो गया कि श्री राधा माधव प्रिया-प्रियतम ही परात्पर परम रस तत्व और उसका प्रकाश महाभाव हैं। परन्तु हे देवी, आपने इन दोनों को अपने वन्दना गीत में चकोर और चन्द्रमा, अलि और पंकज, चातक और मेघ तथा मछली एवं जल क्यों कहा है? परात्पर रसतत्व, और उसके प्रकाश महाभाव को इन उपमाओं से अलंकृत करने में आपका क्या अभिप्राय है? हे देवी, कृपा करके हमें इन सब के भावों का भी अनुभव करावें।

शुकराज के इस प्रश्न पर पुनः सर्व ओर से धन्य, धन्य की वाणी गूँज उठी। सारिका पुनः समाधिस्थ हो गई। कुछ क्षण पश्चात जैसे वीणा के तार अति मधुर झंकृत हो रहे हों वह रस स्निग्ध वाणी में बोली- हे महाभाग शुक! तुम्हारा अभिनन्दन है। तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर मेरा विषय नहीं है। हे शुक शिरोमणि, यहाँ भगवती वृन्दा समुपस्थित हैं। उनकी परम कृपा से इस लीला राज्य में कहीं जड़ता की गन्ध का भी लेश नहीं है, सब कुछ सर्वथा अप्राकृत है। सबके विग्रह चाहे चकोर हों या चन्द्र, चाहे अलि हों या पंकज, चाहे चातक हों या मेघ, चाहे मछली हों या जल, सभी सर्वथा अप्राकृत हैं। सबके भाव, सबके रूप, सबकी समस्त लीलाएँ सर्वथा अप्राकृत हैं एवं अप्राकृत क्षेत्र में हो रही हैं। साथ ही अप्राकृत मन-बुद्धि तथा इन्द्रियों को ही इनका अनुभव संभव है। हे महाकृपा पात्र, आप भगवती वृन्दा के अनुग्रह-भाजन होवें। जिससे स्वयं चकोर और चन्द्रमा, अलि एवं पंकज, चातक एवं मेघ तथा मछरी एवं जल यहाँ उपस्थित होकर अपना भाव एवं स्वरूप प्रकाशित करें। ये सब स्वयं ही अपना वह महा सौभाग्य प्रकाश कर देंगे, जिसका यत्किञ्चित प्रकाश मेरे अन्तःकरण में मेरी रानी की कृपा से है। और उसी कृपा से प्रेरित हुई मैं स्तुति में इनका नामोल्लेख उपमा के रूप में कर गई हूँ।

सारिका इतना कहकर स्वर्णपिंजर के शिखर-स्थान से उतरकर पिंजर में भीतर चली गई एवं वहाँ भाव निमग्न हो बैठ गई। वृन्दादेवी अत्यंत स्नेह से कभी शुकराज विचक्षण की ओर एवं कभी महा स्नेह से सारिका की ओर देखने लगीं। उनके नेत्र प्रेमरस से छलछला रहे थे। अन्तर्हृदय का महाभाव उनके रोम रोम से, उनके अंग अंग से निकलते हुए तेज से, उनकी त्वचा से निस्सरित सुवास से सर्वत्र प्रसरित होने लगा। परम अनिर्वचनीय भाव सर्वत्र लहरा रहा था। उसी महा-भाव लहरियों को ही मानो कोई एक उर्मि हो, एक चकोरी वहाँ उड़कर आगई, और वृन्दादेवी के चरणों में वन्दना करने लगी। उसका कण्ठ भाव-गद्गद था, उसके नेत्र प्रेमाश्रु-सजल थे, और उसका रोम रोम भी प्रेम के सर्व निर्मल सात्विक भाव से स्वेद-श्लथ था। परम निर्मल प्रेम से सिक्त वाणी में वह बोल उठी—

"हे महादेवी, मेरी रानी की कृपा से जबसे मेरे इन नेत्रों में सत्य प्रकाशित हुआ है, मुझे स्पष्ट यही दिख रहा है, एक ही परम सत्य सर्वत्र सरस रहा है। मैंभी वही परम सत्य हूँ, जो आप हैं। महात्मा शुकराज भी वही सत्य हैं, और परम चिन्मयी सारिका महारानी भी। पूर्ण, नित्य, अखण्ड सत्य ही यह गोलोक चिन्मय धाम है। तब कौन किसकी क्या कहकर वन्दना करे ? मुझे तो यही अनुभव हो रहा है कि वह परम सत्य रसतत्व ही परम वन्दनीय है। जो पूर्ण भाव भी है, और पूर्ण अभाव भी है एवं भाव और अभाव सबसे सर्वथा सर्वथा निरपेक्ष, परम विलक्षण, अनिर्वचनीय, सबसे पूर्णतया अतीत भी है। वह सब मान्यताओं से अतीत है। वह न वाणी का, न विचार का ही विषय है। वरंच समग्र वाणी, सम्पूर्ण कथन; और समस्त विचार उसी की आश्रय भूमि में उत्पन्न और विलय होते रहते हैं। उसके बाह्य कलेवर में ही इन सबका मात्र स्पन्दन है। वह किसी का भी विषय नहीं, सब उसके विषय हैं। अतः वह सर्व विषयातीत है, सर्व विचारातीत है। अतः वह स्तुति का भी विषय नहीं, स्तुति का भी आश्रय ही है। कोई महिमा उसे महिमान्वित नहीं कर सकती, अपितु वही सब महिमाओं को महिमान्वित कर रहा है। जो सब उपमाओं को उपमान्वित करता हुआ परम निरुपम है, वह सब वन्दनाओं का परम वन्दनीय परम तत्व ही हम सबका आश्रय है। मात्र उसके आश्रय की स्वीकृति ही उसकी सत्य वन्दना है !

चकोरी इतना कहकर परम शान्त हो गई। सर्वत्र चिरशान्ति, मात्र रस ही रस प्रवहमान था। कुछ क्षण की शान्त स्थिति के पश्चात् वह चकोरी पुनः बोली–"हे शुकराज! तुम तो परम पंडित हो, वेदज्ञ हो, सर्वशास्त्र निष्णात हो, कहो, जो कुछ मैं कहरही हूँ, यथार्थ है न?

शुकराज विचक्षण कहने लगा—हे देवी, आपकी वाणी परमार्थतः तो परम सत्य लगती है, परन्तु व्यवहार में मेरे लिये तो अनेक की सत्ता है। मेरी बुद्धि, कुछ वन्दनीय, कुछ निन्दनीय, कुछ प्राप्तव्य, कुछ त्याज्य, कुछ श्रेय एवं कुछ हेय स्वीकार कर रही है। मैं देख रहा हूँ, मेरे परम सखा श्रीकृष्ण हैं, उनके पिता नन्द हैं, माता यशोदा हैं, नन्दभवन है, वृक्ष हैं, पक्षी हैं, पशु हैं, महादेवी वृन्दा हैं, उनका यह परमपावन वृन्दावन है, पुण्यसलिला यमुना हैं, अमृतप्रवाही निर्झर हैं, पूततोय अनेकानेक सरोवर हैं, नद हैं, भगवान सविता हैं, चन्द्रदेव हैं, नक्षत्र हैं, आकाश है, वायु है, अग्नि है, सलिल है, और परम पावन यह गोलोक की भूमि है। हे देवी, मेरे लिए तो इन सबके प्रति यथायोग्य व्यवहार है। अतः आपका यह कथन, परमार्थतः सत्य होते हुए भी मेरे लिये पूर्णतया स्वीकार्य, अनुभवगम्य नहीं हो रहा है।

चकोरी के परम शान्त मुख पर यह सुनकर मधुर मुसकान नाचने लगी। परम माधुर्य जैसे उसकी समग्र आकृति से फूटरहा था। प्रकाशित होते इस भाव माधुर्य में ही, इस मधुरिमा में ही मानो सनी, पगी, प्रतिमा की तरह वह मन्द मुसकाती बोली "लो, सभी उस परम सत्य का अनुभव करें", और इतना कहते ही एक विलक्षण चमत्कार हुआ। सबकी मन, बुद्धि, चित्त एवं अस्मिता एक अनिर्वचनीय आनन्द रस में डूबकर जैसे चकोरी में ही समा गये। सब अनुभव करने लगे।

"सांयकाल का परम मधुर काल है। निकुंज की छत पर किशोरी रानी ध्यानावस्थित विराजित हैं। उनकी दृष्टि पूर्व गगन की ओर एकाग्र है। सहसा परम विलक्षण, मधुरातिमधुर अनिवर्चनीय नीलिमा से, महारसमयी श्यामल सौंदर्यराशि से पूर्व गगन भरगया। और उस परम रसमयी सौंदर्यराशि में नव नव सुन्दर, नव नव छबिमान, नव नव माधुर्यसागर प्रियतमाकार श्रीकृष्ण सरसने लगे। रानी के नेत्र एकाग्र थे। मन, बुद्धि चित्त, अस्मिता, किसी की भी सत्ता का कहीं कोई अन्वेषण ही

नहीं रहा था। वहाँ मात्र प्रियतम श्यामसुन्दर, नीलरससमुद्र, नव नवायमान माधुर्य की ही सत्ता और उसका ही परिज्ञान मानो शेष था। परमातिपरम निर्मल, निर्विशेष की भूमिपर पूर्ण सविशेष, निर्मल निराकार की भूमिपर पूर्ण सौंदर्याकार, निर्मल निर्गुण भूमिपर पूर्ण गुण समुद्र सरस रहा था। नास्ति के, निर्विशेषके, निराकार के, और निर्गुण के अंक में लहरारहा था, अस्ति, विशेष, आकार और गुणों का पूर्ण सागर। कितने काल तक सबको यह अनुभूति रही, कौन कहे। तत्पश्चात् सभी ने पुनः एक विलक्षण परिवर्तन देखा। इसबार यह पूर्ण सविशेष, पूर्ण सौंदर्याकार, पूर्ण गुण-समुद्र रानी के स्थान पर बैठा दिखाई देने लगा। परम उत्कंठा से ठीक उसके नेत्र उसी प्रकार पूर्व गगन में एकाग्र हो गये थे और सभी अनुभव करने लगे कि पुनः ऐसा परमाद्भुत सौन्दर्य उदय हुआ जिसके सम्मुख वह सविशेष तुच्छातितुच्छ लगने लगा। उस महा महासौन्दर्याकार के सम्मुख यह सुन्दर आकृति नगण्य ही अनुभव में आने लगी। और उस महागुण-समुद्र के सम्मुख यह पुञ्जीभूत गुणराशी सर्वथा अल्प ही प्रतीत होने लगी। यह आकृति चम्पक वर्णी नारी आकृति थी। इस प्रकार वह कभी नीली आकृति फिर चम्पकवर्णी, फिर नीली, फिर चम्पकवर्णी होती रही। इस प्रकार यह स्पर्धा कब तक, कितने कालतक चलती रही, कौन जाने। क्योंकि वहाँ काल की सत्ता ही नहीं थी। किसी देशमें उदय होने वाला न काल था एवं न ही किसी काल के माध्यम में दृश्यमान कोई देश था। न ही इस काल और देश को अनुभव करने वाली इन्द्रियाँ ही थीं। न मन था, न निर्णय करने वाली किसी बुद्धि की सत्ता ही शेष रही थी। न इन सबकी जननी अस्मिता ही थी, जो अनुभूति और अनुभवकर्त्ता का भेद करे। कभी परम निर्विशेष श्रीकृष्ण तो पूर्ण सविशेष राधा, फिर पूर्ण निर्विशेष राधा तो पूर्ण पूर्ण सविशेष प्रियतम श्रीकृष्ण। प्रियतम, प्रिया एवं प्रेम ये तीनों भी विभाजित नहीं। मात्र प्रेम ही प्रेम, मात्र भाव ही भाव मात्र रस ही रस। अनिर्वचनीय, अचिन्त्य, अद्वितीय, सब मान्यताओं से अतीत, सब अनुभूति से अतीत, सत्य, मात्र सत्य। प्राकृत इन्द्रियाँ, प्राकृत मन, प्राकृत अस्मिता की तो बात ही कहां, आप्राकृत देश, अप्राकृत काल और इनके प्रकाशक अप्राकृत मन, बुद्धि का भी यहाँ कहीं कोई लेशान्वेषण भी नहीं था। ऐसा अचिन्त्य, अनिर्वचनीय मात्र भाव और रस। सब अनुभव करने लगे। रानी ही चकोरी हैं एवं प्रियतम ही चन्द्र हैं। प्रियतम ही चकोर हैं और

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

रानी ही चन्द्र हैं। शाखाचन्द्र न्याय से वाणी का विषय, शब्दों का चयन मात्र सत्य का संकेत है। सत्य तो सत्य है। परन्तु वाणी, शब्द सब सार्थक हैं, पूर्ण भाव प्रकाशक हैं। सभी तो उस परम सत्य के सूत्र,हैं, मंत्र हैं। लीला प्रवाह के लिये ही मानो पुनः सब जाग्रत हुए। शुकराज विचक्षण बार बार रोमाञ्चित हो उठता था। वह अपने स्थान से उड़ा और उस स्वर्णपिंजर की अंग्रिम स्थली की रेणु में लोटने लगा। वह भाव विभोर था। उसके अंग अंग कभी काँप रहे थे, कभी जड़ हो जाते थे। सहसा भगवती वृन्दा ने उसे स्पर्शकर प्रकृतिस्थ किया। शान्त, प्रकृतिस्थ हो वह अपने स्थान पर बैठा पुनः कहने लगा–"हे महाभाग सारिके, हे महाकृपा-वत्सले चकोरी, हम सब पक्षी वृन्द धन्यातिधन्य हैं, क्योंकि हमारे पक्षीकुल में आप जैसी महाभागाएँ जन्म ले चुकी हैं। मैं आपकी चरण रेणु के कण को ही पाकर कृतकृत्य हो गया अब मेरी कोई जिज्ञासा नहीं रही। मेरी समस्त विद्वत्ता का अभिमान चूर्ण हो गया। मुझ महानिम्न जीव ने अपने अभिमान से ही आपकी वाणी पर, जो परम सत्य थी, सन्देह व्यक्त किया। फिर भी मुझ महादोषी के दोष पर आपने किञ्चित भी ध्यान न देकर मुझे कृतकृत्य कर दिया, मेरा अभिमान हरण कर लिया। हे अनन्त दयामयी! अब आप कृपा करें। हम सबको इस गीत के शेष भाग का रहस्य भी इसी प्रकार पूरा खोलकर समझावें। हम सबकी यही प्रार्थना, विनीत प्रार्थना है। विचक्षण की प्रार्थना पर पुनः सर्व ओर से 'साधु, साधु' की शब्दावली सुनाई पड़ने लगी।

[अलि एवं पंकज का भाव]

विचक्षण की वाणी शान्त भी नहीं हो पायी थी कि एक नवीन दृष्य की फिर सबको स्फूर्ति हुई। "परम रम्य वन है। उस वन में एक परमाति परम मनोहर स्थल पर किशोरी रानी बैठी हैं। सम्मुख ही प्रियतम श्यामसुन्दर भी विराजित हैं। वे अत्यंत सतृष्ण नेत्रों से प्रिया के मुख सौन्दर्य का पान कर रहे हैं। कुछ ही दूरी पर यमुना की धारा बह रही है। परन्तु उसने इस स्थल के समीप ऐसा कटान लिया है जिससे यहाँ एक सरोवर के समान शान्त, छिछला जल भरा है। जल में ही ककुद के समान निकली पंकिल भूमि पर एक परम सुन्दर कमल खिला है। इस कमल पर एक अलि मधुर गुञ्जन कर रहा है। वह कभी कमल केशर पर बैठता है, और कभी मन्द मधुर ध्वनि करता उसके

सौन्दर्य पर मँडराने लगता है। किशोरी रानी उस पूर्ण प्रस्फुटित कमल को एक क्षण देखती हैं। उसपर आह्लादित, मँडराते मधुकर पर दृष्टिपात करती हैं। फिर सम्मुख ही सतृष्ण नेत्रों से अपना मुख निहारते प्रियतम श्यामसुन्दर की ओर देखती हैं। और तब भाव में डूबने लगती हैं। उनके मुख से कुछ पंक्तियाँ काव्य बनकर निकलने लगती हैं:-

"मम मुख पंकज के मधुकर मधुर पियारे
तुम प्राण प्राण मेरे नयनों के तारे……
छूटै अग जग की सुरति देखि तव मूरति
मुक्ती न पाय मोकूं नित रहै बिसूरति
तुममें मैं घुल मिल जाऊं रहूँ न न्यारी
प्रियतम, तव रूप सुधारस माधुरी प्यारी
मो दृग सौं छिनहूँ नाहिं टरति है टारी ॥

रानी के मुख से ये पंक्तियाँ निकलते निकलते रानी परम अनिर्वचनीय अवस्था को प्राप्त हो जाती हैं। सब पक्षीवृन्द भी मानो किसी महती कृपा से रानी के हृदय में ही समाविष्ट हो गये हों, रानी का ही महाभाव-माधुर्य अनुभव करने लगते हैं। सर्व विलक्षण, निरुपाधि, अतुलनीय, अचिन्त्य, अनिर्वचनीय, अनन्त, अलौकिक सच्चिदानन्दकन्द महाभाव से पूर्ण प्रस्फुटित, राधा-हृदय-रूप-कमल पर ही प्रियतम श्रीकृष्ण-भ्रमर परम मुग्ध हुए मँडरा रहे हैं। अशेष, निस्सीम, अनन्तानन्त, विचित्रातिविचित्र, सौन्दर्य-माधुर्म-राशि के मात्र आगार, मात्र अगाध सिन्धु, श्रीराधामुखकमल के ही तो प्रियतम श्रीकृष्ण नित्य मुग्ध मधुकर हैं। आदि, अन्त एवं मध्य से रहित, अनादि, अनन्त, निरवधि, निस्सीम काल पर्यन्त, वे कृष्ण भ्रमर, वे काले रसिक, अपनी प्रिया, अपनी आराध्या, अपनी परमाश्रया, विभु, पूर्ण एवं असीम भाव-सौन्दर्य-सम्पन्ना, भाव-माधुर्य सम्पन्ना, राधा-कमलिनो के प्रस्फुटित मुखपर, सहस्त्रों पूर्ण प्रस्फुटित सुकोमल परम स्निग्ध-भाव-दलों के मध्य स्थित, राधाहृदयरूप महाभाव-राशि-केसर पर ही तो वे मंडराते रहेंगे। कैसा परम मधुर खेल है। कैसी परमातिपरम विचित्रातिविचित्र लीला है। इस महाभाव रूपी कमल के संपुट में बँधकर कृष्णभ्रमर राधा कमल हो जाता है। और साथ ही अपने निरुपम, निरुपाधि, अचिन्त्य भावसंपुट में अपने प्रियतम रूप अलि को बाँधकर राधारूप महाभाव ही पुनः

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

कमल से अलि बन जाता है। रस ही रसिक हो जाता है और रसिक ही रस। कौन रस है और कौन रसिक, इसका निर्णय भी कौन करे ? किसी तृतीय निर्णायक की सत्ता ही कहाँ है ? काल की अल्पतम अवधि में रस, रसिक होगया और रसिक, रस। काल की भी सत्ता वहां हो तब, अल्प एवं महान काल का निर्देश हो पावे। मात्र रस ही रस। रस ही काल, रस ही देश, भाव ही काल, एवं भाव ही देश। भाव ही रसानुभव करने वाला रसिक और भाव ही रसानुभव एवं भाव ही रसानुभव-कर्ता। मात्र महाभाव ही महाभाव। मादन के अंक में मोहन और मादन ही मोहन। मोहन ही मादन। पूर्ण, अपनी ही अप्रितम अद्वितीय पूर्णता के सम्मुख, सर्वथा सर्वथा अपूर्ण हो जाता है, और अपूर्ण होकर पुनः पूर्णता का रसास्वादन करने लगता है। पूर्णता उसे आत्मसात कर लेती है, आलिंगित कर पूर्णता प्रदान कर देती है, और स्वंय अपूर्ण हो, फिर अपना ही रसास्वादन करने लगती है। जहां पूर्णता चन्द्र है, वहां पूर्ण चन्द्र ही अपूर्ण चकोर बना अपनी ही पूर्णता चन्द्र को तृष्ण निहार रहा है। चन्द्र निरपेक्ष है। अपनी स्वरूपमाधुरी में ही सरस रहा है। निज महिमा में ही स्थित है, वह प्रियतम है। चकोर सापेक्ष्य है, उसकी हृद्गत भाव राशि नव नवायमान सौन्दर्य के अलंकरण से अपने प्रियतम चन्द्र को अलंकृत कर रही है, करती जा रही है। अपनी ही पूर्णता की पूजा करता करता अपूर्ण रसरूप हो जाता है, पूर्णता को वरण कर लेता है। पूर्णता से मिलकर पूर्ण होजाता है। पहले भी पूर्ण ही था। अपूर्ण था ही नहीं। मात्र पूर्णता के नवनवायमान आस्वादन के लिये ही अपूर्ण हुआ था। चन्द्र ही चन्द्र था। चन्द्र की चन्द्रिका अपने चन्द्रमा को देखने के लिये ही चकोर बनी थी। वह देखते देखते चन्द्रत्व को आत्मसात् कर जाती है। चन्द्रत्व को प्राप्त कर, चन्द्रमा बनजाती है। परन्तु ज्योंहीं चन्द्रमा बनती है, उस चन्द्रमा को फिर निहारने चन्द्रमा ही पुनः चकोर बन जाता है। कमल ही कमल है, कमल का कमलत्व ही, पंकजका पंकजत्व ही निज सौन्दर्यास्वादन काम से अलि बनकर अपने प्रियतम पंकज पर मँडरारहा है। वही अपनी ही केशर का, मकरन्द का पान करता है, तृप्त होता है, उसके सुकोमल संपुट में बँधजाता है। है कमलत्व ही, पंकजत्व ही। पंकजत्व रूप अलि अपने पंकज से विभक्त न था, न है, न रहेगा। पंकजत्व अलि पंकज से मिलकर पंकज होगया और उसी क्षण पंकज पुनः निज रस रसास्वादनार्थ अलि होकर गुनगुन करने

लगता है। चकोर मात्र अपनी नेत्रेन्द्रिय से ही चन्द्रमा की शोभा अनुभव करता है, परन्तु अलि पंकज के रूपोदधि को निहारता भी है, उसके मकरन्द का रस अपनी रसनेन्द्रिय से भी ग्रहण भी करता है तथा अपनी त्वचा के रोम रोम से उसके सुकोमलतम स्पर्श का भी अनुभव करता है, और अपनी गुनगुन गुंजन द्वारा ध्वनि से उसकी गुण राशि का गायन कर श्रोत्रेन्द्रिय को भी कृतकृत्यता प्रदान कर रहा है। अलि का पंकज से सर्वेन्द्रिय मिलन है। जहां चन्द्रमा मात्र सौन्दर्य रूप है, और चकोर का भाव मात्र नेत्र, है, वहीं पंकज अनन्तानन्तरूप है तो अलि नेत्र का भाव है, पंकज मधुरातिमधुर रस है तो अलि रसना भावरूप है, पंकज मृदुलतम, सुकोमलतम स्पर्श है तो अलि त्वगिन्द्रिय भावरूप है. पंकज गुणराशि रूप शब्द-वाणी है तो अलि कर्णेन्द्रिय भावरूप है, एवं पंकज मधुरातिमधुर गंध है तो अलि नासिका भावरूप है। अलि सर्वेन्द्रिय से मात्र पंकजाश्रयी है। उसके मन, बुद्धि, चित्त, प्राण सब पंकजाश्रयी हैं। पंकज प्रियतम है और अलि प्रिया, किंवा पंकज प्रिया है और अलि प्रियतम। दोनों ही पूर्ण निरपेक्ष और दोनो ही पूर्ण पूर्ण सापेक्ष। दो हैं ही नहीं, एक ही एक हैं। पुनः दृश्य बदल जाता है।

[चातक और मेघ का भाव]

“श्री रानी निकुंज की छत पर लेटी हैं। प्रियतम के आने की प्रतीक्षा है। आकाश में नवीन मेघ उमड़ उमड़ कर अपने सौन्दर्य और उद्दीपन से रानी को भावाभिभूत कर रहा है। दूर, बहुत ऊँचे घने मेघिल कुहरे में अपने को छिपाये एक चातक अत्यन्त मधुर मीठी करुणातिकरुण पुकार से पी-पीतम, पी-पीतम, प्रीतम-प्रीतम रट लगा रहा है। रानी डूबने लगीं और रानी के साथ ही सब अस्मिताएँ जो द्रष्टा बनकर इस दृश्य की साक्षी हो रही थीं, वे भी रानी के ही चिदाकाश में विलीन हो गईं। अब मात्र रानी का ही चिदाकाश शेष है। वह भी रानी का, राजा का, कहीं कुछ भी भेद भूमि नहीं। मात्र एक अनन्त चिदाकाश, निर्विशेष भाव भूमि ही श्यामल मेघ है। यह श्यामल उच्छलित मेघ है, किंवा शान्त मेघ है, इसका भी निर्णायक, निर्णय करने वाला, मापक, कोई हो, तब न ? बस, एक ही नवनीरद श्यामल सत्ता है। वही प्रीतम है, और उसकी सत्ता का परिज्ञान ही प्रीतम शब्द है। वह परिज्ञान हो रहा है, यही प्रीतम प्रीतम शब्दानुभूति है।

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

कौन बोल रहा है ? वह चातक नामक कोई विशेष अहंकार, विशेष आकृति, विशेष संकल्प-विकल्पात्मक वृत्ति, एवं तद् जनित इन्द्रिय, जिह्वा का विकार 'प्रीतम' शब्द वहाँ सर्वथा सर्वथा नहीं है। न ही कोई चातक उड़रहा है। न ही उसके कोई पंख हैं। न उसका लौकिक, अलौकिक कोई भी अस्तित्व ही है। अस्तित्व है, मात्र श्यामल नव-नीरद-वर्ण प्रियतमानुभूति रूप भावभूमिका। अस्तित्व है, भाव ही भाव का। और उसी भाव के सत्तात्मक परिज्ञान की ही 'प्रीतम, प्रीतम' शब्दानुभूति है। वह परिज्ञान ही उस राधा चातकी का अस्तित्व है। वही श्यामल प्रियतमानुभूति रूप भाव भूमि, अपने स्वच्छन्द, सर्वथा निरपेक्ष स्वरूप में लहरा रही है। चाहे ओलों की वर्षा के रूप में लहरा रही हो, या अत्यंत तेज तरज कर, तड़क कर, गरज गरज कर, वज्र गिराकर, कठोर ध्वनि कर, लहरा रही हो। इसमें चातक का कहीं कोई आग्रह नहीं। न राग, न द्वेष। राग-द्वेष की लेश-गंध की भी कल्पना ही नहीं। कहीं प्रियतम मेघ के अतिरिक्त किसी की भी विलग सत्ता हो, तब न निषेध और आसक्ति, का प्रश्न उठे। वह प्रियतम है या शत्रु है, यह तो वृत्ति ही तब उठे जब उसके अतिरिक्त अन्य की सत्ता हो। गुण एवं दोष, प्रियतम, और शत्रु, कठोर और मधुर, अनुकूल एवं प्रतिकूल, राग एवं द्वेष, ये सब शब्दावलियाँ तो किसी न किसी भेद भूमि पर ही निर्मित होती हैं। जहाँ वह ही वह है, प्रियतम ही प्रियतम है, सत्य ही सत्य है, भाव ही भाव है, और उस भाव का अस्तित्व ज्ञान ही आनन्दात्मक अनुभूति होकर प्रियतमानुभव है, वहाँ वह किसी भी रूप में सरसे, किसी भी रूप में विलसे, उसकी सर्वतन्त्र स्वतंत्रता में तनिक भी निषेध की किरकिरी कौन एवं क्यों उत्पन्न करे ? और उस प्रियतमानुभव में जब द्वितीय है ही नहीं तब वह किसी की अपेक्षा कर अनुकूल ही अनुकूल क्यों हो एवं प्रतिकूल का संयम वर्जन क्यों करे, तब तो भाव का अभाव हो जायगा। भाव की पूर्ण स्वतंत्रता, उन्मुक्त मुक्तावस्था ही तो उसका पूर्णतम स्वानन्द, स्वरूप-विहार है। अतः वह मेघ अपने स्वरूप में सर्वथा सर्वथा स्वच्छन्द, परम मुक्त, परम स्वाधीन, सर्वथा द्वितीय निरपेक्ष, अपने स्वभाव में ही लहरा रहा है। और उसके लहराने की सत्ता ही शब्द बनकर अनुभूत हो रही है। दूसरे को नहीं, उसे ही। "प्रीतम-प्रीतम, प्रीतम," बस यह अनुभूति ही चातकी है। यह चातकी ही मेघ है, और मेघ ही चातकी है। द्वैत है ही नहीं। सवर्था द्वैत-विवर्जित द्वैत है, अद्वैत-द्वैत है। रसार्थ द्वैत है, और रस ही पूर्ण अद्वैत

है। प्रेम ही प्रेम है। प्रेम ही पूर्ण अद्वैत हैं एवं प्रेमार्थ प्रेम ही द्वैत है।

[मछली एवँ जल का भाव]

पुनः दृश्य बदल जाता है। नवनीरदवर्ण श्यामल यमुना लहरा रही है। जल अपने स्वरूप में कल कल ध्वनि करता बहरहा है। कहीं गति तीव्र, कहीं गति मंद। कहीं छिछला, उथला एवं पंकिल। कहीं अगाध, और अनन्त। वह प्रियतम रूप श्यामल जल ही स्वानुभवरूप आनन्द में अस्तित्व, सत्ता बन राधा मछली बन जाता है, और इस सत्ता का ज्ञान ही, जल का आनन्द राधा रूप हो जलमें विहरने लगता है। प्रियतम रूप जल के स्वतंत्र, उन्मुक्त, प्रावह, स्वभाव में इस राधा मछली का अस्तित्व कहीं भी, लेश मात्र भी, स्वरुचिरूप, स्वरागरूप, अवरोध, बाधा से युक्त नहीं। क्योंकि मछली एवं जल दो की विभेदात्मक सत्ता है ही नहीं। मात्र प्रियतमरूप जल ही जल का जलत्वानुभव और उसका सन्मात्र परिज्ञान ही राधा मछली है। उस राधा मछली का अस्तित्व, मछली नामक न द्वैत सत्ता है, न द्वैत अहंकृति है, न द्वैत अनुभूति है। वह जल की ही सत्ता है। जल की ही अहंकृति है और जल मात्र अनुभूति है। वह जल जलानन्दरूप हो मछली बना विहर रहा है। अपनी लहरों में लहरा रहा है। तभी जल से मछली, किसी भी अवस्था में, कभी भी; विलग की ही नहीं जा सकती। मछली के अनस्तित्व पर जल का अस्तित्व ही लुप्त और जल के अनस्तित्व पर मछली का अनसंधान ही नहीं। उसका कहीं कोई शवरूप भी उपलब्ध नहीं। स्वरूपतः जल ही जल स्वरूपतः मछली ही मछली।

सब शान्त, सर्वत्र भावही भाव। न कहीं कोई ज्ञान, न कहीं कोई दृश्य। न कहीं कोई ज्ञाता, न ही कहीं कोई दृष्टा। मात्र प्रियतम, प्रियतम, प्रियतम और प्रियतम। प्रियतम ही प्रियतम। प्रियतम ही प्रिया और प्रिया ही प्रियतम। प्रेम ही प्रेम। प्रेम ही प्रिया, प्रेम ही प्रियतम। प्रेम, प्रेम प्रीतम, प्रीतम, प्रिया, प्रिया। अद्वितीय, सन्मात्र प्रियतमाकाश। रसाकाश, भावाकाश, राधाकाश, कृष्णाकाश, चिदाकाश। विशुद्ध, अनन्त, पूर्ण, विभु, अलौकिक, अतुलनीय, अनुपमेय, मात्र प्रियतम, प्रियतम, प्रियतम।

काल का विक्षेप तो वहाँ हो, जहाँ कालान्तर्गत कोई देश हो, जहाँ काल

की सत्ता ही नहीं, वहाँ कितने दीर्घ काल तक यह अनुभूति, यह सत्य प्रतीति रही, इसे कौन बताये। कहने को यही कहें, निरवधि कालोपरान्त पुनः नवीन लीला के उन्मेष के लिये, सब को अनेकात्मक बोध हुआ। विचक्षण शुक के निमीलित नेत्र खुले। और उसके कानों में सारिका की परम सारगर्भित शब्दावली स्पन्दित होने लगी!

"बोलो शुकराज, है कहीं नन्दभवन? बताओ कहीं अस्तित्व है वृषभानुपुर का? कहाँ है यमुना? कहाँ है वन, और कहाँ है वृन्दावन, गोकुल, महावन, कुंज, एवं निकुंज? कौन गोपी है, कौन गाय है? कौन सखा, सखी, पशु एवं पक्षी है? कहाँ लीला है, विहार है? कहाँ मिलन है, वियोग है? कहाँ उत्सव है, और औदास्य है? बताओ शुक, मेरे, तेरे, यमुना के, गोकुल के, नन्दभवन के, वृषभानुपुर के, गाय के, गोप के, कुंज के, निकुंज के लीला के, विहार के, मिलन के, संयोग के, महात्मा नन्द के, यशोदा के, श्री वृषभानुजी के और जगन्माता कीर्त्तिदा के जो राधा-माधव हैं, प्रिया-प्रियतम हैं, वे क्या उनसे एक क्षण के लिये भी वियुक्त हो सकते हैं? ये माधव श्री राधारानी के ही स्वरूप के आधार हैं या हम सबके स्वरूप के भी आधार हैं, बताओ शुकराज? बोलो, निस्संकोच बोलो, क्या तुम, मैं, और यह सब चित्र विचित्र सुन्दर, गुण और सत्ता की चमक दिखाने वाला मात्र अनेक हमारी रानी किंवा हमारे प्रियतम के अतिरिक्त भी कुछ है क्या? जहाँ रानी ही प्रियतम हैं और प्रियतम ही प्रिया हैं, वहाँ किसी भी अनेक की सत्ता ढूँढने को भी मिलती है क्या? बताओ पण्डितराज शुक, हमारी प्रिया, रानी, राधा आश्रय-आलम्बन हैं या विषयालंबन, या हमारे प्रियतम श्यामसुन्दर, माधव आश्रयालंबन हैं या विषयालंबन? काल की सत्ता ही जहाँ नहीं है, उस परिणामशून्य अवस्थामें कौन सी अल्पतम अवधि की प्रतीति है, जिसमें प्रेमी प्रेमास्पद हो जाते हैं और प्रेमास्पद प्रेमी। विषयालंबन आश्रयालंबन हो जाता है, और आश्रयालंबन विषयालम्बन। किसमें किसका प्रेम है और कौन प्रेम सेवा कर रहा है? कौन प्रेम का आश्रय है, और कौन प्रेम का विषय है? जो प्रेम विभु है, पूर्ण है, असीम है और सर्व व्यापक है वह अपने अतिरिक्त क्या किसी सेवक और सेव्य, प्रेमी और प्रेमास्पद, आश्रय और विषय, इस प्रकार अनेक की सत्ता रहने देगा? जहाँ सेवा पूर्ण है, विभु है, अखंड है, अनंत है, असीम है, नित्य है, वहाँ सेव्य और सेवक सेवा से अतिरिक्त अनेक रह सकते हैं क्या? अपूर्ण और असम्पूर्ण में ही अनेकाभास

है। जो पूर्ण है, वह तो मात्र पूर्ण ही है,। जो विभु है जिसमें वृद्धि की तनिक भी संभावना नहीं, वह तो वही ही, वही है। बताओ शुकराज, हमारी रानी स्वतः में कुछ है क्या ? वे प्रियतम प्रेमरूप के अतिरिक्त कुछ भी कहीं मिलपाती हैं क्या ? और प्रियतम माधव, प्रिया-प्रेमरूप के अतिरिक्त कुछ भी कहीं पाये जाते हैं क्या ? इन नित्य दोनों में से किसी एक का त्याग कर देने पर कोई भी दूसरा बचता है क्या ? फिर रानी के केश और उनका सँवारना, उसकी वेणी और उसमें फूल खौंसना, उसका लिलाट और उसमें मरवट निकालना, उसका भाल और उसमें सिन्दूर-बिन्दु लगाना. उसके कपोल और उनमें चित्र रचना करना, उसकी चिकुर राशि और उनका कपोलों पर मँडराना, उसके वक्ष और उस पर हारावलि धारण करना, उसकी दन्त पंक्ति और उसका मुसकान युक्त होना, उसके अधर और उनका रंजित होना, क्षुधा और सुस्वादु भोजन करना, उसकी विहार वासना और परमातिपरम सुन्दर निकुंजों का दर्शन करना, किसी पृथक् अहं और उसकी रागाभिव्यक्ति हैं क्या ? यदि नहीं, मात्र प्रियतम और उनकी प्रेमाभिव्यक्ति मात्र ही है, मात्र प्रियतम और उनकी सुखाभिव्यक्ति मात्र ही है, मात्र प्रियतम और उनकी आनन्दाभिव्यक्ति मात्र ही हैं, तब प्रिया हैं कहाँ ? तत्सुख ही तो है। प्रिया है कहाँ ? तत्प्रेम, तदानन्द मात्र ही तो है। फिर प्रियतम ही जब प्रियारूप हैं, प्रिया-सुख रूप हैं, फिर प्रियतम कहाँ ? प्रिया रूप तत्सुख, प्रिया रूप तत्प्रेम और तदानन्द ही तो है। और जहाँ अहम् किसी का नहीं तत् ही तत् है, उस अवस्था में वह तत्, मात्र सुखरूप, मात्र प्रेम रूप, मात्र आनन्द रूप के अतिरिक्त क्या है ? शुकराज है ही नहीं, प्रिया-प्रियतम, तत्सुख, तदानन्द, तत्प्रेम ही है। शुकराजाभास मात्र है। नन्द भवन, यमुना, कुंज, निकुंज, वृषभानुपुर, गोवर्धन, वन, सरोवर, पशु, पक्षी सब मात्र दृश्याभास हैं। हैं मात्र तत्प्रेमार्थ, मत्सुखार्थ, प्रिया-प्रेमार्थ, प्रिया-सुखार्थ, प्रियतम-प्रेमार्थ, प्रियतम-सुखार्थ। जहाँ कुछ भी अन्य नहीं, रानी ही रानी है, वहाँ मत्सुखार्थ, मत्-प्रेमार्थ मात्र मैं और मम ही तो है। मैं राधा मेरे प्रियतम। मैं प्रियतम मेरी प्रिया। तू राधा तेरा प्रियतम। तू प्रियतम तेरी प्रिया। वह प्रियतम उसकी प्रिया। वह प्रिया उसके प्रियतम। रानी का सुख, अनन्त गुना, प्रियतम का सुख। प्रियतम का सुख, अनन्तानन्तगुना, रानी का सुख। सुख ही सुख, आनन्द ही आनन्द। रानी का आनन्द, अनन्तगुना प्रियतम का आनन्द। प्रियतम का आनन्द, अनन्तगुना प्रिया का आनन्द। आनन्द मात्र आनन्द। रानी कुछ हो, तब न

उनका कोई विशिष्ट चरित्र हो, श्रीकृष्णेच्छा ही रानी का चरित्र है। प्रियतम उन्हें प्रिया बनावें, वे प्रिया, उन्हें सेव्या, उन्हें आराध्या बनावें, वे आराध्या। दासी बनावें वे दासी। उन्हें कलंकिनी बनावे, विषयलम्पट बनावें, कुरूपा बनावें, सुरूपा बनावें, वियोगिनी बनावें, संयोगिनी बनावें, शुभा बनावें, अशुभा बनावें, महिषी बनावें, चाहे त्यक्ता। आलिंगन में सदा संयुक्त रखें, चाहे कभी देखें ही नहीं, सुधि नहीं लें, चरण सेवा करें या पाद-प्रहार करें, मात्र माधव-सुखेच्छा ही तो रानी हैं। सुखार्णव का सुखार्णवत्व ही, उसका सुख-संकल्प ही पुंजीभूत होकर रानी बन गया है। और रानी का सुख-संकल्प ही प्रियतम माधव। राधा-सुख ही श्री कृष्ण का चरित्र है। वे चलते हैं, फिरते हैं, गाते हैं, वेणु बजाते हैं. सोते हैं, जागते हैं, खाते हैं, पीते हैं मात्र प्रिया सुख संकल्पार्थ, प्रिया प्रेमार्थ। वे समस्त मन, इन्द्रिय, अंग, अवयव, चित्त, बुद्धि और प्राण-सहित हैं, मात्र निज प्रिया सुखस्पृहा, मात्र निज प्रिया-प्रेम-स्पृहा, केवल निज प्रिया-आनन्द-स्पृहा, अन्य कुछ नहीं।

प्रियतम रानी की आत्मा हैं और रानी प्रियतम की आत्मा। वे दोनों, दोनों के प्रति परम एवं चरम आत्मनिवेदन की पराकाष्ठा हैं। प्रियतम प्रियतमाभास मात्र हैं, हैं राधा ही। और रानी राधाभास हैं, हैं प्रियतम माधव ही। मै सारिका-भास मात्र हूँ, हूँ रानी ही, प्रियतम ही। तुम शुकाभास मात्र हो, हो मात्र रानी का, प्रियतम का परस्पर सुखार्थ, परस्पर आनन्दार्थ, संकल्प मात्र। जो कुछ तुम्हें यह अनेक सुन्दराति-सुन्दर दृश्य दिख रहा है, है मात्र प्रिया प्रियतम का परस्पर सुखार्थ, संकल्प मात्र, दृश्याभास मात्र। है कुछ नहीं। किसी की भी, कुछ भी स्वतंत्र सत्ता कहीं, कहीं, कहीं, नहीं है।

हे शुक, तुम्हारा यह भलेही अप्राकृतिक, आतिवाहिक देह, जो यह मन है, जो वास्तव में शुद्ध प्रिया-प्रियतम प्रेमाकाश चिदाकाश ही है, यह मात्र प्रिया प्रियतम सुखेच्छारूप संकल्पाधीन होकर ही आधिभौतिक रूप लिये अनेक बना दिख रहा है। यह शास्त्रीय विद्या नहीं, अनुभव का पद है।

हे शुकराज रानी को कहीं भी, किसी भी परिस्थिति में, वस्तु में या व्यक्ति में राग है क्या ? तुमसे राग है या मुझसे, भगवती वृन्दा से राग है या सखी मंजुश्यामा से, उन्हें ललिता से राग है या विशाखा से, उन्हें मां से राग है या पिता से, उन्हें भाई से राग है या बहिन से, उन्हें महल से राग है

या कुञ्ज से, उन्हें अपने शरीर में किञ्चित भी राग दिखाई पड़ता है क्या ? अपने मन से, अपने विचारों से, अपने सिद्धान्तों से, अपने आदर्शों से, अपने किसी धर्म से, अपने व्यवहार से, कहीं कोई राग दिखाई पड़ता है क्या ?

उन्हें प्रत्येक परिस्थिति में प्रियतम ही प्रियतम तो दिखते हैं। मान में श्री कृष्ण, अपमान में श्री कृष्ण, सुख में श्री कृष्ण, दुःख में श्री कृष्ण, जीवन में श्री कृष्ण और मृत्यु में श्री कृष्ण, रोग में श्री कृष्ण, स्वास्थ्य में श्री कृष्ण, सर्वत्र प्रियतम ही प्रियतम। उन्हें साड़ी में श्री कृष्ण, औढनी में श्री कृष्ण, नुपूर में श्री कृष्ण, पैंजनी में श्री कृष्ण, सब आभूषणों में श्री कृष्ण ही श्री कृष्ण तो दिखते हैं। उनकी माला, केशर, कस्तूरी, अलक, तिलक, सब श्री कृष्ण ही श्री कृष्ण तो हैं। ललिता श्री कृष्ण, विशाखा श्री कृष्ण, बहिन मंजुश्यामा श्री कृष्ण, भाई श्रीदाम श्री कृष्ण, सर्वत्र श्री कृष्ण ही श्री कृष्ण, माता श्री कृष्ण, पिता श्री कृष्ण, सखा, सखी, दास, दासी, अनुज, परिजन सर्वत्र श्री कृष्ण ही श्री कृष्ण।

इसी प्रकार उन्हें महल में, वन में, कुञ्जमें, निकुञ्ज में, गह्वर में, गिरिमें, सर में, नदी में, आकाश में, मेघ में, वायु में, जल में, स्थल में, अग्नि में, सूर्य में, चन्द्र में, देव में, देवता में, दिशाओं और नेपथ्य में, अन्तरिक्ष में, बाहर, भीतर सर्वत्र प्रियतम ही प्रियतम श्री कृष्ण ही श्री कृष्ण ही दिखते हैं। कौन ऐसा स्थान है जो उन्हें उद्दीपित करके प्रियतम भाव में मुग्ध न कर देता हो; विलय न कर देता हो। शरीर के रोम राम में भी तो उन्हें वही छवि भरी दिखती है। मन में, बुद्धि में, इन्द्रियों में, नेत्रों में, कानों में उनकी दृष्टि में, दृश्य में, वे ही वे। उन्हें अपनी चेतन आत्मा भी जब प्रियतम रूप ही दिखती है तो तुम कैसे कहते हो कि वे राधा ही हैं। और प्रियतम को सर्वथा प्रिया ही प्रिया दिख रही हैं। और तो क्या कहूँ प्रियतम श्री कृष्ण की तो यह दशा है कि उन्हें माँ रोहिणी के रोम रोम में, माता यशोदा के परमाणु परमाणु में राधा ही वात्सल्य सागर बनी दिखती हैं। प्रत्येक गौ के अंग अंग में राधा ही संजीवनी अमृत लिये दिखती हैं। अनेक सखाओं के रूप में प्रिया ही उनके संग खेलती हैं। प्रिया ही रूठती हैं। वन में, नगर में, घर में, बाहर में संक्षेप में, सर्वत्र, राधा ही राधा। तब बताओ शुकराज कहाँ रानी है, और कहाँ राजा हैं। हे शुक ! सर्वथा सर्वथा राग-विवर्जित होने पर क्या देह की, दृश्य की, प्रतीति की, किसी की भी सत्ता शेष रहती है क्या ? जब रानी स्वरूप राग से, अहं रूपी मिथ्यात्व से, सर्वथा, सर्वथा विवर्जित हैं फिर उन्हें स्वप्न और जागृति में देह की प्रतीति

ही कैसे हो सकती है ? उन्हें तो प्रियतम ही प्रियतम दिखते हैं, सुनते हैं। वे ही उनके स्वप्न हैं, सुषुप्ति हैं और जाग्रत, सब अवस्था हैं। इसी प्रकार प्रियतम के लिये सब प्रिया ही प्रिया हैं। उनमें भी अहं रूप मिथ्या राग है ही नहीं। तब कहाँ श्री कृष्ण हैं ? हे शुक ! बताओ रानी को कोई भी शब्द कृष्ण वाच्यार्थ के अतिरिक्त सुनाई पड़ता है क्या ? वे राधा शब्द भी देह वाच्यार्थ रूप में कभी स्मरण करती हैं क्या ? राधा शब्द क्यों कि प्रियतम को अनंत प्रिय है, अतः प्रियतम के प्रियता रूप की स्मृत्यर्थ ही राधा नाम का उन्मेष उनके मन-मानस में है। राधा राधा पुकारने में, शब्द कहने में उनका प्रियतम भाव ही जगता है, स्वदेह भाव स्फुरित कदापि नहीं होता है। राधा नाम से उनमें प्रियतम-प्रियतमारूप वृत्ति का ही उदय होता है। स्व-देह-रूप वृत्ति का कभी उदय नहीं होता। तब बताओ शुक, राधा प्रियतम श्री कृष्ण का नाम है या रानी का ? इसी प्रकार माधव, प्रियतम, श्याम, कृष्ण आदि नाम श्री कृष्ण को निज देह की स्फूर्ति कराते हैं क्या ? निज देह स्मरण वृत्ति का तो उदय उनमें देखने को भी नहीं मिलता। जब प्रिया-रूप-वृत्ति में ये सभी नाम उन्हें उद्दीपित कर देते हैं तो कृष्ण नाम तो प्रिया की प्रियतारूप वृत्ति का ही वाचक समझ में आता है अतः कृष्ण नाम तो प्रियतम देह बोधक नहीं प्रिया-देह-बोधक ही सिद्ध होता है। जब दोनों प्रिया प्रियतम में देह की सत्ता नहीं, नाम की सत्ता नहीं, दृश्य की सत्ता नहीं, राग नहीं, अनुभूति नहीं, तब प्रिया प्रियतम हैं कहाँ ? प्रियतम के लिये प्रिया हैं, प्रिया ही प्रिया हैं, और प्रेम है। प्रिया के लिये प्रियतम ही प्रियतम हैं, और प्रेम है। हम सब के लिये प्रिया प्रियतम, प्रिया प्रियतम ही हैं, और प्रेम है। अतः मुझे तो स्पष्ट यही सत्य दिख रहा है कि प्रेम ही प्रेम है। प्रेम ही यह गोलोक है, प्रेम ही हम सब हैं। प्रेम ही प्रिया-प्रियतम हैं। बस प्रेम ही सत्य, रस ही सत्य, भाव ही सत्य है। यह नानात्व कहीं कुछ है ही नहीं। न तो मैं हूँ, न कोई अन्य है। अहम्, इदम्, अयम्, त्वम् सब मात्र बोलने की भाषा है। सर्वत्र स्वप्रेम ही, स्वरूप ही लहरा रहा है।

बताओ शुक ! तुम कभी गर्भ में आये या मैं गर्भ में आयी ? कहीं कोई स्मृति है तुम्हें कि तुम्हारी कोई माता है, या पिता है ? या मेरी ही कोई माता या पिता है ?

मुझे तो यही अनुभूति होती है, अनादि काल से मैं सारिका हूँ, अनन्त काल तक सारिका ही रहूँगी। क्या मैं देह हूँ ? क्या इस पक्षी देह से मुझे राग

है ? मुझे तो कुछ भी कभी इस प्रकार की देहात्म बोध रूपी स्मृति नहीं होती। मुझे तो ऐसा लगता है कि सर्वत्र रानी ही रानी हैं। रानी ही मेरा कर्म है। रानी ही मेरी लीला है। रानी ही मेरी प्रतीति है। रानी ही मेरे भीतर, बाहर, सर्वत्र स्थित हैं। रानी एवं उसके राजा, प्रिया और उसके प्रियतम एवं उसका प्रेम, सुख, आनन्द बस इस त्रिपुटी के अतिरिक्त मुझे तो कुछ अनुभव नहीं होता। रानी मुझे कभी प्रियतम दिखती हैं और कभी स्वप्नवत् सारी। प्रियतम कभी मुझमें पूर्ण प्रिया को ही देखते हैं, और कभी प्रिया की परम प्रेम स्वरूपा स्वप्नवत् सारिका को। परन्तु अस्तित्व सारिका का आभास मात्र, लीलास्वादनार्थ, प्रेमास्वादनार्थ ही होता है। जब मेरा आभास ही मात्र प्रिया प्रियतम के रसास्वादनार्थ, रसोद्दीपनार्थ, प्रेमास्वादनार्थ, प्रेमोद्दीपनार्थ, लीलास्वादनार्थ, लीला-उद्दीपनार्थ है तो मैं अनन्त अनन्त काल तक नित्य-नित्य प्रिया-प्रियतम-प्रेमाद्दीपनार्थ, लीला-संघटनार्थ, सारिका बनी रहूँ, यह संकल्प भी प्रिया-प्रियतम-प्रेम-रूप ही मुझमें होता है। यही मेरा मात्र आतिवाहिक अस्तित्व है।

सर्वथा, सर्वथा, यही, यही तुम्हारा भी आतिवाहिक अस्तित्व है। यही हम सबका, इस गोलोक रूप भूमिका, नभका, इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण अप्राकृतिक पंचभूतोंका, पंचकोशोंका भी अस्तित्व है। सत्ता मात्र प्रेम की, प्रेमी, प्रेम एवं प्रेमास्पद की है। प्रेमी ही सत् है, प्रेम ही आनन्द है, और प्रेमास्पद ही चित् है। राधा ही सत्तारूप प्रियतमानुभूति है, प्रियतम का ही मात्र प्रियतमारूप सत्ता को ज्ञान है, यह चित् है, और प्रेम ही प्रियतमानुभव रूप सत्ता का आनन्द है। सच्चिदानन्दमय ही यह नित्य, अनन्त, पूर्ण, अखंड गोलोक धाम है। इसीलिये प्रलय और सृजन के, राग और द्वेष के, द्वैत और नानात्व के विष से सर्वथा सर्वथा विवर्जित प्रिया-प्रियतम-रूप समग्र ब्रह्म पूर्ण परात्पर पर ब्रह्म ही है।

बताओ शुकराज, लौकिक सृष्टि तो माया एवं विकारों का परिणाम है ही, हमारा यह दृश्य रूप गोलोक भी क्या परिणामी है ? यह भी किसी ब्रह्मा नामक देवता का संकल्प है क्या ? यदि इसका सृष्टा है, तो पालन कर्ता भी कोई क्षीरशायी होगा और तब इसका प्रलय भी अवश्यंभावी होगा। तब यह भी विनाशी है क्या ? और यह यदि अविनाशी है तो इसमें विकार संभव ही नहीं, परिणाम संभव है ही नहीं। फिर न यह किसी के संकल्प से विराट रूप हुआ है, न विराट से आकाश बना है, न ही आकाश से वायु बनी है, एवं न ही वायु

से अग्नि, न ही अग्नि से जल और जल से पृथ्वी। फिर यह आकाश है क्या ? मात्र सत्य प्रेम ही तो यह आकाश है, लीलार्थ आकाशभास होरहा है। आकाश है ही नहीं। लीलार्थ ही वायु का आभास मात्र है, वायु है ही नहीं। लीलार्थ ही अग्निका आभास मात्र है अग्नि है नहीं। लीलार्थ ही जल का, पृथ्वी का, आभास मात्र है, इसी प्रकार अवश्यमेव लीलार्थ ही हम सबका अहं आभासित है, हम सब का चित्त आभासित है, हम सब की बुद्धि आभासित है, हम सब का मन आभासित है। सत्ता मात्र प्रेम की है। उस प्रेम को प्रियतम कहलो या प्रिया, राजा कहलो या रानी। प्रेम-रस-विग्रह प्रियतम श्री कृष्ण कहलो या महा प्रेम-रस-भाव-मूर्ति राधा। सत्य तो एक वही प्रेम है। लीला आस्वादनार्थ, प्रेमास्वादनार्थ, आनन्दास्वादनार्थ, रत जो सत् है उसे ही महाभाव स्वरूपा राधा कहलें और लीलाआस्वादनरत राधा रूप महाभाव को जो ज्ञान है वे ही रसराज प्रियतम श्री कृष्ण हैं। ये सत् स्वरूप महाभाव एवं ज्ञान स्वरूप रसराज ही प्रेम रस का, आनन्दरस का परस्पर एक दूसरे को वितरण कर रहे हैं। लीलारस को परस्पर भोग रहे हैं। अनेकानेक प्रकार की साज सज्जाएँ सन्मात्र, चिन्मात्र. आनन्द महा समुद्र की लहरें, उर्मिया ही तो हैं। तभी यहाँ कोई मैथुनी सृष्टि नहीं। यहाँ काम है ही नहीं। प्रेम ही प्रेम है। हमारे नेत्रों को किसी रूप की कामना नही है। अनंतानन्त सौन्दर्य ही हमारे नेत्र हैं। हमारे कानों को सुमधुर शब्द की कामना है ही नहीं। अनंतानन्त शब्दमाधुर्य ही हमारे कान, माधुर्यरस ही हमारी रसना एवं अनन्तानन्त सुन्दर गंध ही हमारी नासिका बनी है। बताओ शुक ! तुम और तुम्हारे नेत्र पृथक हैं क्या ? तुम और तुम्हारा शरीर,दो एवं पृथक हैं क्या ? यहाँ इस राज्य में भी देह देही भाव है क्या ? यदि यहाँ भी देही द्रष्टा है और देह दृश्य, तब अवश्यमेव दृष्य नेत्र एवं तेज का परिणाम होगा। फिर तो पूरी अनित्यता आजायगी। यहाँ तो देह सर्वाङ्गरूप देही ही है। वह देही अपने में पूर्ण है। वह शरीर के रोम रोम से सुन सकता है, देख सकता है, चल सकता है, बोल सकता है। तुम कानों से ही नही, नेत्रों से भी सुन सकते हो, बोल सकते हो, सूँघ सकते हो। तो ऐसा देह संभव है क्या, जो नेत्रों से चल सकता हो। तो स्पष्ट है यह शुक रूप देह है ही नहीं। देही मात्र प्रेम है, वही प्रियतम एवं प्रिया है, और वह प्रेम ही शुक है, सारिका है।

हे शुकराज ! यहाँ के प्रत्येक देह की सभी इन्द्रियाँ पूर्ण हैं, देह का

रोम रोम पूर्ण है, नित्य है। रोम रोम में अनन्त नेत्र हैं, अनन्त कर्ण, अनन्त जिह्वा हैं। प्रत्येक नेत्र भी पूर्ण, है प्रत्येक अवयव पूर्ण है। प्रकृति में इन्द्रियों का मन के बिना कुछ भी अस्तित्व नहीं। मन का बुद्धि के बिना कुछ भी अनुसंधान नहीं। इसी प्रकार बुद्धि, चेतना के बिना कहीं कोई अस्तित्व ही नहीं रखती। परन्तु यहाँ के प्रत्येक शरीर का प्रत्येक अवयव, सूक्ष्मातिसूक्ष्म रोम-कूप भी, पूर्ण, चिन्मय, सन्मात्र, और आनन्दरूप है। सबकुछ पूर्ण, सत्य, परमात्मस्वरूप है। यहाँ की भूमि में आकाश है एवं आकाश में भूमि। यहाँ की अग्नि ही जल है और जल ही अग्नि। यहाँ की वायु ही भूमि है और भूमि ही वायु। यहाँ भूमि के सब गुण आकाश में हैं और आकाश के सब गुण भूमि में। यहाँ का सर्व सर्व है। कहीं कोई अपूर्णता नहीं, अनित्यता नहीं। फिर बताओ शुकराज, चकोरी का कथन परमार्थतः सत्य और व्यवहारतः समझ में न आने वाला कैसे हुआ ? यह परमार्थ है और यह व्यवहार है, इस प्रकार का भेद तो प्राकृतिक बुद्धि का ही निर्णय है। अप्राकृतिक, पूर्ण, नित्य, चिन्मात्र, परमात्मरूप बुद्धि में भी परमार्थ और व्यवहार का भेद है क्या ?

नित्य, सत्य, परिपूर्ण, परात्पर तत्व प्रेम एवं आनन्द के अतिरिक्त और है क्या ?

यह प्रेम लीला का ही भेद है कि जो सत्य, चिन्मात्र, आनन्दरूप प्रेम को ही श्री नारायण आदि विलास परतत्व के रूप में, कहीं श्री राम, नृसिंह आदि स्वांश परतत्वरूप में, कही अन्तर्यामी परमात्मा परतत्व रूप में, और कहीं भेद रहित ब्रह्म परतत्व रूप में प्रकट कर रहा है। प्रेम नित्य सच्चिदानन्द है। सत्, चित् और आनन्द रूप में प्रेम की स्वरूपा शक्ति का ही विलास है। वह स्वरूपा शक्ति ही संधिनी, संवित और ह्लादिनी के नाम से प्रकाशित है। प्रेम भगवान की यह स्वरूपा शक्ति अमूर्त्त और मूर्त्त दोनों रूपों में ही नित्य विद्यमान है। अमूर्त्त या भावरूप में यह नित्य ही प्रेम में स्वरूपतः अन्तर्हित है और समूर्त्त रूपमें नित्य पृथक् लीलायमान है। वस्तुतः शक्ति और शक्तिमान में कहीं किसी भी का प्रकार भेदभाव संभव नहीं, नित्य अभेद ही है। प्रेम ही प्रिया प्रियतम है, वही प्रेम ही आह्लाद रूपमें ह्लादिनी और ह्लादात्मा है। निर्विशेष प्रेम ही भगवान का आनन्द ब्रह्मरूप है। यहां प्रेम आत्यंतिक सुख स्वरूप है। और जहां ये ह्लादिनी शक्ति सविशेष साकार सगुणरूपा हैं, मूर्त्त

हैं, परात्पर प्रेम से पृथक् प्रकट हैं, वहां ह्लादात्मा, प्रियतम श्रीकृष्ण आत्यंतिक सुखस्वरूप ही नहीं, मूर्त्तिमति ह्लादिनी, प्रियतमा राधा के द्वारा पृथक् रूप से नित्य सेवित होने के कारण, अनिर्वचनीय, अत्यंत मधुर, नित्य सुख के आस्वादक भी हैं और वितरक भी। ये ही हैं प्रियतम माधव, आनन्द ब्रह्म के प्रतिष्ठास्वरूप, परिपूर्णतम रसब्रह्म या समूर्त्त रसराज। और इनसे पृथक् मूर्त्त रूपमें प्रकट परम मधुर रसता को प्राप्त इनकी स्वरूपभूता जो ह्लादिनी शक्ति हैं, वे ही प्रेमशक्ति राधा हैं। वे ही नित्य, पूर्ण, आनन्द स्वरूप को भी आनन्द रसास्वादन कराने वाली हैं। वे परिपूर्ण भाव या महाभाव रूपा हैं। प्रिया और प्रियतम, रस और भाव दोनों एक ही परात्पर प्रेम तत्व के द्विधा स्वरूप हैं। इसी रस के प्रस्रवण से, नित्य निस्सरित और प्रवाहित आनन्द धारा से ही अनन्त विश्व के अनन्त आनन्द-वैचित्र्य का विकास है। जो इस प्रकार समस्त भावों के मूल हैं, समस्त रसों के मूल हैं, वे ही महाभाव-परिरंभित रसराज, आनन्दमयी श्री राधा और उनकी कायव्यूहरूपा गोप-सुन्दरियों से परिवेष्ठित, अखिल-रसामृत-मूर्त्ति, सच्चिदानन्द-विग्रह-द्विभुज-मुरली मनोहर, श्रीकृष्ण, श्री माधव हैं। वे ही वस्तुतः सम्पूर्ण सत् शास्त्रों के, महामनीषियों के एवं सर्वोच्च स्तर पर पहुँचे हुए प्रेमी महात्माओं के द्वारा एक मात्र सेव्य, परमतत्व हैं।

[लीला आस्वादन निरत महाभाव रसराज का भाव]

हे शुकराज अमूर्त क्या है, और समूर्त्त क्या है, यह सब भेद प्राकृतिक बुद्धि द्वारा ही निर्माण होते हैं। देही अमूर्त्त है और देह समूर्त्त। मन के द्वारा ही इन्द्रियां देह की प्रतीति कराती हैं जहाँ लौकिक इन्द्रियाँ नही हैं, लौकिक मन नहीं है, वहाँ सम्पूर्ण अमूर्त्त ही समूर्त्त है। और समूर्त्त ही अमूर्त्त है। यह अमूर्त्त और समूर्त्त सत्ता ही वहाँ कहीं नहीं है। एक मूर्तिमान रसराज श्रीकृष्ण के द्वारा ही समस्त रसों का अस्तित्व है और प्रकाश है। वह रस ही रसिक रसराज है। वह रस ही रस है। और वह रस ही रसमयी है। रसमयी की दृष्टि में रस और रसराज कहीं किसी भी प्रकार से प्रथक् किये जा सकते हैं क्या ? एवं रसराज की दृष्टि में रसमयी एवं रस कहीं पृथक् किये जा सकते हैं क्या ? अतः एकमात्र मूर्तिमती महाभाव स्वरूपा श्री राधा के द्वारा ही अमूर्त समूर्त्त सभी भावों का विकास और विस्तार है। विभिन्न भाव ही तदनुरूप रस तत्व का ग्रहण करते हैं। एक विद्युत् ज्योति जैसे विविध, विभिन्न

वर्णों के वस्त्रों के सम्पर्क में आकर विभिन्न वर्णवाली दिखाई देती है। वैसे ही एक ही भाव विभिन्न आधारों के द्वारा उनके अनुकूल रसतत्व का अनुभव कराता है। एक ही रस का जो विभिन्न रूपों में आस्वादन है, उसमें आधार भेद की यह भाव विभिन्नता ही कारण है। वैकुण्ठ की श्रीमहालक्ष्मी, द्वारिका की पट्टमहिषियां, भगवती दुर्गा, उमा, सती सीता, भगवती नारसिंही, वाराही, सभी इन मूल महाभावरूपा ह्लादिनी श्रीराधा के ही विभिन्न विचित्र विकास हैं।

इसी प्रकार समस्त दिव्य धामों में प्रमुख, सच्चित्, परमानन्दमय गोलोक धाम है। वही समस्त समस्त लोकों और ब्रह्माण्डों का मात्र आत्मा है। उसी से अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड नित्य अनुप्राणित होते रहते हैं। वह नित्य सच्चिदानन्दमय परधाम सबसे विलक्षण और सर्वोपरि होने पर भी सर्वत्र व्याप्त और सबमें स्थित है। इतने पर भी उसकी पाद विभूति के एक अंश में ही समस्त प्राकृत लोकों की परिसमाप्ति हो जाती है। इनसे सर्वथा अस्पृष्ट जो त्रिपाद विभूति है, वह अनैसर्गिक, अप्राकृत, सच्चिदानन्दमय परम धाम है। वही साकेत, वैकुण्ठ, कैलाश, सत्यलोक, आदि परधामों के रूप में भक्तों के अनुभव में आता है। उस परमोज्ज्वल, परममधुर, परम कल्याणमय, परम सुन्दर, सर्वातिशायी, नित्य, गोलोक धाममें ही वृन्दावन, मथुरा, गोकुल, नन्दग्राम, बरसाना, गिरिराज, विरजा और यमुना आदि दिव्य शाश्वत प्रदेश हैं। परन्तु शुकराज, इस ज्ञान से विमुख मत होना कि अप्राकृतिक राज्य में, सदा, सर्वत्र सब में, अभेद, पूर्ण अभेद सत्ता है। यह प्राकृतिक बुद्धि का ही निर्णय है कि यहाँ एक में दूसरा नहीं रह सकता। शुक में, सारी नहीं और सारी में, मयूर नहीं। मयूर में चन्द्रमा नहीं, और चन्द्रमा में आकाश नहीं। जहां काशी है, वहाँ प्रयाग नहीं। दिव्य, सच्चित्, परमानन्दमय नित्य धाम तो सर्वगत है, सर्वत्र है। वह सर्वशक्तिमान है, सर्वाधार है, दिव्य, प्रकाशमय, तेजोमय, नित्य, सत्य, भावमय एवं रसमय है। यह सम्पूर्ण धाम ही शुक है, शुक का रोम रोम है। यह धाम ही सारिका का नेत्र, कान, अंग-अंग है। यही सारिका का प्रकाशक उसका आधार, उसकी भूमि भी है। यह वाणी का विषय है ही नहीं। समग्र आस्थाओं, मान्यताओं, कथन और चिन्तन का मात्र प्रकाशक है। उसी में समस्त लोकों का सत्य, समस्त पदार्थों का सत्य, समस्त जीवन का सत्य, समस्त स्थितियों का सत्य स्फुरित है। वह साकेत, वैकुण्ठ, कैलाश, सत्यलोक, आदि भेदों से अनेक होते हुए भी एक ही है। इसी परतम गोलोक

धाम की अधीश्वरी श्री राधारानी हैं। राधारानी और गोलोक दो हैं ही नहीं। जो राधारानी हैं, वही गोलोक है। राधारानी ही माधव के स्वरूप की भी आधार हैं। राधारानी ही माधव हैं और माधव ही राधारानी हैं। श्री माधव ही गोलोक के, राधारानी के, हम सब के भी आधार हैं। हम सब, मैं, तुम चकोर एवं चन्द्रमा भी गोलोक के, रानी के, माधव के, सभी के आधार हैं। हम सभी प्रिया प्रियतम हैं। हम सभी प्रिया, प्रियतम और प्रेम हैं। विचित्र लीला सम्पादिनी राधारानी ही योगमाया हैं। माधव ही योगमाया हैं। तुम ही योगमाया हो। मैं ही योगमाया हूँ और मैं ही सदा इस लीला वैचित्र्यी के आयोजन में लगी रहती हूँ। माधव ही लीला वैचित्र्यी के आयोजन में लगे रहते हैं। यही विचित्र महारास है जो अनादि अनंतकाल बिना विराम चल रहा है। यही उनकी मधुरतम लीला है, जिसके आस्वादन में श्री राधा माधव नित्य निरत हैं।

हे शुक ! राधा, रानी, ललिता, विशाखा, गोलोक, माधव, नद, नदी, सर, सरोवर, वन, कुञ्ज, नन्दभवन, वृषभानुपुर, माता यशोदा, रोहिणी, कीर्तिदा, वृषभानुजी, महात्मा नन्द, अनन्तानन्त सखी, सखा, दास, दासी, सौन्दर्य, माधुर्य, शील एवं गुणों का आगार यह समग्र व्रज मण्डल, यदि मैं नहीं होती तो मेरे संकल्पानुसार समग्र लीला कैसे संघटित होती। तुम्हारे संकल्पानुसार समग्र लीला कैसे संघटित होती। तुमने संकल्प किया एवं यह शास्त्रार्थ हुआ। सम्पूर्ण अवस्थाएँ, परिस्थितियाँ, पात्र, स्थान, काल, रूप, सब इस शास्त्रार्थ के अनुकूल कैसे हो गया ? तुम्हारा संकल्प, अनेकानेक रसमय विचित्रताओं से युक्त हो, समग्र विधान से युक्ति युक्त हो, कैसे व्यक्त हो रहा है ? सब पात्र किस प्रकार मात्र तुम्हारे संकल्पानुसार विधिवत् आचरण कर रहे हैं ? रानी, राजा सब तुम्हारे संकेत पर, संकल्प पर कैसे लीला विलास कर रहे हैं ? मात्र तुम्हारी ही बात नहीं, इस गोलोक धाम के प्रत्येक पत्ते पत्ते में, अणु अणु में, जीव जीव में, स्थावर जंगम, चल, अचल, सबमें, यह शक्ति क्यों एवं कैसे है ? यह स्पष्ट निर्देश कर रही है कि सभी सब हैं। कुछ भी कहीं भी भेद है ही नहीं। पूर्ण अभेदमयी ही यह लीला स्थली है।

परम तत्व श्री कृष्ण निरुपम, निरुपाधि, सत्, चित् आनन्दघन हैं। सत् संधिनी, चित् चिति, और आनन्द ह्लादिनी शक्ति भी वेही हैं। वेही

ह्लादिनी शक्ति स्वयं श्री राधा हैं। संधिनी गोलोक धाम भी वे ही बनी हैं और चिति रूप समस्त लीलाओं की व्यवस्थापिका तथा आयोजिका भी वे ही हैं। इसीलिये सत्, संधिनी, चित्, चिति एवं आनन्दरूपा, ह्लादिनी में पूर्ण अभेद है। सद सब है। अतः राधा ही गोलोक बनी अपनी ही समस्त लीलाओं की आयोजिका, प्रकाशिका होकर स्वयं ही सब लीलाओं एवं लीलापात्रों के रूप में कायव्यूह से प्रकट हैं। वे स्वयं ही विहारकर्त्री, विहार और विहार की पात्रा हैं। और इन राधा का जो कुछ भी राधात्व है वह मात्र श्रीकृष्ण हैं। हे शुक! जब तुम्हारा शुकत्व यदि राधा है, और राधा का राधात्व ही यदि शुक है तो शुक और राधा में भेद कहाँ? इसी प्रकार यदि श्रीकृष्ण का श्रीकृष्णत्व राधा हैं और राधा का राधात्व ही श्रीकृष्ण हैं तो मात्र आभास के लिये ही भेद भले कहो, भेद है सर्वथा नहीं।

इसीलिये पवित्रतम प्रेम-सुधामयी श्री राधा का प्रेम सर्वथा एकांगी है। उनका सबकुछ श्रीकृष्ण को समर्पित है। उनका सारा प्रेम एक ही ओर केन्द्रित है। उनका सब कुछ माधव में ही विलीन है। माधव के अतिरिक्त उनके लिये अन्य किसी की सत्ता ही नहीं। वे आत्मनिवेदन की पराकाष्ठा हैं। उनमें श्रीकृष्ण के अतिरिक्त निजके 'स्वयं' का कहीं गंध लेश भी नहीं।

प्रियतम-सुखैक तात्पर्य-रूप ही उनका अस्तित्व है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण स्वयं दिव्य-रस रूप, अचिन्त्यानन्त रससदन होते हुये भी, अखिल-रसामृत-मूर्ति होने पर भी केवल श्री राधिका के ही प्रेम में उन्मत्त रहते हैं। वे पूर्ण, चिन्मय, ज्ञानमय, परतत्व होते हुए भी अपनी प्रिया के महत्व के सम्मुख निर्विशेष हो जाते हैं। वे राधा में पूर्णतया संलग्न हैं। राधा प्रेम रूपी अगाध समुद्र में वे डूबे रहते हैं, विलीन रहते हैं। श्रीकृष्ण रसिकेश्वर होकर भी राधा रूप हैं। उनके समस्त मन इन्द्रियाँ, अंग, अवयव, चित्त, बुद्धि, और आत्मा मात्र राधा ही हैं। उनकी आँखें राधा के सिवा अन्य रूप देखने को अंधी हैं, कान अन्य शब्द सुनने को बहरे हैं। नासिका अन्य गंध, स्पर्शेन्दिय अन्य स्पर्श, बुद्धि अन्य निर्णय, मन अन्य मनन करने में सर्वथा, सर्वथा असमर्थ है। श्रीराधा के तन से उनके तन का कोई व्यवधान ही नहीं है। किसी अन्य स्पर्श की लेश मात्र कल्पना भी उन्हें नहीं है। एक ही प्रिया स्पर्श में चित्त एकतान है। सर्वतोभावेन श्रीकृष्ण राधा ही हैं और राधा श्रीकृष्ण हैं।

श्रीराधा के बिना कृष्ण कहीं कुछ नहीं हैं और श्रीकृष्ण के बिना राधा भी कहीं कुछ नहीं हैं। इसी प्रकार इस गोलोक के अणु अणु में, आत्मा रूप से प्रिया प्रियतम, जीवन रूप से प्रिया प्रियतम, प्राण रूप से प्रिया प्रियतम, आराध्या रूप से प्रिया प्रियतम, शरीर रूप से प्रियाप्रियतम, मन. इन्द्रियाँ, बुद्धि, सभी रूपों में प्रिया प्रियतम ही प्रिया प्रियतम विराजित हैं। इस गोलोक के अन्तर्गत सम्पूर्ण चराचर के भुवन मनमोहन, अनन्त मनमोहन, पूर्ण बुद्धि मोहन, सर्व चित्त मोहन मात्र प्रिया प्रियतम हैं। ये प्रिया प्रियतम ही हम सब की सर्व अभिलाषाओं की साक्षात् मूर्त्ति हैं। प्रिया प्रियतम ही हम सब के सब कुछ हैं, अन्य कहीं कोई कुछ नहीं।

हे शुकराज ! प्रिया के लिये प्रियतम ही प्रियतम हैं, प्रियतम के लिये प्रिया ही प्रिया हैं, और हम सब के लिये प्रिया प्रियतम ही प्रिया प्रियतम हैं, तब सत्ता किसकी है ? मात्र सत्य की, प्रेम की, भाव की, रस की ही तो सत्ता है। रस ही तो है प्रिया प्रियतम और रस ही हैं हम सब। रस ही मूर्त्त अमूर्त्त, समूर्त्त सब कुछ है। न कहीं कोई मूर्त्त, न अमूर्त्त, न समूर्त्त, मात्र भाव ही भाव, प्रेम ही प्रेम।

[वितरत रस दोउ दुहुँन को का भाव]

नंदनंदन रूपमयी राधा का शृंगार भी तो नन्दनन्दन ही हैं। श्रीकृष्ण ही राधा के अंग हैं और श्रीकृष्ण-स्नेह ही उनके अंग का उबटन है। श्रीकृष्ण रूपी राधा के अंगों के वस्त्र भी तो कृष्णानुराग रूप ही होंगे। अतः श्रीकृष्णानुराग ही उनकी ओढ़नी हैं। प्रियतम-प्रणय ही प्रियतम-हृदया प्रिया की वक्ष-कंचुकी है। कृष्णाङ्गा राधा में कृष्णोज्ज्वल शृंगार रस ही कस्तूरी लेप है। कृष्णाधरा राधा का कृष्णरति ही उज्ज्वल ताम्बूल राग है, जिससे उनके अधर नित्य रंजित हैं। श्रीकृष्ण लीलामयी चित्तवृत्तियाँ ही उनकी आस-पास की सखियाँ हैं। श्रीकृष्ण नाम, गुण, यश, श्रवण-कीर्तन ही उनके कर्ण भूषण और वाणी का प्रवाह हैं। श्री राधा सर्व व्यवधानहीन, सभी समय श्रीकृष्ण प्रेम-रत्नों की खान हैं।

ठीक इसी प्रकार आनन्दकन्द श्रीकृष्ण से भले ही त्रिभुवन को आनन्द प्राप्त होता रहे, उन्हें मात्र राधा ही आनंदित कर सकती हैं। उनके मन का समग्र आनन्द राधा ही हैं। उनका माधुर्य भले ही असमोर्ध्व हो, परन्तु उनकी मधुरता को रंगत राधाख्य मधुरता ही देगी। उनका रूप भले ही कोटि-कोटि

मन्मथ-मन्मथ हो, परन्तु राधा-रूप ही उनके रूप को भूषित करेगा। श्रीकृष्ण की ललित वंशी ध्वनि सचराचर को भले ही आकर्षित करले, चतुर्दश भुवनों को भले ही रस देदे, परन्तु उनके कान श्री राधा-वाणी से ही तृप्ति अनुभव करेंगे। श्रीकृष्ण की दिव्य अंग गंध से समस्त जगत भले ही सुगंधित हो जाय परन्तु उनके प्राण एवं घ्राण राधांग-सुगंध के ही लोभी रहेंगे। साक्षात रसराज, रसरूप श्रीकृष्ण के रस से भले ही समस्त लोक लोकान्तर सुरसित हों, परन्तु वे श्री राधाख्य रस से ही सुरसित होंगे। श्रीकृष्ण का स्पर्श कोटि-कोटि शशांक-शीतल भले ही हो, परन्तु श्रीकृष्णांग शीतल होंगे श्री राधा के अंग-स्पर्श से ही। प्रियतम श्रीकृष्ण निर्विवाद रूप से प्रिया राधा से ही भूषित हैं, प्रिया राधा से ही सेवित हैं। प्रिया राधा ही उनका तन, उनके तनका वस्त्र, अलंकार एवं सज्जा हैं। श्री राधा ही उनका मन, उनके मन का साज, मन की सज्जा हैं। श्री राधा ही उनकी बुद्धि, उनकी बुद्धि का भूषण हैं। श्री राधा ही उनकी इन्द्रियाँ और इन्द्रियों के सुखमय विषय हैं। श्री राधा ही उनका चित्त और चेतना हैं। श्री राधा ही उनका जीवन, जीवन का जीवन, जीवन रस हैं।

इसी प्रकार श्री राधा श्रीकृष्ण को और श्रीकृष्ण राधा को, निरन्तर प्रेमरस देते रहते हैं। या यों कहो, यह प्रेम ही प्रिया एवं प्रियतम रूपी दोनों तटों से टकराता, दोनों तटों को सिंचन करता, प्लावित करता, निरन्तर प्रवहमान रहता है।

हे शुकराज—प्रेम-मूर्ति राधा का प्रियतम सुखैक-तात्पर्य प्रेम इतना प्रबल है कि यह सम्पूर्ण आनन्द को भी निरानन्द बना देता है। यह प्रेम पारस्परिक प्रीति-विधान-रूप रमण या रास का अभ्युदय कर देता है। महारस महाभाव में विलय होने को अग्रसर होता है और महाभाव अनन्त अनन्त उत्ताल लहरियों में उसे आलिंगित करने, आत्मसात् करने को तत्पर हो उठता है। आनन्दातिरेक का उच्छलित होना और उमड़ना, परस्पर का रसास्वादन-रूप-रमण, नित्य नवीन, नवीन, विचित्र वेष धारण करके प्रकट होता है। महाभावमयी अनन्त, अनन्त वृत्तियाँ, कायव्यूहरूपा गोपाङ्गनाओं का समूर्त्त रूप धारण करती हैं और प्रकट होती हैं।

हे शुक देखो ! प्रेम मूर्ति श्री राधा का प्रियतम सुखैक तात्पर्यमय प्रेम किस किस प्रकार की विचित्र एवं सुन्दर साज सज्जाओं से अलंकृत होता

है। "देखो, प्रत्यक्ष अनुभव करो" सारिका के यह कहते ही दृश्य बदल जाता है।

प्रिया अपने कुंज प्रासाद की छत पर बैठी हैं। उनकी दृष्टि के सम्मुख अनन्तानन्त रूप राशि लिये, अनन्तानन्त माधुर्य, अनन्तानन्त गुण गरिमा लिये प्रियतम अभिव्यक्त हैं।

श्री राधा रानी के नेत्र ही प्रियतम रूप हैं। अतः नेत्र प्रियतम से पृथक् दर्शन ही किसका एवं कैसे करें। कहीं दृष्टा पृथक् हो, पृथक् दर्शन का संकल्प हो, तब न पृथक् दृष्य निर्माण हो। जो दृष्टा है, वही नेत्र है। जो नेत्र है, वही दृष्य है, वही रूप है। तब कौन कहे, मैं देखती हूँ; प्रियतम को देखती हूँ, नेत्रों से देखती हूँ। प्रेम में इतनी दूरी, इतना भेद कहाँ, कैसे संभव है। अपने और अपने प्रियतम के मध्य, नेत्र तीसरा कौन ? रूप चौथा कौन ? दृष्य पाँचवाँ कहाँ ? बस, अनिर्वचनीय प्रेमानुभूति में प्रियतम सरस रहे हैं। अनन्तानन्त सौन्दर्य राशि क्षण क्षण नवीन नवीन चमत्कार से अभिव्यक्त हो रही है। मात्र लीलार्थ दृष्टा का पृथक् आभास मात्र है "रानी को प्रियतम रिझा रहे हैं।"—उपरोक्त शब्द कथन मात्र हैं। शब्द सत्य के सौन्दर्य को, उसके सत्य को, उसकी पवित्रता एवं माधुर्य को, व्यक्त करने में सर्वथा सर्वथा असमर्थ हैं। महल का अणु अणु प्रियतम ही प्रियतम। व्योम, वन, मात्र दृष्य प्रियतम ही प्रियतम। रस ने भावोद्दीपन किया। भाव जगा। "हा प्राणनाथ ! कितने सुन्दर तुम हो ! कहाँ महाकुरूपा मैं, एवं कहाँ अनन्त सौन्दर्य निकेतन आप ! फिर भी किस प्रकार रीझ रीझ कर नाथ, आप मेरे नेत्रों को सुख देने उमड़ रहे हैं।"

शब्दों ने भाव के सत्य को संस्पर्श भी नहीं किया। सत्य कितना पवित्र है, कितना मधुर है। भाव अपनी भाषा में प्राणों की स्पंदनात्मक अभिव्यंजना में क्या व्यक्त कर गया, शब्द उसका प्रकाश नहीं कर सके, नहीं ही कर सके, कदापि नहीं कर सकेंगे।...परन्तु उपाय ही क्या है ? भाव प्रकाशन के माध्यम तो शब्द ही हैं। वे चाहे उसकी समग्र पवित्रता का नाश करदें, उसके माधुर्य को छू भी न पावें, परन्तु शब्द के अतिरिक्त दूसरा माध्यम भी क्या संभव है ? कोई अधिक प्रतिभावान कवि होगा, वह सुन्दर रूप से इस भाव को व्यक्त करने की चेष्टा भले करले, भाव की सत्यता स्पर्श भी नहीं

कर सकेगा, कदापि नहीं कर सकेगा।

रानी रूप भाव प्रवाहित हुआ। भाव में भाव ही संकल्पित हो उठा। “अहा, कहीं कोई ऐसा सौन्दर्य अभिव्यक्त होता, जिसके रोम रोम में कोटि कोटि प्रियतम कृष्णचन्द्र का सौन्दर्यसार भरा होता। अहा, कैसे यह संभव है, कि ऐसा माधुर्य अभिव्यक्त हो जिसके सौन्दर्यसार का अणु अणु इस काली मधुरिमा से अपार अनंत गुना अधिक हो। अहा, कब वह शुभ क्षण हो, जब वह सौन्दर्यसार माधुर्यसिक्त होने के अतिरिक्त अनन्तानन्त गुणराशि का ऐसा प्रकाश करे जिसके सम्मुख यह साँवरज्योति में भरा गुणसमुद्र तुच्छातितुच्छ अनुभव होने लगे। तभी तो मेरा प्रेमसमुद्र यह साँवरा हृष्य उसे देखकर सुखी होगा, उसे पाकर परमानन्दित होगा, उसे आलिंगित कर कृतकृत्यता को प्राप्त करेगा। अहा, इस साँवर आकृति के अन्दर उमड़ता सुखसमुद्र ही तो मेरा अनन्त अनादि अस्तित्व है। फिर इस सुखसमुद्र को शान्त कैसे रहने दूँ। बोलो प्रियतम, तुम आनन्द ही आनन्द हो। तुममें परम आनन्द की सत्ता है, अनन्त आनन्द की सत्ता है, पूर्ण आनन्द की विद्यमानता है। अखिल आनन्द, सम्पूर्ण आनन्द की खान, उसके श्रोत तुम ही हो। अखिल आनन्द, मात्र आनन्द की योनि. उसको प्रकट करने वाले भी तुम ही हो। परन्तु नाथ, पूर्णता को पूर्णता का ज्ञान जबतक न हो, तबतक वह अपूर्ण है या पूर्ण, इसे कौन प्रकाशित करेगा? पूर्णता आस्वाद्य कैसे हो? पूर्णता का आस्वादन तो अपूर्णता ही कर सकती है। प्राणनाथ! तुम्हारे आनन्द की सत्ता मात्र उसके ज्ञानार्थ नित्य अपूर्ण ही तो रहती है। कभी पूर्ण हो ही नहीं सकती। तुम्हारा ही सत्य अपना ज्ञान तभी तो करेगा जब वह अपूर्ण सत्य होगा। तुम्हारा पूर्ण ज्ञान भी तभी प्रकाशित होगा जब वह अपूर्ण ज्ञान हो अपने पूर्ण ज्ञानस्वरूप को जान पावेगा।

सागर ही सागर है। अनन्त समुद्र ही समुद्र है। केवल समुद्र है। वह पूर्ण है तो उसे कौन देखेगा? उसकी शोभा का सुख कौन लेगा? सागर का आस्वादन तो कहीं कोई किनारा तट ही तो करेगा, न। तट में सागरत्व का कुछ न कुछ अवश्यमेव अभाव होगा तभी तो वह भाव का सुखग्रहण कर सकेगा। तो नाथ! अनन्त अभाव की प्रतीति होने पर ही तो अपार भाव-सुख की अनुभूति, उसका आस्वादन हो सकेगा, न। अतः मेरे प्रियतम! तुम अपार

अनन्त सुख समुद्र होकर भी किनारा बनो, तो तुम्हें तुम्हारी ही सुखमयता का अनुभव, परिज्ञान, सुख हो। हे मेरे प्राणनाथ ! तुम मात्र सत्य होकर भी असत् होओ तो तुम्हें सत्य के अस्तित्व का आभास हो। तुम परमातिपरम ज्ञान होकर भी पूर्ण अज्ञान हो जाओ तो तुम्हें अपने अनन्तानन्त ज्ञान का बोधानन्द हो।" बस, भाव ने पूर्ण रस को निर्विशेष बना दिया। गुणसमुद्र को निर्गुण कर दिया। अनन्तानन्त सौन्दर्याकार को निराकार, रूपहीन बना दिया। अब गुणसमुद्र निर्गुण होकर अपनी ही गुणमयता का चमत्कार देख रहा है और चमत्कृत हो रहा है। आनन्द सागर अपने ही आनन्द का आस्वादन ले रहा है, निरानन्द होकर। पूर्ण सौन्दर्य अपने ही रूप से विभोर है, निराकार होकर। समग्र अस्तित्व अपने अस्तित्व का बोध कर रहा है, किनारा बनकर।

प्रियतम ही प्रियतम रूपी दृश्य का द्रष्टा, राधारूप अहमाभास दृश्य देख रहा है— "यमुना का अत्यंत सुन्दर किनारा है। चतुर्दिक् वन अनन्त शोभा में मुखरित है। प्रियतम, अनन्त सुन्दर प्रियतम, एक कदम्ब वृक्ष के नीचे खड़े हैं। जैसे किसी की प्रतीक्षा कर रहे हों। जैसे महा सुगंधि का अनन्त अनन्त सागर उमड़ उठा हो।" यह परम सत्य है कि प्रियतम में, उनकी दृष्टि में, कहीं कोई अपने से अतिरिक्त सत्ता का बोध ही नहीं। यह गंध, कोई उनके अतिरिक्त वस्तु हो,यह तो संभव ही नहीं। उनकी स्वरूपगंध ही तो अनन्त गुनी बनकर उनकी ही आस्वाद्य बन गयी है। वे स्वरुचि, स्वलीला से ही उस गंध रूप 'स्व' के प्रति लालायित हो गये। वे विचार करने लगे "अहा ! कैसी आकर्षक गंध है। इस गंध ने तो मेरे रोम रोम को अपने सौगन्ध्य से वशीभूत कर लिया है।" उनके नेत्र, जिस दिशा से वह परमातिपरम दिव्य गंध आरही है, उधर उठ जाते हैं, तथा एक विलक्षण रूप देखने लगते है। "कोटि कोटि चन्द्रमाओं का सार लेकर जैसे उसका रोम रोम निर्माण किया गया हो। सर्वत्र रूप ज्योत्स्ना छिटक रही है। कैसी मादक मुसकान है। कैसी दिव्य दंतछटा है। कैसे उमड़ते मेघों के समान केश हैं। कितने सुकोमल अंग प्रत्यंग हैं। कैसी बड़ी बड़ी आँखें, कैसे कपोल, कैसी नासिका, कैसी सुन्दर ग्रीवा, सम्पूर्ण आकृति ही मानों साक्षात रूपावतार बन प्रियतम के सम्मुख खड़ी हो गई है।"

हे शुकराज ! इस महा महा विलक्षण आकृति में भी प्रियतम श्रीकृष्ण को राधा ही राधा दिखलाई पड़ती हैं, उसके रोम रोम में प्रिया ही प्रिया भरी उन्हें

दृष्टिगोचर हो रही हैं। प्रियतम लालायित हो उठते हैं। उनके अंग अंग मिलन भाव से आतुर हो उठते हैं। उनके नेत्र उस महा रूप में डूब जाने को, उनके कान उसकी सुमधुरातिमधुर वाणी सुनने को, उनकी रसना उसका अधरामृत चखने को, और रोम रोम उसके परम मधुर संस्पर्श पाने को परमातुर हो उठते हैं। प्रियतम की आत्मा पूर्ण आत्मनिवेदन लिये प्रस्तुत हो जाती है, उसके चरणों में विसर्जित हो जाने को। व्यवधान रहित मिलनार्थ प्रियतम के चरण यंत्रचालित से उसी ओर डगमगाते से चलने लगते हैं। नेत्र रूपरस में डूबते उतराते उसी छवि को सर्वत्र देखने लगते हैं। हाथ आलिंगन का प्रकाश करते स्तम्भित से ऊर्ध्व हो जाते हैं। और वाणी बोल उठती है—

"प्राणेश्वरी, प्रिये, आओ, मेरे विरह संतप्त हृदय को अपने परमामृत संस्पर्श से आप्यायित करो" यह कहते कहते ही प्रियतम प्रेम के सात्विक भावों से भर उठते हैं। उनकी वेणु उनके काँपते हाथों से उनकी प्रिया के चरणों में गिर जाती है। मस्तक से मयूरपिच्छ धूलि लुंठित हो जाता है।

प्रियतम प्रिया के अंक में और प्रिया प्रियतम के अंक में समा जाते हैं। प्रियतम के नेत्र प्रिया के सौन्दर्य में ही नहीं, प्रिया के नेत्रों में विलय हो जाते हैं। प्रियतम एवं प्रियतम का दर्शन प्रिया, और प्रियतम की दर्शनेन्द्रिय नेत्र, तीन अलग तो थे ही नहीं। नेत्र ही रूप थे। रूप ही नेत्र थे। प्रिया का रूप दर्शन, प्रियतम और प्रिया की दर्शनेन्द्रिय नेत्र, तीन पृथक् सत्ता तो थे नहीं। दर्शन ही दर्शनेन्द्रिय था। दर्शन ही द्रष्टा था। जब दृष्य रूप प्रिया, प्रियतम द्रष्टा से मिली तो नेत्र, रूप-दर्शनेन्द्रिय भी दर्शनेन्द्रिय में मिल गई। द्रष्टा, दर्शन और दृष्य में मिल गये। इसी प्रकार वस्त्र वस्त्र में मिल गये, अलंकार अलंकार में। इन्द्रियाँ इन्द्रियों में मिल गईं। मन मन में, तन तन में, रोम रोम में, प्राण प्राण में और आत्मा आत्मा में पूर्ण एकाकार अभेद हो गईं। न प्रिया, न प्रियतम।

शिव शक्ति के सम्मिलन को अद्वैतवाद पूर्णाअद्वैत कहताहै। परन्तु अर्द्धनारीश्वर शिव में अर्द्धनारी शिवा का सीमांकन तो है। इन प्रियतम प्रिया, कृष्ण राधा, प्रिया प्रियतम, राधा कृष्ण में तो शक्ति शिव रूप सीमा रेखा का अन्वेषण ही संभव नहीं है। कौन शक्ति है, और कौन शिव है ? न शिव है, न शक्ति है। काल है ही नहीं जहां, वहाँ काल की

किस सीमा को निर्दिष्ट किया जाय जहाँ मिलन में प्रियतम से प्रिया का विलगत्व आभासित हो। पूर्ण मिलन। प्रिया प्रियतम में पूर्ण समा गई। बिन्दु सिन्धु में पूर्ण विलय हो गयी। सिन्धु हो जाने पर फिर उससे यदि बिन्दु को आस्वादनार्थ निकाला भी जाय तो क्या यह पता लग सकता है कि वही बिन्दु वापस आई है। कदापि नहीं, कदापि नहीं। प्रिया प्रियतम में मिली। प्रियतम प्रिया में मिले। सिन्धु में बिन्दु मिल सिन्धु हो गया, या सिन्धु में सिन्धु मिलकर पूर्ण सिन्धु ही हो गया।

अब सिन्धु से बिन्दु का पृथक्करण,, अन्वेषण कैसे हो? उसका विलगत्व क्या संभव है? मिलने के पश्चात् क्या कभी किसी भी प्रकार से पृथकत्व संभव है? कदापि नहीं। पूर्ण मिलन है। अपूर्ण मिलन है ही नहीं। प्राकृत बुद्धि ने आज तक ऐसा अचिन्त्य मिलन देखा ही नहीं है, जिससे इस मिलन की, इस प्राप्ति की कल्पना भी की जा सके। प्रकृति में द्रष्टा न रूप है, न नेत्र। प्रकृति में द्रष्टा निरपेक्ष मात्र साक्षी है, उसका न नेत्र से किंचित भी सम्बन्ध है न रूप से। नेत्र का भी रूप से कोई मिलन नहीं। नेत्र भी मन के माध्यम से रूप की प्रतीति करते हैं। मन न रहने पर नेत्र न रूप को देख सकते हैं न रूप है ही। तो प्रकृति में यदि कोई चाहे कि नेत्र को अपने रूप से ही मिलादे तो संभव है ही नहीं। मन को कहे कि नेत्र से मिलादे तो भी संभव नहीं। क्योंकि नेत्र का विषय मन है ही नहीं। तो प्रकृति में न इन्द्रियाँ अपने विषय से मिल सकती हैं, न इन्द्रियाँ जिसकी विषय है उस मन से ही मिल सकती हैं। इसी प्रकार बुद्धि चाहे कि मेरा मन से मिलाप हो जाय तो भी संभव नहीं, क्योंकि बुद्धि स्वयं में सत्ता है ही नहीं, न मन ही स्वयं में सत्ता है। चेतन की सत्ता से ही बुद्धि की भी प्रतीति है और मन की भी प्रतीति है। तब मन न बुद्धि से मिल सकता है, न इन्द्रियों से। बुद्धि न मन से मिल सकती है, न चेतन से। क्योंकि चेतन सत् है, शुद्ध है, चिन्मय है, और बुद्धि जड़ है, प्रकृति है, असत् है। तो प्रकृति में किसी का किसीसे जब मिलन होता ही नहीं तब कैसे प्राकृतिक बुद्धि समझेगी कि प्रिया प्रियतम, रानी राजा किस प्रकार मिलते हैं।

जल से जल का मिलन, आकाश का आकाश से मिलन भी प्रिया प्रियतम के मिलन की साम्यता नहीं ग्रहण कर सकता। क्योंकि घटाकाश और महाकाश, जीवाकाश और देवाकाश में भेद संभव तो है ही। घट, जीव और देव ये सत्ताएँ विभाजक तो बन ही सकती हैं। परन्तु प्रिया प्रियतम, रानी राजा,

श्रीकृष्ण राधा का मिलन, मैं से मेरे का मिलन है, और ऐसा मिलन है कि वह कभी विभाजित होता ही नहीं। वह कभी वियुक्त हुआ ही नहीं। कोई भूत उसे कभी पृथक् नहीं कर सका था, किसी वर्त्तमान की सत्ता ही नहीं, जो मैं से मेरे को, तुम से तेरे को, उससे इसके को, उन से उनके को, इन से इनके को, इस से इसके को, राधा से कृष्ण को, प्रिया से प्रियतम को, रस से भाव को पृथक् कर सके। भले ही जल को रसता से शून्य किया जा सके, भले ही जल से जलत्व अलग किया जा सके, पृथ्वी से गंध को कोई भले ही निकाल दे, पृथ्वी से पृथ्वी तत्व को कोई बिलग भले हीं करदे, संभव को संभावना से शून्य भले ही करदे, पर प्रिया से प्रियतम को विलग करना संभव ही नहीं है, संभव ही नहीं है। श्रीकृष्ण से राधा का वियोग संभव ही नहीं, संभव ही नहीं। उनका नित्य संयोग है, क्योंकि वे नित्य हैं, पूर्ण हैं, अखंड हैं, अद्वितीय हैं, अभेद हैं, मात्र वे ही वे हैं।

[रचि विचित्र सुठि साज का भाव]

प्रिया राधा रूप अहमाभास के दृष्य, अनन्त सौन्दर्य में सुन्दर खोगया। राधारूप अहमाभास असीम, अपार सुख में डूब रहा है क्योंकि वह अपने में अपने ही द्वारा पूर्ण मिलन का, अपने में, अपने ही द्वारा पूर्ण प्राप्ति का अनन्त सुख ले रहा हैं। रस लहरें भाव के परमोद्दीपन की ओर उफन चलीं। राधारूप अहमाभास संकलिपत हो उठा, अहा ! मेरे प्रियतम को मेरे इस दृष्य, रूपराशि चन्द्रावली से मिलकर अनन्त सुख प्राप्त होता है, और यह चन्द्रानना चन्द्रावली गुण, रूप, शील, भाव आदि सभी में मेरे से अनन्त अनन्त गुनी अधिक है, अहा ! मैं तो महानिकृष्टा, कुरूपा, कुत्सित, कुरसा, नीरसा, गुणशून्या ही नहीं, सर्व दोषरूपा हूँ। मुझ अहंकारिणी से मिलकर प्रियतम कैसे सुखी हो सकते हैं। प्रियतम तो परम रसरूप हैं, अतः परम महा भावमयी चन्द्रावली ही उन्हें सुखसागर में निमग्न करने में समर्थ है। बस, इस अहमाभास ने निश्चय कर लिया, अब प्रियतम से ऐसा कुटिल व्यवहार करूंगी कि प्रियतम मुझ से अरुचि करलें, प्रीति तोड़लें और चन्द्रावली के पास ही रहें।

यह तो भावलहर ही थी। भाव को रसका शृंगार ही करना था। प्रियतम तो अभेद रूप से ज्यों के त्यों वहीं हैं। बस, दृष्य बदला।

प्रियतम खड़े हैं नीचा मुख किये। प्रभात की नव वेला है। आकाश में अभी अभी थोड़े नक्षत्र दिखाई पड़ रहे हैं।

मलिन मुख चन्द्रमा अस्ताचल की ओर धीरे धीरे अग्रसर हो रहा। कमल मुकुलित नहीं हुए हैं। पक्षियों का कोलाहल हो रहा है। मंद शीतल समीर प्रसरित है। प्रिया श्री राधा का अहमाभास देखरहा है, कैसा सुखद प्रियतम का स्वरूप है। वे पीले पीताम्बर के स्थान पर चन्द्रावली बहिन का नीलाम्बर लपेटे हैं। उनके मुकुट पर, मस्तक पर चन्द्रावली के चरणों में लगा माहुर स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है। उनके नेत्रों में निज प्रिया के मुख-ताम्बूल का राग रंजित है। कपोलों पर, अधरों पर, दन्तक्षत स्पष्ट अंकित हैं। अंगों में नखक्षत लगे हैं। उनके नेत्र रात्रि जागरण से रक्तिम, उनींदे, झुके झुके हैं।

हे शुकराज ! रानी अपने स्वरूप से अभेद है। रानी का सम्पूर्ण दृष्य रानी ही रानी है। रानी का भाव ही तो दृष्य है। यह दृष्य दृष्टा से अतिरिक्त कहाँ ? तब रानी में राग द्वेष की संभावना ही कहाँ ? क्या रानी में चन्द्रावली के प्रति द्वेष संभव है क्योंकि चन्द्रावली ने रानी के प्रियतम का अपहरण कर लिया ? अथवा क्या प्रियतम के इस चन्द्रावली मिलन से उनमें अपने प्रियतम पर कोई रोष हुआ है, कि क्यों वे चन्द्रावली पर रीझे ? न कहीं द्वेष, न ही कहीं राग। किस पर राग एवं किस पर द्वेष। कोई द्वितीय हो, तब न ? रानी ही रानी तो है। रानी के ही संकल्प से तो यह दृष्य बना था। जब रानी का संकल्प ही अपने स्वयं के सौन्दर्य से अनन्त गुना सुन्दर बन-प्रियतम-सुखार्थ चन्द्रावली बन गया था तो द्वेष किससे एवं क्यों हो ?

रानी का संकल्प ही तो अनन्त अनन्त सुखमयी लीलाएँ सृजन कर रहा है। सौन्दर्य को, माधुर्य को, आनन्द को, अनन्त, अपार उच्छलन दे रहा है। रानी ही अपने ललित भाव में ललिता बन जाती हैं। वे अपने ही भावों में अपने प्रियतम की पररतिलंपटता से क्षुब्ध हो जाती हैं, रोषवती हो उठती हैं। कैसा विलक्षण भाव है। भाव में ही रस रूप अनन्त सौन्दर्य एक ओर प्रियतम बना, अत्यंत दैन्य प्रकाशित करता हुआ, निज पादांगुष्ठ से भूमि कुरेदने लगता है, और वही भाव दूसरी ओर रसरूप अनन्त ललित ललिता सखि बना प्रियतम को खंडिताभावापन्न अवस्था में तर्जित करता है। और वही भाव निर्मित रसमयी सौन्दर्य राशि राधा, रानी, प्रिया एवं दृष्टा

बनी इस समग्र दृष्य को अपने ही संकल्प से दृष्यत्व प्रदान कर देती हैं। एक ही अभेद सत्ता है। वही अभेद सत्ता संकल्प से प्रिया, प्रियतम, चन्द्रावली, विशाखा, ललिता, चन्द्रमा, पुलिन, सरोवर, वन, यमुना, समीर, काल, क्षण, संध्या, मध्याह्न, प्रभात, सब बन रही है। मात्र भावरूप संकल्प से रस सज्जित हो रहा है, तथा अनेकानेक सुभगताओं के सुठिताओं के साज से सज्जित हो थिरक रहा है।

हे शुकराज! रानी ही प्रियतम हैं। रानी के भावरूप संकल्प ही प्रियतम की रुचि एवं इच्छाएँ हैं। साथ ही साथ रानी ही अपने संकल्प से प्रियतम की समस्त रुचियों को, इच्छाओं को पूरी करने में निरन्तर, निरन्तर निरत हैं। भाव ही रानी का तन, मन, वचन है और भाव ही रसरूप, रसराज प्रियतम की आराधना में नियुक्त है। भाव ही प्रियतम रसराज को परिपूर्ण आनन्द रूप में प्रस्तुत करता है। क्योंकि भाव स्वयं परिपूर्ण आनन्द ही है। वह अपने दृष्य को अपने से अतिरिक्त कैसे संकल्प करेगा?

परन्तु वह परिपूर्ण आनन्दमय भाव रस को परिपूर्ण आनन्द रूपमें प्रस्तुत करता हुआ भी प्रियतम सुखैकतात्पर्यमय होने के कारण अपने प्रियतम रस में पुनः स्वयं आनन्द प्राप्त करने की इच्छा जागृत करलेता है। वह आनन्द रूप स्वयं में ही स्वयं से आनन्द प्राप्त करने की तीव्र चाह उत्पन्न करलेता है। बस, भाव एवं रस में पारस्परिक प्रीतिविधान रूप रमण या रास का प्रारंभ हो जाता है। महारसराज भाव को स्वरूपरस का पान करवाता है और भाव रस में आनन्दातिरेक को उच्छलित करता जाता है। परस्पर का यह रसास्वादन नवीन, नवीन, विचित्र, विचित्र वेष धारण करके प्रकट होता है। श्री राधा की अनन्त महाभावमयी वृत्तियाँ कायव्यूहरूपा अनन्त, अनन्त गोपाङ्गनाओं के रूप में प्रकट हो जाती हैं। अनेक रानी की समजातीय सेवा में लग जाती हैं और प्रियतम-वाञ्छा से विरत रहकर केवल राधा-सौख्याभिलाषिणी ही रहती हैं। वे श्री राधा माधव, प्रिया प्रियतम की मिलन-सेवा में, नित्य निरंतर उनके सुख सम्पादन में, अनुकूलतायुक्त अपने को नियुक्त रखती हैं। ये सखी, मंजरीगण श्री राधारानी के मधुररस की परिपुष्टि और उसमें विविध विचित्रताओं का विधान करती रहती हैं। इसी प्रकार यह रस ही प्रिया प्रियतम के रूप में विलसित होता हुआ, नित्य प्रवहमान स्रोतस्विनी के सदृश प्रवाहित हो उठता

है। स्वाभाविक ही इस स्रोतस्विनी के मिलन एवं विरह रूप, संभोग एवं विप्रलंभ रूप दो तट बन जाते हैं। कभी प्रिया प्रियतम मिलन तट पर सुविराजित होकर इसका आस्वादन करते हैं, और कभी विरह तट पर इसका आनन्द रस लेते हैं। इन दोनों तटों पर इसका वैचित्र्य चार चार प्रकार का प्रतीत होता है। मिलन में (१) संक्षिप्त मिलन, (२) संकीर्ण मिलन, (३) सम्पूर्ण मिलन एवं समृद्धिमान मिलन ये चार विचित्रताएँ परिलक्षित होती हैं। इसी प्रकार विरह में (१) पूर्वराग (२) मान (३) प्रेम वैचित्त्य (४) प्रवास. ये चार विचित्रताएँ परिलक्षित होती हैं। वैसे तो इनके असंख्य अन्तर्भेद हैं। परन्तु रसिकजन रस-शास्त्र में इनके चार ही भेद करते हैं। जैसे बाँयें और दाहिने, दोनों पैरों से मनुष्य चलता है, दो पंखों से पक्षी उड़ता है, इसी प्रकार विरह एवं मिलन से ही रस विलास की सिद्धि होती है। जैसे प्रातः एवं संध्या के बीच में ही दिन की विशिष्टता का विकास होता है, पूर्णिमा और अमावस्या के द्वारा मास की विचित्रता प्रकट होती है, वैसे विरह एवं मिलन की पृथकताओं में ही व्रज के रस विलास का मधुरतम प्रवाह चलता है।

हे शुकराज ! यह सदा ध्यान रखना कि रानी रूप भाव ही प्रियतम रूप रस है। द्रष्टा से, संकल्पकर्त्ता से दृश्य की, संकल्प की, पृथक् सत्ता है ही नहीं, है ही नहीं, कदापि किसी काल में नहीं है। इसलिये न किसी का मिलन है, न वियोग है। अपने से अपनत्व का न कभी मिलन होता है एवं न वियोग। निज का निजत्व से, क्या कभी मिलन एवं वियोग संभव है ? भाव ही भाव है। रस ही रस है। नित्य मिलन, नित्य वियोग है। पूर्ण वियोग में पूर्ण मिलन है, और पूर्ण मिलन में नित्य वियोग है।

भाव ही निशा बन जाता है और भाव ही उसका अन्त करके ब्रह्म मुहूर्त्त का आरम्भ कर देता है। भाव ही शुक है, सारिकाएँ है, मयूर है, कोकिलाएँ है, समस्त पक्षी भाव ही है। उनका कूजन नर्त्तन भी सब भाव ही है। भाव ही प्रिया है और भाव ही प्रियतम। कैसी भावमयी प्रिया प्रियतम की प्रेम समाधि है। प्रिया प्रियतम के अंक में और प्रियतम प्रिया के अंक में। अर्द्ध निमीलित नेत्र, मानों दो स्नेह निर्भर झर, झर झर रहे हों। दोनों के पराअमृत स्वरूप अंगों से सुखद अनंत स्नेहमयी ज्योति प्रसरित हो रही है। मानों लावण्य चू रहा हो। है सब भावमय। भाव ही अर्द्ध निमीलित नेत्र है और

भाव ही स्नेह निर्झर । भाव ही पराअमृत स्वरूप है और भाव ही अंग, प्रत्यंग शरीर है । भाव ही अनन्त स्नेह है और स्नेहमयी ज्योति है । वही लावण्य है, वही प्रसरित हो रहा है, और वही चूरहा है । भाव निर्गुण है, निरञ्जन है, निर्विशेष है, निराकार है, शांत है, घन है, नित्य है, मात्र सत्य, सन्मात्र है, चिन्मात्र है, मात्र आनन्द है । परन्तु इस आनन्द की चिन्मयता बिना किसी संकल्प के स्वभावतः ही आस्वादन रूप होने के कारण रस बन जाती है । और रस पूर्ण गुणरूप, पूर्ण सौन्दर्य, पूर्ण आकाररूप, पूर्ण विशेषरूप हो, भाव को उच्छलित कर देता है । यह स्वभावतः है । रस के बिना भाव भाव है ही नहीं । भाव अभाव हो जायगा । क्यों कि भाव में यदि आस्वादन नहीं होगा तो भाव सत्ता का ज्ञान ही नहीं होगा । आस्वादन ही तो भाव का ज्ञान है । उसकी चिन्मयता है । उसकी चिन्मात्र अवस्था है । अतः भाव स्वभावतः रस रूप होकर ही प्रतीत होगा । भाव का रस रूप होना ही भाव की ज्ञात अवस्था है । भाव रूप में तो वह सर्वातीत है, ज्ञानातीत है, दृष्टिगोचर ही नहीं है, अनुभवगम्य ही नहीं है, अज्ञात है ।

अतः हे शुकराज ! यह सत्य, सत्य, परम सत्य है कि दृष्टा भाव रूप है और दृष्य ही रस है । दृष्टा का कोई आजतक कभी अनुसंधान नहीं कर पाया है, वह सब संधानों से अतीत है । अतः उसका अनुसंधान हो ही नहीं सकता, हो ही नहीं सकता । कोई कहे कि मैंने शिवत्व का अनुसंधान कर लिया तो वह भ्रम में है । शिवत्व की अभिव्यक्ति शक्ति रूप में ही होती है । शिव की शिवता ही शिवा है । अतः दर्शन, अनुभव, प्रत्यक्ष शिवा का ही, शक्ति का ही होता है । शक्ति ही शिव का संकेत मात्र करती है । प्राप्ति शक्ति रूप शिव की ही होती है । इसी प्रकार हे शुकराज ! जिन्हें तुम महाभावमयी राधा कह कर देख रहे हो, वे जब दृष्य बनेंगी रसरूप हो जावेंगी । उनका भावरूप दर्शन होही नहीं सकता, महाभाव रूप दर्शन होही नहीं सकता । रसमय, महारसमय दर्शन ही होगा । और रस कृष्णमय होने से श्रीकृष्ण ही राधा रूप में दर्शन देंगे, अनन्त रसराज श्रीकृष्ण ही राधा रूप में प्रत्यक्ष होंगे । असली राधा तो दर्शनातीत हैं, अनुसंधानातीत हैं । वे मात्र अचिन्त्य, अदृष्य, अनिर्वचनीय हैं जो इस श्रीकृष्णरूपा रसमयी राधा के प्रत्यक्षीकरण के पश्चात् संकेतित ही हो पाती हैं । भावोदधि राधा दृष्टि का विषय कदापि कदापि नहीं हो सकतीं । प्रिया रूपी महाभाव को श्रीकृष्णरूप रस इतना घना आलिंगित किये रहता है

कि महाभाव का दर्शन होने ही नहीं देना। महाभाव रस का विषय है ही नहीं। रस का आश्रय है। अतः चारों ओर से, सर्व, अनन्त रस उसे इतनी घनी परतों में घेरे रहता है, कि रस ही रस का अनुभव होता है। हाँ, यह महारस की सत्ता ही संकेतित करती है, कि महाभाव ही इस महारस-समुद्र का कारण है। भाव विहीन रस का तो उद्भव भी संभव नहीं है।

हे शुकराज, रस भी परिलक्षित कहाँ होता है, दृष्टि का विषय कहाँ बनता है। बताओ शुकराज, कल रात्रि में जिन श्रीकृष्णरूप रसराज के दर्शन तुमने किये वे आज हैं क्या? राधारानी का जो दर्शन तुमने काल के एक क्षण, उससे भी लघु, लघु से लघु, मात्र निमेष अवधि में किया, वह राधा दूसरे निमेष में वही हैं क्या? प्रियतम, रसराज श्रीकृष्ण का सौन्दर्य नित नव नवायमान रूप में क्यों प्रकाशित हो रहा है? इस सम्पूर्ण गोलोक के पत्ते पत्ते का, यमुना के अणु अणु का, गिरिराज के प्रस्तर रूप कण कण का, आकाश का, वायु का, सूर्य का, चन्द्र का, दृष्यरूप प्रत्येक पदार्थ का, अणु अणु, प्रतिनिमेष, प्रतिपल, नवनवायमान रूप, गुण, माधुर्य लिये अभिव्यक्त क्यों हो रहा है? एक पल पूर्व जो रूप था वह पुनः उसी अवस्था में स्थिर क्यों नहीं रहता। रूप नित्य, सत्य होकर भी नवायमानता की रंगत से युक्त क्यों है? एक क्षण के पश्चात् द्वितीय क्षण, जो रूप प्रकट होता है, वह उससे भी परम विलक्षण, परम अद्वितीय, क्यों हो जाता है? वह जो एक बार अभिव्यक्त हो गया, वह भी स्थिर क्यों नहीं? जब वह स्थिर नहीं, तो यह नवनूतन रस-वर्षा प्रकट कर रही है कि इस रस की स्वयं में कोई सत्ता है ही नहीं। जब है ही नहीं, तभी तो वह पकड़ में नहीं आ रहा है, पकड़ने के पहले वह पूर्वरूप रहता ही नहीं। पलक झपकने में जो काल लगता है, उसके पूर्व ही प्रियतम का रूप, गुण, माधुर्य सब बदलकर पुनः नवीन हो जाता है। इसका अर्थ क्या यह स्पष्ट नहीं कि रस मात्र भावरूप ही है। सत्ता भाव की ही है। रस की सत्ता है ही नहीं। भाव ही अनन्त, नित्य नूतन, नित नव नव छबिमान होकर व्यक्त एवं आभासित हो रहा है। सन्मात्र अस्तित्व तो भाव ही है।

इसीलिये शुकराज भाव और रस दोनों ही इन्द्रियों द्वारा अगोचर हैं, अग्राह्य हैं, अगोत्र हैं, अवर्ण हैं, नित्य हैं, व्यापक हैं, सर्वत्र परिपूर्ण हैं, अत्यंत सूक्ष्म हैं और सर्वथा अविनाशी हैं। वे मात्र सबके परम कारण हैं।

रस के दर्शन भाव परिरंभित ही होते हैं और भाव के दर्शन रस

परिरंभित ही होते हैं। प्रिया के दर्शन प्रियतम परिरंभित ही होते हैं और प्रियतम के दर्शन प्रिया परिरंभित ही होते हैं। इसीलिये प्रिया में प्रियतम ही प्रियतम हैं। और प्रियतम में प्रिया ही प्रिया है। प्रियतम प्रिया रूप ही हैं और प्रिया पूर्णतया प्रियतम रूप ही है। इसीलिये न प्रिया हैं, न प्रियतम। मात्र प्रेम ही प्रेम, प्रेम ही प्रेम है। आत्मा ही प्रेम है। ज्ञान ही प्रेम है। आत्मा, स्वरूप के अतिरिक्त प्रेम अन्य कुछ नहीं। चिन्मात्र के अतिरिक्त प्रेम कहीं कुछ नहीं। सन्मात्र के अतिरिक्त प्रेम कहीं कुछ नहीं। अतः उसे सन्मात्र, चिन्मात्र, आनन्द कहलो या प्रेम कहलो, शब्द अनेक हैं, वस्तु एक ही है। वही ब्रह्म है, वही ज्ञान है, वही आत्मा है। वही प्रेम है, वही प्रिया है, वही प्रियतम हैं, वही सब, स्वरूप है। प्रेम ही सर्वज्ञ है। प्रेम ही प्रेम का तप है। उसीसे समस्त नानात्व ,रूप, पदार्थ, परिस्थिति हैं।

हे शुकराज ! इसीलिये भाव ही प्रिया का, रानी का विरहरूप पूर्वराग है और भाव ही पूर्वरागोपरान्त प्रियतम से संक्षिप्त मिलन। भाव ही रानी का विरहरूप मान है और भाव ही प्रियतम से मानोपरान्त संकीर्ण मिलन है। भाव ही प्रिया का प्रेमवैचित्त्य रूप वियोग है और भाव ही प्रियतम से प्रेमवैचित्त्योपरान्त सम्पूर्ण मिलन है। भाव ही प्रिया का वियोगरूप प्रवास है और भाव ही प्रवासोपरान्त प्रियतम से समृद्धिमान मिलन है।

हे शुकराज, इसीलिये प्रिया प्रियतम का निशा जागरण के उपरान्त परस्पर एक दूसरे के अंगों में प्रेमचित्र निर्माण करना, परस्पर शृंगार करना, परस्पर टूटे हुए मुक्तामणियों द्वारा माला निर्माण करके एक दूसरे को पहनाना, निकुंज से गोष्ठ की ओर लौटना, कुञ्जान्तर वियोग में विरही होना, और पुनर्मिलन की प्रतीक्षा में गोष्ठ मन्दिर में शयन करना, सब है मात्र भाव ही भाव और भाव परिरंभित रस ही रस, रस रूप ही।

हे शुकराज ! शयन करते समय भी प्रिया प्रियतम के मन का परस्पर एक दूसरे की स्मृति से भरा रहना और परस्पर प्रेम प्रसंगों का ही स्वप्न देखना, अर्धनिद्रा में कुंजमिलन के प्रसंगों का अस्फुट उच्चारण करना, गोष्ठ में परिकरों द्वारा, घरवालों द्वारा उठाये जाने पर भी सशंकित सा उठ बैठना, स्नानार्थ जाना और सरोवर में प्रिया द्वारा प्रियतम की, और प्रियतम द्वारा प्रिया की निरावरण शोभा देखना, है सब भाव परिरंभित रस

ही और रस परिरंभित भाव ही। सखाओं एवं दासों द्वारा श्रीकृष्ण के अंगों में उबटन लगाना एवं चन्दन, केसर, अगरु और कुंकुम का मिश्रण, चतुःसम का लेपन किया जाना, अंग अंग में अति उत्कृष्ट तेल लगाना, आंवला एवं कल्क द्वारा प्रियतम एवं श्रीमती के केशों का संस्कार किया जाना, शीतकाल में स्वाभाविक उष्ण एवं उष्णकाल में स्वाभाविक शीतल जल द्वारा प्रियतम एवं श्रीमती का स्नान करना, स्नान करते समय प्रिया प्रियतम द्वारा जल के कण कण में परस्पर का दर्शन करना, भावावेशवश चौंक जाना, स्नान के पश्चात् सूक्ष्म वस्त्रों द्वारा अंग एवं केशों का जल पौंछा जाना, स्वर्णखचित नीली साड़ी एवं पीताम्बर का धारण करना, मानो प्रिया के अंगों में प्रियतम, एवं प्रियतम के अंगों में प्रिया का लिपट जाना, अगरु धूम द्वारा प्रिया प्रियतम की केशराशि का सुखाया जाना और सुगंधित किया जाना, तत्पश्चात् प्रिया प्रियतम का शृंगार करना, है सब भाव परिरंभित रस और रस परिरंभित भाव ही।

प्रिया प्रियतम का सोलहों शृंगार से शृंगार धारण करना, शृंगार में ही प्रिया का भावावेश में आकर ललिता को पुकार उठना और प्रियतम का सुबल को बुलाना एवं निज अनुभूति का बखान करना, ललिता द्वारा प्रिया को गुरुजनों की लज्जा का भय दिखाना, परन्तु प्रिया का न मानना, ललिता का तर्जना करना एवं शृंगार से वर्जित होजाना, प्रिया का दौड़कर प्रियतम की ओर जाने को उद्यत होना, इसी प्रकार श्यामसुन्दर द्वारा सुबल को निज भावप्रकाश करना और सर्वत्र प्रियादर्शन की स्थिति का वर्णन करना, प्रिया का पाक रचनार्थ नन्दग्राम जाना और पथ में स्थान स्थान पर प्रिय की प्रगाढ़ स्मृति में उनका साकार दर्शन करना, इसी स्थिति में श्रीमती का नन्दग्राम पहुँचना, यशोदारानी का श्रीराधा का आलिंगन करना, श्री यशोदा रानी को श्रीमती में कोटि कोटि श्यामसुन्दर भरे दिखाई पड़ना, वात्सल्यरस से माँ के स्तनों में दूध झरने लगना, है सब कुछ भाव परिरंभित रस ही और रस परिरंभित भाव ही।

हे शुकराज ! प्रिया द्वारा पाक विधान करना, सखाओं सहित श्रीकृष्ण का भोजनकालीन दर्शन, भोजनोपरान्त श्रीराधा के लिये ताम्बूल प्रेषित किया जाना, प्रियतम का गोचारण के लिये वन प्रस्थान करना तथा

पारस्परिक कुंजमिलन के संदेशों का आदान प्रदान करना, सूर्य पूजा के बहाने श्रीराधाकुण्ड में श्रीकृष्ण से मिलने के लिये श्रीमती का अभिसार करना एवं श्रीराधाकुण्ड पर प्रिया प्रियतम का मिलन, पुष्पशय्या पर दोनों का विराजना, मधुपान करना एवं विहार का प्रारम्भ, सबकुछ है भावमयी रस-सत्ता और रसमयी भावसत्ता ही।

हे शुकराज ! प्रिया प्रियतम का अभिनव हास परिहास, उनका वन विहार, वंसतलीला, झूलनलीला, जलविहार, पाशक्रीड़ा, द्यूत-प्रसंग एवं वनदर्शन, होलीलीला, सूर्यपूजा, वन से पुनः गोष्ठ में आगमन, प्रिया द्वारा सांयकालीन व्यालू का निर्माण, सायंस्नान, शृंगार एवं तब वन से आते हुए श्रीकृष्ण का दर्शन, तुलसी द्वारा व्यालू को नन्दगृह ले जाना एवं संकेत कुंज का निर्देश करना, नन्दालय से तुलसी का प्रियतम की प्रसादी थाली लाना, और उस थाली से सब सखियों सहित श्रीमती का प्रसाद लेना, है सब रसमय भाव और भावमय रस ही।

हे शुकराज ! सखियों द्वारा प्रिया का प्रदोषकालीन शृंगार एवं अभिसारार्थ प्रस्थान, निकुंज में प्रिया प्रियतम का मिलन, सखीगणों द्वारा रासनृत्य का दर्शन करना, श्रीराधारानी की नूपुरध्वनि और श्रीकृष्ण की वंशीध्वनि, युगल गीतमाधुरी, युगल नृत्यमाधुरी, रानी द्वारा वीणावादन और प्रियतम का आनन्द विभोर हो उठना, श्री प्रियाप्रिययम का एकान्त मिलन, परस्पर ताम्बूलदान और रसालाप करते करते शय्या विहार, सब कुछ है रसमय भावसत्ता और भावमय रससत्ता ही, अन्य कुछ नहीं।

हे शुकराज ! इसी प्रकार अनिर्वचनीय, अचिन्त्य, अनन्त नवीन नवीन सज्जाओं से भाव रस को और रस भाव को सजाता रहता है। यही आनन्द का उच्छलन है, लहराना है। इसी में विरह एवं मिलन की अनन्त भाव लहरियाँ थिरकती हैं, और ब्रह्मानन्द आनन्दोदधि उत्ताल लहरें ले लेकर उमड़ता रहता है।

["सहित विरोधी धर्मगुण युगपत् नित्य अनन्त" का भाव]

हे शुकराज ! यह रससत्ता या भावसत्ता परस्पर विरुद्ध धर्म एवं गुणाश्रयी है। अनन्त अनन्त, पूर्णतया परस्पर विरोधी धर्म एवं गुण एक ही साथ, एक ही समय इस रससत्ता में युगपत् प्रतिबिंबित होते रहते

ही। यह रस सत्ता सर्वव्यापी, अनन्त होकर भी मूर्तिमान है। वह अनन्त मूर्ति है, सर्वमूर्ति है, और साथ ही साथ एकमूर्ति भी है और पूर्णतया अमूर्त भी है। वह सर्वव्यापी है अनन्तव्यापी है, एकदेशीय है, एवं साथ ही सर्वदेशातीत है। यह सार्वदेशिकता, और सर्वव्याप्ति की मात्र प्रकाशक भी है। अनन्त मूर्त्तियों का मूर्त्तत्व होना उसी में है। वह किसी में मूर्त्त नहीं है, और सबकुछ वही मूर्त्त है।

हे शुकराज ! यह रससत्ता सर्वजन्मा है, एकजन्मा है और सर्वथा, सर्वथा अजन्मा है, क्योंकि समग्र जन्म उसी में प्रकाशित हो रहे हैं। वह सम्यक्तया सबसे अतीत है। सब जन्मों की मात्र वही प्रकाशक है। वह सर्व प्रकाश को भी प्रकाशित कर रही है। वह किसी से भी प्रकाशित नहीं है । स्वयंप्रकाश है। पूर्ण प्रकाश है। साथ ही अल्पतम प्रकाश, अन्धकार भी वही है। सत्व और तम युगपत् एक ही साथ एक ही स्थान पर उसमें प्रकाशित होते रहते हैं।

["वचनातीत अचिन्त्य" का भाव]

हे शुकराज ! यह रससत्ता समग्र तर्कों से अतीत है। सम्पूर्ण तर्क, विचार, विवेक, बुद्धि की यही प्रकाशक है। साथ ही बुद्धि से सर्वथा निर्लिप्त, अगोचर, अतीत भी है। बुद्धि का कोई गुण इसे स्पर्श नहीं कर सकता। इसीलिये इस रससत्ता में महाप्रलय और महासृजन नित्य एक साथ एक ही समय विद्यमान हैं, यह अविनाशी, नित्य होकर भी अनित्य और अन्तर्हित हो जाती है। यह सर्वभूत की महा ईश्वर होती हुई भी पूर्णतया पराधीन है। अनन्त अनन्त ऐश्वर्यों की मात्र योनि होते हुए भी सर्वथा ऐश्वर्य गन्ध शून्या है, पूर्ण निरीह, निरञ्जन है । यह पूर्ण निर्विशेष है। साथ ही सूक्ष्म भी है और महान भी। यह परम निकट भी है और अनन्त दूर भी। यह स्थिर, शान्त, घन है और अत्यंत चंचल, अशान्त, पूर्ण अवकाश भी है। इसमें मन से भी तीव्र गति है। और वह सर्वथा स्थिर भी है । वह तुरीय भी, अतुरीय भी, आत्मा भी, अनात्मा भी, उग्र भी, शान्त भी, वीर भी, भीरु भी, महान भी, लघु भी, व्यापक एवं एकदेशीय भी, प्रकाशमान एवं अप्रकाशमान भी है। महान भोगी होने पर भी पूर्ण योगी, विभक्त होकर भी पूर्णतया अविभक्त, सर्वकर्ता होकर भी विभु, अकर्त्ता, दृश्य होकर भी अदृश्य, परिच्छिन्न होकर भी विभु, सापेक्ष होकर भी निरपेक्ष, मुग्ध होकर

भी चतुर, सकाम होकर भी पूर्णकाम, पराधीन होकर भी परम स्वतंत्र, बंधनयुक्त होकर भी परम मुक्त, प्रमेय होकर भी अप्रमेय, सर्वगम्य होकर भी अगम्य, ममतायुक्त होकर भी पूर्णतया निर्मम, अनेक होकर भी सदा एक, सर्वसम्बन्धयुक्त होकर भी सर्वसम्बन्धरहित है।

ये सब परस्पर विरुद्ध धर्म एवं गुण, हे शुकराज ! गोलोक के परमाणु परमाणु में नित्य विराजित हैं। यहाँ के वनों का पत्ता पत्ता, धूलिका कण कण, जल का बिन्दु बिन्दु, आकाश का अणु अणु, सूर्य की रश्मि रश्मि, इन्हीं परस्पर विरुद्ध धर्म एवं गुणों से युक्त है। इसीलिये हे शुकराज ! यह सम्पूर्ण गोलोक धाम ही वचनातीत है। वाणी के द्वारा निर्वचन किया जा सकने वाला विषय नहीं है, चिन्तन में, बुद्धि में तथा मनन में आनेवाला विषय नहीं है। हे शुकराज ! बताओ, तुम्हारे शरीर के रोम रोम में प्रियतम श्यामसुन्दर भरे हैं और श्यामसुन्दर के रोम रोम में अनन्त, अनन्त गोलोक हैं और गोलोक के अणु अणु में श्यामसुन्दर हैं, और प्रत्येक श्यामसुन्दर के परमाणु परमाणु में अनन्त गोलोक, इस प्रकार अनन्त आवृत्तियाँ एक ही साथ तुम्हारे शुक शरीर के रोम में व्यक्त हैं, इसी प्रकार मुझ सारिका के रोम में भी यही सब इसी प्रकार अभिव्यक्त हैं। भला बताओ, कोई बुद्धि इसे पकड़ सकती है ? कोई चिन्तन इसे अपनी सीमा में ले सकता है ? कोई वाणी इसे बोल सकती है ? कोई लेखनी इसे लिख सकती है ?

[सुषमामय श्री मन्त का भाव]

फिर भी हे शुकराज अनन्त अनन्त आश्चर्यमय श्री मन्त, वैभवशाली गोलोकधाम, भगवदीय, ब्राह्मी, ऐश्वर्यों की योनि, अनन्तानन्त लक्ष्मियों का निकेतन है। यह परमधाम, भगवद्धाम अपने वर्णनातीत, अचिन्त्य, ऐश्वर्य से अति सुषमामय है। यह लीलामय है। इसका अनन्त ऐश्वर्य लीला की सुषमा को क्षति करनेवाला नहीं, रसशोभा की अभिवृद्धि ही कराने वाला है, भावपोषक ही है।

हे शुकराज ! कैसा वैभव श्रीराधा माधव, प्रिया प्रियतम, महाभाव रसराज का है कि वे ही शुक हैं, सारिका हैं, मयूर हैं, कपोत हैं, चातक हैं, चकोर हैं, सब पक्षी हैं। वे ही अनन्त आकार, प्रकार लिये पशु, पक्षी, कीट, पतंग, नर, वानर, गोप, गोपी, आकाश, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, भूमि

भवन, जल, स्थल, नदी, नद, पहाड़, कन्दरा, उद्भिज, अण्डज स्वेदज, चर, अचर, अनन्त लीलामय सृष्टि हैं। वे सृष्टिकर्त्ता हैं और सृष्टिप्रवाह के संचालन सूत्र हैं। इस चित्रविचित्र, अनन्त आनन्दमयी, अनन्त सुषमामयी अपनी अभिव्यक्ति में ही स्वयं भी अभिव्यक्त हैं। वे ही अभिव्यक्ता, सूत्रकार होकर भी स्वयं ही अभिव्यक्त स्वयंसूत्र हैं। सबकुछ उनकी ही वचनातीत, अचिन्त्य परस्पर विरुद्ध-गुण-धर्माश्रयी लीला, स्वरूपाभिव्यक्ति होते हुए भी, यह कैसी सुषमामयता है कि वे स्वयं श्रीमन्त भी समग्र रसरूप होकर समग्र भावोंसहित पूर्ण पूर्ण यहाँ अभिव्यक्त हैं। वे द्रष्टा ही अपने समग्ररूप में यहाँ दृश्य हैं। वे निर्विशेष ही अपने समग्र विशेष सहित यहाँ उपस्थित हैं। वे निराकार ही सर्वआकार भी हैं और नित्य आकार से पूर्ण साकार भी। वे निर्गुण ही सर्वगुण हैं और समस्त अप्राकृत गुणों के अवतार होकर प्रत्यक्ष हैं। वे अनन्त ही, आदि, मध्य, अन्त से रहित यहाँ अपने पूर्ण सौन्दर्य, माधुर्य सहित मूर्त्त हैं। वे निर्वैभव ही यहाँ विभु भी हैं और प्रभु भी हैं। यही इन श्रीमन्त की सुषमा है।

['श्री' शब्द का भाव]

हे शुकराज, इसीलिये इस वृन्दावन में महाभाव रसराज राधामाधव के आगे 'श्री' शब्द कहा गया है। 'श्री' शक्तिवाची है। अभिव्यक्ति जहाँ जितनी है सब शक्ति की ही है। शिव तो अभिव्यक्ता है, वह 'श्री' शक्तिरूप में ही अभिव्यक्त होता है। वासुदेव तो आत्मा हैं, निरंजन हैं, सर्वातीत हैं, नेति नेति हैं। अथ एवं इति 'श्री' है। इसीलिये इन महाभाव रसराज में सम्पूर्ण 'श्री' शक्तियाँ समाविष्ट हैं।

इन श्रीराधामाधव का विग्रह सर्वव्यापी विभु है। यह अनन्त नाम है, अनन्त रूप है, और सर्वथा अनाम, अरूप है। वह किसी विशेष देश एवं काल में आबद्ध नहीं है। वरंच सर्वकाल, सर्वदेश का वही प्रकाशक है। श्रीराधामाधव ही वैकुण्ठ में लक्ष्मीनारायण नाम एवं रूप से प्रकाशित हो रहे हैं। वे ही कैलाश, में शिव तथा शिवा हैं। ब्रह्मलोक में वे ही ब्रह्मा एवं ब्रह्माणी हैं, स्वर्ग में इन्द्र एवं इन्द्राणी हैं, देवलोकों में देव देवी हैं, प्रेतलोकों में प्रेत प्रेतनियाँ हैं, भूतल में नर एवं नारी रूप में, स्त्रीलिंग और पुल्लिंग रूप में, अभिव्यक्त हैं। विश्व में जहां जो कुछ दीख रहा है, अनुभव में आ रहा है,

साथ ही जो भी दृष्य एवं अनुभव से सर्वथा अतीत है, वह सबकुछ मात्र राधा माधव ही हैं भाव एवं रस ही है, अन्य कुछ नहीं, कहीं कुछ नहीं, यही इस 'श्री' शब्द का भाव एवं अर्थ है।

श्रुति एवं स्मृति सर्वप्रमाणों से मेरा यह कथन पूर्णतया प्रमाणित है। जो कुछ जहाँ जैसी अभिव्यक्ति है, वह सब मात्र अभिव्यक्ता का ही अवतरण है। वह चाहे भगवद्देह हो, देव देह हो, नर देह हो, चाहे तामसी, राजसी योनियों में प्रेत देह हो, चाहे नारकीय देह भी हो। सर्वलोक, सर्वकाल, सर्वदेश, सर्वदेह, सर्वगति, सर्वमति, सर्वभोग मात्र भोक्ता का ही प्रकाश है। यही सत्य सत्य है, परमसत्य है। वह भोक्ता, अभिव्यक्ता, दृष्टा, आत्मा, परमात्मा, भगवान, माधव, राधा, प्रियतम या प्रिया, भगवती, लक्ष्मी, शिवा सब भाव और रस ही हैं। सम्पूर्ण अस्तित्व ही भाव है, उसका ज्ञान ही आनन्दरूप है, और यही रस है, आस्वादन है। आस्वादक भाव और आस्वादन रस है। अस्तित्व और उसके ज्ञान में, उस ज्ञान की प्रतीति रूप आनन्द में कहीं कोई विभेद, विभाग, विभाजन संभव ही नहीं। ज्ञान ही अस्तित्व है, ज्ञान ही आनन्दरूप है। अस्तित्व ही ज्ञानरूप है और आनंद ही अस्तित्व रूप है। इसीलिये भाव ही रस है। अभिव्यक्ता का अस्तित्व ही स्वतः उसकी अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ता में कोई संकल्प होता ही नहीं। परन्तु वह अभिव्यक्ता है, यही उसकी अभिव्यक्ति स्वतः बन जाती है। यही अभिव्यक्ता राधा माधव की अभिव्यक्ति ही उनकी 'श्री' है।

[राधा माधव चरण बन्दौं बारम्बार' का भाव]

श्री राधा माधव ही विष्णु एवं लक्ष्मी रूप से, नर एवं नारी रूप से, नारायण एवं नारायणी रूप से, अभिव्यक्त हैं। वे ही सनातन, सर्वातीत, परब्रह्म और सर्वकारण कारण ब्रह्मशक्ति रूप से, वे ही विश्वात्मा और विश्वयोनि प्रकृति रूप से, तथा वे ही विश्वातीत भगवान और भगवती रूप से प्रकट हैं। पूर्व, वर्तमान, और आगामी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति उन्हीं की थी, है, एवं होगी। वे अविनाशी, पूर्ण, परात्पर परब्रह्मकी, सर्वथा सच्चिदानन्दमयस्वरूप अमृत की, नित्य, सनातन, वैदिकधर्म की और एकान्तिक सुख, रसस्वरूप की, सबकी प्रतिष्ठा हैं, सबके मात्र अभिव्यक्ता हैं।

श्री राधा माधव में पूर्णऐश्वर्य, पूर्णयश, पूर्णज्ञान, पूर्णवैराग्य, पूर्ण-

आनन्द, पूर्णभोक्तृत्व, पूर्णकर्तृत्व, पूर्णज्योति, पूर्णशक्ति, पूर्णऐश्वर्य, पूर्णविरुद्धशक्तित्व, साथ ही पूर्ण अदोषस्पर्शित्व भी है। उनमें अनन्त मधुरिमा, अनन्त कैशोर, अनन्त चंचलता, अनन्त निर्मलता, अनन्त हास्य, अनन्त सौन्दर्य, अनन्त सौभाग्य, अनन्त मन, अनन्त ह्लाद, अनन्त अंग, अनन्त सौरभ, अनन्त नैपुण्य, अनन्त पाण्डित्य, अनन्त मनोज्ञता, अनन्त परिहास, अनन्त विनय, अनन्त करुणा, अनन्त वैदग्ध्य, अनन्त कौशल, अनन्त लज्जा, अनन्त मर्यादा, अनन्त गौरव, अनन्त धैर्य, अनन्त गंभीरता, अनन्त लीलामयता, अनन्त महाभावमयता, अनन्त प्रेमपात्रता, अनन्त यश, अनन्त स्नेहपात्रता, अनन्त स्नेहपरवशता, अनन्त प्रधानता, अनन्त स्वाधीनता, अनन्त बलशालिता, अनन्त कीर्त्ति, अनन्त मनोहरता, अनन्त सौख्य, अनन्त नूतनता, अनन्त लीला, अनन्त माधुर्य, तेज, पात्रता, दान, शोभा, रस, विलास, लालित्य, सब अनंतानन्त हैं।

[“एकतत्व दो तनु धरें नित रसपारावार” का भाव]

हे शुकराज ! श्रुतियों में लौकिक आनन्द तथा ब्रह्मानन्द की तरतमता के विषय में विचार किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि आनन्द तत्वतः निर्विशेष होने पर भी उसमें तारतम्य है। तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है कि मनुष्य लोक के आनन्द से सौगुना आनन्द उस मनुष्य को प्राप्त है जो कर्म साधना द्वारा गन्धर्वत्व को प्राप्त करता है, उससे सौगुना आनन्द देवगन्धर्व को है, जो जन्मगत गन्धर्व ही है। उससे सौगुना आनन्द पितृलोक के पितृगणों को है। उनसे सौगुना आनन्द शास्त्रोक्त कर्म विशेष के अनुष्ठानों द्वारा जो देवलोक में पहुंचे हैं उन देवताओं को है। और उनसे सौगुना आनन्द जन्मगत देवताओंको है। उनसे सौगुना आनन्द आठवसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, तथा इन्द्रादिक देवताओं को है। उनसे सौगुना आनन्द देवाधिपति इन्द्र को, इन्द्र से सौगुना बृहस्पति को, बृहस्पति से सौगुना प्रजापति ब्रह्माजी को है। परन्तु विचार करके देखा जाय तो यह सब आनन्द एक से एक बढ़कर होने पर भी सर्वथा सर्वथा, तुच्छ है। क्योंकि यह यथार्थ रस का स्पर्श ही नहीं करता। यह सब आनन्द इन्द्रियानुभूतिरूप है। अतः विषय है। दृष्य संबंध से यह महान् से महान होने पर भी अनित्य है। काल, अवस्था तथा परिणाम सापेक्ष्य है। यह सब कुछ अनित्य, असुख, दुखयोनि, भोगों पर ही आश्रित है। इससे आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति, और परमानन्द की प्राप्ति नहीं होती।

इसीलिये यह सब घृणितरस, विरस, अरस, नीरसता की ही तारतम्यता है। वास्तव में जिस आनन्द में अखण्ड, अभेद्य, नित्य, निरवद्य, भगवत्स्वरूप रस का आस्वादन नहीं होता वह रसरूप कदापि नहीं कहा जासकता। विषय रस में तो कुत्सित रस, विपरीतरस, और अभावरूप अरसता, नीरसता ही रहती है। परमरस तो रसराज प्रियतम श्रीकृष्ण ही हैं, माधव ही हैं। वे ही विशुद्ध रस हैं, रससमुद्र हैं, रसशेखर हैं, और श्री राधा ही इस रसोल्लास की पराकाष्ठा रसयोनि, रसोद्गमा, महा, महा पूर्णभाव हैं। ये राधामाधव ही स्वरूपगत, तत्त्वतः, निर्विशेष, परात्पर, परब्रह्म हैं, समग्र ब्रह्म हैं। वैसे रसिकलोग तो निर्विशेष ब्रह्म में भी रसमयता की अनभिव्यक्ति बताते हैं क्योंकि निर्विशेष ब्रह्म निर्विशेष होने के नाते केवल भावमय है। परन्तु भाव ही वह भूमि है जिसमें समग्र रस लहराता है, विशेष लहराता है।

अतः रस को ब्रह्मानन्द तिरस्कारी कहना सर्वथा, सर्वांश में नहीं बनता है। रस ही ब्रह्म है और रसाद्वैत रसब्रह्म ही श्रीकृष्ण हैं। भाव ही रसाश्रय है, और रस ही भावाश्रय है। रस ही भावविषय है, और भाव ही रसविषय है। अतएव रस और भाव ही पूर्ण ब्रह्म हैं, परात्पर ब्रह्म हैं, समग्र ब्रह्म हैं। रसाद्वैत, भावाद्वैत ही परब्रह्म है। अन्यान्य भगवद्रूपों में रस की आंशिक अभिव्यक्ति है, पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं है। सम्पूर्ण रसलीला-विलास-मण्डित तो केवल श्री राधा माधव ही पूर्ण, पूर्णतम, अखिल-रसामृत-मूर्ति हैं। यह रस नित्य-उच्छलित है। इन श्री राधामाधव में भगवत्ता, परमेश्वरत्व, और ज्ञानस्वरूप ब्रह्मत्व भी उपेक्षणीय है। इनमें तो मात्र ममत्व ही प्रधान है। प्रियतम प्रिया के मम हैं। 'मैं' प्रिया है और 'मेरे' प्रियतम हैं। यह मेरापन ही केन्द्रित होकर उत्तरोत्तर विकास पाता रहता है। दास्य, सख्य, वात्सल्य, और माधुर्य, सब मैं एवं मेरे के ही विकास मात्र हैं। मैं दासी तो मेरापन स्वामी। मैं दास तो मेरापन स्वामिनी। मैं सखा तो मेरा सखा श्रीकृष्ण। मैं श्रीकृष्ण तो मेरा सखा श्रीदाम, मधुमंगल, एवं सुदामा। मैं नन्द, मैं यशोदा तो मेरा वात्सल्य श्रीकृष्ण या मैं श्रीकृष्ण तो मेरी माता, पिता, नन्द, यशोदा। मैं प्रिया तो मेरे प्रियतम और मैं प्रियतम तो मेरी प्रिया।

यह सब रस तरतमता ही है, प्रेम तरतमता ही है। यह रसाभिव्यक्ति ही तारतम्यता से दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य में विकसित होती है और अपने

पूर्ण विकास में, ह्लादिनीसार महाभावरूपा श्री राधा में, प्रिया में, महाभाव समुद्र में, प्रेम की सर्वोत्कृष्ट विकसित नितनूतन अवस्था में, नयी नयी रसमयी तरंगों के रूप में तरंगायित होती रहती है। श्री राधा में रति, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव एवं महाभाव रूप में इसी की तरंगें अभिव्यक्त हो रही हैं। सम्भोग, एवं विप्रलम्भ, वियोग एवं संयोग, इन दोनों तटों पर ये तरंगें नित्य-नूतन, उच्च, उच्चतर उछाल लेती, टकराती हैं और परमानन्द महार्णव नित्य, अनन्त, अचिन्त्य, अनिर्वचनीय रूप से लहराता रहता है। यह प्रेमसमुद्र अपने शान्त तल में, परब्रह्मरूप में, सदा ही अतुलनीय, गम्भीर, शान्त, घन और अचल है। परन्तु उसमें उन्मुक्त, अपरिमित लहरें उठना ही उसका निज रसास्वादन है। यह आस्वादन ही उस सत्यात्मक रस की चिन्मयता है। और यही उसका आनन्द रूप है, रसरूप है। रस समुद्र का निर्विशेष, शान्त, अचल, घन, निर्गुण, आनन्द ही भाव है, महाभाव है, जो रसरूप में ही लहराता है, उछलता है। अतः महाभाव का, परात्पर का, निर्विशेषतत्व का दर्शन होना संभव ही नहीं। समुद्र होकर ही समुद्र के अतल में पैठा जासकता है। फिर समुद्र होने पर समुद्र का दर्शन कौन करेगा ? द्रष्टा पृथक् है ही नहीं। दर्शन लहरों का ही संभव है, रसरूप का ही संभव है। अतः अनुभूति, प्रतीति है, रसमात्र की और सत्ता है भाव की। इसी से यह सुधामय प्रेम-समुद्र सदा ही अचल और सदा ही उछलता रहता है। सदा ही अक्षुब्ध एवं नित्य लहराता रहता है, शान्त एवं नित्य नाचता रहता है। यह परम मधुर, नित्य नव नव रूप से नृत्यरत, अनन्त रससमुद्र, हे शुकराज ! बताओ, है कहाँ ? इसका कौन निवास है ? हम सबका अस्तित्व, स्थायी निवास है कहाँ ? तो उत्तर यही मिलता है, कि श्री राधा-माधव का पवित्रतम भावमय हृदय ही वह निवास है। प्रिया प्रियतम का हृदय ही शेष है एवं वही शेषी है। अब बताओ, प्रिया के हृदय में तो प्रियतम के मात्र युगल चरण ही विराजित रहते हैं और प्रियतम के हृदय में प्रिया के चरण विराजित हैं, तब प्रिया प्रियतम श्री राधामाधव के चरण ही शेष हैं, शेषी हैं, यही तो सिद्ध हुआ। इन परमतत्व प्रिया प्रियतम राधामाधव के चार-चरणों की वंदना करें, ये ही तो मात्र वंदनीय हैं, इतना कहकर सारिका शान्त हो गई।

सारिका के शान्त होते ही सर्वत्र एक अनिर्वचनीय शान्ति छा गई। सब पक्षियों के, सब जीवों के, अन्तःकरण जैसे अहंताशून्य होकर कहीं विलय हो गये और द्रष्टा तो अन्तःकरण के होने पर ही था। सबको यही अनुभव

होरहा था कि प्रिया का हृदयाकाश ही, चिदाकाश ही, रसाकाश ही, सबका निवास है, और प्रिया के इस हृदयाकाश में मात्र प्रेम ही प्रेम, रस ही रस है। वह रस ही प्रेमभाव के उज्ज्वलतम रूप में सर्वोत्कृष्ट विकास को पाकर प्रियतम बनकर सरसरहा है। प्रियतम, प्रियतम, प्रियतम, मात्र प्रेम ही प्रेम, प्रेम ही प्रेम। प्रियतम ही गोलोक, प्रियतम ही सब कुछ। प्रियतम के हृदय में, चिदाकाश में, प्रेमाकाश में, राधा ही राधा, राधा, राधा, राधा, मात्र राधा ही सब कुछ। रस ही रस, रस ही सबकुछ, भाव ही भाव, भाव ही सबकुछ। श्री राधा ही माधव, माधव ही राधा। यह प्रतीति ही, मात्र इनकी वंदना। श्री राधा और उनके चरणों में पृथक्ता कहाँ है. श्री माधव से उनके चरण अतिरिक्त कहाँ हैं? सब चरण, सब हाथ, सब नेत्र, सब मुख, मात्र आत्मा ही आत्मा, स्वरूप ही स्वरूप। भाव ही राधा, भाव ही माधव, भाव ही वंदना। एक मात्र भाव ही भाव और रस। एक तत्व भाव ही दो तन, राधा और माधव। तन एवं तन-धारक में द्वैत कहाँ? तन ही राधा, तन ही माधव, भावमय तन, रसमय तन। भाव और रस दो कहाँ? एक भाव ही रसरूप भी, भावरूप भी, एवं मात्र भाव का ही पारावार। अनन्त, असीम, मात्र सागर। रस का ही पारावार, रस का ही अनन्त, असीम, मात्र सागर। प्रियतम, प्रियतम, माधव, माधव, राधा, राधा, प्रिया, प्रिया।

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

दूसरा अध्याय

किसी प्राकृतिक बुद्धि की तो कल्पना में भी यह नहीं आ सकता कि भगवद्रस रूप वह गोलोक कैसा है ? प्राकृतिक बुद्धि ने शुद्ध से शुद्ध रस की भी जो परिकल्पना की है, वह रस भी बुद्धि की शुद्ध से शुद्ध अवस्था का विषय ही तो होगा। परन्तु जो रस परम विशुद्ध बुद्धि का भी आश्रय है, विषय नहीं, किंवा जहाँ बुद्धि भी रसरूप ही है, बुद्धिका, विचार का, पृथक् अस्तित्व ही नहीं, उस राज्य में प्रवेश अनन्य भक्ति, अनन्य भाव से ही हो सकता है।

"भक्त्याहमेकया ग्राह्यः··· ····· यह भगवद्रस मात्र भक्तिग्राह्य है, भावग्राह्य है। आओ, इस भगवद्रस में, भावरूप, भक्तिरूप अनुभूति में डुबकी लगायें········।

अहो, वह कैसा विलक्षण देश है जिसका अणु-अणु, परमाणु परमाणु, जिसकी धूलिका कण-कण, भक्तिरूप, भावरूप ही है। भावभक्ति ही है। भावभक्ति ही जिसका कण-कण है। महा महा भावभक्ति ही जिस देश में काल है। महा महा भावभक्ति ही जिसके अन्तर्गत सब जीव हैं, सब पदार्थ हैं, सब परिस्थिति हैं। महा महा भावभक्ति ही जिसका सबकुछ है, उस महा भक्ति-भाव-देश गोलोक को अनन्त प्रणाम।

परम भावमय निकुञ्ज में सुख शय्या में प्रेमानन्दरूप प्रिया प्रियतम सुख शयित हैं। निशा का अवसान समीप है। लीलाप्रवाह ही, भावभक्ति का प्रवाह ही तो यहाँ काल है। भाव ही निशा है तथा भाव ही प्रभात है। शय्या के समीप ही एक स्वर्णपीठ पर स्वर्णपिंजर में स्थित सारिका देख रही है:-निशा देवी समुपस्थित हैं। तारक जड़ित ओढ़नी ओढ़े, कृष्ण वस्त्रों में निशा-देवी ओस कणों के अश्रुबिन्दुओं की प्रेमवर्षा करती मानो प्रिया प्रियतम के चरणों में श्रद्धाञ्जलि अर्पण कर रही हैं। 'प्रियतम, प्राणनाथ, कालरूप तुम्हारी ही लीला शक्ति मात्र तो हूँ, मैं। तुम्हारा संकल्प ही मेरा अस्तित्व है, नाथ। आगे-पीछे, भीतर-बाहर, दायें-बायें, मेरे रोम रोम में, सर्वत्र, तुम ही तो भरे हो. प्रभो। मिथ्या ही तुमको 'मैं' कहरही हूँ, 'मैं' मान रही हूँ। है सब मात्र तुम्हारे संकल्प से, संकेत से। मेरे अज्ञान से, मोह से, सर्वथा, सर्वथा नहीं।

तो नाथ, आपके ही संकेत से अब तक मैं कृष्ण वस्त्र, तारकों की ओढ़नी ओढ़े रही। अब ये वस्त्र आपके चरणों में विसर्जित कर आपके नवीन लीला प्रवाह के संकेतानुसार नवीन शृंगार धारण कर रही हूँ। नाथ ! आप ही यंत्री

हैं, मैं तो मात्र आपके हाथ की, आपके संकल्प की पुतली हूं। जिस जिस रूप में, जिस जिस नाम से, आप मुझे देखना चाहेंगे, मैं सदा, सदा आपके चरणों की सेवा करती रहूंगी"

सारिका ने देखा, धीरे धीरे निशा की मनोहरता नवीन शृंगार धारण करके और मनोहर हो रही है। उसने अपने प्राची अंगों को अति सुमधुर लालिमा से सजाना प्रारम्भ कर दिया है। तारक-बिन्दु ओसकणों के रूप में इतस्ततः वनप्रांतर की सम्पूर्ण दूर्वा पर, विकसित पुष्पदलों पर, चुपचाप बिखर रहे हैं, और नभ परमसुखद प्रभाती रंग धारण कर रहा है। अत्यंत प्रेम से, भाव से, भक्तिप्रवाह से सारिका के नेत्र मुँदने लगे, और वह सर्वरूप होकर देखने लगी।

अहा, प्रियतम ही प्रियतम। ओस की बिन्दु बिन्दु में प्रियतम ही प्रियतम। वन के पत्ते पत्ते में, वायु के स्पंदन में, प्रियतम, प्रियतम। कमलों के हास हास में, कलियों के विकास विकास में, प्रियतम ही प्रियतम।

अहा, पक्षीगण कैसे नवनवायमान माधुर्य से कलरव कररहे हैं। जैसे वीणा के तार स्वरलहरी में झंकार कररहे हों। कलियों के अर्द्ध-विकसित नयनों को चूमने रंग-बिरंगी तितलियाँ फरफरा रही हैं। सर्वत्र अभिनव सौन्दर्य, अभिनव माधुर्य उमड़ रहा है। प्रियतम ही प्रियतम हैं। निज संकल्प से अनन्तानन्त सौन्दर्य बन लहक रहे हैं। अनन्तानन्त माधुर्य, सौरभ बने महक रहे हैं। क्या यह सौन्दर्य, यह माधुर्य किसी ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति है? है तो ऐश्वर्य ही। है तो ईश्वरता ही। परन्तु क्या यह ईश्वरता की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है? नहीं। ऐश्वर्य समर्पणात्मक है। यदि यह ऐश्वर्य स्पर्द्धात्मक होता तब तो विनाशी होता। स्पर्द्धा किससे हो? प्रियतम अद्वितीय हैं। प्रियतम में ऐश्वर्य की संभावना ही कहां? वहाँ तो प्रेमातिरिक्त अन्य कोई सत्ता ही नहीं। फिर प्रेम में ऐश्वर्य विकार कहाँ? यह ईश्वरता प्रेम का परिणाम नहीं हैं। यह परिणामी विकार नहीं है। यह ईश्वरता है, प्रेम में प्रियासुखार्थ। दिव्य, दिव्यातिदिव्य प्रेमसम्पन्न ऐश्वर्य ही प्रस्फुटित हो रहा है। क्या प्रियतम को प्रियासुखार्थ अपने संकल्प से, निज स्वरूप से अतिरिक्त, किसी सौदर्न्य, किसी माधुर्य का सृजन करना पड़ा है? नहीं। प्रियतम में तो प्रेम के अतिरिक्त अन्य संकल्प ही नहीं है। फिर यह सौन्दर्य, यह माधुर्य, यह सौरभ-प्रवाह कहाँ से आया है? कहीं

से नहीं आया है। प्रेम ही प्रेम है। कुछ भी अतिरिक्त नहीं। इसीलिए इस सौन्दर्य का, माधुर्य का, सम्पूर्ण ऐश्वर्यमयी अभिव्यक्ति का, परमाणु, परमाणु स्पष्ट, स्पष्ट कहरहा है, 'मैं प्रेम हूँ, मात्र प्रेम हूँ। मेरा उद्गम प्रियतम हैं, और लक्ष्य प्रियासुख, प्रिया हैं, प्रिया-प्रेम, प्रिया है।" प्रियतम का प्रेम भाव ही निर्विशेष, निराकार, निर्गुण प्रेम भाव ही, समर्पण के उच्चातिउच्च शिखर पर पहुँचा भाव ही, रसरूप हो लहक रहा है। यही सौन्दर्य, अनन्तानन्त सौन्दर्य है, अनन्तानन्त माधुर्य है, अनन्तानन्त सौरभ है और कण कण में महक रहा है। सारिका देख रही है, "यह समग्र सौन्दर्य, प्राची दिशिमें रवि का उदय, सर्वाकाश में प्रकाश से उद्भासित अणु अणु, परमाणु परमाणु, और उनके अन्तराल से प्रसरित अनन्त सौन्दर्यमयी दिव्यता. समग्र सौन्दर्य मानो मूर्तिमान होकर प्रत्येक दृष्य के अणु अणु में नर्त्तन कररहा है। अणु अणु उस सौन्दर्य से कुछ भी पृथक् नहीं। स्वयं, स्वयं मूर्तिमान सौन्दर्य है। यह सब सौन्दर्य विषयरूप है क्या ? यह किसी इन्द्रिय विशेष की जाग्रति का, उसकी किसी अनुभूत्यात्मक चरितार्थता का प्रकाशक है क्या ? नहीं, सर्वथा नहीं। यह दृष्टा के द्वारा दृष्य का दर्शन नहीं। यह दृष्टा की अनुभूति भी नहीं है। है दृष्टा का स्वयं निज प्रेमस्वरूप मात्र। प्रेमस्वरूप मात्र का प्रेमविलास। प्रेमस्वरूप का ही प्रेमोद्दीपन, प्रेमोच्छलन। अन्य कुछ नहीं, कुछ नहीं। प्रियतम का प्रियतमत्व ही प्रिया के प्रेमार्थ, तत्सुखार्थ उच्छलित हो लहर रहा है।

मात्र अनुभूत्यात्मक, अचिन्त्य, अनिर्वचनीय। सारिका स्पष्ट देखरही है कि परात्पर परमतत्व प्रेम ही प्रेम है। प्रेम ही सत्ता है, इस प्रेम सत्ता के अस्तित्व का बोध मात्र ज्ञान है और सत्ता की प्रियता ही आनन्द है। सच्चिदानन्द की सर्वात्मक, एकात्मक अनुभूति ही तो ब्रह्म है। यह अस्तित्वमूलक प्रियता ही आत्मा और परमात्मा है। और यह अस्तित्वमूलक प्रियता अपने प्रियत्व के आस्वादनार्थ ही अनन्त आकार, अनन्त गुण और अनन्त विशेष से युक्त हो भगवत्ता बन अनन्त ऐश्वर्य सम्पन्न हो लहरा रही है। एक ही सत्य तो है। यही प्रेम ब्रह्म है, परमात्मा है, और यही भगवान होकर ऐश्वर्य रूप हो लहरा रहा है। एक ही सत्य प्रेम तीन रूपों में नित्य प्रकाशित है।

इन तीनों का तथा इनसे संयुक्त समस्त तत्वों का जो एक समग्र स्वरूप है, वही परात्पर परमतत्व स्वयं प्रेमस्वरूप प्रियतम हैं, वे ही प्रिया हैं और वे ही प्रेम हैं। प्रियतम ही रसब्रह्म हैं, प्रिया ही भावब्रह्म हैं और प्रेम ही

ब्रह्म है, परमतत्व है। निर्विशेष प्रेम और सविशेष प्रियतम कभी, कहीं भी किसी प्रकार भी पृथक् नहीं हैं। निर्विशेष भाव और सविशेष राधा, प्रिया कभी, कहीं किसी भी प्रकार पृथक् नहीं हैं। जैसे धूप ही सौरभ की प्रतिष्ठा है। वैसे ही प्रिया राधा ही निर्विशेष भाव की और निर्विशेष रस की भी प्रतिष्ठा हैं। भाव ही आनन्द है, रस है। इसीलिये सविशेष रसब्रह्म में, भावब्रह्म में ही निर्विशेष, आनन्दब्रह्म, प्रेमब्रह्म प्रतिष्ठित हैं। यही **'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहम्'** का सत्य सिद्धान्त है।

तो प्रियतम ही प्रियतम सर्वत्र सरस रहे हैं, लहरा रहे हैं। कितना सुन्दर, सुमधुर गोलोक का प्रभात है। निर्विशेष एवं सविशेष, निराकार एवं साकार, निर्गुण और सगुण, निर्विकार एवं सविकार, ये सभी शब्द प्राकृतिक बुद्धि की सत्ता तक ही बनते हैं। जहाँ प्रेमात्मा ही प्रेमात्मा है, जहाँ प्रेम ही प्रेम में रति करनेवाला है, प्रेम ही प्रेम में तुष्ट है और प्रेम ही प्रेम में तृप्त है, उस प्रेमराज्य में इस प्रकार की न तो शब्दावली है, न भावावली ही। यह कर्मराज्य ही नहीं है। यह तो प्रेमराज्य है। यह प्रकृतिजन्य है ही नहीं। भावजन्य है, और रसरूप है। इसीलिये इस गोलोक के प्रभात के रूप में प्रेम ही अभिव्यक्त है, प्रियतम ही अभिव्यक्त हैं।

सारिका ने देखा, कक्ष के द्वार को थोड़ा सा सरकाकर साक्षात्प्रेमस्वरूपा श्रीवृन्दा प्रिया प्रियतम की शयित छवि का दर्शन करती प्रेमसमाधिस्थ हैं। उनके हाथ में एक पिंजर है। जिसमें अवस्थित शुक को वे संकेत करती हैं, और संकेत करते ही शुक द्वारसंधि से अन्दर आजाता है। शुक निश्शब्द उड़ता हुआ प्रिया प्रियतम की परिक्रमा करता है। और आकर सारिका के पास ही बैठ जाता है। वीणा विनिन्दक स्वर में सारिका शुक का स्वागत करती हुई कहती है–'अहो, प्रियतमस्वरूप शुक! अहो, प्रेमस्वरूप शुक! तुम्हारा अभिनन्दन, तुम्हारा स्वागत है। प्रेमानन्दवपु, प्रियाप्रियतमकी श्यामपीत-द्युति ही मिलित होकर तुम्हारा हरित्कान्ति वपु बन गयी है। तुम्हारे रोम रोम में प्रियतम ही प्रियतम अंकित हैं।

हे प्रेम सम्पद् शुकराज! स्वागत!! महाभाग! परम स्वागत!!। हे शुकराज! अपने नयनों को तृप्त करो, हमारे प्राणसार सर्वस्व प्रियतम माधव एवं हमारी प्राणसखी राधा कैसी सुखशयित हैं। इनके अंग अंग से, आनन्द

एवं प्रेम की भावज्योति सर्वत्र प्रसरित हो रही है। उस आनन्दमयी, महाआनन्दमयी भाव आभा से ही यह कक्ष उद्भासित है। और मेरा अंग अंग अनन्त प्रफुल्लता में स्नात है। परन्तु अभी अभी मेरे कानों में ताम्रचूड़ की तीक्ष्ण शब्दावली स्पन्दित हुई है। अभी अभी निशादेवी भी यहाँ उपस्थित होकर कुछ मूक निवेदन कर गई हैं। मैं देख रही हूँ, पश्चिम दिशा की गवाक्षिका से बारंबार चन्द्र झाँक झाँक कर कुछ निवेदन को व्याकुल हो रहा है।

हे शुकराज! मेरी रानी निशा के तृतीय प्रहर में ही तो रासोपरान्त शयन कर सकी हैं। उनके अंग अंग श्रम से शिथिल हैं। इनके विश्राम में यह इतना शीघ्र व्यवघात क्यों उपस्थित हो रहा है? और वृन्दादेवी का आदेश पाये बिना ही ये पक्षी कलरव क्यों करने लगे हैं? झींगुरो की अत्यंत रसमयी झंकार जो प्रिया प्रियतम को लोरी सा देकर सुला रही थी, बन्द क्यों हो गई है? हे शुक! देखो पश्चिम गवाक्षिका में चन्द्र पुनः हाथ जोड़कर खड़ा हो गया है, और अश्रुपूरित नयनों से प्रिया प्रियतम को सतृष्ण देख रहा है?"

शुकराज- (अत्यन्त प्रफुल्ल मुद्रा में) अहा, रास ही रास। रस प्रवाह ही रस प्रवाह। आनन्द ही आनन्द, मंगल ही मंगल। अहा, कैसा आनन्दोच्छलन रास के समय था और उससे भी अनन्त गुना अधिक आनन्दोच्छलन इस ब्रह्मवेला में भी हो रहा है। रासनृत्य की महा महा सौन्दर्य भंगिमाओं की द्रष्टा सारिके, प्रिया प्रियतम की यह एकान्त शयित झाँकी क्या उस झाँकी से कम सुन्दर है? कदापि नहीं, कदापि नहीं। अपितु इस झाँकी से ऐसा लगता है, मानो पूर्वतः कभी भी यह सुन्दर भंगिमा न प्रकट हुई थी, न हुई है और न कभी भविष्य में भी हो सकेगी? परन्तु वर्त्तमान का यह सुख पुनः पलक झपकते ही नवीन, नवीन, सर्वथा अप्रतिम सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्ययुक्त भंगिमा का सृजन कर देता है और वर्त्तमान का सुख, आनन्द, भूत के आनन्द से अनन्त गुना अभिवर्द्धित हो जाता है। हे सारिके! परम आश्चर्य, महा आश्चर्य! यह वर्त्तमान की पूर्णता की प्रतीति भविष्य के एक ही क्षण में, आगत वर्त्तमान के सम्मुख फीकी क्यों हो जाती है? और नवीन पूर्णता उससे भी अधिक पूर्ण क्यों आस्वादित होती है? हे सारिके! मैं कुछ क्षणों पूर्व पूर्ण समाधिस्थ था। रास के सौन्दर्य ने, लालित्य ने मुझे आनन्द समाधि में सर्वथा सराबोर कर दिया था, और मेरा मन चित्त उस आनन्द में सर्वथा डूब गया था। मन चित्त के

न रहने पर मेरे अंग सुधिहीन जड़वत हो गये थे। मात्र प्राणों का स्पन्दन ही शरीर में शेष था। मुझे ज्ञान ही नहीं है, कब भगवती वृन्दा मुझे रासस्थली से नन्दभवन में ले आईं। और कैसे मेरा शरीर उनके द्वारा स्वर्णपिंजर में सुख शयित रहा। मेरी आँखों में तो रास ही रास, आनन्द-नृत्य, प्रेमनर्त्तन ही प्रेमनर्त्तन व्याप्त था। सहसा उसी आनन्द प्रवाह में प्रवाहित होते हुए ही देखता हूं कि वह सब प्रिया प्रियतम की रूप छवि एक अन्य शरीर के रोम रोम में भर गई है, और वही छबि, शरीर रूप हुई अत्यंत प्यार से पुकार रही है। "शुक! प्रिय शुक!! उठो, ब्रह्मवेला होगई। महात्मा नन्द यमुना को स्नानार्थ जाने को तत्पर हैं, उठो, उठो।"

इस वाणी ने न जाने कैसे मेरे अंग अंग में चेतना उत्पन्न करदी एवं मैं जाग्रत हो गया। सहसा देखता हूँ, मैं तो नन्दभवन में ही हूँ। और श्रीकृष्ण के कक्ष के बाहर स्वर्ण पिंजर में अवस्थित हूँ। परन्तु हे सारिके, इस जागृति से भी मेरा रस प्रवाह शिथिल सर्वथा नहीं हुआ, वरं और उद्दीपित होकर नवरूप बनगया। हे प्रेमानन्द सरिते सारिके, सम्पूर्ण नन्दभवन का कण कण कोई ईंट पत्थर तो है नहीं, न धातु एवं वस्तुरूप ही है। वह तो भावसिन्धु है। प्रेम सिन्धु है। रसरूप है। प्रेमरूप है। आनन्दरूप है। अकथनीय है। अप्रतिम है। प्रियतमरूप ही नहीं, प्रिया रूप है। प्रिया हृदय ही है। अस्तु, अहा, कैसी अकथनीय ब्रह्मबेला जनित नन्दभवन की शोभा है। हे सारिके! जिस महा महा आनन्द का अनुभव तुम यहाँ प्रिया प्रियतम की इस शान्त शयित छवि को देखकर कर रही हो, वह तो नहीं कह सकता कि वही क्यों कि प्रतिपल छवि में ऐसी नवीनता भरी है, माधुर्य का, सौन्दर्य का, रस का ऐसा उच्छलित प्रवाह है, कि भूत में अनुभूत कोई रस वर्त्तमान में इदमित्थं है, कहा नहीं जा सकता, परन्तु यह सत्य है कि नन्दभवन के भी अणु अणु में वही प्रिया भावमय हृदय ही है जो प्रियतम को परमातिपरम सुखालिंगन में यहाँ बाँधे है।

हे सारिके! प्रिया हृदय रूप नन्दभवन अब उत्कंठित होकर नन्दनन्दन, नन्दनन्दन, करे उसके पूर्व ही प्रियतम का वहाँ होना परमावश्यक है? भगवान नन्दराय ज्योंही मेरे स्वर्णपिंजर के पास से गुजरे मैंने उनका अभिवादन किया। अहा! किस प्रेम भरी उत्कंठा से, दुलार भरी दृष्टि से उन्होंने मेरी ओर देखा। उससे मैंने प्रतिलक्षित किया, रात्रिपर्यन्त भाव में अपने किशोर चन्द्र

को अंक में सटाये अपार समाधि सुख का अनुभव करते हुए भी नन्दराय के प्राण अपने तनय का मुख देखने आकुल हैं, परम आकुल हैं।

हे सारिके ! महात्मा नन्द तो भगवती पौर्णमासी की वाणी का विश्वास करके संवरित होकर यमुना स्नानार्थ प्रस्थान कर गये परन्तु भगवती यशोदा जाग्रत होते ही अपने नीलमणि का मुख देखने कक्ष में आवें, इसी संभावना से महात्मा नन्द के जाते ही वृन्दा देवी ने मुझे यहाँ आने का निर्देश कर दिया एवं मलय मारुत ने सर्वत्र पक्षीवृन्द को संकेत दे दिया कि ब्रह्म वेला का कलरव गान प्रारंभ हो जाय। हे देवी, आप का प्रेम क्षोभ उचित ही है। परन्तु बाहर-चकवा चकवी का विलाप और प्राची दिशि में अरुणोदय अब लीला भूमिका के परिवर्त्तन का पूर्ण संकेत दे रहे हैं। हे देवी, आप भी मंगलगान द्वारा प्रियतम को जाग्रत करें।

हे सारिके ! महात्मा नन्दराय की मेघ गंभीर ध्वनि का गुंजन अबतक मेरे कानों में हो रहा है "कृष्ण, गोविन्द, गोविन्द, गोपाल।" हे सारिके, कितना वात्सल्य उनके कंठ से निकले कृष्ण, गोविन्द, गोपाल नाम में है। वात्सल्य रस घन मूर्ति ही तो हैं वे महात्मा। अतः वे स्नान करके आवें, उसके पूर्व ही प्रियतम, बाबा, बाबा कहकर उनके कंठ से लग जावें, यह परमावश्यक है।"

सहसा सारिका बोली– "हे शुक, शान्त होओ। तुम्हारे पाण्डित्य-प्रकाश ने प्रिया प्रियतम को लो जाग्रत कर ही दिया। देखो, अर्धजाग्रत प्रियतम के मुख पर कैसी नवीन भावरेखाएँ अभिव्यक्त हो रही हैं। अहा ! प्रियतम मुख पर, प्रियतम के अंग अंग पर, प्रियतम के रोम रोम पर नाचती प्रिया प्रेम की इन भाव लहरियों का दर्शन तो करो। इनमें डूब जाओ। विलीन हो जाओ। कैसी रसमयी भावलहरियाँ हैं। एक लहर पर एक लहर उमड़ रही हैं। कैसी सुमधुर हैं, कितनी सुन्दर हैं, कैसी सुकोमल है, कितनी पवित्र हैं। उसी प्रकार प्रिया के आनन पर, उनके अंग अंग पर, उनके रोम रोम पर जो प्रियतम प्रेम स्पन्दित हो रहा है उसका दर्शन तो करो। क्या तुम्हारे प्राण इस स्पन्दन की भाषा, इस महाभाव की वाणी सुनरहे हैं ? अगर नहीं सुन रहे हैं, तो तुम महाहतभाग्य हो। और अगर सुन रहे हैं तो फिर कुछ भी बोलने की, कहने की प्रवृत्ति ही कहाँ होती है ? निर्निमेष दृष्टि से, अपलक नेत्रों से, स्थिर मन से समग्र प्राणों की एकाग्रता से इसी का आस्वादन करो। यही रस

सर्वप्रिय है, यही सर्वसार है ।"

शुकराज-' सत्य, सत्य, परम सत्य सारिके, परम सत्य यही है । परन्तु हे सारिके ! यह सत्य न स्थान सापेक्ष है, न काल सापेक्ष है । प्रिया प्रियतम की जो जो रसमयी भावानुभूतियाँ निशापर्यंत यहाँ तुम्हारे हृदय में स्थित होकर हुई हैं, वे सब अनुभूतियाँ व्रजमण्डल के प्रत्येक पत्र पत्र को, तृणांकुर के लघु से लघु भाग को भी अपने अपने स्थान में स्थित रहते हुए भी हुई हैं, एवं प्रतिक्षण हो रही हैं । यह अवश्य हो सकता है कि इन भावलहरियों का रूपान्तर उनके हृद्गत भावानुसार अनेकानेक रस वैशिष्ट्य में व्यक्त हुआ हो । परन्तु येही अनन्त अपरिसीम सुषमामय होकर सर्वत्र, सर्व ओर व्रजमंडल में अभिव्यक्त हो रही हैं । हे सारिके ! मैं स्पष्ट देखकर आया हूँ जिस प्रकार प्रिया, प्रियतम को अपने रोम रोम में आलिंगित किये भावसिन्धु में डूबी हैं, इसी प्रकार इसी महाभावसिन्धु में भगवती यशोदा भी अपने प्राणसार-सर्वस्व नीलमणि को अङ्क में लिये शयित हैं । भाव एक ही है महाभाव सिन्धु यही है, परन्तु यहाँ यह भावसिन्धु प्रणय रसरूप में लहरा रहा है एवं वहाँ यही महाभावसिन्धु वात्सल्य रसरूप में उच्छलित है । हे सारिके ! जो रसानुभव तुम्हें यहाँ हो रहा है, क्या वह नन्दभवन की खरिक में बँधी वात्सल्य रसरूप दुग्ध से पृथुलस्तनी गाभियों को नहीं है ? क्या गोवत्सों को यह भावलहरी नहीं डुबाये है ? मैं तो स्पष्ट देखकर आया हूँ एक एक गौ का मुख मंडल उसी रसावेश से ज्योतित है जिस रसावेश का अभिव्यक्तीकरण तुम्हारा रोम रोम कर रहा है । माता यशोदा भी इसी प्रकार भाव प्रवाह में नेत्र बंद किये स्वप्न भाषा के अस्फुट शब्द बोल जाती हैं, जिन्हें सुनकर किस प्राणी का हृदय प्रवाहित न हो उठे । इसी प्रकार गाभियों, गोवत्सों, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, तृण, लता गुल्म, सर्वत्र, सबमें यही महाभावसिन्धु ही लहरा रहा है । एक ही रस सागर है, उछल रहा है, उमड़ रहा है, अभिव्यक्त हो रहा है, अनेकानेक, अनन्त रसोर्मियों में ।

हे सारिके ! तनिक अन्तर्दृष्टि करके बाह्य व्रज के प्रत्येक जन जन, प्रत्येक पशु पक्षी, प्रत्येक कीट पतंग, चर अचर से तादात्म्य तो करो, और उनके अनुभावों में प्रवाहित तो होओ— ।"

शुक का इतना कहना था कि परम विलक्षण दृश्य सारिका के सम्मुख आ गया । न कुञ्ज, न निकुञ्ज, न वन, न वृन्दावन, न भवन, न भूमि, न नभ,

न वायु, न आकाश, न पाताल, न सर, न सरिता, मात्र प्रेम ही प्रेम सर्वत्र प्रसरित है, प्रेम ही प्रिया एवं प्रियतम है। प्रेम ही भावरूप में प्रिया है एवं रसरूप में प्रियतम। बस, सर्वत्र, प्रिया प्रियतम ही प्रिया प्रियतम। एक क्षण के लिये, क्षण के अत्यंत लघु से भी लघु काल के लिये, स्वप्नवत्, सारिका को अपनी. एवं ब्रज वृन्दावन की स्मृति होती, वृत्ति एक झलक मात्र लाती एवं तत्पश्चात् मात्र प्रेमप्रवाह. प्रेमसिंधु, भावसिन्धु, रससिन्धु में सब खो जाता। महाभावमयी प्रिया एवं महारसराज प्रियतम। प्रियतम प्रिया को संबोधित करके कह रहे हैं:—

राधिके! तुम सम जीवन-मूल।
अनुपम अमर प्रान-संजीवनि, नहिं कहुँ कोउ समतूल ।।
जस सरीर में निज-निज थानहिं सबही सोभित अंग।
किंतु प्रान बिनु सबहिँ ब्यर्थ, नहिँ रहत कतहुँ कोउ रंग ।।
तस तुम प्रिये! सबनि के सुख की एक मात्र आधार।
तुम्हरे बिना नहीं जीवन रस, जासौं सब कौ प्यार ।।
तुम्हरे प्राननि सौं अनुप्रानित, तुम्हरे मन मनवान।
तुम्हरौ प्रेम-सिंधु-सीकर लै करौं सबहिँ रसदान ।।
तुम्हरे रस-भंडार पुन्य तें पावत भिच्छुक चून।
तुम सम केवल तुमहि एक हौ, तनिक न मानौ ऊन ।।
सोऊ अति मरजादा, अति संभ्रम-भय-दैन्य-सँकोच।
नहिँ कोऊ कतहुँ कबहुँ तुम-सी रसस्वामिनि निस्संकोच ।।
तुम्हरौ स्वत्व अनंत, नित्य, सब भाँति पूर्न अधिकार।
कायब्यूह निज रस-बितरन करवावति परम उदार ।।
तुम्हरी मधुर रहस्यमई मोहनि माया सौं नित्य।
दच्छिन बाम रसास्वादन हित बनतौ रहूँ निमित्त ।।

यह कथन न तो प्राकृतिक वाणी द्वारा शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ था एवं न ही प्राकृतिक कर्णेन्द्रियों द्वारा सुना गया था। रसरूप प्रियतम,

श्रीकृष्ण, माधव का न तो प्राकृतिक इन्द्रियों द्वारा ग्रहण ही संभव है और न ही प्राकृतिक विषय रूप में किसी भी प्रकार उनका प्रकाश ही हो सकता है। भावरूप प्रिया भी कोई वाणी के माध्यम से कथ्य नहीं हैं। प्राकृत वाणी द्वारा प्रिया-प्रियतम राधा माधव को न तो कहा ही जा सकता है, एवं न ही प्राकृत श्रवणेन्द्रियों द्वारा उन्हें सुना ही जा सकता है। यहाँ इस रसराज्य में वाणी भी महाभावमयी, महाभावरूपा ही है। परम साधनापूत किसी महाकृपापात्र भाग्यवान के प्राणों में ही यह प्रकृति के धरातल में भले स्पन्दित हो। फिर इस स्पन्दन को बुद्धि स्वस्थ रहकर प्रकाश कर जाय, यह और भी विलक्षण कृपा का द्योतक है। जिस किसी के प्राणों में यह रस स्पन्दित होता है, उसकी बुद्धि तो इतनी रस-प्रमत्त हो जाती है, कि बाह्य जगत में वह प्राय: विक्षिप्त ही हो जाता है, तब इस रस का मन इन्द्रियों में प्रकाश संभव हो, यह कल्पना करना ही मात्र प्रवंचना है।

श्रीमती सारिका देवी की परम पावन बुद्धि किसी विलक्षण कृपा से प्रेरित होकर ही इसे प्रकाश कर सकी, उनकी वाणी समाधिभाषा में इस रस का उच्चारण कर गई, यह तो और भी विलक्षण कृपा का अवतरण है। शुक निष्पन्द प्राणों से इस रस का अवगाहन कर रहा था:—

"हे प्यारी राधिके तुम मेरे जीवन की मूल हो। मेरे प्राणों की अनुपम, अमर संजीवनी हो। तुम्हारे समान दूसरी कोई, कहीं, नहीं है। जैसे शरीर में अपनी अपनी जगह सभी अङ्ग शोभा देते हैं. परन्तु प्राणों के बिना सभी व्यर्थ हैं, किसी में कहीं, कोई शोभा नहीं रह जाती, उसी प्रकार हे प्यारी! सबके सुख की एकमात्र आधार तुम ही हो। तुम्हारे बिना जीवन में कोई रस नहीं रह जाता, जिस (जीवन) को सब कोई प्यार करते हैं।। २–३ ।।

मेरे प्राण तुम्हारे प्राणों से ही संचालित रहते हैं, तुम्हारे मन से ही मैं मनवान बना हूँ, तुम्हारे मन से ही मेरे मन की सत्ता है। तुम्हारे प्रेमरूपी समुद्र की एक बून्द को ही लेकर मैं सबको रसदान करता हूँ।

तुम्हारे पुण्यमय, पवित्र, रस भंडार से ही सभी भिक्षुक चून, रसकण प्राप्त करते हैं, सबको रस वहीं से मिलता है। तुम्हारे समान तो एक मात्र तुम्ही हो, इसमें तुम तनिक भी कसर मत समझो।

इस प्रकार मैं तुम्हारे ही रस भंडार में से रस-दान करता हूँ, परन्तु उसमें बड़ी ही मर्यादा, बड़ा संयम, भय, दीनता, और संकोच बना रहता है

(मुक्तहस्तसे, उदारतापूर्वक नहीं कर सकता)। तुम जैसी संकोच छोड़कर रस बाँटनेवाली उदार, रस की स्वामिनी तो एक तुम ही हो, दूसरी कोई नहीं, कभी नहीं है।

फिर मुझ पर तो तुम्हारा नित्य, अनन्त स्वत्व है, कभी नहीं हटनेवाला हक है (मैं तो सदा तुम्हारी ही सम्पत्ति हूँ)। अतएव मुझपर सभी प्रकार से तुम्हारा पूरा अधिकार है। (इसीसे मुझको निमित्त बनाकर) तुम अपनी कायव्यूहरूपा, अङ्गस्वरूपा गोपीजनों के द्वारा परम उदार होकर खुले हाथों रस का वितरण करवाती हो, रस बाँटवाती हो।

मैं तो यही चाहता हूँ कि तुम्हारी रहस्यमयी, मेरे जीवन को मुग्ध रखने वाली मीठी मायाके, रसमयी प्रीतिके वशीभूत रहकर मैं तुम्हारे दक्षिण और बाम दोनों प्रकार के भावों के रसास्वादन में निमित्त बनता रहूँ।

["राधिके, तुम मम जीवन मूल" की व्याख्या]

और फिर अनन्त, अपार शान्ति छा गई। रस सागर के अतल तल में जहाँ मात्र रस, पूर्ण घन रस है वहाँ शुक एवं सारिका दोनों पहुँच गये। कितने काल पश्चात, क्या कहा जाये, सारिका ने दृष्टि खोली। वह प्रिया प्रियतम की ओर देखरही थी। उसके पंख एवं रोंये, उत्फुल्ल थे। नेत्रों से एक विलक्षण प्रेमरस अश्रुरूप में चू रहा था। वह बार बार आनन्द के सात्विक कंप से कंपायमान हो जाती थी। यही दशा शुक की भी थी।

सारिका- 'अहो ! महादेवी, सर्वाङ्गकृष्णमयी परदेवी राधिका की जय हो। मेरी रानी अपने प्रेमास्पद प्रियतम की सब प्रकार की इच्छा पूर्ण करने के रूप में नित्य ही तन मन वचन से प्रियतमाराधना में नियुक्त रहती हैं। उनकी सम्यक् रूप से आराधना करने के कारण ही वे राधिका नाम से प्रसिद्ध हुई हैं।

कृष्णं समाराधयति सदेति राधिका........

शुक-"सारिके ! देखो, प्रियतम प्रिया की पराभक्तिभाव से कैसे अभिभूत हैं। उनका रोम रोम राधिकेराधिके, राधिके, तुम मम जीवनमूल, तुम मम जीवनमूल, उच्चारित कर रहा है। उनके श्वास, श्वास. से राधिके, राधिके ! 'तुम मम जीवनमूल' ये शब्द ही निकल रहे हैं। उनके प्रत्येक भावोंमें प्रिया के द्वारा निवेदित प्रेम के लिये कैसा कृतज्ञता बोधक स्मरण है।

हे सारिके ! रानी ही प्रियतम की जीवनमूल हैं। प्रियतम की सम्पूर्ण क्रियाशीलता, चेतनता, शक्तिमत्ता, उनकी शोभा, उनकी लीलामयता, सब प्रिया से ही है। प्रियतम तो रस-घन-विग्रह हैं। भाव ही तो इन रस-घन-विग्रह को जागृत करता है। और वही भाव इन रस-घन-विग्रह को अपने में ही शयन करा लेता है। वही इनको देखने के लिये नेत्र देता है और भाव ही स्वयं अनन्त सुन्दर दृष्य बनकर इनको अपना ही दर्शन देकर सुख देने लगता है। मेरे प्रियतम देखें, और देखकर सुखी हों, यह राधा-भाव, संकल्प ही प्रियतम के नेत्र हैं, और राधा ही प्रियतम का अनन्त सुखरूप, अनन्त सुन्दर दृष्य हैं। मेरे प्रियतम मधुरातिमधुर शब्द सुनें एवं सुनकर अनन्तानन्त सुख पावें, यह रानी का भाव ही तो प्रियतम की श्रवणेन्द्रियाँ हैं, और यही उनको श्रवणगोचर होनेवाली ध्वनि है। प्रियतम, कोमलतम स्पर्श पाकर सुखी हों, यह भाव ही प्रियतम की त्वगेन्द्रिय है और श्रीराधा ही सब भावों से प्रियतम के स्पर्श का विषय हैं। इसी प्रकार श्रीराधा प्रियतम की सब इन्द्रियों की, उनके प्राणों की, उनके शरीर की. उनकी मन, बुद्धि और चेतना की सबकी मूल हैं। उनके समग्र जीवन की मूल हैं। हे सारिके, प्रिया प्रेम-भाव-स्रोत हैं और प्रियतम रस समुद्र। स्रोत बिना समुद्र कहाँ से आवेगा ? स्रोत ही तो समुद्र बन जाता है। इसी प्रकार प्रिया ही प्रियतम की मूल हैं और प्रियतम रूपमें जो श्यामाकृति दृष्टि गोचर हो रही है, यह मात्र प्रिया के प्रेम का ही सर्वोच्च, सर्वांगीण, सर्वोपरि, सर्वोत्तम, सर्वरूप विकास है।

अहा, इसीलिये महाभावमयी राधा अनुपम, नित्य हैं और प्रियतम के प्राणों को भी प्राणान्वित करनेवाली हैं। उनके जीवन को भी जीवन देनेवाली हैं। जो सर्वलोक महेश्वर हैं, सर्वमय हैं, सर्वातीत हैं, उन परमात्मा के भी प्राणोंको प्राणान्वित करनेवाली, उनके जीवन को जीवन देनेवाली, अनुपम प्रिया की जय हो, नित्य प्राणेश्वरी, प्रियतम राधिका की जय हो, सदा ही जय हो।

["अनुपम अमर प्राणसंजीवनि" का भाव]

सारिका—"प्रियतम माधव भुवनमनमोहन हैं, मदनमोहन हैं, सर्वमुनिमनमोहन हैं, एवं स्वमनमोहन भी हैं परन्तु उन प्रियतम के मन की सत्ता तो राधा, प्रिया ही हैं। प्रिया ही प्रियतम का मन हैं। जो प्रियतम जड़ को चेतन और चेतन को जड़, मनहीन को मनवान और मनवान को मनहीन करने में

समर्थ हैं, उनको भी मनवान बनाने वाली मात्र प्रिया हैं। जो प्रियतम प्राणहीन को प्राणवान और प्राणवान को प्राणहीन बनाने में समर्थ हैं, समग्र प्राणसत्ता ही जिनसे है, उनके प्राणों को भी सत्ता देनेवाली प्रिया ही हैं। वे ही अपने भाव से, प्रेममय संकल्प से, भक्तिपूर्ण भाव से ही प्राणगुणहीन आत्मरूप, बोधस्वरूप प्रियतम को प्राणवान् करती हैं, प्रियतम को जीवन्त करती हैं, उन निरानन्द को आनन्दमत्त करदेती हैं, निष्क्रिय को लीलामय करदेती हैं। श्रीरानी के भाव-संकल्प से ही सत्तागुणहीन प्रियतम जीवन्त हैं, लीलामय हैं। ऐसी प्रिया, प्रियतमाराधिका, राधिका प्रियतम-जीवनमूला, की जय हो! अनुपम राधिका की जय हो॥

शुक- सारिके! हम कूप का स्रोत जान सकते हैं, नदी का स्रोत भी अन्वेषण किया जा सकता है, परन्तु बताओ, सागर का भी स्रोत होता है क्या? सारिके! महाकाश का कौन सा स्रोत है? इसी प्रकार ब्रह्म का कौन स्रोत है? क्या ब्रह्म का भी स्रोत संभव है? हे सारिके, ब्रह्म का तो जीवन एवं मूल दोनों ब्रह्म ही है। ब्रह्म की शाखा ही ब्रह्म की मूल है। ब्रह्म का पत्र भी ब्रह्म का मूल है। ब्रह्म न शाखा है, न पत्र है, न मूल है। फिर प्रियतम का जीवन मूल कौन एवं कैसे संभव है? इसलिये मुझे तो अद्वितीय, अनुपम, नित्य प्रिया ही प्रिया दिख रही हैं। लगता है प्रियतम हैं ही नहीं। मैं प्रियतम के हृदय में प्रवेश करता हूँ, प्रियतम से एकात्म होता हूँ तो मुझे प्रिया ही प्रिया दिखती हैं। इसलिये वे अनुपम, अद्वितीय, एकमात्र हैं, नित्य, सत्य, मात्र हैं, अमर हैं। हे सारिके, अमरत्व तो एक होने पर ही हो सकता है। दो कभी अमर नहीं हो सकते। अनेक खंडित ही होते हैं, अतः खंडित कभी अमर नहीं हो सकते। इसीलिये सारिके, तुम प्रियतम, प्रियतम, मत कहो, मात्र प्रिया, प्रिया, प्रिया कहो। हे सारिके! देखो श्रुतियों में कितना स्पष्ट उल्लेख है—

तस्माद्वा एतस्माद् विज्ञानमयात् अन्यः अन्तरः आनन्दमयः आत्मा। तस्य प्रियमेव शिरः। मोदो दक्षिण पक्षः। प्रमोद उत्तर पक्ष। आनन्द आत्मा।

निश्चय ही उस पहले कहे हुए इस विज्ञानमय से भिन्न इसके भी भीतर रहनेवाला आनन्दमय, रसमय परमात्मा है। उसका प्रियतमरूप भाव ही मानो सिर है, मोदरूप भाव ही दाहिना पक्ष है, प्रमोद नामक भाव ही उत्तर

पक्ष है, और आनन्दरूप भाव ही मध्यपक्ष है, यही आनन्दभाव उसका आत्मा है। यह महाभाव आनन्द ही हमारी रानी, हमारी प्रिया है।

आओ, हम सब दर्शन करें, कैसे आनन्दमय प्रियतम हैं। प्रिया प्रेम ही इनका मुखकमल है, प्रिया प्रेमभाव ही इनकी नासिका, कपोल, नयन और कान हैं. इसीलिये प्रियतारूप भाव में डूबे ये मात्र प्रिया अंग-गंध सूँघते हैं, प्रिया-अधर-रस चखते हैं, प्रियारूप पर ही सदा मुग्ध हैं, और प्रिया शब्द माधुरी ही सुनते हैं। इन्हें कुछ ज्ञान नहीं, बाह्य-ज्ञान-शून्य, प्रिया-प्रेम-समाधिस्थ को कौन जगावे? शुक भावावेशवश जोर से चीख उठता है-"प्रियतम, प्रियतम, प्रियतम, प्रियतम, प्रियतम, प्रिया, प्रिया ही नहीं, सूर्य भी है, भूमि भी है, कमल विकसित होगये, भ्रमर कोलाहल कररहे हैं, भगवान नन्दपूजा कररहे हैं. गोपीगण मथानी समेट रही हैं। गोरसमंथन सम्पन्न होगया, जागो, हे प्रिया-जीवनमूल, (प्रिया ही जिनकी जीवनमूल हैं) हे राधिके जीवनमूल, (राधा ही जिनके जीवन की मूल हैं), जागो, नेत्र उन्मीलित करो।

[जस सरीर में निज निज थानहिं सबही शोभित अंग
किन्तु प्राण बिनु सबहिँ व्यर्थ नहिँ रहत कतहुँ कोउ रंग]--का भाव

शरीर में जैसे सभी अंग-अवयव, इन्द्रियाँ, हाथ, पैर आदि होते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण व्रजमंडल भी प्रिया ही हैं, प्रिया बिना, प्राण बिना, कहीं कुछ नहीं, परन्तु प्राण भी जैसे अवयव, इन्द्रियों के प्रति हुए यथायोग्य व्यवहार बिना पुष्ट नहीं होते, इसी प्रकार हे प्रिया प्रियतम, आप जागें, और सम्पूर्ण व्रजमंडल रूप आपके ही इस शरीर, आपके ही अंग-भूत, हम सबको जीवन दान दें, प्राणदान दें, दर्शन देकर कृतकृत्य करें।

सारिका भी शुक के ही स्वर में स्वर मिला कर बोलने लगी, "हे प्रिये, हे प्रियाराधनतत्परे, हे राधिके, जागो और अपने प्रियतम को, अपने तन-मन जीवन-धन को जगाओ, और सचमुच ही शुक सारिका के सम्मिलित गान ने प्रिया प्रियतम को जगादिया। प्रियतम प्रिया के मुख की ओर अत्यंत प्रेम भाव से निरखने लगे, सचमुच ही उनके भाव मानो इसी प्रकार के हों, शुक सारिका के प्राण स्पन्दित होने लगे। "हे प्रिये! यह जो कुछ भी दृश्य, अदृश्य, व्यक्त, अव्यक्त, मूर्त्त, अमूर्त्त है, यह सम्पूर्ण, समग्र, विराट, नित्य, सत्य, परिपूर्ण, परात्पर, मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं हैं। मेरा ही स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर है।

हे प्रिये, जैसे शरीर में यथास्थान सब अंग शोभित हैं, वैसे मेरी ही रसमयी विचित्र, विभिन्न लीलाओं का सर्वत्र कम एवं अधिक विकास है। इन समग्र रस रूप राज्यों में (मेरे शरीर में) हे प्रिये, प्राणरूप भावशक्ति तुम ही हो। तुम मेरी दिव्य, आनन्दमयी, भावरूप प्राणशक्ति हो। तुम अमूर्त्त रूप में सबकी नित्य सत्ता हो और मूर्त्त रूप में सबसे अभिन्न होते हुए भी मेरे अङ्क में व्यक्त हो। मैं सर्वत्र रसरूप में तुम्हारे ही भावरूप आलिंगन में बँधा अमूर्त्त हूँ, परन्तु मूर्त्तरूप में तुमसे ओतप्रोत, आलिंगित इस निकुञ्ज में शयन कर रहा हूँ।

हे प्रिये, विचित्र लीलाओं के भेद से, जहाँ मैं श्री नारायणादि विलास परतत्व के रूप में प्रकट होता हूँ, वहाँ तुम ही मेरी महालक्ष्मी रूप में प्रतिष्ठा होती हो। श्री राम, नृसिंह आदि स्वांश परतत्व रूप में भी मैं सीता, नारसिंही आदि के रूप में तुमसे ही नित्य प्रतिष्ठित रहता हूँ। अमूर्त्त, अन्तर्यामी परमात्मा परतत्व रूप में भी मैं परमात्मशक्ति तुममें ही प्रतिष्ठित रहता हूँ और भेदरहित ब्रह्म परतत्व रूप में भी तुमही मेरी ब्रह्मशक्ति, मेरी प्रतिष्ठा हो। मेरे पुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार तथा मन्वन्तरावतार सबकी तुमहीं प्रतिष्ठा, आधार, शक्ति हो। आदि में लोक सृष्टि की इच्छा करने पर मैं जब महत्तत्वादि सम्भूत षोड़श कलात्मक पुरुषावतार धारण करता हूँ तब चतुर्व्यूह रूप में भी तुममे ही प्रतिष्ठित रहता हूँ। तुम मेरी वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध तथा राम लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न, चारों रूपों की प्रतिष्ठा हो। तुम्हारी आदि महाभाव शक्ति के द्वारा अनुप्राणित, प्राणान्वित हुआ ही मैं आदिदेव नारायण हूँ, आद्य पुरुषावतार षोड़शकलात्मक पुरुष हूँ, कारणार्णवशायी महाविष्णु हूँ। तुम्हारे ही प्राणों से प्राणान्वित मैं अन्तर्यामी रूप से विराट ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट हुआ द्वितीय पुरुषावतार प्रद्युम्न हूँ, और पद्मनाभ नाम से प्रख्यात हूँ, हिरण्यगर्भ ब्रह्मा का भी सृष्टा हूँ। मैं ही प्रादेशमात्र विग्रह से समस्त जीवों में अन्तर्यामी रूप से स्थित हूँ, प्रत्येक जीव में अधिष्ठित हूँ, सबका साक्षी हूँ। हे प्रिये, तुमही मेरी ब्रह्मा, विष्णु, और महेश रूप में त्रिगुणावतारों की भी प्रतिष्ठा हो, जिनसे समस्त सत्व, रज एवं तमोमयी सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय होता है।

इसी प्रकार हे प्रिये, तुमसे ही प्रतिष्ठित मैं चतुःसन, नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर-नारायण, कपिल, दत्त, हयग्रीव, हंस, विष्णु, ऋषभ, पृथु,

नृसिंह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, राम, व्यास, बल, बुद्ध और कल्कि रूप में लीला करता हूँ। ये सब मेरी अंश कला विभूतियाँ हैं। मुझमें, परिपूर्ण रूप में, इन सबका समावेश है और मैं पूर्णतया तुममें और तुम मुझमें समाविष्ट हो। जहाँ कहीं प्राकृत, अप्राकृत, दिव्य, अदिव्य, भगवदीय, मायिक, जो भी तत्व है सब ईश्वरों एवं तत्वों के एक मात्र कारण और स्वरूप, सभी के मूल, सभी के आत्मा, जिनमें सभी अधिष्ठित हैं, जो सबके सबकुछ हैं, और जिनके अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं, वह मैं श्रीकृष्ण हूँ और स्वयं मेरी आश्रय, जीवनमूल, आत्मा, सर्वस्व तुम हो। हे प्रिये, मात्र सभी अवतार ही नहीं, यह सृष्ट, असृष्ट, सब मेरा ही शरीर है। सरीर में हाथ भी उतना ही शरीर है, जितना कान एवं नाक। नाक एवं कान शरीर के ही नाम हैं, जो केवल क्रिया की अभिव्यक्ति के लिये पृथक् नाम धारण किये हुए हैं, इसी प्रकार इन सभी अंशों तथा मुझ अंशी में स्वरूपतः कोई अन्तर नहीं है, कोई भेद नहीं है। ये सब एक ही भावशक्ति मात्र तुमसे प्राणान्वित हैं। परन्तु मुझ समग्र शरीर की सत्ता एवं महत्ता अंश रूप अंगों, अवयवों से अधिक है ही। हे प्रिये, मुझ शक्तिमान में शक्ति की जो नित्य सत्ता है, वह अमूर्त्त है। परन्तु मेरे स्वरूप से सर्वथा, सर्वदा सब प्रकार से अभिन्न होते हुए भी उस दिव्य, अमूर्त्त, अभिन्न शक्ति, सत्ता की अधिष्ठात्री रूप में मूर्त्त एवं प्रकट, विविध स्वरूपभूता, नित्य लीलामयी, लीलाकारिणी तुम, मेरी प्रिया, पूर्ण रूप में मूर्त्त भी हो। हे प्रिये, मेरे अचिन्त्यानन्त स्वरूप और उनकी सब शक्तियों की, सब की, एकमात्र तुमही आधार हो। इसीलिये तुम मेरी जीवनमूल हो। जिस प्रकार प्राण के बिना सब शरीर चाहे वह नाक, कान, आँख, मुख, कुछ भी हो, व्यर्थ, शोभाहीन, हो जाता है परन्तु तुम्हारे बिना तो सब कुछ व्यर्थ, शोभा हीन ही नहीं, उसका अस्तित्व ही नहीं रहता। यही परम सत्य है।

शुक (नाचता हुआ) हर्ष से रोमांचित सा बोल उठता है—

"यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वंम् मृन्मयं विज्ञातꣳ स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ।

यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्वंम् लोहमयं विजानीयात् विज्ञातꣳ स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम् ।।

यथा सोम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्वंम् कार्ष्णायसं विज्ञातꣳ स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम् ।

सोम्य ! जिस प्रकार एक मृत्तिका के पिण्ड के द्वारा समस्त मृत्तिकामय पदार्थों का ज्ञान हो जाता है, एवं यह भी ज्ञात हो जाता है कि विकार केवल वाणी के आश्रयभूत नाम मात्र हैं, सत्य तो केवल मृत्तिका है, इसी प्रकार मेरे प्रियतम प्रिया की ओर निहारते हुए स्पष्ट यही कह रहे हैं, हे प्रिये, मेरा कृष्णनाम, कृष्णरूप, और कृष्ण नाम, रूपाश्रित समस्त गुण, वैभव, सत्ता, अस्तित्व, ये सब मात्र वाणी के आश्रयभूत नाम मात्र हैं, मेरी जीवनमूल प्रिया तूही सत्य है। मेरी रानी, प्राणेश्वरी, प्रिया, तूही सत्य है, तूही एक मात्र सत्य है।

सोम्य ! जिस प्रकार एक लोहमणि (सुवर्ण) का ज्ञान होने पर सम्पूर्ण सुवर्णमय पदार्थ जान लिये जाते हैं, क्योंकि विकार वाणी पर अवलम्बित नाम मात्र हैं, सत्य केवल सुवर्ण ही है, इसी प्रकार प्रियतम स्पष्ट संकेत कररहे हैं कि यह सब दृश्य, अदृश्य. व्यक्त, अव्यक्त, मूर्त्त, अमूर्त्त, समग्र विराट, जिसे नर कहो या नारायण, राम कहो या नृसिंह, अन्तर्यामी परमात्मा कहो चाहे वासुदेव, आद्य पुरुषावतार षोडश कलात्मक पुरुष कहो चाहे कारणार्णवशायी महाविष्णु, अन्तर्यामी कहो या साक्षी, सब नाम मात्र हैं, सत्य है, महाभावमयी मात्र प्रिया क्यों कि प्रिया ही मेरी एवं सबकी जीवनमूल है, मेरी एवं सबकी आत्मा है।

सोम्य ! जिस प्रकार एक नखनिकृन्तन अर्थात् लोहे के ज्ञान से सम्पूर्ण लोहे के पदार्थ जान लिये जाते हैं क्यों कि विकार वाणी पर अवलम्बित नाम मात्र हैं, सत्य केवल लोहा ही है, इसी प्रकार यह ब्राह्मण, क्षत्रियादि जातियाँ, लोक लोकान्तर के समग्र भुवन, भवन, ये देवगण, भूतगण, जो कुछ भी, जहाँ कहीं भी है. सब राधा ही है, प्रियतम-प्रिया ही है, प्रियतम-प्राणेश्वरी ही है। यही प्रियतम स्पष्ट निज रोम रोम के आह्लाद से अभिव्यक्त कर रहे हैं। और सारिका भी बोल उठी, लो. शुकराज, श्रुतियाँ स्पष्ट सत्य अपरोक्ष कह रही हैं–

सदेव सोम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम् ॥

हे सोम्य ! आरम्भ में यह एक मात्र अद्वितीय सत् (भाव) ही था।

ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् तदात्मानम् एवावेत् । अहं ब्रह्मास्मीति । तस्मात्तत्सर्वमभवत् ।

पहले यह भावरूप ब्रह्म ही था। उसने अपने को ही जाना कि मैं ब्रह्म हूँ। आस्वादन रूप ज्ञान से ही वह रस रूप सर्व हो गया। पहले मात्र प्रिया

रूप प्रेमाकाश ही था । उसने अपने को ज्यों ही जाना, मैं प्रिया हूँ, बस, आस्वादन रूप स्पृहा से भावरूपा प्रिया तत्क्षण रसरूप प्रियतम, वन, उपवन, नद, नदी, सरोवर, पुष्प, पराग, अलि, कलि, वसंत, ग्रीष्म काल, देश, स्वभाव, अभाव, बन लहराने लगीं । देखो देखो, शुक, प्रियतम कह रहे हैं–"मेरी जीवन मूल आत्मा राधिका हैं, जो मेरी दृष्टि की द्रष्टा हैं, श्रुति की श्रोता हैं, मति की मन्ता हैं, विज्ञाति की विज्ञाता हैं । राधिका ही वह प्राण सूत्र हैं, जिस सूत्रके द्वारा मेरे सब अंग अनुप्राणित गुँथे हुए हैं । राधिका ही मेरे शरीर के भीतर हैं और शरीर की नियामक हैं, राधिका ही मेरी अन्तर्यामी, अमृत, आत्मा हैं । राधिका ही मुझ में शब्द रहित, स्पर्श रहित, रूप रहित, रस रहित, और गंध-रहित, अविनाशी, नित्य, अनादि, अनन्त, असीम, सबसे परे, सत्य तत्व हैं । श्री राधिका अनुपम हैं, अमर हैं, प्राण की भी प्राण हैं क्यों कि सबका सब मैं राधिका हूँ । राधिका ही मेरे सामने हैं, वे ही पीछे हैं, वे ही दायें तथा बायें हैं, नीचे की ओर तथा ऊपर की ओर वे ही फैली हैं । यह जो सम्पूर्ण, सर्वश्रेष्ठ, कृष्ण तन और उसका विषय बृन्दावन, गोलोक है, सब मूलतः, तत्त्वतः, परमार्थतः श्री राधिका ही है, प्रिया ही है, प्राणेश्वरी ही है ।

["तस तुम प्रिये सबनि से सुख की एक मात्र आधार ।
तुम्हरे बिना नहीं जीवनरस जासौं सबको प्यार ।।]—का भाव

सारिका का भावोद्रेकयुक्त कथन सुनता शुक कुछ क्षण मौन, मननशील हो उठता है, तत्पश्चात् जिज्ञासु हो बोल उठता है–'हे सारिके, मुझ शंका शील की एक शंका निवृत्त करें । प्रियतम अपनी प्रिया-स्तुति में प्रथम पंक्ति में प्रथम शब्द में प्राणेश्वरी को 'राधिके' कहकर संबोधित करते हैं, तथा पश्चात उन्हें जीवन-मूल निज आत्मा बतलाते हैं । आपभी प्रथमतः उल्लेख कर गई हैं कि **"कृष्णं समाराधयति सदेति राधिका"** इसका स्पष्ट, अर्थ प्रियतम श्रीकृष्ण ही परमात्मा, मूल सत्य हैं, चैतन्य हैं, सर्वज्ञान निधान हैं, परतत्व हैं । वे ही अस्ति हैं, भाति हैं, और प्रिय हैं । प्रिया राधिका, प्रिय-आराधन-तत्परा हैं, इसीलिये वे राधिका हैं । परन्तु प्रितयम इसी पंक्ति में उन्हें अपनी 'जीवनमूल' कह देते हैं, जिसका अर्थ स्पष्ट आत्मा ही होता है। आगे भी प्रियतम कहते हैं कि तुम्हारे बिना जीवन-रस नहीं है, तुमही सबके सुख की एकमात्र आधार हो ।

हे सारिके ! जीवन रस, सुख और जीवनमूल आत्मा इन शब्दों का अर्थ

स्पष्ट खोलकर मुझे समझाओ। सारिका खिलखिलाकर मुस्करा उठी। एवं कहने लगी–हे शुकराज, इन सब शंकाओं का समाधान तो मैं एक प्रकार से संक्षेप में प्रथम भूमिका में पक्षी सम्मेलन के दिन ही कर चुकी थी, परन्तु नित्य जिज्ञासा, यही श्रोतृ परम्परा है, अतएव विस्तार से पुनः सुनो।

हे शुकराज! मैं तुम्हारे ही कथन को पुनः दोहराती हूँ। बताओ, क्या परब्रह्म का भी कोई जीवन है, और उसका भी कोई मूल है क्या? परब्रह्म का कोई शरीर भी संभव है क्या? हे शुकराज, यह तो घन से घन, महान मोह ही है जो द्रष्टा को अपने दृश्य से द्वैत सिद्ध करता है। समग्र दृश्य मात्र द्रष्टा का संकल्प है और जहाँ मात्र द्रष्टा ही है, फिर संकल्प भी द्रष्टारूप ही तो होगा, उसका अलग अस्तित्व कैसे सिद्ध होगा? द्रष्टा ही यदि निर्माता है तो पदार्थ भी अवश्य ही द्रष्टा ही है। अपने ही दर्शन से, अपने ही दृश्य से द्रष्टा पर कैसे? जब द्रष्टा का ही दृश्य है तो निश्चय ही द्रष्टा ही दृश्य है, इसे सिद्ध करने में कौनसा प्रयास है। यह तो स्वयं सिद्ध है। अपरोक्ष सत्य है। शुकराज श्रीकृष्ण ही सर्वकारण हैं, और वे ही सर्वकार्य हैं. यह निस्सन्देह है, अपरोक्ष है और परम स्पष्ट है।

तब आराधना, आराधिका और आराध्या ये तीन पद कहाँ बचते हैं? शुकराज, सर्वज्ञाननिधान, परमेश्वर, भगवान नारायण, प्रियतम श्री कृष्ण ही तो हैं न? वे भगवान नारायण ही ब्रह्मा के रूप में व्यक्त होते हैं। यह तो प्रियतम की अचिन्त्य शक्ति माया ही है जो ब्रह्मा में यह अज्ञान दृढ़-मूलरूप से आबद्ध करदेती है कि वे ब्रह्मा हैं और उनके मूल के मूल श्रीकृष्ण, भगवान नारायण कोई अन्य हैं, अतिरिक्त हैं, पृथक् हैं, वे महान् हैं और मैं लघु हूँ। वे स्रष्टा हैं और मैं सृष्ट हूँ। परन्तु स्रष्टा को निज माया अपने ही सृष्ट से पृथकता बोध करा सकती है क्या? अनन्तानन्त सागरको भी किसी लहर में पृथकता का बोध होता है क्या? तब प्रियतम श्रीकृष्ण की दृष्टि में आराधिका और आराधना एवं आराध्या में किस प्रकार भेद संभव है? वे स्वयं ही तो आराधक हैं, स्वयं ही आराधना हैं और स्वयं ही आराध्या हैं। हे विचक्षण, तुम तो सूक्ष्मदर्शी हो, तुम तो स्पष्ट जानते हो कि 'न निरोधो न चोत्पत्तिः' विश्व की न उत्पत्ति है और न प्रलय है। मन का आत्मा के सम्मुख होना ही निरोध है और अपने संकल्प-निर्माण-रूप जगत् और बाह्य पदार्थों को सत्य मानकर उनका साम्मुख्य ही तो उत्पत्ति है। बताओ, वस्तुतः कोई उत्पत्ति एवं प्रलय होते

हैं क्या ? यह विराट विश्व, संसार, जगत् सब मन के द्वारा ही बनता है और मन में ही लीन हो जाता है। निद्रा से जगने पर पुत्र-पति, भाई-मित्र आदि के संबंध मन में ही व्यक्त होते हैं। अधिष्ठान तो उत्पत्ति प्रलय से परे है ही। अध्यस्त अधिष्ठान से अतिरिक्त यदि कुछ भी प्रतीत हो रहा है तो वह वन्ध्या-पुत्र के समान सर्वथा मिथ्या है। अधिष्ठान ही अधिष्ठान है। अधिष्ठान का भी भला कहीं जन्म हो सकता है ? और जिसका जन्म ही नहीं उसकी मृत्यु कैसी ? हे शुकराज ! बताओ, उत्पत्ति और प्रलय भी कोई कहीं अस्तित्व रखते हैं क्या ? जो सत्य है, वह कभी प्रलय को प्राप्त होता है क्या ? उसका अन-स्तित्व, न रहना, न होना और मृत्यु संभव है क्या ? इसी प्रकार जो मिथ्या है, वह कभी जन्मता है क्या ? उसका जन्म, अस्तित्व, उसका होना, संभव है क्या ? तब किसकी उत्पत्ति और किसका प्रलय है ? फिर जो प्रलय को प्राप्त नहीं करता, वह जन्म सकता है क्या ? और जो जन्मता ही नहीं, वह प्रलय को प्राप्त करेगा क्या ? तो उत्पत्ति और प्रलय दोनों ही मात्र अज्ञान हैं, मोहा-भासित हैं, सत्य नहीं हैं। और जब उत्पत्ति ही नहीं तब द्वैत कहाँ ? परमात्मा श्री कृष्ण के अतिरिक्त द्रव्य ही कहाँ है जिससे वे कुम्हार घड़ा बनाते। जहाँ प्रियतम ही प्रियतम हैं, बाहर, भीतर कोई देश नहीं, जहाँ प्रियतम ही प्रियतम हैं, अतिरिक्त देश के लिये कोई अवकाश ही नहीं है, जहाँ प्रियतम ही प्रियतम हैं, पहले पीछे का काल भी नहीं है। अतः प्रेम-सत्तामात्र, प्रेम-चिन्मात्र, प्रेम-रसमात्र, अद्वय, प्रियतम में यह देश, काल, वस्तुरूप मात्र प्रेम कल्पना ही तो है, प्रेमलीला ही तो है। प्रेम कल्पना में ही व्रजवृन्दावन, नदी, नद, गिरि, गह्वर, सखा, सखी, भवन, भुवन, भास्कर, चन्द्र, नक्षत्र, गोप, निकुंजादि आकृतियाँ हैं। कल्पित वस्तु कल्पक की कल्पना से भिन्न नहीं होती। और कल्पना कल्पक से भिन्न कदापि नहीं होती।

हे शुकराज ! एक परम रहस्य की बात बताती हूँ कि जैसे रस्सी में सर्प दिखता है, तो रस्सी न स्वयं में सत्य है, न सर्प ही स्वयं में सत्य है, और द्रष्टा मन भी स्वयं सत्य नहीं है, और न ही रस्सी सर्प के, उसके आकार का संकल्प करके सर्प दिखाती ही है। वह तो मात्र मिथ्या है, भ्रान्ति है, असत् है, सब है ही नहीं। इसी प्रकार प्रापंचिक जगत और मायामय मिथ्या संसार तो भ्रान्ति है, है ही नहीं। वन्ध्यापुत्र के समान मिथ्या है, असत् है। भ्रान्ति कल्पक की कल्पना नहीं होती। कल्पक की कल्पना और भ्रान्ति में बहुत अन्तर है।

यह गोलोकधाम सत्य, मात्र सत्य, एकमेव सत्य, नित्य, सच्चिदानन्दमय पुरुष परब्रह्म, परतत्व, और उसकी भी प्रतिष्ठा प्रियतम श्रीकृष्ण की लीला है, कल्पना है, लीलार्थ कल्पना है, लीलार्थ अभिव्यक्ति है, प्रियतम श्रीकृष्ण का निज स्वरूपभूत प्रेमविलास है। परन्तु मायामय, मिथ्या, पुत्र कलत्रादियुक्त, उत्पत्ति, प्रलय-संभूत यह जो प्रपंच है. वह तो सर्वथा भ्रान्ति सिद्ध है. माया सिद्ध है, मिथ्या सिद्ध है, और मिथ्या सिद्ध कोई त्रिकाल में भी वस्तु होती ही नहीं। अस्तु इस गोलोकरूप सच्चिदानन्द प्रेमधाम की प्रापंचिक जगत से कहीं, कोई साम्यता, तुलना संभव ही नहीं। भ्रान्तिसिद्ध, मिथ्यासिद्ध असत् प्रपंच मन से ही उत्पन्न होता है, जो मन स्वयं में असत् है, पूर्ण मिथ्या है, और मन में ही लय होजाता है। परन्तु यह चिन्मय गोलोकधाम श्री कृष्ण में, स्वयं परात्पर परब्रह्म अमृत की भी प्रतिष्ठा प्रियतम में, नित्य व्यक्त है, स्वरूपतः नित्य स्थित है, और परमार्थतः नित्य पूर्णसत्य है।

इसीलिये हे शुकराज प्रियतम की दृष्टि में उनकी आराधिका, मात्र आराधिका, परमाराधिका प्रिया में और निज आत्मा में कहीं कोई भेद स्थिति है ही नहीं। अहा, कैसे प्रेम-स्वभाव प्रियतम हैं? जब आराध्य अपनी आराधिका को आराध्य बनाता है तभी तो प्रेम प्रारम्भ होता है? बताओ शुक, आराधना किसे कहते हैं? किसी अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने का प्रयत्न करना तो साधना है और किसी प्राप्त सत्य से, वस्तु से यथायोग्य मिलन ही तो उसकी आराधना है एवं उस सत्य से एकात्म होकर उसकी आराध्या बन जाना ही तो प्रेम है। इसीलिये महाभाव राज्य में सब प्रियतम श्रीकृष्ण के आराध्य ही हैं, कोई आराधक नहीं। सब श्रीकृष्ण की आत्माही हैं, कोई उनका उपासक नहीं। हे शुकराज, श्रुतियाँ कितना स्पष्ट कह रही हैं:—

'न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वम् प्रियं
भवति आत्मनस्तु कामाय सर्वम् प्रियं भवति।

कोई किसी के प्रयोजन के लिये प्रिय नहीं होता अपनी आत्मा के लिये सब प्रिय होते हैं। फिर यदि प्रियतम सबकी आत्मा न हों तो कैसे आत्यन्तिक प्रियता को, अनन्त प्रियता को, असीम प्रियता को, नित्य प्रियता को, अखण्ड प्रियता को वरण कर पावेंगे। और इसी प्रकार यदि सब प्रियतम श्री कृष्ण की आत्मा नहीं होंगे तो कैसे तृण, गुल्म, ओषधि, पुष्प, और पराग

तक प्रियतम श्रीकृष्ण के आत्यन्तिक प्रेमभाजन, अनन्त प्रेमभाजन, असीम प्रेमभाजन एवं नित्य प्रेमभाजन, अखण्ड प्रेमभाजन बने रहेंगे।

हे शुकराज, अत्यंत सूक्ष्म बुद्धि से आराधना शब्द पर गहन विचार करो। हमारी रानी तो भाव समुद्र हैं। श्रुतियाँ कितना स्पष्ट कह रहीं हैं—

उपनिषद् में प्रश्न किया गया है—

कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति।

'किसके ज्ञान से ये सर्व रसरूप श्रीकृष्ण जाने जा सकते हैं?' और इस प्रश्न का यही उत्तर है—

आत्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदꣳ सर्वम् विदितं भवति इति।

मात्र भावरूप आत्मा श्री राधा को ही देखने, सुनने एवं चिन्तन करने से ये सर्वरस श्रीकृष्ण विदित होते हैं। हे शुकराज, एतरेयोपनिषद् के इस तत्व को मनन करो—

ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्, नान्यत् किञ्चनमिषत् स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति।

यह सर्वरस पूर्व में महाभावरूप आत्मा ही था। अन्य कोई और तत्व नहीं था। उस महाभाव ने ही अपनी इच्छा से सर्व रसरूप लोक का सृजन किया। तो लोकपति, रसराज, प्रियतम श्रीकृष्ण बिना महाभाव रूपा राधा के कहाँ से टपक गये? महाभावरूपा श्री राधा ही तो अपनी समाराधना से (अपने संकल्प से) प्रियतम का निर्माण करती हैं और प्रियतम सुखार्थ, सेवार्थ अनेकानेक लोकों का सृजन करती हैं।

"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।"
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।

हे शुकराज, बताओ ये प्रियतम श्रीकृष्ण क्या सूर्य के प्रकाश में प्रकाशित हो रहे हैं? इन रसराज के ब्रह्मानन्द तिरस्कारी सौन्दर्य, माधुर्य को, अनन्तानन्त, नित्योच्छलित, गुणसमुद्र को क्या चन्द्रमा किंवा तारकगण प्रकाशित कर रहे हैं? है किसी तेज की सामर्थ्य जो प्रियतम श्यामसुन्दर के मुख को, इस दैदीप्यमान सौन्दर्य राशि को प्रकाशित कर सके? यह नील ज्योति विद्युन्मय

है या किसी महान् ऋषि द्वारा प्रतिष्ठित यज्ञाग्नि का प्रकाश है ? कदापि नहीं, कदापि नहीं। प्राकृत अप्राकृत जगतमें जो भी तत्व प्रकाशशील हैं, वे तो इसी सर्व-रसनिधान, नीली ज्योत्स्ना, सच्चिन्मयी नीलिमा के एक अंश की छाया की भी छाया के छोटे से छोटे मात्र अंश से ही प्रकाशमान है। फिर इस सच्चिन्मयी नीलिमा को कौन प्रकाशित कर रहा है ? यह महिमा तो श्री राधा, महाभावमयी श्री राधा की ही है। वे ही अपनी समाराधना से प्रियतम रसराज श्रीकृष्ण का, माधव का प्रकाश कर रही हैं। और स्वयं निज हृदय में ही प्रकाशित नहीं कर रही हैं, सर्वत्र, सबको, कीट, पतंग, तृण, गुल्म, लतादि तक को प्रियतम माधव का, रसराज, प्रियतम श्रीकृष्ण का वितरण कर रही हैं, दान कर रही हैं, उन्मुक्त हाथों से दान कर रही हैं। हे शुकराज ! कैसा अनुपम, परम विलक्षण समाराधन है, प्रियतम रसराज का। इसीलिये तो प्रियतम श्यामसुन्दर उन्हें राधिके और जीवन मूल दोनों एक साथ कह रहे हैं।

देखो, देखो शुकराज, प्रियतम के मुख पर अपने ही कथन, चमत्कार का रहस्य उद्‌घाटित होता देख कैसी सुमधुर, अनन्त मधुर मुसकान आयी है। वे मानो स्वीकार कर रहे हैं कि मेरा कथन परमार्थतः पूर्ण सत्य है।

हे शुकराज ! इस 'राधिके' शब्द की ही व्याख्या में सम्पूर्ण पद की व्याख्या निहित है। अतः तुम सुनते जाओ। बताओ शुक, प्रियतम कहते हैं तुम, मम, जीवनमूल, राधिके। हे राधिके ! तुम मेरी जीवनमूल हो। तो जीवन-मूल आत्मा में भी क्या तुम, मम, इस प्रकार द्वैत होता है क्या? तू मेरी आत्मा है, यह कथन ब्रह्मविद् के द्वारा, आत्मविद् के द्वारा कहना बनता है क्या ? तेरा, मेरा, इसका, उसका, ये सीमाएँ भी यदि ब्रह्मविद् में रहेंगी फिर तो वह सर्वसंशयी ही हो जायगा। प्रियतम तो सर्वज्ञ हैं, सर्ववित् हैं, सर्वत्र हैं, एकमात्र वे ही वे हैं। फिर मैं, तू, तेरा, मेरा कथन प्रियतम द्वारा जीवनमूल आत्मा के अर्थ में कैसे प्रयुक्त होता है ? हे शुकराज, यही रहस्य है जिसे प्रियतम "राधिके", शब्द कहकर प्रकट कर रहे हैं। यही तो प्रिया की समाराधना है। जिन प्रियतम श्रीकृष्ण की नखचन्द्र ज्योत्स्ना के कण मात्र की कृपा से

भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः

सम्पूर्ण संशय छिन्न हो जाते हैं और हृदय की अनन्त अनन्त जन्मों के अज्ञान की गाँठें खुल जाती हैं, उन परात्पर पुरुषोत्तम के कथन का रहस्य सुनो।

"तुम्हरे प्राननि सों अनुप्रानित, तुम्हरे मन मनवान ।
तुम्हरो प्रेम-सिंधु-सीकर लै करों सबहिं रसदान ॥
तुम्हरे रस-भंडार पुन्य तें पावत भिच्छुक चून ।
तुम सम केवल तुमहि एक हौ, तनिक न मानौ ऊन ॥" का भाव

यह श्री राधा की ही आराधना है जिससे सर्वथा विशुद्ध, निर्मल, निष्कल, अवयव रहित, परब्रह्म, परम रसमय वपु धारण कर तेरे, मेरे की सीमा में बँधा निर्निमेष नयन किये यहाँ शयित है । यह श्री राधा की ही आराधना है, जिससे सम्पूर्ण प्राणियों के प्राणों और शरीरों का नियमन करने वाले परब्रह्म, परमेश्वर, जो मात्र अपनी महिमा में ही प्रकट होते हैं, अन्यत्र कहीं नहीं, जो सबको जाननेवाले हैं, परन्तु जिनको कोई कभी नहीं जान सकता, जो सबको देखते हैं, परन्तु जिनको कभी कोई नहीं देख सकता, जो पुरुषोत्तम निश्चय ही परम दिव्य, पूर्ण, आकार रहित, जन्मादि विकारों से रहित, प्राणरहित, मनरहित, सर्वकारण, सबसे परे हैं, वे ही श्री राधा के ही नहीं, हम सबके नेत्रों के भी विषय प्रत्यक्ष हो रहे हैं । हम उनसे हँसते हैं, बोलते हैं, खेलते हैं, उनका नियमन करते हैं, उन पर शासन करते हैं, उनको उठाते हैं, बैठाते हैं, खिलाते हैं, उनका तिरस्कार करते हैं, उन्हें तर्जते हैं और वे परम निर्मल कैसे निरीह, दीन, असमर्थ, सीमित, मोहित, मुग्ध, यहाँ इस कुञ्ज में शयित हैं । जिनके लिये श्रुतियाँ कहती हैं—

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो
यथैतदनुशिष्यादन्यदेव यद्विदितादथो अविदितादधि ।

जिस सच्चिदानन्दघन परब्रह्म को अन्तःकरण और इन्द्रियाँ जान नहीं सकतीं, ये मन, इन्द्रियाँ वहाँ तक पहुँच ही नहीं सकतीं, उस अलौकिक, दिव्य तत्व में इनका प्रवेश ही नहीं हो सकता, अपितु इनमें जो चेतना और क्रिया प्रतीत होती है, सब उसी ब्रह्म की प्रेरणा से और उसी की शक्ति से होती है, जिस ब्रह्म तत्व के उपदेश का भी कोई उपाय नहीं, किसी के भी द्वारा यह ब्रह्म-तत्व न तो समझाया जा सकता है और न स्वयं अपनी बुद्धि से ही विचार के द्वारा यह समझ में आसकता है, जो जड़, चेतन, सबसे अतीत हैं, उस ब्रह्म को भी जिसकी समाराधना इन्द्रियों का विषय बना रही है, वे श्री राधिका तो "तुम सम केवल तुम हि एक हौ" ही कही जा सकती हैं । हे शुकराज, इसीलिये

अपने मुख से श्री राधा की कीर्ति गाते हुए प्रियतम कहते हैं, "तुम सम केवल तुमहि एक हौ, तनिक न मानौ ऊन।"

हे शुकराज। जब हम किसी भी वस्तु को उपमा देकर उसे किसी के समतुल्य बताते हैं, वर्णन करते हैं तो जिसकी उपमा दी जाती है, वह निरुपम ही होता है। जैसे यदि हम किसी को चन्द्रमुखी कहेंगे तब निश्चय ही यह मानेंगे कि चन्द्रमा स्वयं में निरुपम है, अनुपम है। इसीलिये वह उपमेय है, उपमा के योग्य है। हमारा ज्ञान एवं प्रकाश तो सीमित है। परन्तु प्रियतम श्रीकृष्ण जब अपनी प्रिया को 'नहिँ कहुँ कोउ समतूल' कहते हैं, तो इस कथन की सीमा असीम को भी लाँघ जाती है। श्री कृष्ण का ऐश्वर्य इतना महान है कि उनके लिये 'नहिँ कहुँ कोउ समतूल' कहना बनता ही नहीं। इसी लिये यहाँ यह 'नहिँ कहुँ कोउ समतूल' कहना स्पष्ट स्पष्ट उद्घोषित कर रहा है कि श्रीकृष्ण जो महा, महा महिम हैं. जो अनन्त, अनन्त महिमा के भी आश्रय मात्र हैं, अपने को अपनी प्रिया की महिमा के सम्मुख अत्यन्त तुच्छ स्वीकार करते हैं।

हे शुकराज! प्रियतम श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण महिमा प्रिया ही हैं। प्रियतम तो मात्र महिमान्वित हैं। हे शुकराज, प्रियतम श्रीकृष्ण की समग्र अमरता प्रिया श्री राधा ही हैं, प्रियतम तो उस अमरता को वरण किये, नित्य जीवन्त मात्र हैं।

प्रिया ही श्रीकृष्ण की प्राण संजीवनी हैं, इसीलिये वे प्राणेश्वरी हैं, प्रिया हैं, प्रियतमा हैं। वे ही श्रीकृष्ण की जीवन श्री हैं। प्रियतम तो उन्हीं को वरण कर जीवन्त हैं, सुशोभित हैं। प्रिया ही प्रियतम के मन की मन हैं। प्रियतम उन्हें वरण करके ही मनवान हैं। वे ही उनके कानों की कान हैं। चक्षु इन्द्रियों की चक्षु हैं। प्राणों की प्राण हैं। वाणी की वाणी हैं। अंग अवयवों की मूल हैं। वे प्रियतम के कारण की भी कारण हैं। प्रियतम के सब बाहर भीतर के करण उनकी ही शक्ति को पाकर अपना अपना कार्य करने में समर्थ हैं।

प्रिया श्री राधा की महिमा प्रियतम वाणी के द्वारा भी नहीं बतला सकते, क्योंकि जिनकी शक्ति से प्रियतम की वाणी बोलती है, अर्थात जिनकी शक्ति से प्रियतम बोलने में समर्थ होते हैं, उनको ही हे, शुक! तुम राधा जानो। श्री राधा की महिमा को प्रियतम अंतःकरण के द्वारा भी नहीं सोच सकते, क्यों कि जिन की ही महिमा से प्रियतम का अन्तःकरण प्रतिभात है, हे शुक, उन्हें ही तुम राधा जानो। इन श्री राधा के रूप सौन्दर्य को प्रियतम पूर्णरूप से

अपनी नेत्रेन्द्रियों से देख ही नहीं सकते, क्योंकि जिनकी शक्ति से प्रियतम की नेत्रेन्द्रियाँ उद्भासित हैं, देखती हैं. उन्हें ही हे शुक। तुम प्रिया जानो। श्रीराधा रूप-महिमा को प्रियतम अपने कानों से पूर्णरूप में सुन ही नहीं सकते, क्योंकि जिनकी महिमा से प्रियतम की श्रोत्र इन्द्रियाँ सुनती हैं, उन्हें ही हे शुक, तुम राधा जानो। प्रियतम के प्राणों को भी जो प्रेरणा देने वाली हैं, शक्ति देने वाली हैं, जिनकी शक्ति से, जिनकी प्रेरणा से प्रियतम के प्राण चेष्टाशील हैं, उन महाशक्ति परदेवी को ही हे शुक, तुम प्रियतमा, प्राणेश्वरी, प्रियतम-जीवनमूला, राधा जानो।

वे प्रेमसिन्धु श्री राधा प्रियतम की समग्र अभिलाषाओं की आश्रय भी हैं और विषय भी हैं। क्योंकि वे मात्र आश्रय ही होतीं तो प्रियतमातीत होतीं, फिर तो वे अगोचर अग्राह्य, अगम्य, हो जातीं, परन्तु वे प्रियतम-प्रेमाश्रया के साथ ही साथ प्रियतम-प्रेम-विषया भी हैं। इसीलिये प्रियतम की समग्र इन्द्रियाँ, अवयव, मन, बुद्धि, प्राण, मात्र प्रिया को ही लक्ष करके उद्दाम गति से उच्छलित होती हुई बहती हैं, और प्रिया-रूप-समुद्र में ही अपने रस की कृतार्थता का अनुभव कर विलीन होती जाती हैं। फिर इन सबके अलग नामरूप नहीं रहते हैं, ये मात्र राधा ही होजाती हैं। क्योंकि सत्यतः ये राधा ही हैं।

जिस प्रकार रथ के पहिये में लगे रहने वाले अरे सब ओर उस पहिये के मध्यस्थ नाभि में प्रविष्ट रहते हैं, उन सबका आधार नाभि है, नाभि के बिना वे टिक ही नहीं सकते. उसी प्रकार प्रियतम माधव की समस्त बाह्य एवं अन्तर इन्द्रियाँ जिनके आश्रय से सरसित होती हैं, जिनमें नित्य प्रकाशमान हैं और जिनकी ओर नित्यरसोच्छलित गतिमान होती हैं, जिनमें विलय होती हैं, अनन्त विश्राम पाती हैं, उन्हें ही हे शुकराज, तुम रासेश्वरी, प्राणेश्वरी राधिका परदेवी मानो।

"तुम्हरौ स्वत्व अनन्त नित्य, सब भाँति पूर्न अधिकार
कायव्यूह निज रस वितरन करवावति परम उदार" का भाव

हे शुकराज! प्रियतम माधव तो राधा रूप महाभाव समुद्र के अणु मात्र कोही अपने रसमय वपु द्वारा अभिव्यक्ति दे पाते हैं, प्रिया तो निस्सन्देह प्रियतम के बाहर एवं भीतर सब ओर परिपूर्ण हैं। उन सर्वभावमयी परदेवी को प्रियतम सुखविधानार्थ अनन्त, अनन्त रस को प्रकट करने में, इस प्रत्यक्ष

दीखने वाले महा महा उच्छलित रससिन्धु महाधाम को चरितार्थता देने में, किसी भी प्रकार का तप, प्रयास की आवश्यकता नहीं है। उनके संकल्प से ही अनन्त रससिन्धु यह गोलोक धाम, रसधाम अपने आप प्रकट हो जाता है। ये राधिका महादेवी बिना प्राण के, बिना मन के, बिना इन्द्रियों के, इन सबके बिना ही मात्र अपने भावमय स्वरूप से सर्वभवन समर्थ हैं। इसीलिये वे सर्वतोभावेन श्री कृष्णाङ्गा, श्री कृष्णमयी होते हुये भी इन सर्वशक्तिमान, अविनाशी प्रियतम माधव से भी अत्यन्त अनुपम, अत्यन्त उत्तम, परमोत्तम, उत्तमोत्तम, परम श्रेष्ठ, श्रेष्ठतम हैं। प्रियतम माधव में तो जो भी उत्तम दृष्टिगोचर होता है, जो भी श्रेष्ठत्व व्यक्त है, वह उस राधा समुद्र का एक अंश ही है।

हे शुकराज ! इस गोलोक रूप जगत का द्युलोक ही मानो उन परदेवी श्री राधा का मस्तक है। ये गोलोक रूप आकाश में चमकने वाले सूर्य और चन्द्रमा ही इनके दोनों नेत्र हैं। समस्त दिशाएँ कान हैं, वायु प्राण हैं, अभिव्यक्त सम्पूर्ण चराचर उनका हृदय है, और यह भूमि ही मानों उनके पैर हैं। उन परदेवी परमेश्वरी को ही जो प्रियतम श्रीकृष्ण और हम सबकी अन्तर्यामी हैं, हे शुकराज, तुम राधा मानो। यह गोलोक रूप जगत का परम रसमय काल, कालान्तर्गत परम रसमय देश, सब जड़ चेतन जीवसमूह निज प्रियतम सुखार्थ, निज प्रियतम प्रेमार्थ श्री राधा का ही कायव्यूह अभिव्यक्तीकरण है। ये श्री राधा ही अपने कायव्यूह से अनेक जाति एवं श्रेणी के गोप, गोपी, देवी, देवता, पशु, पक्षी, प्राण, अपान, वायु, धान जौ, आदि अन्न, तथा तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य, यज्ञ, आदि के अनुष्ठान की विधि, बनी हैं। ये श्री राधा ही अपने कायव्यूह से ऋग्वेद की ऋचायें, सामवेद के मंत्र, यजुर्वेद की श्रुतियाँ, यज्ञादि कर्मों की दीक्षा, सब प्रकार के यज्ञ और उनमें दी जाने वाली दक्षिणाएँ, जिसमें ये यज्ञादि महात्मा वृषभानुजी एवं नन्दादि गोप करते हैं, वह संवत्सर रूप काल, उनको कराने वाले गर्गादि ऋषि, और करने के अधिकारी यजमान, उनके फलस्वरूप वे सब लोक, लोकान्तर, जो निरन्तर प्रियतम श्रीकृष्ण के सुखाभिवर्द्धन में उपकरण रूप से सहयोगी रहते हैं, नित्य निरन्तर जिनकी सभी चेष्टाएँ प्रियतम श्रीकृष्ण के सुख-सेवार्थ समग्र विधान निर्माण करने को तत्पर रहती हैं, बनी हुई हैं। ये महादेवी श्री राधा ही इस गोलोक धाम के नाना प्रकार के मनुष्य, विभिन्न जातियों के पशु, विविध भाँति के पक्षी, सबके जीवन-रूप प्राण और अपान, और जिनमें प्रियतम सुखार्थ विषयों को प्रकाशित करने

की विशेष शक्तियाँ हैं, वे इन्द्रियाँ, कान, त्वचा, नेत्र, रसना, और घ्राण, तथा वाणी एवं मन, मन एवं इन्द्रियों की प्रियतम सेवामयी वृत्तियाँ, जैसे मनन करना, सुनना, स्पर्श करना, देखना, स्वाद लेना, सूँघना, और बोलना आदि, अर्थात् श्रीकृष्ण-सेवा-रूप-विषय ग्रहण करने वाली शक्तियाँ, बनी हैं।

श्री राधा ही अपने कायव्यूह स्वरूप से यमुना, गिरिराज आदि नदी, पर्वत, इनसे निकलकर बहनेवाले अनेक प्रकार के निर्झर, नद, सर, सरोवर, वन, उपवन, बनी हैं, जो अपनी अनन्त रसमयता से नित्य प्रियतम सेवा करती रहती हैं।

यहाँ इस गोलोक धाम में जितने भी हिलने, चलनेवाले, श्वास लेनेवाले, आँख खोलनेवाले और मूँदनेवाले प्राणी हैं, सबका सबकुछ इन्हीं श्री प्रिया राधा का ही स्वत्व हैं, उन्हें ही समर्पित है और उनमें ही स्थित है। सबकी आश्रय ये प्रिया ही है। यहाँ जो कुछ सत् और असत, कार्य और कारण, प्रकट और अप्रकट है, सबका सब स्वत्व, सबकी मात्र आश्रय जो हैं, उन्हें तुम श्री राधा ही मानो।

इसीलिये हे शुकराज, इस गोलोक का अणु, अणु, परमाणु, परमाणु अत्यंत तत्परता से, सर्वथा प्रमादरहित हो, प्रियतम में तन्मय है। स्वसुखरूप वृत्तियों की यहाँ झलक भी नहीं दिखती। सर्वत्र, सबमें, अनन्त, अनन्त प्रियतम सुखवाञ्छारूप प्रेम ही प्रेम लहराता रहता है।

देखो, देखो, शुकराज इस राधामय, राधाकायव्यूह रूप सम्पूर्ण गोलोक की झाँकी तुम्हें दिखाती हूँ, देखो। सारिका के इतना कहते ही शुक, सारी, दोनों एक अभिनव मधुर भाव में विलीन हो जाते हैं, दोनों ही मानो प्रिया के चिदाकाश, से हृदयाकाश से एकात्म्य कर लेते हैं। फिर भी सारिका की यंत्र-चालित सी वाणी बंद नहीं होती, वह बोलती ही जाती है—"संवत्सर रूप समष्टि जिसमें प्रकट होती है, तथा तिरोहित भी होती रहती है, उसे ही तो 'काल' संज्ञा दी गई है। परन्तु इस गोलोकधाम में काल की यह संज्ञा है ही नहीं। इसीप्रकार उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, ऊर्ध्व, अधः रूप समष्टि जिसमें व्यक्त हो रही है, जिसमें स्थित रहती है और प्रलीन होती रहती है, उसे ही तो देश कहते हैं। परन्तु हमारे इस गोलोक में ऐसा देश भी है क्या ? हमारे यहाँ समष्टि न कालान्तर्गत है एवं न ही देश-सीमित है। जिस देश एवं काल की

हमें प्रतीति है वह तो मात्र एक विलक्षण भावावस्था है। प्रिया राधा का भी कोई 'अहम्' है, यह अहङ्कार जनित अनुभूति उन्हें कभी, किसी काल में ही नहीं होती। वे लेटी हैं, या बैठी हैं, कहाँ, किस देश की भूमि उनका आधार है, प्रभात है, कि मध्याह्न है, कौन वर्ष, मास, तिथि, दिवस है, इसप्रकार की प्रतीति उन्हें होती ही नहीं। उन में तो सदा एक ही विलक्षण अनुभूति लहराती रहती है:-

"कृष्णैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्, प्रियतमैवेदं सर्वम्, प्रेमैवेदं सर्वम्, एकमेवाद्वितीयम्"

बस, मात्र इसी अनुभूति में उनका देश,काल सबकुछ डूबा रहता है। चित्त में कोई संस्कार, वृत्ति शेष रहे तब न कोई स्मृति हो। जहाँ संस्कार, वृत्तियाँ हैं ही नहीं, मात्र श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण हैं, प्रियतम ही प्रियतम हैं, वहाँ एकमात्र अद्वितीय कृष्ण ही तो प्रत्यक्ष हैं, प्रियतम ही तो अपरोक्ष हैं।

'कृष्णैवेदं सर्वम् प्रियतमैवेदं सर्वम्, प्रेमैवेदं सर्वम्, सर्वम् खल्विदं कृष्ण"

इस स्थिति में नित्य तरंगायित, लहराती जिसकी अस्मिता है, वहाँ कहाँ देश है, और कैसा काल है? हे शुक, वितथ उसे ही तो कहते हैं जिसमें यथार्थत्व न हो, जो सच्चा न हो, बाध्य हो, एकरूप नहीं हो, विषम हो, परन्तु हमारा यह गोलोकदेश एवं इसका काल भी ऐसा ही है क्या? शुकराज! प्रेम कोई द्रव्य है ही नहीं। भाव कोई मनोगत संस्कार, वृत्ति नहीं है। प्रेमभाव एवं उसमें ही डूबते, उतराते प्रियतम रसराज तो अनन्त, अपार, अखण्ड, नित्य आनन्द मात्र हैं, भावबोध हैं, भावसत्य हैं और वे ही एकमेव अद्वितीय हैं। इसी सत्य में हम सब की भी अस्मिताएँ जो मात्र भावजन्य, अखण्ड रसरूप हैं, भावसमुद्र में ही लहरों की तरह डूबतीं, उतरातीं, प्रकट एवं लीन होती, लीलारत रहती हैं।

हे शुक, प्रेम-घन-विग्रह प्रियतम और सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में इतना ही अन्तर है कि ब्रह्म घनशान्त है और प्रेम-घन घनश्याम नित्य नवनवायमान, आस्वादनमय, उच्छलित है। यह रससमुद्र कभी पीछे की ओर अपसर्पित होता है, कभी अनन्त वेग से आगे की ओर उमड़ उठता है। कभी दक्षिण तट को वक्र हो आप्यायित करता है, कभी वामतट की ओर वक्र हो, उसे आत्मसात्

करने लपकता है। अब एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है, क्या इस प्रेमानन्दघन भाव में कोई तट एवं दिशाएँ भी हैं क्या ? यदि दिशाएँ और तट हैं तब वह एकमेवाद्वितीयं सिद्ध नहीं होता। इसका उत्तर है कि दिशाएँ तट हैं भी, और साथ ही नहीं भी हैं। जहाँ प्रेम ही प्रेम है, घनप्रेम है. वहाँ प्रेम से अतिरिक्त तट संभव ही नहीं। परन्तु जब यह लहराता है, उमड़ता, उछलता है, एवं परम आस्वादनीय प्रेम-घन-विग्रह होकर प्रिया, प्रियतम में रूपान्तरित हो जाता है, वहाँ प्रियतम रूप में प्रिया इसका किनारा, तट, अवकाश, एवं दिशाएँ बनजाती हैं, और प्रियारूप में प्रियतम इसका किनारा, तट, अवकाश, दिशाएँ सीमा बन जाते हैं। परन्तु प्रियतम के लिये, प्रिया तथा प्रिया के लिये प्रियतम तट संज्ञक हैं भी नहीं। प्रियाभाव समुद्र ही जब रसरूप लहर में प्रियतम होकर लहरा रही हैं तब प्रियतम को तट कैसे कहा जा सकता है। लहर ही यदि समुद्र का किनारा, समुद्र के लिये अवकाश बनगई, तो वास्तविकता में वह किनारा है क्या ? अवकाश है क्या ? अतएव किनारा है भी, अवकाश है भी, और नहीं भी है, यही कहा जा सकता है। यही भावाद्वैत, रसाद्वैत है।

भाव प्रेम ही है, परन्तु वह पूर्ण है, और पूर्ण में कुछ है और कुछ नहीं है, ऐसा कहना युक्तिसंगत कदापि नहीं हो सकता। पूर्णता में यदि विरुद्धधर्म न हो तो वह पूर्णता कैसी ? अतः प्राकृतिक बुद्धि पूर्णता को समझ ही नहीं सकती। पूर्णता में यदि अपूर्णता न हो तो वह पूर्णता कहाँ है ? अपूर्णता तो उससे द्वितीय बच ही गई। ज्ञान में यदि अज्ञान की सत्ता ही न हो तो फिर वह पूर्ण हुआ ही नहीं। पूर्ण का अर्थ ही है, ज्ञान और अज्ञान युगपत्, पूर्ण, अपूर्ण, युगपत्। ठीक इसी प्रकार यह प्रेमसमुद्र तट और अवकाश से युक्त पूर्ण है।

यह प्रेम जगत माया से भी रहित नहीं, माया सहित ही है। है वह प्रिया रूप ही, प्रियतम रूप ही, परन्तु इस प्रेम जगत में अत्यंत मधुर माया है अवश्य। यही तो प्रियतम की अन्तिम पंक्तियों का रहस्य है "तुम्हरी मधुर रहस्यमयी मोहनि माया सौं नित्य, दक्षिण बाम रसास्वादन हित बनतौ रहूँ निमित्त"—यह माया भी है परम मधुर, रहस्यमयी और प्रियतम मोहिनी, प्रिया मोहिनी। जहाँ यह प्रिया की माया है, वहाँ प्रियतम को मोहित किये रहती है, और जहाँ प्रियतम की माया है वहाँ प्रिया मोहित है। यहपरम रहस्यमयी है क्यों

कि इसका स्वरूप तमोमय मिथ्या नहीं है। मिथ्या होनेपर माया का रहस्य तो खुल गया न कि यह मिथ्या है। जो इदमित्थं है वह रहस्यमय कहाँ? रहस्यमय तो उसे ही कहा जा सकता है जिसका निर्णय ही नहीं हो सके कि यह क्या है? इसे अनिर्वचनीय भी नहीं कह सकते क्योंकि अनिर्वचनीय तो निर्वचन की सीमा बता रहा है। जिसका निर्वचन नहीं हो सकता, उसे अनिर्वचनीय कहते हैं। परन्तु रहस्यमय, अनिर्वचनीय नहीं है। उसमें रहस्य है, यह उसका निर्वचन तो हो ही गया। अतः उसे अनिर्वचनीय नहीं कहा जा सकता है। इसका निर्वचन है कि यह माया है, परम मधुर है, प्रिया स्वरूपभूता है, पूर्णतया प्रिया स्वरूपभूता है, परम मधुर है, प्रियतम स्वरूपभूता है, और यही माया प्रियतम रसास्वादनार्थ दक्षिण एवं बाम तटों पर प्रेमसिन्धु को, भावब्रह्म को लहराने में निमित्त है, प्रेम समुद्र को वक्रगति देने में, वक्रोच्छलन में निमित्त है। घनशान्त को उच्छलित कर कभी पीछे की ओर सरकाती, पुनः आगे की ओर बढाती वेग देती है, गति देती है, लहर देती है। घनरस को अनन्त आस्वाद्य, नित नवनवायमान आस्वाद्य बनादेती है। यही माया परमभावमय जीवनमूल को जीवनरस बनादेती है। नित्य घनरस सच्चिदानन्द को सुखमय बनाकर नेत्रेन्द्रिय विषय, मनके विषय, प्राणों के विषय में प्रकाशित कर देती है। यह माया ही श्रीराधा की आराधना है, जिससे परब्रह्म को हम सब इन परमेश्वरी के पाँव पलोटते देखते रहते हैं, उनकी अलकावलि का संलालन करते पा रहे हैं। और कितनी रहस्यमयी यह माया है कि जो ब्रह्मशक्ति सर्वज्ञाननिधान, सर्वानन्द निधान, सर्वसत्तानिधान, ब्रह्म-प्रतिष्ठा की भी प्रतिष्ठा हैं, वे प्रियतम-प्राणेश्वरी कितने महा दैन्य की मूर्ति बनीं, प्रियतम अंक में शयित हैं। उन्हें न साड़ी का ज्ञान है, न चोली का। उन्हें न लज्जा का ज्ञान है, न स्वरूप का। उनके सम्मुख तो एक ही सत्य अपरोक्ष है, कृष्णैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्। प्रियतमैवेदं सर्वम्। प्रेमैवेदं सर्वम्। एकमेवाद्वितीयम्।

किसे ज्ञान है, प्राणेश्वरी प्रिया, महा महा काममयी हैं कि ब्रह्म प्रतिष्ठा हैं, वे निज आत्मानुभूति में, पूर्णतया ब्रह्मवृत्ति में समाधिस्थ हैं कि प्रियतमालिंगन में, इन्द्रियजन्य सुख में विभोर हैं। मीमांसक अपनी अपनी बुद्धि से मीमांसा करते रहें। कोई उनके सौभाग्य का भले ही यह कहकर गान करले कि "परमरस पायो ब्रज की नारि।" चाहे कोई उन्हें "जार बुद्धिवाली" घोषित

करदे, परन्तु प्रियतम प्राणेश्वरी के अन्तःकरण में, उनके चिदाकास में किसका प्रवेश है ? जिस महा महाभाग्यवान को दूसरी छटा का किञ्चित् भी अनुभव है, वह तो पागल हो चीखने लग जायगा, 'सर्वं कृष्णैव' "रसोवैसः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति ।" जब 'ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति' श्रुतियाँ कहती हैं, आत्मवित् निर्गुण, निर्विकार, निर्विकल्प आत्मा हो जाता है, तो प्रेमवित् प्रिया प्रियतम के अतिरिक्त कैसे बची रह जावेंगी ?

प्रिया 'प्रेमानन्दमनन्तं कृष्ण" और प्रियतम "प्रेमानन्दमनन्तं राधा ही तो हैं । प्राणियों की हृदयरूप गुफा में ब्रह्म भले ही छुपा रहे, परन्तु प्रिया-हृदय रूप चिदाकाश में तो श्रीकृष्णचन्द्र सर्वत्र पूर्ण, पूर्णरूपेण सरस रहे हैं, पूर्ण मनोहर छटा दिखा रहे हैं । अपने अतिरिक्त अन्य किसी का, किसी काल में, कहीं भी, कभी भी, लेशान्वेषण ही नहीं रहने देकर, मात्र वे ही वे तो सरस रहे हैं । प्रियतमा पूर्णरूप से प्रियतम को प्राप्त हैं, और प्रियतम पूर्णरूप से प्रियतमा को प्राप्त हैं और यह अखण्ड नित्य प्राप्ति ब्रज के पत्ते पत्ते को है । क्योंकि प्रिया एक शरीर में ही अवस्थित नहीं हैं, वे महाभावमयी हैं । कोई महा महासमुद्र कभी किसी मंजूषा, डिब्बी में, बंद हो सकता है क्या ? प्रिया विभु हैं, अनन्त हैं, अनन्त ही नहीं, अनन्तानन्त हैं । अनन्त श्रीकृष्ण तो उनकी नयनों की पुतरी में समा जाते हैं, उनकी बाहों में बँध जाते हैं, उनके हृदय में, उसके एक कोने में सट जाते हैं । वे अनन्त की सुखविधातृ हैं । वे अनन्त को अनन्तानन्त सुख देने की नित्य व्यवस्थापिका हैं । इसलिये उनका रस किसी एक दिशा से नहीं, सब दिशाओं से, सर्वओर से, विस्फोट की तरह फूट रहा है, धाराप्रवाह उमड़ता, उछलता, प्रवहमान है ।

बताओ शुक ! राधा प्राणवल्लभ प्रियतम का रस तो असमोर्ध्व है न ? वह अनन्तरूप भला किसी एक आँख में समा सकता है क्या ? प्रियतम की अनन्त मधुर वेणु ध्वनि को कोई एक कर्णेन्द्रिय अपने में ग्रहण कर सकती है क्या ? प्रियतम की अनन्त प्रेममाधुरी किसी एक हृदय का स्वत्व बनी रह सकती है क्या ? और प्रियतम की अनन्त लीला माधुरी को कोई एक चित्त, एकदेशीय चैतन्य, अनुभव भी कर सकता है क्या ? यह प्रियतम रूप नराकृति परब्रह्म की असमोर्ध्व, अतिविचित्र, सौन्दर्य, माधुर्य राशि, कितनी अद्भुत,

अनन्त और अतुलनीय है कि न तो उसकी कहीं सीमा है, न उसके अल्पांश की भी कहीं कोई तुलना है, क्योंकि उसमें अल्पत्व है ही नहीं। उसका अल्प से अल्प अंश भी परिपूर्ण है, अथाह है, असीम है, नित्य है, अखण्ड है। फिर उसका पूर्ण आस्वादन कैसे संभव है ? अल्प की तो कौन कहे, स्वयं सर्वशक्तिमान प्रियतम भी अपनी इस माधुर्य चतुष्टयी, रूप माधुरी, लीला माधुरी, वेणु माधुरी, प्रेममाधुरी का आस्वादन करने में सर्वथा सर्वथा असमर्थ हैं। यह साहित्य नहीं सत्य है, अनुभूति है। परन्तु अपने नित्य वर्धनशील उत्कंठा युक्त भाव द्वारा महाभाव स्वरूपिणी प्रिया उसका नित्य निरंतर सम्पूर्ण रूप से आस्वादन करती ही रहती हैं, फिर भी भूखी ही रहती हैं। उनकी उत्कंठा बनी की बनी रहती है।

सब जानते हैं, क्षुधा निवृत्त हो जाने पर भोजन में रुचि या प्रीति नहीं रहती। प्रियतम का अनन्त माधुर्य सबकी क्षुधा निवृत्त कर देने में, सबके माधुर्य रसास्वादन की चाह निवृत्त कर देने में समर्थ है। बताओ शुकराज, है कोई ऐसा ज्ञानी, ब्रह्मवित् कि ब्रह्म हो जाने पर भी उत्कंठा युक्त रहता हो ? नहीं उसकी सब उत्कंठाएँ ब्रह्म की पराशान्ति में पूर्णशान्त, तृप्त, हो जाती हैं, उसे कुछ जानना शेष नहीं रहता। उसे कोई सुख, न सुखी कर सकता है, न कोई आनन्द आनन्दित ही। वह तो पूर्ण, पूर्ण, परिपूर्ण हो जाता है। उसे कोई स्पृहा नहीं रहती, कोई जिज्ञासा नहीं रहती। तो जब ब्रह्म सुख ही सम्पूर्ण क्षुधा निवृत्त कर देने में समर्थ है, फिर प्रियतम का रूपमाधुर्य देखकर कैसे नयनों की क्षुधा रह सकती है ? प्रियतम की वेणुमाधुरी सुनकर कैसे कानों की श्रुति-उत्कंठा बनी रह सकती है ? उसके तो कण मात्र से ही, उसकी तो छाया के अल्पांश मात्र से ही, सम्पूर्ण इन्द्रियों की पूर्णतुष्टि, पूर्णकामता संभव है, संभव है ही नहीं, अवश्यंभावी है। परन्तु साथ ही यह भी परम सत्य है कि प्रिया की महाभावमयी, माधुर्यास्वादनमयी स्पृहा प्रियतम के समग्र माधुर्य का आस्वादन करके भी कभी निवृत्त, तृप्त नहीं होती, अतृप्त ही रहती है। इसीलिये वे अनन्तनेत्रा हैं, अनन्तकर्णा हैं, अनन्तचित्ता हैं, और अनन्तहृदया हैं। वे एकनेत्रा हो ही नहीं सकतीं, एककर्णा हो ही नहीं सकतीं, एक चित्ता हो ही नहीं सकतीं, एक हृदया हो ही नहीं सकतीं।

और हे शुकराज ! यह सत्य, सत्य, परम सत्य है कि इस गोलोक रूप,

जगत में, चाहे जिस रूप में व्यक्त हो, प्रिया की ही उत्कंठा परिलक्षित हो रही है। तभी तो हम सबकी उत्कंठा भी ज्यों की त्यों ही बनी रहती है। यही प्रमाणित करता है कि प्रिया के अतिरिक्त न तृण की सत्ता है, न गुल्म की, न आकाश की सत्ता है, न वायु की, न प्राणी की सत्ता है, न मन की, न किसी आकृति की सत्ता है, न किसी भाव की। सब महाभाव की ही तो उर्मियाँ हैं, महाभावहृदया प्रियासमुद्र की ही तो उर्मियाँ हैं, लहरें हैं। और लहरें मात्र वाणी का आश्रयभूत नाम मात्र है, सत्य तो सागर है, सागर ही है।

सारिका कहती है—"देखो, देखो शुक इस छवि को देखो", बस, दृष्य बदल जाता है, ब्राह्म बेला है। ब्राह्मणगण वेदपाठ कर रहे हैं। उनकी वेद ध्वनि गूँज रही है।

"ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिः यजत्राः
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳ सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।

शुक देखता है— ब्राह्मणगण पाठ तो वेद का कर रहे हैं परन्तु उनकी आराधना हो रही है नन्दभवन के प्राङ्गण में क्रीड़ा करते नव-नीरद-द्विभुज-नन्दतनय की। वे देवगणों से, किसी भी विधातृ शक्ति से यही याचना कर रहे हैं-कि कानों से नन्दतनूज, राधाप्राणधन की परम कल्याणकारी, मधुरातिमधुर वचनावली ही सुनते रहें, क्योंकि हमारे कानों को इससे अधिक सुख देने वाला कल्याण अन्यत्र उपलब्ध ही नहीं हो सकता। हमारे नेत्र इस व्रज वृन्दावन में क्रीड़ा करते राधाप्राणधन को ही देखते रहें, क्योंकि इससे अधिक कल्याणमय दृष्य हमारे नेत्रों को देखने को मिल ही नहीं सकता। सुदृढ़ अंगों एवं स्वस्थ इन्द्रियों सहित समग्र शरीर से भगवान की स्तुति करते हुए हम जो भी आयु प्राप्त करें उसका पल, पल, काल का थोड़े से थोड़ा भाग पर्यन्त, इस नवनीरद वर्ण नन्दतनय यशोदानन्दन राधाप्राणधन की सेवार्थ उसके सुखार्थ, प्रयुक्त हो जाय, कैसी सुमधुर प्रार्थना है। शुक का रोम रोम हर्षोत्फुल्ल हो रहा था, उसके कान सुन रहे थे-

स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः स्वस्ति
नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।

यशस्वी भगवान इन्द्र हमारे श्रीकृष्ण का कल्याण करें, और उनका यश सर्वत्र विस्तार हो, सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान रखने वाले भगवान पूषा हमारे

प्राणसर्वस्व श्रीकृष्ण का सदा मंगल करें। समस्त अरिष्टों को शमन करने की सामर्थ्य रखने वाले, सुदर्शन चक्र के समान शक्तिशाली भगवान तार्क्ष्य, गरुड़देव हमारे सबके प्राणप्रियतम का कल्याण करें, उनका सब प्रकार पोषण ही पोषण हो। सम्पूर्ण शुभ बुद्धि के स्वामी बृहस्पति भी हमारे प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण का कल्याण करें। उनका त्रिविध ताप सदा सदा के लिए शान्त, हो शान्त, हो शान्त हो।

ब्राह्मणों का पाठ चल रहा था—

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदोविदुः

इस नन्द भवन में, इस व्रजमंडल में विचरनेवाली नीली ज्योति परम निर्मल है, प्रेमातिरिक्त कोई भी अन्य वस्तु का इसमें सर्वथा, सर्वथा अभाव है, इसीलिये यह परम निर्मल है, यह सर्वथा निष्कल है, पूर्ण है, इसमें कोई अवयव, अंश, भाग विभाग है ही नहीं। इसका अणु अणु, परमाणु परमाणु, पूर्णसुन्दर पूर्णमधुर, पूर्ण प्रेममय है। यह हिरण्मय पूर्ण प्रेमप्रकाशयुक्त हृदय धाम में ही निवास करती है और सर्वथा विशुद्ध सब ज्योतियों की ज्योति है। उसे जानना ही आत्मविद्या है।

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वम् च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।

ये नन्दनंदन नहीं, अमृतस्वरूप हमारी आत्मा परब्रह्म हैं, वे ही हमारे सदा सामने रहें, वे ही हमारे पीछे, वे ही दायीं ओर, बायीं ओर, नीचे की ओर, ऊपर की ओर, हमें छाया किये रहें और हमारे लिये हमारा सम्पूर्ण स्वार्थ, परमार्थ रूप जगत् नन्दनन्दन ही हो जाय।

सारिका पुनः बोल उठी- हे शुक, इन ब्राह्मणों में भी कहाँ है मत्सुख, कहाँ है मत्कल्याण और कहाँ है अहम्। सब तत्सुख, तत्कल्याण, और तत्प्रेम ही तो है। फिर यह भावसमुद्र महाभावसमुद्र नहीं तो क्या है? प्रकाश अनेक बिम्बों से ही तो प्रकाशित हो रहा है। आकृतियाँ अनेक भले ही धारण करली गई हों, कानों में उत्कंठा वही प्रिया की ही है, नेत्रों की प्यास वही प्रिया की है, हृदय के भाव वे ही प्रिया के ही तो हैं। जल तो वही है, चाहे समुद्र में हो, या नदी में, चाहे सर में, सरोवर में किंवा, कूप में हो। जल का श्रोत तो उदधि ही है।

अतः हे शुकराज, आकृतियाँ हैं वाणी का आश्रय भूत नाम मात्र, सत्य तो एक ही है। प्रियतम अपनी अनन्त सौन्दर्य छवि से प्रिया के हृदय में ही सरस रहे हैं, नित्य सरस रहे हैं, अखंड सरस रहे हैं, भूत, भविष्य और वर्त्तमान की कालावधि की सीमा से असीम, निरवधि कालपर्यन्त। हे शुकराज, जिस प्रकार प्रियाप्रेम विभु है, प्रियाभाव विभु है, उसी प्रकार प्रियतम का माधुर्य रस, लावण्य रस, सौन्दर्य रस, वैदग्ध्य रस भी तो भूमा है, विभु है, अनन्तानन्त है। ज्यों ज्यों प्रिया की माधुर्यास्वादन स्पृहा प्रसरित होती है, उत्तरोत्तर विकसित होती है, त्यों ही त्यों प्रियतम में भी नवीन नवीन रूप से नवनवायमान माधुर्य का विकास प्रस्फुटित होता है। नित्य नई नई मधुर विचित्रताओं से वे मंडित होते ही जाते हैं। इसी प्रकार श्रीराधा की उत्कंठा से प्रियतम का माधुर्य स्पर्द्धातुर हो उठता है। दोनों ही परम विभु, दोनों ही भूमा। दोनों ही मानो होड़ लगाकर एक दूसरे को परास्त कर देने के लिये उत्तरोत्तर प्रबल शक्ति होते रहते हैं। श्रीराधा अनन्त नेत्र हो अनन्त रूप को निहारती हैं। न नेत्रों की स्पृहा न्यून, न रूप का उदधि ही न्यून, क्योंकि अल्पता यहाँ है ही नहीं।

"यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति"

निश्चय ही भूमा ही सुख है, अल्प में सुख है ही नहीं। तो भूमा किसे कहते हैं ? श्रुतियाँ कहती हैं—

"यत्र नान्यत् पश्यति नान्यत् शृणोति, नान्यत् विजानाति।"

जो अन्य को न देखता है, न सुनता है, न अनुभव करता है, वही भूमा है। इसीलिये प्रिया के कानों में मात्र प्रियतम ही प्रियतम हैं, अन्य कोई शब्द नहीं। प्रिया के नेत्रों में प्रियतम ही प्रियतम हैं, अन्य कोई रूप नहीं, । प्रिया के हृदय में प्रियतम ही प्रियतम हैं, अन्य कोई भाव नहीं। और प्रियतम की रूप माधुरी ही मात्र प्रिया के नेत्रों के ही लिये है, अन्यत्र जैसे उसका कहीं, कोई अस्तित्व ही नहीं। उनकी प्रेम माधुरी भी मात्र प्रिया के हृदय का ही भूषण है, अन्यत्र जैसे उसकी सत्ता ही नहीं। प्रियतम की वेणुमाधुरी मात्र प्रिया के कानों को ही स्पर्श करती है, अन्य उस माधुरी को कोई स्पर्श ही नहीं कर पाता। और प्रियतम की लीलामाधुरी मात्र प्रिया की चेतनता को ही झंकृत करती है, स्पन्दित करती है, अन्यत्र उसका स्पन्दन हो ही नहीं सकता। इसीलिये प्रिया अतुलनीय हैं, निरुपम हैं।

, जो अन्य को देखता है, सुनता है, जानता है, वह भूमा है ही नहीं। प्रत्येक ऐश्वर्य अन्य को देखेगा, सुनेगा और जानेगा ही। क्योंकि ऐश्वर्य का प्रकाश ही अन्यता की प्रतिष्ठा पर आधारित है। किसी नश्वरके लिये ही ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा है। इसीलिये प्रियतम का माधुर्य किसी भी प्रकार के ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति नहीं है। रस ऐश्वर्य नहीं है, यह तो मात्र भाव का प्रकाश है। यह किसी अभावरूप कटुता का निषेध माधुर्य नहीं है, यह रसमाधुरी तो मात्र भावमय है, निज में ही पूर्ण, परिपूर्ण है। भाव का आस्वादन ही रस है। ऐश्वर्य जहाँ भी है, चाहे उसकी सत्ता जीव में हो, देव में हो, चाहे साक्षात् ईश्वर में भी हो, सब माया की उपाधि ही है। इसीलिये जितने ऐश्वर्य सहित अवतार हुए हैं वे सब मात्र मायोपाधिक ही हैं, भूमा कदापि, कदापि नहीं हैं। परब्रह्म और मायातीत भूमा तो श्रीकृष्ण ही हैं। प्रियतम ही हैं। शान्तभक्त में भी जो आनन्दरूप प्रियता, रसरूपता है, शान्तभक्त जिस आनन्दरस माधुर्य का अनुभव करता है, उसकी माधुर्यानुभूति, ऐश्वर्य ज्ञानयुक्त होने के कारण अल्प ही है। यह माधुर्यानुभूति 'एकमेव अद्वितीय',नहीं है। उसमें ऐश्वर्यरूप अन्यत्व है। इसीलिये ब्रह्म तत्वतः रसरूप होने पर भी उच्छलित नहीं है, रसिक नहीं है। वह बायें से दायें, आगे, पीछे, उच्छलित, वक्र नहीं होता। सगुण निराकार परमात्मा में भी ह्लादिनी शक्ति के भाव का आंशिक प्रकाश ही है। वह साक्षी है, द्रष्टा है, किन्तु रसिक वह भी नहीं है। रसिकता वहाँ कदापि, कदापि नहीं है। यद्यपि रसशून्य न परमात्मा है, न ब्रह्म है। परन्तु जैसे शरीर के हाथरूपी कर्मेन्द्रिय, अवयव में प्राणों का संचार है, परन्तु हाथ, नेत्रेन्द्रिय की क्रिया दर्शन से युक्त नहीं, न ही कर्णेन्द्रिय की क्रिया श्रवण से युक्त हैं। नेत्रेन्द्रियों में, कर्णेन्द्रियों में यद्यपि प्राणों का समान संचार है, फिर भी कान देख नहीं सकते, नेत्र सुन नहीं सकते, ठीक इसी प्रकार षडैश्वर्यपूर्ण, पूर्णशक्ति विकसित राम, नृसिंहादि अन्य भगवत्स्वरूपों में भी ह्लादिनी शक्ति का विचित्र विलास होते हुए भी ये सर्वरसमंडित नहीं हैं, पूर्ण रसिक नहीं हैं। सम्पूर्ण रस लीला विलास की एकमात्र आधार तो महाभाव रूपा श्रीराधा ही हैं, प्रिया ही हैं, और प्रिया-प्रेमरूप होने के कारण मात्र प्रियतम ही रसिकशेखर हैं, अखिलरसामृत-मूर्ति हैं। इसीलिये मात्र प्रियतम श्रीकृष्ण ही भूमा हैं, पूर्णतम हैं, ब्रह्म हैं। ये विशुद्ध प्रेममय हैं। इनमें विशुद्ध माधुर्य ही माधुर्य है। ये अतुल, अचिन्त्य सुन्दर, अनन्त अशेष ललित, एवं इतने मधुर हैं कि माधुर्य के अतिरिक्त, प्रिया-

प्रेम के अतिरिक्त ये सर्व अभिलाषिताज्ञान, सर्व अस्तित्वज्ञान से सर्वथा, सर्वथा शून्य हैं। ये मात्र भावभोक्ता, भावग्राही, भावरसिक, पूर्णरसिक हैं। इनके समग्र माधुर्य की धर्मी प्रिया श्रीराधा हैं। धर्मी के बिना जैसे धर्म सत्ताहीन है, उसी प्रकार प्रिया के बिना प्रियतम सत्ताशून्य हैं। इसीलिये मात्र प्रिया ही सबके रस की, सुख की, आनन्द की एक मात्र धर्मी, प्रतिष्ठा, आधार हैं। इनके बिना निखिल सृष्टि के जीवन में कहीं भी कोई रस नहीं है येही सबके अस्तित्व, सुख एवं प्रियता की भी एक मात्र कारण हैं।

हे शुकराज बताओ, रास के समय जो दिव्य रात्रियों की सृष्टि होती है, मल्लिका पुष्प, चन्द्रिका आदि समस्त अप्राकृतिक उद्दीपन सामग्री प्रियतम-सुखार्थ प्रस्तुत हो जाती है, वे कौन हैं? बताओ वह मन कौन है जिसे श्रीकृष्ण प्रियतम ग्रहण करते हैं? और वह योगमाया क्या है जिसके उपाश्रित प्रियतम होते हैं? हे शुक! यह योग करने वाली कौनसी माया है? माया तो सदा वियोग करने वाली ही मैंनें सुनी है। जो सत्य को अपने स्वरूप से वियुक्त कर असत् प्रतीत करावे, ज्ञान को स्वरूपवियुक्त कर अज्ञान दिखावे, और प्रेम को कामरूप में प्रकाशित करदे उसी का नाम तो माया है। सचमुच ही यह यदि योग करने वाली होती तो माया कैसे कहाती। यदि माया है, तो अवश्य ही यह वियुक्त ही करने वाली है, भेदात्मक ही है। हाँ देखो! यह भेद ही तो कर रही है। प्रिया को अनन्त रूपों में ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, इन्दुलेखा, तुंगविद्या, रंगदेवी, सुदेवी, आदि अनन्त नामा सखियों में, अनन्त मधुरातिमधुर रूपों में, और अनन्तचित्त, अनन्तमन से प्रियतम को भी विभक्त कर अनेक रूपों में प्रकट कर देती है। प्रत्येक दो सखियों के मध्य श्रीकृष्ण। एक ही श्रीकृष्ण हैं फिर अनेक कैसे हो गये? एक ही श्री राधा हैं, फिर अनेक रूपों में प्रकट कैसे हो गयीं? हे शुक, यह योग है या विभाग। एक ही समुद्र किस प्रकार अनन्तानन्त लहरों के रूप में उच्छलित है। तो यह उच्छलन उसका विभाग है क्या? सर्वथा नहीं। यह विचित्र संयोग है, इसे विचित्र योग भले ही कहें। योग भी तो नहीं कहा जा सकता। एक लहर अत्यंत ऊँची उछलती और समुद्र में मिलती है, तो क्या यह उसका योग है? वह वियुक्त कहाँ थी? नित्य युक्त ही तो थी, फिर युक्त का योग कैसा? भाव समुद्र का रसोच्छलन यही तो है। ये योगमाया मात्र इस उच्छलन की क्रिया का ही तो संपादन करती हैं। प्रियतम का मन प्रियतम के स्वरूप से अतिरिक्त कोई अज्ञान है

क्या ? नहीं, वह प्रिया ही तो है। जो प्रियतम की आत्मा है वही तो मन भी है। तो यह योगमाया ही प्रियतम श्रीकृष्ण की आत्मा राधा को प्रियतम का मन भी बना देती हैं, अपना ही आस्वादन कराने के लिये, अनन्त आस्वादन से प्रियतम को अनन्तानन्त सुख में विभोर कर देने के लिये। स्वरूपानन्द की आत्यंतिक सुखमयी अनुभूति से वियुक्त करने के लिये नहीं, उसके आत्यंतिक सुख को, उसकी अनुभूति को, अनन्त रसमयी बनाने के लिये, अनन्त अंशों में उसको आस्वादित कराने के लिये ही यह सुख संपादनमयी क्रिया है। इसीलिये वे विभाग करती हुई भी विभाग नहीं करतीं, योग ही करती हैं। तो ये प्रिया ही योगमाया हैं। प्रिया की यही तो विचित्र समाराधना है जिससे वे अनादि अनन्त काल से अपनी प्रियतम पूजाराधना करती आरही हैं और अनादि अनन्त काल तक करती रहेंगी।

तत्सुख प्रधान श्रीराधा की प्रेम दानेच्छा इतनी प्रबल है कि स्व के अतिरिक्त अन्यत्र निज हृदय के प्रति होनेवाला प्रेम दान उन्हें अनन्त अनन्त गुना सुखी करदेता है। प्रेम वितरण रानी का व्रत ही है इसीलिये ये प्रेम कल्पलता हैं जो प्रतिपल अपना रस देकर ही प्रफुल्लित होती हैं। राधाप्राणप्रियतम, रसिक शिरोमणि अपनी प्रियतमा के नेत्रों द्वारा संकेत पाकर व्रज के पत्ते पत्ते को रस दान देते हैं। कभी ये अपनी दक्षिण भुजा ललिता के कंधे पर रखते हैं कभी विशाखा के हृदय को सुस्पर्श करते हैं। कोई मीमांसक इसे प्रियतम द्वारा विशाखा के काम संस्कार का यह परिशोधन है- ऐसा कहकर अपनी बुद्धि का चमत्कार प्रकट करले, चाहे कोई इसे प्रियतम द्वारा निज स्वरूप वितरण है, यों कह कर तुष्ट होले, यह न काम शोधन है, न है स्वरूप वितरण।

बताओ शुक, जिसमें भाव ही भाव है, अन्यत्व है ही नहीं, अन्यत्व लेशानुभूति से भी जो शून्य है, उस राधा उदधि की तरंग विशाखा में काम कहाँ, जिसका शोधन श्रीकृष्ण करेंगे ? हाँ, पूर्ण श्रीकृष्णकामा, प्रियतम कामा, वे अवश्य हैं। फिर स्वरूप वितरण तो उसे किया जाये जो स्वरूप से कहीं, किसी भी अंश में विलग हो। जिसकी नखज्योति के अणु अणु में भी श्रीकृष्ण, मात्र प्रियतम ही प्रकाशित हैं उन श्रीराधा भावद्युतिरश्मि विशाखा को श्रीकृष्ण, उनके ही प्रियतम क्या स्वरूप वितरण करेंगे ? प्रियतम तो रसरूप हैं। वे भाव सिन्धु की लहर मात्र ही तो हैं। लहर सिन्धु को किस प्रकार

सिन्धुत्वदान देगी ? स्वयं श्रीकृष्णको नृत्यरत गतिशील करनेवाली प्रिया विशाखा को भला श्रीकृष्ण कैसे स्वरूपदान करेंगे ? तो इसका सच्चा रूप तो कोई प्रिया के हृदय में प्रवेश करके ही पा सकता है । विश्वानन्द दायिनी प्रिया का हृदय ही इसका एकमेव कारण है। प्रियतम तो इस रस वितरण में मात्र यंत्र हैं। वे तो सर्वथा श्रीराधाधीन हैं और विशाखा तो राधा भावद्युति समुद्र की एक लहर मात्र, एक उर्मि मात्र ही है। यही तो प्रेम प्रवाह है, भाव प्रवाह है। भाव सिन्धु का एक एक तट को कभी इधर वक्रोच्छलन है कभी उधर वक्रोच्छलन है। यह प्रिया प्रेमवितरण इतना महान है कि प्रियतम रसवितरण करते समय अपने को अत्यंत तुच्छ अनुभव करते हैं। निज प्रिया की रसदानेच्छा की प्रगाढ़ता को देखते हुए वे उस परिमाण में निज हाथों रस वितरण करने में भी संकोच करने लगते हैं। उदार धनपति का धन लुटाते लुटाते मुनीम के हाथ संकुचित होने लगते हैं। यद्यपि प्रिया की रस दानेच्छा की तुलना में प्रियतम का वितरण सागर में बिन्दु के समान ही है, इसीलिये वे दैन्यपूर्ण स्वीकारोक्ति करते हैं कि मेरे द्वारा किया गया अखिल चराचर सृष्टि को रसदान तुम्हारे प्रेमसिन्धु का एक क्षुद्र सा सीकर मात्र ही है। प्रिया का महान त्याग कल्पनातीत, आदर्श प्रेम अलौकिक और उनकी सुखदान स्पृहा अनंत, अपार, अनन्तानन्त, अपरंपार, निरवधि, असीम है। इसीलिये वे अतुलनीय हैं।

सोऊ अति मरजादा, अति संभ्रम, भय दैन्य सँकोच।
नहिं कोउ कतहुँ कबहुँ तुमसी रसस्वामिनि निस्संकोच ॥–का भाव।

शुक– हे सारिके, प्रियतम के इस कथन का क्या रहस्य है कि इस प्रकार मैं तुम्हारे रस भंडार में से रस दान करता हूँ फिर भी उसमें बड़ी ही मर्यादा, अत्यधिक संयम, भय, दीनता, और संकोच बना रहता है–(मुक्त हस्त से उदारता पूर्वक नहीं कर सकता) तुम जैसी संकोच छोड़कर रस बाँटनेवाली रस की स्वामिनी तो एक तुम ही हो, दूसरी कोई, कहीं, कभी नहीं। हे सारिके! प्रियतम में, ब्रह्मस्वरूप में, ब्रह्मानन्दवपु में, यह संयम, भय, दैन्य, और संकोच कैसा ?

सारिका– उत्तम, शुकराज, परमोत्तम, तुम्हारी शंका उचित है। देखो शुक, परब्रह्म परमात्मा तो सब प्राणियों के हृदय में ही है फिर भी सब प्राणी

उसे क्यों नहीं जान लेते ? कोई विरला ही उसे क्यों जानता है ? इस प्रश्न का उत्तर श्रुतियाँ देती हैं—

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभू
स्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् ।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत्
आवृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥२।१।१॥ कठोपनिषद्

स्वयंभू स्वयं प्रकट होनेवाले परमात्मा ने इन्द्रियों को बाहर की ओर गतिवाली ही बनायी है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, इन्द्रियों के ये स्थूल विषय बाहर ही हैं। इसलिये इन्द्रियाँ सदा बाहर की ओर ही देखती हैं । हे शुक, जिस प्रकार इन्द्रियों की विषय सम्मुखता भोगपरायणता के लिये नहीं अपितु भोगनश्वरता के ज्ञान के लिये है और विषय निवृत्ति एवं आत्मसुख ज्ञान-संपादन में प्रवृत्ति ही उसका एक मात्र उद्देश्य है, इसी प्रकार रस-राज में यह मर्यादा, संभ्रम, भय, दैन्य और संकोच मात्र भाव महिमा के प्रकाश के लिये, भाव के अगाध, असीम, अनंत, रसवितरण के स्वभाव को प्रकाशित करने के लिये ही है। हे शुकराज, लहरें समुद्र स्वरूप ही हैं परन्तु लहरों की सीमा समुद्र की अगाधता का प्रकाश मात्र जैसे है, वैसे ही रस राज में यह संकोच मात्र भाव को निरसंकोच अमर्यादित, दैन्य रहित, भयरहित, संभ्रमरहित दिखाने के लिए ही हैं। स्वरूपतः रस एवं भाव में ऐसा ऐक्य है जो ऐक्य किसी भी तरह प्राकृतिक बुद्धि को समझाया ही नहीं जा सकता। हे शुकराज, जो कुछ भी यह तुमको नानात्व दिखाई पड़रहा है, यह नानात्व है ही नहीं, 'नेह नानास्ति किञ्चन', भाव समुद्र की उर्मियाँ मात्र हैं, परम सुखमय रस की फुहारें हैं। इनमें द्वैत का प्रवेश ही नहीं है– द्वैत तो सर्वथा-सर्वथा मिथ्या है और सत्यमें, परम सत्यमें, मिथ्या कोई वस्तु होती ही नहीं ।

तत् सत्यं, वह भाव ही सत्य है, तत्वमसि-वह भाव तू ही है। तेरी बाह्य प्रतीति मात्र रसमय है स्वरूपतः तू भाव ही है। 'द्वितीयाद्वै भयं भवति' निश्चय ही दूसरा होने पर ही तो भय होता है– भाव के लिये द्वितीय कोई है ही नहीं। प्रियत्व की घनस्वरूपा प्रिया में प्रियतम के प्रति द्वितीयत्व कहाँ, प्रियतम में प्रिया के लिये द्वितीयत्व कहाँ ? अपने ही अंग, प्रत्यंग, रोम के प्रति भी कहीं द्वितीयत्व है क्या ? फिर अपने दृश्य के प्रति दृष्टा में द्वितीयत्व किस प्रकार

प्रमाणित होता है। द्वितीयत्व है ही नहीं। इसीलिये भाव में न भय है, न विभ्रम है, न संकोच है, न दैन्य है एवं न ही मर्यादा है। भाव ही भाव है। एकमेवाद्वितीयम्– 'तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः'। हे शुकराज, जिस अवस्था में प्रियतम ही प्रियतम का भाव ही है, वहाँ किसके द्वारा, किसके प्रति मर्यादा, किसके प्रति दैन्य, किसके प्रति किसका संभ्रम, और किस प्रकार का संकोच। हे शुकराज, इसीलिये प्रिया निस्संकोच, समग्ररस की एकमात्र पूर्ण स्वाधीन स्वामिनी हैं- समग्र प्रियतम श्रीकृष्ण की मर्यादा रहित, पूर्ण, निस्संकोच पूर्णस्वाधीन स्वामिनी हैं।

"दक्षिणबाम रसास्वादन हित बनतौ रहूँ निमित्त" का भाव

हे शुकराज, देखो तुम्हें प्रियतम के बाम और दक्षिण रस के नैमित्त्य का भाव समझाती हूँ। देखो, प्रत्यक्ष देखो, और शुक देखने लगा—

जिस ब्रह्म के स्मरण मात्र से सूक्ष्म से सूक्ष्म कामना के संस्कारों का भी अन्त हो जाता है, वे पूर्णकाम, परब्रह्म, यशोदानन्दन, महारानी यशोदा को अपनी रसछटाओं से आप्यायित करते, उनके सम्मुख अनेकानेक बालसुलभ चपल लीलाएँ कर रहे हैं। माता उन्हें दूध पिलाने के लिये मनुहार कररही हैं और वे थोड़ा सा दूध पीते हैं, पुनः उसे अपने ही कपड़ों पर, वक्षस्थल पर बिखेर कर दौड़ पड़ते हैं– नाच उठते हैं, थिरक उठते हैं। माता उन्हें रिझा रिझाकर– "देख, वत्स दूध पीने से तेरी चोटी बढ़जायगी– फिर तू बलवान, शीघ्र विवाह के योग्य हो जायगा– फिर तेरी दुलहन लाऊँगी– आदि परम रसमय वाक्यों से पुनः पुनः दूध पीने को प्रेरित करती हैं। वे अत्यंत आग्रह से थोड़ा बहुत दूध उनके श्यामल उदर में डालही देती हैं। परन्तु वे किलक उठते हैं, भाग जाते हैं, खंभ की ओट में छुप जाते हैं, या किसी अन्य गोपी की ओढनी में अपने को छुपालेते हैं। कितने प्रसन्न हो रहे हैं, बालकृष्ण। कैसी सुखमय किलकारी लगाकर उछल रहे हैं। महा रस सागर, सच्चिदानन्द सागर, ब्रह्मानंद तरंगित विग्रह।

और कुछ ही क्षणों में जैसे ही माता दधिमंथन कार्यमें लगती हैं, कि ये मचल उठते हैं स्तन्यकाम हो। जैसे उन्हें अनन्त क्षुधा लग आयी हो। माता जान रही है यह उनके कन्हैया का मात्र बाल हठ है– महाहठी है न यह। क्षुधातुर वह सर्वथा नहीं है, क्योंकि अभी अभी माता जब दूध पिलाने का

आग्रह पर आग्रह कर रही थी तो यह भागरहा था– एक घूँट भी दूध नहीं पी रहा था। अत्यन्त सुस्वादु दूध भी उसे सर्वथा अप्रिय लग रहा था। बार बार दूधको मुख में भर कर अपने वक्ष पर कुल्ली कर देता था, और हँस उठता था, किलक उठता था। और इतनी शीघ्र इसे क्षुधा लगगई, यह संभव ही नहीं। माता जान रही है, इसे क्षुधा है नहीं और हठ से यह यदि अधिक दूध पी गया तो यह अस्वस्थ हो जायगा– बस इसीलिये, माता अपने लाला को अन्यान्य खिलौने दे देकर रिझाना चाहती है– परन्तु दूध, स्तन नहीं पिलाना चाहरही है। और देखो– श्रीकृष्ण जिनमें त्रिगुण का संश्लेष भी नहीं है, जो नित्यतृप्त हैं, यहाँ तक कि जिनका ध्यान करनेवाले भी तृप्त हो जाते हैं, वे शुद्ध सत्वावतार परमपुरुष क्रोधित हुए होठ काट रहे हैं। परम क्षमाशील में क्षमा का लेश भी जैसे न हो, जिनकी शुभ स्मृति क्रोधादि सब दोष हरलेती हैं, वे काम प्रतिहत हो रोष प्रकट कर रहे हैं और माता उनके इस क्रोध प्रकाश पर हँस रही हैं– वह उन्हें गोद में उठालेती हैं और कक्ष में ले जाती हैं।

सारिका की वाणी पुनः गूंज उठी– शुकराज बताओ– माता यशोदा की दोनों क्रियाओं में प्रेम के अतिरिक्त कुछ है क्या? मात्र श्रीकृष्णसुख ही तो उनके भाव की प्रत्येक चेष्टा में भरा है। मात्र तत्प्रेम ही तो दूध पिलाने और स्तन न पिलाने में व्यक्त है, और मात्र रस ही रस का दान तो प्रियतम ने दक्षिणभाव और वामभाव व्यक्त करके दिया। प्रियतम के क्रोध-प्रकाशने, उनकी क्रोधमयी मुद्रा ने, ओठ काटने की मुद्रा ने माता को निहाल कर दिया और उनकी दूध की कुल्ली करने की क्रिया ने भी माताके हृदयमें वात्सल्य भावकी धारा ही उद्वेलित करदी। हे शुकराज, इसी प्रकार जब श्रीकृष्ण को मधुमंगल डाँटता है– अरे ढीट! तेरी गायें आज से अलग करले, हम तेरे नन्दबाबा के नौकर नहीं हैं, जो तेरी गायों की सम्हाल करते रहेंगे और तू केवल यहाँ वहाँ घूमता रहेगा– न्यारी करो हरि, आपनी गैयाँ। तो मधुमंगल के इस कथन में भी सख्य भाव समुद्र की तरंगें ही लहरा रही हैं– और स्वाराज्यश्री के परमाधार, पूर्णैश्वर्य युक्त श्रीकृष्ण के डर जाने में भी, उनके भयभीत हो जाने में भी रस ही रस तो है। जिनके भय से यम कुबेर सब नियमित काम करते हैं, वे जब मधुमंगल से डर कर भयभीत मुद्रा बनाते हैं तो उस भयभीत मुद्रा में भी मधुरातिमधुर रस भंगिमा ही तो लहराती है न? जिसे देखकर मधुमंगल का सख्यभाव और अधिक उद्दीपित हो उठता है, तरंगायित हो

उठता है। और देखो शुक, भाव के कितने उच्च प्रवाह में मधुमंगल श्रीकृष्ण को कंधे में लिये सायंकाल को नन्दभवन की ओर प्रस्थान कर रहा है, जरा इस झाँकी को भी देखो- और सचमुच ही शुक के सम्मुख एक परम मनोहारी दृष्य आजाता है—

श्यामसुन्दर गौचारण करके पुर की गलियां से आरहे हैं। सारा व्रज अभिनव सुन्दरता में मानो नहाया हो, जगह जगह मंगल बंदनवारें बँधी हैं। घरों के आगे शतरंगे चौक पूरे गये हैं-आगे आगे गौओं के झुंड हैं। उन्नत पर्वत शिखरों के समान उनके सींग स्वर्ण पत्तरों से मंडित होने के कारण ऐसे शोभायमान हो रहे हैं मानो क्षीर सागर में सुमेरु पर्वत के शिखर ही स्थित हों। ऊर्ध्व ककुभों की शोभा का तो कहना ही क्या? गौओं को, किसी को पीले किसी को लाल, किसी को गुलाबी, नीले प्रस्तर चूर्ण के रंगों से रंग दिया गया है और उनके गले में कौडियों की, पुष्पों की, रंग बिरंगे वन्यपदार्थों की मालाऐं आभूषण रूप में पड़ी हैं। और सबके गले में अत्यंत मधुर स्वर करने वाली घंटियाँ बंधी हैं, जो उनकी मदभरी चाल से मधुराति मधुर ध्वनि कर रही हैं। उनके आगे पीछे उनके रक्षक 'हियो-हियो' कर उनका संचालन कर रहे हैं, इन गौओं के पीछे सजे सजाये वत्स हैं। और इन वत्सों के पीछे गंगा के समान लहराती फिर सुरभियाँ उमड़ती आ रही हैं। लाल रोली के समान मंगला गौएँ, और बीच बीच में शुभ्र श्वेत रंग की सुरभियाँ और ये सर्वथा श्याम रंग की श्यामा गौएँ और सबसे मनोहारी दृष्य तो लो सम्मुख अब आया है। गौ यूथों के बीच गोपालों से घिरे मधुमंगल के कंधे पर चढे श्याम सुन्दर। कैसा वन्य शृंगार किया है, अपने सखा का इन गोपसखाओं ने। कैसे विशेष उन्माद से वे अपने सखा का रूप सौन्दर्य अपने नेत्रों में भर रहे हैं और ताली बजा बजा कर नाच रहे हैं। चारों ओर से पुष्प एवं पुष्प मालाएं आकाश में झूमती हुई इन सर्व-प्राण-सार-सर्वस्व पर न्यौछावर हो रही हैं। गोपबालाएँ आरती की थाली सजाये अपने अपने गृहद्वारों पर खड़ी हैं और थालीमें रखी मालाएँ उनकी थालियों से अपने आप अन्तरिक्ष में उठजाती हैं, झूमती हैं, लहराती हैं, थिरकती हैं, और धीरे धीरे ऊपर, नीचे, होतीं नृत्य करती हैं- थालियों में रखे कुंकुम, चन्दनादि पदार्थ भी, पुष्प भी इसीप्रकार इन मालाओं को घेर कर नाचते हैं और धीरे धीरे मालाएँ, पुष्प इन श्याम सुन्दर के गले में, अंगों में, इनके चरणों में गिर जाते हैं, अपने को मानों कृतार्थ कर लेते हैं। और श्याम

सुन्दर एक क्षण इन्हें धारण करते हैं परन्तु दूसरे ही क्षण किसी सखाके, गौके, गोवत्सके गले में उसे डाल देते हैं। कैसी मनोहारी लीला है- सखानाच रहे हैं, गारहे हैं, सींगा भेरी बजा रहे हैं, सखियाँ गारही हैं-

अरी यो कान्हर कारो री- अरी यो व्रज उजियारो री
अरी या पै सरबस वारौरी—
अरी! सात बरस के साँवरिया ने गिरिवर धार्यौ री...।

सारिका शुक न जाने कितने कालतक इस रसमाधुरी में डूबे रहे- शुक की समाधि भंग की सारिका की वाणी ने- हे शुकराज, इसी प्रकार प्रिया-भावसमुद्र की ये अनन्तानन्त तरंगें हैं जो नित्य निरन्तर लहराती रहती हैं। हे शुकराज,भावसमुद्र प्रिया श्रीराधा एक हैं,प्रिया एक हैं,किन्तु वे अनन्त रसमयी उर्मियों से, अनन्त रसमयी लहरियों से लहरा रही हैं। इन प्रिया श्रीराधा की अनन्त आँखें हैं जो कहीं सखाओं के माध्यम से सख्यरस से परिपूरित हो प्रियतम श्रीकृष्ण को देख रही हैं, तो कहीं माता यशोदा और वात्सल्य-भावापन्ना गोपियों के माध्यम से वात्सल्यमयी आँखों से अपने प्रियतम को निहाररही हैं, कहीं अत्यंत पुत्र वात्सल्य से भरे नन्द, वृषभानु आदि गोपों की आँखों से देख रही हैं। वे ही अनन्त दास दासियों द्वारा दास्य भाव से इनकी ओर निहार रही हैं। और वे ही प्रणय रस भरी नेत्र राशि से प्रणय भावापन्ना गोपाङ्गनाओं के माध्यम से अपने प्रियतम पर बलिहार हो रही हैं। राधा प्रिया किसी विशेष आकृति का नाम नहीं है- वह तो भाव का अगाध उदधि है- जिसके सब जगह सर्वत्र मुख हैं- श्रीकृष्ण गुण गान करने को। सर्वत्र नेत्र हैं प्रियतम दर्शनार्थ। जिसके सर्वत्र, सब ओर हाथ हैं प्रियतम की सेवा करने को। जिसके अनन्त पैर हैं, प्रियतम की ओर गतिमान होने को। जहाँ कहीं प्रियतम बुलावें प्रिया उपस्थित हैं-अपने प्रियतम की सेवार्थ उन्हें प्रेमदानार्थ सुखदानार्थ। ये राधा सर्वसमर्था हैं, परन्तु इनकी सामर्थ्य है मात्र प्रियतम सुख स्पृहा की चरितार्थता। प्रियतम आनन्द स्पृहा की चरितार्थता और प्रियतम प्रेम स्पृहा की चरितार्थता मात्र। विश्व में कहीं ऐसा कोई स्थान नहीं- जहाँ इन श्रीराधा की गति न हों- जहाँ प्रियतम हों और प्रिया न हों। और इसी प्रकार जहाँ प्रिया हैं वहाँ प्रियतम हैं ही। जहाँ भाव है वहाँ रसोच्छलन होगा ही। अवश्यंभावी

है, प्रियतम का प्रकाश प्रियतम का लहराना। भाव होते ही प्रियतम वहाँ बँधे चले आवेंगे क्यों कि भावबंध से ही तो वे नित्य बँधे हैं। नित्य बँधे रहेंगे- और नित्य बँधे थे—

राधा राधा राधा राधा राधा
प्रियतम प्रियतम प्रियतम प्रियतम प्रियतम

हे शुकराज- कैसी मधुर रहस्यमयी यह राधा रूप माया है जिसका थाह ज्ञानी ऋषिगण, मुक्त, सिद्ध, योगी तो पा ही नहीं सकते प्रियतम स्वयं भी जिस माया के बंधन में सर्वथा सर्वथा बँध जाते हैं। कभी छूट नहीं पाते। जिन श्रीकृष्ण के बारे में श्रुतियाँ कहती है।

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥

वे सब पर शाशन करनेवाले, सबको नियन्त्रण में रखनेवाले, सबको नियमानुसार चलानेवाले, श्रीकृष्ण जिनके भय से अग्नि तपता है, सूर्य तपता है, जिनके भय से इन्द्र, वायु और मृत्यु तक दौड़ दौड़कर अपना अपना काम त्वरा पूर्वक करते हैं- वे गोपियों की बानरसखा, धृष्ट, विट, दुर्दान्त आदि गालियाँ खाकर सेवा करते हैं, वे आँख मल मल कर रोने लग जाते हैं। जिनकी माया रज्जु से अखिल अगणित संसार बँधे हैं,जिनका बंधन विस्तार देव, दनुज, मुनि, मनुज, चराचर सब पर है, और इस बंधन के कटने का उपाय मात्र जिनकी शरणागति है, वे शुद्ध सच्चिदानंद, नित्यमुक्त, सनातन, स्वतंत्र, इस राधा माया के मधुर बंधन को काट नहीं सकते। राधा रूप मधुर रहस्यमयी मोहिनी माया से बँधे वे अनन्त अनादि राधान्त, राधादि हो गये हैं क्योंकि उन अनन्त का राधा ही अन्त है, उन अनादि की राधा ही आदि है, उन असीम की राधा ही सीमा है, उन अपार का राधा ही पार है, उन निराकार का राधा ही आकार है, उन अरूप का राधा ही रूप है, उन अकल की राधा ही कला है, राधा ही उन की अथ और इति है। वे अभय राधा से भयभीत हैं, वे अज राधा में ही प्रकट हैं, वे अमर राधा में ही विलीन हैं, वे निर्बन्ध राधा में बँधे हैं। मात्र प्रिया ही उनका सर्वस्व है, वे प्रिया हैं और प्रिया

प्रियतम है। प्रिया प्रियतम और प्रेम– सत् चिद् आनन्द, रस, भाव एवं रस, भाव रस एवं भाव। भाव ही रस– रस ही भाव। भाव रस सीम एवं रस भाव सीम। भाव रसान्त और रस भावान्त। भाव रसादि और रस भावादि। रस भावाकार और भाव रसाकार। रस भावभीत एवं भाव रसभीत। भाव रस रूप एवं रस भाव रूप। रस भाव बंध और भाव रस बंध। भाव रसोद्भूत एवं रस भावोद्भूत। रस भावलीन और भाव रसलीन।

भाव ही भाव, मात्र भाव ही भाव, एकमेवाद्वितीयम।

तृतीय अध्याय

यह बरसाना ग्राम है। ग्राम की सीमा के पास ही सरोवर का स्थल है। समय संध्या होने में तीन घंटे का विलम्ब है। मणिमय सुन्दर घाट हैं। सरोवर के बीस हाथ दूरी पर कदम्ब के वृक्ष लगे हैं, जिनमें फूल आये हुए हैं। कदम्ब पुष्पों की गंध से वातावरण अत्यंत सुवासित है। कदम्ब के सुन्दर, हरे हरे पत्ते वायु के झोंकों से हिल रहे हैं। वायु अत्यंत ही सुशीतल है। वह कदम्ब पुष्पों की महक से सुवासित तो है ही। अत्यन्त मन्द गति से भी बह रही है, जिससे उसकी स्थिरवत् सुवास नासिका को मत्त कर रही है। नीले गगन में एकाध लघु एवं श्वेत बादल के टुकड़े तैर रहे हैं।

सरोवर शान्त है, निर्जन है। एक वृक्ष की डाली पर शुक शान्त, समाधिस्थ सा बैठा है। उसके पार्श्व में ही सारिका भी बैठी है। उसके भी नेत्र निमीलित हैं। थोड़ी दूर पर एक चौकी पर एक सुन्दर गलीचा बिछा है। उसीके एक किनारे पर सुन्दर तूलिका लिये प्रिया, प्रियतम का अत्यन्त मनोहारी चित्र बना रही हैं। वे तल्लीन हैं, पूर्णतया तल्लीन हैं, अपने प्रियतम की रूप माधुरी में। इधर उधर आस पास क्या हो रहा है, तनिक भी ज्ञान नहीं हो रहा है, उन्हें।

प्रिया का महाभाव विभु परमानुराग है। वह पूर्ण होकर भी प्रतिक्षण बढ़ता रहता है। इसलिये इसकी ज्योत्स्ना स्वतः ही प्रसरित होती रहती है। स्वभावतः ही भावगाम्भीर्य सम्पूर्ण वातावरण को अत्यन्त प्रेमसम्पदा समृद्ध बना रहा है। सम्पूर्ण वायुमण्डल, व्योममण्डल तक में प्रिया की प्रियतम-प्रेम-प्रगाढ़ता प्रसरित हो रही है। इसी प्रगाढ़ता की धारा में अभिभूत हुईं, प्रिया से कुछ ही दूरी पर स्थित दो चार सखियाँ, मञ्जरियाँ, जो प्रिया के द्वारा किसी सेवा के लिये पुकारे जाने की ताक में बैठी हैं, बाह्य-ज्ञान-शून्य हो गई हैं। उनके शान्त, निष्पन्द, मुग्ध, मुख मण्डल से भी प्रेम झर रहा है। सर्वत्र प्रेम-सम्पदा इतनी गम्भीर हो उठी है कि भ्रमरगण भी उन्मुक्त गुञ्जन नहीं कर रहे हैं। पक्षी गण नेत्र-निमीलित वृक्षों पर चुपचाप बैठे हैं। भ्रमरगण पुष्प मकरन्द में लिपटे हैं। लीला की दृष्टि से अन्य लोगों को वह पुष्परेणु भले ही दिखे, भ्रमरों को तो वह प्रियतम की श्यामल प्रेमाभा ही दिख रही है, जो पुष्प पुष्प में समायी प्रियतम छवि से झर झर झर रही है।

प्रिया की तूलिका ज्यों ज्यों चित्र फलक पर प्रियतम का चित्र उतार रही

है, वैसे ही वैसे सम्पूर्ण व्योम-मण्डल में, अन्तरिक्ष में, बहिर्जगत एवं अन्तर्जगत में सर्वत्र प्रियतम भावरूप में प्रतिचित्रित हो रहे हैं। स्पष्ट, स्पष्टतर, स्पष्टतम। सरस, सरसतर, सरसतम।

सर्वत्र वातावरण में अति मधुर प्रीति भाव उद्‌गमित हो रहे हैं। स्फोट हो रहा है. कुछ विलक्षण का, अभिनव, अनिर्वचनीय का। सब जीव-समूहों में अभिमान, अहङ्कार जैसे विलीन होता जा रहा है। सबके चित्त दैन्यपूर्ण मसृणता से अति कोमल हो रहे हैं। ऐश्वर्य, वरिष्टता, एवं गुणों के अभिमान का जैसे इस वातावरण में अस्तित्व ही नहीं रहा हो। निर्मलता एवं चित्त की आत्यन्तिक शुद्धि का भी अभिमान नहीं।

यह हानि है कि लाभ है, यह उत्तम है कि अनुत्तम है, यह निन्दनीय है कि स्तुत्य, यह स्वीकार्य है कि त्याज्य, यह महान है कि लघु, किसे स्मृति है। अच्छे और बुरे, ऊँच और नीच, पतित और पुण्यात्मा, निन्दनीय और स्तुत्य उत्तम और पोच, त्याज्य और स्वीकार्य, हेय और प्रेय, प्रिया के आत्म-भाव में ये सीमाएँ कहाँ है ? उन्हें कहाँ ज्ञान है, इन सब अनेकताओं का ? प्रियतम श्रीकृष्ण की कहीं कोई ऐसी भी सृष्टि है, जिसमें इतनी अनेकता हैं, प्रिया को ज्ञान ही नहीं है। उनके चित्त में इस प्रकार के संस्कार ही नहीं हैं। उनका हृदय तो मात्र अपने प्रियतम का धाम है, और उसमें, उसके अणु अणु में, सर्वत्र मात्र प्रियतम ही प्रियतम लहरा रहे हैं। अन्य कुछ नहीं। और इसीलिये योग्य, अयोग्य, अधिकारी, अनधिकारी, उत्तम, अनुत्तम, पात्र, अपात्र का कुछ भी भेद किये बिना, पूर्ण निस्संकोच अमर्यादित, संभ्रम शून्य, उन्मुक्त, भयरहित, प्रेम का वेग सर्व ओर उमड़ रहा है, तरंगायमान हो सबको विसुध कर रहा है, भाव विभोर कर रहा है। साथ ही प्रिया हृदय से एकात्म कर उनसे जोड़ रहा है।

यही दशा शुक की है, सारिका की है। ये दोनों महाभाग्यवान पक्षी तो जैसे प्रिया हृदय के प्रतिबिम्ब हैं। प्रिया हृदय के सम्पूर्ण भाव जैसे इनकी चित्त भूमि में प्रतिक्षण, ज्यों के त्यों स्पन्दित होते रहते हैं। इसीलिये ये दोनों पक्षी निमीलित नेत्र, पूर्ण अन्तर्मुख, भावाभिभूत हैं।

सहसा सारिका अत्यन्त ही मधुर मंद स्वर में शुक को कहती है:—
"हे शुक, भावसमुद्र लहराने वाला है। यह अभिनव शान्ति, रसोदधि की यह

शान्त अवस्था, भावसमुद्र के अति उच्च लहराने की ही मानो पूर्व सूचना है। परम भाग्यवान शुकराज! आज तुम भावसमुद्र का ऐसा विलक्षण नर्त्तन देखोगे, कि जन्मावधि की सहज ही कृतकृत्यता को प्राप्त हो जाओगे। देखो शुक, प्रिया की भावराशि कैसी निर्मल है।" शुक सुन रहा है, फिर भी, सुनता हुआ भी कुछ भी नहीं सुन पाता। वह तो पूरा डूब चुका है प्रियतम में। उसके अन्तःकरण में पूर्ण रूपेण प्रति चित्रित हैं प्रियतम। उनकी सर्व मनोहारी छवि। उसकी बाहर की आँखें ही नहीं। बाहर की आँखें मुँदी हैं, या खुली हैं, उसे पता ही नहीं। परन्तु अन्दर की आँखें भरी हैं, डूबी हैं प्रियतम की ललित रूप माधुरी में। आपाततः डूबी हैं, प्रियतम नील सुन्दर की छवि में।

सारिका के साथ ही साथ शुक अनुभव करने लगा— "वह है कहाँ, उसका अस्तित्व ही कहाँ है? प्रिया ही तो हैं, मात्र प्रिया का ही तो अस्तित्व है। जो चित्र बना रही हैं। उसकी चिद्भूमि ही तो बरसाने के पास का सरोवर है, जिस पर प्रिया एक चौकी में बिछे गलीचे में चित्र निर्माण कर रही हैं। कहाँ भेद है उसमें और प्रिया में? कौनसा विलगत्व है राधा में, शुक में? एक ही चिदाकाश तो है जिसमें प्रति चित्रित हो रहे हैं प्रिया प्रियतम। प्रिया में प्रियतम, बस प्रियतम ही प्रियतम। प्रिया हाथों से चित्र बना रही हैं या हृदय से। हाथ किसे कहते हैं? चित्र बन रहा है, चित्र उभर रहा है, प्रियतम की छवि उदय हो रही है। निर्मल परम निर्मल। वह जड़ नहीं है, मूक नहीं है, वह तो मुसका रही है। प्रेम प्रवाह झर रहा है. उसकी माधुरी उसकी छवि का अणु अणु मधुर, मधुरतर, मधुरतम प्रेम वर्षा कर रहा है। सब चिदाकाश, अनन्त चिदाकाश इसी छवि से भर गया है, भरता ही जा रहा है, सरसता ही जा रहा है। प्रेम विभु है, अनन्त है, भूमा है। चिदाकाश अनन्त है, अपार है। परन्तु यह प्रेम-छवि उससे भी अनन्त है, असीम है, अपार है। इस छवि से उमड़ता प्रेम समुद्र, उससे भी अनन्त है, असीम है, अपार है। सब चिदाकाश मात्र प्रियतममय, मात्र प्रेममय सरस रहा है। और यह क्या? शुक को, सारिका को, स्पष्ट दिखने लगा—"प्रियतम चैतन्य हो गये हैं। चित्र से निकल कर, प्रिया के सम्मुख बैठ गये हैं। और प्रिया मुग्ध, उसी प्रकार चित्र रचना की तूलिका लिये निष्पंद देख रही हैं, अपने प्रियतम को। प्रिया के नेत्र झरने लगे, नेत्र मुंदने लगे। परन्तु छवि हट थोड़े ही गई। बाहर भीतर तो एक ही है। अन्तःकरण, बहिःकरण ही कहाँ? कैसा अन्तर्जगत और कैसा बहिर्जगत? जिसका

मात्र जगत प्रियतम है, उसका कहाँ अन्तर्जगत और कहाँ बहिर्जगत? प्रेम जगत ही प्रेम जगत तो है। प्रियतम, प्रिया के चित्र की रचना कर रहे हैं, या प्रिया प्रियतम के। चित्र लिखित से तो दोनों ही हैं। प्रियतम की दृष्टि प्रिया के मुख पर है और प्रिया की दृष्टि झुकी झुकी प्रिमतम के चरणों की ओर है। और इसी अवस्था में भावसमुद्र की गड़गड़ाहट, जो शुक के अन्तःकरण में, सारिका के अन्तःकरण में, स्पंदित हुई, ध्वनित हुई, वही प्रिया भावराशि, वही प्रिया हृदय सुरभि, वही प्रिया हृदय कमल की मकरन्द कणावली, पद्य बनकर, सारिका के मुख से प्रस्फुटित हो गई। शुक सुनता रहा और सारिका गाने लगी—

हौं तो दासी नित्य तिहारी।
प्राणनाथ जीवन धन मेरे, हौं तुम पै बलिहारी।
चाहे तुम अति प्रेम करौ, तन मन सौं मोहि अपनाओ।
चाहे द्रोह करौ, त्रासौ, दुःख देइ मोहि छिटकाओ॥
तुम्हरौ सुख ही है मेरो सुख, आन न कछु सुख जानौं।
जो तुम सुखी होउ मो दुःखमें, अनुपम सुख हौं मानौं।
सुख भोगौं तुम्हरे सुख कारन, और न कछु मन मेरे।
तुमहि सुखी नित देखन चाहौं निसि-दिन साँझ—सबेरे।
तुमहि सुखी देखन हित हौं निज, तन मन कौं सुख देऊँ।
तुमहि समरपन करि अपने कौं, नित तव रुचि को सेऊँ।
तुम मोहि 'प्रानेश्वरि', 'हृदयेश्वरि', 'कान्ता' कहि सचु पावौ।
यातें हौं स्वीकार करौं सब, जद्यपि मन सकुचावौं।

प्राणनाथ! मैं तो तुम्हारी नित्य दासी, सदा की चेरी हूँ। तुम मेरे प्राणों के स्वामी तथा जीवन सर्वस्व हो, मैं तुम पर बलिहारी हूँ, न्यौछावर हूँ।

चाहे तुम मुझसे अत्यन्त प्रेम करो, शरीर और मन से मुझको अङ्गीकार करो अथवा द्रोह करो, त्रासो, दुख देकर मुझको छोड़ छिटका दो।

तुम्हारा सुख ही मेरा सुख है, दूसरा कोई सुख मैं रंच मात्र भी नहीं जानती। यदि तुम मेरे दुःख में सुख को अनुभव करो तो (तुमको सुखी देखकर) उस दुख को मैं ऐसे महान सुख का अनुभव करूँ, जिसकी कहीं उपमा नहीं।

मैं जो सुख विलसती हूँ, वह भी तुम्हारे सुख के कारण ही, मेरे मन में दूसरे सुख की कल्पना ही नहीं। मैं तुमको नित्य-संध्या से सवेरे तक और सवेरे से संध्या तक, रात दिन सुखी देखना चाहती हूँ।

तुमको सुखी देखने के लिये ही मैं अपने शरीर और मन को सुखी रखती हूँ- मुझे सुखी देखकर तुमको सुख होता है, इसी कारण मैं शरीर और मन से सुखी रहती हूँ अपने आपको तुम्हें अर्पण करके मैं सदा तुम्हारी रुचिका ही सेवन करती हूँ। तुम मुझको 'प्राणेश्वरी' हृदय की स्वामिनी, कान्ता (प्यारी) कहकर सुख प्राप्त करते हो. इसीसे मैं इन सब सम्बोधनों को स्वीकार कर लेती हूँ, ग्रहण कर लेती हूँ, यद्यपि इन शब्दों को सुनकर मुझको मनमें बहुत संकोच होता है- संकोच के मारे मैं गड़ जाती हूँ ॥६॥

सारिका की वाणी ने शुक को जाग्रत कर दिया। वह अमृत भरी वाणी सुनने लगा, उसका रोम रोम इस मधुर अमृत का पान करने के लिये पूर्ण जिज्ञासु था।

सारिका- "स्वस्थ होओ शुकराज! हमारी रानी की कृपा से हम लोगों के लिये कहाँ बहिर्जगत है और कहाँ अन्तर्जगत है। तुमने अनुभव कर ही लिया जो अन्तर में है वही तो बाहर भी है। जो आत्मा है, वही इन्द्रियाँ हैं। जो दृश्य है, जो नेत्र है, वही रूप है। जो श्रव्य है वही श्रवणेन्द्रिय है और वही श्रोता है। जो विज्ञाति है, वही विज्ञाता एवं विज्ञान है। जो मति है वही मन्ता है। जो मन है. वही प्राण और वही सर्व साक्षी चेतन आत्मा है। जिनके लिये यह भेद हो, होता रहे। हमारे लिये भेद कभी न जन्मा था न जन्मेगा और न उसका अस्तित्व वर्त्तमान में भी है। अभेद, पूर्ण अभेद सत्ता। प्रिया ही प्रियतम, प्रियतम ही प्रिया। प्रिया प्रियतम ही तो सर्वत्र, अभेद, पूर्ण अभेद सरस रहे हैं।"

हे शुक, 'प्रिया, प्रियतम की नित्य दासी' कैसी विलक्षण अनुभूति है। और प्रियतम प्रिया के नित्य दासानुदास। श्रुतियों की सब अनुभूति, उनका सब तत्वज्ञान सर्वथा, सर्वथा पिछड़गया है, पहुँच ही नहीं पाया है इस परिधिको, इस सर्वोच्च सीमा को।

वेदों की अन्तिम अनुभूति यही है—

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति। मुण्डक ३/२/६

"यह बिल्कुल सत्य है कि जो कोई भी उस परब्रह्म को जानलेता है वह ब्रह्म ही हो जाता है।

बताओ शुकराज ! प्रियतम प्रिया को जानकर यदि प्रिया हो गये और प्रिया प्रियतम को जानकर प्रियतम हो गई तब प्रियतम प्रिया को प्राप्त कहाँ हुए और प्रिया प्रियतम को प्राप्त कहाँ हुई ?

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नाम रूपे विहाय ।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।।८।।

"जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ अपना अपना नाम-रूप छोड़कर समुद्र में विलीन हो जाती हैं वैसे ही ज्ञानी महापुरुष नाम रूप से रहित होकर परात्पर, दिव्यपुरुष, परब्रह्म, परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।"

"तत्वमसि," तू वह है, "अहं ब्रह्मास्मि," मैं ब्रह्म हूँ, इन सब श्रुतियों का एक ही अन्तिम ध्येय है, ब्रह्म हो जाओ। तू ब्रह्म है, मैं ब्रह्म हूँ, वह ब्रह्म है, यह ब्रह्म है, ब्रह्म ही है, एकमेव अद्वितीय ब्रह्म ही है, परन्तु प्रिया प्रियतम की अद्वितीयता यह नहीं है। यह तो पूर्ण अद्वितीयता नहीं। यह पूर्ण प्राप्ति सर्वथा सर्वथा नहीं है। एक मेवता अद्वितीयता कदापि नहीं कही जा सकती। जहाँ द्वितीय रहा ही नहीं वहाँ अद्वितीयता कैसी ? द्वितीयत्व रह कर भी द्वितीयता न रहे तभी अद्वितीयता है। द्वैत रहकर भी द्वैत न रहना ही तो पूर्ण अद्वैत है। द्वैत रहा ही नहीं तब तो एकत्ववाद प्रतिष्ठित हो जायगा। एकत्ववाद अद्वैत वाद नहीं है, सर्वथा नहीं है। प्रिया हैं, प्रियतम हैं, फिर भी दोनों दो नहीं हैं। एक ही हैं। दोनों रहकर दोनों को सर्वथा एकात्मता का अनुभव होता है। यही रहस्य तो अभी अभी तुम्हें अनुभव हुआ है।

श्रुतियाँ परम सत्य कह रही हैं "परब्रह्म को जानकर परब्रह्म ही होजाता है।" ठीक प्रियतम श्रीकृष्ण को, प्रिया श्रीराधा को जानकर भी सब प्रिया प्रियतम ही हो जाते हैं। हम सब प्रिया प्रियतम ही हैं। इस गोलोक का पत्ता पत्ता प्रिया-प्रियतम, प्रिया-प्रियतम ही है। परन्तु यदि हम सब का धर्मीपन ही विलय हो जाय, तब हम प्रिया प्रियतम हैं, इसका आस्वादन कौन करेगा ? हे शुकराज ! अभी अभी मैंने और तुमने दोनों ने यह दिव्य अनुभूति की थी, "न शुक है, न सारिका है, एक ही चिदाकाश है, जिस चिदाकाश में प्रिया हैं, और वे प्रियतम का चित्र बना रही हैं। प्रिया हैं, प्रियतम हैं, दोनों ही हैं।"

अभी भी मैं इस सत्य से विचलित एवं भ्रान्त सर्वथा नहीं हूँ कि मेरा नाम रूप सर्वथा-सर्वथा मिथ्या है। परन्तु मेरे नाम रूप का अस्तित्व है। यह अस्तित्व अनादि और अनन्त काल तक रहेगा। क्यों कि यही धर्मी है जिसने मुझे इतने सुन्दर धर्म का साक्षात्कार कराया है। साक्षात्कार ही नहीं कराया है, उसने इतने बड़े धर्म प्रिया प्रियतम को मेरा अपना बना दिया है। "मैं स्वामिनी हूँ प्रियतम प्रिया के ही नहीं, मेरे भी नित्य दास हैं। मैं प्रियतम हूँ और प्रिया प्रियतम की ही नहीं मेरी भी नित्य दासी है।" तुमने स्पष्ट अनुभव किया है, अभी अभी कुछ क्षण पूर्व प्रिया प्रियतम से एकात्म्य हुआ। तुम्हारा ही चिदाकाश स्पन्दित हुआ है, प्रिया मानो तुमसे ही कह रही हैं, "जीवन सर्वस्व! प्राणनाथ! मैं तो तुम्हारी नित्य दासी हूँ।" "हे प्राणेश्वरी मैं तो तुम्हारी चरणरेणुका नित्य दासानुदास हूँ।" यही तो प्रिया की, प्रियतम को और प्रियतम की, प्रिया को पूर्ण प्राप्ति है। यही शुक को, प्रिया-प्रियतम की, नित्य प्राप्ति है। और यही सारिका को, प्रिया-प्रियतम की नित्य प्राप्ति है। और यही यहाँ के गोलोक के पत्ते पत्ते को, प्रिया-प्रियतम की पूर्ण प्राप्ति है। और— सारिका की वाणी आगे कुछ कहे, कौन सुनता? शुक तो प्रगाढ़ भावावेश में अपने शुकत्व को सर्वथा विस्मृत कर चुका था।

सारिका अपने अन्तर्नेत्रों से स्पष्ट अनुभव करने लगी– "शुकराज प्रियतमानुभूति में पूर्णतया आविष्ट हो गया है।" उसका अन्तर्मन नाच रहा है- "प्राणेश्वरी! प्राणेश्वरी।" अन्तराकाश चीख रहा है, अन्तर्देह उड़कर प्रिया की चरणरेणु में लोटने लगा है, "प्राणेश्वरी, प्राणेश्वरी मैं तुम्हारा, सर्वाङ्ग से, सर्वात्मा से पूर्णतया नित्य दास हूँ, नित्य दासानुदास हूँ, तुम्हारे रोम रोम का मेरा सर्वाङ्ग दास है। 'प्राणप्यारी'- कहते कहते ही जैसे प्रियतम के प्राणों का सम्पूर्ण प्यार शुक की आँखों द्वारा प्रिया के चरणों में आ गिरा हो, उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा फूट पड़ी है, और वह सर्व विस्मृत हो प्रिया के चरणों में मृतप्राय गिर गया है।" और प्रिया की दृष्टि में द्वैत कैसा? उनकी दृष्टि में प्रियतम ही प्रियतम हैं। चित्र तो न जाने क्यों रचा जारहा है, प्रियतम के किसी समय के पूर्वोदित संकल्प का ही यह परिणाम होगा कि प्रिया चित्र रचे। और प्रिया, प्रियतम की छवि अंकित कर रही थीं चित्र फलक पर। परन्तु प्रिया का अणु अणु, परमाणु परमाणु तो नित्य चित्रित है, पूर्णतया प्रतिचित्रित है, प्रियतम की साक्षात सर्व मनोहारी सर्वातिसर्व सौन्दर्यमयी, माधुर्यमयी छवि

में। उन्हें शुक कहाँ दिखाई पड़ रहा है? उन्हें तो यही दिख रहा है, यह चित्र, जो वे बना रही थीं, जीवन्त हो गया है। प्रियतम निकल आये हैं इसके अन्तराल से और वे मेरे चरणों में पड़े हैं-प्रेमाविष्ट हो। प्रियतम जो हैं, प्रेमावतार जो हैं, पूर्ण प्रेम वपु जो हैं। और शुक की छवि में, पूर्णतया अपने प्रियतम को देखती हुई, प्रिया, शुक को अपने हृदय से सटा लेती हैं। झर, झर, झर, झर, प्रिया के नेत्रों से प्रेमाश्रु जल शुक देह को भिगो रहा है। और शुक देह के प्रेमाश्रु प्रियतमा के वक्षस्थल को प्रेमाप्यायित कर रहे हैं। और सारिका देख रही है। प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देख रही है, "शुक के देह से सचमुच प्रत्यक्ष प्रियतम निकल आये हैं, शुक देह जैसे अभिनव चमत्कार से प्रिया के अंक में विलीन हो गया। प्रियतम प्रेमविह्वल हो प्रिया को आलिंगित कर लेते हैं।"

सारिका को तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ। चमत्कार कैसा? यह तो सत्य ही है। प्रियतम ही शुक हैं, शुक थे. शुक रहेंगे। परन्तु उनपर कोई प्रतिबंध तो है नहीं कि वे शुक ही रहें। कल्पक ही है। उसने अपने ही रमणार्थ, अपनी ही लीलार्थ कल्पना की कि मैं शुक हूँ, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह कल्पना में परतंत्र रहे। वह पूर्णतया स्वतंत्र है, सर्वतंत्र स्वतंत्र है। जब चाहे नाट्य वेश धारण करे। जब चाहे उसे अपने में लीन करले। स्वयं अभिव्यक्त हो जाये। इसमें आश्चर्य कैसा? परतंत्रता कैसी? जब वही सत्य है तो इसमें भेद कैसा?

और अपनी प्रियतमा के सम्मुख कभी उनका छद्म टिका है। उनकी लीला तो प्रिया सुखार्थ ही है। फिर प्रिया जब उन्हें अंग से सटालेती हैं, तब वे छद्मवेश में कैसे रह सकते हैं। शुकाभास ही तो था। आभास सत्य के सम्मुख कैसे टिकेगा। आभास समाप्त और प्रत्यक्ष सत्य, द्रष्टा के सम्मुख प्रकट हो गया। प्रियतम ने प्रिया को और प्रिया ने प्रियतम को पालिया। नित्य पाये हुए ही हैं। प्रिया सारिका में, शुक में, अपने प्रत्येक दृष्य में, प्रियतम ही प्रियतम हैं, यह मनोकल्पना थोड़े ही करती हैं, वे तो सत्य देखती हैं। सत्य दर्शन तो सत्य का दर्शन होता है। सत्य हुए बिना दर्शन थोड़े ही है। छद्म वेश धारण कर आये प्रियतम रसस्वरूप को सत्य, सत्य अनुभव कर लेना कि 'प्रियतम ही हैं,' छद्म की माया का नाश ही तो है। जब छद्म नष्ट हो ही गया तो प्रत्यक्ष सत्य प्रकट होने में विलम्ब कैसा? सत्य तो अपरोक्ष है ही। और इसीलिये शुक समाप्त, प्रियतम सम्मुख हो गये।

प्रिया प्रियतम के अंक में, आलिंगन में समा गईं। परन्तु फिर भी सारिका का अन्तःकरण और बहिःकरण दोनों प्रिया के इस भावस्पन्दन को स्पष्ट सुन रहे थे, प्रिया का रोम रोम पुकार रहा था– "मेरे स्वामी, मैं तुम्हारी नित्य की दासी हूँ। तुम मेरे प्राणों के स्वामी, मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियों के स्वामी, मेरे जीवन के सबकुछ के मात्र स्वामी, जीवन सर्वस्व हो। मैं मेरा सबकुछ तुम पर बलिहारी है, न्यौछावर है।"

हौं तो दासी नित्य तिहारी।
प्राननाथ जीवन-धन मेरे, हौं तुम पै बलिहारी॥–का भाव

विशुद्ध दास्य रस केवल निष्ठा और सेवामय होता है। प्रिया के रोम रोम में उमड़ता यह दास्यभाव, दास्यभाव होता हुआ भी परम विलक्षण है। दास को इससे कोई तात्पर्य नहीं कि उसके स्वामी उसकी सेवा से सर्वांश में सुख और कल्याण प्राप्त करेंगे या नहीं। वह तो स्वामी का आज्ञानुसार सेवक है। किन्तु प्रिया की इस दास्य स्वीकृति में पूर्ण ममता है, पूर्ण आत्मसमर्पण है। साथ ही साथ सर्वथा संकोचराहित्य भी है। और इस सबके ऊपर है पूर्ण स्वरूपानुभूति कि प्रियतम सर्वथा मेरे हैं, सर्वांश में मेरे हैं, सर्वाङ्ग से मेरे हैं।

प्रियतम का रूप प्रिया-नेत्रों का पूर्णतया स्वत्व है। उनका निजस्व है। फिर भी उनके नेत्र प्रियतम के रूप के दास हैं, दासानुदास हैं। प्रिया के नेत्र प्रियतम के नील सुन्दर रूप के अतिरिक्त कुछ भी नहीं देखते, कभी भी नहीं देखते, कहीं भी नहीं देखते। सर्वत्र प्रियतम. सब प्रियतम, और सब अवस्थाओं में प्रियतम। निद्रा में सोते समय प्रियतम। जाग्रत अवस्था में प्रियतम, और स्वप्न में प्रियतम। तुरीयावस्था में भी प्रियतम। इसीलिये प्रिया की मात्र प्रियतमावस्था है। न स्वप्नावस्था, एवं न ही सुषुप्ति है, और न ही जाग्रत ही है। वे जाग्रत में प्रियतम की दासी हैं। सुषुप्ति में प्रियतम की दासी हैं। और स्वप्न में भी प्रियतम की दासी हैं। उनके नेत्र सब प्रकार से अपने प्रियतम में संलग्न हैं। प्रियतम के रूपके प्रिया के नेत्र स्वामी हैं, या सेवक हैं, दास हैं, या सर्वस्व हैं, इसका भी प्रियाको प्रायः ज्ञान नहीं रहता। भावावेश में, भावसमुद्र के लहराने में कभी दास्य भाव की लहर प्रधान हो जाती है। दैन्यावेश में भाव की निर्मल से निर्मल धारा को कोई दास्य कहकर प्रतिलक्षित करलेता है, तो वे नित्यदासी हैं। परन्तु नित्यदासी का 'दास' शब्द उनके भाव का इदमित्थं

चित्र सर्वथा सर्वथा नहीं खींच सकता। और यही संकोच सारिका को होरहा है। सारिका की वाणी "हौं तो दासी" बोल तो गई परन्तु उसने प्रिया के भाव के पावित्र्य को, उसके सौन्दर्य को, उसके माधुर्य को और उसके सत्य को छूना चाहकर भी स्पर्शित नहीं किया। प्रियामें पूर्ण दैन्य है। महाभावगत उमड़ते दैन्य का ही 'दासी' शब्द प्रकाश करना चाह रहा है, परन्तु इससे उस दैन्य का स्पर्श हुआ नहीं, हुआ नहीं, किसी अंश में भी नहीं हुआ। शब्द निरुपाय हैं। शब्दों की अभिव्यंजना की भी सीमा ही तो है। वे असीम, अनन्त भावको अपनी परिधि में बाँध नहीं सकते, यह उनकी असमर्थता ही है।

अन्त विहीन दासत्व, अनादि दासत्व, नित्य दासत्व है। प्रियाके नेत्रों का, प्रियतम के रूप के साथ। सब जानते हैं, प्रिया के नेत्रों का प्रियतम रूप के साथ सनातन एकत्व है। परन्तु प्रिया के नेत्रों का प्रियतम के रूप के साथ सनातन एकत्व और दासत्व दोनों है। रूप और नेत्र लीलार्थ दो हैं परन्तु उनमें अचिन्त्य, अनुपम सादृश्य है। प्रियतम का रूप कोई भी देखे, शुक देखे, व्यास देखें, भीष्म देखें, भक्त देखें, और शिशुपाल, दन्तवक्र, दुशासन, दुर्योधन, कंस, रावण कोई भी देखे, वह स्वतंत्र है। कंस में श्रीकृष्ण का रूप देखते हुए प्रिया राधा की नेत्रता उदय नहीं हो सकती, न शिशुपाल में, न दन्तवक्र में ही। कंस ने, रावण ने, शिशुपाल ने, दन्तवक्र ने, श्रीकृष्ण को देखकर काल, मृत्यु को देखा। परन्तु प्रिया के नेत्र काल को, मृत्यु को, उसकी दारूणता को भी प्रियतम रूप में ही देखेंगे। प्रियतम रूप में ही अनुभव करेंगी वे। उनकी यह कल्पना नहीं होगी। मनका अनुमान नहीं होगा। वरंच मृत्यु का आवरण, मिथ्या आवरण, काल का आवरण, मिथ्या आवरण उनके नेत्रों के सम्मुख ठहर ही नहीं सकेगा और सर्वांश में, सर्वांग से सत्य प्रियतम श्रीकृष्ण उस मृत्यु से भी, काल से भी पूर्णतया प्रकट हो जावेंगे। वहाँ सत्य दर्शन है, सत्य की अपरोक्ष अनुभूति है।

जिनके दोनों हाथ बाँसुरी से शोभा पा रहे हैं, श्री अंगों की कान्ति नूतन मेघ के समान श्याम है, साँवले अंग पर पीताम्बर सुशोभित हो रहा है, लाल लाल ओठ पके हुए बिम्बफल की सुषमा छीन लेते हैं, सुन्दर मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा को भी लज्जित कर रहा है, और नेत्र प्रफुल्ल कमल के समान मनोहर प्रतीत हो रहे हैं, उन प्रियतम श्रीकृष्ण के सिवा कोई भी रूप तत्त्व

श्रीराधा के नेत्र नहीं जानते । इसी रूप की वे सदा सदा चेरी हैं, किंकरी हैं । एक क्षण यह रूप नेत्रों से हट जाय, यह संभव ही नहीं, परन्तु यदि कभी हट जाय तो वे अंधी हो जावेंगी । इनके द्वारा अन्य दर्शन संभव ही नहीं ।

इसीलिये श्रीराधा पूर्ण भावमय, पूर्ण ब्रह्मरूप होकर भी, स्वरूपतः ब्रह्मशक्ति होकर भी कभी निर्गुण, निष्क्रिय, निराकार ज्योति का साक्षात्कार कर ही नहीं सकतीं, उनके नेत्रों में तो नित्य, अनादि, अनन्त कालावधि, कालावधि की भी सीमा से अतीत, मात्र साँवली, सलौनी ज्योति ही लहराती रहेगी । यही मात्र इन नेत्रों का अस्तित्व है । यह श्याम रूप ही तो उनके नेत्रों का नित्य स्वामी है । परन्तु यहाँ एक और विलक्षण बात है । प्रियतम का रूप प्रिया के नेत्रों का स्वामी है अवश्य, परन्तु है प्रिया के नेत्रों के लिये । प्रियतम के रूप में स्वयं निज स्वामित्व का भाव सर्वथा नहीं है । प्रियतम का रूप तो सदा यही अनुभव करता है कि मैं तो प्रिया के नेत्रों का दास, पूर्णतया दास, अपने अणु, अणु, परमाणु, परमाणु से दास हूँ । इसीलिये प्रियतम के रूप को प्रिया के नेत्रों से संयोग में अनन्त सुख है, नित्य नव नवायमान सुख है । दास तो वही है जो स्वामी की सेवा में परमातिपरम सुखानुभव करे, यदि सेवा श्रम हो, सुखमय न हो, तो सेवा कैसी ? इसीलिये नेत्रों के सम्मुख रूप के आतेही रूप परमसुखी और रूप के सम्मुख नेत्र होते ही नेत्रों के सुख का क्या कहना । और वास्तव में सत्य यही है कि प्रियतम का रूप तो मात्र प्रिया के ही नेत्रों के सम्मुख आता है, अन्यत्र आता ही नहीं है । शंका हो सकती है, शिशुपाल, दंतवक्र ने, दुर्योधन, दुशासन ने, कंस ने, कुबरी ने, किसका रूप देखा ? श्रीकृष्ण का ही देखा था न ? अवश्य शिशुपाल ने, दंतवक्र ने, श्रीकृष्ण का रूप देखा होगा, परन्तु प्रियतम का रूप वे कहाँ देख सके ? वे तो निज काल का, निज मृत्यु का रूप श्रीकृष्ण में देख रहे थे । कुब्री ने, कोटि कोटि अनंग जिनके रोमरोम में तुच्छ, नगण्य प्रतीत हो रहे हैं, ऐसा श्रीकृष्ण का सुन्दर रूप देखा होगा, परन्तु प्रिया के प्रियतम श्रीकृष्ण का रूप नहीं देखा । प्रिया के प्रियतम श्रीकृष्ण तो मात्र प्रिया के नेत्रों के ही दास हैं, इसलिये उनके नेत्रों के अतिरिक्त उनको कहीं कोई पा ही नहीं सकता ।

“चाहे तुम अति प्रेम करौ, तन-मन सौं मोहि अपनाओ ।
चाहे द्रोह करौ त्रासौ दुःख देहि मोहि छिटकाओ,—का भाव ।

प्रिया के नेत्रों के सामने प्रियतम का जो रूप है, वह ब्रह्मवित् के सच्चिदानन्दमय ब्रह्म का रूप है, न भक्त के भगवान का, न योगी के अविनाशी अखण्ड तत्व का, न सबके पालक, सबके स्वामी, सच्चिदानन्द सुखराशी, भक्तों के अनुगामी हरिका। न वह सृष्टिविधाता, लोकपितामह, वेदों के, गीता के वक्ता का रूप है, न क्षेत्रज्ञ का, सब के द्रष्टाका, अखिल विश्व के स्रष्टा का। न वह योगी की हृदय ज्योति परमात्मा का रूप है, न जीवमात्र के आत्मा का। वह न राम का रूप है, न कृष्ण का। वह न नृसिंह का रूप है, न कपिल का। वह न मीन का रूप है, न मच्छ का। वह न ज्ञान के आश्रय वेदव्यास का रूप है, न वशिष्ठ का। न वह सफल सिद्ध का रूप है, न मुनि का, न ऋषि का, न नर-नारायणका। वह न अद्वय-ज्ञान-ज्योति-विस्तारक शिव का रूप है, न मधुरतम-प्रेम-प्रसारक चैतन्य का। वह न आचार्य का रूप है, न जगतम के नाशक का। वह न देव का रूप है, न पितर का। न गन्धर्व का रूप है, न सत्पथगामी का। न दानव का रूप है, न मानव का। न महापुरुष का रूप है, न किसी कारक पुरुष का। न संत का, न लोक उद्धारक का। न वह सद्गुण-सागर का रूप है, न कर्मभोगने वाले मनुष्य का। न जीव का, न जड़ का। न प्रकृति का, एवं न ही पुरुष का। वह तो मात्र निर्गुण, प्रियतम का रूप है, जो केवल प्रियतम हैं। इसीलिये श्रीराधा न वासुदेव श्रीकृष्ण की दासी हैं, न सर्वेश्वरेश्वर, सर्वलोक महेश्वर, समस्त निराकार परमेश्वर श्रीकृष्ण की दासी हैं, न अचिन्त्यानन्त सद्गुण-समुद्र श्रीकृष्ण की। न सर्वगुणमय, सर्वमय, सर्वातीत श्रीकृष्ण की दासी हैं, न सर्वात्मा सर्वजीवप्राण षोड़शकलापूर्ण श्रीकृष्ण की। न षडैश्वर्यपूर्ण, हानोपादान रहित, नित्य, सत्य दिव्य, चिन्मय, भगवद्देह रूप श्रीकृष्ण की दासी हैं, न दिव्य, सच्चिदानन्द, पूर्ण, पुरुषोत्तम, भगवान श्रीकृष्ण की। वे न शंखचक्रधारी, गदापद्मधारी, अमित तेजस्वी, सर्वालंकारभूषित, अद्भुत,चतुर्भुज श्रीकृष्ण की दासी हैं,न पूतनावध, कुबेरपुत्रों का उद्धार, ब्रह्माजी का मोहभङ्ग, दावानलपान, गोवर्धन के रूप में पूजा-ग्रहण करनेवाले श्रीकृष्ण की। उनके ज्ञान में ही वे श्रीकृष्ण नहीं हैं, जो सुदर्शन का उद्धार करते हैं. इन्द्रगर्वहरण करते हैं, वरुणलोक में पूजा स्वीकार करते हैं, गोपों को. ब्रह्म का तथा परमधाम का दर्शन कराते हैं जो कुब्जा को सीधी करते हैं, कंसके दरबार में अनेक रूप दिखाते हैं, मृत-गुरुपुत्रों को लाते हैं, नृग का उद्धार करते हैं, द्रौपदी का चीर बढ़ाते हैं, एक पत्ता खाकर सशिष्य

दुर्वासा का पेट भर देते हैं, कौरव सभा में दुर्योधनादि को, रणक्षेत्र में अर्जुन को, द्वारका लौटते समय उत्तंक को, विविध विचित्र विराट रूप दिखाते हैं, और भीष्म द्रोणादि के उत्तमाङ्गों को, अपने कालरूप की विकराल दाढ़ों में चूर-चूर होता दिखला देते हैं। उन श्रीकृष्ण के ज्ञान से प्रिया अबोध हैं, जो जयद्रथवध के समय सूर्य को आकाश में छिपा देते हैं, उत्तरा के गर्भ में मरे हुए परीक्षित को जिला देते हैं, तथा अनन्त अद्भुतकर्मा हैं। प्रिया राधाको उपरोक्त श्रीकृष्णका अपने निर्मल माधुर्य में अनुभव ही नहीं है।

उनके प्रियतम तो मात्र उनके प्रियतम हैं और वे अपने प्रियतम की ही दासी हैं, उन्हीं की स्वामिनी हैं। और प्रिया के नेत्र भी अपने प्रियतम के रूप के ही दास हैं, किसी अद्भुत गुण, रूप, समृद्धिशाली के रूप के नहीं। प्रिया के प्रियतम निर्विशेष-प्रियतम हैं। प्रिया के प्रियतम निर्गुण-प्रियतम हैं। वे प्रियतम हैं, यही उनकी विशेषता है, वे प्रियतम हैं यही उनका गुण है, और वे प्रियतम हैं, यही उनका आकार है। वे न मात्र निराकार हैं, न मात्र निर्गुण हैं, न मात्र निर्विशेष हैं। इसीलिये वे प्रियतमाकार प्रियतम की दासी हैं, प्रियतम-गुण प्रियतम की दासी हैं, वे प्रियतम-विशेष प्रियतम की दासी हैं। वे न किसी अद्भुत चमत्कारी की दासी हैं, न किसी अद्भुत वैभव विशिष्ट की, न किसी महान् की महानता की। वे तो मात्र अपने प्रियतम की दासी हैं। इसीलिये प्रिया के स्वामी, प्रियतम, स्वयं रसरूप हैं। रसरूपता उनका विशिष्ट गुण नहीं है, क्योंकि यदि वे नीरस होते तो क्या प्रिया के स्वामी नहीं होते? अवश्य होते। प्रिया को किसी रस विशेष गुण की दासता थोड़े ही स्वीकार है। इसीलिये प्रिया के प्रियतम किसी रसविशेष गुण से युक्त सर्वथा, सर्वथा नहीं हैं। जो रस, मात्र भाव का प्रकाश है, वे प्रकृति अतीत, बुद्धि अतीत, रस के निधि, रसराज, रसपूर्ण प्रियतम ही प्रिया के स्वामी हैं, और उन्हीं की प्रिया दासी हैं। जिस प्रकार प्रिया में प्रियतम के किसी गुण का, किसी विशेषता का राग नहीं है, उसी प्रकार उनमें प्रियतम के किसी दोष के प्रति द्वेष भी नहीं है। उनके प्रियतम क्रोधी हों, लोभी हों, कामी हों, चोरी करते हों, परपीड़नरत हों, मिथ्याभाषण करते हों, सर्वदोषमय हों, उन्हें इससे भी सर्वथा, सर्वथा उपेक्षा है। उनकी दृष्टि में न दोष है, न गुण है। उनके प्रियतम यदि महापापी हों, कर्मों में पूर्ण लिप्त हों, पूर्णबद्ध हों, रागी हों, द्वेषी हों, कर्मफलों के प्रति स्पृहा युक्त हों, सब

प्राणियों के द्वेषी हों, वे मूर्ख हों, निर्बल हों, कामयुक्त हों, कामान्ध हों, रागान्ध हों, श्रौत-स्मार्त-कर्मच्युत हों, भ्रष्ट हों, पतित हों, माता-पिता द्रोही, गुरु द्रोही, निकृष्ट से निकृष्ट कर्मा हों, असत् हों, दुःख हों, नरककीट हों, पापात्मा हों, दुःखी हों, भोगी हों, वे वेद द्रोही हों, ब्राह्मण द्रोही, सर्व पापों की योनि हों, भक्त द्रोही हों, ऋषिमुनि द्रोही राक्षस हों, प्रेत हों, पिशाच हों, साक्षात् मृत्यु हों, और अन्ध से अन्धतम नरक हों, प्रिया को उनके किसी दुर्गुण से द्वेष नहीं है।

प्रिया के प्रियतम चाहे प्रिया से भी द्रोह करनेवाले हों, उन्हें तन मन से न अपनाकर त्रासना देनेवाले हों, दुत्कारने वाले हों, घोर से घोर, नित्य नित्य नव-नव रूप से दुःख देनेवाले हों, और अनन्तकाल तक त्याग देने, छिटका देने वाले हों, फिर भी प्रिया उनकी दासी हैं। उन्हें न प्रेम करनेवाले से राग है, न दुत्कारने वाले, घृणा करनेवाले से द्वेष है, वे इस राग-द्वेष द्वैत रूपी मल से सर्वथा, सर्वथा विवर्जित हैं। उनके विशुद्ध, प्रेममय चित्त में राग-द्वेष की लेशानुभूति ही नहीं है। उनका प्रेम परम विशुद्ध है। वह प्रेम किसी प्राकृतिक, अप्राकृतिक, दिव्य, अपितु भगवदीय गुण के प्रति रागी नहीं है। इसीलिये प्रिया निर्गुण के राग से भी सर्वथा सर्वथा मुक्त हैं, वे वैराग्य की भी रागी नहीं हैं। प्रिया न गुण की रागी हैं, न दोष की रागी हैं। न दोष की द्वेषी हैं, न गुण की द्वेषी हैं। प्रिया के निर्गुण का रूप गुण-द्वेष नहीं है, प्रिया के निराकार का अर्थ आकार-द्वेष नहीं है, प्रिया के निर्विशेष का अर्थ विशेष-द्वेष नहीं है। प्रिया के निर्विशेष का अर्थ है, वह निर्विशेष जिस पर समस्त गुणों का समुद्र नित्य, नित्य, लहराता है साथ ही साथ समस्त दोष भी नित्य नित्य, एक ही साथ जिसपर युगपत् तैरते रहते हैं। क्योंकि समस्त सविशेष युगपत विरुद्ध गुण धर्माश्रयी है, इसीलिये प्रिया इससे सर्वथा, सर्वथा, अलिप्त, असंग, मात्र प्रियतम दासी हैं। सारिका स्पष्ट प्रिया के हृदय से एकात्म्य कर, अनुभव कर रही थी कि जहाँ गुण की सत्ता है वहाँ दोष-सत्ता साथ-साथ रहेगी ही। कहीं, कोई गुण-शून्य दोष है ही नहीं। और कहीं कोई दोष शून्य गुण है ही नहीं। अधर्म शून्य धर्म है ही नहीं। और धर्म शून्य अधर्म है ही नहीं। समस्त आरम्भ ही त्रिगुणात्मक होने के कारण साथ जन्मे हुए धूँए से अग्निकी भाँति दोषावृत हैं। अतः दोष-गुणों पर आधारित दृष्टि प्रिया की है ही नहीं। वास्तव में सत्यतः सत्ता दोष गुण की है ही नहीं। चाहे गुण महान से महान

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

हों, अनन्त गुण हों, चाहे अनन्त दोष हों, जब सत्ता ही नहीं, तो उनका महत्व ही क्या है। स्वप्न में, चाहे कोई अनन्त गुणवान हो, चाहे अनन्त दोषमय हो, जब स्वप्न मात्र मिथ्या है, फिर मिथ्यात्व का महत्व ही क्या है ? इसीलिये प्रिया की दृष्टि में प्रियतम के अतिरिक्त न बड़े से बड़ा भगवान है, न बड़े से बड़ा कोई ईश्वर है। न बड़े से बड़ा देव है, न बड़े से बड़ा कोई महादेव है, न कोई बड़े से बड़ा धर्म है, न कोई बड़े से बड़ा पाप। न बड़े से बड़ा स्वर्ग है, न बड़े से बड़ा नरक। न बड़ी से बड़ी मुक्ति है, न बड़े से बड़ा बन्धन। न ब्रह्म की सत्ता है, न प्रकृति की, माया की। न सत्य की सत्ता है, न मिथ्या की। क्योंकि सत्य और मिथ्या की सत्ता तभी तक है, जब मिथ्या का अस्तित्व मानाजाय। जब मिथ्या है ही नहीं, फिर सत्य ही सत्य तो है। और जब सत्य ही है, तो उसके प्रकाशक मिथ्यात्व के न होने से वह है ही, इसका निर्णय कौन करे। अतः न अस्ति की सत्ता है, न नास्ति की। न आत्मा की सत्ता है, न अनात्मा की। प्रिया के अन्तःकरण में तो मात्र प्रियतम की सत्ता है, और अपने प्रियतम की नित्य दासी, नित्य प्रिया, राधा हैं।

गुणों के अनुगत राग और दोषों के अनुगत द्वेष तो सभी प्राणी करते हैं। प्रिया के प्राणनाथ तो उनके सर्वस्व में अनुगत और उनके सर्वस्व से सर्वथा पृथक भी हैं। वे उनके प्राणों के कारण हैं, इसीलिये प्राणों के पूर्ण स्वामी हैं। वे उनके जीवन के कारण हैं, अतः सम्पूर्ण जीवन में अनुगत ओतप्रोत हैं। वे उनकी सर्वेन्द्रियों के कारण हैं, अतः उनके भी भोक्ता, आश्रय, प्रकाश हैं, उनसे अनावृत हैं।

'दासी' शब्द एक और चमत्कारिक अर्थ दिखा रहा है। प्रिया का सर्वस्व मात्र भोग्या है, भोक्तृत्व का उनमें सर्वथा, सर्वांश में, पूर्णतया अभाव है, अत्यंतिक अभाव है। प्रिया का नाम भी प्रियतम का भोग्य है। यह स्पष्ट जानलें कि प्रिया भाव है, प्रिया कोई भी नाम नहीं है। प्रिया न राधा हैं, न विशाखा। वे न ललिता हैं, न चित्रा। वे न नन्द हैं, न यशोदा। वे न गोपी हैं, न ग्वाल। वे न स्त्री हैं, न पुरुष। वे न देवी हैं, न देवता। वे न भगवती हैं, न भगवान। वे न नर हैं, न नारी। वे मानव हैं, न मानवी। वे न पशु हैं, न पक्षी हैं। न कीट हैं, न पतंग। वे प्रकृति से अतीत, त्रिगुणात्मक सृष्टि से अतीत मात्र भाव हैं, और उनके प्रियतम भी भावभोक्ता रस हैं। भाव के आश्रय,

विषय रस हैं। भावनुगत, भावकारण रस हैं। भावव्यापक और भाव से असंग रस हैं। भाव के आवरणहीन प्रकाशक रस हैं। एकमेव, अद्वितीय रस हैं। जिन्हें श्रुतियों 'रसो वै सः' कहकर संकेत कर कर रही हैं।

हाँ, तो रसभोग्या होने से ही वे राधा हैं, राधिका हैं, दासी हैं प्रिया हैं। वे कोई देह थोड़े ही हैं, जिसका नाम हो। क्योंकि यदि देह होतीं तो उनका जन्म होता, उनमें वृद्धि होती, फिर उनका परिणाम भी होता, फिर उनका क्षय भी होता, और उनका विनाश भी हो जाता। नाम तो मात्र देह का ही होता है। जो देह रहित है, उसका नाम कहाँ? चाहे देह सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम हो, चाहे स्थूलतर, स्थूलतम। चाहे प्राकृतिक हो और चाहे अप्राकृत। प्रिया तो अप्राकृतिक, भगवद्देह भी नहीं हैं। वे तो मात्र भाव हैं, जो अनन्त है, असीम है, सर्वव्यापक है सर्व है, एकमेव है, अद्वितीय है, अखंड है, घन है, और मात्र आस्वादनमय हैं। परन्तु हैं वे रस की दासी, रसभोग्या ही। हैं वे प्रियतम-भोग्या, प्रियतम-प्रियतमा, प्रियतम-दासी ही। इसीलिये प्रियतम उन्हें जो भी नाम लेकर उच्चारित करें, वे अपने प्रियतम के सुखार्थ, उनके भोगार्थ, राधा हैं, विशाखा हैं, जो नामोच्चारित करें, वह नाम हैं। प्रियतम जो देह उन्हें देदें, वे सर्वदेह हैं। सारिका स्पष्ट अनुभव करने लगी कि संसार में निकृष्ट से निकृष्ट और उत्कृष्ट से उत्कृष्ट जितने, नाम हैं, सब प्रिया के ही नाम हैं और जितने रूप हैं, देह हैं, सब प्रिया के ही देह हैं। मात्र प्रियतम रसार्थ, प्रियतम भोग्यार्थ, रस भोग्यार्थ, भाव ही सर्वत्र, सर्वनाम, सर्वदेह हो, अभिव्यक्ति पारहा है।

सारिका स्पष्ट अनुभव कर रही थी, भोक्तृत्व मात्र असत है। प्रवृत्ति मात्र भोक्तृत्व की पुष्टि के लिये है। सुख पाना और दुख से छूटना, कर्म में प्रवृत्त होने के मात्र दो ही उद्देश्य हैं। इस भोक्तृत्व की मिथ्या आशा में ही तो समग्र सीमित देह उत्पन्न होते हैं। कर्मफल ही तो देह है। कर्मफल ही तो आकाश है, स्वर्ग है, वायु है, नक्षत्र हैं। लोक है, परलोक है। कर्मफल ही तो मात्र दृष्य है। और यह ही तो मात्र दिव्य, अदिव्य, प्राकृत, अप्राकृत देहों का परिणाम है, जो क्षणभंगुर हैं, अनित्य हैं। प्रिया यदि भगवदेह भी होतीं तो वे नारायण की लक्ष्मी ही होतीं। फिर वे ब्रह्मा की ब्रह्माणी, और इन्द्र की इन्द्राणी नहीं हो सकती थीं। वे राम की सीता भी नहीं होतीं। और इन्द्ररूप में अभिव्यक्त प्रियतम तो उनसे सुखी हो ही नहीं सकते थे। फिर वे असीम, अनन्त, कदापि

नहीं होतीं। फिर घोर से घोर से घोर नरक में पड़ी प्रियतम की अभिव्यक्ति, कोई देह तो उनसे छाया, सुख पा ही नहीं सकती थी। इसलिये वे सर्वथा सीमित नहीं हैं वे तो अनंत, सर्व, एकमेव, प्रियतम की एक मात्र सुखस्वरूपा, सुखदातृ, आनन्दस्वरूपा, आनन्ददातृ, प्रिया हैं। सुखदान ही मात्र उनका कर्म है। इसीलिये वे सर्व देहों में स्थित अपने प्रियतम को वरण कर सदा सुखी ही रखती हैं। सुख ही सुख देती हैं। और उनमें यदि कोई भोक्तृत्व है तो इतना ही है कि अपने प्रियतम-रस को सुखी, आनंदित देख कर ही वे सुखी होती रहती हैं। ऐसी नित्य दासी हैं, वे। शाश्वत दासी हैं, वे।

श्री सारिका के अन्तर्नेत्रों के सम्मुख विलसित कैसी विलक्षण प्रिया हैं, जिनका मात्र जीवन ही सुखदान है। प्रियतम सुख चाहें, या न चाहें। प्रिया को प्रेम करना तो आनन्द से ही प्रेम करना है। परन्तु रस सर्वथा स्वतंत्र है। वह अपने आनन्ददाता से, भी प्रेम नहीं करता। अनन्त, अनन्त, शाश्वत, नित्य, स्वरूपभूत भाव से भी आनन्द से भी, रस प्रेम नहीं करता। उसे ठुकराता है। उसे तन से, मन से नहीं अपनाता। आत्यंतिक आनन्द की प्राप्ति के लिये ही तो तन है, मन है कि वे तनोद्भूत विषयों की नश्वरता का अनुभव करें इनसे सर्वथा विरक्त होकर अपनी नित्य प्रिया, भावरूपा आत्मा में छिपी प्रिया, जो सर्वथा सुखमयी है, आत्यंतिक सुख दातृ है, उससे जुड़ जायें। उससे आलिंगित हो जायें। एकात्म, हो जायें। प्रियारूप हो जायें। भावरूप हो जायें। सुखसमुद्र में निमग्न हो जायें। परन्तु अपनी निज स्वरूपा, निज प्रिया, निज दासी, जो नित्य प्रस्तुत है, सुख की अनन्त सामग्री प्रस्तुत करने, नित्य सम्मुख है, उस हृदयेश्वरी का यह रस ही तो उसका निज स्वरूप होकर भी तिरस्कार करता है। वह स्वयं मिथ्या धन, मिथ्या स्त्री, मिथ्या पशुभोग, मिथ्या पुत्र, पुत्री, महल, पृथ्वी आदि भाँति-भाँति की कल्पनाएँ रचकर, भोगी जाने वाली दृष्य की चमक रूप मिथ्या कर्मफलरूप विभूतियों की प्राप्ति की आशा करता है। समग्र विभूतियाँ तो मात्र देहाश्रित हैं और देह के साथ ही विलीन हो जाती हैं। शूकर देह को इन्द्राणीरूप विभूति सुखी कर सकती है क्या? कदापि सुखी नहीं कर सकती। इन्द्रपद का समस्त वैभव, इन्द्रपद की समस्त विभूतियाँ, शूकर के लिये त्याज्य हैं, हेय हैं क्यों कि वे शूकर देह के लिये हैं ही नहीं। उसके लिये तो विष्ठा ही सर्व रमणीय, सब सुख देने वाली है। उसकी सूकरी उसके लिये इन्द्राणी से अधिक महत्व वाली है। ये समग्र विभूतियाँ चाहे बड़ी से बड़ी हों,

महान से महान हों, मात्र देहाश्रित ही हैं। देह के साथ विलीन हो जाती हैं। इन्द्रत्व के नाश के साथ ही स्वर्ग इस प्रकार विलीन हो जाता है जैसे आकाश में स्वप्न-महल। तो जो प्रत्येक क्षणभंगुर नश्वर शरीर के साथ नाशमान है, उस क्षणभंगुर, कर्मफल रूप, दुःखमय, सर्वांश में आत्यंतिक दुःखयोनि, वंध्यापुत्र के समान भ्रान्ति-सृष्ट, मात्र नीरस, अरस, कुरस, को स्वीकार कर रस ही तो अपने सच्चे सुख को ठुकरा रहा है। रस ही अपने सच्चे सुख से, भाव से आनन्द से द्रोह करता है।

तुम्हरो सुख ही है मेरो सुख आन न कछु सुख जानौं।
जो तुम सुखी होउ मो दुःख में अनुपम सुख हौं मानौं॥
सुख भोगौं तुम्हरे सुख कारन, और न कछु मन मेरे।
तुमहिं सुखी नित देखन चाहौं निसदिन साँझ सबेरे॥ का भाव।

अपने स्वरूप को दुःखयोनियों में गिराना ही तो भावरूप आत्मा को दुःखी करना है। और सचमुच ही इस अनन्त-विषय-भोगरूप, मिथ्या, नारकीय भोग-सुख-स्पृहामयी सृष्टि की रचना कर एवं स्वयं उसी में रमण करते हुए जीव रूप में प्रियतम श्रीकृष्ण अपनी भावरूपा आत्मा राधा, प्रिया से द्रोह ही तो कर रहे हैं। जो अपने प्रियतम के सुख को ही अपना सुख मानती है, उस प्रिया राधा को विस्मृत कर आपाततः नश्वर और दुःखमय संसार में ही रचे पचे प्रियतम श्रीकृष्ण जीवरूप में अपनी प्रिया आत्मा को त्रासना ही तो दे रहे हैं, उसे दुःख देकर छिटका ही तो रहे हैं। सर्वांश में नाशमान, असत्, मिथ्या, मात्र सुख प्राप्ति का आभास कराने वाले शरीर को जो सतत नये नये दुःखों की ही रचना करता रहता है, उसे अपनी सत्ता मानकर जीवरूप में जो श्रीकृष्ण गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त क्लेश ही क्लेश पा रहे हैं, वे अपनी भावरूपा प्रिया को, आत्मा को, ह्लादिनी सार राधा को, प्रेम कहाँ कर रहे हैं। उनकी यह क्रिया प्रिया को प्रेम करने वाली, भावरूपा राधा को तन मन से अपनाने वाली कहाँ हुई ? वे तो अविवेक भ्रान्त होकर अपना रहे हैं, तुच्छ शरीर को। एवं इस प्रकार अपने कर्मों से शरीर की तथा शरीर से कर्मों की अनन्तानन्त काल तक रचनाएँ करते हुए सर्वांश में डूब रहे हैं, क्लेश में, दुःखोदधि में। फिर तुम्हारो सुख ही है मेरो सुख, आन न कछु सुख जानौं", यह कहने वाली प्रिया उनके इन आचरणों से कैसे सुखी हो सकती है। परन्तु प्रिया, भावरूपा राधा

का यही विलक्षण स्वभाव है कि वे निषेध करना जानती ही नहीं। 'निषेध' करना उनके स्वभाव में है ही नहीं। निषेध का उनमें आत्यन्तिक अभाव है। निषेध तो अभावरूप है। भावरूप प्रिया में अभावात्मक निषेध रह ही कैसे सकता है। भाव में अभाव की संभावना ही कहाँ? अतः वे अपने प्रियतम की रुचि को अपनी रुचि मान लेती हैं। उनसे स्वभावतः प्रियतम की ठीक रुचि के अनुरूप विधान का निर्माण हो जाता है। प्रिया के दुःख में प्रियतम यदि सुख मान रहे हैं, तब भी वे उसे अपने प्रियतम का एक खेल समझकर, उन्हें उस मिथ्या माया में ही रचा पचा, सुखी पाकर वे उनके सुख से ही सुखी हो जाती हैं। वे तो मात्र सुखमयी हैं, दुःख उनके सम्मुख आ ही कैसे सकता है?

कोई पूछे श्रीकृष्ण से जाकर कि प्रियतम, ठीक सत्य बताइयेगा, आपका जो यह सर्व-ज्ञान-विधान नारायण रूप है, वह आपके सम्पूर्ण-रस-लीला-विलास को व्यक्त करने वाला विग्रह है क्या? एवं आपकी जो नारायणी नामक महाशक्ति हैं, जिनकी सत्ता से आप नारायण हैं, वे स्वयं भी रसलीला विलास की एक मात्र आधार हैं क्या? तो श्रीकृष्ण स्पष्ट मुसकाते हुए निषेध कर देंगे। वे मानलेंगे कि उनका नारायणरूप अंश है, अंशी कदापि नहीं है। जहाँ भी ऐश्वर्य है, ईश्वरता है, चाहे उसे भगवत्ता भी कहलो, है सब अंश ही। अंशी उसे कदापि नहीं कहा जा सकता। विशेष चाहे अनन्त ही क्यों न हो, वह अवश्य ही सच्चिदानन्दधन परब्रह्म, परतत्व के अंश में ही स्थित होगा। जो भी व्यक्त है, वह चाहे बड़े से बड़ा भगवान भी क्यों न हो होगा माया की उपाधि से युक्त ही। षड़ैश्वर्य से युक्त सत्ता का नाम ही तो भगवान है। जब बल मात्र माया उपाधि है, ऐश्वर्य, यश, ज्ञान, वैराग्य. धर्म सभी मात्र माया की उपाधियाँ ही हैं, फिर इनको चाहे अनन्तरूप में ही कोई स्वीकार करले, होगा तो वह मायोपाधिक ही। भगवत्ता विशेषण के अतिरिक्त हो भी क्या सकती है? चाहे वे कितने ही महान् क्यों न हों, निर्विशेष सत्ता का विशेष से सम्बन्ध ही कहाँ है।

तब रसराज प्रियतम, रसिकशेखर, रसघनविग्रह, 'रसोवैसः' श्रीकृष्ण क्या मात्र भगवान हैं? 'भगवान' शब्द श्रीकृष्ण का एक विशेषण भले ही संभव हो, वे किसी भगवत्ता से परिच्छिन्न कदापि नहीं हैं। श्रीकृष्ण के उदर में भगवत्ता जैसे अनन्त विशेषण नित्य समाये रहते हैं। उस भगवत्ता से कोई उनका अंश, अंश का अंश भले ही सामावृत हो जाय वे पूर्ण, अंशी, रसराज

तो समग्र विशेषणों से असंग ही हैं। प्रिया राधा के प्रियतम न तो भगवान हैं और न ही वे स्वयं ही कोई भगवती हैं। प्रिया प्रियतम मात्र निर्विशेष रस की प्रतिष्ठा भावविग्रह हैं, भाव-प्रकाश हैं।

चाहे उन्हें भगवान् नारायण और भगवती नारायणी कहलें, चाहे उन्हें महाशिव एवं महाशक्ति पार्वती कहलें, महाकाल तत्व एवं महाकाली कहलें, सर्वज्ञाननिधान, सर्वशक्तिनिधान, ये सभी विग्रह हैं, ह्लादिनी शक्ति के आंशिक प्रकाश मात्र। ये सभी विग्रह हैं महारसराज, महाभावज्योति की अल्प रश्मि मात्र। ये महाभाव एवं रसराज रूप महासिन्धु में हैं व्यक्त लहरें ही।

सर्व-रस-विलास,मंडित कोई नाम, कोई देह, चाहे वह भगवन्नाम ही ही क्यों न हो, भगवद्देह ही क्यों न हो, हो ही नहीं सकता। इसीलिये प्रिया प्रियतम भाव और रस हैं, कोई नाम नहीं हैं। श्रीकृष्ण, राधा, रस एवं भाव प्रतीक शब्द मात्र हैं। समग्र-रस-विग्रह को संकेतित करने वाले, समग्र भाव को शाखाचन्द्र न्याय से निर्देश करने वाले रस-विग्रह-मंत्र, भावविहग्र-मंत्र इन्हें भले कहलो। श्रीकृष्ण कहने मात्र से समग्र रस नामाधीन सीमित कदापि नहीं होता। जो असीम है, अपार है, वह नामसीम हो ही नहीं सकना, वरंच उस असीम समुद्र की एक लहर श्रीकृष्ण नाम कथन मात्र से उमड़ कर, डुबाने के लिये, असीम में ले जाने के लिये, प्रस्तुत अवश्य हो जाती है। यही इन नामों का महत्व है। जितना श्रीकृष्ण, श्रीराधा का नाम इस दिशा में महत्व रखता है, वही महत्व, यसोदा नाम का भी, नन्दराय नाम का भी, विशाखा, ललिता, सुबल, श्रीदाम, मधुमंगल आदि नामों का भी है। हाँ, तो कोई पूछे भगवान् नारायण को, प्रभो, आप सर्वज्ञाननिधान होकर भी अंश होना क्यों स्वीकार किये हैं? इस ऐश्वर्य लीला में आपको कौनसा सुख है? हे प्रभो, अपने अंशी श्रीकृष्णस्वरूप में, रसराज, परमरसिक, 'रसो वैसः' स्वरूप में, प्रेमानन्द-तरंगित विग्रह में कौनसा अभाव देखा, जो इस चार भुजा वाले नारायण रूप को धारण किया एवं भगवती लक्ष्मी से पाद संवाहन करा रहे हैं। इस सृष्टि प्रपंच को व्यक्त करने में, एवं अपनी नाभि से उद्भूत एक ब्रह्मा नामक कीट से अपनी स्तुति कराने में, हे प्रभो, आप कैसे महिमा-मंडित हो रहे हैं। प्रभो, आपमें अज्ञान तो है नहीं, फिर इस भेद का सृजन करके आप कौनसे सुख विस्तार को प्राप्त हो रहे हैं? तो इस प्रश्न का उत्तर न भगवान् नारायण ही दे

सकेंगे, न स्वयं श्रीकृष्ण ही। इस प्रश्न का यदि कोई कहीं उत्तर संभव है तो यही है कि यह मात्र सर्वभवनसमर्थ रस का लीला-संकल्प, विलास-संकल्प ही है।

परन्तु महाभाव समुद्र राधा में प्रिया में इस रस संकल्प से कहीं कोई खरौंच नहीं लगती। उसका लहराना यथावत् उसी प्रकार होता रहता है। महाभाव समुद्र रसराज की समग्र रुचि को पूर्ण करने नित्य प्रस्तुत है। ज्यों ही प्रियतम श्रीकृष्ण अपने अंशी पूर्ण रसराज-विग्रह से नारायण अंश में अभिव्यक्त होते हैं, महाभाव सिन्धु राधा उन्हें कारणार्णव रूप में आश्रय दे देती हैं, भगवती नारायणी के रूप में उनकी तदनुरूप सेवार्थ प्रस्तुत हो जाती हैं। इतना ही नहीं भगवान् नारायण अपने ही श्रीविग्रह के नाभिकमल से जब चतुर्भुज ब्रह्मा बनते हैं, प्रिया ब्रह्माणी, वेदरूपा सरस्वती बनकर उन महापुरुष को श्रीयुक्त कर देती हैं। उनका अपना कहीं कोई आग्रह नहीं। प्रियतम श्रीकृष्ण की रुचि ही मात्र उनका विधान है।

प्रियतम ब्रह्मा हों, प्रिया ब्रह्माणी हैं। प्रियतम इन्द्र हों, प्रिया इन्द्राणी हैं। प्रियतम मानव बनकर सुखी हों, प्रिया उनकी सेवा करने मानवी, स्त्री बनकर सदा प्रस्तुत हैं। प्रियतम यदि देव हैं तो वे देवी हैं। सर्वनाम एवं रूपों में वे सर्वत्र प्रियतम सुख-सम्पादनार्थ प्रस्तुत हैं। प्रियतम घोर से घोर दुःख का विधान अपने लिये करें, प्रिया उस समग्र दुःख विधान की विधातृ बनकर उसे अपने पर ओट लेती हैं, क्यों कि निषेध, वर्जन, अरुचि उनका स्वरूप ही नहीं है। वे मात्र भावमयी हैं। प्रिया के नेत्र एक क्षण भी भ्रान्त नहीं हैं। उन्हें मैं, तुम, यह, वह, सृष्टि, और संहार दिखाई ही नहीं देता।

प्रिया के नेत्र तो एक मात्र अद्वितीय, नित्य, निर्मल, शान्त, चिन्मय, प्रियतम रसराज, जिनकी वे एकमात्र दासी हैं, उनको ही देखते रहते हैं। सम्पूर्ण अभिव्यक्ति चाहे वह कितनी ही चमक दिखाने वाली आकर्षक हो, चाहे कितनी बीभत्स, कटु, अनाकर्षक हो, है तो सब उनके प्रियतम रसराज में ही अध्यस्त। अतः उनके लिये ब्रह्मा से लेकर कीट पतङ्ग तक, एवं ब्रह्मलोक से लेकर अन्धतम नरकों तक, एक सर्व अधिष्ठान रसराज श्रीकृष्ण के अतिरिक्त किसी दूसरे की सत्ता है ही नहीं। उन्हें तो सर्वत्र एक प्रियतम श्रीकृष्ण ही सब रूपों में, सब वस्तुओं में, एवं सभी परिस्थितियों में भरे दृष्टिगोचर होते हैं। राधा के लिये न नरक है, न स्वर्ग, वहाँ तो मात्र उनके प्रियतम ही सरस

रहे हैं। और है भी यह परम सत्य कि समस्त असत् पदार्थों में एक मात्र रस ही, श्रीकृष्ण ही सत् हैं, रस के अतिरिक्त न किसी जगत की सत्ता है, न जगत के किसी निर्माता की। जिस प्रकार आकाश की शून्यता के अतिरिक्त पृथक आकाश कहीं नहीं है, उसी प्रकार द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव, और जीव पूर्ण रसमय रसराज श्रीकृष्ण के अतिरिक्त, उनकी मात्र रसाभिव्यक्ति के अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं हैं। सम्पूर्ण देवता, भगवान् नारायण की ही तो कल्पना हैं। ये नारायण मात्र रसराज श्रीकृष्ण की ही संकल्पित अभिव्यक्ति तो हैं। स्वयं-प्रकाश रस में ही माया, संपूर्ण सृष्टि प्रपंच के निर्माता ब्रह्मा को संकल्पित करती है। ब्रह्मा क्या कोई सत् हैं। वे तो नारायण की संकल्पात्मक, सङ्कल्पप्रसूत सृष्टि मात्र तो हैं। वे मायावी की माया के चमत्कार के अतिरिक्त, उनके ऐश्वर्य के एक प्रकाश मात्र के अतिरिक्त कोई सत्य तत्व थोड़े ही हैं। बस, जल की द्रवता मात्र जैसे जल है, समुद्र ही है, वायु का स्पन्दन वायु ही है, काजल की कालिमा काजल ही है, इसी प्रकार रस-प्रकाश में मिथ्या अध्यस्त यह सम्पूर्ण विभूति की चमक दिखाने वाला जगत और जगत का कर्त्ता दोनों रस ही रस है। इसके अरतिरिक्त सब मात्र मिथ्या, भ्रम, असत्, भ्रान्ति है।

भगवान् नारायण रसोद्भूत अचिन्त्य ऐश्वर्य, रसोद्भूत अचिन्त्य विभूति के अतिरिक्त कहीं कुछ भी सत्य नहीं हैं। इसीलिये वे रसराज श्रीकृष्ण की एक उपाधि मात्र हैं। तब प्रिया की दृष्टि में अपने प्रियतम की किसी उपाधि का क्या महत्व है? उनके लिये जिनके सम्मुख प्रतिक्षण नित नव-नव उपाधियाँ लेकर प्रियतम सदा प्रत्यक्ष हैं, किसी विभूति का कितना, क्या अर्थ है?

प्रिया तो रसनेत्रा हैं, रसोवैसः रसिक रसराज ही तो उनका विषय, रूप है जिसे उनके नेत्र प्रतिपल देखते रहते हैं। प्रिया रसकर्णा हैं, रस ही उनका विलक्षण विषय शब्द है जिसे उनके कान निरन्तर सुनते हैं। प्रिया तो रसास्वादन लोलुपा हैं, रस ही उनकी रसना सदा चखती है। प्रिया पूर्ण रसचित्ता हैं, क्यों कि आदि, अन्त, एवं मध्य से हीन, निरवधि वे रस में ही समन्वित, पगी हुई हैं। उनमें न किसी विभूति का अभिनन्दन है, न ही उनमें किसी अभूति से द्वेष है।

विलक्षण सुख-निमग्ना हैं प्रिया। प्रियतम का सम्पूर्ण दुःख-विधान उनके लिये सुख सागर की उमड़ती उछलती मात्र लहरें हैं और कुछ नहीं।

सारिका यह सब सोच ही रही थी कि पुनः एक आश्चर्य जनक घटना घटित हुई। प्रिया प्रियतम के स्वरूपान्तराल से एक शुक आकृति उड़कर सारिका के पास आकर बैठ गई। सारिका अत्यन्त उत्फुल्ल हो गई। वह हर्षातिरेक से रोमाञ्चित हो बोल उठी :—

आओ शुकराज, अभिनन्दन है, स्वागत है। आओ, विराजो।

शुक अत्यन्त प्रेम से सारिका की ओर टुक टुक देखने लगा और सारिका शुक को। दोनों के नेत्र प्रेमाश्रु की वर्षा कर रहे थे, दोनों के शरीर रोमाञ्चित थे। मानो प्रेम-प्रवाह के वे दोनों निर्झर हों, ऐसी ही उनकी शोभा हो रही थी। कुछ कालतक दोनों परस्पर एक दूसरे की ओर अपार प्रेम-दृष्टि से देखते रहे। तत्पश्चात शुक बोला– 'हे सारिके, इस समय मेरे, तेरे एवं रानी राधा के, तीनों के चिदाकाश किसी अज्ञात कृपा-प्रेरणा से एक हो गये हैं। इतने कालतक तुम जो भी सोचरही थी, मेरे अन्तःकरण में वह ज्यों का त्यों प्रतिबिम्बित हो गया है। अवश्यमेव अभी अभी तुम यही तो सोच रही थी कि रानी रसनेत्रा हैं। उनके नेत्र सम्पूर्ण दृश्य में पूर्णतया रसराज, प्रियतम श्रीकृष्ण को ही देखते हैं। राधा के नेत्र पूर्णतया अपने रसस्वरूप प्रियतम श्रीकृष्ण के दास हैं। ठीक इसी प्रकार रसस्वरूप प्रियतम श्रीकृष्ण का रूप भी राधा की नेत्रता का दासानुदास है। उस रूप के भी एक मात्र आश्रय राधानेत्र ही हैं। राधानेत्र के अतिरिक्त यह रूप भी दूसरी आँख में प्रवेश ही नहीं होता।

सारिके रानी, अब मुझे विस्तार से समझाओ, प्रिया राधा एकान्तिक रसकर्णा कैसे हैं ? हे सारिके, इसकी भी अनुभूति मेरे अन्तःकरण में हो जाय, ऐसी कृपा करें।

शुक के इतना कहते ही सारिका ने अपने प्रेम-प्रफुल्लित पंखों से शुक को स्पर्श कर दिया। सारिका का शुक को स्पर्श करना ही था कि दोनों किसी विलक्षण भावावस्था को प्राप्त हो गये। शुक की आँखों के सम्मुख एक परम शोभामय दृश्य प्रकट हो गया:—

"गिरिराज का परिसर है। एक सरोवर में प्रिया राधा अपनी सखियों सहित स्नान करने आई हैं। श्रीकृष्ण भी वन में अवश्य हैं, परन्तु वे अपने सखाओं के साथ इस सरोवर से बहुत दूर गोचारण कर रहे हैं। उन्हें अति दूर

वन में पाकर सखियाँ निस्संकोच राधारानी के साथ जलकेलि कर रही हैं। परन्तु प्रिया राधा की विलक्षण भावावस्था है। प्रिया के नेत्रों में तो प्रियतम की छबि भरी है। सरोवर के जलमें, भूमि में, वन में, वायु में, आकाश में, सर्वत्र प्रिया जहाँ जिधर अपनी दृष्टि उठाती हैं, उन्हें अपने प्रियतम सम्मुख ही खड़े दिखाई पड़ते हैं। जल में ज्यों ही उन्हें अपने प्रियतम का प्रतिबिम्ब आभासित होता है, वे लज्जावश जल से सकुचाकर बाहर आजाती हैं। सखियाँ प्रिया को जलक्रीड़ा से पराङ्-मुख होता देख, पुनः उन्हें पकड़कर जलक्रीड़ामें प्रवृत्त करनेकी चेष्टा करती हैं। इस प्रकार सखियों का जल विहार हो रहा है।

सहसा दूर से सब सखियों एवं प्रिया को प्रियतम श्रीकृष्ण की परम मधुर वंशीध्वनि सुनाई पड़ती है। वंशीध्वनि इतनी प्रेम भरी मधुर होती है कि सब सखियाँ भाव विभोर हो उठती हैं। प्रिया राधा की तो इस वंशीध्वनि के श्रवण मात्र से विलक्षण दशा हो जाती है। वे तो सर्वथा प्राणहीन सी होकर सरोवर के जल में लुढ़क जाती हैं। सखियाँ प्रिया की इस दशा को लक्ष्य कर उन्हें निकुञ्ज में ले जाती हैं। प्रिया की दशा तो और भी चिन्ताजनक हो उठती है। न उनके शरीर में श्वास-प्रश्वास का आवागमन रहता है, न ही हृदय में स्पन्दन। अपनी रानी के शरीर में जीवन का चिह्न ही लुप्त होता देख सखियाँ बहुत ही घबड़ा जाती हैं। अनेक दौड़ी दौड़ी श्रीकृष्ण के पास जाती हैं और उन्हें बुलाकर लाती हैं।

प्रियतम श्रीकृष्ण सखियों को आश्वस्त करते हैं कि यह प्रिया की दशा भावावेश की है, वे चिन्ता न करें। सखियाँ आश्वस्त होती हैं। श्रीकृष्ण सखियों को इस निकुञ्ज तथा सरोवर से बहुत दूर चली जाने का संकेत करते हैं और स्थान को सर्वथा एकान्त कर देने का निर्देश देते हैं। अपनी रानी को स्वस्थ करने की चिन्ता में सभी सखियाँ निकुञ्ज एवं सरोवर से पर्याप्त दूर चली जाती हैं। प्रियतम श्रीकृष्ण यदि आसपास में नहीं होते तो प्रिया की ऐसी दशा देखकर सखियाँ तो कबकी निष्प्राण हो गयी होतीं। श्रीकृष्ण के आश्वासन से आश्वस्त हो सब सखियाँ उनकी पूरी पूरी आज्ञा पालन करती हैं। सखियों के जाते ही एक और आश्चर्य होता है। श्रीकृष्ण की दृष्टि के सामने ही प्रिया के अंग, अंग एवं सम्पूर्ण शरीर द्रवित होने लगते हैं। प्रारंभ तो स्वेद भाव से होता है। पहले तो प्रिया के रोम रोम से इतना प्रस्वेद प्रवाहित होता है, मानो उनका रोम रोम स्वेद से चू रहा हो। धीरे धीरे यह जल और आर्द्रता इतनी

बढ़ जाती है मानो उनका अंग अंग जल से ही निर्मित रहा हो। और विलक्षण आश्चर्य यह होता है कि प्रिया के अंगों से जल प्रवाहित होते होते ही स्वयं प्रियतम और सम्पूर्ण व्रज का दृश्य ही जलोमय होना प्रारंभ हो जाता है। ऐसा लगने लगता है, मानो सम्पूर्ण गिरिराज पर्वत, पर्वत पर स्थित समग्र गहन वन, वनों में शोभित अनेकानेक कुञ्ज, विचरण करते पशु, पक्षी, खिले हुए पुष्प, गिरिराज परिसर की सम्पूर्ण भूमि, वायु, आकाश, सब मानों उमड़ती यमुना के प्रवाह में, उनके भीतर स्थित हों। चारों तरफ, भीतर-बाहर, ऊपर नीचे जैसे जल ही जल हो।

इतना ही नहीं, कुछ ही काल में यह सम्पूर्ण व्रज मण्डल की जलार्द्रता भी प्रिया की जलार्द्रता के रूपान्तरण के साथ ही साथ अत्यन्त तेजोमय होने लगती है। अभी तक तो प्रिया, प्रियतम एवं सम्पूर्ण व्रज मण्डल मानो यमुना में डूबा हुआ था, परन्तु अब तो यह अत्यन्त तेजोमय प्रकाशयुक्त अग्नि-प्रतिमा बनजाता है। सम्पूर्ण दृष्य ही मानो परम तेजस्वी अग्निमण्डल हो, ऐसा लगता है। इस चमत्कार की इतनी ही इति नहीं। कुछ ही काल पश्चात् अग्नि प्रतिमा की तरह चमकता सम्पूर्ण दृष्य क्रमशः वायु रूप हो कर, आकाश रूप हो जाता है। प्रिया, प्रियतम, गिरि, वन, पशु, पक्षी, कुञ्ज, निकुञ्ज सब दृष्य अपने आकार से पूर्णतया लुप्त हो जाते हैं। शुक, सारिका आदि सभी लीलापात्र अपनी अस्मिताओं का अनुभव तो करते हैं, परन्तु कहीं कोई आकार नहीं रहता। सगुण, निराकार सत्ता की ही सबको अनुभूति होतीहै। धीरे धीरे यह आकाश भी अब मात्र अपने सूक्ष्म गुण,अत्यन्त मधुर वंशीध्वनि में पर्यवसित हो जाता है। उस वंशीध्वनि की मधुरता का क्या वर्णन किया जाय। अनिर्वचनीय मधुरता, अचिन्त्य मधुरता, मात्र मधुरता, एकमेव, अद्वितीय, बस, इतना कहकर वाणी मूक हो जाती है।

वह वंशीध्वनि की मधुरता है, या स्वयं मधुरता ही मूर्त्तिमान हो वंशीध्वनि हो गयी है, कहीं कोई पृथकता, भेद, भिन्नता का अनुभव ही नहीं। उसी मधुरता में सब पंचत्व खोजाता है। मात्र रस ही रस और उस रसध्वनि की श्रोता अनन्तकर्णा एक मात्र प्रिया।

शुक एवं सारिका दोनों लीला के प्रकाश में स्पष्ट अनुभव कर रहे हैं कि यह मधुरातिमधुर रसध्वनि अनन्त चिदाकाश को व्याप्त किये है।

अनन्तकर्णा प्रिया की उत्कण्ठा इतनी बढी हुई है कि इस रसध्वनि की मात्र श्रोता वे ही हो गयी हैं। सबके चित् प्रिया की उत्कण्ठा के आकर्षण से खिंचकर प्रिया का चित् ही बन चुके हैं। मात्र दो का ही अस्तित्व शेष है। अनन्त शब्दरूप वंशीध्वनि और ध्वनि की श्रोता प्रिया। सम्पूर्ण चिदाकाश ही प्रिया की कर्णेन्द्रियों में परावर्त्तित हो गया है। अनन्तकर्णा प्रिया की वंशीध्वनि श्रवणोत्कण्ठा इतनी प्रबल है कि वंशीध्वनि उसमें विलीन हो रही है। किन्तु आश्चर्य है कि यह वंशीध्वनि ज्यों ज्यों प्रिया की कर्णेन्द्रियों में समा रही है, यह मधुर, मधुरतर, मधुरतम होती हुई प्रिया के कानों की उत्कण्ठा भी बढ़ाती ही जाती है। अनन्त, अपार, अखण्ड सुख से आपूर हुए प्रियतम वंशी बजाते ही जारहे हैं। साथ ही अनन्त, अपार, असीम सुखमें विभोर प्रिया सुनती ही चली जारही हैं। अनन्त, असीम, निरवधि काल तक यह स्पर्द्धा चलती रहेगी, चलती रही थी, और चलती रही है।

कितनी पवित्र है प्रिया की वंशीध्वनि-श्रवण-स्पृहा, कि उसमें तनिक भी अपना स्वसुखपूर्ण आग्रह नहीं है कि प्रियतम द्वारा यह वंशी-वादन हो ही। यदि प्रियतम को वंशी बजाने में सुख हो, वे बजावें, यदि वे इसे विराम देना चाहें, अभी इसी क्षण विराम दे दें। प्रिया का कहीं कोई सङ्कल्प ही नहीं कि यह वंशीध्वनि बजे ही। यद्यपि प्रिया इसे सुनकर सुख विभोर हैं, उनके कानों को यही ध्वनि एकमात्र प्रिय है, परन्तु प्रियतम को पूर्ण स्वतंत्रता है, उन्हें सुख हो, तो वे बजावें, न सुख हो न बजावें। अनन्त कालतक कभी भी नहीं बजावें, और सदा, निरवधिकाल पर्यन्त बजाते रहें। प्रिया का कुछ भी, कहीं भी, कोई भी आग्रह नहीं।

और लो, प्रियतम ने वंशीध्वनि वादन करना स्थगित कर दिया। यह वंशीध्वनि, मधुरतम रसध्वनि विलीन हो गयी अनन्त उत्कण्ठातुर प्रिया की कर्णेन्द्रियों में। और पुनः दृश्य ज्यों का त्यों व्यक्त होने लगा। वन, उपवन, सखियाँ, सरोवर, कुञ्ज, शुक, सारिका, प्रिया, प्रियतम सब ज्यों के त्यों व्यक्त हो गये।

प्रिया अपने प्रियतम को सम्मुख देख संकोच से, लज्जा से, भर उठीं। प्रियतम तो अपनी प्रिया की ओर निस्संकोच, उनकी मुखमाधुरी को एकटक देखते ही जा रहे थे। प्रिया अपने प्रियतम की अत्यन्त सुखमयी मुखमुद्रा

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

देख मन ही मन मुग्ध हो रही हैं। परन्तु प्रिया के कान तो अभी भी डूबे हैं, अपने प्रियतम की रसमधुर वंशीध्वनि में ही। वे तो सदा से उसी में डूबे थे, और असीम अनन्त कालतक उसी में डूबे रहेंगे।

सारिका बोल उठी– "बोलो शुक, यह वंशीध्वनि है क्या? रसराज प्रियतम श्रीकृष्ण का रसमय रूप शब्द ही तो है। वह पूर्णरूपेण प्रियतम ही तो है। क्या वह शब्दरूप होने के कारण आंशिक है, खण्ड है? नहीं, मात्र पूर्ण अखण्ड रसराज है, विशुद्धतम महा महारस है। वह प्रिया का, महाभाव का पूर्ण प्रकाश है। प्रियतम के इस शब्दमय वंशीध्वनि रूपमें और नेत्रों के दृष्य-नीलसुन्दर आकृति में कोई भी अन्तर है क्या? कदापि नहीं, कदापि नहीं। वही जो नेत्रों के लिये रूप है, वही, वही, एक मात्र कानों के लिये शब्द रूपमें व्यक्त होरहा है, न। हे शुक! जिस प्रकार प्रिया की नयन-उत्कण्ठा प्रगाढ़, प्रगाढ़तर हो, समग्र इस दृष्य को प्रिया के लिये प्रियतम बनादेती है, और उसकी छाया हम सबको भी सर्वत्र प्रियतम छविका दर्शन करा देती है, उस समय सम्पूर्ण व्रजमण्डल का ही चिदाकाश प्रियतमाकाररूप रसमय बनजाता है, उसीप्रकार तो अभी अभी प्रिया की श्रवणोत्कण्ठा ने प्रगाढ़, प्रगाढ़तर हो समग्र व्रज को अपने में आत्मसात् कर रसशब्दमय बना दिया था, न। हे शुक, प्रिया के इस महाप्रगाढ़ भाव की छाया ही तो मेरे, तेरे, सखा के, सखियों के, इस गिरिराज, व्रजवृन्दावन में स्थित कीट, पतङ्ग पर्य्यन्त सम्पूर्ण जीवों के चिदाकाश को भी कभी प्रियतम रूप से छबिमान करती है, कभी रसशब्द वंशीध्वनि के माधुर्य सागरमें रसनिमग्न कर देती है, कभी स्पर्श सुख में समाधिस्थ बनादेती है। तब बताओ शुकराज, नेत्रों के दृष्य प्रिया प्रियतम, कानों के शब्द प्रिया प्रियतम, स्पर्शेन्द्रिय के स्पर्श प्रिया प्रियतम, रसना के अधरामृत स्वाद प्रिया प्रियतम, नासिका के गन्ध प्रिया प्रियतम में पृथकता कहाँ है?

नेत्रों के दृष्य रसराज, कानों के शब्द रसराज, नासिका के गन्ध रसराज, त्वचा के स्पर्श रसराज, रसना के रस रसराज में किसी प्रकार का भेद है, अन्तर है क्या? जितने मधुर प्रिया प्रियतम नेत्रों के दृष्य हैं, उतने ही मधुर तो वे कानों के शब्द भी हैं। और जिस प्रकार आपाततः प्रिया प्रियतम की छवि की दासी हैं, उसमें सनी हैं, भरी है, उसी प्रकार प्रिया प्रियतम की

गंध से भी आकण्ठ लबालब भरी हैं, सनी हैं। पूर्ण उत्कण्ठातुर हो प्रियतम अङ्ग-गन्ध की भी प्रिया उतनी ही दासी हैं, जितनी उनके अधरामृत रस की पिपासी हैं। महाभावस्वरूपा प्रिया को आकाश के प्रत्येक शब्द में, वायु की हलकी से हलकी सरसराहट में भी एक ही रसमधुर प्रियतम-ध्वनि सुनाई पड़ती है। उन्हें पक्षीगणों की कलरव ध्वनि में, भ्रमरों के गुञ्जार में, कलियों की चटकन में, पत्तों की चरमराहट में, सखियों के रसमय वार्त्तालाप में, गायों के हम्मारव में, एक ही रसध्वनि, वही मधुरातिमधुर वंशीध्वनि श्रवणगोचर होती रहती है। विश्व का कोई भी दृश्य हो, प्रिया के लिये तो जैसे उसके साक्षात् प्रियतम ही हैं, ठीक इसी प्रकार विश्व का कोई भी शब्द हो, प्रिया के लिये वह तो अपने प्रियतम की मधुरातिमधुर वंशीध्वनि ही है।

सारिका बोलती जा रही थी, शुक अनुभूति की गहरी परतों में डूबता जा रहा था। 'रस ध्वनि ही मात्र आकाश है, चाहे गोलोक का आकाश हो, चाहे वैकुण्ठ का, चाहे कैलाश का हो, साकेत का, चाहे स्वर्ग का हो, चाहे पृथ्वी का। अनन्त अनन्त सृष्टि को आवृत किये, अवकाश दिये, यह प्रियतम की वंशीध्वनि ही तो अपने स्थूलरूप में आकाश है। इस ध्वनि के बिना आकाश का अस्तित्व ही कहाँ है? सम्पूर्ण दृश्य एवं द्रष्टा का बोध शब्द के द्वारा ही तो हो रहा है। बोध द्रष्टा है एवं शब्द दृश्य है।

शुक अनुभव कर रहा है, यह प्रियतम रसराज श्रीकृष्ण की मुरली-ध्वनि ही तो सबके प्राणरूप वायु की उत्पत्ति है, उसकी मूल है। यदि मुरली रव न हो तो भगवान नारायण भी श्वास कहाँ से लेंगे। इस ध्वनिरूप आकाश में ही तो क्षीरसागर लहरा रहा है। इस शब्द रूप रसाकाश में ही तो क्षीरसागर तथा शेषभगवान का अस्तित्व है और भगवान नारायण रूप दृश्य प्रकाशित हो रहा है, इस शब्द का परिणाम ही तो सबके प्राणवायु हैं जो वैकुण्ठ के भी बल और ओज हैं। इस वायु के विकार से ही तो तेज की उत्पत्ति है, जिससे सबका रूप प्रकाशित हो रहा है। यह मुरलीरव ही तो समस्त लोकों का, चाहे वे उत्कृष्ट से उत्कृष्ट हों, परम विभूतिमय हों, अनन्त विभूतिमय हों, सबका मात्र कारण है। और कार्य तो मात्र वाणी के आश्रयभूत नाम हैं, सत्य तो कारण ही है। फिर प्रिया, जो कारण-कारण महाभाव की ही विग्रह हैं, कैसे अन्य को सुनेंगी, वे तो रसदर्शी हैं, सर्वत्र रस ही रस, रसराज प्रियतम श्यामसुन्दर को ही देखती हैं,

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

रसकर्णा हैं, सर्वत्र रस ही रस, श्यामसुन्दर की वेणुध्वनि ही सुनती हैं। उनका देखना, सुनना, स्पर्श करना, सूँघना, स्वाद लेना सब मात्र रसराज हैं, प्रियतम हैं, श्रीकृष्ण हैं। इसी अर्थ में वे सदा रसदासी, प्रियतमदासी, कृष्णदासी हैं, और यही उनके 'हौं तो दासी नित्य तिहारी' कहने का तात्पर्य है।

हे शुक! प्रियतम प्राणरूप इस मुरलीध्वनि में ही सम्पूर्ण प्रियतमत्व भरा है। इस शब्द के कण के भी कण में जो शक्ति है वह शक्ति ही तो आदि-पुरुष नारायण का अचिन्त्य ऐश्वर्य है। इसके कण की छाया की छाया ही अनन्त ब्रह्माओं के प्रादुर्भाव का सङ्कल्प बल है। इन प्रियतम श्रीकृष्ण के प्राणों की शक्ति की छाया ही आदि स्रष्टा ब्रह्मा का संकल्प बल है जिसके आश्रय से वे अनन्त लोकों की उत्पत्ति करते हैं, भगवान् नारायण की विष्णुरूप की अचिन्त्य शक्ति है, जिससे वे असंख्य लोकों का पालन कर रहे हैं, और भगवान महाशिव की, रुद्ररूप की वह कालशक्ति है जिससे वे अनन्त लोकों का प्रलय करने में समर्थ हैं।

हे शुक, ब्रह्माजी की गोद से ही नारद, अँगूठे से दक्ष, प्राण से वशिष्ठ, त्वचा से भृगु, हाथ से क्रतु, नाभि से पुलह, कानों से पुलस्त्य, मुख से अङ्गिरा, नेत्रों से अत्रि एवं मन से मरीचि उत्पन्न होते हैं। इन ब्रह्मा के ही दाहिने स्तन से धर्म, पीठ से अधर्म, हृदय से काम, भौंहों से क्रोध, होठ से लोभ, वाणी से सरस्वती, लिङ्ग से समुद्र, गुदा से पाप की उत्पत्ति हुई। यह पाप ही राक्षसों का अधिपति निऋति है, एवं अधर्म ही संसार को भयभीत करने वाले मृत्यु का पिता है। इन ब्रह्माजी की छाया से ही कर्दमजी उत्पन्न हुए हैं जो इस सम्पूर्ण धर्म-अधर्ममयी, पाप-पुण्यमयी, विभूति-अभूतिमयी सृष्टि के जनक हैं। हे शुक, जब हमारी प्रिया राधारानी को यह नित्य एवं प्रत्यक्ष ज्ञान है कि रसराज तत्व से नि:सृत रसध्वनि शब्द के एक कण-मात्र से, उसकी छाया से ही यह सब उत्पत्ति, स्थिति, एवं प्रलय है, तब वे किसी भी नाशमान विभूति की सत्ता से कैसे प्रभावित होंगी। उनके चित्त में रसराज तत्व के अतिरिक्त इन नगण्य तुच्छ मायावी छल के प्रति स्थान ही कैसे हो सकता है। अतः मेरी प्रिया की सत्य दृष्टि में यह मिथ्या दृश्य और उसका अस्तित्व है ही नहीं। जितने भी भगवान और जितनी भी उनकी भगवती हैं वे सब इस मिथ्या दृश्य को ही अपनी भगवत्ता, ऐश्वर्य की चकाचौंध दिखाती हैं। प्रिया के अचिन्त्य ऐश्वर्य को कोई भगवत्ता

स्पर्श ही नहीं कर सकती।

हे शुक, चींटी के लिये पहाड़ अनन्त हो सकता है। परन्तु मनुष्य के लिये वह लक्ष्य ही रहता है। इसी प्रकार मनुष्य के लिये वह सृष्टि अनन्त, असीम आश्चर्यों का कारण हो सकती है, परन्तु ब्रह्मादि देवताओं के लिये तो यह मात्र सङ्कल्प से उत्पन्न होने वाली स्वप्नोत्पत्ति ही है। ठीक इसी प्रकार ब्रह्मा, रुद्रादि देवताओं के लिये भगवान नारायण अचिन्त्य ऐश्वर्य से युक्त हो सकते हैं, परन्तु ब्रह्मवित् के लिये उनका सब अचिन्त्य ऐश्वर्य मात्र मायोपाधिक ही है। और सम्पूर्ण ब्रह्मानन्द जिनका मुरलीरव एवं जिनके नूपुरों की झनकार मात्र है, सम्पूर्ण स्वप्रकाश परतत्व जिनकी पद-नख-ज्योत्स्ना की किरण मात्र है, जिनके मधुर मुसकान की आभा है, जिनकी दंतपंक्ति की झलमलाहट है, "रसोवैसः" जिनका अधरामृत रस है, उन रसराज एवं महाभावरूपा वृषभानुनन्दिनी के सम्मुख भगवत्ता की ऐश्वर्य-सत्ता कितनी नगण्य है, तुच्छ है, इसका अनुमान तो करो। बोलो शुक, सत्य कहना 'महतोमहीयान्' इस गोपवधूटी की मुसकान छटा, आभा के कण और उसकी छाया को भी स्पर्श कर सकता है क्या? इसीलिये इस अनन्त, महत्, विशेषका प्रियाके सम्मुख कोई स्मृतिचित्रही नहीं है।

हे शुकराज इस रहस्य को मूर्त्तिमान देखो और सारिका के इतना कहते ही पुनः एक अभिनव सुन्दर दृष्य दोनों के सम्मुख आ जाता है :—

"घने निकुंज, में प्रिया प्रियतम शुभ्र पुष्प शय्या में शयित हैं। प्रिया पूर्णालिंगित है प्रियतम में, और प्रियतम पूर्णालिंगित हैं प्रिया में। यह पूर्णालिंगन कैसा है, यह प्रिया प्रियतम मिलन कैसा है, इसे वाणी कथन कर ही नहीं सकती। क्यों कि इस मिलन का ज्ञान न सूक्ष्म जगत को है, न स्थूल को एवं न ही स्थूल एवं सूक्ष्म से परे कारण जगत ही इस मिलन-ज्ञान से परिचित है। प्रकृति से परे अप्राकृतिक प्रज्ञा का प्रज्ञानघन रूप भी इसे नहीं जान सकता। स्वयं सम्पूर्ण प्रज्ञा जिनके कण से उद्भूत होती है, वे प्रज्ञ प्रियतम भी इसे नहीं जानते, क्यों कि वे भावसत्ता प्रिया से मिलते तो हैं परन्तु इस अपनी प्रिया में सर्वथा एकाकार हो, डूब जाते हैं, विलय हो जाते हैं। वे स्वयं अपना अनुसंधान ही खो देते हैं, तब इस मिलन का अनुसंधान कैसे रखें। और महाभाव मूर्ति प्रिया इस मिलन को जानती हैं, परन्तु वे इस अनुभूति का अनुकथन किसके सम्मुख करें। प्रिया की दृष्टि में द्वैत है ही नहीं। उनके अनुभव में तो वे ही हैं,

प्रिया ही प्रिया हैं। रस ही रस, भाव ही भाव, मात्र रस, मात्र भाव ही है। भाव ही रस हो गया है, रस ही भाव हो गया है। प्रिया ही प्रियतम हैं, प्रियतम ही प्रिया हैं। प्रियतम ही प्रियतम हैं। प्रिया के अंग-प्रत्यंग प्रियतम के ही अंग प्रत्यंग हैं। प्रिया का रूप, रस, मन, प्राण, सब प्रियतम के ही रूप, रस, मन, प्राण एवं स्वरूप हैं। प्रिया की सत्ता पूर्णतः प्रियतम की सत्ता है और प्रियतम की सत्ता पूर्णतः, सर्वांशतः, सर्वाङ्गतः प्रिया की सत्ता है।

प्रियतम के अधर, प्रिया के अधर, प्रिया के अधर प्रियतम के अधर। फिर इस मिलन, अनिर्वचनीय, अचिन्त्य मिलन का कौन अनुभव करे। महाभाग्यवान शुक सारिका का अन्तःकरण क्यों कि उस समय किसी महाकृपा की लहर से सिक्त था, प्रिया प्रियतम के चिदाकाश से तादात्म्य कर लेने के कारण उसे अनुभव कर पाया। दोनों अपरोक्ष अनुभूति कर रहे थे कि भाव और रस, प्रिया-प्रियतम के इस मिलन समुद्र का एक कण, मात्र एक कण, महास्रोत के रूप में परिणत हुआ प्रवाहित होरहा है अनन्त वैदग्ध्य भाव-समुद्र के रूप में, अनन्त अनुराग भाव-समुद्र के रूप में, अनन्त वात्सल्य भाव-समुद्र के रूप में, अनन्त कृपा भाव-समुद्र के रूप में, अनन्त लावण्य भाव-समुद्र के रूप में, और अनन्त केलि-रस (माधुर्य) भाव-समुद्र के रूप में। और इसी वैदग्ध्य भाव-समुद्र की लहर ही तो कारण है जिससे प्रियतम रसराज की सम्पूर्ण विदग्धता, चातुर्य और उनके समग्र, ऐश्वर्य की सत्ता है। यह अनुराग भाव समुद्र की लहर मात्र ही प्रियतम रसराज को समग्र प्रेममाधुरी का दान दे रही है। यही लहर वात्सल्य रसरूप में नन्द, यशोदा बनी है। कीर्तिदा, वृषभानु बाबा है, और प्रियतम को वात्सल्यरस से सराबोर कररही है। यह कृपा भाव समुद्र की लहर ही प्रियतम रसराज का अनन्त, अपार, कृपासागर वपु है। यह लावण्य भावसमुद्र की लहर ही प्रियतम रसराजकी रूपमाधुरी है, और यह केलिरस भावलहरी ही प्रिया प्रियतम की लीला-माधुरी है। यही प्रियतम की वेणु माधुरी है। शुक सारिका स्पष्ट अनुभव कररहे हैं कि प्रिया प्रियतम का अधरामृत रस ही सर्वरस-निधान वह भाव-समुद्र है, अगाध भाव सिन्धुरूप है जिसका प्रिया प्रियतम निरन्तर पान करते रहते हैं। वही प्रिया-प्रियतम को नित्य निमग्न, नित्य रसलुब्ध किये है।

सारिका की वाणी ने शुक को पुनः उद्बुद्ध किया, हे शुक, यह रस सर्वनियमातीत, सर्व बंधनविमुक्त, नित्य स्ववश, परात्पर है, परन्तु प्रिया ही इसका

नियम हैं, बंधन हैं। प्रिया में ही यह सीमित और उन्हीं के बन्धन में नित्य बँधा है। राधिकाचरणरेणु ही इसे वश में, नित्य वश में रखने की अद्भुत शक्ति हैं।

ये प्रिया ही प्रियतम रस की अनन्य दासी हैं। ये प्रिया ही रस को नवीन नवीन रूप में सजाती हैं। ये महाभाव रूप प्रिया अपने रसराज प्रियतम को जैसा देखना चाहती हैं, प्रियतम तदनुरूप उसी क्षण वैसा ही रूप रखकर प्रस्तुत हो जाते हैं। कभी ये प्रिया अपने प्रियतम का पूर्व राग रूप अमिलन से सत्कार करती हैं, कभी ये अपने प्रियतम को संयोग, मिलन देकर प्रसन्न करती हैं, कभी मानरूप अमिलन से उनकी सेवा करती हैं, कभी मान-मिलाप से उन्हें रिझाती हैं। कभी प्रवास रूप विरहके रूपमें अपने प्रियतम के सम्मुख उपस्थित होती हैं फिर प्रवासोपरान्त मिलन से उन्हें सन्तुष्ट करती हैं। कभी प्रेम वैचित्त्य में, मिलन में अमिलन का चमत्कार दिखा अपने प्रियतम को सुखविभोर करती हैं, कभी पुनः मिलन से अपने प्रियतम को अनन्त सुख-समुद्र में नहलाती हैं। ये प्रिया अपने प्रियतम की इसी प्रकार अनन्त अनन्त भाव लहरियों से नित्य समाराधना करती हैं और अपने प्रियतम के सुख से ही सुखी रहती हैं। प्रियतम सुखमें ही सुख भोगना इनका नित्य अखण्ड स्वभाव है। स्वसुख रूप वृत्ति का इनके मन में कभी स्फुरण ही नहीं होता। यही इनके 'सुख भोगौं तुम्हरे सुख कारन, और न कछु मन मेरं' का भाव है।

हे शुकराज, प्रिया में आस्वादक और आस्वाद्यका भाव ही नहीं। भोक्ता और भोग्या, यहाँ ऐसा द्वैत है हीं नहीं। उनके प्रियतम निरुपम हैं, निरुपाधि हैं सत्चिदानन्दमय हैं, ह्लादिनी सारसर्वस्व हैं, रसराज हैं,उनका ही सब विस्तार है, वे ही मात्र रसतत्व हैं, वे प्रिया के हैं और पूर्णरसमयी प्रिया उनकी हैं। एक ही नित्य दो बने लीलारस का, केलिसिन्धु का, माधुर्य भावसिन्धु का रसास्वादन करते रहते हैं। अनादि, सर्वकारणकारण, अद्वय-ज्ञान-तत्वरूप सच्चिदानन्दघन व्रजरसनिधि रसराज प्रियतम और ह्लादिनी शक्ति प्रिया अभिन्न, अविनाभाव, नित्य एक स्वरूप हैं। भावतरङ्गरूप अनन्त सुख में श्रीकृष्ण को नित्य निमग्न रखने वाली, नित्य प्रियतम सुखविधाता प्रिया इतनी त्यागमयी हैं, इतनी अहंकार शून्या हैं और इतनी मधुर स्वभावा हैं कि रसराज प्रियतम की एक मात्र आधार होकरभी वे अपने प्रियतमकी अपेक्षा अपने को सर्व सद्गुणहीन अनुभव करती हैं। वे परिपूर्ण प्रेमप्रतिमा होने पर भी अपने को तुच्छ दासी, प्रेमशून्य

अनुभव करती हैं। वे प्रियतम की समग्र सौन्दर्यराशि की एक मात्र कारण होकर भी अपने में सौन्दर्य का सर्वथा अभाव मानती हैं। वे अपने में गुणगौरवत्व का सदा अभाव देखती हैं। यही उनके 'और न कछु मन मेरे' वाक्य का भाव है।

श्री राधाजी का जीवन, प्रिया का सबकुछ प्रियतम सुखमय है। वे केश सँवारती हैं, प्रियतम सुखके लिये, वेणी में फूल गूँथती हैं, मालती की माला पहनती हैं, वेशभूषा, साज श्रृङ्गार करती हैं, सुस्वादु पदार्थों का भोजन करती हैं, दिव्य गन्ध का सेवन करती हैं, वे सुन्दर पदार्थों का निरीक्षण करती हैं, मधुर संगीत ध्वनि सुनती हैं, वे सुख स्पर्श प्राप्त करती हैं, सोती जगती हैं, सब कुछ करती हैं, मात्र अपने प्रियतम सुखार्थ। उनके मन, इन्द्रिय, समस्त अङ्ग, अवयव, उनके चित्त, बुद्धि, उनका चेतन आत्मा, सब श्री कृष्ण के लिये, प्रियतम के लिये, उनके सुख-संस्पर्श-दान के लिये है। इसीलिये वे कहरही हैं 'सुख भोगौं तुम्हरे सुख कारण और न कछु मन मेरे, तुमहिं सुखी नित देखन चाहौं निसदिन साँझ सबेरे।' हे शुकराज! अब तो तुम अनुभव कर ही चुके हो कि प्रिया के श्रृंगाररस में मात्र जागतिक श्रृंगारिक नामों की ही अभिव्यक्ति है, इनके भाव अगाध हैं।

सहसा शुक बोल उठा– 'हे सारिके! जिस प्रकार तुमने प्रिया प्रियतम के आलिंगन का, प्रिया प्रियतम के मिलन का, प्रिया प्रियतम के अधर-रस-पान का, प्रियतम की वेणुमाधुरी का गहन, गंभीर, तात्विक भाव समझाया है, उसी प्रकार प्रियाकी केश-रचना का, वेणी में फूल खोंसने का, मालती की माला पहनने का, उनके श्रृंगार का, स्नान का, उनके सोने का, जगने का, वन-दर्शन का, उनके सुस्वादु भोजन का, दिव्य गंध-सेवन का, इन सबका प्रियतम-सुख-संपादन मय गंभीर तात्विक रहस्य क्या है, इसे भी समझाओ।

तुमहिं सुखी देखन हित हौं निज तन मन कौं सुख देऊँ।
तुमहि समरपन करि अपने कौं नित तव रुचि कौं सेऊँ॥ –का भाव।

हे शुकराज! बारंबार इस मिथ्या भ्रम को सदा दूर रखो कि प्रिया देह हैं। वे न देह हैं, न देह का श्रृंगार करती हैं। वे न देह हैं, न उनके केश भौतिक पृथ्वीके विकार हैं, जिनका वे साधारण प्राकृतिक स्त्रियों की तरह संरचना करती हैं। वे न देह हैं और न उनके केश इतने अरूप हैं, जिन्हे सजाने के लिये किसी पार्थिव पुष्प की आवश्यकता पड़े। वे न देह हैं, जिसको सुन्दर दिखाने के लिये वे माला पहनती हों। वे न देह हैं, जिसकी कुरुपता ढ़कने को

उन्हें शृंगार करना पड़ता हो। वे न पार्थिव देह हैं जिसका मल दूर करने के लिये उन्हें स्नान करना पड़ता हो। वे न देह हैं जिसकी तन रक्षा के लिये सुषुप्ति आवश्यक हो, वे न देहावस्था हैं, जो सोता हो और जगता हो और स्वप्न देखता हो। वे देह रूप विकार सर्वथा नहीं हैं, जिसका भोजन के द्वारा परिपोषण परमावश्यक हो। इसलिये इस भ्रम में कदापि, कदापि मत आना कि प्रिया प्रियतम कोई देह हैं। सुनो शुकराज, मैं तुम्हें प्रिया प्रियतम की दैनिक लीला के कुछ प्रसंग अत्यन्त संक्षेपमें दृश्य रूपमें दिखाती हूँ और सारिकाके इतना कहते ही शुकराज देखने लगता है:-

"प्रियतम ही प्रियतम, मानो वृक्षावलियाँ बने हैं। प्रियतम ही टहनियों रूप शाखाओं से अपनी प्रिया को प्रेमालिंगित करने को बाँहें फैलाये हैं। सर्वत्र सच्चिदानन्दकन्द रस ही रस है। यह रस ही लतावल्लरियों के रूप में सर्वत्र प्रियतम से, प्रेमास्पद से एकात्म्य हुआ लहरा रहा है। रस नितनूतन शोभा से प्रस्फुटित हो, कलियों को विकसित कर, नव नवायमान शोभा-शृंगार से इन कुंजावलियों को सजा रहा है। कैसा रसमय कुंज है। प्रियतम, और उनके रस के अतिरिक्त जैसे कहीं कुछ नहीं। सच्चिदानन्दकन्द रसमय प्रेम ही तो सर्वत्र व्याप्त है, यहाँ के वातावरण के परमाणु परमाणु में। इन कलियों के विकास का, उनके शोभा-स्फुटन का रस लेने जो ये मधुकर गुंजार कर रहे हैं, ये भी कोई प्राकृतिक भ्रमर नहीं। भ्रमर आकृतियाँ अवश्य हैं। इन सब के रोम रोम में परिलक्षित प्रियतम छवि स्पष्ट संकेत कर रही है कि ये केवल प्रियतम श्रीकृष्ण हैं, श्रीकृष्ण ही हैं, स्वयं रसराज ही हैं, जो अभिव्यक्त हो रहे हैं, रस वर्षा कर रहे हैं। अभिनव रसवर्षा से कुंज जैसे नहा रहा है। प्रियतम ही स्नान कर रहे हैं, भावसमुद्र प्रेम में। देखो शुक, प्रियतम किस प्रकार नवीन नवीन शोभा से अपना शृंगार कर इस वन में शोभित हैं। प्रियतम ही प्रियतम, रस ही रस। परन्तु यह रस की सत्ता भाव से हीन है क्या ? हो ही नही सकती। मात्र भाव ही तो रस को नहला रहा है। रस उमड़ उमड़ कर मात्र भाव के पाँव पखार रहा है। भाव के चरणों को पखारना, उन पर प्रीति चिह्न अंकित करना ही तो उसका नहाना है। पत्ता पत्ता भाव मय ही है। प्रिया हृदय का प्रियतम सुखमय भाव ही तो पत्ते पत्ते के रसमय सौन्दर्य का नवनवायमान शृंगार कर रहा है। पत्ता पत्ता सज रहा है।"

पुनः सारिका की वाणी बोल उठी, देखा शुकराज, ! बोलो, कुंज

का पत्ता पत्ता क्या निज सुख भोगार्थ अपने अंग अंग को सजा रहा है ? नहीं, नहीं, कदापि नहीं। मेरे प्रियतम सुखी होंगे, वें यहाँ आवेंगे, इस कुंज स्थल में विश्राम करने प्रियतम अवश्य आयेंगे, यही प्रेम इस पत्ते को रस स्नान करारहा है, न। इसका सम्पूर्ण सौन्दर्य भोगमय है कि भावमय, प्रेममय है ? भोग तो इसके आस पास फटक ही नही सकता। कहाँ स्व है, इनमें ? कुछ भी स्व दिखता है क्या तुम्हे, इनमें ? इन वृक्षों की डाल डाल में, पत्ते पत्ते में, प्रियतम ही प्रियतम भरे हैं, जो रोम रोम से, हृदय के स्पन्दन स्पन्दन से प्रिया प्रिया का आह्वान कर रहे हैं। बोलो शुक, कहीं भी भोक्ता भाव दृष्टि गोचर हुआ तुम्हें इनमें ? इस कुंज स्थली के किसी परमाणु में भी भोक्ता भाव की लेश गंध आई तुम्हें ? शुकराज, भोक्ता भाव तो किसी सीमित अभाव में ही होता है। जिसे कुछ प्राप्त नही है, वही तो अप्राप्त को भोगने की आशा करेगा ? अभाव ही तो भोक्ता होता है। भाव भोक्ता कैसे होगा ? किसका भोक्ता होगा, भाव ? भाव में कहाँ कुछ अपूर्णता है, जिसे भोगने की वह इच्छा, कामना करेगा ? रस तो भाव का निजस्व है। उसका अनुगत है। भाव के संकेत होते ही रस समुद्र उसके पाँव पखारने प्रस्तुत है। बताओ शुक, प्रिया के केश क्या हैं ? और प्रिया की केशरचना क्या है ? प्रिया को कभी अपने केश के दर्शन होते हैं क्या ? तुम तो प्रिया के चिदाकाश से एकात्म्य लाभ कर चुके हो, देखो, प्रिया की केश रचना हो रही है, परन्तु उन्हें पता ही नहीं कि कौन कौन सखियाँ हैं ? उन्हें तो प्रियतम ही प्रियतम दिख रहे हैं, वे ही जैसे उनके चारों ओर बैठे हैं, सतृष्ण नेत्रों से प्रिया को देख रहे हैं। कैसे रसमय उनके प्रियतम हैं, कितने सुन्दर सरस रहे हैं, वे। कैसी रसमयी मधुमयी भंगिमा है, उनकी। कैसा विलक्षण रस है, कैसी सुन्दर नेत्रों की शोभा है। दंतछटा की शोभा का तो कहना ही क्या। प्रिया तो डूबी हैं, अपने प्रियतम की छबि का पान करने में। उन्हें स्मृति ही कहाँ है, अपने देह की ? वे मन ही मन पूछ उठती हैं, अपने प्राणनाथ से-"जीवन सर्वस्व ! क्या देख रहे हो ? इतने सतृष्ण होकर क्या देख रहे हो, नाथ ? और प्रियतम अपनी प्रिया की मुग्धता पर खिल खिला उठते हैं। और प्रिया सकुचाजाती हैं। प्रिया के मन में प्रियतम की इस उन्मुक्त हास छटा ने आनन्द का जैसे अनन्त स्रोत स्फोट कर दिया हो, अपने प्रियतम को सुखमय पाकर प्रिया का रोम रोम आनन्द में डूबने लगता है, आनन्द में मत्त हो नेत्र मुँदने लगते हैं, परन्तु उन्हें अपने नेत्रों के मुँदने का भी कोई ज्ञान नहीं। उन्हें

तो शरीर का भी सर्वथा सर्वथा ज्ञान नहीं है। वे तो देख रही हैं,ज्यों ही प्रियतम मुसकाये जैसे आनन्द वर्षा से सब कुछ भीग गया, आनन्द समुद्र में सब कुछ डूब गया। परन्तु इसमें विलक्षणता क्या है ? यह तो नित्य ही होता है। पुनः वे देखती हैं 'प्रियतम सतृष्ण देख रहे हैं।' पुनः जिज्ञासा होती है और वे पूछ बैठती हैं। इतने सतृष्ण नेत्रों से तुम क्या देख रहे हो, प्राणनाथ ? और प्रियतम नेत्रों से संकेत करते है– 'तुम्हें।' 'मुझे' ? प्रिया को ध्यान आता है, एक स्वप्नवत् अपना। मैं कौन हूँ ? वे सोचने लगती हैं, और स्वाभाविक उनकी आँखें अपने तन की ओर मुड़ती हैं, मैं कौन हूँ ? वे विचार में डूबती हैं। उनके नेत्र उनके शरीर की ओर उन्मुख होकर मात्र देखते हैं, उन्हें दिखाई पड़ते हैं, प्रियतम ही प्रियतम। अपना तन, उन्हें दिखता ही नहीं। वे एक क्षण नेत्र मूँद कर अन्तर्मुखी होती हैं, परन्तु वही मुसकाती प्रियतम छवि ही तो भरी देखती हैं भीतर। वे नेत्र खोलती हैं। पुनः अपने चारों ओर देखती हैं, परन्तु उन्हें अपने चारों ओर सखियों की आकृति भी नहीं दिखती है। जैसे प्रियतम ही सर्वत्र घेरे हैं, उन्हें। उन्हें न कक्ष दिखता है, न द्वार। न भूमि दिखती है, न अवकाश। न वायु दिखता है, न दृश्य। उन्हें तो प्रियतम ही प्रियतम दिख रहे हैं। प्रियतम सतृष्ण हो निहार रहे हैं। ऊपर नीचे सर्वत्र प्रियतम निहार रहे हैं। कैसे सुखमय हो रहे हैं। पुनः पूछ बैठती हैं, प्रिया अपने प्रियतम से 'प्रियतम ! कहो, मैं कौन हूँ ?' वे पुनः सर्वत्र देखती हैं, परन्तु उन्हें पुनः प्रियतम के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखता। वे झुंझला उठती हैं, "बोलो न प्यारे ! बतलाओ, मैं हूँ कौन ?" कैसी मुग्ध हैं, उनकी प्रिया ? प्रियतम के नेत्र अपनी प्यारी की भाव मुग्धता पर प्रेमातिरेक से छलछला आते हैं ? वे हँस कर कहते हैं, 'देखो, मेरे हृदय में ?' और प्रिया देखती हैं अपने प्रियतम के हृदय में। एक अभिनव सौन्दर्यमयी स्त्री की छवि जैसे प्रियतम के हृदय में विराजित है। प्रिया मुग्ध हो जाती हैं इस सौन्दर्य पर, और स्पष्ट देखती हैं, इस सौन्दर्यराशि के रोम रोम में प्रियतम भरे हैं। कितनी सुन्दर है यह ? और साथ ही साथ कैसी प्रेममयी। अपने रोम रोम में प्रियतम को भरे है। तभी तो इतनी सुन्दरी है यह ? प्रिया पुनः पूछ बैठती हैं। "कौन है यह सुन्दरी ? इसका निवास कहाँ है ? मुझे इसकी सखी बनादो, प्रिय ?" प्रियतम पुनः मुसका उठते हैं। परन्तु अबकी बार उनका रोम रोम आकुल हो उठता है, अपनी प्रिया को हृदय में समालेने को। कैसा विशुद्ध प्रेम है उनकी प्रिया में।

प्रियतम की आकुलता, भावावेशवश प्रिया के सम्मुख एक भावदृष्य का स्फुरण करादेती है। वे सोचने लगती हैं। प्रियतम के हृदय में कितनी सौन्दर्य पिपासा है ? इसीलिये तो वे किसी सुन्दरी को अपने हृदय सिंहासन में धारण किये हैं। मैं तो महा कुरूपा हूँ। कहाँ है मेरे शरीर में सौन्दर्य ? मेरा मन भी इतना सुन्दर कहाँ है ? प्रियतम तो मेरे मोहवश मेरे चतुर्दिक सरसते हैं, परन्तु मुझमें कहाँ है सौन्दर्य और प्रेम जो प्रियतम को सुख दे सके ? फिर भी मैं प्रयत्न तो करूँ, कुछ सुन्दर होने की चेष्टा तो करूँ ? बस इसी भाव से मात्र प्रियतम सुखार्थ, प्रिया चीख उठती हैं। "ललिता, अरी ललिता, तुम अत्यंत शोभामय पुष्पों से, मणिमालाओं से मेरी कबरी गूँथना ? और फिर शान्त हो बैठ जाती हैं। प्रिया प्रस्तुत हो जाती हैं, वेणी रचना कराने। परन्तु दूसरे ही क्षण फिर बह जाती हैं, प्रियतम रससमुद्र में, उसकी किसी अभिनव मधुर रस लहरी में......।

"बोलो शुक कहाँ है, स्वसुख, प्रिया की कबरी रचना में, केश रचना में ? प्रियतम-सुख ही तो है ? वही दिव्यातिदिव्य, मधुरातिमधुर प्रियतम-प्रेम, प्रियतम-सुख ही तो लहरा रहा है।

और देखो शुक, कहाँ है प्रियतमा की वेणी ? पुनः दृष्य बदल जाता है- प्रिया सखियों के साथ स्नानार्थ सरोवर में आयी हैं। सखियाँ उनकी वेणी निर्बंध करती हैं। उन्मुक्त केशराशि प्रिया की पीठ पर लहरा उठती है। वायुके शीतल प्रवाह से चिकुर राशि उड़कर कपोलों पर आजाती है। ललिता उसे निवारण करतीहै। परन्तु वह पुनः कपोलों पर आजातीहै, ज्योंही ललिता उसे पुनः निवारणार्थ उद्यत होती है, प्रिया भावावेश में आजाती हैं। चीख उठती हैं, वे- "मत रोको ललिता, मत रोको प्रियतम को, वे सुखी यदि होते हैं, तो कौन सा देह भाग मेरा अपना है ? सब मेरे जीवन सर्वस्व के सुख के ही लिये तो है। मेरा सब कुछ मात्र उनका है, उनका है, उनका ही है।"

और ललिता के नेत्र भर आते हैं, अपनी सखी के भाव पर, उसकी निर्मलतम प्रेमराशि पर। और प्रिया की आँख में कहाँ सरोवर है, जिसमें उन्हें स्नान करना है, उन्हें तो नील समुद्र प्रियतम ही सरोवर के रूपमें दिखरहे हैं। वे ही शोभामय जैसे उन्हें अपने में आत्मसात करने उन्हें आह्वान कर रहे हैं। और प्रिया यही मन ही मन गुन गुनाती है, मेरे जीवन सर्वस्व, मैं तो सब प्रकार

से तुम्हारी हूँ।' जैसे वे अपने प्रियतम को समर्पित हो रही हों,सरोवर में डुबकी लगा लेती हैं। और सारिका बोल उठती है, हे शुकराज, कहाँ पुष्प है, जिसे प्रिया अपनी वेणी में खौंसती हैं, कहाँ चिकुर और केशराशि हैं।

प्रियतम ही उनकी केशराशि बनकर उनकी पीठ पर लहरा रहे हैं। प्रियतम ही उनकी चिकुरराशि बनकर उनके कपोलों पर अपना रस न्यौछावर कर रहे हैं। प्रियतम ही सुन्दर पुष्प बनकर प्रियाकी वेणी पर शोभित हैं। प्रिया के सब तन पर प्रियतम ही तो सब आभूषण, सब वस्त्र हैं। प्रियतम, प्राण-प्राण श्याम सुन्दर ही उनके वस्त्र हैं, आभूषण हैं। वे ही उनके सुन्दर भोक्ता हैं। वे ही अपनी प्रियाके मात्र भोग्य हैं। वे ही प्रियाके हृदय में स्थित सब कर्त्ता हैं, और वे ही प्रियाके सब कर्म हैं। वे ही उनकी सब सखियाँ हैं और वे ही मात्र ममतास्पद हैं। प्रियतम ही उनके तन हैं, मन हैं, और वे ही उनकी मात्र विभूति हैं। उनके सब धर्म मात्र प्रियतम हैं। प्रियतम ही इनके सब त्याग हैं, और वे ही इनके सब भोग हैं। वे ही इनकी श्वास-प्रश्वास, प्राण हैं। सब कुछ प्रियतम ही तो हैं। प्रियाके सब मनोरथ मात्र प्रियतम हैं। वे ही इन मनोरथों की पूर्ति हैं। वे ही इनकी सुषुप्ति हैं, जाग्रत अवस्था हैं और स्वप्न हैं। वे ही इनके मोक्ष हैं, और बन्धन हैं। वे ही मात्र इनकी अन्तिम गति हैं। वे ही वह सच्चिदानन्दमय धाम हैं, जिसमें प्रिया नित्य निवास करती हैं।

शुकराज, प्रिया न किसी कुञ्ज में निवास करती हैं, न किसी शय्या में सोती हैं। प्रिया न किसी सरोवर में स्नान करती हैं, न कोई वस्त्र पहनती हैं। प्रिया न कोई तन धारण करती हैं, और न ही आभूषणों से श्रृंगार करती हैं। प्रिया न किसी पुष्प को वेणी में लगाती हैं, न ही किसी वन का दर्शन करती हैं। न दिव्य-गंध सेवन करती हैं वे, न माला पहनती हैं। वे तो मात्र प्रियतम की प्रिया हैं। अनादि, अनन्तकाल पर्यन्त मात्र प्रियतम सुखसेवार्थ, प्रियतम रस उच्छलनार्थ, प्रियतम आनन्दोत्कर्षनार्थ ही उनका पूर्ण प्रियतममय अस्तित्व है। वे प्रियतम ही हैं, प्रियतम के अतिरिक्त उनका कोई कहीं अस्तित्व है ही नहीं। प्रियतम ही उनका दिवस है, और प्रियतम ही उनकी रात हैं। प्रियतम ही उनका सोना हैं, वे ही उनका जगना और स्वप्न देखना हैं। प्रियतम ही मात्र उनकी अवस्था हैं। प्रियतम की सुखसेवा ही उनका समस्त काल है। प्रियतम ही उनकी समस्त वय हैं। इसीलिये प्रियतम को सुखदेती रहना ही उनकी संध्या है, और यही उनका प्रभात है।

शुक सारिका अनुभव कररहे थे। प्रिया का सरोवर में स्नान केवल प्रिया का ही रस स्नान नहीं हैं। इस स्नान के साथ सम्पूर्ण विश्वप्रपंच में जितनी अभिव्यक्ति है, रसकी छाया है, सब अभूतपूर्व सौन्दर्य में, माधुर्य में स्नान करलेती है। यह ब्रह्मलोक का शान्त सौन्दर्य, यह वैकुण्ठ का अनन्त ऐश्वर्य, यह इन्द्रलोक का राजसी वैभव, यह कैलाश का कल्याणमय सौन्दर्य और पाताल का आसुरी वैभव, साथ ही साथ पृथ्वी का कर्ममय वैभव, सब रस की छाया की छाया ही तो है, है यह अभाव रूपा। भाव रूपा नहीं है। परन्तु अभाव कहीं भी भाव का निषेध रूप थोड़े ही है। अल्प से अल्प भाव की छाया, छाया की छायाको ही अभाव संज्ञा भले ही दे दी जाय, परन्तु उसमें भी भाव संश्लेष नहीं है,यह कदापि नहीं कहा जासकता। अल्प भावका ही नाम तो अभाव है। भावके आत्यंतिक अभाव में विश्वप्रपंच रहेगा ही नहीं। भाव के, अस्तित्व के आधार पर ही तो सब टिका है। अस्तित्व भाव ही तो है। काम, भाव ही तो है,प्रेमकी अल्पातिअल्प छाया, छाया की छाया का नाम ही तो काम है। ज्ञानकी छाया का नाम ही अज्ञान है और सत्ता की छाया को ही जगत की असत् अवस्था कहते हैं, सत्ता का निषेध थोड़े ही हो जाता है। जहाँ हम कहते हैं जगत असत् है, सत्ता तो है ही, परन्तु नित्य सत्ता की छाया की छाया अल्पातिअल्प हो विश्वशरीर रूप में भासित होती है। प्रलय कोई आत्यंतिक नाश थोड़े ही है। नित्य नाशमान कुछ हो ही नहीं सकता। प्रलय शब्द अल्पातिअल्प सत्ता का प्रकाशक मात्र है। नवनवायमान नित्य रस का अल्पत्व ही प्रलय रूप परिवर्तन है। फिर चाहे भावकी छाया की छाया, उसका कण मात्र अभिव्यक्त हो रहा हो, है तो भाव ही भाव, रस ही रस, न। अतः प्रिया के सरोवर-स्नान के साथ समस्त विश्वप्रपंच रस में स्नान कर लेता है, शोभा में स्नान कर लेता है। और विश्वप्रपंच में अभिव्यक्त रसरूप प्रियतम आनन्द विभोर हो उठते हैं। मर्त्य जगत में कोई कहता है, "प्रभात कितना शीतल है,अहा! प्रकृति कैसी सुन्दर है, उपवन, वन की कैसी शोभा है, वायु कितनी शीतल है, सब वातावरण कितना सुखद है" - परन्तु ये सब सुख-स्रोत उद्गमित कहाँ से हैं? इन सब सुखानुभव करनेवालों की बुद्धि से दूरातिदूर उनके ही हृदय मन्दिर में विराजित आत्मभाव रूपा प्रियाका ही तो यह प्रियतम रूप रस-स्नान है, सरोवर स्नान है, जिसकी शोभा सर्वत्र अभिनव सौन्दर्य की सरसता लिये अभिव्यक्ति पा रही है।

हे शुकराज, प्रिया की केश-रचना मात्र केश-रचना नहीं है। यह तो

अनन्त सुन्दरातिसुन्दर लोकों में अभिनव सुन्दर सृष्टि के निर्माण की विलक्षण भूमिका है। प्रिया की सुन्दर वेणी में फूल खौंसना मात्र फूल खौंसना ही नहीं है, यह तो अभिनव सौन्दर्यमयी लोक सृष्टि में भाव सुवास का, भाव सुकोमलता का ऐसा वपन है जिससे अनन्त, अनन्त जीवों के रूप में अभिव्यक्त प्रियतम शुभ, प्रेमभावों की ऐसी सुवास पाते हैं, प्रेम सौन्दर्य की ऐसी झाँकी पाते हैं, जिससे उनका रोम रोम सुखाप्यापित, आनन्दाप्यायित हो उठता है, अनजाने।

हे शुकराज, अनन्त अनन्त सृष्टि में कभी ज्ञान की लहर आती है, कभी विज्ञान की, कभी समृद्धि की, कभी कल्याण की, कभी सुख की, कभी धर्म की, कभी सौन्दर्य की, कभी ऐश्वर्य की, कभी अनन्त शान्ति की, कभी तप की, कभी तेजस्विता की, कभी अनन्त त्याग की, कभी प्रेम की, कभी माधुर्य की, कभी वात्सल्य की, कभी प्रणय की, कभी सेवा की, कभी आत्मनिवेदन की, कभी प्रिय गुणगान की, कभी प्रेम नर्त्तन की, कभी नामगान की, ये सब अत्यंत सुख सम्पादनमयी लहरें, भाव की शुद्धातिशुद्ध तरंगें हैं, जो विश्वप्रपंच की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति को अनजाने रस-प्रतिचित्रित कर जाती हैं, इनका उद्गमस्थल किसी को पता है क्या? इन सर्वसुखमय भावों की मूल उद्गम, मूल उत्पत्ति, स्रोतस्विनी, धारा प्रिया हैं, और प्रिया का यह रसस्नान, रसशृंगार ही है, जो अनन्त, अनन्त सुख-समुद्र बना सर्वत्र सरस रहा है, बिना कोई अपना अहसान किये, बिना अपना नाम रूप बताये। उनके प्रियतम ही तो सर्वत्र. अनन्त, अनन्त जीवों के रूप में अभिव्यक्त हैं। उनमें मैं, तुम, वह, यह अनेक कहाँ? उनके लिये तो मात्र प्रियतम हैं, और प्रियतम को सुखदान देना है। प्रियतम की सुख सेवा है, उनका सुख संपादन है, उन्हें आनन्दमत्त बनाना है, किसी भी प्रकार उन्हें रसविभोर, आनन्द विभोर कर देना है। परन्तु अनजाने ही प्रियतम का रसविभोर होना, आनन्द विभोर होना, अनन्त, अनन्त नरकों में पड़े नारकीय जीवों को भी कितना सुखदान कर देता है, और उनके सुख का कैसा अभूतपूर्व सृजन हो जाता है, इसे कौन जानता है। प्रिया की मुग्धावस्था के दर्शन से जो प्रियतम के हृदय में आनन्द की धारा उमड़ी, उस आनन्द धारा के कारण अनन्त जीवों में अभिव्यक्त प्रियतम भी तो अनजाने आनन्दित हो उठे ही न? क्यों कि प्रियतम जीवन तो एक ही है न? आत्मा का मूल सूत्र तो सर्वत्र एक ही है।

हे शुकराज ! प्रियतम-सुखदान-स्पृहा ही प्रिया का जीवन जानो। प्रिया तो प्रियतम-सुखदान-स्पृहा की जीवन्त मूर्त्ति हैं, ऐसा ही समझो। इसलिये उनका सबकुछ, सब कर्म, सब धर्म, और सब मर्म, मात्र प्रियतम-सुखदान-स्पृहा ही है। उनका यही यम है, यही नियम और यही तप है, संयम है, दान है, यही उनकी जीवनचर्या है। प्रिया का प्रियतम ही, प्रियतम सुख ही मात्रज्ञान है, यही उनकी साधना, आराधना है और यही उनके जीवन का सर्वस्व है। यही राग है, यही वैराग्य है। यही तत्त्व है और यही परतत्व है।

शुकराज– हे सारिके, जब प्रिया प्रियतम-जीवनमयी हैं, प्रियतम को अस्तित्वदान करती हैं, एक मात्र उनका कारण हैं, वही उनकी इन्द्रियाँ, उनका विषय हैं, साथ ही आत्मा भी हैं, उनका तन मन सब हैं और सब प्रकार से उनका रुचि-विधान करती हैं, तब वे 'दासी' शब्द से अपने को क्यों स्वीकार करती हैं। वे तो प्रियतम स्वामिनी हैं। वे दासी तो कदापि नहीं हैं।

सारिका बोल उठती है– सत्य, सत्य, शुकराज ! परन्तु प्रिया में अपनी महत्ता का बोध कहाँ ? निज महत्ता का बोध तो तामस अहंकार में ही होता है। प्रिया में निजत्व, ममत्व, आदि तामस अहंताएँ हैं ही नहीं। उन्हें तो मात्र प्रियतम ही प्रियतम सर्वत्र महत्वपूर्ण दृष्टिगोचर हो रहे हैं। उन्हें तो यही ज्ञान है कि उनके सब कुछ के स्वामी मात्र प्रियतम हैं। उनके जीवन में यदि कोई महामूल्यमयी वस्तु है, जो न किसी को दिखलाने की है, न बतलाने की है, जो अत्यंत अन्तरंग है और जिस पर वे पूर्णतया न्यौछावर हो चुकी हैं तो वह वस्तु एक मात्र उनके प्रियतम-प्राणनाथ ही हैं। वे तो उनके चरणों में सब प्रकार से बँध गई हैं, बिक गई हैं।

प्रिया के दृष्टिपथ में प्रियतम अत्यंत पवित्र, अत्यंत सुन्दर, अनन्त सरल, परम मधुर हैं। वे तो सदा अपने अन्दर खोजती रहती हैं कि कहीं कोई लेश मात्र भी उनमें स्वसुख राग तो नहीं बचा है। उनकी इसी वृत्ति ने उन्हें ऐसा बना दिया है कि उनमें कहीं स्वसुख-गंध-लेश भी नहीं है। जैसे अत्यंत कठिन लोह-खंड में सुई की नोक भी प्रवेश नहीं कर सकती वैसे ही श्रीराधा के श्रीकृष्ण-सुख-वासना-वासित चित्त में स्वसुख भाव, भोक्ता भाव, अहंभाव घुस ही नहीं सकता। सर्वविध वे अपने प्रियतम की सेवा में ही अनुपम सुख पाती हैं। प्रियतम को सुखी देखकर ही उनमें सुखसमुद्र उमड़ता है, क्यों कि उनमें

प्रियतम ही आत्मस्थ हैं, अहंकार आत्मस्थ है ही नहीं। चाहे प्रियतम उन्हें विस्मृत करके सुखी हों, फिर भी वे सुखी, चाहे प्रियतम उन्हें पीड़ित करके सुखी हों, फिर भी वे सुखी। क्यों कि जब प्रियतम स्वयं सुखी हैं ही और जब उनमें अपना स्वयं का अहं है ही नहीं तो धर्मी के बिना पीड़ित करने पर भी, विस्मृत करने पर भी विस्मृत, पीड़ित हुआ कौन? जब अहंकार है ही नहीं तब पीड़ित करनेवाला ही पीड़ित भले ही हो जाय, पीड़ित किया जानेवाला पीड़ित कैसे होगा? इसीलिये किसी भी प्रियतम रुचि का चाहे वह उनके कितनी ही प्रतिकूल क्यों न हो, उनमें, निषेध है ही नहीं। प्रिया को तो प्रियतमत्व के प्रति आत्मभाव होने से प्रियतम सुख ही अपना सुख दिखता है, अस्तु उनके सुखमें वे अनुपम सुख का अनुभव ही करती रहती हैं।

हे शुकराज, प्रिया में तो महाभाव गत दैन्य ही सदा प्रवाहित होता रहता है, जो अहंकार का, गुण-बोध का सर्वथा सर्वथा बाध कर प्रियतम-गुण-दर्शन की अमित भूमि निर्माण करने वाला है। निज की पूर्ण अयोग्यता-बोध होने पर ही तो पर की पूर्ण योग्यता प्रतीत होगी। अपने में सौन्दर्य-बोध होने पर तो दूसरे की सुन्दरता पर दृष्टि ही नहीं जायगी। निज सौन्दर्य के गुण-गर्व में दूसरे की सुन्दरता तुच्छ प्रतीत होने लगेगी। इसलिये प्रिया में सदा यही भाव प्रवाहित होता रहताहै कि मैं,मेरा मन और मेरा तन सबकुछ पूर्णतया मलिन है। न उसमें शोभा सुषमा ही है,न सौन्दर्य-लेश ही। समस्त जीवन ही निम्न स्वार्थसे पूर्ण है। मैं अत्यंत दीन हूँ, हीन हूँ, परन्तु मेरे प्रियतमका मुझमें अनुराग होने से वे मुझमें,पूर्ण गुणहीनमें,गुणबोध करते हैं,मुझ-महा असुन्दरी में,सौन्दर्य देखते हैं। यह उनके नेत्रों का राग मात्र है। जिसमें प्रीति, राग, होता है उसमें दोष दिखते ही नहीं। उन्हें अपने प्रियतम के मन में अपने प्रति परम पवित्र, अचिन्त्य, मनसातीत अनुराग दिखाई पड़ता है। इसलिये उन्हें प्रियतम अपने पूर्ण सौभाग्यरूप दिखाई पड़ते हैं। वे उन्हें अपने लिये सब प्रकार से सुख निधान, रसदाता, रसिक शेखर, दिखते हैं। उन्हें निज में पूर्ण तुच्छता, गँवारपन,नगण्यता का ही बोध होता है। यही भाव उन्हें इस दैन्य से बाँधे रखता है। वे सोचती हैं, मैं परमातिपरम महिमामय प्रियतम को क्या सुख दे सकती हूँ? वे स्वरूपभूत परमाकर्षक, मधुररस से परिपूर्ण, प्रेम सुख-निधान हैं। वे जब मेरे हृदय में आते हैं तभी मेरा हृदय सुख से भर जाता है। उनके आनन्द से

ही मेरा हृदय परिपूर्ण लबालब भरा रहता है। मुझमें आनन्द कहाँ? उनके अतिरिक्त अन्यत्र सुख है ही कहाँ? वे बारंबार मन ही मन बोलने लगती हैं- "हे प्रियतम! मात्र तुम्हारा सुखमय स्वभाव ही, शोभा, सुषमा पूर्ण रसमय मुख ही मेरे सुख का एक मात्र निमित्त है, और वही मेरा सच्चा सुख है। मैं तो अन्य किसी सुख को जानती ही नहीं। हे अनन्त दयामय, हे प्रेम निधान, यदि तुम विनय, संकोच को छोड़कर मेरे प्रति वास्तविक, यथोचित व्यवहार करने लगो, मेरे नीच, पूर्ण स्वार्थसे युक्त, व्यवहार के प्रति स्वाभाविक ही तुम्हारे हृदय में द्रोह उत्पन्न हो जाय और तुम मेरे दुःख में सुख मानने लगो तब भी क्यों कि मेरे अन्तःकरण में एकमात्र तुम्ही भरे हो, मैं तुम्हारे आनन्द-पुलकित मुख को देखकर सुख का ही अनुभव करूँगी। प्रियतम, तुम नित्य मेरे हो। मैं जैसी भी हूँ अपने सुख के लिये ही सब व्यवहार, बर्त्ताव करती हूँ। मैं चलती हूँ, फिरती हूँ, सोती हूँ, जागती हूँ, जीवन धारण किये हूँ, इस सब में भी न जाने क्यों तुम सुखी हो उठते हो। मेरे मन, बुद्धि, इन्द्रिय, अंग-अवयव, सब के कामों में भी तुम रागवश प्रेम देख देखकर सुख-समुद्र में डूबते रहते हो। मैं तुम्हारे सुख का विचार भी न करूँ, सदा अपने सुख विधान में डूबी रहूँ, फिर भी तुम अपने प्रेममय स्वभाववश उसे अपने सुख का विधान मान लेते हो। मैं केश सँवारती हूँ, वेणी में फूल खौंसती हूँ, मालती माला धारण करती हूँ, वेष-भूषा साज-शृंगार धारण करती हूँ, दिव्य गंध का सेवन करती हूँ, सुन्दर पदार्थों का निरीक्षण करती हूँ, मधुर संगीत ध्वनि सुनती हूँ, भला ये सब क्रियायें तो मात्र निज शरीर सुखार्थ ही होती हैं, तुम्हें सुखी करने के लिये सर्वथा नहीं होतीं, परन्तु मैं स्पष्ट देखती हूँ, कि मेरे सँवारे हुए केश, गुँथी हुई वेणी, और शृंगार सज्जा से सजा हुआ शरीर देखकर, न जाने क्यों, तुम्हारा रोम रोम प्रेम-विभोर, पुलकित, सुखविभोर हो उठता है। हे गुणसौन्दर्य निधि, मैं तुम्हारी प्रेयसी होने के सर्वथा अयोग्य हूँ। परन्तु न जाने क्यों तुम्हें इस प्रकार का मोह हो गया है कि मुझ सद्गुणहीन, रूप सुषमा से रहित, दोषों की खान, मदमान-युक्त, मतिमन्द, मलिन, प्रेमधनहीन, गुण, सुन्दरता, कला, चतुराई से सर्वथा हीन, मूर्ख, मुखरा को तुमने सर्वथा अपने में विलीन कर लिया है, अपने में एकाकार कर लिया है।

हे प्रियतम! सुस्वादु पदार्थों का भोजन करते समय भी तुम मेरी अनुभूति में, जिव्हा के अणु अणु में समाजाते हो, और सब भोजन का स्वयं

स्वाद लेने लगते हो, तब मैं कहाँ रहूँ, मेरी जीभ तो स्वाद लेते समय मुझे सुख न देकर तुम्हें सुख देने लगती है, भोजन के साथ मेरे शरीर को पुष्टि होती है या नही, इसका तो पता नहीं, तुम्हारा शरीर अवश्यमेव पुष्ट हो जाता है। अब बताओ प्रियतम, मेरे इतने प्रिय तुमको जब अनिर्वचनीय सुख मिलता है, तो फिर मैं माँग माँग कर सुस्वादु से सुस्वादु भोजन न करूँ तो क्या करूँ ? मैं दिव्य गंध का सेवन करती हूँ, परन्तु स्वयं मुझे तनिक भी आनन्द लाभ हो रहा है या नहीं इसका तो तुम ज्ञान ही कहाँ होने देते हो ? तुम तो भर जाते हो मेरी घ्राणेन्द्रिय और उसके घ्राण के परमाणु परमाणु में। मुझे स्पष्ट अनुभव होता है कि मुझमें भोक्ता रूप से तुम्ही समाये गंधका अनुभव कररहे हो। मैं वन, उपवन के सौन्दर्य का निरीक्षण करती हूँ परन्तु मुझे मैं दिखती ही नही, मुझे न जाने कैसे भ्रम होता रहता है कि मेरी नेत्र पुतली में समाये हुए, पूर्ण अधिकार जमाकर विराजित तुम्ही निरीक्षण कर रहे हो, और तृप्त हो रहे हो। मेरे नाथ! सुबह से शाम तक सब पहर अपना सुखविधान करती हुई भी मैं अपनी सम्पूर्ण चेष्टाओं से जब तुम्हें सुखी होता हुआ पाती हूँ, तो तुम्हारे प्रेम से मुझे ऐसे अनीर्वचनीय, परमदुर्लभ, विलक्षण दिव्यरस की उपलब्धि होती है जिससे मुझे भोगमय शरीरगत इन्द्रियों के सुख की तो बात ही क्या देवभोगों के आनन्द एवं परम तथा चरम वांछनीय ब्रह्मानन्द से भी अरुचि हो जाती है। नाथ, मैं तो अपना सर्वस्व तुम्हें सौंप चुकी हूँ और तुम मेरे सर्वस्व होकर मुझ में बस गये हो।”

तुम मोहि प्राणेश्वरि हृदयेश्वरि कान्ता कहि सचु पावौ।
यातैं हौं स्वीकार करौं सब जद्यपि मन सकुचावौं।।–का भाव

हे शुकराज, कैसी हमारी रानी है, और उनका प्रेम कैसा निर्मल है ? वे प्रेम के आवेश में गुनगुनाती ही रहती हैं–प्यारे! तुम्हारी लीला कैसी विलक्षण है ? तुम मेरी निज सुखेच्छारूप, निज आग्रहरूप, मलरूप वृत्ति को बिलकुल ही नहीं रहने देते। सदा सर्वदा सर्वतंत्र बने, नित्य निरन्तर अपनी ही मनमानी करते रहते हो। तुम्हारे सद्गुणरूप विलक्षण प्रेम से भरे नेत्र, मेरे दोषों को देख ही नहीं पाते। मुझमें जो प्रेमहीनता है, प्रेमहीनतारूप पाप लदा है, वह तुम्हें दिखाई ही नहीं देता। तुम मुझ परम दोष पूर्ण, सर्वथा प्रेम शून्य को भी प्राणेश्वरी, हृदयेश्वरी, कान्ता कह कर सम्बोधित करते हो। तुम्हारी अपरिमित

बुद्धि है, अपरिमित शक्ति है, जैसे ही तुम इन शब्दों को मुख से बोलते हो, न जाने कैसे मेरे हृदय से मैं, मेरे का सारा भेदभाव शान्त होजाता है, तब मैं अबला क्या करूँ, मैं निरुपाय हूँ। मैं तुम्हें यह कहते हुए सुख का अनुभव करते पाकर अनन्य भाव से तुम्हारे इन भावों की ही अनुगत होजाती हूँ। तुम्हारे प्रेम की विजय पताका उड़ने लग जाती है। नाथ ! मेरा अपनापन जब कुछ है ही नहीं, तब मेरा सुख-दुःख, मैं, तुमका अपना-परायापन कैसे शेष रह सकता है। तुम्हें इन संबोधनों को कहने से जो सुख और रस मिलता है इसीसे मैं इनको स्वीकार कर लेती हूँ। मेरा तो तुम्हारे अतिरिक्त है भी कौन ? तुम्हें इन सम्बोधनों से दिव्य रसपूर्ण प्रेम-सुख पाता देखकर, प्रेम समुद्र में डूबा पाकर, मैं तुम्हारी इच्छानुसार तुम्हारा आनुगत्य स्वीकार कर लेती हूँ। अपने मन में बहुत सकुचाती हूँ, परन्तु सकुचाती, संकोच करती और लज्जा से गड़ जाने की स्थिति में होने पर भी मैं तुम्हारे अलौकिक रसदान में डूब जाती हूँ और अपने मिथ्या-आग्रह को तिलांजलि देकर मेरा पृथक् सोचने वाला मन भी तुम्हारे मन में विलीन कर देती हूँ। यह कहती कहती प्रिया सचमुच ही विलीन होजाती हैं अपने प्रियतम रसराज में। उनके सम्मुख सर्वत्र वे ही परम रसमय प्रियतम सरसने लगते हैं। सर्वत्र वे ही, वे ही, मात्र वे ही। सारा व्रज, सम्पूर्ण देश विलीन होजाता है, प्रियतम में। बचते हैं मात्र प्रियतम और प्रेम, रस ही रस, सर्वत्र रस। भाव रस में डूब जाता है, रस उसे सर्व ओर से आच्छादित कर लेता है। सर्वत्र वंशीध्वनि, सर्वत्र सुन्दर, अति सुन्दर छबि, सर्वत्र परम मधुर छबि, माधुर्य ही माधुर्य। रस उमड़ रहा है, लहरों पर लहरें आरही हैं। मनो रस भाव को सम्पूर्ण रूपसे आत्मसात् कर लेगा। सर्वत्र प्रियतम ही प्रियतम, शुक प्रियतम, सारी प्रियतम, गोपी प्रियतम, सम्पूर्ण व्रजमंडल, कुंज-निकुंज, प्रियतम, प्रियतम। अनुभव कर्त्ता मात्र एक अहं, वह प्रिया का, शेष, शेषी, सब प्रियतम ··।

* * *

चतुर्थ अध्याय

यमुना पुलिन पर यह उपवन है। तट से सटा हुआ, हरी हरी झाड़ियों और वृक्षों से भरा हुआ। वृक्षों पर लताएँ लिपटी हैं और पुष्पों से लदी हुई हैं। खिले हुए पुष्पों की सुमधुर गंध सर्वत्र प्रसरित हो रही है। यमुना का प्रवाह पूर्व से पश्चिम की ओर है। यमुना का घाट पक्का बना हुआ है और चारों ओर से बँधा हुआ है। यमुनाजी कुछ आगे पश्चिम की ओर बढ़कर फिर दक्षिण की ओर मुड़ गई हैं। इसी मोड़ पर यह उपवन है। यमुना की धारा का एक विभाग होगया है जो उपवन के पूर्व एवं दक्षिण की तरफ बहता हुआ, फिर यमुना में जा मिलता है। इस छोटी शाखा में वर्षा के दिनों में जल ज्यादा रहता है, पर और ऋतुओं में कम। शाखा के दोनों छोर पर अर्थात् जहाँ पर यह शाखा यमुना से निकली है और जहाँ पर यह शाखा यमुना में मिलती है, दोनों स्थलों पर अत्यंत सुन्दर (सेतु) पुल हैं। इन पुलों से गोपाङ्गनाओं का यमुना घाट पर आना होता है। यहीं पर प्राण प्रियतम श्यामसुन्दर के भी उन्हें दर्शन हो जाया करते हैं। उपवन में अनेक स्थलों पर पक्की वेदियाँ बनी हैं और प्रत्येक वेदी से सटा हुआ कोई न कोई सुन्दर वृक्ष है। इन्हीं वेदियों में से एक वेदी के पूर्व एवं उत्तर किनारे पर लगे सुन्दर वटवृक्षकी डाल पर शुक एवं सारिका ध्यानस्थ बैठे हुए हैं। दोनों की मुख मुद्रा से ऐसी सात्विकता टपक रही है, जिससे ऐसा लगता है, मानों इनके हृदय में अपार आनन्द एवं शान्ति का पूर्ण साम्राज्य छाया हुआ है। बाह्यावेश से सर्वथा विक्षेपरहित निमीलित लोचन दोनों शान्त स्थित हैं।

सहसा शुक में कुछ चंचलता दिखाई पड़ती है। उसके नेत्र कुछ उठते हैं और उसके मुख से परम मधुर वाणी निकलती है :–

"हे सारिके ! कृपामयि, कृपाकरो, आज तो अखिल–रसामृत–सिन्धु, अचिन्त्यानन्त, नित्य, युगपत्-परस्पर-विरोधी-धर्म-गुणाश्रय, प्रियतम और प्रेम मूर्ति प्रिया के विशुद्ध परम प्रेममय पूर्वरागकी कोई झाँकी दिखाओ। हे सारिके ! प्रिया के पूर्वराग के तो अनेक प्रसंग जैसे मुरलीध्वनि श्रवण, दूर से प्रियतम-वाणी-श्रवण, गुण श्रवण, आदि रस शास्त्रों में वर्णित हैं, परन्तु प्रिया दर्शन से प्रियतम में जो पूर्वराग उदय होता है, पहले उसका दर्शन कराओ, कृतार्थ करो, देवि! कृतकृत्य करो, कृपा, कृपा, कृपा, मात्र कृपा, अनन्त कृपा, कहता हुआ शुक

पुनः बाह्य-ज्ञान-शून्य होने लगता है।

सारिका कुछ देर इसी प्रकार मौन शान्त रहती है, फिर अत्यंत मधुर मंद मंद वाणी में बोलने लगती है :—

"हे शुकराज, हमारे प्रियतम परम शुचितम, पूर्ण आनन्द हैं। सदा रसपूर्ण हैं। उनके ही आनन्द सिन्धु के एक सीकर मात्र से, उसकी छायामात्र से निखिल विश्व प्रपंच नित्य निरन्तर विविध विचित्र प्रकार का अपार आनन्द पाता रहता है। उन प्रियतम श्रीकृष्ण में भी, पूर्ण रस, रसराज में भी, रस के जीवन में भी एक अत्यंत मधुर जिज्ञासा नित्य बनी रहती है। है यह जिज्ञासा परम चिन्मय, मधुर रसास्वादनमयी ही। परन्तु यह रहती है प्रिया प्रियतम दोनों में नित्य ही। हे शुकराज, प्रियतम ही जब सत्य, नित्य हैं तो इनमें जो कुछ है, सभी नित्य ही तो है। हाँ, तो वह पूर्ण मधुर जिज्ञासा है कि कौन वह सत्ता है, शक्ति है जिसने मुझ 'रस के जीवन' को भी अपने 'रस' से भरकर सरसित कर दिया है? मुझमें यह माधुर्य कहाँ से आगया है, जिससे मैं पूर्ण पूर्णतर हो रहा हूं! इसी जिज्ञासा के परिणामवश पूर्ण रस में ही अपने 'रस' को और आस्वादित करने की परम आलौकिक अचिन्त्य पिपासा जग जाती है और वह उत्तरोत्तर नित्य बढने लगती है। उस समय यह सच्चिदानन्द, सच्चित् सुख ही अत्यंत निरीह बनजाता है, और अपनी रसाधार, निर्विशेष प्रेम सत्ता के लिये आकुल हो उठता है। हे शुकराज, अनादि काल से पूर्ण रसराज प्रियतम इस मधुरतम प्रेम सत्ता को जानने एवं पाने के लिये आकुल हैं। वे अपनी सर्वशक्ति से उसमें डूबजाने को परमाकुल हैं। यह पूर्ण रसमयी, आकुलता ही उन्हें इस प्रेम सत्ता के, भावरूप प्रिया के दर्शन करा देती है, उस छबि को अपने नयनों में भरकर प्रियतम अपने रसमय स्वरूप को कृतकृत्य मान लेते हैं, और अपना सम्पूर्णरस उस पर न्यौछावर कर देते हैं। फिर भी वह पूर्ण प्रेमसत्ता इतनी अगाध है कि प्रियतम की अतृप्ति ज्यों की त्यों बनी ही रहती है, अपितु ऐसा कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उनकी तृष्णा, उत्कंठा इस भावरूपा प्रिया-दर्शन से कुछ बढ़ ही जाती है, रस सागर में ज्वार आ जाता है।"

शुक अत्यंत आनन्द से नाचकर कहने लगता है, "अहा! रसराज उत्कंठातुर होकर खोजने चलता है, रस का रस कौन है। आनन्द खोजने चलता है, आह्लाद की आह्लाद शक्ति ह्लादिनी कहाँ है? सत्ता खोजने चलती है, किस शक्ति से मैं सत् हूँ? और घन सच्चिदानन्द विग्रह आकुल हो भटकता है, अपने

सर्वाधार के आधार को ढूँढने ? शुक यह कंहता कहता भावाविष्ट हो जाता है।

शुक एवं सारिका दोनों भावाविष्ट हैं। उनके सम्मुख एक परम मधुर भावदृष्य आ रहा है। "रसकन्द प्रियतम यमुना के किनारे, मणिमय यमुना-घाट के किनारे स्थित कदम्ब वृक्ष के नीचे बैठे हैं। कदम्ब वृक्ष के नीचे का आलवाल स्फटिक मणियों से रचित है, और उसमें उस कदम्ब वृक्ष की छायाकृति प्रतिलक्षित हो रही है। प्रियतम की आकृति प्रेमाकुलता से भरी है। मुख पर वंशी रखे हैं। उनकी वंशीध्वनि सम्पूर्ण दृश्य को विमुग्ध किये प्रवाहित होरही है। प्रियतम के वंशीरव में सम्पूर्ण दृष्य प्रेम मुग्ध डूबा है।

नित्य सत्य, विभु, प्रभु, माया-गुण रहित, सकल भेदरहित, अज अव्यय, साकार, सच्चिदानन्दमय वपु, परम स्वतंत्र, स्वरूप देह, देही देह भेद से सर्वथा हीन, स्वेच्छामय लीला-वपु, प्रियतम प्रेम मुग्ध, आत्मविस्मृत हैं। प्रेम आकुलता उनके नयनों से नीर बनकर बह रही है और उनके कपोलों पर अश्रुबिन्दु ढुलक रहे हैं। ऐसी अलौकिक प्रीति प्रियतम रसराज में उदय हो रही है।

अभी अभी परमानन्द को, सच्चिदानन्द को, घन सच्चिदानन्द को यमुना में स्नानरत सखियों के बीच एक ऐसे आनन्द की झाँकी मिली है, जिसे पाकर इस सच्चिदानन्दकन्द पूर्णरसविग्रह का आनन्द तुच्छ हो गया है। उसे लगा कि मैं तो इस अप्रतिम महा महाआनन्दसिन्धु की लहर मात्र हूँ। मेरा आधार, आत्मा तो यही है। इसीलिये पूर्णानन्द का सब अभिमान नयनों से बहकर अश्रुविन्दुरूप में ढुलक रहा है उसके कपोलों पर। अनन्त अनन्त कन्दर्पों को अपने रूप के कण की छाया के प्रकाश में प्रकाशित करने वाले रूप ने, जिसने सम्पूर्ण विश्व को विमोहित करने की उपाधि धारण कर रखी है, जो सर्व मनमोहन, मुनि मनमोहन, जड़-चेतन मन-मोहन तो है ही, निज मनमोहन भी है, मनमोहन-मनमोहन भी है, वह नित्य अनुपम रूप सबको आप्यायित करता हुआ भी अभी अभी एक ऐसी अनुपम छवि देख चुका है जिस छवि को देखते ही, उस छवि-सौन्दर्य का पान करने के लिये, नित्य पान करने के लिये, उसके प्राण परमाकुल हैं। जो पूर्ण निस्पृह है, जिसके स्मरण से सम्पूर्ण स्पृहाओं का अन्त हो जाता है, वह निस्पृहों का परमाराध्य, प्रियतम रूप आज स्पृहा से परमाकुल हुआ, प्रेमरुदन कर रहा है। उसके प्राण उस भावरूप के दर्शन के लिये परम विकल हैं।

जिनकी मुरली ध्वनि त्रिभुवनको कर्षित करती है, जड़को चेतन एवं चेतन को जड़ बना देती हैं, वे ही आज अभी अभी किसी की परम मधुर वचन सुधा की माधुरी से मन-चित्त-हृत हुए अविरत उसे श्रवण करने को परमाकुल हो विलाप कर रहे हैं। जिनकी अंग-गंध से अखिल विश्व सुरभित होता है, सकल गंध का अस्तित्व ही जिनकी मात्र गंध से है, वे ही अभी किसी गोपाङ्गनाओं से घिरी अनिर्वचनीय रमणी की तन-गंध से मत्त हो, चित्तवृत्तिहृत हुए अरबस विकलता प्रकाश कर रहे हैं। आदि सृष्टि से जिनका रस सबको सरसित कर रहा है, जिनका स्पर्श अनन्त शरदिन्दु को शीतलता दान कर रहा है, उनका हृदय परम रस की, विचित्रतम रस की एक झलक मात्र पाकर अपने पूर्ण रसराज स्वरूप को ही पूर्ण नीरस मान कर आकुल हो रहा है और उसके हृदय में इस आकुलता ने एक ऐसी तृष्णाग्नि, उत्कंठाग्नि जाग्रत करदी है, जो बुझती ही नहीं, अपितु प्रतिक्षण नितनूतन रूप में बढ रही है। जिनके सुख के कण की छाया से अखिल विश्व का जन जन सुखी है, वे पूर्ण सुखवपु आज किसी अनिर्वचनीय, अभिनव सुख की मात्र एक झलक पाकर सुखी होने को अस्त व्यस्त हो रहे हैं। जिनकी अखंड शान्ति से सब शान्ति की साँस ले पाते हैं वे ही आज न जाने किससे मोहित हुए परम अशान्त हो रहे हैं।

सर्वत्र सब ओर प्रियतम की वंशीध्वनि प्रसरित हो रही है। ध्वनि कहाँ है? प्रियतम स्वयं ही तो हैं, उमड़कर बह चले हैं। जैसे यमुना बह रही है, अविराम गति सागर में आत्मसात होने, सागर की ओर, उसी प्रकार प्रियतम भी बहचले हैं, उमड़ चले हैं, अपनी जीवनमूला उस प्रेम स्रोतस्विनी से मिलने, जिसकी छबि की झलक ने उन्हें अभी अभी मत्त एवं पागल बना दिया है।"

शुक सारिका दोनों देख रहे हैं– "सभी तो भाव-प्रवाहित ही होरहे हैं, सर्वत्र जहाँ जहाँ रस है, भाव की ओर ही तो प्रवाहित हो रहा है, वह। जो सूक्ष्मदर्शी हैं, वे जान रहे हैं कि पृथ्वी तत्व घन नहीं है। जल भाव है और पृथ्वी रस। इसीलिये पृथ्वी प्रतिक्षण, प्रतिपल, प्रवाहित हुई, क्षरित हो, जल में विलीन होती जारही है। जल रूप बनती जारही है। एवं जल स्वयं भी पूर्णभाव नहीं है, वह भी रस ही है अतः उसका रसरूप निरन्तर विलीन होता जाता है, अपने भाव तेज में ठीक इसी प्रकार तेज भी स्वयं पूर्णभाव नहीं है, अतः उसका रसरूप भी विलीन होता जाता है, प्रतिपल अपने भाव वायु में। और वायु भी

पूर्ण भाव नहीं है, वह भी रसरूप ही है, इसलिये वह भी विलीन हो रहा, मिल रहा है, आकाश में। और आकाश भी रसरूप ही है, पूर्णभाव नहीं है, अतः वह भी विलीन हो जाता है अपने भाव अहंकार में। एवं अहंकार भी विलीन हो जाता है, अपने भाव प्रकृति में, और प्रकृति कुछ है ही नहीं, वह तो अपने भाव रूप आत्मा का संकल्प ही है। अतः शेष है, परतत्व परमात्मा जो मात्र भाव है और वही समग्र रस का एक मात्र कारण है। यह पूर्ण सच्चिदानन्द परब्रह्म भी जब अपने स्वरूपानुभव में ज्यों ही इस सत्य से अवगत होता है कि वह भी रस ही है, सच्चिदानन्द मात्र रस ही है तो वह भी प्रवाहित होने लगता है अपने मूल स्रोत की ओर, एवं उस समय वह रस जिस भावको लेकर बहता है, उसे ही 'पूर्वराग' नाम रसिक लोगों ने दिया है।

सहसा सारिका बोल उठती है- "हे शुकराज! देखी तुमने महाभाव रूप पूर्वराग की एक झाँकी? कैसा विलक्षण महाभाव है। शुक के नेत्र अश्रुपूरित हैं। उसके गद्गद् कंठ से वाणी निस्सरित नहीं हो रही है। फिर भी वह बोलने की चेष्टा कर रहा है। कैसी विलक्षण दशा है, शुक की। उसकी चिद्भूमि में भरी हुई है, पूर्णरूपेण सुप्रतिष्ठित है, एक छवि, जिसमें है यमुना का तट, उसके किनारे स्थित कदम्ब वृक्ष, और उस पर पीठ रखे बैठे हैं, स्नेह-तरंगायित-छबि प्रियतम, अपने अधरों पर मुरली रखे। उसके कर्ण विवर भरे हैं, छके हैं, मुरली के रस में, उन शब्द-रसघन-विग्रह प्रियतम में। और अब वार्त्ता करनी पड़रही है, प्रेम स्वरूपा सारिका से।

किसी प्रकार शुक बोलता है- हे सारिके! मैं धन्य भाग्य हुआ, परन्तु मुझे एक शंका हो रही है। सारिके! सम्पूर्ण सौन्दर्य, माधुर्य, सौरभ, आदि गुण तो रसरूप हैं न? ये भावरूप तो हैं नहीं, फिर प्रियतम जो पूर्ण रसराज हैं, वे भावरूप प्रिया में अपने से अनन्त गुने रस को कैसे देखकर चकित हो जाते हैं, यही प्रश्न मेरी समस्या बन रहा है। प्रियतम रसराज प्रिया का प्रेम देखकर मुग्ध हो जावें, व्याकुल हो जायें, यह तो उचित है, परन्तु अभी अभी प्रियतम ने तो यमुना में स्नान करती प्रिया की महासुन्दर छबि देखी है, उसके प्रेमभाव ने नहीं, उसकी रसरूप सौदर्न्य राशि ने प्रियतम को व्याकुल किया है, उसकी रसरूप बचन माधुरी ने प्रियतम को आकर्षित किया है, एवं उसकी मादक अंगगंध ने प्रियतम को आकृष्ट किया है। पूर्ण रसराज किसी विशिष्ट भाव

से अभिभूत हो जाय यह तो संभव है, परन्तु रस विग्रह, स्वयं भावविग्रह बनकर रुदन करने लगे और भावविग्रह प्रिया पूर्ण रसविग्रह बनकर प्रियतम की ओर दृष्टि निक्षेप किये बिना ही चली जावें, यह कैसी विलक्षण लीला है ?

शुक की वाणी सुनकर सारिका मुसका उठी ! वह कहने लगी–"ठीक है शुकराज, तुम्हारी शंका उचित है, परन्तु तुमने अभीतक रस एवं भाव का तत्व ठीक समझा नहीं। मैं समझाती हूँ। देखो, तुम्हें यह पृथ्वी रसरूप दिख रही है ? परन्तु इसमें जो सौन्दर्य है, माधुर्य है, शोभा है, वह मात्र जल को लेकर है। जल ही तरल है, वही इसे हरी भरी करके सुन्दर, परम सुन्दर सजा रहा है न ? इसमें जल का ही संयोग है जिससे यह प्राणवान है, चेतन है, और शोभामयी है। वरंच जल का ही नहीं तेज, वायु, आकाश का भी संयोग है। शुकराज, तो भावरूप जल ही पृथ्वी की शोभा का कारण है, उसी प्रकार जल में जो लहरें हैं, उसमें जो भी सौन्दर्य है, वह तेज एवं वायु के ही कारण है, वायु में भी जो सौन्दर्य है, वह आकाश के कारण हैं, और आकाश में जो सौन्दर्य है, वह अहंकार के कारण है। तो हे शुक ! शोभा, सौन्दर्य माधुर्य, गुण आदि मात्र रस ही नहीं है, इनका आधार पूर्ण रूपेण भाव ही है। भाव ही रस की सरसता है, सुमधुरता, सुशोभा है, एवं वही उसकी सुन्दरता है और सम्पूर्ण गुणों का कारण है। शवरूप देह, जीवन रहित कोई वस्तु, चाहे कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, कभी शोभा नहीं पाती, एवं जीवन युक्त बुरी से बुरी कुरूप वस्तु भी गुणवान हो जाती है, कैसी सुन्दर लगती है। प्रिया में पूर्णतम भाव नित्य प्रतिष्ठित है, इसी लिये उनका सौन्दर्य, उनका माधुर्य इतना सरस है कि प्रियतम को अपना सम्पूर्ण रसराजत्व निर्वैभव, तुच्छ प्रतीत हो रहा है। हे शुक जैसे पृथ्वी, जल, वायु, तेज, और आकाश चेतन आत्मा का रूप ही है, इसमें ये सब पूर्णतया अनुस्यूत हैं, वैसे जल भी पृथ्वी तेज वायु आकाश और चेतन आत्मा का रूप ही है, इसमें भी ये सब ज्यों के त्यों अनुस्यूत हैं, इसीतरह कोई भी रस चाहे वे रसराज प्रियतम भी क्यों न हों, भावसत्ता से हीन सर्वथा नहीं हैं। भावसत्ता तो सबकी मात्र कारण है। परन्तु उसका प्रकाश रसरूपही होता है। इसीलिए रस मात्र भावप्रकाश है। रस स्वयं में भाव ही है। भाव के बिना रस है ही नहीं। इसी प्रकार रस के बिना भाव रहे भले ही, पर भाव का कोई आस्वादक नहीं रहने से उसका होना न होना बराबर हो जायगा। इसीलिये रस एवं भाव का ऐक्य विलक्षण अविनाभावसंबंधयुक्त है। हे शुकराज, प्रियतम में प्रिया का अभाव है ही नहीं

और न प्रिया में प्रियतम का अभाव है, प्रियतम प्रियामय हैं और प्रिया प्रियतममय हैं यही तो रस वैशिष्ट्य है। लो देखो, और यह कहते ही शुक सारिका दोनों देखने लगते हैं– 'जो सहज ही चतुर चूड़ामणि हैं, तीनों लोकों को मोहित करने वाले हैं, जो सहज ही महा महा बुद्धिमान हैं, जो सम्पूर्ण ज्ञान के आधार, ज्ञाननिधि, स्वयं चिन्मय वपु हैं, वे ही परम मुग्ध हो रहे हैं। संभव असंभव हो रहा है। निर्विकार तत्व विकल, पूर्ण विकार ग्रस्त हो रहा है। प्रियतम अच्छे, बुरे, उचित, अनुचित का सोच विचार भूल गये हैं। समस्त विश्व ब्रह्मांडके सुखके मूल अपने को सुख से वञ्चित मान रहे हैं और व्याकुल हैं सुख पाने को। और वह सुख अपनी आत्मा में नहीं ढूँढ़ रहे हैं, ढूँढ़ रहे हैं, गोकुल की गलियों में घूमने वाली किसी सुन्दरी के चरणों का आश्रय लेने में। कोई रसीली, रसखान, आत्यंतिक सुखसत्ता सच्चिदानन्द श्यामसुन्दर को भी सुख देने वाली है, ऐसा वे मान बैठे हैं– "अहा, इन परम मधुरिमामय मधुर का, परम सुन्दरतामय सुन्दर का मोह नाश कैसे हो ? सर्व-मोहन-मोहन का मोहनाश कैसे हो ?

शुक सारिका देख रहे हैं— प्रियतम श्यामसुन्दर प्रिया के प्रेम में डूबे हैं। उनके सम्मुख प्रिया की छवि है। उन्हें अनुभव हो रहा है, प्रिया ही उनकी सब गति हैं। वे ही, उनकी बुद्धि हैं, वे ही उनकी रति हैं। उनमें कुछ भी होश हवास नहीं रहा है। उनको अपना सब तन, सब मन, सब वैभव, आत्मा, मात्र प्रिया ही प्रिया दिख रही है, और उनकी मुरली गारही है :—

हे आराध्या राधा ! मेरे मनका तुझमें नित्य निवास।
तेरे ही दर्शन कारण मैं करता हूँ गोकुल में बास॥
तेरा ही रस-तत्व जानना, करना उसका आस्वादन।
इसी हेतु दिन-रात घूमता मैं करता वंशीवादन॥
इसी हेतु स्नानको जाता, बैठा रहता यमुना तीर।
तेरी रूपमाधुरीके दर्शनहित रहता चित्त अधीर॥
इसी हेतु रहता कदम्बतल, करता तेरा ही नित ध्यान।
सदा तरसता चातककी ज्यों, रूप-स्वातिका करने पान॥
तेरी रूप-शील-गुण-माधुरी मधुर नित्य लेती चित चोर।
प्रेमगान करता नित तेरा, रहता उसमें सदा विभोर॥

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

हे आराध्या राधे ! मेरा मन सदा दिन रात तुम्ही में बसा रहता है। मुझको तेरा दर्शन मिलता रहे, इसी लोभ से मैं गोकुल में बस रहा हूँ ।।१।।

तेरे ही रसतत्व को जानने और आस्वादन करने के लिये मैं बाँसुरी बजाता दिन रात इधर उधर घूमता फिरता हूँ ।।२।।

इसी के लिये मैं स्नान करने को यमुना पर जाया करता हूँ और उसके तट पर बैठा रहता हूँ । तेरी रूपामाधुरी का दर्शन करने के लिये मेरा चित्त अधीर–उतावला रहता है ।।३।।

इसी कारण मैं कदम्ब के नीचे अवस्थित रहता हूँ और नित्य तेरा ही ध्यान, तेरा ही चिन्तन करता रहता हूँ । तेरी रूपछटा, रूपस्वाति के जल का पान करने के लिये मैं पपीहे की भाँति सदा सदा तरसता हूँ- लालावित रहता हूँ ।।४।।

तेरे रूप, शील स्वभाव तथा गुणों की मोहक मधुरता बरबस मेरे चित्त को चुरा लेती है । इसी से मैं नित्य तेरे प्रेम के गीत गाता हुआ सदा उसीमें तन्मय रहता हूँ ।।५।।

शुक एवं सारिका दोनों देख रहे हैं– प्रियतम अत्यंत आकुल हैं । उनका रोम रोम मानो कह रहा है, हे प्रिये ! मुझे व्यर्थ ही यह अभिमान रहा कि मैं चिन्मय परतत्व हूँ, पूर्ण ज्ञान हूँ, ज्ञानवपु हूँ । हा, अबतक मैं यह भी नहीं जान पाया कि तुम ही मेरी आराध्या, सब कुछ हो, फिर मेरी चिन्मयता क्या अर्थ रखती है ? अब तो मेरी जिह्वा के अग्रभाग पर सदा तुम्हारा ही नाम विराजित रहेगा । मेरी आँखों के सम्मुख सदा तुम्हारा ही अति ललाम रूप सरसता रहेगा, तुम्हारे चरणों की नूपुर ध्वनि ही मेरे कानों में गूँजती रहेगी । प्रिये ! मैं सब कुछ विस्मृत कर चुका हूँ । मैं कौन हूँ, यह ज्ञान भी मुझे नहीं रहा ? देखो न, प्रिये, एक ही छवि, तुम्हारी यमुना में स्नान करती छवि ही, उसकी याद ही, शेष है । एक यही ज्ञान शेष है कि तुम मेरे मेरे रोम रोम का अमर्याद परमातिपरम आनन्द हो, मात्र तुम ही मेरी आनन्द मूर्ति हो । मेरा चित्त सर्वभाव से तुम्हारी स्मृति में डूब चुका है । तुम मेरी प्राणों की प्राण हो, तुम ही मेरी विभूति हो और मेरे लिये मात्र लोभनीय हो । मैं स्पष्ट अनुभव कर रहा हूँ, तुम कहीं दूर नहीं गईं हो, यमुना से निकली हो, और मेरी ओर अत्यंत प्रेम भरी दृष्टि से निहारती, मेरे तन, मन, में, मेरे रोम रोम में समागई हो । तुम

मुझमें मिल गई हो, मेरे अणु अणु, कण कण में तुमही भरपूर भरी हो। तुम मेरा अस्तित्व हो प्रिये! इसीलिये तुमको अपनी 'आराध्या' कह रहा हूँ। तुमही मेरी आराध्या हो, सर्वस्व हो, मेरी जीवन सर्वस्वा हो। मेरी चेतन आत्मा तुम्ही हो, तुम्ही हो, तुम्ही हो।

सारिका अत्यंत प्रेम विह्वल होकर नाचती हुई सी गाने लगी:— सत्य, सत्य, परम सत्य, प्रियतम, परम सत्य! मैंने भी देखा प्रिया कहीं गई नहीं है. वे यमुना से ज्यों ही निकलीं उनकी दृष्टि के सम्मुख भी प्रियतम आये। नयनों से नयन मिले। नारी सुलभ लज्जा से प्रिया के नेत्र झुक गये, न चाहते हुए भी झुक गये। प्रियतम, तुम्हारी छवि उनके नयनों में भर गई। वे चलीं गोष्ठ की ओर। परन्तु वे गोष्ठ में जा नहीं सकीं। उनके पैर शरीर को कहीं भी भले ही ले गये हों, उनकी आत्मा मन, चित्त, सब शरीर से पूर्णतया विद्रोही हो गये हैं। अब वे पूर्ण-प्रियतम-आत्मा हैं, प्रियतनमना हैं, और प्रियतम चित्ता हैं, यह सत्य है, सत्य है, निर्विवाद सत्य है।

और शुक भी जोर जोर से बोल उठता— "सत्य है, परम सत्य है, कहाँ हैं प्रियतम, प्रिया ही तो हैं। प्रिया ही, पूर्ण प्रेममयी प्रिया ही हैं। प्रिया प्रियतम हो गई हैं। और प्रियतम प्रिया। सत्य है, यह। परम सत्य है, यह। सारिका महारानी के सम्मुख अभी मैंने जिज्ञासा की थी। परन्तु उन्होंने मुझे अनधिकारी समझ ऊपर ऊपर की बात समझायी थी, बुद्धि-चातुरी से ही मुझे मात्र बाह्य वस्तु का ज्ञान ही कराया था, सत्य की आत्मा तो यह है, मैं बतलाता हूँ, सबकोई सुनो। वे रसराज हैं ही नहीं, मात्र रसराज की आकृति हैं। रसराज पलट गये हैं, महाभाव से पलट गये हैं। महाभाव सरोवर में स्नान करने आया था। रसराज कदम्ब के नीचे बैठा था। दोनों के नेत्र परस्पर मिले। परन्तु नेत्र परस्पर दर्शन करें, इसके पहले ही रसराज महाभाव हो गये और महाभाव रसराज। अब महाभाव को रसराज के रूप-सौन्दर्य के दर्शन हुए, तो स्वाभाविक ही है, उस अमित रस से भाव उमड़ उठा। पूर्ण राकाशशि का चमकता मुख देख कौन समुद्र नहीं उमड़ेगा। तो कृष्णचन्द्र प्यारी राधा बन गये और राधा कृष्णचन्द्र बन गईं। प्रिया हैं, कदम्ब के नीचे, प्रिया हैं। भूलोमत, प्रियतम तो सखियों के साथ गये गोष्ठ की ओर। ये जो विलाप कर रही हैं, प्रिया हैं। सत्य, सत्य प्रिया ही हैं। और वह पागलसा चीखने लगा:—

सारिका कुछ क्षण शुक का आवेश देखती हैं, परम प्रसन्न होती हैं, तत्पश्चात बोल उठती हैं–'शान्त होओ ! शुकराज, तुम्हारा दर्शन परम सत्य है। भाव ही भाव है। पूर्वराग कोई रस थोड़े ही है, वह तो भाव ही है न ? फिर वह गिरिराज के प्रस्तर में भी यदि उदय होगा तो उदय होंगी प्रिया ही। ये प्रिया ही हैं, जो प्रियतम में भाव बनकर नयनों के राह से बाहर आरही हैं। यह सत्य है, परम सत्य है। बताओ शुकराज, प्रिया कहाँ नहीं है ? पूछो शुक, भगवान् नारायण से, प्रभो ! आप किसका निरन्तर निमीलित लोचन किये ध्यान करते हैं ? किसके ध्यानावेश में महा महा विभूति-सत्ता-रूपिणी महादेवी महालक्ष्मी की ओर भी आप देखते तक नहीं ? तो वे एक यही उत्तर देंगे, स्वरूप आनन्द का, अतिशय आनन्द का, मात्र आनन्दका, घन आनन्दका, एकमेव अद्वितीय आनन्दका, विशुद्ध आनन्द का, ज्ञानस्वरूप, बोधस्वरूप आनन्द का, निर्विकार आनन्द का, केवल आनन्द का, निर्विशेष आनन्द का, आनन्द ही आनन्द का। तो कौन है वह आनन्द ? भाव ही तो है। राधा ही तो हैं। तो भगवान् नारायण की आराध्या भगवती राधा ही हैं। भगवती लक्ष्मी से भी पूछें महादेवी, आप किस हेतु से इन आपकी ओर दृष्टि भी नहीं डालनेवाले चतुर्भुज नारायण की उपासना कर रही हैं, उनका पाद संवाहन कर रही हैं ? तो वे भी यही कहेंगी, मेरा स्वरूप विभूतिरूप है, परन्तु मैं आनन्द, आत्यन्तिक सुख चाहती हूँ। वह इन्हीं परम पुरुष की सन्निधि में मुझे प्राप्त होता है। सारा संसार तो मुझ विभूति सत्ता में ही सुख ढूँढ रहा है। जो मुझमें सुख ढूँढ रहा है, वह मुझे सुख कहाँ से देगा ? ये एक मात्र ऐसे देव हैं, जिन्हें मुझ से कोई प्रयोजन ही नहीं। ये तो अपने स्वरूप में ही सदा निमग्न रहते हैं, अतः मुझे इन्हीं के चरणों में आनन्द मिलता है। ठीक है देवी, आप चरण संवाहन चाहे जिस किसी का करें, परन्तु आपकी आराध्या हैं राधा ही। तो शुकराज ! ब्रह्माजी सृष्टि रचना कररहे हैं, मात्र आनन्द के लिये। विष्णुजी उसका पालन कर रहे हैं,आनन्द के लिये। और रुद्र उसका संहार कर रहे हैं, आनन्द के लिये। वैदिक वेद पाठ करते हैं, मात्र सुख के लिये, आनन्द के लिये। इन्द्र स्वर्ग के राजा हैं, आनन्द के लिये। इन्द्राणी इन्द्रकी पत्नी हैं, आनन्द के लिये। लोग यज्ञ करके स्वर्ग में जाते हैं, आनन्द के लिये। तपस्वी तप करते हैं, घोर से घोर तप द्वारा शरीर को सुखाते हैं, आनन्द के लिये। योगी योग द्वारा अपने को युक्त करते हैं आनन्द में। ऋषि, मुनि समाधि लेते हैं, आनन्द के लिये। अर्थार्थी अर्थ कामना करता

है, आनन्द के लिये। लोभी धन संचय करता है, आनन्द के लिये। कामी कामुक है, मात्र आनन्द के लिये। पशु, पक्षी, सब कोई जितनी भी चेष्टा, कर्म कर रहे हैं, मात्र आनन्द के लिये। आनन्द के लिये सब की सब चेष्टाएँ हैं, सब उपासनाएँ हैं। स्वार्थ, परमार्थ सब की आराध्या हैं, मात्र ह्लादिनी, प्रिया, राधा ही, एकमेव राधा ही, अन्य कोई नहीं।

हे शुकराज– श्रुतियाँ स्पष्ट निर्देश कर रही हैं—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनः॥

वह ब्रह्म राधा ही है, मात्र आनन्द ही है, जिसे जानकर जाननेवाला विद्वान् किसी भी प्रकार भयभीत नहीं होता।

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।

ऋषि ने आनन्द को ही ब्रह्म जाना। सर्वांशमें आनन्द ही ब्रह्म है। ये सब प्राणी सृष्टि के आदि में आनन्द स्वरूप परब्रह्म परमात्मा से ही उत्पन्न होते हैं। इन आनन्दमय के आनन्द में ही जीते हैं, और इस लोक से प्रयाण करते समय आनन्द में ही प्रविष्ट हो जाते हैं।

हे शुकराज! सच्चिदानन्द तत्व में तत्वज्ञ लोक स्पष्ट अनुभव करते हैं कि सत्ता मात्र आनन्द की ही है, और ज्ञान भी, आस्वादन भी, मात्र आनन्दका ही है। आनन्द के अतिरिक्त कोई न सत्ता है, न ज्ञान है। तत्वतः आनन्दका ज्ञान ही ज्ञान है, और आनन्द की सत्ता ही सत्ता है। बोल शुक, तुम तो वेदज्ञ ही, महाज्ञानी हो, ब्रह्मविद् हो, तुम्हीं बताओ आनन्द से शून्य ब्रह्म में कोई सत्ता, कोई ज्ञान शेष रहता है क्या? हे शुक! आनन्द ही मात्र सत्ता है जिसमें, आनन्द ही ज्ञान है जिसमें, वही तो परब्रह्म है? वही तो सच्चिदानन्द तत्व है?

हे शुकराज, जो ब्रह्म की "सत्ता मात्रं निर्गुणं निर्विशेषं" कहकर स्तुति करते हैं, वे पूर्ण ब्रह्म की स्तुति नहीं करते हैं, वे तो भगवान् नारायण की स्तुति

करते हैं जो आनन्दोपासक हैं, आनन्दांश हैं। अंशी नहीं हैं। हे शुकराज, इसमें किसी की भी अवज्ञा नहीं है। श्रुतियों ने पहले कहा—

सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म। ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप और आनन्द है, अनन्त है। इसमें अनन्त शब्द स्पष्ट निर्देश कररहा है कि हमने जो ब्रह्मको नित्य सत् कहा, ज्ञान स्वरूप कहा वह इतना ही नहीं है इसके अतिरिक्त भी वह अनन्त है, जिसका अभी अन्वेषण शेष है। इसके उपरान्त वे आगे चलते हैं, जीवके आत्म स्वरूप का वर्णन करते हैं, पहले अन्नमय आत्मा को प्राणमय में, प्राणमय को मनोमय में, मनोमय को विज्ञानमय में लीन करते हैं, एवं तब अन्त में कहते हैं।

तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात् अन्योऽन्तरः आत्मा आनन्दमयः। तेनैषपूर्णः। तस्य प्रियमेव शिरः। मोदो दक्षिण पक्षः। प्रमोद उत्तर पक्षः। आनन्द आत्मा ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा।

इसका भाव यही है कि प्रथम अंशमें कहे हुए विज्ञानमय पुरुष से भिन्न उसके भी भीतर रहनेवाला एक दूसरा आत्मा है। वह है, आनन्दमय परमात्मा। उससे यह विज्ञानमय पुरुप व्याप्त है, अर्थात वह इसमें भी परिपूर्ण है। प्रिय भाव उनका सिर है, तात्पर्य यह है कि आनन्दमय परमात्मा ही सबको मात्र प्रिय है। इसीलिये सर्वशीर्षस्थ है। यह प्रियता ही, 'प्रेम' ही आनन्दमय परमात्मा का प्रधान स्वरूप है। अतः यही उनका प्रधान अङ्ग मस्तक है। मोद दाहिना पक्ष है, प्रमोद बायाँ पंख है। आनन्द ही परमात्मा का मध्य अंग हृदय है, उसकी आत्मा है। तथा स्वयं ब्रह्म ही इनकी पूंछ प्रतिष्ठा है।

हे शुकराज, इससे स्पष्ट और क्या कोई वर्णन करेगा प्रिया का? बताओ शुक, आनन्दमय परमात्मा भावरूपा प्रिया के अतिरिक्त है कौन? विज्ञानमय परमात्मा ही इन प्रिया से व्याप्त हैं। विज्ञानमय की भी ये प्रिया ही आत्मा हैं। यह विज्ञानमय ही ज्ञानसत्ता-प्रधान निर्विशेष निर्गुण है। प्रेमी ही इन आनन्दमय का प्रधान अंग मस्तक है। मोद, प्रमोद, बायाँ, दाहिना अंग है। आनन्द ही इनकी आत्मा है और स्वयं श्रीकृष्ण परब्रह्म रसराज प्रियतम ही इनकी प्रतिष्ठा, पूँछ हैं। बताओ शुकराज, प्रियाके अतिरिक्त-किसका वर्णन है, इन उपनिषदों में?

हे शुकराज ! इसीलिये प्राणिमात्र आनन्द की ही आराधना कररहा है। सबकी आराध्या मात्र ये ही आनन्द देवी प्रिया हैं जो सबको प्रिय हैं। हे शुकराज ! यह जो प्रिया रूप आनन्द है, वह किसी भी इन्द्रियों द्वारा जानने में नहीं आनेवाला है, पकड़ने में नहीं आनेवाला है, वह कहाँ से उत्पन्न होता है, यह भी कोई नहीं जानता। वह सब कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों से अतीत है, एवं 'यत् तत्' जो कुछ है, सब यही है, यही नित्य है, सर्वव्यापी है,सबमें विस्तृत है, अत्यंत सूक्ष्म है और अविनाशी है, यही प्राणियों का परम कारण है। यही मात्र सबका आराध्य है, इसीलिये ज्ञानीजन इन प्रिया को ही सर्वत्र देखते हैं। और हे शुकराज, देखो ! प्रियतम इसीका तो वर्णन कररहे हैं, अपने मुरलीगान द्वारा। और शुक, सारिका दोनों एक अभिनव दृष्य में खोजाते हैं—

"प्रियतम को न अपनी मुरली का ध्यान है,न मुकुट का। उनका पीताम्बर भी अस्तव्यस्त हो रहा है। सुबल उनके पास बैठा, उनकी दशा अत्यंत चिन्तित होकर देखरहा है। वे कभी एकाध क्षण सुबल को अत्यंत प्रेम भरी निगाह से देखते हैं, एवं पुनः भाव में बोल उठते हैं– हे सुबल ! मुझे क्या हो गया है, मैं कुछ नहीं जानता। जबसे मैंने यमुना में स्नान करती, प्रिया की छवि को देखा है, मुझे नभ में, जल में, स्थल में, चर और अचर में, सर्वत्र मात्र प्रिया ही प्रिया दिख रही हैं। और वे भावावेश में बोल उठते हैं—

"हे प्रिये ! सर्वत्र तुम्ही तुम हो; न ब्रह्म है, न माया है, न जीव है, न काल है, न देश है, न काया है। मैं किसी को भी नहीं देख रहा हूँ। सर्वत्र तुम ही प्रिये, एकमात्र शेष हो। मेरे हृदय की बात किससे कहूँ ? मुझे तो सर्वत्र तुम ही अनुभव हो रही हो। क्या मेरा सम्पूर्ण हृदय मात्र दृष्टि से ही तुम चुरा कर लेगई ? देखो ! तुम ही एक मात्र ऐसी हो जो मुझे, मेरी दशा को भलीभाँति जान रही हो। मैं तो निस्संदेह आकार रहित हूँ। इस समस्त जगत से अतीत हूँ। शरीरादि विकारों से रहित हूँ। सर्वथा विशुद्ध हूँ। न मुझ में प्राण हैं, न इन्द्रियाँ हैं और न मन ही है। परन्तु प्रिये ! इस गोकुल में, इन्द्रियों के कुलमें, इस गो-लोक में, इन्द्रियों के लोक में, तुम्हारे ही कारण मैं बँधा आया हूँ। तुम्हें ही पाने आया हूँ। तुम ही, मात्र मुझ अचिन्त्य को, अनन्त को, अव्यय को, अकल को, निर्विशेष को, निर्विकार को विलक्षण रूप से कृष्ण नाम, कृष्ण रूप और कृष्ण इन्द्रियों के कुल में बाँधनेवाली हो। तुम ही मेरे इस कृष्ण शरीर में

चलनेवाली श्वास प्रश्वासरूप प्राण हो। तुम्हारे ही कारण ये प्राण मुझ में उत्पन्न हुए हैं, तुम ही मेरी मन हो, मेरा अन्तःकरण बनी हो। हे प्रिये।! यद्यपि तुम मन, इन्द्रिय, और कारण समुदाय से सर्वथा रहित हो, तथापि सब कुछ करने में समर्थ हो। हे प्रिये। तुम ही मेरी इन इन्द्रियों की प्रतीति उनका विषय भी बनकर आकाशरूपमें मुझे अवकाश दे रही हो, वायु रूपमें सुखद स्पर्श और जीवन, तेज रूपमें सुन्दर रूप दिखा रही हो, और जल रूपमें रस और पृथ्वी रूप में मेरा आधार गंध बनी हो।

प्रिये! सर्वत्र तुम्हारा ही तुम्हारा प्रकाश है, जिस प्रकाश में मैं भी प्रकाशित हो रहा हूँ, और प्रकाशित हो रहा है यह सम्पूर्ण गो-लोक। हे पूर्णानन्दमयि, अवनि में, अनिलमें एवं जल में तुम स्वच्छन्द उन्मुक्त हँसी हँस रही हो, मुसकारही हो, हे पूर्णानन्दमयि, तुम इस कदम्ब के, इन सभी वृक्षों के पत्तों पत्तों में आनन्द स्रोत बहाती हुई मुझे पुकार रही हो, मुझे आलिंगित करने बाहें पसारकर 'प्रियतम, प्रियतम' कररही हो। तुम ही पुष्प पुष्प में ओत प्रोत हुई रूप-सुगंध बनी हो, मुझे सुख देने। देखो। प्रिया ही नृत्य कर रही हैं, विचित्र मोर बनकर। देखो सुबल! आज मेरी सब भ्रान्ति दूर हो गई। मेरा यह कृष्ण नाम मात्र है, यह मेरा शरीर आकार मात्र है, सब प्रिया हैं, राधा ही राधा हैं। देखो सुबल! गोप, गोपी, यह यमुना, कुंज निकुंज, वन, उपवन, भूमि भवन, गौ सब मेरी प्रिया के ही नाम हैं। सम्पूर्ण कर्म, अकर्म, विकर्म मेरी प्रिया के ही रूप हैं। प्रिया ही प्रिया हैं, उनका ही सब ऐश्वर्य है। और मैं मात्र उनका सेवक, आराधक हूँ। मैं उन मेरी आराध्या प्रिया की पूजा करने ही कृष्ण बना हूँ। प्रिया ही मुझ में परिपूर्ण हैं। उनकी सुन्दरता से मेरा भीतर, बाहर सब सुन्दर हो गया। उनकी उज्ज्वलतम आभाने मुझे चारों ओर से घेर रखा है। मेरी प्रिया का ही मात्र पूर्ण मंगलमय मुझ पर अधिकार है।

हे प्रिये! तुम मेरे नेत्रों को अनन्त आनन्द देने वाली द्युति से समन्वित हो, तुम मेरे कानों को अनन्त सुमधुर लगने वाली श्रुति से समन्वित हो, तुम मेरी बुद्धि को अनन्त सुख देने वाली मति से समन्वित हो, तुम मेरे मन को अत्यंत रोचक लगने वाली स्मृति से समन्वित हो, और तुम मेरे प्राणों को अत्यंत प्रिय लगने वाली उनकी मात्र आधार प्रीति से समन्वित हो। तुम मेरी कर्त्ता और कृति हो, तुमही मेरी श्रोता और श्रुति हो, तुम मन्ता और मति हो,

तुम ही द्रष्टा और दृष्टि हो, तुम ही प्रज्ञा और प्रज्ञप्ति हो, तुम ही मेरी पूरक और पूर्ति हो, तुम ही प्रिया और प्रीति हो। तुम ही मेरी सम्पूर्ण भगवत्ता और भगवती हो। तुम मेरी आराध्या राधा हो और मैं राधामय हूँ।

देखो! शुक। मेरे नेत्र मुझे छोड़कर चले गये, मेरी प्रिया के सिवा अब मुझे कुछ भी नहीं दिखता। देखो, देखो, सुवल, मेरी कर्णेन्द्रियाँ भी चली गईं प्रिया के पास, अब मुझे कुछ सुनाई नहीं पड़ता। सुबल! मेरी वंशी भी मुझे छोड़कर चली गई। उसके स्वर की सम्पूर्ण माधुरी प्रिया की वचन-माधुरी में मिलगई। सत्य ही है, नेत्रों का भाव तो रूप है और वे प्रिया ही हैं। कर्णेन्दियों का भाव तो समुधुर शब्द है और वे प्रिया ही हैं। सत्य ही है, वंशी ध्वनि का भाव भी मधुर वाणी है, उसका शब्द है, और वे प्रिया हैं। और लो, मेरी नासिका भी चली गई एवं मिल गई प्रिया की अंग गंध में। और मेरा सम्पूर्ण रस भी जा रहा है मुझसे बिछुड़ने एवं मिलही गया मानलो प्रिया की अधर-रस-राशि में। और अब तो मेरी त्वचा भी मिल रही है प्रिया के अंगों में, उनकी त्वचा में। फिर मैं ही क्यों विलग रहूँ, लहरे क्यों रहें, सागर ही तो उनका सर्वस्व है। अच्छा सुवल, लो, तुमसे बिदा लेलूँ और अन्तिम ही बिदा लेलूँ—कहकर प्रियतम सुबल से लिपटकर रुदन कर उठते हैं। उन्हें अब सुवल दिख ही नहीं रहा है, दिखरही हैं, प्रिया, जो उन्हें आत्मसात् करने को जैसे तैयार हों।

और देखो! हा प्रिये! कहकर प्रियतम लताओं से, वृक्षों से लिपटने लगे और उस भूमिमें लोटने लगे जिस भूमिमें प्रियाके चरण चिन्ह अंकित थे।

हा प्राणेश्वरी! अब तो मुझे दर्शन दो? मैंने तुम्हारे आस्वादन के लिये तुम्हारी आराधना के लिये ही इन्द्रियोंके कुलमें निवास किया है, फिर मुझे तुम क्यों नहीं दिखतीं। प्रिये, तुम कौन हो, तुम कहाँ हो, तुम कैसी हो, कैसी प्रबल जिज्ञासा है मुझ में। मन में, तन में, बुद्धि में, प्राणों में, सदा तुम्हारा संग पाकर भी मैं तुमसे असंग क्यों हूँ? बोलो प्रिये! नित्य संयोग होकर भी यह वियोगाग्नि कैसी? तुम विविध विलक्षण सुख संयोग देकर भी मुझे अतृप्त क्यों रखे हुए हो? क्यों नहीं तुमको पाकर मेरी हृदयकली खिल उठ रही है। मेरे मधुलोभी दृग-मधुकर तुम पर मँडराते हुए भी तुम्हारी मधुर सुवास से अतृप्त क्यों हैं? प्रिये! तुम मेरी हो, मेरी हो, मात्र मेरी हो, तुम्हारे सिवा अन्य किसी की सत्ता नहीं, सबमें तुम्हारा ही मोहन, परम मोहन रूप अभिव्यक्त है। फिर भी प्रिये! मैं

सम्मोहित हुआ सा क्यों व्याकुल हूँ! बोलो प्रिये। सर्वत्र तुम्हारी ही गुण गरिमा है, सर्वत्र तुम्हारा ही मंगलमय भाव है, सब के माध्यम से तुम ही अपना विचित्र विकास प्रकट कर रही हो, फिर भी प्रिये, मुझे अभाव, दारिद्र्य का क्यों अनुभव हो रहा है? तुम्हारी सर्वत्र लीला माधुरी को देखकर भी मुझे आह्लाद क्यों नहीं हो रहा है? तुम्हारा प्रेम रस सागर मेरे अन्दर और बाहर सर्वत्र लहरा रहा है, मेरा जीवन सचमुच उससे भर गया है, फिर भी मेरी अतृप्ति क्यों नहीं मिट रही है। तुम्हारी प्रेममयी मूर्ति प्रिये, और स्पष्ट करो, जिससे मेरा जिज्ञासु मन शान्त हो। मैं तुम्हारा ही तत्व जानने भटक रहा हूँ, वन वन घूम रहा हूँ। मेरी मन इन्द्रियाँ आकुल हो भटक रही हैं, चंचल हो रही हैं।

प्रिये, तुम मुझसे पलक भर भी अलग नहीं होती। सदा मेरे साथ रहती हो। हर स्थिति में, हर स्थान में, तुम्हारी प्यारभरी छाया सदा मेरे मस्तक पर रहती है। तुम मेरी छोटी मोटी सभी आवश्यकताओं को देखती रहती हो। हर क्षण मेरी सँभाल रखती हो, मेरा योगक्षेम बिना व्यवधान निर्वाह करती हो। तुम मुझे सुखी करने के लिये नये नये विधान बनाने में सदा तत्पर हो। तुम अपने पूर्ण ममतामय हृदय से मुझे नव-नव प्यार देरही हो। प्रिये, तुम मेरी हो, मात्र मेरी हो, सर्वाङ्ग से, सर्वांश में मेरी हो। फिर भी न जाने क्यों मुझे ऐसा अनुभव होता रहता है कि तुम्हारा मुझसे वियोग है। पूर्ण संयोग नहीं। मुझे तुम पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं, अभी अप्राप्त ही हो। अभी मेरी साधना सम्पूर्ण नहीं हुई। मैं तुमसे वियुक्त ही हूँ। मैं अपूर्ण हूँ। तुम अमृत हो और मैं विष हूँ। जब तक तुम्हारी रूप सुधा का भरपूर पान मुझे नहीं मिलेगा, मेरी विष-दाह मिटेगी नहीं। प्रिये, मुझे कब पूर्ण शीतल करोगी? तुम्हारा प्रेम प्रकाश कब मेरे हृदय को आलोकित करेगा और कब मेरे हृदय के इस गहन तम का नाश होगा।

प्रिये, तुम ही तो मेरे मुख की वाणी हो। तुम ही मेरी परम मधुर मुरली ध्वनि हो जो मेरे प्राणों को संगीत से भरे है। मेरा जीवन रस, मेरा सौरभ, सुगन्ध सब तुम ही तुम हो। तुम्हारे सच्चिदानन्द अंक में मेरा नित्य निवास होते हुए भी मुझे ऐसा क्यों अनुभव होता है, मानो मैं तुमसे दूर हूँ। तुम्हारी निर्मल प्रेमज्योत्स्ना सर्वत्र उद्भासित होते हुए भी, तुम्हारे शीतल प्रकाश से मेरे प्राण आलोकित हैं नहीं। माया की छाया मुझे अभी तक घेरे ही है।

सम्पूर्ण द्रष्टा और दृष्य मिथ्या हैं, मात्र तुम ही तुम सत्य हो, यह अपरोक्ष ज्ञान होते हुए भी मेरी अहंता और ममता का डेरा उठना क्यों नहीं ? अभी तुम, तुम और मैं, मैं क्यों बचे हैं ? बोलो प्रिये, पूर्ण, परिपूर्ण मात्र तुम ही सत्य हो, फिर भी मेरी क्षुद्रता और तुम्हारी महानता का द्वैत है क्यों ? एकरस, दिव्य अनुपम, आनन्द छा जाने पर भी यह द्वन्द्व कैसा ?

बोलो प्रिये; तुम मुझ से जरा भी दूर नहीं हो, मेरे अत्यंत समीप हो, यहीं हो। तुम्हारी अमित मधुर प्रेमसुधा मुझमें अमित रूप से समारही है, फिर भी मुझमें यह भ्रान्ति क्यों, मोह क्यों ? सतत परम शान्ति का प्रवाह बहरहा है, उसका निर्मल, शीतल प्रकाश मुझमें छारहा है, फिर भी उसका सुप्रभाव मेरे मन में क्यों नहीं हो रहा ? निशा बीत गई, फिर भी अरुणोदय क्यों नहीं होता। महारस की घनी घटाएँ सर्वत्र आकाश में उमड़ आईं, फिर भी मेरे सूखे हृदय में प्रेम की फुहारें क्यों नहीं गिररहीं ? अहा, मधुर, सुमधुर, उससे भी परम मधुर, परमातिपरम मधुर, नित्य निरन्तर वर्द्धनशील मधुर मेरी प्रिया है। लो, मैं उसका ध्यान ही करता हूँ। ' प्रिया का अङ्ग, अङ्ग माधुर्य से भरा है। जैसे अमृत का पारावार हो। समग्र सौन्दर्य,माधुर्य का मूल आधार मेरी प्रिया ही हैं। मेरी प्रिया का परम सुन्दर कनक-कमल-कमनीय कलेवर है। उसमें सहज ही सौरभ कूट कूट कर भरा है। अपार सौरभ ही सौरभ मेरी प्रिया के दो नेत्र हैं, मुख है, नाभि है, चरणकमल हैं, और चन्द्रमा की किरणों जैसे दो हाथ हैं। कैसी अनुपम शोभा है, मेरी प्रियाकी। अहा, जिसके ध्यान के लिये योगीन्द्र, मुनीन्द्र निरंतर अपने मनको एकाग्र कर तप करते हैं, वे सर्वसमर्थ सच्चिदानन्दकन्द रसमूर्ति, रसराज स्वयं एकाग्रमन करके ध्यान कररहे हैं, किसका? एक गोपाङ्गनाका। एवं फिर भी उन्हें ध्यान हो नहीं रहा है। चंचल हो उठा है, चित्त उनका। प्रियतम का मन प्रिया ने हर लिया। देखो, प्रिया ने अपने अनियारे, नेत्रों से, अपने प्रियतम की ओर देखा, अपनी भौंहें मरोरीं, और प्रियतम इस शोभा पर मुग्ध हुए, न्यौछावर हो गये हैं। कैसे प्रियतम-मनरंजन नैन हैं, प्रिया के। कैसी प्रियतम चित्त-वित्तहर रूप माधुरी है,उनकी। कैसी मधुर मुसकान है, प्रियाकी, जो प्रियतम का सब कुछ ठग ले रही है। कैसी शरदिन्दु के समान उसकी मुखद्युति है। और हे शुकराज ! प्रिया-विरही प्रियतम की शोभा तो देख ! पीताम्बर धूलि धूसरित हो रहा है। सम्पूर्ण शरीर में पथकी धूलि, दूर्वा

और वृक्षों की छालों का मैल लगगया है। मुकुट का पता नहीं, केश बिखरे हैं। नयनों में अश्रु भरे हैं। उनके हाथ ऊपर उठे हैं, और प्राणेश्वरी, प्राणेश्वरी, चीखते वे वन वन डोल रहे हैं। न उन्हें पथ के गढ्ढे का ज्ञान है, न कंटकाकीर्ण मार्ग का। पीताम्बर से उलझ उलझ कभी भूमिमें लुडकजाते हैं। सुबल किसी तरह उनको सँभाल रहा है। 'हा, असित सौन्दर्यमयि, तुम कहाँ हो ? हा असित माधुर्यमयि, तुम मुझे दर्शन दो। हा मधुरानने, मैं तुम्हारी मधुर मुसकान से युक्त अधरों का दास हूँ। मेरे प्राण, तुम्हारी सुधावर्षिणी दृष्टि के दास हैं। हे चंचले, तुम मुझे छोड़कर कहाँ गई ? हा प्रिये,तुम्हारी काली वेणी में मुझे पुष्पके समान गुम्फित करलो। हा चन्द्रानने,मुझे अपनी मालती मालामान कर हृदय में स्थान दो। हा सहज श्रीसुषमे, हा प्रियदर्शने,हा विलक्षणरूपे, मुझे तृप्तकरो। हा सरले, मुझ पर इतनी कठोर क्यों बनी हो ? मैं तुम्हारे विरह में अत्यंत कातर हूँ। मेरी मिलनोत्कंठा कैसे शान्त हो ? हा सर्वत्यागमयि, तुम कहाँ हो ? हे अतिपूते, मुझे पवित्रकरो। हे करुणामयि, करुणा करो। हे रससंभूते, हे सुशीले, हे साधुस्वभावे, हे मधुरे, तुम कहाँ हो ? हा ललिते, अनन्त प्रेमप्रतिमे, हे गुणगणमयि, हे ममतामयि, कहते हुए कभी प्रिय मौन हो जाते हैं, वे कभी गिरजाते हैं. फिर गुनगुनाने लगते हैं। इसी प्रकार रसराज अपनी प्रियाके रसतत्वकी जिज्ञासामें वन-वन मुरली वादन कर रहे हैं। उनके करुण क्रन्दन से. उनके विरह-विलाप से कभी सम्पूर्ण वनश्री प्रेमाकुल हो रोने लगती है, कभी सम्पूर्ण वनश्री उनके प्रगाढ़ प्रेममें प्रियाभावापन्ना हो नर्त्तन करने लगती है, कभी मुसकाकर अत्यंत प्रफुल्लित हो शोभामयी हो उठती है, और कभी विरहाग्नि से जल उठती है। जब वे शान्त ध्यान में एकाग्र हो उठते हैं, तो सर्वत्र परम दिव्य शान्ति व्याप्त हो जाती है। निर्झर भी, पक्षी भी अपनी कल कल ध्वनि, अपनी काकली बंदकर शान्त हो बैठ जाते हैं। सब वातावरण निस्पंद हो जाता है, और पुनः जब वे विरह में चंचल होते हैं, तो सर्वत्र चंचलता व्याप्त हो जाती है। वे चीत्कार करते हैं, तो व्रजका अणु अणु, वनका, वृक्षका, लताका, सुमनका, परमाणु परमाणु, क्रन्दन कर उठता है। वे दौड़ते हैं तो सम्पूर्ण वनश्री जैसे आकुल हो उनका अनुगमन करने लगती है। वे बार बार वंशीवादन करके अपनी प्रियाका आह्वान करते हैं-

तेरा ही रसतत्व जानना करना उसका आस्वादन।
इसी हेतु दिन रात घूमता मैं करता वंशीवादन।

प्रियतमकी वंशीध्वनि वनमें ही नहीं, अन्तरिक्ष में, लोकलोकान्तरों तक में प्रतिध्वनित होने लगती है। और अपने प्रियतमकी यह महाप्रेममयी पुकार उनकी प्रिया के कानों में नहीं पहुँचे, यह कैसे संभव है। अपने प्रियतम के आह्वान को प्रिया सुनी अनसुनी करदें, यह भी सर्वथा असंभव है। फिर भी प्रिया अप्रकट हैं, और प्रियतम व्याकुल हैं, क्या रहस्य है इसके पीछे। प्रियतम के सुखको बढ़ाना ही उनकी इस गोपन-लीला का उद्देश्य है। उत्कंठा जबतक अपनी चरम सीमा तक नहीं पहुँचे, तबतक मिलनका पूर्णसुख प्राप्त ही नहीं होता। 'मेरे प्रियतमको मिलनका पूर्णसुख हो,' यही भावधारा प्रियाको रोके है, अन्यथा अबतक तो वे कभीकी तीव्रगति से दौड़कर उन्हें अङ्कमें धारण करलेतीं। अपने प्रियतम की पुकार के पश्चात उन्हें निमेष भर भी रोकलेना, संभव ही नहीं था। रुकही नहीं सकती भावधारा अपने प्रियतम रसराज का आह्वान सुनकर।

प्रियतम श्यामसुन्दर ध्यान की गहरी परतों में उतरते जारहे हैं। उनके सम्मुख प्रिया प्रकट हैं। मानो कहरही हों—"प्रियतम, मेरा तो नित्य निवास कालिन्दी का वह तट ही है, जहाँ तुम्हारा मेरा प्रथम मिलन हुआ था। उसी यमुना के तट पर हम तुम फिर मिलेंगे, चलो।" और प्रियतम दौड़ पड़ते हैं, इस अनुभूति के साथ ही यमुना की ओर।

प्रियतम श्यामसुन्दर दौड़े दौड़े आते हैं, यमुना के उसी घाट पर और देखते हैं—"अमृतस्वरूपिणी यमुना बहरही है। वही तट है, वही घाट है, जिस पर प्रिया प्रथमबार दिखाई पड़ी थी। मञ्जुल, परममञ्जुल, मंगलमयी श्यामा यमुना मन्दगति से बहरही हैं। महामहिम शोभा है मुनिमनहर यमुना की। पल पल वर्द्धमान शोभामयी, पल पल वर्द्धमान शुचिता की मूर्ति, यमुना दिव्य रूपलावण्यमयी है।

प्रियतम की तो बड़ी विलक्षण दशा है। एक पल उन्हें यमुना दिखती है, और दूसरे ही पल उन्हें यमुना के स्थान पर अपनी प्रिया ही लहराती दिखने लगती हैं।

प्रियतम ज्यों ही कालिन्दीमें अपनी प्रियाका दर्शन करते हैं। वे मिलनोत्कण्ठावश 'प्राणेश्वरी, प्रियतमे, प्राणवल्लभे, हृदयेश्वरी' कहकर व्याकुल हो उठते हैं। दौड़ पड़ते हैं, वे अपनी प्रियाको हृदय में भरलेने को। परन्तु पुनः प्रियाके स्थान पर लहराती यमुना को देख उनके पैर ठिठक जाते हैं। प्रियतम के इस

रसोद्दीपन से कालिन्दी भी और भावमयी हो उठती है। इसप्रकार प्रियतम और कलिन्दनन्दिनी दोनों में अपार परमानन्द उछलने लगता है। प्रियतम रसराज अपनी प्रियाके रूप सिन्धु में निमग्न तो थे ही, कलिन्दतनया के भावोद्दीपन से और रसतन्मय हो जाते हैं। प्रियतम की तन्मयता इतनी बढ़जाती है कि उन्हें अपने तनका, मनका, सब बाह्यज्ञान विस्मृत हो जाता है। प्रियतम श्रीकृष्ण, सर्व ब्रह्माण्ड निकेतन, सर्व सृष्टि के उद्भव, स्थिति, संहार के मात्र कारण ज्ञान शून्य, चेतना शून्य हो जायें, सृष्टि के अभिमानी देवता काँप जाते हैं। परन्तु फिर भी प्रलय नहीं होती। सृष्टि का सब प्रवाह ज्यों का त्यों बना रहता है। यह आश्चर्य ही है। परन्तु होता यही है, प्रलय नहीं ही होता। प्रियतम श्रीकृष्ण की अघटन घटना पटीयसी योगमाया ही यह चमत्कार करती हैं। बाह्यज्ञान के आत्यंतिक अभाव में प्रियतम के लिये न जगत रहता है, न जगत की रचना। परन्तु फिर भी जगत ज्यों का त्यों सक्रिय रहता है।

प्रियतमके लिये तो प्रिया मन्द मुसकाती व्यक्त हो जाती हैं। हा प्राणेश्वरी! उनके मुखसे शब्द निकलता है, और उनके पैर भावावेशवश दौड़ पड़ते हैं, यमुना के प्रवाह की ओर, अपनी प्रिया को अंकमें भरने। सुबल प्रियतम को रोकना चाहता है, परन्तु रोक पाता नहीं। प्रियतम को बाह्यज्ञान है नहीं, उनका शरीर यमुना प्रवाह में बहरहा है। कलिन्दतनया अपनी लहरों रूपी बाहुओं में उसे लिपटाये अपनी युग-युग की आलिंगन स्पृहा शान्त कररही हैं। प्रियतम अपनी ध्यान समाधि में देखरहे हैं:- प्रिया उनके पास खड़ी है, प्रियतम ने अत्यन्त विकल हो अपनी प्यारीका वसनाञ्चल, पकड़ लिया। वसनाञ्चलके स्पर्श मात्र से प्रियतम का हृदय उत्ताल आनन्द की तरङ्गों में उछलने लगता है। नेत्रों से प्रेम सलिल की धारा बह चलती है। अश्रुबिन्दु यमुना में झर-झर गिरने लगते हैं।

रसप्रवाह उत्ताल तरंगों में लहरा उठता है। भावसिन्धु रसराज को इसी प्रकार आत्मसात् कररहा है, जैसे सागर उमड़ती सुरसरि को। प्रियतम अत्यन्त प्रेमभरी वाणीमें गद्गद होकर कुछ कहना चाहते हैं, परन्तु प्रेमातुर हुए कह नहीं सकते, अवश हो जाते हैं। प्रियतम की भगवत्ता डूब जाती है, परिपूर्ण रसमें। भावाभिभूत प्रेम-आर्त्त हो उठते हैं, वे। सम्पूर्ण आत्मनिवेदन की प्रतिमा बने मनाना चाहते हैं, वे अपनी प्राणप्यारी को। मिश्रीघुली शब्दावली में अपने हृदय का समग्र प्रेम-रहस्य प्रियतम अपनी रसमयी प्रिया के सम्मुख निवेदनकर

देना चाहते हैं। लो, प्रियतम ने अपनी प्रिया का अंचल अपने स्वयं के गलेमें लपेट लिया, लपेटकर गाँठ लगाली, मानो कहरहे हों–हा प्रिये ! हा प्राणेश्वरी ! अपने अंचल से फाँसी देकर मेरे प्राण भले ही लेलो, परन्तु अपने चरणों की छाया से पृथक् कर विरह की दारुण अग्नि में जलाओ मत। कैसी दीनता उनके मुख पर व्यक्त है। कितनी उत्कट मिलनेच्छा है, प्रियतम में। विरह का कैसा सुदारुणभाव अभिव्यक्त हो रहा है उनके चेहरे पर।

सारिका—"हे शुक, सच्चिदानन्दस्वरूप, निजमहिमा में ही नित्य स्थित, नित्य अकाम, प्रियतममें कैसा विलक्षण काम व्यक्त हो रहा है। जो ममता रहित हैं, वासना राग से सर्वथा सर्वथा विवर्जित, नित्य अविकारी हैं जो, वे कैसे विकारग्रस्त, वासना मंडित हो रहे हैं। प्रियतम का प्रिया-मिलन-भाववेग यमुनाजल में प्रिया को खड़ी कर देता है। जहाँ सुबल के लिये एवं अन्य सभी के लिये मात्र यमुना है, प्रियतम यमुना प्रवाह में कहीं डूब न जावें, इस चिन्ता से सब व्याकुल हैं, वहाँ प्रियतम के लिये यमुना का अस्तित्व ही पूर्णतया लुप्त है। यमुना के स्थान पर भावमयी रसाभिव्यक्ति है, प्रिया की। यह प्रियतम के द्वारा प्रिया की मनोमयी कल्पना नहीं है। मन तो मलिन माया है। प्रियतम रसराज में मलिन माया का अस्तित्व ही कहाँ ? प्रियतम के भाव द्वारा रसमयी प्रिया सत्यतः, परिपूर्ण सत्यतः प्रकाशित हैं। सुबल के लिये प्रिया,राधा का कहीं कोई अस्तित्व नहीं। भावसिन्धुने सुबलके चिदांशको, उसकी चिद्‌भूमि के तटको स्पर्श ही नहीं किया। सुबल के लिये प्रियतम भावाविष्ट हैं। वह उनके यमुना में प्रवाहित देह को उठाकर कदम्ब के नीचे ले आया है, परन्तु प्रियतम श्रीकृष्ण के लिये न कदम्ब है, न यमुना प्रवाह है, न उनका यमुना में गिरना है, उन्हें इस बाह्यभूमि का ज्ञान ही नहीं है। उनकी वृत्तिमें तो प्रियाका रूप मूर्त्तिमान सत्य है,जो अपरोक्ष है, प्रत्यक्ष है। प्रियतम की चिद्‌भूमि में प्रिया,प्रियाके अंग, अवयव, उसके वस्त्र, लहँगा, दुपट्टा प्रत्यक्ष हैं, अपरोक्ष हैं, सत्य हैं।

बताओ शुक, इस दृष्य प्रिया के न होने पर भी प्रियतम को प्रिया कैसे पूर्णतया उपलब्ध हो गई। आओ, पुनः चलें प्रियतम के चिदाकाश में और उनके परम मनोहर प्रेमकी झाँकी देखें। हे शुकराज, जिन प्रियतम श्रीकृष्ण पर सकल सुर, ऋषि, मोहित हैं, वे अपनी ही भावमूर्ति प्रियाके एक-एक गुण पर कैसे न्यौछावर हो रहे हैं। जिनके अंग की एकमात्र झलक पर कोटि-कोटि शतकाम

न्यौछावर हैं, वे अपनी भावप्रतिमा के मुख सौन्दर्यकी झाँकी देखने किस प्रकार व्याकुल हो अंचल थामे खड़े हैं। जिनके चरणों का आश्रय लिये बिना सर्वदेश और सर्वकाल में भी किसी को विश्राम नहीं मिलता, वे प्रियतम अपनी प्रियाको देखे बिना क्षणभर भी विश्राम नहीं पारहे। जिनको न कभी भूख लगती है, न प्यास, वरंच जिनके चरणों की नख चन्द्रिका का दर्शन करनेवाले तक की भूख प्यास सदा सदाके लिये मिट जाती है, वे अखिल ब्रह्माण्ड नायक प्रियतम श्यामसुन्दर अपनी प्रियाके अधरामृत प्रसादार्थ तृष्णातुर, लालायित होरहे हैं। धन्य हैं, रसमय, रसरूप, रसिक, प्रियतम, और उनका प्रेम रस पारावार। धन्य हैं, प्रेम-सुधा-रस-पान-निरत प्रेम-साकार-विग्रह श्यामसुन्दर और उनकी प्राणप्यारी राधा।

देखो शुक, यहाँ न कुञ्ज हैं और न ही निकुञ्ज। परन्तु प्रियतम के भाव ने अनेक सुन्दरातिसुन्दर कुंजों का निर्माण कर लिया है। कैसे सुखद निकुञ्ज हैं। प्रिया और प्रियतम गलबहियाँ दिये निकुंज में प्रवेश कररहे हैं। सर्वत्र भाव ही भाव है। भाव ही रसरूप अनन्त सुखद, परम सुन्दर दृश्यों का निर्माण कररहा है। कैसा प्रेम चूरहा है, प्रिया प्रियतमकी दृष्टि से। जिन प्रियतम श्यामसुन्दर के नयन सदा औद्धत्य प्रकाश करते रहते हैं, वे आज लज्जावश, संकोचवश भूमि में गड़े जारहे हैं। देखो, शुक, प्रियतम ने प्रिया को एक वेदी पर आसीन करा दिया। कैसी सुन्दर रत्नमयी वेदी है। इस पर कैसा सुखद स्वर्णखचित मखमल का आसन बिछा है। रसमयी प्रिया कैसी सुखसे आसीन हैं, उसपर। और लो, प्रियतम चले अपनी प्रिया का शृंगार करने। सर्वप्रथम प्रियतम की दृष्टि जाती है, अपनी प्रियाके चरण तालुओं की ओर। कैसे सुखद हैं मेरी प्यारी के चरण। कितने सुशीतल, कितने सुकोमलतम हैं ये। प्रियाके चरणोंकी अतिशय कोमलता देखकर प्रियतम की भावधारा बह उठती है।

हे शुकराज! तुमने शुकमुनि द्वारा वर्णित गोपाङ्गनाओं की भावअर्चा की पंक्तियाँ तो सुनी ही हैं, श्रीकृष्ण के गहनवन में चले जाने पर उनके सुकोमल चरण चिह्नों को पृथ्वी पर अंकित देखकर गोपियाँ परस्पर कहती हैं—

यत्ते सुजात चरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रियदधीमहि कर्कशेषु।

तेनाटवी मटसि तद् व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥

परन्तु अब अपनी प्यारी के सुकोमलतम चरण देखकर प्रियतम के मन में क्या क्या भाव आते हैं, तनिक इसका भी अवलोकन करो। जो भावसत्ता गोपियों के रसमय मनमें प्रियतम श्यामसुन्दर को वन में भटकता पाकर वाणी रूपमें प्रकट हुई, और अनजाने ही जिससे शुकमुनि की चिद्‌भूमि प्रतिचित्रित हो अभिव्यक्त कर गई, वही प्रेम भावसत्ता प्रियाके सुकोमलतम चरणों के दर्शन से प्रियतम, रसिक शेखर रसराज की चिद्‌भूमि को किस प्रकार अलंकृत कर रही है, और मेरी चिद्‌भूमि उससे किस प्रकार प्रतिचित्रित हो रही है, इसे भी देखो। शुकराज ! भावसत्ता एक ही हैं, लहरें मात्र अनेक हैं।

सारिका की वाणी सुनता सुनता ही शुक एकाग्र होकर डूबजाता है और प्रियतम श्यामसुन्दरके मनकी प्रेमवृत्तियाँ उसके अनुभवमें अंकित होने लगती हैं-

प्रियतम श्यामसुन्दर सोच रहे हैं— "कितने सुकोमल हैं मेरी प्यारी के चरण, कैसे सुकोमलतम हैं उसके अंग-प्रत्यंग, और मेरी प्यारी के अंगों की तुलना में कितनी कठोर है, मेरी हृदय-भूमि। फिर भला इस कठोर भावभूमि में मेरी प्रियाका अवतरण, आगमन कैसे संभव हो। कितना कष्ट पारही होगी मेरी प्रिया, मेरी कठोरतम हृदय भूमि को स्पर्श करके। अवश्य ही मेरी विरह पीड़ा देखकर अति संकोच और करुणावश ही वह मेरे हृदय में छविमान होरही है। फिर जब मेरे शरीर का सुकोमलतम अंग हृदय ही इतना कठोर है तो अपने इन कठोर से कठोर हाथों से उसके चरणों को स्पर्श करना तो उसपर घोर अत्याचार ही है। तब कैसे मेरी प्रेम प्रतिमा को सजाऊँ। किस साधन से इसका शृंगार करूँ। कौन सी साड़ी इसके अंगों में धारण कराऊँ, कौनसा आभूषण पहनाऊँ, कहाँ इसे आसीन करूँ। यह पार्थिव वेदी जिसपर मैंने अपनी प्रियाको आसीन कर दिया है,यह तो इसके बैठने का उपयुक्त आसन कदापि नहीं है। मैंने कितनी भारी भूलकी। मेरी प्रिया तो मुझे सुखी करने मेरे आग्रह से बैठ गई, इस वेदी पर। परन्तु इस मणिमय वेदी के कठोर मणिकोण मेरी प्रियाके सुकोमलतम अंगों को गड़कर कितनी पीड़ा दे रहे होंगे।"

प्रियतम विधाता से प्रार्थना करने लगते हैं— "हा विधाता, मुझ पर

दयाकर, मेरे हृदय की इतनी सुकोमल रचना करदे जिससे मैं मेरी प्रिया को अपने हृदय पर सुखसे आसीन तो करसकूँ।" और प्रियतम का भाव पलटा। मानो सचमुच ही विधाता ने उनकी प्रार्थना सुनली और उनकी हृदय भूमि, भाव भूमि को परम सुकोमलतम बना दिया। अब वह प्रिया की निवास स्थली बनने के योग्य होगयी। प्रियतम उत्फुल्ल मनसे पुनः अपनी प्रियाकी ओर देखते हैं।

"अहा, कैसी सुकोमल हैं उनकी प्रिया। और तभी प्रियतम ने अपने हृदय को भी इतना तरल सुकोमल बना पाया मानो उनका हृदय प्रवाहित होती हुई यमुना हो। और सचमुच प्रियतम को लगता है, यमुना है ही नहीं, वे ही तो प्रवाहित होरहे हैं, यमुनाके रूपमें अपनी प्रियाके सुखार्थ, उसे अपने सुकोमलतम स्पर्श से सुशीतलता देने। प्रियतम पुनः सोचने लगते हैं—"अहा, क्यों न मेरे देह का सुकोमलतम पृथ्वी तत्व ही व्रज भूमि बनजाये जिससे जहाँ जहाँ मेरी प्रिया चरण रखें, मेरा सुकोमलतम पृथ्वी तत्व ही उनके चरणों की वन्दना कर सके। अहा, क्यों न मेरा सुकोमलतम देहगत आकाश तत्व ही आकाश को आत्मसात् करले, जिससे प्रिया को अत्यंत रसमय छाया देसके। अहा, क्यों न मेरा देहान्तर्गत वायु तत्व ही यह वायु बनजाय, जिससे श्वासप्रश्वास द्वारा भी मैं अपनी प्रियाके रसमय हृदय में प्रवेश कर पाऊँ। क्यों न मेरा देह गत जल-तत्व ही यमुना बनजाय, जिससे मेरा प्रेमरस मेरी प्रिया पूर्ण तृप्ति से पान कर सके।" और सचमुच ही मानो प्रियतम ही आकाश बनगये, प्रियतम ही वायु बनगये, प्रियतम ही तेज, प्रियतम ही जल एवं पृथ्वी।

देखा शुक्रराज, भाव और रस की गंगा कैसी एक ही साथ सम्मिलित प्रवाहित हो रही है। भाव उमड़ रहा है और रस अपनी सेवा से भाव को कैसा सजा रहा है। प्रियतम के भावानुसार किस प्रकार रस सब साज सज्जा से सज्जित हो तुरन्त सेवार्थ प्रस्तुत हो जारहा है। देखो, देखो, प्रियतम अनुभव कर रहे हैं, वे ही अवकाश हैं और अपनी प्रिया को सर्वत्र सब समय छाया किये हैं। व्रज भूमि का आकाश आकाश है ही नहीं, मानों प्रियतम ही हैं। और शुक्र, परम सत्य भी तो यही है। परम सत्य रस ही है, भाव ही है। दृष्य है ही नहीं। दृष्य की सत्ता ही नहीं है। रस ही भावरूप दृष्य है। भाव सेवार्थ दृष्य है। इसे तुम सत्य, सत्य मानो। कैसा पूर्ण मिलन प्रिया का प्रियतम से और प्रियतम का प्रिया से हो रहा है। सम्पूर्ण अवकाश ही प्रियतम। प्रिया के अन्तर का

चिदाकाश भी प्रियतम और वाह्याकाश भी प्रियतम। प्रिया का अहंकार भी प्रियतम, और ऊँकार भी प्रियतम। प्रिया का अन्तःकरण भी प्रियतम, उनका बहिःकरण भी प्रियतम। प्रिया का अन्तर्जगत भी प्रियतम और बहिर्जगत भी प्रियतम। प्रिया का देह भी प्रियतम और देह की आधार भूमि भी नीली नीली, श्यामल श्यामल, मात्र श्यामल कलेवरा। प्रिया का श्वास प्रश्वास भी प्रियतम और सुखद सुशीतल वायु भी प्रियतम, कैसा पंखा झल रहे हैं, प्रियतम अपनी प्रिया के अंगों में। सूर्य एवं चन्द्र भी प्रियतम और प्रिया की आभा भी प्रियतम। और प्रियतम अपने सम्पूर्ण स्नेह की उबटन बनाकर प्रिया के अंग अंग में लगा रहे हैं। इस उबटन को लगाकर ही प्रिया स्नान करती हैं, प्रियतम-हृदय की बहती भाव यमुना के जल में। प्रियतम ही तो नहला रहे हैं और स्वयं भी नहा रहे हैं। और प्रियतम गारहे हैं :—

इसी हेतु स्नान को जाता, बैठा रहता यमुना तीर।
तेरी रूप माधुरी के दर्शन हित रहता चित्त अधीर॥

यही प्रियतम हृदय की भाव यमुना व्रज के अणु अणु को अपने रस से सिंचित कर रही है। यही तो व्रजमण्डलका अस्तित्व है,उसका प्राण है,उसकी आत्मा है, उसका अन्तर और बाह्य कलेवर है। तो रस स्नान कर रहा है, भाव-यमुनामें। रोज ही स्नान करता है। एक बार नहीं, त्रिकाल स्नान करता है। और त्रिकाल तो मात्र सर्व काल का प्रतीक है। रस तो सर्व काल भाव यमुना में ही डूबा रहता है। तो रसराज प्रियतम भाव के तीर बैठे ही रहते हैं। परन्तु स्वयं रस में इतनी सामर्थ्य थोड़े ही है कि भावयमुना में अपने आप डूबजाय, डुबकी लगा ले। रसराज को भाव के उच्छलन की प्रतीक्षा करनी पड़ती है, और इसीलिये प्रियतम बैठे हैं, भाव तीर पर स्नान के हेतु आये हैं, चित्त अधीर किये प्रिया रूप माधुरी, भावरूप माधुरी के दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। न जाने भाव कब उमड़ेगा ? नित्य उमड़ता ही रहता है। तट पर आने पर्यन्त की देर है, फिर प्रतीक्षा प्रतीक्षा नहीं है। वह प्रतीक्षा भी स्नानरूप ही है। डूबने की भूमिका डूबना ही है। सीढ़ी पर जल का स्पर्श किंवा आमस्तक जल में स्नान दोनों स्नान ही हैं। भावजगत में अल्प और पूर्ण कुछ है ही नहीं। अल्प और पूर्ण की परिभाषा प्राकृतिक जगत का परिभाष है। भाव जगत में किसी को

आंशिक प्राप्ति, अल्प प्राप्ति होती ही नहीं। भाव सब ओर से पूर्ण है। उसका अल्पतम भी पूर्णतम है। उसका सीकर भी पूर्ण समुद्र है। बस, तट पर, किनारे पर आकर बैठ जाने भर की देरी है। किनारे पर आया अतृप्त, अपूर्ण रह ही नहीं सकता। भाव संस्पर्श से युक्त वायु की शीतल बयार भी स्पर्श कर गई तो समझलो पूर्ण स्नान हो ही गया। भाव सिन्धु की लहरें कोई तट से बँधी, सीमित थोड़े ही हैं। भावका तट है ही नहीं। तट तो भावरूप ही, रसरूप ही, प्रतीत मात्र होता है। समुद्र का फेन और उसकी लहरें ही मानो तट के समान प्रतीति उत्पन्न कर देती हैं। तट कहाँ है ? भाव ही भाव है। किनारा तो तब हो जब भाव के अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता हो । जब भाव ही भाव है, अभाव की सत्ता ही नहीं, तब तट कैसा ? भाव ही भाव का तट है। अतः लहरें बँधी नहीं हैं किसी तट से। प्रियतम हृदय रूप भावमयी यमुना का प्रिया हृदय रूप भाव ही किनारा है, वही तट है, और घाट स्थित कदम्ब का वृक्ष भी वही है। फिर प्रिया प्रियतम अलग कहाँ। एक भाव ही तो है।

हाँ तो, प्रियतम लीलानन्दमयी प्रिया का दर्शन करने, उनकी रूप माधुरी के दर्शन हित, अधीर चित्त प्रियतम भावयमुना के तट पर स्नानार्थ आये हैं न, और स्नान कर रहे हैं। प्रियाके संग सर्वकाल प्रियतम ही स्नान कर रहे हैं। प्रिया की रूप माधुरी किसी विशेष शरीर की रूप माधुरी थोड़े ही है, कि झट मँगनी और पट ब्याह हो जाय। अहो, नन्दनन्दजी महाराज, आपको जब लक्ष्मी रूप विभूति प्राप्त करने के लिये कछुआ बनना पड़ता है, फिर अपनी पीठ पर मंदराचल रखना पड़ता है एवं वासुकि नाग की रस्सी बना कर कितने काल देवता और असुरों द्वारा अपनी पीठ क्षत विक्षत करानी पड़ती है, तब न लक्ष्मीदेवी के दर्शन होते हैं। तो नाथ, क्या प्रियाकी रूप माधुरी कोई यशोदा मैया द्वारा दियां मक्खन का लौंदा है जो मुख पर रखते ही सटक जावेंगे।

प्रियतम निज हृदय-भावयमुना में अपनी प्रिया को स्नान करा रहे हैं। प्रिया के अंगों अंगों में उन्होंने उबटन लगायी है, स्नेह की, प्रेम की, भाव की। नेत्रों की स्नेह दृष्टि रूपी इस उबटन से प्रिया के सब अंग मर्दित कर रहे हैं, वे! सर्व प्रथम होता है प्रभात का पूर्वाह्न स्नान। पूर्वाह्न स्नान का जल है, करुणा विशिष्ट भावजल। करुणा विशिष्ट भावजल से प्रिया सचैल स्नान करती हैं। प्रिया के नव-यौवन का यह प्रथम कैशोर स्नान है। यही प्रिया की नव वयस् है, मुग्धभावावस्था है, और यही उनका पूर्वराग है। तो इसी स्नान के लिये प्रियतम

यमुना तीर पर आये हैं। यमुना के तट पर अत्यंत अधीर चित्त किये प्रिया की रूप माधुरी के पानार्थ आतुर हैं।लो प्रिया का शृंगार प्रियतम कर रहे हैं। स्नान करके प्रिया निकली हैं। प्रियतम के प्रेम जल में प्रथम स्नान करके, नववयस् की रस भीनी आभा से, उसकी मधुरिमा से, दमकती प्रिया के रूप को प्रियतम निहारने लगे। अहा कैसी नैनों की चंचलता है, निर्मल उज्ज्वल हास्य है। प्रियतम मनसोन्मादकारी श्रीअंग सौरभ रोम रोम से प्रसरित हो रहा है। कैसी श्रुतिमनोज्ञ वाणी है और कैसी करुणापूर्ण दृष्टि प्रिया अपने प्रियतम पर डालती है। इस दृष्टि में पूर्ण लज्जा है, एक ही साथ विदग्धता है, लज्जाशीलता है, एवं अपने प्रियतम के प्रति, उनके प्रेमके प्रति गौरवशीलता है। अब प्रियतम क्या उपहार दें, प्रिया को। कौनसा आभूषण समर्पित करें, अपनी प्रिया को। प्रियतम के पास सर्वोत्कृष्ट है ही क्या? उनका तन ही तो। वही सर्व है सुन्दर तन है, असमोर्ध्व सौन्दर्य का एकमात्र आगार, सर्वमनहारी सौन्दर्य का आगार, पुंजीभूत सौन्दर्य राशि ही तो प्रियतम का तन है। और वही तन प्रियतम अपनी प्यारी को समूचे का समूचा दे डालते हैं, न्यौछावर कर देते हैं अपनी प्रिया पर। और प्रिया अत्यंत लज्जा से अवनत हुई अपने प्रियतम का यह उपहार स्वीकार कर लेती हैं। नीली साड़ी के रूप में उसे पहन लेती हैं। साड़ी तो प्रियतम ने प्रिया को पहनादी, परन्तु कंचुकी भी चाहिये। अब प्रियतम के पास क्या है देने को? क्या दें प्रियतम? किस वस्तु से अपनी भाव प्रिया का हृदय आच्छादित करें। प्रियतम के पास तन के अतिरिक्त उनका प्रणय भाव से भरा मन है। स्नेह के बाद मान एवं प्रणय रूप में भाव का ही परिवर्तन होता है। अतः मान एवं प्रणयके संकल्प-विकल्पसे युक्त भावरूप मन ही प्रियतम अपनी प्रियाको कंचुकीकेरूप में धारण कराते हैं। अपना अनुराग ही अब प्रियतम उन्हें ओढ़नी रूप में उढ़ा देते हैं। अपना अंग सौन्दर्य, सम्पूर्ण सौन्दर्य प्रियतम चन्दन और केशर बनाकर प्रिया के अंग पर अर्पण कर देते हैं। इस चन्दन और केशर में अपनी माधुर्यमयी स्मितकान्ति कर्पूर के रूप में मिला देते हैं। अहा, निजाङ्ग सौन्दर्य में स्मितकान्ति को मिला कर उसका केशर कर्पूर प्रिया विलेपित कर रही हैं। प्रियतम अपनी उज्ज्वल हास छटा ही प्रिया के अंगों पर अब कस्तूरी के रूप में लगाते हैं। अपना नाम एवं गुण श्रवण ही उनके कानोंमें कर्णभूषण रूपमें पहनाते हैं। और अपने सब धीराधीरोदात्त नायकत्व के गुण ही उनके अंगों में रेशम वस्त्र के रूप में लपेटते

हैं। अपनी प्रिया के प्रति उनकी रति है, उसे ही अधरोंमें लालिमा रूप में सजाते हैं, और अपने प्रेम की नायकोचित चतुराई को ही उनके नेत्रों में अंजन रूप में आँजते हैं। इसी प्रकार अपने ही सम्पूर्ण अंग भाव से प्रिया का शृंगार करके प्रियतम प्रिया को अपने ही हृदय रूप भाववेदी पर प्रतिष्ठित करते हैं। तब प्रिया-रूप-माधुरी का अप्रतिम दर्शन, उसकी झलक मात्र उन्हें मिलती है। और देखो शुक, प्रियतम को देखो, कदम्ब वृक्ष के नीचे बैठे अपनी प्रिया का ध्यान कर रहे हैं, और उनके मुख से गीत ध्वनि, गीत शब्दावली निकल रही है:—

इसी हेतु रहता कदम्बतल करता तेरा हो नित ध्यान।
सदा तरसता चातक की ज्यों रूप स्वातिका करने पान।

प्रियतम ध्यानरत हैं। उन्हें वाह्य जगत का सर्वथा ज्ञान नहीं है। अंग अंग पर अप्रतिम प्रेम माधुरी लहरा रही है, और उनके सम्मुख अपनी प्रिया की छवि है।

श्वेत चम्पाकुसुम के समान श्वेत वर्ण है उनकी प्रिया का। मुख मानो शारदीय शशिका गर्व हरण कर रहा है। असंख्य चन्द्रमाओं की कान्ति के सदृश झलमल करता, रूप दिपदिपा रहा है। प्रस्फुटित कमल हो, इस प्रकार नेत्रद्वय की शोभा है। विम्बफल के सदृश अरुण अरुण अधर हैं। कुन्द कुसुमों की अवलि हो इस प्रकार स्वच्छ दंतपंक्ति है। और उसमें प्रियतम रूप की, प्रियतम असमोर्ध्व सौन्दर्य की साड़ी लहरा रही है। उन्नत उरोज हैं, और उनपर प्रणय रूप प्रियतम मनकी कंचुकी पहने हैं, वे। प्रिया दिव्य, रत्नमय विविध आभूषणों से भूषित, प्रथम कैशोरवयसा, मुग्धा, अल्पवर्षीया बाला परिलक्षित हो रही हैं। प्रियतमकी सम्पूर्ण इच्छाएँ, कामनाएँ ही, प्रियतम 'काम' ही इनकी वेणी है जो इनके नितम्ब तक सम्पूर्ण अंगों को ढँके है। मल्लिका और मालती मालाओं रूपी प्रियतम की अभिलाषाएँ ही इन प्रिया की वेणी में पुष्प रूप में गुम्फित हैं। अङ्ग प्रत्यङ्ग कितना सुकुमार है। शोभा एवं श्री का मानो समुद्र ही लहरा रहा हो, प्रियतम चिदाकाश में ये लहरा रही हैं। ये शाश्वत यौवना प्रिया प्रियतम हृदय-रूप आसन पर नित्य विराजित हैं।

प्रियतम अपनी प्रिया का ध्यान कर रहे हैं। उनके ध्यानपथ में प्रिया भरी हुई हैं। प्रियतम के अन्तर मन में इतनी उत्कंठा है, कि इस उत्कंठा के कारण प्रिया की ध्यान छबि मानो स्वाति की बूँद की उपमा ग्रहण कर रही है।

प्रियतम चातक बने उसे पान कर रहे हैं, परन्तु कितना ही पान करें, चातकवत् प्रियतम की उत्कंठा इस ध्यानरूपा स्वाति की बूँद से कभी भी नहीं बुझने वाली है। वह तृष्णा और तीव्र ही होती जारही है। अपनी भाव प्रतिमा प्रिया को अपने हृदय में बैठाये प्रियतम मानस नेत्रों से उनके मुख सरोज का रूप रस पान करते हैं। मानस कर्णेन्द्रियों से अपनी प्रिया की वचन माधुरी सुनते हैं। उनके प्रेम, शील, प्रेमगुणों की माधुरी से उनका चित्त अभिभूत हो जाता है। वे चित्त ठगाये से, चित्त चुराये से मौन मूक हो जाते हैं। उनके मुख से गान की पंक्तियाँ निकलती हैं--

तेरी रूप-शील-गुण माधुरि मधुर नित्य लेती चित चोर।
प्रेमगान करता नित तेरा, रहता उसमें सदा विभोर॥

हे शुकराज! प्रियतम की शोभा तो देखो! कदम्ब वृक्ष के नीचे बैठे हैं। यमुना जल में भीगा कलेवर, भीगा पीताम्बर है। नेत्रों से प्रेमाश्रु झर रहे हैं। प्रेम जनित कम्प नामक सात्विक भाव से कभी सारा शरीर काँप जाता है, मानो जोर की मेघगर्जना से लतावल्लरियाँ काँपती हों। कभी उन्हें रोमांच हो आता है, और उनके सब रोम खड़े हो जाते हैं। कभी हृदय में अत्यंत आनन्द की लहरें उठने लगती हैं, और वे 'प्राणेश्वरी', 'प्राणेश्वरी' कहकर हाथ उठाकर नाचने लगते हैं। अकेला सुबल उन्हें किसी प्रकार संयमित किये है। कभी अत्यंत विरह-विकल हो, वे धूलि लुंठित होने लगते हैं। कभी वे गर्म गर्म श्वास छोड़ते हैं, और कभी एकदम शीतल शान्त हो जाते हैं। कभी उन्हें समस्त वृक्ष, अपनी प्रिया और उनकी फैली शाखायें प्रिया की दीर्घ भुजायें दिखने लगती हैं। कभी यमुना की कलकल ध्वनि और उसपर बिहार करते कारण्डव पक्षियों की काकली उन्हें अपनी प्रिया के आगमन की संकेत रूपा पदध्वनि और नूपुरों की झंकार प्रतीत होती है। कभी उन्हें लगता है, मेरी प्रिया की रूप सुधा को चुराकर चन्द्रमा भाग रहा है। कभी वे सोचने लगते हैं, मेरी प्रिया की सुषमा को चुराकर ही यह प्रकृति सुन्दरी अपना श्रृंगार कर रही है। कभी वे सुबल को लक्ष्य कर बोल उठते हैं— हे सुबल! जो रूप सौन्दर्य अनन्त है, जिसमें अनन्त अतुलनीय उत्तुंग सौन्दर्य लहरें उठती हैं, जिसके एक कण के कोटि कोटि भाग पर सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्डों का सारा रूप सौन्दर्य, न्यौछावर है, उस विशाल रूप राशि को, हा सखे, मैं अपने छोटे से हृदय पटल पर कैसे अंकित करूँ? कैसे

मेरी प्यारीके एक एक अवयवको अपने मन में, उरमें सजाऊँ? अहा, उनके मोहन रूप की स्मृति ही मुझे द्रवित कर दे रही है। इसी प्रकार वे कभी अनन्त विकल हो उठते हैं, और कभी अपरिमाण सुख सागरमें निमग्न हो जाते हैं। इस प्रकार अपरिमित प्रकारों से प्रियतम प्रिया समुद्र में गोते लगारहे हैं। कभी उनके नेत्र खुलते हैं और खुले ही रहजाते हैं, उन्हें दृष्य रूप में बाहर प्रिया ही प्रिया भरी दिखती हैं, कभी नेत्र मूँद लेते हैं तो ऐसे जैसे वे नेत्र खोलना जानते ही नहीं। कभी उन्हें प्रिया अपने मन, चित्त, आत्मा से और सम्पूर्ण अंग अंग से उनका सुख विधान करती दिखती हैं, और कभी प्रिया उनसे मानकर रूठी हुई निष्ठुर हृदया बन जाती हैं। कभी प्रियतम अपनी प्राणकलेवरा, प्राणों की आधार प्रिया के मनोहर अनुपम शोभामय दिव्य रूप गुणों का गान प्रारंभ कर देते हैं और उन्मुक्त कण्ठ से गाने लग जाते हैं।

हे शुकराज! दर्शन किये तुमने प्रियतम मुकुटमणि प्रिया के। बताओ इनका शरीर ,इनका चित्त, इनकी इन्द्रियाँ, इनकी बुद्धि, और अहंकार क्या प्राकृत देह है क्या? किसी भी प्राकृत और अप्राकृत भगवदीय देह का अवतार वे होतीं तो उनका अवतरण कहीं न कहीं होता तो। किसी भी दृष्य से उनका तादात्म्य तो होता। वे तो मात्र प्रियतमके द्वारा ही गठित रूपमयी हैं। प्रियतम के प्रेम द्वारा निर्मित उनके ही आह्लाद रूप ह्लादिनी शक्ति का सार मात्र हैं। वे प्रियतम के हृदय में निवास करने वाली परम विशुद्ध, परिपूर्ण, सबको पवित्र करने वाली मधुर प्रेम सुधा की धारा मात्र हैं। जो प्रियतम के सर्वस्व को ही सदा सुधाप्लावित करती रहती हैं। प्रिया प्रियतम-आनन्दलीलामयी हैं। अन्यत्र उनकी लीला का, उनके रूप का, उनके अस्तित्व का, और भावरूप प्रेमका कहीं प्रकाश ही नहीं है। जो प्रियतमके अंग स्वरूप होते हैं, उन्हें आत्यन्तिक प्रिय होते हैं, वे भाग्यवान ही इनकी प्रेम छटाकी गंध पा सकते हैं। प्रिया का जीवन मात्र प्रियतम सुखमय है। हे शुकराज! प्रियाका अस्तित्व ही प्रियतम प्रेममय है और प्रियतम स्नेह की हीं वे मात्र स्वरूपा हैं। इनकी सौन्दर्य, माधुर्य रूप छटासे प्रियतमका मन सदा उन्मत्त बना रहता है। ये प्रियतम प्रेम गुणगणों की ही निधि हैं। इनका सबकुछ मात्र प्रियतम के लिये ही है। ये प्रियतम में ही उत्पन्न होती हैं, प्रियतम में ही रमण करती हैं, और प्रियतममें ही नित्य विलय रहती हैं। यही इनका जन्म, स्थिति और तिरोधान है। हे शुकराज, सामरहस्योपनिषद् में कहा गया है:—

अनादिरयं पुरुष एक एवास्ति। तदेवरूपं द्विधा विधाय समाराधनतत्परोऽभूत्। तस्मात् तां राधां रसिकानन्दां वेदविदो वदन्ति।

वह अनादि पुरुप एक ही है। परन्तु अनादि काल से वह अपने को दो रूपों में बाँटकर अपनी आराधना में तत्पर होता है। इसीलिये (उसके दूसरे रूप) उस राधा को वेदज्ञ पुरुप 'रसिकानन्द' कहते हैं

तो शुकराज, ये श्रीप्रिया मात्र प्रियतम का आनन्द ही हैं। उनका भाव ही हैं। राधातापनी उपनिषद् में आता है–

येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत।

जो ये राधा और जो ये कृष्ण रस के सागर हैं, वे एक ही हैं पर लीला के लिये दो रूप बने हैं।

हे शुकराज! न भाव प्रिया है और न रस प्रियतम। न रस ही प्रिया है और न भाव प्रियतम। प्रियतमकी प्राण राधा हैं और राधाके प्राण प्रियतम हैं— यह भी कहना प्रलाप ही है, क्योंकि भाव और रस दोनोंमें कोई प्राण नामक वस्तु होती ही नहीं। प्रिया प्रियतमकी एवं प्रियतम प्रियाके—यह कहना भी नहीं बनता। क्योंकि जब ब्रह्म विद् की दृष्टि में ही मैं, तू, मेरा, तेरा नहीं रहता तो प्रिया प्रियतम की दृष्टि में तेरा, मेरा, मैं, तू, रहे, यह संभव ही नहीं। प्रिया प्रियतम तत्त्व ब्रह्म दृष्टि से भी परा, अतीत है, परम विशुद्ध है। प्रिया प्रियतम में 'तू' और 'मैं' का भेद सूचित होना संभव ही नहीं। वे पूर्ण अभेद सत्ता हैं। रस और भाव पूर्ण अभेद भूमि हैं। ऐसी अभेद भूमि हैं जिसे कोई प्राकृतिक बुद्धि सोच ही नहीं सकती। फिर वाणी से उसे अभिव्यक्त कैसे करने का दुस्साहस करूँ– राधा राधा राधा।

पांचवाँ अध्याय (पूर्वराग)

सारिका –हे शुकराज, तुमने प्रियतम में महाभाव रूप पूर्वराग की झाँकी देखी। अब प्रिया में महाभाव का कैसा प्रकाश पूर्वराग में होता है उसे भी अनुभव करो।

शुकराज, अब तो तुम्हें यह प्रत्यक्ष ही अवगत हो गया होगा कि मेरा चिदाकाश ही सम्पूर्ण व्रजमण्डल है, गोलोक है, व्रजभूमि है, यमुना है, गिरिराज है, कुञ्ज है, निकुञ्ज है, और मेरा चिदाकाश ही प्रिया है, प्रियतम है। वही चिदाकाश ही महाभाव है, और महारस है। वही चिदाकाश जो मेरा है, वही प्रियाका चिदाकाश है, प्रियतमका चिदाकाश है, वही चिदाकाश, महात्मा नन्द का, यशोदाका, सुबलका, श्रीदामका, मधुमंगलका, गोपीका, गौका, ग्वालका, कीटका, एवं पतंगका है। एक ही अभेदभूमि, अभेदसत्ता है, जो सर्वत्र है, सर्वगत है और सर्वरूप है। यह दृष्य रूप सत्ता है ही नहीं, दृष्य रूप अनेक हैं ही नहीं। मात्र महाभाव है, महाभाव ही है। वही महाभाव, महासत्य, एकमेव सत्य है। वही महा आनन्द, एकमेव आनन्द है। वही महाज्ञान, एकमेव ज्ञान है। उसी महाभाव समुद्र की लहर ही यह पूर्वराग है।

यह प्रिया में व्यक्त नहीं होता है। प्रिया रूप ही है। यह प्रियतम में व्यक्त नहीं होता है, प्रियतम रूप ही है। यह मुझमें, तुझमें व्यक्त नहीं होता, यह मेरा, तेरा स्वरूप ही है। यह मेरा, तेरा, व्रज के पत्ते पत्तेका, आकाशका, वायुका, तेजका, जलका, और पृथ्वीका, सबका, भावरूप, अस्तित्वरूप, सत्तारूप, स्वरूप ही है। यह कोई अवस्थागत उन्माद नहीं है, जो प्रियतम में प्रिया के दर्शन से उदय हुआ हो, किंवा प्रियामें प्रियतमके दर्शन से उदय होता हो। हे शुकराज, प्रेम कोई आवेग नहीं है, जो कभी आता है और कभी शान्त हो जाता है, किंवा किसी आयु की विशेष अवस्था में आता है और विशेष अवस्था में नहीं आता। हे शुकराज, अभी अभी तुमने स्पष्ट देखा था कि न प्रियतम थे एवं न ही प्रिया थी। तुमने मुझसे पूर्वराग सम्बंधी प्रश्न किया और मैंने तुमसे कहा—"देखो, शुकराज!" बस, तुम देखने लगे—तो यह दृष्य न मेरे द्वारा उत्पन्न किया हुआ जादू था एवं न ही कोई दृष्टान्त। न मेरी माया थी, न ही कोई छल था, जो मैंने तुम्हारे चिदाकाश में अपने सम्मोहन द्वारा व्यक्त किया हो। यह दृष्य तुम्हारा एवं मेरा स्वरूप था जो लहरा रहा था। तुम प्रश्न पूछोगे, वह

यदि तुम्हारा स्वरूप ही था तो मेरे संकेतसे परिवर्तन क्यों हो जाता है ?तुम्हारा प्रश्न युक्तिसंगत हो सकता है। हे शुकराज ! आवरण इसी का नाम है। इस आवरण को उठाने की क्रिया कोई विरले प्रिया-प्रियतम के कृपा-पात्र ही कर सकते हैं। यही प्रिया।प्रियतम रूप मधुर माया है, जो सब पर आवरण रूप में पड़ी है। यह मात्र लीला संकेतानुसार, किसी लीला-पात्र के संकल्प से ही दृष्य समुपस्थित करती रहती है।

हे शुकराज ! प्रिया प्रियतम तो सर्वत्र हैं। व्रज के पत्ते पत्ते को प्रिया प्रियतम का रसास्वादन मिल रहा है। परन्तु सब के प्रिया प्रियतम अलग-अलग हैं। अभी अभी तुमने प्रियतमके चिदाकाश की प्रियाके, राधाके दर्शन किये थे ? परन्तु ये प्रिया प्रियतम मेरे और तुम्हारे ही चिदाकाशके प्रिया प्रियतम थे, मेरे और तुम्हारे ही चिदाकाश में अभिव्यक्त रस था, जो प्रिया और प्रियतम बनकर सरस रहा था। मेरे चिदाकाश में सत्तारूप जो प्रेम एवं भाव रसरूप था, वही प्रिया, प्रियतम, यमुना और उपवन बन कर, वही सुबल बनकर, सखियाँ बनकर लीला कर गया था। परन्तु हमारे ही चिदाकाश में सत्तारूप भाव की भी अनन्त रसरूप लहरें हैं, जिनका अभी तुम्हें एवं मुझे भी ज्ञान नहीं है। देखो, अब मैं संकल्प करने जा रही हूँ कि प्रियारूप महाभाव में उठती हुई पूर्वराग जनित लहरोंका आस्वादन मुझे और तुम्हें मिले। परन्तु शुकराज, ये प्रिया जो अभिव्यक्त होंगी उन्हें प्रियतमकी उस प्रेम अवस्था का, जिस अवस्था की लीला हम अभी अभी देख चुके हैं, वर्त्तमान में नित्य ज्ञान हो, यह आवश्यक नहीं। क्यों कि अघटन-घटना-पटीयसी लीलाशक्ति योगमाया का आवरण प्रिया पर भी उसी प्रकार है जिस प्रकार हम सभी पर है। हाँ, ये प्रिया यदि इस लीला को जानना चाहेंगीं, तो तत्क्षण योगमाया द्वार देंगी जिससे वे मेरे, तुम्हारे तथा किसी के भी चिदाकाश से संयोग कर उसके चिदाकाश में प्रकाशित इस लीला का ज्ञान अनुभव कर लेंगीं। परन्तु उनमें सब लीलाओं का नित्य ज्ञान सदा अभिव्यक्त रहे, यह आवश्यक नहीं। हे शुकराज ! सम्पूर्ण भावाकाश एक ही है, अनेक नहीं है, परन्तु वह शान्त नहीं है, अनन्त उच्छलित है, और अनन्त उच्छलित होने से, अनन्त लहरों से युक्त होने के कारण उसका इदमित्थं रूप किसी के भी सम्मुख व्यक्त हो ही नहीं सकता। सब उसकी लहरियों पर ही तो थिरक रहे हैं। फिर ये लहरें अनन्त एवं एक से एक इतनी उत्ताल हैं कि न तो उनकी संख्या गिनी जा सकती है, न गहराई मापी जा सकती है, एवं न उनकी

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

ऊँचाई और विशालता। बस, लहराते ही रहें, यही जीवन है। यही इस भाव-जगत की समग्र सृष्टि का नित्यजीवन है, अनन्त जीवन है।

हे शुकराज, जिस प्रकार चाहने पर प्रिया मेरे, तुम्हारे तथा किसी के भी चिदाकाश से एकात्म्य कर उसकी अन्तर्लीला का ज्ञान अनुभव करलेती हैं, उसीप्रकार मैं भी मेरी प्रियाकी कृपासे चाहने पर अपने संकल्प से ऐसा करने में समर्थ हूँ। इसीलिये जहाँ, जब, जिसको भी मैं अधिकारी समझूँगी, उसका आवरण, तत्क्षण यह कहकर कि "देखो शुक, देखो मयूर, देखो कपोत," दूर कर दूँगी। किसी का भी आवरण नष्ट होने पर वह, मेरे सम्मुख जो सत्य प्रकाशित हो रहा है, उससे एकात्म्य करके, उस सत्यका अनुभव कर लेगा। तो इसे न दृष्टान्त समझना और न ही मेरी माया। यह तो मात्र सत्यका प्रकाश है, एकमेव सत्यकी जाग्रति है। योगमाया द्वारा लीलाक्रम बनाये रखने के लिये यह शक्ति वैसे सदा संवरित रहती है।

हे शुकराज, जिन जिन ऋषियों ने ब्रह्म का अनुभव किया है, उन्होंने वेदोंमें उसे एक ही प्रकारसे, एक ही भाषामें वर्णित किया है। शाखाचन्द्रन्याय से ही सही, उनका संकेत ब्रह्मके सबंधमें एक ही प्रकार का है। परन्तु रसिकों के द्वारा किया गया प्रिया प्रियतमका वर्णन सबसे सर्वथा अलग ही मिलेगा। उसका कारण है। शुकराज! शान्त कोई रस नहीं है, न ही शान्त कोई भाव है। मायाकी अशान्तिसे विश्राम ही मात्र शान्तता है। यह ब्रह्म भाव भी हो, सो भी नहीं है। यह तो भूमि मात्र है, जिस पर ब्रह्मानुभूति प्रकाशित होने जा रही है। इसे भाव की भूमि भले ही कहा जाय। यह न रस है और न भाव ही। पूर्णतया शान्त होने पर प्रसन्नात्मा पुरुष जब न किसी के लिये शोक करता है, एवं न ही किसी की आकांक्षा करता है, जब वह सब भूतों में समभाव से एक ही आत्मा को देखने लगता है, तब उसे शान्त संज्ञा दी जाती है। हे शुकराज, यहतो उसकी साधनभूमि है। ब्रह्म कोई देखने की, जानने की वस्तु थोड़े ही है, जिसे वह सम मात्रसे देख सके। हाँ, इस शान्त अवस्थाके पश्चात उसे प्रियतम श्रीकृष्णकी परा भक्ति प्राप्त होती है। भक्ति उसे ही कहते हैं, जो विभक्ति को दूर कर दे। श्रीकृष्ण की पराभक्ति यही है कि साधक श्रीकृष्णके भावाकाशसे एकात्म्य कर श्रीकृष्ण ही बन जाता है। उसी समय वह प्रियाके, प्रियतमके और भाव एवं रसके यथार्थ स्वरूपतत्वको ठीक ठीक जान पाता है। यदि कोई सब भूतों में सम होते ही

अपनेको महासिद्ध मानने लग जावे तो यह उसका मात्र भ्रम ही है, जो उसे सिद्ध होने के अहंकारवश पतन की ओर ही ले जाता है, वह सत्य से दूर ही रह जाता है। हे शुकराज, भाव समुद्र का वास्तविक स्वरूप तो माधुर्य ही है, इसीमें पूर्ण स्वरूपानुभव संभव है।

जैसे व्योम तन्मात्रक है अतः अत्यन्त सूक्ष्म है। आत्मा की उपमा अत्यन्त सूक्ष्म होने से व्योमवत् कहकर समझायी जा सकती है। परन्तु इस व्योम में शब्द तन्मात्राका एक आवरण तो शेष है ही। यह व्योम ही अपने विकार मरुत में जब रूपान्तरित होता है तो उसमें शब्द तन्मात्रा के साथ स्पर्श तन्मात्रा का एक आवरण और बढ़ जाता है। अब यह व्योम ही जब वायु से भी विकारी होता है तो विकृत होकर यह तेज में परिणत हो जाता है। इससमय इसमें शब्द, स्पर्श के अतिरिक्त रूप तन्मात्रा और आवरित हो जाती है। इसी प्रकार व्योम ही जब जलावस्था को प्राप्त होता है तो इसमें शब्द, स्पर्श और रूप के अतिरिक्त रस का योग और हो जाता है। इसीप्रकार पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंधका योग हो जाता है। ज्यों, ज्यों विकारोंकी परम्परा बढ़ती जाती है, जैसे चेतन आत्मा का प्रकाश कम होता जाता है, उसी प्रकार भाव समुद्र से भी स्वरूपानुभवके प्रकाश में आवरण आते हैं। माधुर्यमें प्रियतम की अभेद सत्ता का ज्ञान निरन्तर बना रहता है।

हे शुक, प्रियात्व कोई रमणी भाव नहीं है। प्रियात्व मात्र प्रियतमतत्व का आस्वादक है। इसी प्रकार प्रियतम भी कोई रमण नहीं हैं। प्रियतम तत्व प्रेम का घन रूप, रसघन-विग्रह मात्र है, जो आस्वादनार्थ ही अभिव्यक्त होता है। वो प्रियतम प्रिया से पृथक् कोई तत्व हैं, ऐसी कभी, किसी को, कहीं, अनुभूति नहीं होती। प्रियतम तत्व को सर्वाधिक प्रत्यक्ष एवं अपरोक्ष अनुभव करने वाली प्रिया को भी किसी काल में, अवस्था में यह अनुभव नहीं होता कि मुझमें और मेरे प्रियतम में कोई विभाग रेखा खींची जासकती है, कोई दूरी, पृथकता संभव भी है। वे मेरे हैं, मैं उनकी हूँ, यह दूरी भी प्रिया प्रियतम में नहीं होती। क्योंकि मैं एवं तू, मेरा और उनका, यह भाव तो समत्व योग की साधनावस्था में ही निषेध हो जाता है। अतः प्रियतम मेरे हैं, यह मात्र वाणीका अनुकथन ही होताहै। माधुर्यमें तो पूर्ण आत्मसमर्पण होजाताहै, और जहाँ पूर्ण आत्म समर्पण होता है वहाँ तू ही तू रहता है, मैं ही मैं रहती है, वह ही वह, रहता है। 'तत्वमसि'

अपरोक्षानुभूति नहीं है, यह परोक्षानुभूति है। 'अहं ब्रह्मास्मि' भी अपरोक्षानुभूति है, कहा नहीं जा सकता। क्यों कि यहाँ भी 'मैं ब्रह्म हूँ' इस अनुभूति में 'मैं' पृथक् है। प्रियतम में तो 'मैं प्रियतम हूँ' इतना 'मैं' भी नहीं रहता। वहाँ तो प्रिया ही प्रिया होती है। इसी प्रकार प्रियतमा के लिये, प्रिया के लिये मात्र प्रियतम ही प्रियतम रहते हैं, अतः स्वरूपानुभव का, अपरोक्षानुभव तत्व का निरावरित अनुभव मात्र माधुर्य में ही संभव है। इसीलिये भावसमुद्रका पूर्ण रस मधुर ही है, अन्य कोई नहीं। यह मधुर रस ही जब ममता के आवरण से युक्त होता है तो वात्सल्य रस कहलाता है। मधुर रस में कोई आवरण है तो वह आस्वादनार्थ आत्मसमर्पण का ही है। प्रियतम रसास्वादनार्थ, प्रियतम प्रेमार्थ, प्रियतम सुखार्थ पूर्ण आत्मसमर्पण ही प्रियामें एक आवरण है। वात्सल्यमें इस आत्मसमर्पणमें थोड़ी कमी आती है, क्योंकि ममताकी वहाँ एक दीवार और खड़ी हो जाती है। इसीलिये संकोच रहित ममता का ही नाम वात्सल्य है। सख्य में निस्संकोच ममता नहीं रहती, संकोच सहित ममत्व रहता है। संकुचित ममत्व होने से आत्मसमर्पण पूर्ण नहीं होता। ममता में भी आत्मसमर्पण में कमी आजाती है, क्यों कि जब मैं हूँ तब न ममता है, मेरे हैं। एवं जहाँ ममता ही संकुचित हो गई, वहाँ तो 'मैं' और अधिक प्रगाढ़ हो गया। इसलिये सख्य में आत्मसमर्पण अपूर्ण है, अहं की दीवारें अधिक मोटी हैं और स्वरूपानुभव और कम है। इसी प्रकार दास्य में सेवा सुख का भाव बहुत बढ़जाता है। अतः वहाँ 'सेवन' सुख बढ़जाने से आत्मसमर्पण अत्यधिक क्षीण हो जाता है।

यह शुद्ध मधुररस ही ममता, संकोच और सेवा की दीवारोंसे युक्त हो वात्सल्य, सख्य और दास्य रूपमें प्रतिबिंबित होजाता है। शुद्ध एवं पूर्ण भाव का प्रकाश तो मधुर रस में ही है।

हे शुकराज, प्रियतम विशुद्ध-रस-घन विग्रह हैं। वे विशुद्ध रस हैं। अन्य भगवत्स्वरूपोंमें रस विशुद्ध रूपमें पूर्ण नहीं है। वहाँ रसाभास मात्र है। प्रियतम प्रेम रसास्वादनरूप हैं। यही प्रेम ह्लादिनी का सार है, आनन्द का सार है। इस प्रेम के भी सार को भाव कहते हैं। भाव की पराकाष्ठा महाभाव है और प्रिया महाभावस्वरूपा हैं।

हे शुकराज, परतत्व के विषय में सर्वत्र भिन्न भिन्न धारणाएँ हैं। कोई

प्रकृतिको परतत्व कहते हैं एवं कोई पुरुष को। कोई ईश्वरको परतत्व मानते हैं और कोई धर्म को। किन्हीं किन्हींके मतमें मोक्ष ही परतत्व है। कोई मात्र सत्ता स्वरूप को परतत्व मानते हैं एवं कोई सर्व कल्याण रूप सच्चिदानन्द तत्व चिन्मात्र को। वेदान्त प्रतिपादित परतत्व तो अद्वितीय, सनातन सच्चिदानन्द ब्रह्म है। हे शुक, विशुद्ध सच्चित् आनन्दकी ही एकमात्र सत्ता है और आस्वादनमय होने से यही चिन्मात्र है। हे शुकराज, नास्ति एवं अस्ति का अन्तर इतना ही तो है कि अस्ति का आस्वादन है, ज्ञान है और नास्ति अज्ञात, अनास्वादित है। वह अस्ति भी यदि प्रिय, आनन्दमय नहीं हो, नीरस अस्ति हो तो यह बंधन स्वरूप ही तो होगी न? तब तो वह भी अपने ही लिये मुमुक्षा का कारण बन जायगी। इसीलिये अस्ति, भाति भी है एवं प्रिय भी। प्रियता ही अस्ति है और भाति है। अत्यंत सूक्ष्मता से विचार करने पर यह भाति ही प्रियतम रस है, अस्ति प्रिया है एवं प्रियता ही प्रेम है। आस्वादन ही प्रेम का प्रकाश है, भाव का प्रकाश है और प्रेम ही सत्ता है तथा प्रियता उसका स्वरूप है।

हे शुकराज, पूर्वराग भाव का, प्रेम का प्रथम स्वरूपानुभव है। यह निर्मलतम प्रेम का प्रथमास्वादन है। हे शुकराज, प्रेम आस्वादित है, यदि यह ज्ञान हो जायगा, मुझे पूर्ण प्रेम प्राप्त है, मुझे नित्य प्रेम प्राप्त है, मैं प्रेमी हूँ—यह ज्ञान यदि होजायगा तब तो उसके आस्वादन में नवीनता न रहने से उसका आस्वादन पूर्ण होगा ही नहीं। स्वरूपानुभव की यही तो विशेषता है कि उसका जैसे आनन्द, प्रेम, एवं भाव नित्य है, पूर्ण है उसी प्रकार उसका अस्वादन भी नित्य, पूर्ण ही होना चाहिये। अतः वह आनन्द नित्य रहते हुए भी नव नवायमान है। इसीलिये पूर्वराग नित्य है, पूर्ण प्रेम है। यहाँ अस्ति भी पूर्ण है नित्य है, भाति भी नित्य है, पूर्ण है और प्रियता भी नित्य है, पूर्ण, परिपूर्ण है, परिपूर्णतम है।

हे शुकराज! प्रिया को प्रियतम नित्य प्राप्त हैं एवं प्रियतम को प्रिया नित्य प्राप्त हैं। प्रिया को प्रियतम प्राप्त न हों ऐसा कभी संभव ही नहीं। प्रिया नाम ही प्रियतम पूर्ण उपलब्धि का है। प्रिया तत्व ही प्रियतम की नित्य उपलब्धि को कहते हैं। प्रिया कहते ही उसे हैं, जिसे प्रियतम पूर्ण, नित्य, अखंड उपलब्ध हों। प्रिया ही प्रियतम हैं एवं प्रियतम ही प्रिया हैं। अस्ति प्रकाशित है एवं प्रकाश ही अस्ति है, सत्ता है। जैसे इनमें विभाग हो ही नहीं सकता उसी प्रकार प्रिया प्रियतम में भी पूर्ण अभेद है। परन्तु भाव

की यह अभेदावस्था है अचिन्त्य अनिर्वचनीय और परम विलक्षण। यह भावावस्था जो नित्य पूर्वराग है नवनवायमान प्रतिक्षण वर्द्धमानं आस्वादनार्थं, प्रतिक्षण ही नहीं, नित्य ही, प्राप्ति में अप्राप्ति का भाव भरे रहती है। इसीलिये नित्य प्रियतमालिंगन में बँधी रहकर भी प्रिया नित्य-विरहिनी हैं, नित्य मुग्ध हैं, नित्यकिशोरी हैं, नित्यकुमारी हैं और नित्य नव-वया हैं, नित्य अभुक्ता हैं। इसीप्रकार प्रियालिंगनमें बँधे श्रीकृष्ण नित्य विरही हैं, नित्य प्रियादर्शन से अयुक्त हैं नित्य कुमार हैं, और नित्य प्रेम पिपासु हैं। प्रियतम प्रेम पिपासा की एक झाँकी तुम्हें, मिलचुकी है, अब ये प्रिया पूर्वराग की छबि से कैसी द्योतित हैं, कैसी दैदीप्यमान होरही हैं, इसका दर्शन करो। और सारिका के इतना कहते ही एक मधुरातिमधुर दृष्य दोनों के सम्मुख आजाता है:—

"श्रीकृष्णगतप्राणा प्रियतम रस-भावित-मति प्रिया अपने स्वरूप प्रेम में लहरा रही हैं, नित्य लहराती ही रहती हैं। प्रिया प्रेम की लहरें ही भाव-प्रकाश, रस रूप हो एक एकान्त प्रासाद बनगई हैं। यह लहरें ही पुष्प हैं और ये ही माला बनी गूँथी जा रही हैं। प्रियाकी सखियाँ जो मात्र प्रिया सौख्य अभिलाषिणी हैं, वे भी इंन लहरोंका ही रूप हैं। वे इतस्ततः बैठी प्रियाको, उनके भाव को, अत्यन्त सतर्कता से निरख रही हैं, जिससे समय पर समुचित सेवा कर सकें। प्रिया के सम्मुख प्रियतम की अनन्त मधुर छबि है। और उनके भाव ही शब्दाकार हो रहे हैं :-

मेरी इस विनीत विनतीको सुन लो, हे व्रजराजकुमार !
युग-युग, जन्म-जन्ममें मेरे तुम ही बनो जीवनाधार ॥
पद-पङ्कज-परागकी मैं नित अलिनी बनी रहूँ, नन्दलाल !
लिपटी रहूँ सदा तुमसे मैं, कनकलता ज्यों तरुण तमाल ॥
दासी मैं हो चुकी सदाको, अर्पणकर चरणोंमें प्राण।
प्रेम-दामसे बँध चरणोंमें, प्राण हो गये धन्य महान ॥
देख लिया त्रिभुवनमें बिना तुम्हारे और कौन मेरा।
कौन पुछता है 'राधा' कह, किसको राधाने हेरा ॥
इस कुल, उस कुल—दोनों कुल, गोकुलमें मेरा अपना कौन ?
अरुण मृदुल पद-कमलोंकी ले शरण अनन्य, गई हो मौन ॥

देखे बिना तुम्हें पलभर भी मुझे नहीं पड़ता है चैन ।
तुम ही प्राणनाथ नित मेरे, किसे सुनाऊँ मन के बैन ।।
रूप-शील-गुणहीन समझकर कितना ही दुतकारो तुम ।
चरणधूलि मैं, चरणोंमें ही लगी रहूँगी बस, हरदम ।।

मेरी इस विनीत प्रार्थना को, हे व्रजराजकुमार ! तुम ध्यान देकर सुन लो। युग-युगान्तर में, जन्म-जन्म में, तुम्ही मेरे जीवन के आधार बने रहो-यही मैं चाहती हूँ ।। १ ।।

तुम्हारे चरण-कमलों के पराग की, हे नन्दलाल ! मैं नित्य भ्रमरी बनी रहूँ—उन चरणों पर मंडराती डोलूँ । इतना ही नहीं, जैसे कोई सोने की बेल नवीन तमाल के वृक्ष से सदा लिपटी रहे, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे श्री अङ्गों से सटी रहूँ ।। २ ।।

मैं तुम्हारे चरणों पर अपने प्राणों को न्यौछावर करके सदा के लिये तुम्हारी चेरी बन चुकी हूँ । प्रेमकी डोरी से चरणों में बँधकर मेरे ये प्राण अत्यंत धन्य हो चुके हैं ।। ३ ।।

मैंने परीक्षण करके देख लिया, त्रिलोकी में तुमको छोड़कर मेरा और कौन है ! (कोई नही है) 'राधा' नाम लेकर दूसरा कौन मुझको टेरता है और मुझ राधा की भी दृष्टि और किसकी ओर गयी है ! ।। ४ ।।

मेरे नैहर में और ससुराल में-दोनों परिवारों में- इस गोकुल में (व्रज में) मेरा सगा कौन है ?- कोई नहीं । एक मात्र तुम्हारे लाल लाल सुकुमार चरण कमलों का आश्रय लेकर मैं मौन हो गई हूँ ।। ५

तुमको देखे बिना मुझको एक पल भी चैन-शान्ति नही मिलती । सदाके लिये तुम्ही मेरे प्राणों के स्वामी हो, तुम को छोड़कर और किसको अपने मनकी बात बताऊँ ।। ६ ।।

रूप, शील स्वभाव तथा गुणों से हीन, समझकर तुम मुझको कितना ही दुतकारो, मैं तो तुम्हारे चरणों की रज हूँ और प्रतिक्षण चरणों मे ही लिपटी रहूँगी- बस इतनी बात जानती हूँ ।। ७ ।।

ब्रजराजकुमार का भाव

सारिका शुकको संबोधित करके कहती है:– हे शुकराज, देखो, प्रिया श्री राधारानी प्रियतम को आत्मभाव निवेदन करती हैं। उनके प्रियतम ब्रजराजकुमार हैं। सम्पूर्ण ब्रज का राजकुमार कौन हो सकता है ? सम्पूर्ण ब्रजमण्डल में जिसका शाशन होगा, वही तो यहाँ का राजकुमार होगा। ब्रजमण्डल में आकाश है, वायु है, चन्द्र है, सूर्य है, नक्षत्र हैं, पृथ्वी है, सरिता हैं, सरोवर हैं, गिरिराज है, पशु हैं, पक्षी हैं, कुंज हैं, वनचर है, जलचर हैं, लक्षावधि गायें हैं, गोपाल हैं, गोपी हैं, ग्वाल हैं, ऋषि हैं, मुनि हैं, ब्राह्मण हैं, क्षत्रिय हैं, जड़ हैं, चेतन हैं, तो वह सबका शाशक होगा, तभी न ब्रजराजकुमार होगा। फिर यह ब्रजमण्डल ब्रजभूमि प्राकृतिक भूमि तो है नहीं, यह तो प्रेम राज्य है, भावराज्य है यहाँ तो विशुद्ध पूर्ण समर्पणमय, अन्य, विशुद्ध भावभक्ति ही पृथ्वी है, भावभक्ति ही पंचभूत एवं भावभक्ति ही सम्पूर्ण सृष्टि है। तब वह राजकुमार अवश्यमेव उस भावभक्ति का, प्रेम का भोक्ता 'रसोवैसः' रसराज प्रियतम ही होना चाहिये, अन्य नहीं। यही भाव ब्रजराजकुमार शब्द प्रकट कर रहा है। तो प्रिया की यह प्रार्थना अपने प्रियतम के प्रति है अन्य किसी अनन्तानन्त गुण विशिष्ट विभूति के प्रति नहीं है। निर्गुण, निर्विकार, निष्कल, निष्क्रिय, दिव्य, सनातन जो ब्रह्म के ब्रह्म हैं, वे सच्चिदानन्दमय पूर्ण रस-घन-विग्रह प्रियतम ही ब्रजराजकुमार हैं। वे राधा के ही राजकुमार नहीं, सम्पूर्ण भाव देश के राजकुमार हैं, भावाकाश के राजकुमार हैं, भावसृष्टि के राजकुमार हैं भावसागर के राजकुमार हैं, तभी न ब्रजराजकुमार हैं वे।

जो निर्मल प्रेम का पुञ्ज हो, जिसके रूप में सत्, चित्, आनन्द ही मूर्तिमान हुए हों, जो निराकार निर्गुण, व्यापक, निष्क्रिय और परात्पर हो, वही तो भावराज्य का कुमार होगा। जो भावाकार हैं, वे ही तो सच्चे निराकार हैं। जिसमें अनन्तानन्त भावगुण होंगे वही तो निर्गुण है। जो भावमय है, वही तो व्यापक है। जो प्रपंचातीत, सबका आश्रय, मात्र भाव भोक्ता है, वही तो निष्क्रिय है। क्यों कि उसे अपना ज्ञान ही नहीं है, वह तो मात्र भाव रसिक है, भाव को ही जानता है, उससे भावान्य क्रिया संभव ही नहीं है। इसीलिये ब्रजराजकुमार भावराज्य के राजकुमार रसराज प्रियतम श्यामसुन्दर ही हैं।

प्रिया के प्रियतम ब्रजराजकुमार ही सम्पूर्ण ब्रजरूप में अभिव्यक्त हैं।

भाव रूप व्रज की अभिव्यक्ति भाव प्रकाश रस ही तो है अतः रस ही, रस राज ही सम्पूर्ण व्रज मण्डल बने भावसेवार्थ खड़े हैं। और सत्य ही है आत्मा ही शरीर रूप में भासित है, तभी न शरीर राज्य की राजकुमार आत्मा है। प्रियतम रसरास श्याम सुन्दर का शरीर ही तो, उनका कलेवर ही तो यह व्रजमंडल, व्रज भूमि वृन्दावन है। हे शुक ! यहाँ जो राजकुमार शब्द है वह अत्यंत रसमय अभिव्यक्ति है। 'कुमार' शब्द प्रियतम के नित्य नव किशोर वय का ही वाची है। उनकी नितनूतन अभिनव कैशोर रूप माधुरी का ही वाची कुमार शब्द है। इसीलिये वे व्रजराज नहीं हैं वरं व्रजराजकुमार हैं। दूसरे वे सर्वप्रिय हैं, सर्वश्रद्धास्पद, सर्व श्रद्धाभाजन नहीं हैं। वे यदि व्रजराज होते तो सर्व श्रद्धास्पद, श्रद्धा भाजन हो जाते, व्रजराजकुमार होने के कारण भाव पूर्ण श्रद्धा की अपेक्षा भाव मय प्रेमके, आत्मीयता के अधिक भाजन हैं, यही यह 'व्रजराजकुमार' शब्द प्रकाशित कर रहा है। स्वरूप ही 'स्व' का सच्चा शाशक है, जो 'स्व' रूप ही नहीं, 'पर' रूप है, वह शाशक कहाँ से होगा। 'पर' 'स्व' पर यदि शाशन करेगा तो वह भयमूलक होगा। भयमूलक कैसाभी शाशन प्रेम राज्य में कैसे संभव है ? इसलिये इस प्रेमराज्य में, भावराज्य में तो स्वरूप ही 'स्व' का शाशक हो सकता है। जिसकी व्रजरूप में स्वयं अभिव्यक्ति हो, जो व्रज ही हो, वही तो व्रजराज है और वही व्रजराजकुमार हैं। अतः जो राधा हैं, गोप हैं, गोपी हैं, ग्वाल हैं, इस व्रजमण्डल की भूमि हैं, मनहैं, बुद्धि हैं, जीवन हैं, वे ही व्रजराजकुमार हैं, । जो व्रज की अस्ति हैं, भाति हैं, और प्रीति हैं, वे ही व्रजराज कुमार हैं। इसीलिये व्रजराजकुमार प्रियतम श्यामसुन्दर माधव व्रज जीवन के जीवन हैं, व्रज, मन के मन, व्रज प्राण के प्राण हैं। सम्पूर्ण व्रजमण्डल ही उनका शरीर है, वे ही इसके आत्मा हैं, वे सबके प्रेम भाजन हैं। सभी इनके ही संकेत पर नाच रहे हैं, थिरक रहे हैं, ये ही सर्वरस के रसिक हैं, मात्र आधार हैं, व्रज प्राणाधार हैं।

प्रिया के सम्मुख अपने प्रियतम की त्रिभंग-ललित मानसमूर्ति है। कोटि चन्द्रों की द्युति उनके मुख मण्डल पर झलमल झलमल कर रही है। पीत वसन भूषित उनके अङ्ग हैं। श्री अंगों पर कौस्तुभ, वनमाला, कंकण, केयूर, करधनी और हार यथास्थान सुशोभित हैं। चंचल कर्ण कुण्डलों तथा दिव्यदिव्य रत्नचूड़ामणियों से किरणें झर रही हैं, अङ्गों के तेज का तो कहना ही क्या ? प्रियतम की अंग प्रभा से ही सब व्रजमण्डल प्रकाशित है। उनके रसमय विग्रह से जो प्रकाश किरणें प्रकट हो रही हैं, वे परमानन्दमय रसामृत से परिपूर्ण हैं।

विश्व को मोहित करने वाला जो व्रजकी लतापताओं का, सुमन समूहों का सौरभ (सुगन्ध) है, वह सब उनके श्रीविग्रह की दिव्य सुगन्ध का करोड़वाँ अंश मात्र है। परमानन्द और पूर्ण चेतन उनका रोम रोम है।

'युग युग जन्म जन्म में मेरे तुम ही बनो जीवनाधार' का भाव

अपने प्रियतमकी यह मानसमूर्त्ति ही मानो प्रियाकी जीवन आधार है। यह छवि ही उनके रोम रोममें भरी है। उनकी बुद्धिमें यही छवि है, उनके मनमें यही छवि है। वे जीवित हैं मात्र इसी छवि के पीछे। यही छवि उनका प्राण है, तन है, मन है, सर्वस्व है। उनका आधार यही छवि है। बाहर अन्तरिक्ष में यही छवि भरी है, वायु बनकर यही छवि उनका श्वास प्रश्वास है। उनकी आत्मा, अस्तित्व भी यही छवि है। यही उनकी जाग्रति है, इसीमें वे सोती हैं, इसीमें स्वप्न देखती हैं। यह छवि ही उनका प्रकाश है। अंग अंग से प्रेम सुधा बरसाते, अरुणिम चंचल नेत्रों से मनको बलात् खींच लेते, मुरली का मधुर निनाद करते, घुँघराले केशोंवाले, ललित त्रिभंग भंगिमा में, सिर पर मोरपंख की सुन्दर चन्द्रिका रखे प्रियतम ही उनका जीवन हैं। अपने प्रियतम के प्रेममय श्रीमुखको, देखते देखते उनके सारे अंग काँपने लग जाते हैं। वे आनन्द मूर्च्छित हो कभी ललिता की, एवं कभी विशाखा की गोद में निश्चेष्ट लुढ़क जाती हैं।

प्रिया की कैसी विचित्र प्रेममयी दशा है। यह प्रिया की कोई एक समय की दशा हो, सो नहीं, यह तो उनकी सब समय की दशा है। मयूर उनके सामने से निकल जाय, तो उनके शरीर में कम्पन होने लगता है। मात्र मयूरपिच्छ ही दिखाई पड़जाय, वे स्थिर नेत्र, टकटकी बांधे देखने लग जाती हैं और बाह्यज्ञान शून्य हो जाती हैं। गुंजामाल पहने कोई सखी आ जाय तो नयनों में जल भर आता है, मुखसे आनन्दावेश में चीत्कार निकल जाती है। आकाश में कहीं श्याम मेघ उमड़ आवें तो उन्हें अपने प्रियतम की गाढ़ स्मृति हो आती है। उस समय उन्हें शंत सहस्त्र श्रीकृष्ण गगन में नाचते दिखने लगते हैं, कैसा प्रगाढ़ भाव है प्रिया का। ज्यों ही वे नील आकाश की ओर देखती हैं, उन्हें उड़कर प्रियतम के पास पहुँच जाने की इच्छा हो आती है। यह इच्छा इतनी उद्दाम होती है कि इस इच्छा से उनके हाथ ऊपर उठ जाते हैं और वे उड़ने को आतुर हो उठती हैं। कभी विरह से अत्यंत संत्रस्त हो चाहने लगती हैं कि किसी प्रकार प्रियतम को भूल जाऊँ, पर हृदय से वह त्रिभंग छवि निकलती ही

नहीं। प्रियतम को भूलने के लिये वे विषयों में उलझने की चेष्टा करती हैं, परन्तु विषय भी उनके सामने प्रियतम बन जाते हैं, तब वे अपने प्रियतम को कैसे भूल पावें। उनके बाहर भीतर सर्वत्र प्रियतम ही प्रियतम हैं।

नित्य की तरह आज भी प्रिया बैठी हैं मालती माल गूँथने, परन्तु उन्हें होश कहाँ है। हाथों में आधी अधूरी माला है, और प्रिया निर्निमेष दृष्टि से अपने प्रियतमके चरणोंमें पूर्ण आत्मविस्मृत विसर्जित हैं। आनन्दचन्द्र रसराज प्रियतम प्रिया के हृदय कमल पर पूर्ण अधिकार जमाये, विराजित सरस रहे हैं।

इस प्रकार नित्य प्राप्त प्रियतम, नित्य दर्शनीय प्रियतम के सम्मुख रहने के उपरान्त भी उनकी बड़ी विलक्षण प्रेम दशा है। उन्हें सदा यह अनुभव होता रहता है कि प्रियतम का इस जन्ममें तो उनसे मिलन संभव ही नहीं। यदि जन्म जन्म में, अनेकों जन्ममें भी प्रियतम प्राप्त हो जावें, उनके जीवन के सम्पूर्ण आधार बन जावें तो वे कृतकृत्य, पूर्णअभिलाष हो जावें। अहा, अति दैन्यदशा में उनके कण्ठसे वाणी निकल नहीं पाती। उनका स्वर भङ्ग हो जाता है। उनके नेत्रों से जलकी धारा बहने लगती है। कपोल गीले हो जाते हैं एवं वक्षस्थल भी गीला हो आता है। प्रियतम की छबि यद्यपि सम्मुख है, उन्हें वे स्पष्ट, जीवन्त देख रही हैं, अपने प्रियतम की प्रेम भरी, अति प्रेम भरी दृष्टि से उनका सर्वाङ्ग कदम्ब के केशर की भाँति पुलकित हो रहा है, फिर भी कैसी उत्कंठा है हृदय में, कि प्रियतम की पूर्ण रूप माधुरी को पान करलेने पर भी नेत्र अतृप्त हैं, और जैसे चाँदनी रात में चन्द्रकान्तमणि पसीजकर रस बहाने लगती है, इसीप्रकार उनके नेत्रों से रस चूता रहता है।

प्रियतम को अति निकट देखकर आनन्द से कभी उनमें कंप विकार होता है। यह विकार अत्यंत तीव्र होता है। उनकी अङ्गलता इससे ऐसी काँप उठती है मानों आँधी में कदली वृक्ष काँप रहा हो। इतने प्रत्यक्ष, निकट संयोग में भी उन्हें यही भान रहता है कि उन्हें तो प्रियतम का संयोग है ही नहीं, पूर्ण वियोग ही है। प्रिया को अपने सौभाग्यका ज्ञान ही नहीं है। वे तो अपने प्रियतम से सदा यही प्रार्थना करती रहती हैं—

मेरी इस विनीत विनतीको सुनलो, हे व्रजराजकुमार।
युग-युग जन्म-जन्ममें मेरे तुम ही बनो जीवनाधार॥

"मेरे प्रियतम ! और मैं तुम्हें क्या कहूँ, बस, इतना ही चाहती हूँ कि युग युगान्तर में, जन्म जन्म में तुम्हीं मेरे जीवन के आधार बने रहो।"

प्रिया के सम्मुख प्रियतम अपार माधुर्य लिये खड़े हैं, जिस माधुर्य का कहीं अंत ही नहीं, पार ही नहीं। उनके अन्तःकरण में भी प्रेमसरिता अगाध लहरें ले रही है। वह नित्य वर्धनशील प्रियतम माधुर्यास्वादन की ऐसी उत्कंठा, स्पृहा उत्पन्न कर रही है कि उसकी निवृत्ति का भी उन्हें कोई पार दिखाई नहीं पड़ता। फिर भी अपने नित्यवर्धनशील प्रेम और प्रतिक्षण नित नवीन उत्तरोत्तर बढ़ते प्रियतम श्रीकृष्ण के माधुर्य और उसकी अनन्त अनन्त विचित्रताओं में लगी होड़ का हृदय ही हृदय में अनुभव करती हुई भी प्रिया अपने मुख से ये ही शब्द बोल पाती हैं-"नाथ ! एक जन्म की अल्प अवधि में मैं अपना हृदय कृतकृत्य कर सकूँ, यह तो संभव ही नहीं, इसीलिये युगों-युगों तक कल्पों-कल्पों तक, अनन्त जन्मों तक आपकी रूपसुधा का पान मेरे नेत्र करते रहें, आपका द्युतिमय नवनीरदवर्ण यह रसमय रूप मैं अपने हृदय में भरे रहूँ, यही मेरी अति दीन विनय है। आपकी परम मधुर वचनावली मेरे कानों में अमृत घोलती ही रहे। अनन्त अनन्त जन्मों तक आपकी प्रेमामृत रसवर्षिणी मुरलीध्वनि मेरे कानों में भरी रहे। हे हृदयहारी, मेरा मन नित्यनिरन्तर अनन्तानन्त कालतक मोती, मणि एवं गुंजा, तुलसी और वन पुष्पों के हार जिस पर भूल रहे हैं, ऐसे आपके वक्षस्थल पर ही न्यौछावर होता रहे। आपके शीतल चरण ही मेरे अनन्त अनन्त कालतक एक मात्र आश्रय बने रहें, आपही मेरे प्राणाधार, आपही मेरे जीवनाधार रहें, यही मेरी परम विनीत विनय है।

शुक- हे सारिके ! मेरी यहाँ दो एक शंकाएँ हैं। क्षमा करना, मैं तुम्हारे रसप्रवाह में विक्षेप कर दे रहा हूँ, परन्तु मेरी शंका निवारण भी तो आवश्यक है।

हे सारिके ! प्रिया तो सर्वथा प्रियतम सुख संपादनमयी ही हैं। उनमें उनके प्रेम में तो मात्र तत्सुख ही तत्सुख है। फिर, यह भाव कि युग युग जन्म जन्म तक मेरे नेत्र, कान, हृदय, प्रियतम सुख से सुखी होते रहें और प्रियतम ऐसा सुख देते रहें, इसके लिये विनीत प्रार्थना करना, यह तो प्रिया के प्रेम पर कलंक है। यह तो स्पष्ट सुखमयी वृत्ति है। इसमें भय भी है, लोभ भी है, काम भी है, एवं मोह भी है। प्रियतम कहीं विलग न हो जावें, कहीं ऐसा विधान न हो जाय कि मैं इस सुख से वंचित हो जाऊँ, यह भय है। इतना तो प्राप्त है,

एवं इतना प्राप्त और हो जाय, यह लोभ है। यह मिल जाय यह कामना भी है। प्रार्थना से प्रियतम मान लेंगे, बिना प्रार्थना प्रियतम ऐसा विधान नहीं करेंगे, यह मोह है ही। अतः प्रिया द्वारा अपने प्रियतम से ऐसी प्रार्थना मेरी बुद्धि में संभव ही नहीं, यह उनके प्रेम के पावित्र्य पर कालिमा सी दीख रही है।

दूसरे यहाँ प्रिया कहती हैं, जन्म 'जन्म तक मेरे तुम ही जीवनाधार बने रहना', इसका स्पष्ट अर्थ है कि उन्हें जन्म मृत्युरूप, क्षय एवं वृद्धिशील, आयु एवं काल की सीमा में सीमित शरीर का बोध है, वे अवश्यमेव शरीर में अध्यस्त हैं। उन्हें अपने जन्म का भी ज्ञान है, एवं अनेक जन्मों की संभावना का भी ज्ञान है। वे अनेक जन्मों की स्पृहा भी करती ही हैं। तब अवश्य ही उनके कर्म भी होंगे ही, जिनके फलस्वरूप ही उनका वर्त्तमान जन्म और अनेक जन्म संभव हैं। हे सारिके, तब तो प्रिया का विभुस्वरूप, भूमास्वरूप कहाँ रहा? और प्रिया यदि भूमा नहीं हैं, अल्प हैं, विभु नहीं हैं, अल्प हैं, तो अवश्य ही अल्प की कामना विषयमयी होने से उनके प्रियतम भी अज्ञानोत्पत्ति ही, मायिक ही सिद्ध हो जावेंगे।

सारिका-"हे शुकराज! सर्वप्रथम मैं तुम्हारी दूसरी शंका का समाधान करती हूँ, उसके पश्चात ही पहली शंका का समाधान करूँगी। हे शुकराज, यह वेदान्त की शैली है कि रूप तभी मिथ्या सिद्ध होगा जब नेत्र भी मिथ्या सिद्ध होंगे। नेत्र जब तक तबतक सत्य हैं तो रूप का मिथ्यात्व प्रदिपादन करना संभव ही नहीं। इसी प्रकार नेत्र का भी जो कारण मन है, वह जब तक असत् सिद्ध नहीं होगा तब तक नेत्र भी असत् सिद्ध होंगे नहीं। अतः मूल प्रकृति के ही असत् सिद्ध होने के कारण ही दृष्य की समग्र असत्ता सिद्ध होती है। हे शुकराज, जब एक बार यह सिद्ध हो गया कि प्रिया सत्य हैं, प्रिया आनन्दघनविग्रह हैं, आह्लादघनविग्रह, भावघनविग्रह हैं, और प्रियतम रसघनविग्रह हैं, वे ब्रह्म की प्रतिष्ठा हैं, तब उनका जन्म चाहे एक हो चाहे अनन्तानन्त हों, वह नित्य सत्य, परात्पर परतत्व की कोई न कोई लीला ही होगी। उसका रहस्य भले ही किसी तर्क से समझमें न आये, उसका प्रतिपादन तर्कतः सिद्ध हो, चाहे असिद्ध हो, यह कुछ भी अर्थ नहीं रखता। इसे मानना ही होगा। परात्पर, परतत्व, कर्तुम्, अकर्तुम्. अन्यथा कर्तुम् समर्थ है। वह सत्य को भी मिथ्या सिद्ध कर सकता है, और मिथ्या को सत्य। वह मिथ्या एवं सत्य की सीमा में भी नहीं

ही बँधा है। वह परमानन्द में निरानन्द को व्यक्त कर सकता है, एवं निरानन्द में परमानन्द को। हे शुकराज, क्यों नहीं समझते कि रसराज एवं महाभाव दोनों ही तत्व सर्वभवन समर्थ हैं। और जो सर्वभवन समर्थ है, वह नियमातीत है।

हे शुकराज, यद्यपि वेद अनादि हैं, फिर भी बताओ, पहले प्रतिपादित सत्य था कि पहले उसका प्रतिपादन हुआ था? यदि पहले प्रतिपादित सत्य था तो सम्पूर्ण प्रतिपादन उस प्रतिपादित की, नियमातीत की, प्रक्रिया का जो यथा तथा बुद्धिगत अनुभव हुआ, वही तो है न। परन्तु वह इदमित्थं है इसे कैसे मान लिया जाय। क्योंकि प्रतिपादित तत्व इतना स्वतंत्र है कि उसने प्रतिपादन के विपरीत आचरण न करने की कोई सीमा अपने पर थोड़े ही डाललो है। वह असीम है और उस पर प्रदिपादन की कोई सीमा न कभी रही, एवं न कभी रहेगी। इसीलिये श्रुतियों ने उसे सर्वातीत, सर्वबंधनविमुक्त, अचिन्त्य, अग्राह्य, विरुद्ध गुण धर्माश्रयी कहा है।

हे शुकराज, स्थान स्थान पर प्रिया प्रियतममें तुम्हें ये ही विचित्रताएँ दृष्टिगोचर होंगी। वे लीलामय सर्वप्रकृत्यतीत होते हुए भी जैसे प्रकृत्यनुशाशित, बद्ध हों, इसीप्रकार की बोली बोलते, क्रिया करते दिखाई पड़ेंगे। हे शुकराज, यह उनकी प्रेम मुग्ध लीला का ही एक अंग है, प्रेम की विभुता का ही प्रकाश है। अतः यह उनकी विचित्रतम प्रेम महिमा ही है। हे शुकराज, प्रिया प्रियतम की लीला को सुनने का, देखने का सच्चा अधिकारी वही है जिसे सर्वथा सर्वथा, किसी काल में जगदावेश हो ही नहीं एवं जिसकी बुद्धि में जगत लेश मात्र भी न बचे, अन्यथा बार बार बुद्धि में प्रविष्ट प्रकृति उसे लीला में प्राकृतिक भाव का दर्शन करायेगी ही और उसकी शंकाएँ रस को नीरस करेंगी।

हे शुकराज, श्रुतियाँ स्पष्ट कह रही हैं—

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥५॥

बुद्धि और मन का जो कुछ भी विषय है, जो इनके द्वारा जानने में आसकता है तथा प्राकृत मन-बुद्धि से जाने हुए जिस तत्व की उपासना की जाती है, वह ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप है ही नहीं। परब्रह्म परमेश्वर मनबुद्धि से सर्वथा सर्वथा अतीत है। उसके विषय में यही कहा जासकता है कि जो मनबुद्धि का ज्ञाता है, उन्हें शक्ति देने वाला है तथा जिसकी शक्तिके किसी अंशसे बुद्धिमें निश्चय, प्रतिपादन करने की सामर्थ्य आयी है, वह ब्रह्म है।

हे शुकराज श्रुतियाँ स्पष्ट कहती हैं—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।

यह परात्पर परतत्व परब्रह्म, बुद्धि से, उसके निर्णयों से, उसके नियमों से, जाना नहीं जा सकता है, जाना नहीं जा सकता है, कदापि नहीं जाना जा सकता है। वह तो अचिन्त्य शक्ति है—

आसीनो दूरं व्रजति, शयानो याति सर्वतः

वह अणु भी है और महान से महान भी है। अतः उसे तुम कहीं भी प्रतिभा से, मेधा से जान ही नहीं सकते ।

हे शुकराज तुम प्रतिभावान हो, बताओ 'सत्' क्या है ? क्या इदम् 'यह' रूप से प्रतीत होने वाली घट पट वस्तुएँ सत् हैं ? तुम स्वयं कहोगे कि नहीं। इदम् रूप से जोभी जानने में आता है, वह सन् नहीं है। फिर सत् क्या है तुम कहोगे 'अनुभूति' ही सत्य है। अब बताओ असुभूति क्या है, तो तुम स्वयं मानोगे कि इदम् , इयम् , अयम् कहनेसे अनुभूति, ज्ञान नहीं ही होता। अतः जो स्वतःसिद्ध स्वरूप है वही तो अनुभूति है। इसी प्रकार चित् सत्ता का भी, आनन्द सत्ता का भी, इदम् या इदम् कहकर ज्ञान नहीं होता। स्वतःसिद्ध सब लक्षण ही परब्रह्म के बोधक हैं। फिर स्वतःसिद्ध जन्म भी उसका ही बोधक है और स्वतःसिद्ध मृत्यु भी उसकी ही बोधक है। हे शुकराज, यद्यपि ब्रह्म का न जन्म ही संभव है एवं न उसका प्रलय भी। परन्तु वह इस नियम की सीमामें भी कादपि कदापि बँधा हुआ नहीं है कि उसका जन्म और प्रलय हो ही नहीं। अनन्त लीलामय वह कर्त्तुम् अकुत्तुम् अन्यथा कर्त्तुम् समर्थ होने के कारण अपना जन्म भी और प्रलय भी प्रतिपादित करने में समर्थ है। वह सब असंभव-संभव है, यही उसकी स्वतः सिद्धि है। अतः उसके एक नहीं युग युग, कल्पों कल्पों तक अनन्त अनन्त जन्म भी संभव हैं और उसका प्रलय भी संभव है। और यह भी स्वतःसिद्ध है कि अनन्तानन्त जन्मों में न वह जन्म रहा है, और अनन्तानन्त प्रलय में न वह मर रहा है।

हे शुकराज, बताओ प्रिया भी कभी मुक्त होंगी क्या ? और वे मुक्त हैं, क्या ? हे शुकराज ये मुक्ति और बंधन प्रकृति तथा मन के ही हैं। जहाँ मन नहीं, मात्र सच्चिदानन्द प्रियतम हैं, उनका बंधन और मुक्ति कैसी ? फिर जब उनकी मुक्ति है ही नहीं, तो बंधन में तो वे नित्य सिद्ध हैं ही। हे शुकराज, जगत

में जहाँ जो कुछ है जब वे ही हैं, माया भी वे ही हैं, और मायावी भी वे ही हैं, तब सब बंधन उनका ही है, और सब मुक्ति उनमें ही है। फिर अनन्त अनन्त जन्म उनमें हों इसमें आश्चर्य ही क्या है? यही तो उनका भूमापन है, और यही उनका विभुत्व है। हे शुकराज, यह तर्क सिद्ध यद्यपि नहीं है परन्तु वेदान्त प्रतिपादित है कि जो सत् है वह असत् भी हो सकता है। प्रिया प्रियतम सत् एवं असत् दोनों हैं। तर्कतः जो आनन्दमय है, आनन्द विग्रह है, वह दुखी नहीं हो सकता, परन्तु प्रिया अनन्तानन्त आनन्द विग्रह होकर भी अनन्तानन्त दुःखोदधि हैं। वे अनन्तानन्त मुक्ति होकर भी अनन्तानन्त अज्ञान भी हैं, वे अनन्तानन्त बन्धन भी हैं। हे शुकराज, वे अनन्तानन्त ज्ञानस्वरूपा, मात्र ज्ञान होकर भी अनन्तानन्त अज्ञान भी हैं। वे अनन्तानन्त सत्य होकर भी अनन्तानन्त मिथ्या भी हैं। एवं हे शुकराज, जो मिथ्या और सत्य दोनों से अतीत हैं, मिथ्या एवं सत्य दोनों जिस भूमि पर प्रकाशित हो रहे हैं, उसे ही तुम प्रिया प्रियतम का स्वतः सिद्ध स्वरूप मानो। हे शुकराज, प्रिया प्रियतम स्वप्रकाश हैं, स्वयंसिद्ध हैं, वे न वेद सिद्ध हैं, न वेदान्त-प्रकाश। वेद और वेदान्त सब उन्हीं से प्रकाशित हो रहे हैं।

हे शुकराज, इसी प्रकार प्रिया का प्रेम भी अनन्त शक्ति, अचिन्त्य और बुद्धिगम्य नहीं है। वह तत्सुख है, परन्तु जहाँ तत् ही मत् है एवं तत् एवं मत् दोनों से जो अतीत है, तत् एवं मत् दोनों जिसके प्रकाश में थिरक रहे हैं, वहाँ कहाँ मत्सुख एवं कहाँ तत्सुख? हे शुकराज, काम और प्रेम, मत्सुख और तत्सुख, त्याग और भोग, स्वार्थ और परमार्थ, सुख एवं दुख, मुक्ति एवं बन्धन, जन्म और प्रलय, यह सब द्वैत प्रिया प्रियतम की भूमि में है ही नहीं, वे सर्वथा, सर्वथा द्वैत विवर्जित हैं, भेद विवर्जित हैं। जब किसी भी प्रकार का भेद है नहीं, तब किसका काम, किसमें काम, किसमें प्रेम और किसका त्याग, किसका भोग और किसमें भोग? प्रिया का सब काम ही अनन्त प्रेम है एवं प्रिया का सब भोग पूर्ण पूर्ण त्याग है। प्रिया का स्वार्थ ही अनन्त अनन्त परमार्थ है। उन्हें महात्यागमयी न कहकर अगर महाकामुकी, महास्वार्थमूर्ति भी कहलो तो वह वाणी मात्र तुम्हारे ही लिये है। प्रिया को न लौकिक स्तुति स्पर्श करती है, न वैदिक स्तुति। उन्हें न कोई अपवाद स्पर्श कर सकता है, न गुणगान। वे तो स्तुति एवं अपवाद सबसे परे स्वयं सिद्ध हैं। इसलिए वे मात्र अपने स्वरूप में ही लहरा रही थीं, लहरा रही हैं, एवं लहराती रहेंगी। तुम उन्हें अपनी मलिन एवं उदात्त

बुद्धि से जैसी भी देखोगे, तुम्हें वे ऐसी ही दिखेंगी।

हे शुकराज, मेरे इस प्रतिपादन को तुम परम सत्य मानना, फिर भी तुम्हें दूसरा पक्ष भी दिखला दे रही हूँ। शुकराज, मधुर प्रेम, अगाध भाव जब मधुर रस रूप में अभिव्यक्त होता है, उसका आस्वादन, उसका प्रकाश जब मधुर रस रूप में होता है, तो उसमें आत्मनिवेदन ही मात्र आवरण रहता है। यह आवरण न रहने पर तो अभेद सत्ता आस्वाद्य एवं लीलामय हो ही नहीं सकती। इसीलिए क्योंकि वह आस्वादनमय, लीलामय है, अनादि चिच्छक्ति, योगमाया ही उसमें पूर्ण आत्मनिवेदन का एक आवरण रहने देती है। यह पूर्ण आत्मनिवेदनमयी वृत्ति ही प्रिया एवं प्रियतम रूप पूर्ण अभेद सत्ता में प्रियात्व को आभासित, प्रियतमत्व को आभासित करती है। यह आभास भी सतत प्रिया का प्रियतम में एवं प्रियतम का प्रिया में समर्पित होता रहता है। वह प्रतिक्षण पूर्णतया समर्पित होता जाता है, फिर भी उसे स्वयं में यही प्रतीति होती रहती है कि वह अभी तक असमर्पित ही है, अतः बारंबार, क्षण-क्षण, पल-पल, वह अर्पित को अर्पण, समर्पित को समर्पण करता ही रहता है। प्रिया अपने समग्र नेत्रों से प्रियतम के रूप को, अपने समग्र श्रवणों से प्रियतम की वचनावली को, उनकी वेणु-माधुरी को, अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों से प्रियतम रूप विषयाभिव्यक्ति को नित्य पूर्णतया अर्पित हैं। उनमें पृथकता शेष है ही नहीं। फिर भी उनमें नित्य पुनः-पुनः अर्पित को अर्पण करने की ऐसी मधुर आस्वादनमयी पिपासा है, जिसे ही ये दो पंक्तियाँ व्यक्त कर रही हैं।

मेरी इस विनती को सुनलो हे ब्रजराजकुमार।
युग युग जन्म जन्म में मेरे तुम हो बनो जीवनाधार॥

अपने प्राणधन के चरणों में अपने सर्वस्व का पूर्णतः समर्पण कर देने पर भी युगों युगों तक, अनेकानेक जन्म लेकर, कल्प कल्प पर्यंत बारंबार अर्पित होती रहूँ, यह वृत्ति क्या प्रिया के विलक्षण प्रेम का चमत्कार नहीं है?

यह कहते कहते सारिका की वाणी प्रेमाधिक्यवश अवरुद्ध हो जाती है। शुक उड़कर सारिका के चरणों में लोटने लगता है। उसे अपने अनधिकारी होने का, तार्किक बुद्धि से शंका करने का अत्यंत पश्चाताप हो रहा है, वह अत्यन्त प्रेमार्त्त हुआ अश्रु बहाने लगता है, कुछ समय पश्चात स्वस्थ होने पर सारिका

उसे धैर्य देकर, संतुष्ट कर पुनः आगे कहने लगती है :—

पद पंकज पराग की मैं नित अलिनी बनी रहूँ नन्दलाल ।
लिपटी रहूँ सदा तुमसे मैं कनकलता ज्यों तरुण तमाल ।।

हे शुकराज देखो, सारिकाके इतना कहते ही एक अत्यन्त सुमधुर दृश्य की स्फूर्ति शुक सारिका दोनों को होती है शुक देखता है:— प्रिया भ्रमरी बनकर उड़ रही हैं, अपने प्रियतम के चारों ओर। अहा, कैसे विलक्षण भाव इस प्रिया रूप भ्रमरी के अंग अंग, रोम रोम में व्यक्त हो रहे हैं। प्रियतम के प्रति प्रेम-जनित पूर्ण आत्मनिवेदन इस भ्रमरी के मन में महाभावगत दैन्य का उदयकर रहा है और यह दैन्य अपने प्रियतम के प्रति अपार गौरवबुद्धि और स्वयं में पूर्ण निरभिमानता तथा अनोखी गुणहीनता का भान करा रहा है। भ्रमरी बनी प्रिया अनुभव कर रही हैं— 'अहा प्रियतम के चरण तो परम प्रेममयी, श्रेष्ठ सद्गुणों की खान, रूप सौन्दर्य की असीम सीमा, सतियों की सिरमौर, महालक्ष्मी आदि के हृदय में विराजित होने योग्य हैं। मैं तो मात्र भ्रमरी हूँ, तुच्छ कीट शरीर, प्रेम के कण से भी सर्वथा पूर्णरूपेण विरहित. मात्र गन्ध-लोलुपा, गन्ध लुब्धा, काममयी। रस की तो चर्चा ही दूर, मेरा हृदय सर्वथा सूना और नीरस है। कोई सद्गुण नाम से भी मुझ में नहीं है। मैं महा कुरूपा, दुर्गुणों से भरी, प्रियतम के हृदय में अपनी कर्ण-कटु ध्वनि और कुरूप काले रंग से घृणा ही उत्पन्न करनेवाली हूँ। उनकी अरुचि के उपरान्त भी, मैं तो मात्र निज सुख के लिये ही उनपर मँडराती रहती हूँ। मेरी इस नीच दशा पर मुझे जरासा भी पश्चात्ताप नहीं है। प्रियतमके चरणकमल तो मैं स्पर्श करने के भी योग्य नहीं हूँ। मेरे कुत्सित शरीर की छाया से भी प्रियतम के अनुपम रस-स्रोत चरणकमल निश्चय ही मलिन हो जावेंगे। यद्यपि मैं प्रियतम पद पंकज की सर्वथा अधिकारिणी नहीं हूँ, फिर भी चरणों की उपमा धारण करनेवाले इन कमलों पर, इन पंकजों पर तो बैठ ही सकती हूँ। यही मेरा क्या कम सौभाग्य है कि प्रियतम के चरणों की सदृशता, उनके चरणों की उपमा धारण करनेवाले कमल तो मुझे शरण देनेको तत्पर हैं ही। सहसा सारिका बोली, हे शुक, प्रियतम तो सर्वविद् हैं। वे तो अपनी प्रिया की भाव लहरी को, उसके हृदय के अणु अणु में बसे होने के कारण जान रहे हैं। प्रियाकी ही नहीं. सम्पूर्ण विश्वके भावों की पवित्रता के एक मात्र आश्रय वे ही तो हैं, फिर भाव पावित्र्य के इस निर्मल स्रोत के प्रति

अङ्ग कैसे रह सकते हैं ? कितने महानुभाव हैं प्रियतम, रसका सर्वत्र प्रवाह बहाना, रसका सबमें वितरण करना तो जैसे उनका स्वभाव ही है। बस, भाव होना चाहिये, भावके होते ही रसस्वरूप वे अविलम्ब वहाँ पहुँचते हैं, अपना समग्र रस न्यौछावर कर देते हैं। भावको देखते ही, रस-प्रवाह बहा देने में उनकी महानता और उदारता अपनी तुलना नहीं रखती। बस, प्रिया रूप भ्रमरी को प्रत्येक कमल में प्रियतम के चरण नित्य विराजित दिखाई पड़ने लगे। प्रियतम का सुन्दरतम मुख सर्वत्र अपनी मुसकान, अपनी हास-छटा, बिखेरता हुआ जैसे अपनी प्रिया का स्वागत कररहा था। भ्रमरी उड़ रही थी। वह जिस किसी कमल के सम्मुख जाती, प्रियतम को अपना स्वागत करता पाती। "आओ प्रिय, मेरे हृदय कमल पर विराजो," और प्रिया अपनी अपात्रता देखकर, बस, प्रियतम की अंग गंध का एक कण लेकर उड़ जाती, पुनः दूसरे कमल की ओर। परन्तु ज्योंही दूसरे कमल पर जाती,वहाँ भी वे ही सर्व-सौभाग्य-निधान प्रियतम के चरण विराजित प्रत्यक्ष देखती, वह वहाँ से भी, दूर से ही उनके चरणों की पराग की गंध मात्र लेकर पुनः दूसरी तरफ चली जाती।

जिन्हें योगीन्द्र, मुनीन्द्र, ब्रह्मादि देवता, सनक,सनंदन आदि महाभक्तगण, रुक्मिणी, सत्यभामादि महालक्ष्मी महिषीगण ढूँढती ढूँढती थक जाती हैं, फिर भी जिनका अनुसंधान मात्र अनुसंधान ही रह जाता है, उन्हें प्रियतम के चरण उपलब्ध नहीं होते, वे प्रियतम स्वयं अपनी प्रिया के राधा रूप के पीछे ही नहीं, उनके भ्रमरी रूप के पीछे पागल से दौड़ रहे हैं, और भ्रमरी बनी प्रिया उनकी उपेक्षा कर, उनसे विरत हो, पुनः दूर-दूर जा रही हैं, अन्यत्र, अन्यत्र जा रही हैं. परन्तु जहाँ जा रही हैं, वहीं पारही हैं, मात्र अपने प्रियतम को। सर्वत्र प्रियतम ही प्रियतम। कमल वनके प्रत्येक कमलमें प्रियतम ही प्रियतम भरे दिखते हैं, उसे। मानो सम्पूर्ण कमल वन उस भ्रमरी पर हँसने लगता है। वह उड़ती उड़ती थक गई है। यहाँ प्रियतम, वहाँ प्रियतम, ऊपर प्रियतम, नीचे प्रियतम, पत्ते पत्ते में प्रियतम, वृक्ष वृक्ष पर प्रियतम, लता लता में प्रियतम, पुष्प पुष्प में प्रियतम, वायु में भी प्रियतम, आकाश में भी प्रियतम, कहाँ नहीं हैं प्रियतम,और उनकी पद-पंकज-पराग। भ्रमरी के हृदय में बसे प्रियतम बोल उठते हैं – 'प्रिये, लो, मेरी पद पंकज पराग ही तो तुम चाह रही हो। लो, मैं इस पराग को लिये तुम्हारे पीछे पीछे 'अनुव्रजामि' दौड़ रहा हूँ।" प्रिये, मेरी प्राण, तुम मेरी हो, कैसे तुम मान रही हो तुम अधिकारिणी नहीं हो। मेरा हृदय

तो यही अनुभव करता है कि मैं तुम्हें सुखी कर सकूँ, इसका अधिकारी स्वयं नहीं हूँ। और प्रियतम के नेत्र आँसुओं से छलछला आते हैं। हे शुक, प्रिया अपने प्रियतम की इस पुकार को कैसे अनसुनी कर दें। देखो, देखो, प्रियतम चरण कमल की पराग से सनगई है, भ्रमरी। बारबार मुग्ध होकर इस परागमें परिस्नात हो रही है, वह। और भ्रमरी है ही कहाँ, प्रिया ही तो हैं। प्रियाके पंच प्राण प्रेम रस से आर्द्र हैं। उनके हृदय में प्रियतम-स्नेह-रस उमड़ रहा है। पीयूषवर्षिणी चरण कमल की परागनें उनमें असीम रस सागर भर दिया है। महा आनन्द-रस भावोदधि उछल रहा है। अनन्त लहरें, भाव लहरें, अप्रतिम सुन्दर भाव लहरें उछल रहीं हैं। परन्तु उन्हें कौन वाणी व्यक्त करे, मूकास्वादनवत् कोई भाग्यवान बस, अनुभव ही कर सकता है। प्रिया की महाप्रेममयी दशा देखकर प्राणवल्लभ शान्त तटस्थ, द्रष्टा कैसे रहें। उन्होंने रस से पूर्ण हो अपनी प्रिया को अंकमें भर लिया। आनन्द विह्वल, भाव विह्वल प्रिया प्रियतम के अंगों से दामिनी-विलसित-नवीन-मेघ के समान लिपट गईं। जैसे तरुण तमाल वृक्षसे, कनकवर्णी लता-वल्लरी आवेष्टित हो, इस प्रकार नित्य किशोर प्रियतम में निमग्न प्रिया अचेतन हुई भूमि पर न गिर जावे, प्रियतम ने उन्हें अपनी बाहु भुजाओं में आवेष्टित कर लिया। प्रिया के भावकी मानो ये पंक्तियाँ प्रतीक हों, सारिका गा उठी "पद पंकज पराग की मैं नित अलिनी बनी रहूँ नन्दलाल, लिपटी रहूँ सदा तुमसे मैं कनक लता ज्यों तरुण तमाल" प्रेमकी महा मधुरतम अवस्था में प्रिया तो नित्य डूबी ही हैं। श्रुतियाँ कहती हैं—

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम् एको बहूनाम् यो विदधाति कामान्।

ये प्रिया प्रियतम ही नित्यों के नित्य हैं। ये ही सब चेतनों के परम चेतन हैं। कहीं अनेक है ही नहीं, ये ही एक हैं। मात्र ये ही, हैं प्रिया प्रियतम। सर्वत्र एकमात्र अभिव्यक्त, परस्पर नित्य आलिंगित। देश है ही कहाँ, जो इन असीम में सीमा निर्धारित करे? कहाँ, है काल जो इन अनन्त की अनन्त लीला का अन्त कर सके? इस नित्य, घन, अखंड, स्थिर के परिवर्तन का सूचक होने की सामर्थ्य काल में कहाँ है। मधुर सुधारस की धारा निरवधि बहरही है, इस क्षण भी बहरही है, जो भाग्यवान् हैं, वे आज भी इसी क्षण देख रहे हैं, प्रिया प्रियतम प्रेमालिंगित हैं, तरुण तमाल से कनक लता आवेष्टित है, नवघनसुंदर से दामिनी लिपटी है। जब प्रियाको बाह्यज्ञान हुआ, उन्होंने देखा लीलामय,

मधुर रस-रसिक, प्रियतम प्रेममय नेत्रों से अमित प्रेम-वर्षा करते उसकी ओर देख रहे हैं। मानो प्रियाके मनोभावों का चित्र ही सारिका की वाणी द्वारा शब्द बन कर व्यक्त हो रहा था, सारिका बोल उठी—

दासी मैं होचुकी सदाको अर्पणकर चरणों में प्राण ।
प्रेमदाम से बँध चरणों में प्राण हो गये धन्य महान ।—का भाव

हे शुकराज, प्राण से ही मन, मन है। प्राण ही इन्द्रियों से लेकर चित्त, अहंकार तक, सबको क्रियाशील करता है। प्राणी की प्रत्येक चेष्टा, क्रिया, प्रत्येक विचार, प्राण द्वारा ही नियंत्रित होते हैं। दुःख सुख की अनुभूति के हेतु भी प्राण ही हैं। जीवन रहते तो शरीर का सबकुछ प्राणों द्वारा संचालित होता ही है, मरने के उपरान्त भी सूक्ष्म शरीर के रूपमें प्राणमय शरीर ही रहता है। जब तक ये प्राण विषयानुसंधान में लगे रहते हैं, तब तक सम्पूर्ण इन्द्रियों एवं मन द्वारा भोग का त्याग संभव ही नहीं है। उस समय त्याग की वाह्य क्रिया भले ही होती रहे, वह त्याग मात्र बाह्य ही है, ऊपरी ही है, दिखावा ही है। उस त्याग के पीछे लोक परलोक के किसी विशेष फल की इच्छा, बदले की कोई भावना, मान बड़ाई की चाह, किसी न किसी अभिमानमूलक व्यापार का क्रम अवश्य छुपा होता है। जब तक न्यूनाधिक भाव से अन्तःश्चेतना में भोगों में महत्वबुद्धि है, तब चाहे वे भोग सूक्ष्म हों, दिव्य हों, अलौकिक हों, पारमार्थिक रूप रख कर ही सम्मुख क्यों न आ रहे हों, हैं वे भोग ही। इन प्राणों की सच्ची चरितार्थता तो तभी होती है जब ये प्रेमानुसंधान में लगजावें, प्रेम पागल हो जावें। तभी प्राणों में सच्चा त्याग, त्याग का सच्चा स्वरूप और विशुद्ध रसमय भावोदय होता है। ये प्रेमानुसंधान में लगे प्राण ही यथार्थ त्याग को जीवन का स्वरूप बनाते हैं। उस समय ही 'स्व' की सर्वथा विस्मृति होकर केवल प्रियतम के चरण कमल ही रहजाते हैं और प्रियतम का सुख ही अपना सुख है, ऐसा कहना बन सकता है। और तभी प्रियतम का परम दुर्लभ संस्पर्श प्राप्त कर ये प्राण धन्यता प्राप्त करते हैं। प्राण जब प्रेमरज्जु से प्रियतम चरणों में बँधते हैं तभी उनका सच्चा सौभाग्य होता है, उन्हें धन्यता प्राप्त होती है।

देखो, देखो शुक, प्रिया के प्राण किस प्रकार प्रियतम के चरणों में अपने को न्यौछावर कर उनका दासत्व स्वीकार कर चुके हैं, इस सत्य को स्वयं अपनी आँखों से देखो, और शुक एवं सारिका दोनों देखने लगते हैं। "प्रिया

अपने महल के पीछे की वाटिका में एक कक्ष में बैठी हैं। न जाने कौनसे ऐसे कारण हो गये हैं, जिससे इधर इन तीन दिनों में प्रिया से प्रियतम का मिलन ही नहीं हो पाया है। प्रिया पाक-रचनार्थ नन्दभवन भी नित्य ही जारही हैं, परन्तु वहाँ भी प्रियतम उनके नेत्रों के सम्मुख नहीं आ रहे हैं। दर्शन की तो बात ही कहाँ, प्रिया को प्रियतम की वाणी भी सुनने को मिलजाती तो वे धैर्य धारण करलेतीं। परन्तु अपने प्रियतम का कहीं कोई अनुसंधान न पाकर अब आज उनका हृदय सम्पूर्ण धैर्य ही त्याग दे रहा है। यद्यपि प्रिया के मन-चित्त का, उनके प्राणों का, प्रियतम संयोग इतना दुर्भेद्य है कि उसमें विरह प्रवेश ही नहीं कर सकता। विरहकी सत्ता ही वहाँ नहीं है। प्रियाके निर्मल हृदय देशमें, विरह तो मात्र ऊपरी आवरण ही है। फिर भी रह रह कर प्रिया प्रियतम-सुख-स्मृति में अनेकानेक अनिष्ट चिन्ताएँ करती इन दिनों बारबार विकल हैं। सखियाँ जो दूतीका कार्य करती हैं, वे उन सभी स्थानों पर होआयी हैं, जहाँ-जहाँ प्रियतम मिला करते हैं। नजाने क्यों इन दिनों प्रियतम दिखाई ही नहीं पड़ रहे। मानों प्रिया से नाराज हो गये हों, अथवा मानो अपरतिवश प्रियतम ने अपने आवागमन के सम्पूर्ण चिर परिचित रास्ते ही बदल दिये हों, सखियों को कहीं प्रियतम नहीं दिखे, कहीं प्रियतम नहीं मिले। "आज भी प्रियतम नहीं आये" प्रिया पल पल प्रतीक्षा में व्याकुल हैं। प्रियतम विरहमें उनका काल बीतता ही नहीं। अति दीर्घ हो गया है वह। प्रिया के लिये अब पल पल असह्य हो रहा है। वे बार बार अपनी प्राणसखी ललिता को संबोधित कर कहती हैं— "ललिते, तुम्हें सचमुच अपना हृदय खोलकर बताती हूँ, मैं उनका संवाद अपनी किसी सुख आशा को लेकर नहीं पूछ रही, न मुझे अपने किसी लोक परलोक के नाश की तनिक भी चिन्ता है। वे कहीं रहें, बस सुखी रहें, यही मेरे हृदय की एक मात्र जिज्ञासा है। फिर वे मुझसे अनन्त दूर, कहीं, किसी देशमें जावें, रहें, मेरे लिए क्या अंतर पड़ता है ? वे मेरे हैं, कहीं जावें, रहें, वे मुझमें ही हैं, मुझे उनसे कौन विलग कर सकता है ? परन्तु यदि वे सुख-संवाद प्राप्त करने के इस अधिकार से भी मुझे वंचित करते हैं. तो फिर इस उनकी स्मृति रूपी धरोहर को भी वे मेरे पास क्यों छोड़े हैं? वे अपनी स्मृति भी मेरे हृदय से दूर हटादें। वे मुझे अपने पास कभी भी नहीं बुलावें, परन्तु वे सुखी हैं बस, इतना संवाद तो मुझे देदें। और सनही मन प्रिया जैसे अपने प्रियतमसे बात कररही हों गुनगुनाने लग जाती हैं—

"बोलो नाथ, कौन मुझ दुखिया का अपना बचा है ? तुम्हारे सिवा किसकी मुझ

से ममता है, तुम तो मेरे मन की, भीतर के भीतर की बात जानते हो ? तुम मुझमें ही तो सदा रहते हो, न ? तुम्हीं तो मेरे जीवन के जीवन हो, और तुम्ही मेरे प्राणों के प्राण हो। फिर तुम मुझसे कैसे छूट सकते हो ? तुम्हारी मुझसे पृथकता कैसे संभव है। और लो, एक दिन प्रियतम पकड़ में भी आगये। सखी ने किसी तरह उनसे बात भी की। प्रिया का प्रेम-संवाद भी उन्हें दिया, फिर भी प्रियतम ने प्रिया के प्रति कुछ भी रुख नहीं जोड़ा। प्रिया का पत्र भी बिना पढ़े ही तुरंत लौटा दिया। अपना सुख, दुःख भी कुछ नहीं बताया। सखी के नेत्र प्रणय कोप से भर आये। वह प्रियतम के इस नीरस, रसशून्य ही नहीं, सर्वथा उपेक्षासे युक्त दुर्व्यवहारसे अत्यंत क्षुब्ध होकर लौट आयी। प्रियतम के व्यवहार से अति पीड़ित हुई, वह। वह कैसे अपनी प्राण सखी को यह दुःसंवाद सुनावे कि प्रियतम ने ऐसा तिरस्कार किया है उसका। उसे अपने प्रति किये गये तिरस्कार की चिन्ता नहीं है। परन्तु प्रिया का कोमल हृदय कैसे इस दारुण पीड़ा को सह सकेगा ? कैसे वह ये शब्द सुन सकेंगी कि प्रियतम का रुख प्रियाके प्रति सर्वथा प्रेमयुक्त नहीं है। कोपसे भरी वह सखी प्रिया के पास जाती ही नहीं, सीधे ललिता से मिलती है। एकान्त में ललिता के सम्मुख उसका कलेजा हाहाकार कर फूट पड़ता है। ललिता उसे धैर्य दिलाती है, एवं आश्वासन भी देती है कि वह कोई न कोई उपाय अवश्य करेगी। ललिता ही अति आग्रह करके उसे प्रिया के सम्मुख भेजती हैं और प्रिया, जैसे सब घटना का उन्हें ज्यों का त्यों पता हो, ज्ञान हो, अत्यंत भावावेगवश उसे देखते ही उससे लिपट जाती हैं। कितना प्रेम उस सखी पर न्यौछावर कर देती हैं, प्रिया। भावावेश में ही बोलती जाती हैं— "क्यों दुःखी होती हो, बहिन ? प्रियतम ने मेरा तिरस्कार कर दिया, उन्होंने मेरे संवाद का भी निरादर किया, तुमसे अतिनीरस व्यवहार किया, बस, इसी लिये न तुम दुःखी हो। वे पूर्ण स्वतंत्र हैं. बहिन। वे सुखी हैं, न ? मैं इतना ही जानना चाहती थी। बस, यही एक संवाद मुझे मिलजाय, मात्र इतना ही मेरा प्रयोजन था। वे परम सुखी हैं, मुझे भूलकर भी, ठुकराकर भी, वे सुखी हैं, यही संवाद मैं चाहती थी। अब मेरा कार्य तो तू कर ही आई। प्रियाके इतने निर्मल प्रेम को देखकर सखी का प्रणय-कोप प्रियतम पर और अधिक हो जाता है। परन्तु प्रिया को बाह्यज्ञान कहाँ ? वे तो बोलती ही जाती हैं, "सद्‌गुणनिधि, रससुधानिधि, तुमही मेरी अमूल्य विभूति हो, समस्त सम्पदा हो, मेरे हृदयका पवित्रतम सुख तुमही हो, तुमही तो मेरे सब सम्मान हो, तुम मेरा तिरस्कार

करो, यही तो मेरा सब से बड़ा सत्कार है। तुम मेरे पराधीन होओ, यह भला मैं कैसे चाह सकती हूँ, तुम पूर्ण स्वाधीन रहो, जहाँ जी चाहे जाओ, जिसे चाहो उसे भोगो, जहाँ रुचिहो, जैसी रुचिहो, पूर्ण सुख, स्वच्छन्दता से विलसो, मेरा प्रतिबंध थोड़े ही है। तुम्हारी प्रसन्नता ही मेरा सम्पूर्ण मनोरथ है। नाथ, तुम मेरे कभी मत रहो, फिर भी मैं तो तुम्हारी ही हूँ।" और प्रिया के नेत्र झर-झर बरसने लगे। और लो, आज ललिता अत्यंत कुपित हो रही है, उसने सभी सखियों को निर्देश दे दिये हैं कि प्रियतम अब कभी इस कुंजस्थली में प्रवेश नहीं कर पावें। अभी अभी एक सारिका ने अत्यंत निराशा पूर्ण संवाद दिया है। परन्तु प्राणसखी रानी की, प्रिया की, स्थिति विचित्र है। उन्होंने तीन दिनों से अन्न जल भी नहीं लिया है। रात दिवस स्मृति की प्रगाढ़ता में ही डूबी रहती हैं। अविरत प्रगाढ़ स्मृति में, तन की स्नानादि नित्य क्रिया का भी ज्ञान उन्हें नहीं है। ललिता किसी तरह बदन में जल डाल स्नान सम्पन्न करा देती हैं। किसी तरह अपनी ही अँगुलियों से प्यारी सखी के दाँत माँज देती हैं। और साड़ी बदल देती हैं। देश का, कुल का, कालका, लोक का, वेद का कुछ भी ज्ञान ही नहीं है, उन्हें। न लज्जा ही रही है। सम्मुख कौन गुरुजन खड़ा है? वे किसी को पहचानती ही नहीं। उन्हें तो सर्वत्र बस प्रियतम, प्राणनाथ ही दिखलाई पड़ रहे हैं। जो प्रियतम प्रिया से इतनी उपरति दिखा रहे हैं कि उसका पत्र भी नहीं छूते, प्रिया के अति दीन हो विनय पर विनय करने के उपरान्त भी एक निमेष के लिये दर्शन देने भी नहीं आते, उन्हीं प्रियतम के इतने विपरीततम व्यवहार का भी प्यारी को जैसे कुछ ज्ञान ही नहीं। वे तो अपने चित्त के नितनूतन नये नये चाव से, हृदय भर नित्य, निरवधि, निर्बाध मिल रही हैं, प्रियतम से। उनकी प्रियतम रति वेग पूर्वक सर्वत्र, सब दिशाओं में बिना ओर छोर के प्रवाहित हो रही है।

प्रिया बार बार जोर से बोल उठती हैं। ललिता को संबोधन कर कहने लगती हैं :— 'क्यों कठोर बन रही हो बहिन। मैं प्रियतम मुख-चन्द्र के दर्शन के बिना कैसे जीवित रहूँगी? तुम क्या कह रही हो? प्रियतम से मान करूँ, उन्हें शिक्षा दूँ। कैसी शिक्षा? क्या अपराध है उनका? स्वाधीनाचरण करना, अपनी मनमानी करना, अपनी रुचिकी करना, यही न अपराध है उनका? बता ललिता, उनको पराधीन कर लेना क्या प्रेम है? वे मेरे मनकी ही करते रहें, अपने मन की कुछ न करें क्या इसी का नाम प्रेम है? ललिता, मेरे मन के विपरीत तनिक

भी नहीं हुआ है, न भविष्य में कभी होगा। क्या देखा है सारिका ने? मैं बताती हूँ, यही तो देखा होगा कि वे शैव्या की कुंज में मधु पी रहे थे। अत्यन्त प्रेम से शैव्यादि सखियाँ उन्हें घेर कर विलस रहीं थीं। वे निर्लज्जवत् सारिका को देख मुसका रहे थे। तो इसमें क्रोधित होने की कौन सी बात है? बहन, वे सुखी हैं, यह सुनकर तो मेरा हृदय सुख-समुद्र में डूब गया है। देख, मैं आज कैसी सुखी हूँ। मेरे आनन्द की सीमा नहीं। देख ललिता, मेरा रोम रोम आनन्द से नृत्य कर रहा है। आज इतने दिनोंमें मुझे प्रियतम सुखी हैं, यह सुखसंवाद मिला। वे सुखीहैं, इससे बढ़कर और मुझे क्या सुखसंवाद चाहिये। और वे भावावेशमें चीख उठती हैं, 'ललिता, मुझे रोकना मत। चाहे मैं बदनाम हो जाऊँ, व्यभिचारिणी, कुलटा कहाऊँ, मेरा अपयश ही तो होगा, परन्तु मैं मेरे प्रियतम का हँसता हुआ मोहन मुख अपने नेत्रों से देख तो पाऊँगी। मैं शैव्या की ही कुंज में जा रही हूँ, जा रही हूँ, शैव्या की दासी बनने। शैव्या की दासी बनने से चाहे मुझे कुल-मर्यादा का त्याग करना पड़ेगा, वृषभानु राजनन्दिनी न कहकर मुझे लोग शैव्यादासी के नाम से पुकारेंगे, इससे तुम सब बहुत दुखी हो जाओगी, और तुम सबको दुखी देखकर मेरे जीवन पर सचमुच दुःखोंका सागर ही उमड़ पड़ेगा, मेरा मानसम्मान नष्ट हो जावेगा, मेरे सारे अधिकार छिन जावेंगे, मुझेपल पल अपमानित, दासी जीवन बिताना पड़ेगा, परन्तु इससे क्या? मेरे प्रियतम को सुखी तो फिर मैं देख ही सकूँगी? उनका सुखसदन मुख निहारकर मेरे प्राण तो सुख पावेंगे? चाहे मुझे कितना ही कष्ट, अशान्ति, क्लेश हो, सम्पूर्ण व्रज प्रदेश की राजकुमारी होकर दासी बनने से धर्म हानि होकर मुझे भीषण पाप लगेगा, मेरे सब कर्म अकर्म हो जावेंगे, मुझे घोर यातना सहनी पड़ेगी, क्योंकि मेरे शरीर को श्रम करने का अभ्यास नहीं है, मेरे सब सुख मिट जावेंगे, मेरा अहंकार चूर चूर हो जावेगा, मुझे सब बेशर्म कहेंगे, परन्तु मैं अपने मन मोहन का हँसता सुखमय मुखारविन्द तो देख ही पाऊँगी? प्रियतम मुझे नहीं चाहेंगे, शैव्या भी मेरे सम्मुख प्रियतम के साथ विलास कर करके मेरे उर पर शूल चुभावेगी, मैं शैव्या की सौत्य-दुत्कार सहूँगी, शैव्या मुझे कुंज में प्रवेश भी नहीं करने देगी, पहरेदार बैठा देगी, मेरे प्रियतम दर्शन के समस्त द्वार बंद कर देगी, फिर भी मैं उसके चरणों में गिर जाऊँगी, विनय प्रार्थना करूँगी, मैं अपने प्रियतम के चरणों की किंचित सेवा तो पा ही जाऊँगी, उन्हें सुखमय देख तो सकूँगी ही, और सचमुच ही प्रिया चल दी, शैव्या के कुंज की ओर।

प्रिया तो बावरी हो गई हैं। उन्हें न तन की सुधि है, न वसन की, न अपने मन की। उनके नयन अपलक हैं। सिर के केश बिखरे हैं। उन्हें बाह्यावेश ही नहीं है। वे तो 'हा, प्राननिकेत !' कहती दौड़ चली हैं। उनके पीछे ललितादि सखियाँ चल रही हैं। प्रिया की गति इतनी तीव्र है, सखियाँ प्रियाके साथ चल ही नहीं पारही हैं। प्रिया मन ही मन गुनगुना रही हैं, ''प्रियतम राग ही राग करें, वैराग्य करने का उनको कोई अधिकार ही नहीं है क्या ? वे मुझसे मिले ही मिले रहें, क्या उन्हें मुझे त्यागने का अधिकार ही नहीं है ? नहीं, नहीं, वे पूर्ण स्वाधीन हैं, उनको अपने पराधीन देखकर मैं कैसे सुखी रह सकती हूँ। उनके प्राण दुःखी हों और वे मेरे पास रहें, इसमें मुझे कौन सुख है ? मेरे प्राण तो उनके प्राणों में ही बसते हैं। मेरे प्राण उनके चरणों के दास हैं। फिर मेरा अपना कौन सुख है ? उनके प्राणों को जिसमें सुख है, वही तो मेरा सुख है। इसके अतिरिक्त सुख दुख क्या ? मेरा कौन अभिमान, कैसा मान ? प्रियतम ही तो मेरा मान हैं, सम्मान हैं। "मेरे तो नाथ ! तुम ही सब कुछ हो, मैं मात्र तुम्हारे ही सुख की साधन हूँ। तुम अपना सुख आराधना ही मुझसे कराते रहो। मेरा सुख आराधन कभीमत करना। प्रिया— "हा, प्राणनिकेत, हा प्राण वल्लभ, हा जीवन सर्वस्व," पुकार उठती हैं। वे कभी लालसा प्रकाशित करती हैं, कभी रोती बिलखती हैं, कभी आहें भरती हैं, सुबक उठती हैं। 'हे गुणनिधि ! हे मधुर ! हे मोहन ! हे स्पर्शमणि ! हे राधाधन ! हे राधासुख, हे सुखार्णव, हे परमाह्लाद," कहकर रोमान्चित हो उठती हैं।

सम्मुख ही शैव्या के कुंजमें द्वार पर ही प्रियतम प्रियाका स्वागत करने खड़े हैं। सबसे पहले शैव्या ही दौड़ कर रानी के चरणों में गिरजाती हैं। उसके आँसू नहीं थमते। "सब मेरा अपराध है, रानी, सब मेरा अपराध है। मैं तुम्हारा प्रियतम-प्रेम कितना अगाध है, यह देखना चाहती थी। चलो बहिन, कुंजमें चलो। मेरा कुंज पवित्र हो गया। तुम्हें पाकर मेरे कुंजका पत्ता पत्ता प्रेम से सन जायगा। तुम प्रेम की साक्षात प्रतिमा हो। मैं तो तुम्हारी दासी की दासी भी होने योग्य नहीं। और शैव्या प्रिया को, ललिता को, सब सखियों को, अपने कुंज में ले जाती हैं। वे प्रेम विह्वल हैं। और रानी को इस बात की कहाँ अपेक्षा है ? उन्होंने तो अपने प्रियतम का मुख देख लिया न। उनका सुखमय मुख देखकर वे तो अपने स्वरूप भावसिन्धु में डूब गई हैं। उन्हें सर्वत्र सबमें प्रियतम

ही दीख रहे हैं। कुंज में, पत्ते पत्तेमें, पुरुषों में, ललिता में, शैय्या में, सखियों में उन्हें तो सर्वत्र प्राणनाथ की ही छवि भरी दृष्टि गोचर हो रही है।

गुणमधुर प्रियतम के अंक में प्रिया अवस्थित हैं। नित्य ही वहीं उनका सच्चानिवास है। और प्रियतम के पास क्या अदेय है अपनी प्यारी के लिये। वे अपनी प्यारी के अंग अंग को ऐसा सुमधुर स्पर्श दे रहे हैं, इतने लालायित हो वे अपनी प्रिया के अंग अंग को देख रहे हैं, कितने न्यौछावर हो रहे हैं वे अपनी प्राण प्यारी की प्रेम भरी छबि पर, कि वाणी वर्णन करने में असमर्थ है। कैसा सुमधुर रस समुद्र लहरा रहा है!

सारिका बोल उठी, "देखा शुक! कैसे सुखस्वरूप प्रियतम हैं और कैसी प्रेम प्रतिमा प्यारी हैं। कहाँ है शैय्या, और कहाँ है कुंज? सर्वत्र प्रियतम प्यारी, प्रियतम प्यारी ही तो हैं। सब सखियों में प्रीतम ही प्रीतम, प्यारी ही प्यारी तो हैं। प्रेम ही प्रेम है। प्रेम ही शैय्या है, कुंज है, निकुंज है। प्रेम ही सब लीला है, सब रस है,जो लहरा रहा है, अनन्त विचित्रताओं में। शुक सारिका अत्यन्त सुमधुर कंठ से गा रहे हैं:—

दासी मैं हो चुकी सदा को अर्पण कर चरणों में प्राण।
प्रेम दाम से बँध चरणों में प्राण हो गये धन्य महान्॥

सारिका बोल रही है—किसके प्राण महान् हैं? शुक, किसके प्राण धन्य हैं? जो प्रेम दाम से बँधे हैं, वे ही तो प्राण महान् हैं। क्या अभिमान में बँधे प्राण महान् हैं? किसका अभिमान है? देव का, देवता का, ब्रह्मा का, ऋषि का, मुनि का, तपस्वी का, त्यागी का, किसका अभिमान है? इस कागविष्ठावत् देहका ही तो सुख है, सबको। कागविष्ठा में भी कोई सुख है क्या? यदि कागविष्ठा में सुख नहीं है, तो ब्रह्मा पद में, विष्णुपद में रुद्रपद में, स्वर्गमें, उच्चातिउच्च लोकोंमें भी किसे सुख है? वैकुण्ठमें भी कागविष्ठा देह का ही तो सुख है। यदि वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक, कैलास सभी स्वसुख भावापन्न हैं, 'स्व' की बड़ी से बड़ी स्वतंत्रता, मुक्ति का दान करने वाले ही तो हैं, तब उनका महत्व ही कहाँ रहा? मुक्ति भी जब 'स्व' से ही युक्त है, 'स्व' की ही स्वाधीनता है, 'स्व' का ही आत्यंतिक सुख है, तब वह महान् सुख कैसे हुआ? वह बड़े से बड़ा सुख भी अल्प ही तो है, क्योंकि अहं सदा अल्प ही है, सीमित ही है, परिच्छिन्न ही है। प्रियतम ही महान् हैं,

क्योंकि वे सर्व हैं, वे अहं नहीं हैं, वे अहं, तत्, त्वं, इदं, अयम्, वयम्, सब हैं, वे शैव्या भी हैं, ललिता भी हैं, विशाखा भी हैं, चन्द्रावली भी हैं, कंस भी हैं, दुर्योधन भी हैं। वे सर्व हैं, वे महान् हैं और उनके चरणों में अर्पित प्राण ही महान् हैं, धन्य हैं।

हे शुकराज ! यज्ञ से, दान से, तप से, सेवा से, पूजा से, देवाराधन से और सम्पूर्ण पुण्याचार से क्या मिल सकता है ? बताओ, जो स्वयं ऐश्वर्य रूप हैं, वे भगवान भी किसी को क्या दे सकते हैं ? वे विभूति का ही दान तो देंगे। मुक्ति भी क्या है ? बोलो शुक, दुःखों का आत्यंतिक नाश ही तो मुक्ति है। उसमें सुख का नवनवायमान आस्वादन कहाँ है ? अशान्ति का आत्यंतिक नाश ही तो शान्ति है। इसीलिये वह मुक्ति है, अशान्ति से मुक्ति है। दुःखों से सदा के लिये मुक्ति है। तब वह महान् से महान् विभूति ही तो है। लौकिक भोग, वैभव इसी लिये हैं, क्योंकि वे दुःखों को कम कर देते हैं। स्वर्ग में दुःख कम हैं, इसीलिये स्वर्ग स्वर्ग है। वैकुण्ठ में दुःख और अल्प हैं, इसीलिये वैकुण्ठ मुक्तिपद है। मुक्त होने पर दुःखों का आत्यंतिक नाश ही तो हो जाता है। जैसे स्वर्ग विशिष्ट भव है, वैसे ही वैकुण्ठ भी विशिष्ट विभव है, और मुक्ति भी विशिष्ट विभव, विशिष्ट भूति, विभूति ही तो कहलायेगी। भगवत् शब्दकी निरुक्ति यही तो है। जो अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त धर्म, अनन्त यश, अनन्त श्री, अनन्त ज्ञान और अनन्त वैराग्य सम्पन्न हो, वही भगवान है।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः
ज्ञान वैराग्य योश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना
ज्ञान शक्ति बलैश्वर्य वीर्य तेजांस्यशेषतः।
भगवच्छब्द वाच्यानि बिना हेयैर्गुणादिभिः॥

तो भगवान नारायण अपनी उपासना करने वाले को अनन्त ऐश्वर्य देंगे, वीर्य देंगे, अनन्त श्री देंगे, अनन्त यश, ज्ञान और वैराग्य ही तो देंगे।

इसीलिये भगवान जिसपर अपरिमित कृपा करेंगे, उसे अपने अनन्तैश्वर्य भूति, निधान पद का दान कर देंगे, सालोक्यादि पञ्चविध मुक्ति दे देंगे, परन्तु हैं ये सब भोग ही, मात्र भोग ही।

हे शुकराज ! सम्पूर्ण सृष्टि ही भोग पर आधारित है। भोग जीवका

सहज निज संस्कार है। अतः इस भोग बुद्धि का अस्तित्व मिटा देना असम्भवसा ही है। किसी भी साधन से स्व भोग-सुख वृत्ति का नाश होता ही नहीं। चाहे निम्न से निम्न नारकीय सुख हो, या सर्वोच्च स्वसुख हो, यह स्वसुख भोगमय होने से महान् नहीं है, अल्प ही है। इसे पाकर कोई धन्य पद को, प्राप्त कर ही नहीं सकता। इसीलिये जब प्राणों को प्रेम दान से, प्रेम रज्जु से बाँध कर प्रियतम रसराज के चरणों से संलग्न कर दिया जाता है, तभी उसे आत्यंतिक आनन्द, पूर्ण कृतकृत्यता के दर्शन होते हैं। तभी नित्य आनन्द का आस्वादन क्या है, धन्यता किसे कहते हैं, यह ज्ञान होता है। दुःखकी आत्यंतिक निवृत्ति, अशान्ति की आत्यन्तिक निवृत्ति को परमानन्द कहना मात्र भ्रम है। दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति, अथवा मुक्ति पद तो वह भूमि है जिस पर प्रेम प्रारंभ होता है। जग जंजाल छूटा, मोहनाश हुआ, ज्ञान हुआ, भोगों के प्रति पूर्ण वैराग्य हुआ, परन्तु इससे भोग बुद्धि का आत्यंतिक नाश हुआ क्या? जब इसका समूल नाश हो, तब तो तत्सुख प्रेम ज्योति का प्रकाश हो। अतः मुक्ति पद तो मात्र भूमि बनी है, जिस पर प्रेम महल खड़ा होता है। इसीलिये रसिक जन मुक्ति, मुक्ति दोनों की स्पृहा का त्याग कर प्रेम-मार्ग में पैर रखते हैं और प्रियतम सुख-कामी रागात्मक विशुद्ध प्रेम प्राप्त कर धन्य एवं महान् होते हैं। वास्तव में धन्य तो हमारी प्रिया ही हैं। धन्य तो हमारे प्रियतम ही हैं, जो तत्सुख प्रेम सम्पदा के पुन्जीभूत विग्रह हैं। मात्र वे ही प्रेम धन विग्रह हैं, भावधन विग्रह, रस-धन विग्रह हैं। महाभाव रसराज हैं।

हे शुकराज! यह सम्पूर्ण विश्व मात्र वासनामय है। वासना ही इसकी उत्पत्ति का हेतु है। वासना ही इसकी रक्षा करती है और वासना में ही इसका प्रलय होता है। सर्वातीत, सर्वनिरहित में, "तदैक्षत बहुस्याँ प्रजायेयेति" यह उसकी पहली सर्व होने की वासना ही तो थी, जिसने उसे बहुत बनने का ऐश्वर्य प्रदान किया। यह ऐश्वर्य ही भगवती महालक्ष्मी है, जो इन माया-पति, सर्व व्यापक, सर्वाधार, दिव्य सगुण, साकार विग्रह, विश्वमय, विश्वाकार, भगवान वासुदेव की आधार शक्ति हैं। हे शुकराज! सृष्टि की वासना ही सृष्टा की उत्पति है। उसकी जानने की वासना ही सृष्टा की शक्ति ज्ञातशक्ति, चिच्छक्ति है। उसे ही भगवती, आदि-महाविद्या, महा सरस्वती कहते हैं। इस सृष्टा ने जब सृष्टि की तो उसे पालने की वासना ही उसका विष्णु रूप और उनकी शक्ति वैष्णवी बन गई। उन्होने उसे संहार की वासना की तो यह वासना ही उसका संहारक स्वरूप

'रुद्र' हो गया और इस वासना से ही उनकी काल शक्ति महाकाली उत्पन्न हुई। इस वासना को चाहे संकल्प नाम देदो, चाहे कामना देदो, चाहे ईक्षण नाम देदो, कुछ भी नाम देदो, है यह इच्छा, वासना ही। हे शुकराज! यह वासना ही इन सब देवों के, ऐश्वर्याधिपतियों के, लोक हैं। यह वासना ही सर्व, स्थूल, सूक्ष्म इनके देह हैं, और यही समग्र संसार है।

हे शुकराज! यह वासना ही देह है, यही प्राण है, मन है, बुद्धि है, और इन्द्रियाँ हैं, इनके सब कर्म वासना ही हैं। यही अभिलाषा है, आसक्ति है, यही कामना है, यह आशा, तृष्णा ही सब का मर्म है, रहस्य है। यही वासना माया है, मोह है, अहंता है, और यही वासना, ममता है। यह वासना ही ममता के सब सब आचार है। वासना ही इस, मेरे तेरे के, परमार्थ एवं स्वार्थ के, ऊँचे, नीचे, सब व्यापार है। यही वासना धन है, जन है, जीवन है, स्वजन है, सुयश है, सत्कीर्ति है, और परमादर, सम्मान है। यह वासना ही सिद्धि है, सम्पत्ति है, सफलता है, अमल प्रज्ञा है, और महान विवेक है। यही वासना समस्त देह धर्म है, परिवार धर्म है, लोक धर्म है, वैदिक धर्म है और समस्त देह, परिवार, लोक एवं वेद है। यह वासना ही सर्वधर्म है, धर्मी है, धर्मात्मा है, धर्मशरीर है, और धर्मका मर्म है। यह वासनाही देह सुख, कुटुम्ब सुख, स्वर्ग सुख, अनुपम, अतुल मुक्ति सुख, और ब्रह्मानन्द है। यह वासना ही सब अवस्थाएँ, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया है। यही सबका लक्ष्य, सबके विचार हैं। यती भूत है, भविष्य है और वर्तमान काल है और यही सब देश है। हे शुकराज! जब भी, जिस पावन क्षण में, जिस किसी महा भाग्यवान् कि यह वासना सर्वथा क्षीण होकर नाश को प्राप्त हो जाती है, उसके सम्मुख यह चित्र विचित्र समग्र दृश्य, ये, ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु आदि देवता, ये लोक लोकान्तर, इनकी अनन्त वैभवमयी शक्तियाँ, सब ऐसी अदृश्य हो जाती हैं कि इनका कहीं शशशृंगवत् अन्वेषण, पता ही नहीं चलता। जैसे मरुस्थल में मृगतृष्णा का जल कहीं नहीं होता, आकाश में स्वप्न महल कहीं नहीं होता, और वंध्या पुत्र का कोई अस्तित्व ही कहीं नहीं होता, उसी प्रकार वासना के नष्ट होते ही यह विश्व प्रपंच, यह समग्र दृश्य, कहीं नहीं रहता, कहीं नहीं रहता।

अब बताओ शुकराज, जिनमें मात्र श्रीकृष्ण सुखैक वासना ही शेष रही है, उन प्रिया को यह दृश्य संसार कैसे दिखेगा? उनके लिये कहाँ मुक्ति है और

कहाँ मुक्ति है। श्रीराधा तो सब समय, सदा सर्वदा मात्र प्रियतम सुख रूप ही हैं न? उनमें स्वाभाविक ही जगत जंजाल है ही नहीं और इसीलिये वे सत्य ही कहती हैं :—

देख लिया त्रिभुवनमें बिना तुम्हारे और कौन मेरा ।

प्रिया के प्रेम सूर्य की अनन्त ज्योति में न नारायण दिखते हैं, न ब्रह्मा, न विष्णु, न ही रुद्र। वहाँ तो मात्र प्रियतम ही संसार है। प्रियतम का ही संसार है, और प्रियतम के लिये ही संसार है। उनके समस्त जीवनाचार मात्र प्रियतम हैं। प्रियतम ही उनका जीवन हैं और वे प्रियतम को ही देखती हैं, और प्रियतम उन्हें देखते हैं। तब प्रिया का त्रिभुवन ही प्रियतम हैं और उनके त्रिभुवन में प्रियतमके अतिरिक्त अन्य है कौन? प्रियाका हृदय अहंकार, ममता, आशा, तृष्णा, वासना, कामना, सुख, दुःख, लाभ, हानि, जीवन, मरण, जय, पराजय, मान, अपमान, स्तुति, निन्दा, प्रिय, अप्रिय, शुभ, अशुभ, मेरा, तेरा, मैं, तू, सब भेदों से, द्वैतों से सर्वथा मुक्त है, सर्वथा सर्वथा आत्यंतिक मुक्त है। फिर उनमें, सृष्टि एवं सृष्टा कहाँ? उनमें वस्तु, सुवस्तु, कुवस्तु कुछ भी नहीं। वहाँ तो मात्र प्रियतम हैं, जिनमें अपनी प्रिया के लिये अमित चाव है, और प्रिया हैं जिनमें अपने प्रियतम के प्रति अखंड, अपार प्रेम भाव है। देखो शुकराज, अपनी प्रिया का भाव दृष्य तो देखो और शुक सारिका दोनों देखने लगेः—

कृष्ण कुंड का सरोवर है। प्रिया सखियों सहित शोभा देखती आ रही हैं। कैसी शोभा है सरोवर की। श्याम वन से घिरा श्याम सरोवर है। चारों ओर मयूर नृत्यरत हैं। आकाश भी नव मेघों से घिरा है। कहीं दूर कोई एक चातक प्रीतम प्रीतम पुकार रहा है। प्रिया इस चातक का प्रीतम, प्रीतम शब्द सुनते ही प्रिया भावाविष्ट होने लगती हैं। इसी समय कहीं से, वंशी ध्वनि भी सुनाई पड़ जाती है। अब क्या है? इतना उद्दीपन, प्रिया के लिये भाव सिन्धु में डूबने को, आत्मविस्मृत हो जाने को बहुत अधिक है। वे अपनी सारी सुध बुध भूल जाती हैं। ललितादि सखियाँ समझ जाती हैं कि प्रिया स्वसंज्ञा में नहीं हैं। वे उन्हें एक स्फटिक वेदी पर नीले मखमल की गद्दी में बैठा देती हैं। प्रिया प्रियतम की स्मृति में तल्लीन होती होती मानों प्रियतम स्मृति रूप ही परिणत हो जाती हैं। वे प्रियतम हैं, मैं प्रिया हूँ, मुझे प्रियतम की स्मृति हो रही है, इस त्रिपुटी का भी, इन तीनों का भी उनके चित्त में सर्वथा अभाव हो जाता है।

अस्ति, भाति, प्रिय, तीनों समाप्त। न आस्वाद्य प्रियता रही, न आस्वादक प्रिया। आस्वादन प्रेम ही प्रेम, बस। निर्विशेष प्रेम। अस्ति एवं भाति दोनों लय हो गईं, प्रीति समुद्र में। निर्विशेष आनन्द। मात्र आनन्द शेष रहा। जब कर्म ही नहीं रहा, तो सम्पूर्ण आस्वादन धर्मी के अभाव में मात्र शून्य ही हो गया। स्मृति तो स्मृतिकर्ता की अपेक्षा से ही है न ? जब स्मृतिकर्त्ता ही नहीं तब स्मृति, शून्य ही तो है। हृदय सहज स्वतंत्र, पूर्ण मुक्त सर्वथा खाली हो गया। सखियाँ प्रिया की इस सर्वथा निर्विकल्प समाधि की अवस्था देखकर चिंतित हो गईं। कई एक प्रियतम को बुला लायीं। प्रियतम मुसकाते आये। प्रियतम ने आते ही, अपने बाह्य स्पर्श मात्र से प्रिया के हृदय में अपार रस की बाढ़ भर दी। प्रिया को अपने शून्य मन में प्रियतम भरे हुए दिखाई पड़े और तत्क्षण ही उन्हें यह अनुभव हुआ मानो प्रियतम का रोम रोम अत्यन्त प्रेम से भरा 'राधा, राधा' राधा, राधा' पुकार रहा हैं। प्रियतम की राधा, राधा पुकार सुनते ही विचित्र मधुर मादकता से चूर प्रिया को बाह्य ज्ञान हो गया। उन्होंने ज्योंही नेत्र खोले, सम्मुख माधुर्य सदन अपने प्रियतम का मोहन मुख देख वे सहम गईं। वे अर्ध चेतना में ही स्वयं दैन्य की साकार मूर्ति बनकर अति विनम्रता के साथ बोलने लगीं :—

"प्रियतम तुम मुझसे क्यों मोह करते हो ? तुम तो साक्षी हो मेरी हृदय की अवस्था के, मेरे हृदय में तो प्रेम नाम की वस्तु ही नहीं है। वह तो सर्वथा खाली है, नीरस है. उसमें न सुवस्तु है, न कुवस्तु है, उसके लिये हे हृदयेश, सृष्टि, प्रलय, सब अवस्तु, सत्ताहीन हो गये हैं। फिर आप के शुद्ध सत्वरूप चित्त में मुझ रस-शून्य के प्रति नित नवीन चाव के उदय होने का निमित्त क्या ?"

प्रियतम कहने लगे– "प्राणेश्वरी, जिसका हृदय पूर्णरूप से खाली हो जाता है, जिसमें कुछ भी वस्तु, सुवस्तु, कुवस्तु, शेष नहीं रहती, उसमें ही तो रसमय प्रेम के बीच पड़ते हैं। हे प्रिये, जिसमें वस्तु, सुवस्तु, एवं कुवस्तु रहती हैं, वह तो वस्तु, सुवस्तु एवं कुवस्तु की अशांत ध्वनियों से इतना बहरा रहता है कि मेरी 'राधा, राधा' प्रेम ध्वनि, प्रेम पुकार को सुन ही नहीं सकता। "राधा" शब्द तो वही बोलता है, जिसके पास राधा के सिवा न तो कोई वस्तु रहती है न किसी भी वस्तु की चाह। इसी प्रकार राधा शब्द यह प्रेम पुकार वही सुन

सकता है जिसके पास किसी भी सुवस्तु, कुवस्तु का सर्वथा सर्वथा अभाव हो जाता है, और इनकी चाह भी सदा सदा के लिये समाप्त हो जाती है। हे प्रिये, इसीलिये मैं ही तो राधा, राधा को पुकारता हूँ और मैं ही राधा को देखता हूँ। जिसका त्रिभुवन में कुछ भी है, जिसमें त्रिभुवन की सत्ता भी है, वहाँ तो मेरी रससत्ता ही नहीं है। जब मेरी रससत्ता ही नहीं, तब राधा की भावसत्ता वहाँ कहाँ से होगी ? राधा तो शुभ्र रस सागर की सुधा है न ? अतः जिसका कुवस्तु सुवस्तु की चाह से हृदय खाली ही नहीं हुआ है, वह राधा सुधा तक कहाँ से पहुँचेगा, वह तो इन कुवस्तु-सुवस्तु में ही उलझा रहेगा। प्रिये, मैं ही अकेला ऐसा हूँ जो राधा को देख सकता हूँ, अन्य है ही कौन, जो राधा को देख भी सके ? राधा भी मेरे अतिरिक्त किसी को कहाँ देखती है ? एक मात्र मैं ही हूँ जिसने राधा को देखा है और एक मात्र राधा ही है जो मुझे जानती है, देखती है, देख सकती है। और सारिका नाच उठती है :—

देख लिया त्रिभुवन में बिना तुम्हारे और कौन मेरा।
कौन पूछता है 'राधा' कह, किसने राधा को हेरा॥

हे शुक, तुमने जो पहले सुना था, "किसको राधा ने हेरा", इस पंक्ति को परिवर्तित करदो, "किसको राधा ने हेरा" की जगह "किसने राधा को हेरा," यह पंक्ति कैसी अनोखी है। गाओ, नाचो, प्रिया, प्रियतम, प्रिया, प्रियतम, प्रियतम, प्रिया, भाव एवं रस, रस एवं भाव।

श्रीकृष्ण की अमृत वाणी शुक सारिका के कानों में ध्वनित होती जाती है। "प्रिये, सामरहस्योपनिषत् में श्रुतियों ने कहा है–

अनादिरयं पुरुष एकएवास्ति। तदेव रूपं द्विधा विधाय समाराधनतत्परोभूत्।

यदि उसे एकमेव अद्वितीय मुक्ति पद में आत्यंतिक सुख होता तो वह एक से दो होकर अपनी इस समाराधना को दो होकर क्यों करता ? हे प्रिये, मुझ सर्व-शून्य में मात्र तुम्हीं तो आनन्द सत्ता रूप हो। मुझे शून्यत्व में ही यदि सुख होता, तो मैं फिर किसलिये द्वैत स्वीकार करता। एक स्थान पर ही नहीं

अनेक स्थानों पर श्रुतियाँ कहती हैं:—

> **स वै नैव रेमे, तस्माद एकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्**
> **स इममेवात्मानं द्वेधा पातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम् ।**

वह ब्रह्म पहले अकेला था, वह रमण नहीं करता था, इसीसे आज भी एकाकी पुरुष रमण नहीं करता। उसने दूसरे की इच्छा की, उसने अपने को एक से दो कर लिया। वे पति पत्नी हो गये।

तो हे प्रिये, इस युगलत्व में ही तो हमारा नित्य पूर्ण एकत्व है इसीलिये इस त्रिभुवन में न बिना तुम्हारे कोई मेरा है, और न मेरे बिना तुम्हारा ही कोई है। हम दोनों ही मात्र दोनों के हैं। मैं ही तुम्हारा हूँ, तुम ही मेरी हो। मैं ही राधा कहकर पूछता हूँ और मैं ही राधा को देखता हूँ। न कोई अन्य राधा को देखेगा, न पूछेगा। कोई अन्य हो, तब न वह राधा को देखे। और प्रिये परमसत्य तो यह है कि मैं ही नहीं हूँ, तुम ही तुम हो। सत्य, परम सत्य यही है। आत्मस्वरूपा, भावस्वरूपा तुम्हीं हो। मैं तो तुम्हारा रस-रूप विग्रह मात्र हूँ। सत्ता तो तुम्हारी ही है। इसीलिये मैंने जहाँ गीतोपनिषत् में कहा है कि मैं परब्रह्म की प्रतिष्ठा हूँ, अविनाशी अमृत की, शाश्वत धर्म की, और एकान्तिक सुख की प्रतिष्ठा हूँ, वहाँ 'मैं' शब्द तुम्हारे ही लिये प्रयोग किया है। तुम ही मुझ परतत्व, परमात्मा की भावरूप प्रतिष्ठा हो, तुम ही पूर्ण निर्मल, अविकारी भाव हो। रस तो अव्यय नहीं है, वह तो प्रसरित होता है, अतः उसका व्यय तो है ही। हाँ, भावसिन्धु से उसकी उत्पत्ति इतनी अनन्त है कि वह व्यय होकर भी अव्यय है, परन्तु उसके अव्ययत्व की प्रतिष्ठा भाव ही है। अविनाशी भाव का प्रकाश होने के कारण भले ही रस को अविनाशी अमृत कहलो। है इस रसामृत की भी भाव ही प्रतिष्ठा। प्रिये, तुम ही मेरे एकान्तिक सुख की प्रतिष्ठा हो, इसीलिये तुम मेरी ह्लादिनी शक्ति हो। प्रिये, मैं तो तुम्हें मात्र पूछने वाला, तुम्हारा ही विग्रह हूँ। मैं तो मात्र तुम्हारी समाराधना करने वाला राधा, राधा कहने वाला तुम्हारा समाराधक हूँ। और मैं तो तुम्हें मात्र देखने वाला तुम्हारा द्रष्टा हूँ। मेरे अतिरिक्त आज तक न किसीने राधा को देखा है, न राधा को देखा था, और न राधा को देखेगा। तुम भी किसको देखोगी? तुम तो मात्र अपने स्वरूप में लहराती हो! तुम देखने लगोगी, तब तो फिर तुम संकल्पमयी हो ही जाओगी, क्योंकि तुममें कोई संकल्प है ही नहीं। अतः तुम देख ही नहीं सकती। देखता

तो मैं हूँ, और वह मैं भी मात्र तुम को देखता हूँ ।

प्रिये, मैं भी पूर्ण रूप से तुम्हें नहीं देख पाता, न पूछ ही पाता हूँ । क्योंकि तुम इतनी अनन्त हो, इतनी अगाध हो, इतनी अपार हो, तुम्हारा स्वरूप मेरे पूर्ण माधुर्य को व्यक्त करने के उपरान्त भी इतना अस्पृश्य शेष बचा रह जाता है कि मैं उसमें डूबा ही रहता हूँ । न उसका तल पाता हूँ, न ही उसकी अगाधता का ज्ञान ही । इसीलिये प्रिये, मैं तुम्हें राधा, राधा कहकर स्वयं तुममें भले ही डूबता रहूँ, न तुम्हें देख ही सकता हूँ, न तुम्हें पूरा पा सकता हूँ । सचमुच ही तुम्हारा त्रिभुवन में मेरे अतिरिक्त कोई और है नहीं और मैं जो हूँ, वह भी इतना अपूर्ण हूँ कि न तुमको पूरा देख ही सकता हूँ, न पूछ ही सकता हूँ । और शुक एवं सारिका दोनों पद्य की नवीन रसानुभूति में आनन्दित हुए गाने लगते हैं:– "कौन पूछता है राधा कह, किसने राधा को हेरा । कौन पूछता है राधा कह, किसने राधा को हेरा । गाते गाते कुछ समय के लिए शुक एवं सारिका दोनों भावाविष्ट हो जाते हैं । अनन्त शान्ति । रस एवं आनन्द में सब समाहित हो जाता है ।"

इस कुल, उस कुल-दोनों कुल, गोकुल में मेरा अपना कौन ।
अरुण मृदुल पद-कमलों की ले शरण अनन्य गई हो मौन ।।–का भाव ।

धीरे धीरे सारिका की ध्यानमुद्रा टूटती है और वह शुक को भी उद्बुद्ध करती है । सारिका का कथन पुनः चल पड़ता है :—

"हे शुक ! प्रेम में न यह तट होता है, न वह तट । तट की प्रतीति मात्र होती है, और वह भी सर्वथा भावमय, रसमय ही । इसी प्रकार प्रिया का भी न यह कुल, मातृकुल होता है, न वह कुल, पतिकुल । परन्तु दोनों की मात्र प्रतीति ही होती है । हे शुक, प्रेम समुद्र का, भाव समुद्र का, निज स्वरूप भी दृष्टि सिद्ध, प्रतीति-सिद्ध नहीं है । क्योंकि जो प्रतीति है, अनुभूति है, वह तो रस की ही है । भाव अनुभूति एवं प्रतीति में आता ही नहीं । उसका प्रकाश रस ही है । वह रस-प्रकाश होने से उसका अपना निज स्वरूप भी कुछ नहीं होता । वह तो रस संकेतित ही है । इसीलिए प्रिया राधा का इस कुल में न कोई अपना है, न उस कुल में ही कोई अपना है, न ही गोकुल में ही कोई अपना है । भाव में न गोकुल, इन्द्रिय जन्य कुल है, न पितृ-मातृ कुल, एवं न ही पतिकुल है । विचार करके देखो शुक, प्रत्येक अस्तित्व को तीन ही प्रकार से जाना जा सकता है । इन्द्रियों

को हम जानते हैं, उनके मातृ-पितृ कुल मन से और वे गमन करती हैं विषय कुल में जो उनका पतिकुल है, उसकुल से किंवा उनके निज स्थूल रूप से। इसी प्रकार मन को जान सकते हैं उसकी पितृ कुल बुद्धि से, किंवा उसके पतिकुल इन्द्रियों के भोगोंसे, अथवा उसके संकल्प विकल्पात्मक स्थूलरूपसे। बुद्धि को हम जान सकते हैं उसके मातृ पितृ कुल अहंकार से, उसके पतिकुल मन से, उसके स्थूल रूप निर्णय से। ब्रह्माजी को हम जानते हैं उनके पिता भगवान नारायण से किंवा उनकी जो अभिव्यक्त सृष्टि है उससे, किंवा उनकी स्वरूपा शक्ति विद्या से। परन्तु प्रिया राधा का न पितृकुल है, न मातृकुल है, न ही पतिकुल है और न ही उनका स्वयं का ही कोई रूप ही है। जो रूप है, वह तो रसाभिव्यक्ति है, श्रीकृष्णाभिव्यक्ति है, अतः उनका पतिकुल भी कहने को श्रीकृष्ण ही हैं, उनका पितृकुल भी श्रीकृष्ण ही हैं, एवं स्वरूप भी श्रीकृष्ण ही हैं. उनके अरुण मृदुल चरण कमल ही हैं। देखो शुक, तुम प्रत्यक्ष अनुभव करो:-

शुक देख रहा है– "वह नन्दप्रासाद में उड़ रहा है। इस नन्दभवन में विधाता के कला कौशल की जैसे इति हो रही है। दिव्य रत्नों से बनी चतुःशालाएँ (कमरे) हैं। चन्दनादि के अत्यंत मूल्यवान काष्ठ कपाटों पर स्वर्ण और रजत की पच्चीकारियों तथा उनके उनके ऊपर विविध अनमोल रत्नों का जड़ाव है। मणियों के पर्वतों को काट काट कर बनाये स्तंभ, स्वर्ण के झलमलाते कलश, दिव्य वेदियाँ, मुक्ता और प्रवाल निर्मित प्रांगण, स्वर्ण एवं रजत के प्रासाद, नन्दभवन जगमग जगमग कर रहा है। छविमय होते हुए भी सब कुछ चिन्मय। मणि, मुक्ता, रत्नादि भी कठोर नहीं, अत्यंत सुकोमल।

यहाँ मृत्तिका का लेश ही नहीं, स्वर्णभूमि में मरकत मणिमय वल्लरियों की छटा फैलती रहती है। स्फटिक की वाटिकाएँ बनी हैं, तो उनमें पद्मराग की लताएँ, गुल्म और तरुराजि झूम रही है। मरकत-द्रुम-समूह कनकलताओं से आवेष्टित हैं। मणिमय वृक्ष हैं, तो उनके शाखासमूह सब विविध रत्नमय हैं। प्रत्येक शाखासमूह मणिमय पल्लव जाल से मंडित है। सब कुछ अकथनीय, अवर्णनीय, अप्रतिम। शुक एक उपवन की मणिमयी डाल पर बैठ जाता है एवं आश्चर्यचकित देखने लगता है। प्रत्येक मणिपल्लवों पर रत्नमय कुसुमनिकर झलमल, झलमल कर रहे हैं। परन्तु मणि कुसुमों से, रत्नमय कुसुमों से सौरभ भी आ रही है। मणिमय फल भी हैं, परन्तु ये सुस्वादु भी हैं। शुक एकाध फल

पर चंचु चला देता है, और उनके अमृत स्वाद पर मुग्ध हो जाता है। कृत्रिम प्रतीत होता हुआ भी सब अकृत्रिम, अनिर्वचनीय। शुक देखता है, स्थान स्थान पर अंकित शुकपिकादि हैं। ये अंकित छवियाँ, प्रतिकृतियाँ हैं कि जीवन्त विहङ्गम हैं? छविमय होते हुए भी सब चिन्मय, जीवन्त। शुक आश्चर्य चकित है। सहसा उसकी दृष्टि प्रीतम श्यामसुन्दर पर पड़ जाती है। वे एक प्रासाद की एकान्त छत पर उसे संकेत से अपने पास बुलाते हैं। परन्तु यह क्या? उसकी दृष्टि को यह क्या हो गया? सर्वत्र प्रियतम ही प्रियतम। कहीं नन्दभवन का अस्तित्व ही नहीं। न मणिमय वृक्ष, न लताएँ, न सुमन, न फल, न उपवन, न मणिमय प्राकार, न छविमय आकृतियाँ, कहीं कुछ नहीं, सर्वत्र नन्दनंदन, प्रियतम, नवनीरद श्यामलवर्ण प्रियतम ही प्रियतम। वह कहाँ उड़े, सर्वत्र आकाश भी वे ही, भूमि भी वे ही, भवन भी वे ही और स्वयम् में भी वही आकृति। उसके देह के रोम-रोम में वही छवि, मानो संकेत कर रही, उसे बुला रही है। किसी प्रकार शुक उड़ता है, परन्तु कहाँ उड़े, सर्वत्र व्योम में भी प्रियतम श्यामसुन्दर ही तो हैं। किसी प्रकार पुरानी स्मृति के अनुसार दिशा खोजकर उड़ चलता है, वृषभानुपुर की ओर। परन्तु कहाँ वृषभानुपुर है, वही नन्दनंदन की, प्रियतम की छवि ही सर्वत्र भरी है। न गोवर्धन, न वृहत्सानु पर्वत, न कोई भवन, न भूमि, न गोपी, न ग्वाल, कुछ भी तो नहीं, सर्वत्र बस प्रियतम, प्रियतम ही प्रियतम। उड़ता ही जाता है, शुक। वह कितने समय तक कितना देश लाँघ गया होगा? फिर भी उसे इस नन्दनन्दन रूप काल का न अन्त मिलता है एवं न ही देश का अंत मिलता है। वह बस, उड़ता ही जाता है। उड़ता-उड़ता थक जाता है। मन ही मन प्रियतम के चरणों का आश्रय लेता है, और पंख समेट कर गिर जाता है। परन्तु ज्यों ही उसे होश आता है, सारिका की वाणी सुनने को मिलती है, "देखा शुक, कहीं कूल, कहीं किनारा, दिखाई दिया, इस रससमुद्र का? जब यह रससमुद्र इतना अगाध है, मात्र रस ही रस है, तो भाव जो इसका आश्रय है, जो इसको अभिव्यक्त कर रहा है, वह कितना विस्तृत है, अनुमान करो? यह तो मात्र भाव रश्मि की एक झलक भर है। सूर्य की एक किरण है, जो तुम्हारे चिदाकाश को प्रकाशित कर गई। विचार करो, स्वयं सूर्य कितना विशाल है। भाव समुद्र के एक अंश में सर्वरस प्रकाशित हो जाता है, अनन्त अनन्त रूप में प्रकाशित हो जाता है, फिर भी भाव की उसे एक बूँद भी, अल्प

रश्मि भी नहीं कही जा सकती। इतना पूर्ण यह भाव है, फिर इस भाव का माँ, बाप कहाँ? यह तो स्वयं ही सब का पितृकुल है। जब ब्रह्म का भी कोई बाप और पति नहीं है, तो भाव का बाप और उसका स्वामी कौन? भाव तो ब्रह्म (रस) का भी आधार है। वही सर्वाधार है। वह ब्रह्म का ब्रह्म है। उसकी प्रतिष्ठा है। इसीलिये रस उसका पति सर्वथा नहीं है। उसकी लहर है, सूर्य की रश्मि न सूर्य की स्वामी ही होती है एवं न उसका बाप ही। वह तो सूर्य का प्रकाश ही होती है। इसलिये सर्वरस मात्र भाव सूर्य का प्रकाश है। इसीलिये प्रिया कहती हैं :- 'मैं देखती हूँ न मेरा इस कुल (पितृ कुल) में कोई अपना है, न उस कुल (पति कुल) में कोई अपना है, न गोकुल (इन्द्रिय कुल) में ही कोई अपना है। मैं इन रसरूप अरुण मृदुल पदकमलों की ही अनन्य शरण लेकर प्रकाशित हो रही हूँ। और इसीलिये मौन हूँ, क्योंकि यह भी मेरा पूर्ण प्रकाश तो है ही नहीं। परन्तु उपाय ही क्या है? इसलिए ये रसरूप प्रियतम चरण कमल ही मेरी शरण है।"

शुकराज, महान और लघुता प्रकृति के राज्य की वस्तुएँ हैं। जो पूर्ण भाव राज्य है, वहाँ महान और लघु इस प्रकार सीमांकन होता ही नहीं। क्योंकि भाव की बिन्दु भी पूर्ण है। भाव प्रकाश रस भी पूर्ण, परिपूर्ण, परिपूर्णतम है। अतः प्रियाकी दृष्टिमें सब स्वयं है, सब स्वयं रूप है। इसीलिये वहाँ रसरूप प्रियतम के चरण कमल ही उसके आश्रय हैं। बताओ शुकराज, तुम्हारा चिदाकाश भी तो भावमय ही है। अनन्तानन्त भावसागर तुम्हारे चिदाकाश में व्यक्त है, न? वह अनन्त रसरूप लहराता है, न? जब शुक शरीर के अन्तर्गत, लघुतम हृदय-कोश के भीतर चिदाकाश में अनन्त भाव समुद्र समा सकता है, तो प्रियतम के चरण कमल में वह विलीन हो जाये इसमें असंभव क्या है? हे शुकराज, यह स्थिति तुम्हारी ही नहीं, छोटी से छोटी चींटी, पिपीलिका की भी है। इन सबके अणुरूप चिदाकाश में भी सम्पूर्ण भावसागर समाहित है, डिब्बी की तरह बंद है।

हे शुकराज, अनन्त रूप जैसे नेत्र की छोटी सी बिन्दु रूप पुतली में समाहित है, जैसे सम्पूर्ण आकाश कर्ण विवर के लघुतम छिद्र में समाहित है, उसी प्रकार सम्पूर्ण भाव भी पिपीलिका के चिदाकाश में भी समा जाता है। तब नन्दनन्दन के चरण कमल तो बहुत महान् हैं। उनका आश्रय लेकर भावसमुद्र मौन हो जाय इसमें कौन आश्चर्य है।

हे शुक, बस इस भाव का एक छींटा ही पड़ जाय, उसके पश्चात सब मात्र माधुर्य सागर, आनन्दार्णव ही आनन्दार्णव है। देखो शुक, प्रिया राधा की एक छवि और देखो, परमाश्चर्यमयी इस छवि माधुरी का पान और करो और शुक देखने लगा—

"मध्याह्न का समय है। राधा कुण्ड पर, गोवर्धन परिसर पर, वन में प्रिया स्थित हैं। प्रियतम की प्रतीक्षा है। प्रिया में जहां मिलन सुख अनन्त है, वहां विरह वेदना, अमिलनवेदना भी तो अनंत है। अनन्त मिलन-सुख एवं अनन्त अमिलन- पीड़ा का युगपत् एक ही साथ लहराता समुद्र ही तो प्रिया हैं। नित्य योग और नित्य वियोग युगपन् एक ही समय एक ही साथ प्रिया में नित्य लहरा रहे हैं। प्रिया का प्रियतम से नित्य योग है। प्रियतम ही प्रिया की बुद्धि हैं, मन हैं, इन्द्रियां हैं। वे ही उनके जीवन हैं, प्राण हैं और एक एक अंग वे ही हैं। बिना किसी व्यवधान के वे ही इनका सेवन भी करते रहते हैं, सवर्था निर्भय, निस्संकोच। अनन्त अनुराग भरे वे ही तो प्रिया के हृदय हैं और वे ही हृदय में निवास भी करते हैं। वे रात दिन प्रिया में हैं। एक त्रुटि के लिये भी प्रियतम प्रिया को त्यागें, यह उनके द्वारा संभव ही नहीं। प्रिया प्रियतम दोनों परस्पर अभिन्न सत्ता हैं। उनका नित्य विहार है। नित्य सुख संयोग है। प्रिया का नित्य नूतन, नित्य सीमारहित, नित्य उपमा रहित, नित्य उपाधि रहित नित्य अनन्त, अचिन्त्य और अनिर्वचनीय प्रेम अतुलनीय रस सागर के रूप में अभिव्यक्त होने के उपरान्त भी इतना असीम है कि अनन्त भाव लहरें सारी रस सत्ता को डुबा देती हैं। समग्र रस सत्ता अगाध भावसिन्धु में विलुप्त हो जाती है। उस समय भाव इतना उन्मत्त हो उठता है कि उसका रसज्ञान ही विलुप्त हो जाता है और वह नित्य अनुभव करने लगती है:—

"देखे बिना तुम्हें पलभर भी मुझे नहीं पड़ता है चैन,
तुम ही प्राणनाथ नित मेरे किसे सुनाऊं मन के बैन ?
रूप शील गुणहीन समझ कर कितना ही दुत्कारो तुम,
चरण धूलि मैं चरणों में ही लगी रहूँगी बस हरदम ॥

प्रिया को अपने स्वरूप का न कभी परिचय प्राप्त हुआ है, न होगा। वे तो मधुर-प्रेमरस की अनन्त स्रोतस्विनी हैं, जो मात्र तीव्रगति से बहना जानती

हैं। वे कोई भोलेपन का, सरलता का दंभ नहीं करती। न मिथ्या दैन्य प्रकाश ही करती हैं। उन्हें तो छल कपट का ज्ञान ही नहीं। वे परम विनम्र, सरल, पवित्र और अमृतमय स्वभाव की सागर हैं। इसीलिये जब उनमें जैसा भाव आता है वह उसी प्रकार वैसे ही उनमें प्रकाशित हो जाता है। प्रिया में अखण्ड प्रियतम-स्मृति लहरारही है। प्रियतम स्मृति ही उनका जीवन है, प्रियतम-स्मृति ही उनके प्राण है, यही मधुर, नित्य, अखंड, प्रियतम स्मृति ही उनका परम मधुर मन है। यह स्मृति ही नित्य मिलन में अमिलन रूप हो प्रिया को परम-मधुर रसास्वादन करा रही है। भावावेश में प्रिया बेचैन हो उठती हैं। बोलने लगती हैं, "हाय, मुझ हतभागिनिका न जाने प्रियतम-मिलन कब होगा ? और यह विरह स्मृति भी अनन्त होकर लहरा उठती है, प्रिया पलपल बेचैन हो उठती हैं। यह बेचैनी उनमें ऐसा विलक्षण दैन्य उदय करती है कि वे समझने लगती हैं, जैसे वे सर्वथा रूपहीन, सर्वथा गुणहीन और उत्तमशील से हीन हैं। प्रियतम उनका इसीलिये अनादर करते हैं। यह प्रियतम के पक्ष में उचित ही है। परन्तु मैं तो प्रियतम की चरण धूलि हूँ, उनके चरणों में ही लगी रहूँ, यही मेरा धर्म है। मुझे अन्यत्र ठौर ठिकाना ही कहाँ है ? लो, सर्वत्र प्रियतम स्मृति ने कैसा विलक्षण चमत्कार पैदा किया ? जो सर्वत्र आकाश, वायु, अनिल अनल, जल, स्थल में प्रियतम देख रही थीं, वे ही प्रिया सब में प्रियतम खोजने लगीं। कैसी प्रियतम-अन्वेषण तत्परा हो उठी हैं. प्रिया। मुख से वाणी निकल नहीं रही है। आँखें आँसुओं से भरी हैं। नयनों में भरा हुआ जल दृष्टि को धुँधली कर दे रहा है। अश्रु प्रवाह रुकता जो नहीं। प्रिया आकाश से, अपने प्रियतम का पता पूछने लगती हैं। प्रिया के नयन मानो आकाश के अणु अणु में अपने प्रियतम को खोजना प्रारंभ कर देते हैं और पूछने लगते हैं:– 'हे सर्वव्यापक नभ, तुमतो सर्वत्र हो, सर्वज्ञ हो, क्योंकि जो कुछ होने वाला है, हुआ है, और हो रहा है, सब तुम्हारे उदर में ही है। उस सबके साक्षी तुम हो। और शब्दमय तुम्हारा स्वरूप होनेसे तुम यदि बतलाना चाहो तो बतला भी सकते हो। हे नभ, कृपा करो, मेरे प्रियतम कब मुझे दर्शन देनेवाले हैं? प्रश्न पूछते-पूछते ही तुरन्त ही वे निराश भी हो जाती हैं। आकाश के श्यामवर्ण को देखकर वे उसे श्री कृष्ण का सखा मान लेती हैं और कहने लगती हैं, "जाओ आकाश ! तुम मेरी साध पूरी नहीं करोगे। तुम वर्ण साम्यता से प्रियतम के सखा हो। अवश्यमेव, उनका रहस्य प्रकाश करना तुम्हारे लिये उचित नहीं होगा। मैं तुम्हें अपने सखा

का रहस्य बताने के लिये विवश नहीं करती। अब वे मरुत को सम्बोधित कर कहने लगतीहैं-हे मरुत देखो, विषम विरह दावानल से मेरा यह दीन हृदय किस प्रकार दग्ध हो रहा है ? तुम मेरे प्राणों को उड़ा ले जाओ। इसीलिये प्रवाहित हो रहे हो क्या ? यद्यपि मैं अतिशय अयोग्य हूँ, सहज मलिन मेरा स्वरूप है। मैं रूप-गुण विहीन हूँ। प्रियतम ने मेरा सम्मान कर करके मुझे धृष्ट, अविनयी भी बना दिया है। मै अपने मन में अभिमान करके उन्हें अपना प्राणवल्लभ मानने लगी हूँ। मै दंभ करने लगी। मानों उन रसखान प्रियतम को मुझ से कुछ सुख मिलता है। मैं सुखदाता का अभिमान कर बैठी। परन्तु वे तो रस सुधार्णव हैं। कहां वे अनन्त, अगाध, नित्य अपार रस मूर्ति, और कहां मैं गुण दरिद्र दोषों की आगार। तोभी वे मुझ से मिलते रहे, हृदय लगाते रहे, स्नेह देते रहे। मुझ पर प्रेम सुधारस मेह सदा बरसाते रहे। हे मरुत, तुम तो साक्षी रहे। ब्रज में मुझ से अनंत रूप, शील, गुण, सौन्दर्य की निधान कोटि कोटि सुन्दरियाँ है। परन्तु प्रियतम उनकी ओर ताकते भी नहीं एवं मुझे अपना रस देते रहे। हे मरुत, तुम इतना ही करो, प्रियतम को मेरा संदेश भर दे दो। अब विरह वेदना इतनी बढ़ गई है कि किसी भी क्षण प्राण चले जायें, कुछ भी ठिकाना नहीं। फिर वे मेरे लिये विलाप करें, ऐसा मैं नहीं चाहती। यदि मेरे प्राण रखने में उन्हें सुख हो, तो वे मात्र एक क्षण दर्शन देकर मेरे प्राण बचालें। वे भावावेश वश जोर-जोर से बोलने लगती हैं:-"हे प्रियतम, हे सुकुमार, हे उरमाल, यदि तुम्हें राधा के प्रति तनिक भी मोह है, तो शीघ्र करो, मुझे मेरे प्राणों का मोह सर्वथा नहीं है ? मेरे कोटि-कोटि प्राण तुम पर न्यौछावर होजावें इससे बढ़कर मेरा सौभाग्य ही क्या है ?"

यह कहते कहते प्रिया अचेत हो जाती हैं। उनके नेत्रों से अश्रुधारा इतनी तेज गति में बह उठती है कि उसकी धारा हृदय देश से होती हुई भूमि तक को नम कर देती है। वे भूमि को संबोधित कर कहने लगती हैं- 'हे माता, तुमने ही मुझे उत्पन्न किया है, न ? मेरा यह शरीर तुम्हारा ही रज रूप है, न ? अहा, जब मेरे प्रियतम मुझे हृदय से लगाते थे उस समय तुम कितनी उत्फुल्ल हो उठती थी। तुम अपना आनन्द, पुष्पों के हास द्वारा, उनके नवीन नवीन सौरभ दान द्वारा, वनवेलियों की उन्मुक्त हास छटा द्वारा अभिव्यक्त करती थीं। परन्तु आज तुम्हारी उसी राधा के दुःख का पारावार नहीं है। हे माता, देखो मेरे नयन मेरे प्रियतम के दर्शन की उत्कण्ठा में बाहर निकल पड़ने को आतुर हैं।

देख माँ, मेरी सभी इन्द्रियाँ विकल हुई विलख रही हैं। किस प्रकार इन्हें इनके प्रियतम मिलें, बोल माँ ? मेरे ये प्राण अब तो प्रियतम के प्राणों में मिल जाने को अति आकुल हो छटपटा रहे हैं। अब उन्हें शरीर की मर्यादा में सीमित रखना मेरे लिए अति कठिन हो रहा है। यह मेरा मन भी प्रियतम के मनमें तल्लीन हो जाने की कितनी तीव्र चाह कर रहा है। अपने-अपने स्वभाव, अपने अपने गुण और अपनी शारीरिक कर्मनीति को त्यागकर मेरे सभी अंग प्रियतम के अंगों में समा जाने को अति आकुल हैं। माता, यदि ये मेरे प्राण आदि अवयव मुझे त्याग ही दें, तो कृपा कर आप मेरे शरीर के भूमि तत्व को उसी भूमि-तत्व से मिला देना जहाँ प्रियतम की चरण धूलि हो। यावज्जीवन मैं उनकी चरण धूलि बनकर ही उनसे चिपटी रहना चाहती रही हूँ। यद्यपि मैं इसके सर्वथा योग्य नहीं हूँ। फिर भी मेरी अन्तिम अभिलाषा जान कर इतनी कृपा मुझ पर तुम अवश्य कर देना। मैं तेरे इस ऋण को कदापि कदापि नहीं भूलूँगी।

प्रिया अत्यंत करुण क्रन्दन करने लगती हैं: "हे रमण ! तुम कहां हो ? हे जीवन आधार ! तुम मुझ से विलग कहां छिप गये हो ? हे नाथ ! मैं दग्ध हो रही हूं। इस प्रकार उनकी क्रन्दन-ध्वनि गिरि-कन्दराओं में प्रतिध्वनित होने लगती है। प्रियाके लिये एक-एक पल युगों-युगों के समान दीर्घ हो गया है। दारुण पीड़ा से वे छटपटा रही हैं। उनके नयन मानों वर्षा ऋतु के मेघ बन गये हैं। वे निरन्तर आँसुओं की झड़ी लगाते झर रहे हैं। अविरत अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है, नयनों से। हृदय में व्यथा का जैसे समुद्र ही उमड़ उठा है। अत्यन्त करुण स्वर में प्राण हा-हाकार कर रहे हैं। प्रिया के लिये प्रियतम विरहमें प्रेमाश्रुओंकी बाढ़में समस्त संसार मानों डूब ही गया है। सहसा सारिका की वाणी ने शुकके चित्त में होने वाले प्रिया विरहके इस साक्षात्कार के रस-प्रवाह को रोक दिया। वे शुक को सम्बोधित कर कहने लगीं "हे शुक, प्रिया की रुचि न संयोग में है, न वियोग में। उनमें मन नामक वस्तु है ही नहीं। उनमें स्वसुख की चाह सर्वथा नहीं है। उन्हें अनन्त कालपर्यन्त वियोग ही रहे, नित्य वियोग रहे, अथवा नित्य योग रहे, अनंत काल तक योग रहे, किसी भी अवस्था में उनका कुछ भी मोह नहीं है, कहीं कोई आग्रह नहीं है। उनमें किसी भी लालसा का उदय होता ही नहीं है। यदि उनकी कोई लालसा है तो यही कि प्रियसुख, प्रियरुचि सरसती रहे, पूर्ण होती रहे। उन्हें अपना न सुख है, न दुःख है। वे तो प्रियतम सुख से ही सुखी हैं। प्रिया के लिये ढोलक

के दोनों स्वर चाहे कम हो, चाहे टन हो, समान ही प्रिय हैं। जब बजाने वाले उनके प्रियतम ही हैं तो वे पूर्ण स्वच्छन्दता पूर्वक जैसी उनकी रुचि हो, बजाते रहें। प्रिया के लिये छाया और धूप सर्वथा सम है। बस, प्रियतम रूपी रवि चमकते रहें। उन्हें न नरक से भय है, न स्वर्ग का राग है। न मुक्ति से राग है, न ही बंधन से द्वेष। उनका प्रियतम प्रेम-बंधन अटूट है। सुख, दुःख अनुकूलता प्रतिकूलता, प्रिया के लिये इस प्रकार की शब्दावली ही नहीं है। उनमें जहाँ अनन्त संयोग प्रतिबिंबित होता है वहीं साथ ही साथ अनन्त वियोग भी प्रतिबिंबित होता रहता है। उनमें अनन्त मिलन भी प्रतिबिंबित है, और उनमें ही अनन्त विछोह भी। उनमें ही अनन्तानन्त स्वर्ग-सुख प्रतिबिंबित हो रहा है, और उनमें ही अनन्तानन्त नरक का दुःख भी। वे सर्व रस को प्रकाश देती रहती हैं। उनका उस प्रकाश से भी जो प्रकाशित हो रहा है, कोई, कहीं लगाव नहीं है। कहीं कोई राग द्वेष किसी भी प्रकार से उन्हे स्पर्श ही नहीं कर सकता। वे तो समस्त रसों की मात्र आश्रयस्थली हैं। प्रिया के अनन्त विरह क्रन्दन को देखकर रसरूप प्रकृति विलाप कर उठती है। प्रकृति के स्वभाव में विपर्यय हो जाता है। यमुना स्तंभित हो, ठोस हो उठती है। धरा विदीर्ण हो जाती है। उनकी विलाप क्रन्दन ध्वनि से आकाश में दरारें पड़ जाती हैं। असंभव संभव हो जाता है। प्रिया में जब प्रलय महाभाव उत्पन्न होता है, तो समस्त सृष्टि के प्राण प्रिया के प्राणों के साथ उनके प्रियतम के प्राणों में विलीन हो जाते हैं। फिर भी प्रिया में इस अनन्त वेदना की निषेधात्मक कोई रुचि, कोई संकल्प उत्पन्न नहीं होता है। क्योंकि वे उस अनन्त वेदना रूप रस की प्रकाशक, मात्र द्रष्टा ही हैं, भोक्ता नहीं हैं। भोक्ता तो रस ही है, जो अपने रस-स्वरूप में यथारुचि सरसता रहता है। प्रिया में जब संयोग-सुखसमुद्र उमड़ता है तो अनन्त आकाश भी सुख में झूम उठता है, उल्लास से नर्तन करने लगता है। प्रकृति झूम उठती है। नक्षत्र थिरकने लगते हैं। यमुना उलटा प्रवाह कर लेती है। समग्र जीव समूह जो जहाँ हैं, सभी आनन्दोदधि में डूब जाते हैं। परन्तु प्रिया सर्वथा असंग ही रहती हैं। उस अनन्त, अनादि, आनन्द को भी वे प्रकाश ही देती हैं उससे उनका एक कोना भी रागयुक्त नहीं होता है। क्योंकि महा-महा आनन्द तो उनकी अपनी ज्योत्स्ना है, एक उर्मि है, एक कण है, सीकर है, फुहार है। इसी प्रकार अनन्त वेदना भी उनके भाव की, भाव के अनन्त अगाध उदधि की, एक उर्मि है, कण है, सीकर मात्र है। वे कितनी अनन्त हैं, इसे कोई नहीं जान सकता। श्रीकृष्ण स्वयं भी

अपनी प्रिया की महिमा नहीं जान सकते हैं, न जान सके थे, न जान सकेंगे। वे भी उस अगाध भाव सिन्धु में डूबे ही रहते हैं, डूबे ही रहेंगे।" यह कहते कहते सारिका मानो उस भावसिंधु में ही विलय हो गई। पूर्ण समाधि में उसकी चेतना डूबगई। और शुक गा रहा था :–

रूप-शील-गुणहीन समझकर कितना ही दुतकारो तुम।
चरणधूलि मैं, चरणोंमें ही लगी रहूँगी बस, हरदम॥

कुछ समय की अखंड शान्तता के पश्चात् सारिका पुनः बोल उठी :– "हे शुकराज, एक बात सदा ध्यान में रखना। न प्रिया भाव ही भाव है, न प्रियतम रस ही रस। न प्रिया, प्रिया ही प्रिया है, न प्रियतम, प्रियतम ही प्रियतम। प्रिया प्रियतम अपने इदमित्थम् सीमित अलग रूपों में कभी हो ही नहीं सकते। कोई रेखा, कोई सीमा, संभव ही नहीं है, जो भाव और रस का विभक्तीकरण दिखा सके कि यहां तक भाव की सीमा है, और यहाँ तक रस की सीमा है। भाव का इदमित्थं दर्शन सम्भव ही नहीं है। भाव सदा रसरूप में, अनन्त रसों के रूप में ही प्रकाशित होता है। प्रियतम का प्रिया-परिनिष्ठित ही प्रियतम रूप है, उसी प्रकार प्रिया का भी प्रियतम परिनिष्ठित रूप ही प्रिया है। महाभाव रस परिनिष्ठित महाभाव ही है, और रसराज महाभाव परिनिष्ठित रस ही है। बताओ शुक सूर्य को कोई देख सकता है? क्या है किसी नेत्र की सामर्थ्य कि सूर्य के तेज को सह सके? सूर्य की किरणें ही उसके समस्त भौतिक रूप को प्रकाशित कर रही हैं, न। नेत्रेन्द्रिय का समस्त प्रकाश मात्र सूर्य है। परन्तु सूर्य को नेत्र देख ही नही सकते। यद्यपि नेत्रों की सामर्थ्य, सीमा इतनी विशाल है कि सम्पूर्ण सूर्य नेत्र की पुतली में समा जायगा। नेत्र की छोटी-से-छोटी पुतली के अस्तित्व में भी सूर्य का अस्तित्व बन्द है। परन्तु नेत्रेन्द्रियाँ कभी यह जान पाती हैं क्या, कि समस्त सूर्य की तेजस्विता उनके ही कारण से है? सूर्य का भाव नेत्र ही है। नेत्र न हों, सूर्य का अस्तित्व ही व्यर्थ है। इसी प्रकार शुकराज, प्रिया को कभी ज्ञान ही नहीं हो सकता कि यह अनन्त अनन्त रस उनके ही भाव का प्रकाश मात्र है। उन्हें तो सदा यही अनुभव होता रहता है, मैं अत्यन्त तुच्छ, रूप, शील, गुणहीन हूँ और अनन्त रूप समुद्र मेरे प्रियतम माधव हैं। मैं समग्र शील से हीन हूँ और महा महानुभाव मेरे प्रियतम का, माधवका शील है। वे तो सदा यही कहती रहती हैं, 'हे ललिते, देखो, देखो, सम्मुख प्रियतम मुसकारहे हैं, और

उनका अश्रुतपूर्व दिव्य सौन्दर्य, माधुर्य, मेरे शरीर को रोमांचित कर रहा है। बहिन, ऐसे प्रियतम रसराज को देख कर भी कोई रमणी धैर्य रख सकती है क्या ? अतसी-कुसुम सुन्दर प्रियतम को देख कर कौन रमणी उनकी दासी नहीं हो जायेगी ? कभी कहने लगती हैं "रे मन, इन नव घन मेघों को ही क्यों देखता रहता है ? इन मयूरों की पुच्छ से तेरा क्या प्रयोजन है ? तूने उस नवनीरद वर्ण अनिर्वचनीय, राधारमण को अपना बन्धु बना लिया है क्या ? उस राधाधन ने तुझे अपनी सौन्दर्य सुधा वर्षिणी मन्द मुसकान से मोहित कर लिया है क्या ? परन्तु रे मन, तू अपनी एवं उनकी तुलना तो कर ? कहां वे महा सौन्दर्यनिधि और कहाँ महाकुरूपा तू ? क्या तू उनके दासत्व के योग्य भी है ? यदि अयोग्य है, तो निवृत्त होजा।

कभी कहने लगती हैं:- "हे ललिते, यद्यपि मैं महा गुणहीना हूँ, महा कुरूपा हूँ, परन्तु जो सौन्दर्य सुर बालाओं के वस्त्रांचल स्खलित कर देता है, जिस सौन्दर्य ने रावण-भगिनी शूर्पणखा को मोहित कर लिया, जो पशु, पक्षी, चेतन जीवों की तो बात ही क्या, गिरि-खण्डों को द्रवित कर देता है, और यमुनाजल को स्थिर घन कर देता है, उन नव घन सुन्दर प्रियतम की सौन्दर्य छवि से यह मेरा दुःशील मन यदि अपनी सुधि बुधि खो दे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? बड़े-बड़े योगी, दुर्वासा जैसे महातपस्वी, शुक मुनि जैसे ज्ञानी, जो अपने-अपने मनों को मार चुके हैं, वे भी उनकी छोटी सी मुस्कान पर बरबस अपना जीवन न्यौछावर कर देते हैं, उनका वैराग्य उस मुसकान छटा में विस्मृत हो जाता है। वे ब्रह्म सुख को भी भुलाकर स्थिर नेत्र हो जाते हैं। उनके नेत्र अश्रुवर्षा करने लगते हैं। प्रेम रस की बाढ़ से उसका तन पुलकित हो उठता है। फिर ललिता, मुझ गँवार ग्वालिन के मन ने यदि उन पर अपना सर्वस्व वार दिया इसमें अनोखी बात कौनसी है ? और वे सर्व गुणनिधि गुण, रूप शील से सर्वथा हीना मेरा यदि तिरस्कार करते हैं, इसमें उनके लिये कदर्थना की बात ही क्या है ?

हे शुक. प्रिया सदा सर्वत्र प्रियतम के गुण, उनकी महिमा को ही देखती रहती हैं। वे अपने को अत्यन्त दोषमयी, अयोग्य, दीन समझती रहती हैं। वे यही कहती हैं, "हे ललिते, मैं तो महा दीना, इस बृज की धरा पर रहने वाली मात्र साधारण मानवी हूँ, ग्वालिन हूँ, सब विकारों की खान हूँ, प्रकृति का परिणाम मात्र हूँ; माया की उत्पत्ति हूँ। मै ऐसे गुणसमृद्ध श्यामसुन्दर को कैसे

भूल सकती हूँ ? देखो बहिन, ये कनक-लतायें प्रियतम श्यामसुन्दर का ही वर्णसाम्य देख कर तो तमाल से लिपटी हैं ? ये हरिणियाँ कृष्णसार मृग के पीछे क्यों पागल हैं ? ये मयूर नव मेघ को देख कर क्यों नाच रहें हैं ? यह पपीहा प्रीतम प्रीतम क्यों पुकार रहा है ? ये मधुकर कमल पराग पर क्यों लिपटे हैं ? यह यमुना सागर से मिलने क्यों दौड़ रही है ? तू क्यों नहीं समझाती इन्हें ? धैर्य बँधा, ये क्या गुणवती होने का अभिमान लेकर दौड़ रही हैं ? फिर मैं ग्वालिन कहाँ से गुण, रूप लाऊँ ? उनका नित्य नया सौन्दर्य, नित नूतन नव नव माधुर्य, नित्य नये नये रूप का विकास, नित्य नया प्रेम, क्या किसी भी रमणी द्वारा विसारा जा सकता है ? उनके नित्य नवीन संगम की मधुर स्मृति हृदय में नित्य निरंतर सँजोये रखने की वस्तु है कि विस्मृत कर देने की ? उनकी गुण गरिमा, उनकी महिमा, उनके द्वारा मिला हुआ वह सुख-सौभाग्य उनकी रस बरसाती मधुर मुस्कान, मेरे जरासे रूठ जाने पर आतुर होकर मनाने की मधुर चेष्टा, उनकी सुधा मधुर रस खान वाणी, उनके वे अरुण चरण-कमल, उनका मनोहर मुख-मण्डल, मधुमय रूप, उनका वह रूप श्रृंगार, वे बांकी भौंहें, विशाल कमलदल लोचन, और पैरों के नूपुरों की झनकार, क्या कभी भुलायी जा सकती है ? सखि, सम्पूर्ण विश्व को मोहित करने वाला कामदेव भी जिनकी मुस्कान की छाया से प्रकट होता है, ब्रह्मा, शिव और सनकादि जिनके गुणों का पार नहीं पाते, उस रूपराशि को, गुण राशि को, कैसे बिसारूं ? ? कैसे भूलूं ? जब बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, मात्र एक बार ध्यान में उस झाँकी को देखने युगों-युगों तक तपस्या करते हैं, जिस महारूपराशि की एक बार भी झलक पाकर वे सारे अग-जग को भूलकर, विवश हुए अपना सर्वस्व तप उनके चरणों में समर्पित कर देने को बाध्य हो जाते हैं। फिर मेरी जैसी तुच्छ गँवार ग्वालिन की बिसात ही क्या है कि उन्हे देखकर संवरित रहूँ ? जिनके मधुर मनोहर सुन्दर रूप, गुणों और मधुर बंशी लहरी से कठोर पाषाण और काष्ठ द्रवित हो बहने लगते हैं, वायु तथा सूर्य की चाल रुक जाती है, समस्त चल, अचल चेतन, जड़, जड़ चेतन हो जाते हैं, वे प्रियतम माधव मेरे मन से भला बताओ कैसे विस्मृत हो जावें ? वे कितना ही मेरा तिरस्कार करें, वे मेरे प्राणनाथ हैं. प्राणनाथ रहेगें, वे ही मेरे प्रियतम हैं, प्रियतम रहेगें। वे ही मेरे मधुर से मधुर जीवन धन हैं, और जीवनधन रहेंगे। और शुक सारिक दोनों डूब जाते हैं उस महामहामधुर प्रियतम रूप छवि में। उनके सम्मुख प्रिया महा प्रेममयी प्रियतम छवि अवतरित हो, प्रकट हो जाती है।

प्रिया का मैला-मैला स्वर्णिम शरीर, अग्निधूम के समान अत्यन्त कृश क्षीणकाया, जैसे तुरन्त जल से निकाली मछली छटपटाती हो, उस प्रकार छटपटाते प्राण, न तन पर सुन्दर वस्त्र, न आभूषण, अङ्गराग, और न ही शृंगार, सिर की वेणी खुल रही है, वेणी के गुँथे फूल इधर उधर बिखर रहे हैं, और सिर के सब बाल रूखे हैं। प्रिया को न रात का पता है, न दिन का ज्ञान है। न जल स्थलका उन्हें परिज्ञान है, न वह अपना पराया ही जान रही हैं। प्रिया को मनुष्य पशु, पक्षी, लता पता, वृक्ष, नद, नदी, गिरि और गह्वर, किसी का कुछ भी ज्ञान नहीं है। वह तो अपने सम्मुख प्रियतम की अनन्त रूप गुणमयी, अनन्त प्रेममयी, अपार विलासमयी, छवि सँजोये हैं। प्रियतम ही उनके नेत्रों में, कानों में, हृदय में, जीवन में भरे हैं। उनके मुख से निकल रहा है:-

रूप-शील-गुणहीन समझकर कितना ही दुतकारो तुम।
चरणधूलि मैं, चरणों में ही लगी रहूँगी बस, हरदम।।

शुक सारिका देख रहे हैं उनकी प्रिया जैसी प्रेम प्रतिमा न किसी भी काल में हुई थी, न होगी। उनका शरीर देदीप्यमान है, बस नीली काली श्याममयी प्रियतमज्योति से प्रिया का शरीर श्याम रज से सना मैला-मैला है, उनके नेत्रों में भरी है वही मधुमयी अनन्त छवि, अगाध कृष्ण रूपराशि, इसीलिये जैसे कंकर लगजाने से आँखें अश्रु झारने लगती हैं उनके नयन अश्रुवर्षा कर रहे हैं। उनके वदन पर छाया पड़ गई है काले प्रेमी, कृष्ण विषधर की, तभी न उनकी अग्निभूम के समान कान्ति हो गयी है। उनके रोम रोम में काले कृष्ण विषधर का प्रेमविष व्याप्त हो गया है, इसीलिये न वे अत्यन्त कृश, क्षीणकाय हैं और विष की भयानक पीड़ा से मछली की तरह उनके प्राण छटपटा रहे हैं। अत्यन्त प्रिय कृष्ण भस्म ही जब उन्होने अपने शरीर पर लपेट ली तब उन्हें सुन्दर वस्त्रों से शोभा कहां अनुभव होती है। वह मणिधर, विषधर कृष्ण नाग आभूषण की तरह जब उनके गले में बाहें डाले है तो फिर उन्हें किसी भी तरह के आभूषण की आश्यकता ही क्या है? और काली कृष्ण कस्तूरी जब उनके अंग-अंग में लेपित है, तब उन्हें अन्य लेपन की क्या आवश्यकता है? प्रियतम श्यामसुन्दर ही तो उनका शृंगार हैं, प्रेम से अत्यन्त चिकने प्रियतम ही तो वेणी रूप में उनकी पीठ पर लहरा रहे हैं। फिर सुमनों को स्थान ही कहाँ कि उनकी वेणी को सजा सकें। प्रियतम ही उनके मन चोर हैं, चित्त चोर हैं। इस

प्रिया में कहाँ रूप है, कहाँ शील है और कहाँ गुण हैं ? वे तो अपने प्रियतम की चरण रेणु मात्र हैं और उनके चरणों में ही उनका स्थान है। प्रियतम चरणोंमें ही लगी हैं हरदम ये प्रिया। राधा राधा राधा राधा ।

छठा अध्याय

(सख्य और वात्सल्य)

शुक–"हे सारिके, तुमने पूर्व पद्य में कहा कि इन महा भावरूपा प्रिया का न पितृकुल है एवं न ही पतिकुल, तो बताओ ये महात्मा वृषभानुजी कौन हैं ? और महात्मा नन्दराय कौन हैं ? हे सारिके, यदि महात्मा वृषभानुजी भी वात्सल्य-रस-घन विग्रह हैं, और महात्मा नन्दराय भी वात्सल्य-रस-घन विग्रह हैं तो इनमें परस्पर क्या एवं कौनसा रस वैभिन्य है ? यह वैभिन्य किस प्रकार का है ? इसी प्रकार माता यशोदा और भगवती कीर्त्तिदा दोनों ही वात्सल्य-रस-घन-मूर्ति मातायें हैं, दोनों में भी परस्पर रस वैभिन्य कहां है एवं कैसा है ? इसे मेरे सम्मुख स्पष्ट करो। हे सारिके, मेरे प्रश्न की व्यापकता तुम जैसी सूक्ष्म धी को विस्तार से मैं समझाऊं इसकी आवश्यकता नहीं है। फिर भी, वृषभानुपुर और नन्दग्राम वृषभानु-भवन और नन्दभवन इन दोनों महाधामों में भी कहीं न कहीं अवश्य रस-वैचित्र्य है तभी दोनों भिन्न हैं, पृथक् हैं, अन्यथा दोनों दो होते ही नहीं। इस सब पक्ष पर मैं तुम्हारे मुख से तत्त्वपूर्ण विवेचन सुनना चाहता हूं।"

सारिका–(शुक के प्रश्न से अत्यन्त उत्फुल्ल हुई) धन्य-धन्य शुक ! तुमने अत्यन्त उत्तम प्रश्न किया है। अत्यन्त कल्याणकारी प्रश्न है, यह। सुनो अत्यन्त ध्यान से मेरी वाणी सुनो।

हे शुकराज ! बताओ धर्म की क्या परिभाषा है , धर्म किसको कहते हैं ? जितने भी शास्त्र हैं जिनमें धर्म का वर्णन है, वे सभी इतने परस्पर विरोधी व्यक्तव्यों से भरे हैं कि कहीं धर्म के एक स्वरूप की उपलब्धि सम्भव ही नहीं। सर्वत्र धर्मकाल के अनुसार, देश के अनुसार, तथा व्यक्ति-व्यक्ति की पृथक् रुचि के अनुसार बदला हुआ दिखाई देता है। अनेक कहते हैं कि अपौरुषेय वेद का विधेय रूप से अनुशासन ही धर्म है, यदि इसे ठीक मानलें, तो जगत् के कारण रूप जिस अति महान् सर्वज्ञ चेतन विराट से पुरुष के श्वास के समान वेद भी उत्पन्न हुआ है, वह विराट भी तो धर्म सिद्ध होता

ही है। शुकराज ! जो लोग भोग सुख की कामना करते हैं, उनके लिये यज्ञादि द्वारा स्वर्गादि अनन्त भोगों का विधान वेदों ने 'धर्म' कहकर बताया है, उसी प्रकार जो 'कामना' को सब बन्धन का कारण सब दुःखों की योनि मानते हैं वे इस 'कामना' को ही 'अधर्म' कहकर पुकारते हैं। वे तो यहां तक कह देते हैं कि अन्धा मनुष्य अपने को देखता है, अन्य को नहीं देखता, परन्तु 'कामान्ध' अपना हित भी नहीं देखता। काम की दृष्टि अधोमुखी इन्द्रियों की विषय-रूप तृप्ति से ही तो रहती है न ? फिर ये वेदों के द्वारा विधेय रूपसे प्रतिपादित स्वर्गादि लोक और यज्ञादि कर्म-धर्म कैसे हो गये ?

अब दूसरे कहते हैं, अहिंसा, सत्य, दया, शान्ति, ब्रह्मचर्य, शम, दम, तितिक्षा तथा यज्ञ, दान, तप एवं अध्ययन, अध्यापन, प्रजा-पालन कृषि, पशुपालन और सेवा आदि जितने भी वर्णाश्रम के अनुसार शास्त्र विहित शुभ कर्म हैं, जिन आचरणों का फल शास्त्रों में इस लोक और परलोक के सुख भोग बतलाया गया है, तथा जो दूसरों के लिये कर्म हैं, उन सबका नाम धर्म है। यहां पर भी ब्रह्म वादियों की दूसरी ही मान्यता है। वे शुभ एवं अशुभ दोनों कर्मों को ही बन्धन का कारण बताते हैं। शुभ कर्म भी यदि राग बुद्धि से किये जायें तो वे भी मात्र भोग सुख को दान करते हैं जो स्वरूपतः दुःखोंकी ही उत्पत्ति है। ऐसी उनकी मान्यता है अतः वे "ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः" कहकर ज्ञान को ही धर्म बताते हैं। अनेक कहते हैं कि ज्ञान अत्यन्त कठिन है बिना सगुणसाकार परमात्मा की भक्ति किये ज्ञान आता ही नहीं। भक्ति शून्य ज्ञान मात्र बुद्धिगत ज्ञान है। अतः सर्वोत्तम धर्म भक्ति ही है।

हे शुकराज ! जहां शास्त्रों में धर्म का इतना विशाल वर्णन किया है, वहीं उन्होंने लिख दिया है कि विश्व को धारण करने वाले धर्म का कलियुग में एक ही पैर शेष रहता है। अतः कलियुग में मात्र भगवान का नाम ही धर्म है। यहां युग के अनुसार धर्म ही बदल गया।

हे शुकराज ! असली धर्म की परिभाषा है जो धारण किये हो, वही धर्म है। जब तक यह भ्रांति है कि काम तुमको धारण किये है तब तक काम पूर्ति ही धर्म है, जबतक यह भ्रांति है कि चित्त तुमको धारण किये है, तब तक चित्त शुद्धि, उसका प्रसाद ही धर्म है। जब तक यह भ्रम है कि वेद

तुमको धारण किये हैं तब तक विधेय रूप से वेद का अनुशासन ही धर्म है। इसी प्रकार हे शुकराज ! जब तुम्हें पता चलेगा कि तुम्हें न काम धारण किये हुये है, न स्वर्ग, न चित्त ही धारण किये हुये है और न वेदों में ही तुम्हारे लिये कोई औषधि है, ब्रह्म और आत्मा की एकता के ज्ञान के बिना तुम्हारा अज्ञान का नाश नहीं होगा और अज्ञान नाश के बिना तुम्हारे जन्मादि दुःखों का नाश सम्भव नहीं है, तब तुम्हारे लिये मात्र ज्ञान ही धर्म हो जायगा। उस समय तुम "ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः" का ही पाठ जप करोगे। और जब तुम्हें ज्ञान हो जायेगा कि जो एक है, आदि अन्त से रहित है, जो चेतन, निर्मल, व्यापक, आकाश से भी अत्यन्त सूक्ष्म है, वह ब्रह्म ही सबको धारण करने वाला है, तब वह ब्रह्म ही तुम्हारा धर्म हो जायगा। फिर "अहम् ब्रह्मास्मि" इस प्रकार की निरन्तर धारणा ही धर्म होगी। और हे शुकराज ! उसके पश्चात् अति महती कृपा से यदि तुम्हें ज्ञान हो गया कि इस ब्रह्म को भी धारण करने वाला कोई है, इस ब्रह्म की भी प्रतिष्ठा कोई है, और अद्वैत पथ से स्वराज्य सिंहासनारूढ अद्वैत निष्ठा सम्राट, बड़े-बड़े ज्ञानी महारथी भी जिसको देखकर "अहमिव नन्दंवन्दे यस्याक्तिन्दे परब्रह्म" कहकर किसी भूमि में लौटने लगतेहैं उस समय वह भूमि ही तुम्हारे लिये 'सर्व कर्मसार' बन जायगी, न ? उस समय यही अनुभव होगा कि अहं के मंगल की, अहं के कल्याण की, अहं के सुख की भावना का जब तक आत्यन्तिक विनाश नहीं हो जाता जब तक यह 'अहं' सर्वथा समर्पित नहीं हो जाता, तब तक इस ब्रह्म के ब्रह्म की झाँकी अत्यन्त दुर्लभ है. यही तत्त्व सार है, सार का सार है, उस समय तुम्हारा धर्म दूसरा ही हो जायगा। उस समय सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और एकत्व मुक्तियां भी नमक के समान खारी प्रतीत होने लगेंगी।

शुकराज ! जहां अहं का सर्वथा विस्मरण, समपर्ण है वह एक विचित्र प्रेम धर्म है। हे शुकराज ! इस विचित्र प्रेम धर्म के 'भानु' वृषभानुजी हैं। शुकराज जिस प्रकार भाव समुद्र रसरूप में ही सर्वत्र प्रकाशित है, उसी प्रकार इन वृषभानुजी रूप आत्मा का शरीर ही यह सम्पूर्ण ब्रज है, और इसी वृषभानु प्रकाश ब्रज के राजा ब्रजराज महात्मा नन्द हैं। हे शुकराज ! इन वृषभानुजी की ही अमित प्रेम शक्ति श्री कीर्त्तिदा हैं। हे शुकराज, जैसे शरीर चेतन आत्मा के अतिरिक्त कुछ नहीं, परन्तु शरीर पर शासन जैसे प्राणों का ही चलता है, जैसे पर-ब्रह्म परमात्मा के अतिरिक्त इस विश्व का प्रकाशक कोई

अन्य नहीं है, परन्तु जैसे सूर्य ही इस विश्व का प्रकाशक है, उसी प्रकार यह ब्रज महात्मा वृषभानुजी के अतिरिक्त कुछ नहीं है, फिर भी महात्मा नन्द ही इसके राजा हैं और वे ही सूर्य के समान इस ब्रज के जीवन हैं। वे ही ब्रज को भगवान सविता के ही समान धारण कर रहे हैं।

हे शुकराज! जिस प्रकार मैंने अभी तुम्हें धर्म के अनेक स्तर बताये हैं, न, उसी प्रकार ये धर्म जिस-जिस जगत् को धारण करते हैं उनका भी वर्णन सुनो। हे शुकराज! काम प्रधान, कर्म जगत् है। इस कर्म राज्य में श्रौतु, स्मार्त विधेय रूप अनुशासन ही धर्म है। इस राज्य में कर्म प्रवृत्त जीव श्रुति वैध कर्मों द्वारा स्वर्गादि पुनरावर्त्ती लोकों में जाते हैं, तथा कोई विरले, कामना रहित निष्काम कर्मों द्वारा निष्कर्म्य सिद्धि को प्राप्त होते हैं। तत्त्व ज्ञान की, इस स्थिति में, कल्पना ही नहीं है। कर्म तत्त्व की दृष्टि से सृजन, पालन, संहार करने वाले सर्वशक्तिमान् सर्वनियन्ता ईश्वर के सानिध्य में यह कर्म जगत् चलता रहता है। इनमें कोई कोई साधक सिद्धि प्राप्त करके ब्रह्मा के पद तक भी पहुंच जाते हैं। ये ब्रह्मा मूल परम तत्त्व के अंशावतार मात्र हैं और अपने-अपने ब्रह्माण्डों के सृजनकर्त्ता हैं। साधना पूत चित्त द्वारा किया गया अति क्लिष्ट तपः कर्म इस ब्रह्मा के पद को भी प्राप्त कराने में समर्थ है।

इससे उच्चतर या आगे भाव राज्य है, वहां कर्म के साथ केवल निष्काम भावकी प्रधानता न होकर ईश्वर प्रीतिसाधक भक्ति की प्रधानता होती है। भावुक पुरुष इस भाव राज्य के क्षेत्र में भाव-साधना के द्वारा अपने भावानुरूप इष्टदेव परमैश्वर्य सम्पन्न, स्वशक्तियुक्त भगवत् स्वरूपों के सान्निध्य और उनके दिव्य लोकों को प्राप्त करते हैं। इनकी साधना का फल दिव्य भगवल्लोकों की प्राप्ति है। ये लोक सर्वथा माया मुक्त होते हैं।

इससे आगे ज्ञान राज्य है। इसमें विचार प्रधान पुरुष साधन चतुष्टयादि के द्वारा महा वाक्यों का अनुसरण करके विशुद्ध आत्म स्वरूप में परिनिष्ठित होते हैं। इनके प्राणों का उत्क्रमण नहीं होता ये ब्रह्म स्वरूप हो जाते हैं या ब्रह्म सायुज्य को प्राप्त करते हैं।

हे शुकराज! इसके आगे एक और अति विलक्षण, अचिन्त्य, महा भावरूप भगवद्भाव राज्य है। भुक्ति-मुक्ति, कर्मज्ञान, आदि की सब

वासनाओं से शून्य अति निर्मल चित्त पुरुष ही इस महाभावराज्य के अधिकारी हैं। उपर्युक्त तत्त्वज्ञानी मुक्त पुरुषों में से भी किन्हीं-किन्हीं में इस सर्वथा अनिर्वचनीय भगवत्प्रेमांकुर का उदय हो जाता है, जिससे वे परम चिन्मय भाव शरीर के द्वारा उपरोक्त कर्म, भाव एवं ज्ञान राज्य से अतीत इस भगवद्भाव प्रेमराज्य में प्रवेश करते हैं। हे शुकराज! भोग-मोक्ष की कामना-गन्ध लेश से शून्य, सर्वात्म निवेदनकारी महानुभाव का ही इसमें प्रवेश होता है। चाहे वे पवित्र त्यागमय प्रेम स्रोत में बहते हुये सीधे ही यहां पहुंचे, अथवा उपर्युक्त ज्ञान राज्य में ज्ञान प्राप्त होने के उपरान्त किसी महान् कृपा कारण से इस सर्व विलक्षण महाभावरूप दुर्लभ राज्य में प्रवेश प्राप्त करें।

हे शुकराज! इस महाभाव राज्य को धारण करने वाले ही महाभाव धर्म भानु श्रीवृषभानुजी हैं। इन श्रीवृषभानुजी को ही तुम यह महाभाव राज्य मानो। क्योंकि यह महाभाव राज्य कोई वस्तुरूप प्राकृतिक देश नहीं है, इसीलिये ये वृषभानुजी ही इस महाभाव राज्य व्रज के स्वरूप हैं। ये ही इसकी आत्मा हैं। ये ही उसके शरीर हैं। और जैसे आत्मा शरीर सर्वस्व होते हुये भी प्राणों के द्वारा ही शरीर का शासन चलता है, उसी प्रकार महात्मा नन्द ही इस व्रज-शरीर के, इस महाभाव शरीर के राजा हैं। हे शुकराज! जिस प्रकार भानुरूप-निर्मल-भावविग्रह की भाव शक्ति हैं महारानी कीर्त्तिदा उसी प्रकार महात्मा नन्द की व्रजराज की शक्ति ही महासती "यशोदा" हैं।

हे शुकराज! जैसे परमार्थतः सच्चिदानन्द आत्मा ही सत्य है, न शरीर है न मन है, न बुद्धि है, न इन्द्रियां ही हैं, उसी प्रकार सत्ता श्रीवृषभानुजी एवं महारानी कीर्त्तिदा की है, बाकी सब वाणी के नाम मात्र हैं। ये प्रेम धर्म के सूर्य वृषभानुजी व्रज की आत्मा हैं और इनकी सच्चिदानन्दमयी शक्ति इनको कीर्त्ति देने वाली माता श्री कीर्त्तिदा हैं। ये कीर्त्तिदा और यशोदा दो नहीं, एक ही हैं। कीर्त्ति ही यश है और यश ही कीर्त्ति है। कीर्त्ति भाव है और यश रस है। इसी प्रकार वृषभानु प्रेम सूर्य, एवं व्रजराज नन्द भी एक ही हैं। वृषभानु भाव हैं और उनका प्रकाश रस ही व्रजराज नन्द हैं। रस ही आनन्द है, अतएव व्रजराज का ही नाम नन्द है। वृषभानु भाव तो मात्र अस्ति है, उसकी भांति उसका आस्वादन महात्मा नन्द ही हैं, जो आनन्दरूप हैं। यह सच्चिदानन्द ही रस है, यह सच्चिदानन्द ही भाव है, और यह सच्चिदानन्द ही व्रज है, व्रजराज हैं, वृषभानु हैं, कीर्त्तिदा हैं और यशोदा

हैं। हे शुकराज ! सूर्य की कीर्त्ति ही उसकी किरणें हैं सूर्य का यश ही उसकी किरणें हैं। शक्ति ही शक्तिमान कीर्त्ति है। कौमुदी ही तो चन्द्रमा की कीर्त्ति है, यश है। इसी प्रकार वृषभानु को कीर्त्ति देने वाली उनकी महाशक्ति ही जगन्माता कीर्त्तिदा हैं। व्रजराज को यश देने वाली जगन्माता यशोदा हैं।

ये प्रेम धर्मभानु वृषभानु की प्रिया जगन्माता कीर्त्तिदा ही वात्सल्य भाव समुद्र की सार हैं, और यशोदा ही इनका सर्वप्रकाश वात्सल्य रस है। ये वात्सल्य की एक मात्र भाव घन-मूर्त्ति-भूमि हैं, उत्पत्ति स्थान रूपा हैं। अनन्त-अनन्त काम व्यूह रूप उप शक्तियां हैं जो सर्वत्र व्रज मण्डल में, वात्सल्य रस समुद्र की तरह लहरा रही हैं। ये ही सम्पूर्ण व्रज मण्डल की धात्री पालन करने वाली हैं ये ही सब व्रज मण्डल की उत्पत्ति की हेतु हैं। अतः ये ही धरा रूपिणी हैं, धरित्रि हैं। ये ही जगन्माता कीर्त्तिदा ही आनन्दिनी ह्लादिनी महाभाव स्वरूपा राधा को जन्म देती हैं, पालती हैं और आनन्द चन्द्र श्रीकृष्ण को उन्हें समर्पित कर देती हैं। जिस प्रकार जगन्माता ह्लादिनी महाभाव स्वरूपा कीर्त्तिदा श्री राधा को जन्म देती हैं पालती हैं और आनन्दचन्द्र श्रीकृष्णको समर्पित कर देती हैं, उसी प्रकार जगन्माता भगवती महाआनन्दरस-स्वरूपा यशोदा आनन्दरस घन-मूर्त्ति, परात्पर, ब्रह्म के ब्रह्म, सच्चिदानन्द कन्द श्री कृष्णचन्द्र को जन्म देती हैं, पालती हैं, और आनन्दचन्द्र कौमुदी प्रिया श्रीराधा को उन्हें समर्पित कर देती हैं।

हे शुकराज, श्री मद्भगवद्गीतोपनिषत् में भी श्रीकृष्ण स्पष्ट उल्लेख करते हैं—

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानंज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद् विज्ञाय मद्भावायोप पद्यते ॥ १३।१८॥

इन क्षेत्र अर्थात् जीवगत प्रगति तथा उससे उपरान्त ज्ञान अर्थात् इस प्रकृति का भाव ब्रह्म एवं ज्ञेय अर्थात् ब्रह्म की प्रतिष्ठा मुझ श्रीकृष्ण को जानकर मेरा भक्त मेरे भाव राधा को प्राप्त करता है।

वीत राग भय क्रोधा मन्मया मामुपाश्रिता।
बहवो ज्ञान तपस्या पूता मद्भावमागताः ॥

जिनके नानात्व रूप राग, भय एवं क्रोध नष्ट हो गये हैं ऐसे माया दोष से रहित मुझमें तन्मय हुये भक्त जो मुझ से अपना अभेद समझने वाले हैं, मुझमें अपना सब अहं समर्पित करके सर्वथा मेरे ही आश्रित हैं, और साथ ही जो मेरे भावरूप प्रेम तप से परम बुद्धि को प्राप्त कर चुके हैं, ये महा भाग्यवान मेरे कृपा पात्र प्रेमी भक्त मेरे भाव को प्राप्त हो जाते हैं।

श्री वृषभानुजी इसी भाव के सार प्रेम और प्रेम के सार महा भावरूप धर्म के सूर्य हैं। इसीलिये इस महाभाव लोक वृषभानुपुर को वे धारण किये हैं जो सम्पूर्ण व्रजमण्डल का सार है। इस वृषभानुपुर में महाभाव प्राप्त जन ही निवास करते हैं। इन्हीं वृषभानुजी की पुत्री, वृषभानुरावनन्दिनी राधा अतुल प्रेमरस सुधा भावकी निधान हैं।

हे शुकराज! जैसे दुग्ध में नवनीत ही सार है, वह सम्पूर्ण दूध में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार यह वृषभानुपुर सम्पूर्ण व्रजमण्डल में ही व्याप्त है, उसका सार स्वरूप है। यह भावरूप है और इसी वृषभानुपुर का रस, प्रकाश नन्दग्राम है। यह सम्पूर्ण वृषभानुपुर प्रेमरस की निधि है। यहां पशु, पक्षी, जड़, चेतन, सब में कहीं कोई वासना नहीं। यहां तो भूमि में, भवनमें, वृक्षमें, वेलिमें, गिरि में, नदीमें, नदमें, जलमें, वायुमें, आकाशमें, सर्वत्र मात्र प्रेमभाव ही प्रेमभाव भरा है। प्रेमभाव ही यहां का आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी है। इसी से यहां के एक मात्र प्रेमास्पद रसराज नन्दनन्दन श्रीकृष्ण एवं महाभावरूपा वृषभानुनन्दिनी ही हैं और सभी चर, अचर, इनको सुखी देखकर इनके आनन्द से ही सदा मत्त हैं। हे शुकराज! यहां के किसी जीव में, जड़में, चेतनमें, न कहीं कोई भ्रम है, न सन्देह है, एवं न ही किसी भी प्रकार का मोह ही है। न कोई माया का ही बन्धन है, न ही किसी भी प्रकार की मुक्ति की चाह है। न यहां पाप है, न पुण्य है, न अपने लिये अपना कोई कर्म है, यहां तो बस एक ही पवित्र प्रेमरस का अथाह समुद्र भरा है।

इस वृषभानुपुर रूपभाव जगत् की सम्पूर्ण सृष्टि ही अथाह प्रेमसागर में सदाडूबी रहनेवाली है। यहां न कर्म है, न कर्त्तव्य है न कर्त्तव्य-पालन है। यहां अकर्त्तव्य है ही नहीं। इसीलिये अकर्त्तव्य त्याग का यहां प्रश्न ही नहीं उठता। यहां भोग एवं मोक्ष रूप जीवन का हेतु ही नहीं है। न विधि-विधान का बन्धन है, और न किसी मर्यादा का सेतु है। यहां तो बस अपरिमित,

पवित्रकारी प्रेम का नित्य निरन्तर प्रवाह ही प्रवाह है। यहां तो प्रेम ही धर्म है और इन धर्मभानु की ही कीर्त्ति यश पताका फहराती रहती है। यहां शुद्ध भावमय अनन्य प्रेम रस है। इस रस में सर्वमधुर ही मधुर है कहीं कसेलापन उत्पन्न करने वाला कोई इतर, विरोधी भाव नहीं यहां नित्य मिलन का पवित्र सुख है और उस नित्य मिलन में ही नित्य मिलन का पवित्रतम चाव निरन्तर बढता रहता है। यद्यपि प्रेम सर्वथा निर्गुण है फिर भी यहां प्रेम ही अनन्त सद्‌गुणों में भी प्रतिबिम्बित होता रहता है यद्यपि स्वरूपतः प्रेम नित्य निर्गुण, किसी भी गुणों की सत्ता की भी अपेक्षा से सर्वथा शून्य है, वह सर्वथा निष्काम है, उसमें किसी भी प्रकारकी कामना की लेश गन्ध, कल्पना भी नहींहै, फिर भी यहां वह प्रेम अनन्त-अनन्त काम होकर ही प्रकाशित है। यही यहां की महा विलक्षणता है यहां प्रेमास्पद का, प्रेमी का, तथा प्रेम का पवित्रतम सौन्दर्य नित्य नवीन-नवीन रूप से बढता ही रहता है, जो परस्पर एक दूसरे का चित्त अपहरण करने वाला है।

हे शुक ! इस प्रेम राज्य में न भोग है, न योग है, न त्याग है, न राग है, और न द्वेष वैराग्य ही है। यहां तो बस, सबमें प्रिया श्रीवृषभानुनन्दिनी एवं प्रियतम श्रीकृष्ण, इन दोनों को सुख पहुंचाने के लिये एक पवित्रतम अनुराग छाया रहता है। यहां सब ही बड़े चतुर हैं, सब ही सर्वज्ञ हैं, क्योंकि वे ब्रजराजकुमार एवं वृषभानुनन्दिनी इन दोनों के मन की सब बातें जानते रहते हैं। सबके मन एक ही प्रकार के प्रिया प्रियतम सुख सुखिया बने रहते हैं। सभी नित्य इन दोनों की सेवा करते रहते हैं। सब ही नित्य सेवा के लिये ललचाते रहते हैं, सब नित्य एक रस हैं, सब नित्य एक प्राण हैं और सबकी नित्य एक ही टेक है। सब इन महाभाव विग्रह श्रीराधा रानी और रसराज श्रीकृष्ण से नित्य मिलनातुर हैं और सब ही इनसे नित्य मिल रहे हैं। तनिक से काल के लिये भी किसी भाव से न्यारे नहीं हैं।

परन्तु, हे शुकराज ! एक बात सदा याद रखना सर्वोपरि रूपसे इसे सदा स्मरण रखना कि देहादि उपाधि विशिष्ट किसी वृषभानुजी की कहीं, कोई सत्ता नहीं है, देशादि उपाधि विशिष्ट किसी वृषभानुपुर का कहीं कोई अस्तित्व ही नही है, किसी भी प्रकार की परिच्छिन्नता की इस भाव राज्य में सत्ता ही नहीं है। कालादि उपाधि विशिष्ट यहां इस भाव राज्यमें कोई काल, कोई युग कोई संवत्सर और आयु आदि नहीं है।

हे शुकराज ! कुतर्क रहित एवं श्रद्धा युक्त बुद्धि की सहायता से विचार करो। "सम्मुख स्थित विषयक ज्ञान" ऐसा कहने पर घटरूप प्रकाश्य और ज्ञानरूप प्रकाश ये दो विभाग दिखाई पड़ते हैं, न ? ज्ञानरूप प्रकाश के अन्तर्गत होने से ही प्रकाश्य घटअंश कहलाताहै, और ज्ञानरूप प्रकाश, घटरूप प्रकाश्य का, पटरूप प्रकाश्य का प्रकाशक होने से अंशी कहलाता है। परन्तु सदा ध्यान रखो भासक के बाहर न अंशी है एवं न ही अंश है। सब अंश अंशी भास्य में ही हैं। भासक की सत्ता सदा भास्य रहित है। परन्तु इस प्रेमराज्य की विलक्षणता यही है कि यहां भासक भास्य रहित न होकर भासक ही भास्य है।

शुकराज ! इस राज्य में अखण्ड एक रस भाव चैतन्य ही वृषभानु है, कीर्त्तिदा है, वही भाव चैतन्य नन्दराय है, यशोदा है, और वही भाव चैतन्य ही नन्दभवन और वृषभानुपुर है, वही भाव चैतन्य अनन्त गौएँ, ग्वाल, गोपाल, ग्वालिन, और प्रजा हैं, वही भाव चैतन्य गिरिराज, यमुना एवं नद, नदी, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी और पशु, पक्षी, कीट, पतंग, सब बना है। इसीलिये हे शुकराज ! भासक भास्य भेद न होने से, यहां विलक्षण चिति ही चैत्य है। अतः यहां अनिर्वचनीय अभेद सत्ता सर्वत्र समरूप से वर्तमान है। इसीलिये यहां कोई अभाव है ही नहीं, सब कुछ भावमय है।

हे शुकराज ! अब इस विषय में आगे फिर प्रसंगानुसार कहूँगी। तुम्हारे प्रश्न का अधिकांश मैं वर्णन कर चुकी हूँ। अब चित्तवृत्ति इतनी रस से भर आयी है कि वह वाणी को पकड़ती नहीं। आओ डूबें, प्रियतम रसराज में और उनकी किसी विलक्षण भावलीला में। और इतना सारिका ने कहकर नेत्र बन्द कर लिये।

शुकराज तो खुले ही नेत्रों से ध्यानावस्थित हो गया और देखने लगा "गोवर्धन परिसर में, किसी वन में, प्रियतम गोचारण के लिये आये हैं। दूर वनमें. ऊंची ऊंची घास के जंगल में घुसकर गायें अत्यन्त प्रेम से चर रही हैं। चरने की तो क्रिया स्वतः हो रही है, उन्हें तो सर्वत्र उनके प्राण-सार सर्वस्व नन्दनन्दन ही दिख रहे हैं। वे प्रियतम नन्दनन्दन ही उनके बाहर भी हैं, भीतर भी हैं। सखागण भी जो इन गौओं की रखवाली कर रहे हैं, वे भी इसी अनुभूति में डूबे हैं कि श्रीकृष्ण हमारे सबके साथ ही हैं। प्रत्येक सखा

को स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि श्रीकृष्ण उसके साथ ही नहीं उसके तन, मन के भीतर भी भरे हैं। सर्वथा उनकी रुचि के अनुसार क्रीड़ा कर रहे हैं। सर्वथा उन्हीं के संकल्पानुसार श्रीकृष्ण सब लीला व्यवहार कर रहे हैं। परन्तु श्रीकृष्ण तो दूर अवस्थित हैं, एक घने कदम्ब वृक्ष के नीचे। अपनी प्रिया के ध्यान में वे पूर्णरूपेण डूबे हैं। उनके मन मानस में भरी है अपनी प्रिया की छवि। अपने अत्यन्त प्रेम भरे भावों को वे अपनी बाँसुरीमें गाकर व्यक्त करने की चेष्टा कर रहे हैं:—

हे वृषभानु-राज-नन्दिनी ! हे अतुल प्रेम-रस-सुधा-निधान।
गाय चराता वन-वन भटकूं, क्या समझूं मैं प्रेम विधान ॥
ग्वाल-बालकों के संग डोलूं, खेलूं सदा गँवारू खेल।
प्रेमसुधा-सरिता-तुमसे मुझ तप्त धूलका कैसा मेल ॥
तुम स्वामिनि अनुरागिनी ! जब देती हो प्रेम भरे दर्शन।
तब अतिसुख पाता मैं, मुझपर बढता अमित तुम्हारा ऋण ॥
कैसे ऋण का शोध करूं मैं, नित्य प्रेम-धन का कंगाल।
तुम्हीं दया कर प्रेम दान दे, मुझ को करती रहो निहाल ॥

हे वृषभानु राजा की बेटी ! हे प्रेम-रस-सुधा की अनुपम निधि ! मैं तो गायों को चराता वन-वन में भटकता रहता हूँ, मैं भला, प्रेम की रीति-नीति-प्रेम कैसे किया जाता है—यह क्या जानूं ! ॥ १ ॥

मैं तो ग्वाल बालों के साथ घूमता रहता हूँ, तथा सदा गँवारू खेल खेलता रहता हूँ। तुमतो प्रेमरूपी अमृत की सरिता हो और मैं तपी हुई बालुका हूँ; मेरा तुम्हारे साथ कैसा मेल ? ॥ २ ॥

अनुराग भरी स्वामिनी ! जब तुम मुझको प्रेम भरा दर्शन देती हो, तब मुझको अपार सुख का अनुभव होता है और मुझपर तुम्हारा ऋण असीम रूप से बढ जाता है। ॥ ३ ॥

मैं तो सदा ही प्रेम धन का कंगाल हूं तब मैं तुम्हारे इस अत्यन्त बढ़े हुए ऋण को कैसे चुका सकता हूं ? तुम दया की खानि हो, तुम्हीं प्रेम का दान देकर मुझको निहाल (कृतार्थ) करती रहो, यही मेरी बिनती है ॥ ४ ॥

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"अतुल प्रेम रससुधा निधान" का भावः—

शुक एवं सारिका देख रहे हैं प्रियतम के सम्मुख प्रिया की अत्यन्त मधुर छवि खड़ी है। परन्तु प्रियतम भासक और प्रिया भास्य दो भिन्न सत्ता नहीं हैं। प्रिया ही प्रियतम हैं और प्रियतम ही प्रिया हैं। एक ही ज्ञाता दो रूपों में अविभक्त विभक्त है। एक ही रसिक रसमयी और रसिक के रूप में सरस रहा है। एक ही ज्ञाता, ज्ञाता और ज्ञेय के रूपमें प्रकाशित है। एक ही द्रष्टा एवं दृश्य बना दर्शित है। प्रेम का ही अनिर्वचनीय चमत्कार है।

वही वही जो नव नीरद नीलाभश्याम तन है, वही कनक गौर अनुपम प्रिया तन है। वही जो पीत वसन बना है, वही नील वसन भी है। दोनों ही किशोर वय, दोनों ही कमनीय कान्ति हैं। दोनों के अंग-अंग मनोहर सज्जाओं से सजे हैं। दोनोंही सच्चिन्मय वपु हैं, दोनों एक ही महा प्रेममयी अति मधुर मनोहर साज सज्जा से सजे हैं। प्रेम ही मधुर, मनोहर, दिव्य सौरभ है, प्रेम ही सुकुमारता है, वही प्रफुल्लता है, वही नव पीयूषवत् माधुर्य है जो दोनों का नित नव-नव श्रृंगार है। हे शुकराज, वही जो ललित-त्रृभंग, कमल-दल-लोचन है, वही रासेश्वरी, वही रस रास विलासिनी है और वही मन मोहन, मन मोहिनी है, एक ही निर्मल सुखसार स्वरूप ह्लादिनी, ह्लादात्मा दोनों हैं। एक ही प्रेम चारु चन्द्रिका भूषित कुञ्चित कुन्तल और मृगमद तिलक है। एक ही प्रेम मधुकर कृष्ण मनोहर चिक्कण चिकुर सुशोभित अनुपम वेणी है, और वही सुन्दर भाल विन्दी है। वही कम्बु कण्ठ है, और उसमें शोभित मुक्तामणि तुलसी एवं कुसमों की माला भी वही है। कमनीय कुसुम एवं मुक्त के हार भी वही है। वही जो अरुणिम अधरों में मधुर मुरली रखे हैं, वही सुधारस-भरित विम्बाधर भी है।

दोनों प्रिया प्रियतम के अधरों पर एक ही प्रेम भाव जन्य परमहंस मुनिजन मन मोहिनी मुसकान है। प्रेम ही कपोल हैं जो कानों की कुण्डल छवि से झिलमिला रहे हैं। प्रेम-रत्न-द्युति से वे आभासित हैं। प्रेम ही बंकिम भृकुटि है, और वही नासिका है। प्रेम ही वक्ष है, जो प्रेमरूपा कौस्तुभमणि से ही चमक रहा है। प्रेम ही कञ्चुकी शोभित उत्तुंग वक्ष है, वही मुकुट युक्त मस्तक और वही मोहन रंग की चूनरी ओढे है। एक ही भाव एक ही देश एवं काल में युगपत दो रूप धरे सरस रहा है। प्रेमानन्द तरंगित-विग्रह रूपमें,

और मन्मथ-मन्मथ मानस मन्थिनि रूपमें, रास-रसिक-रसराज रूपमें और नित्य निकुञ्जेश्वरी, नव कुञ्ज विहारिणी रूपमें। एक ही भाव सिन्धु का द्वैतरस-प्रकाश कैसा मधुर छविमय है। सारिका बोल उठी:—

"शुकराज! दर्शन करो, महाराज वृषभानु क्या हैं? ये प्रेम धर्म भानु वृषभानु जो प्रेम स्वरूप हैं, न, उनका ही यह चमत्कार है, उनके ही प्रेम राज्यमें यह अघटन घटना घटित होना सम्भव है, अन्यत्र कहीं नहीं, कहीं नहीं। इसीलिये प्रियतम अपने ही स्वरूप भूत भावको वृषभानुराजनन्दिनी कहकर सम्बोधित कर रहे हैं।

"हे अतुल प्रेम-रस-सुधा की निधान वृषभानु राजनन्दिनी, तुम्हारा कैसा विलक्षण चमत्कार है। तुम्हारे पिता, जो अतुल प्रेम सम्पदा को एक मात्र धारण करने वाले हैं उन श्रीवृषभानुजी का ही यह चमत्कार है जिसकी तुम नन्दिनी हो। पिता ही तो पुत्री के रूपमें उत्पन्न होता है। अस्तु, तुम्हीं अतुल प्रेम रस सुधा की निधान हो।

"हे शुकराज! दर्शन करो, इन श्रीवृषभानुनन्दिनी का जो परावरा हैं, परमाद्या हैं, सनातनी, परमानन्द रूपा हैं, धन्या हैं एवं सुरसिका हैं। ये ही निर्गुणा हैं, मात्र स्वरूपभूत प्रियतम गुणमयी हैं, ये निर्लिप्ता हैं, मात्र निज प्रियतम से ही लिप्ता हैं, ये निराकारा हैं—दिव्य चिन्मय स्वरूपा प्रियतमाकारा हैं और आत्मस्वरूपिणी प्रियतम आत्मा हैं। इनमें इच्छा अहंकार सर्वथा नहीं हैं। प्रियतम की इच्छा ही इनकी इच्छा है, और उनका अहंकार ही इनका अहंकार है। ये भाव वपु हैं, इसीलिये इनका दर्शन मात्र प्रियतम को ही होता है, और किसी को नहीं।

"हे शुकराज! क्या निर्णय कर सकते हो कि श्रीकृष्ण इनका अंशहैं या ये श्रीकृष्ण का अंश हैं? कौन अंशी है और कौन अंश है? एक ही भासक है, एक ही द्रष्टा है, एक ही ज्ञाता है। वही अंशी और वही अंश। सर्वथा द्वैत विवर्जित द्वैत है। पूर्ण अद्वैत है।

"हे शुकराज! कैसी अनुपम, अतुलनीय, अचिन्त्य और अनिर्वचनीय प्रिया हैं, कैसे प्रियतम हैं। दोनों-दोनों का अनुभव करते हैं, पर उस रहस्यमय तत्त्व को कोई भी बतला नहीं सकता। सब भेदों से रहित मात्र स्वरूप रस समुद्र ही स्वरूप रस है।"

"गाय चराता वन-वन भटकूं, क्या समझूं मैं प्रेम विधान"—का भाव

प्रियतम इतना ही कह पाते हैं, हे प्रेम रस सुधा निधान! हे प्रिय, मैं तुम्हारे परम निर्मल, अचिन्त्य, अतीन्द्रिय प्रेम विधान को वन-वन भटकता, मेरी इन इन्द्रियरूपी गायों को ही चराता हुआ कैसे जान सकता हूं? कदापि नहीं जान सकता।

हे शुक! प्रियतम की इन्द्रियाँ प्रिया स्वरूप ही हैं। जब प्रियतम की देह प्रिया ही है, प्रियतम का मन प्रिया ही है, तो प्रियतम की इन्द्रियाँ भी प्रिया ही होंगी। परन्तु कैसी विलक्षणता है कि प्रिया होकर भी वे इन्द्रियाँ प्रिया का भजन कर रही हैं। वस्तुतः प्रिया इतनी भावमयी हैं कि भाव ही अपने स्वरूप गाम्भीर्य में अपने आपका अन्वेषण करने लगता है। वे इन्द्रियाँ बहिर्मुखी हो गई हैं, वन-वन भटक रही हैं, परन्तु उनका उद्देश्य तो प्रिया का ही अन्वेषण करना है। फिर भी, वे प्रिया को पारही हैं क्या? क्यों नहीं पारहीं वे अपनी पूर्ण गति प्रिया को? इस अप्राप्ति का कारण भी वे समझ नहीं सकतीं। क्योंकि प्रिया का प्रेम विधान भी तो अचिन्त्य है। वह किसी के बन्धन में थोड़े ही है। पूर्ण स्वाधीन प्रेम विधान है। प्रिया, जब उनकी इच्छा होगी तब, दर्शन देंगी। किसी साधन के बन्धन में वे थोड़े ही हैं। किसी भी भजन के बन्धन में थोड़े ही बँधी हैं। और देखो शुक कैसी अभिनव शोभा प्रियतम के गौ चारण की है। सारिका के इतना कहते ही शुक की आँखों में एक अभिनव दृश्य आगया।

कारी, धौरी, साँवरी, श्यामा, धूमरी, धूसरी, पीरी, लाल गौएँ, सब इधर उधर हरी-हरी घास के विस्तृत वनमें फैली हैं। और उधर एक दिशा में वत्स ही वत्स हैं जो नाच रहे हैं, कूद रहे हैं, उछल रहे हैं। और चपल ग्वाल बाल इन वत्सों और गायों के बीच में घने पेड़ों की छाया मे बैठे हैं। सब अपने सखा श्रीकृष्ण के संगमें नाना प्रकार के कौतुक कर रहे हैं।

परन्तु यह क्या? उन्हें अपने प्राणप्यारे सखा कन्हाई की अति चिन्मय देह ही अद्भुत छवि-समुद्र बनी सम्पूर्ण बन के रूपमें दिखने लगी। और वही अति चिन्मय देह ही सरस स्नेह से पुलकित होकर मानो घासरूप में विकास पाने लगी। अहा! कैसी चिन्मय रूप की वर्षा हो रही है, रस समुद्र ही लहरा रहा है। सम्पूर्ण वन ही नहीं सम्पूर्ण व्रजमण्डल ही मानो मधुर श्याम नीलरंग

का बन गया। इस नील श्याम कलेवर के कटि भाग में पीताम्बर लिपटा सुशोभित हो रहा है। कैसी मधुर ललित तृभंगी धारण की है इस वन ने। सर्वत्र मोद ही मोद, आनन्द ही आनन्द लहर रहा है, उमड़ रहा है, उच्छलित है।

उनके प्राण सखा श्रीकृष्ण रूपी शरीर की इन्द्रियाँ ही मानो गायें हैं। प्रियतम के शरीर रूप वन में ही तो ये इन्द्रिय रूपा गायें निवास कर रही हैं, और शरीर रूपी वनमें उगने वाली विषय रूपिणी घास का ही ये सेवन करती रहती हैं। इस घास को चरना ही इनका स्वभाव है।

प्राण सखा श्रीकृष्ण का कैसा सुन्दर रूप सब सखाओं के सम्मुख प्रकट हो रहा है। जो अनन्त-अनन्त दया से सदय है, कृपा का निलय है, कृपानिधि लुटा रहा है, वह उनके प्राण सखा श्रीकृष्ण का वक्षस्थल ही मानो कामधेनुओं का यूथ है। और मुरली रखने वाले जो ये लाल-लाल अधर हैं, वे लाल गौएँ हैं। मोरपिच्छ ही मानो कबरी गायों का झुण्ड है। प्रियतम के केश अगणित श्यामा गौओं का झुण्ड है जो सर्वत्र फैला है। हां कुटिल भृकुटि, बंकिम विशाल नैन, मधुर भुजायें, विशाल कन्धे, कमल बदन, मधुर चिवुक, मधुर दशन पाँति, असन गोल कपोल, कान, मधुर कटि, उदार उदर, मधुर सुवन, नासिका, सम्पूर्ण इन्द्रियाँ ही मानो गायें ही, गायें, बछड़े ही बछड़े बनकर सर्वत्र फैल रही हैं। कैसा मधुर वन है और कैसा रस बिलास है।

चलो, एक और परिवर्त्तन हुआ। यह नील श्याम रंग के साथ हेम रंगी आभा कैसी प्रकाशित हो रही है और नील श्यामरंग को इस हेम रंगी आभा ने सर्वत्र सब ओर से किस प्रकार आच्छादित कर लिया? सुन्दर पीतवसन, सुन्दर नीलपट से लिपटकर नीलपट ही बन गया। अहा, यह मोर मुकुट किस प्रकार चन्द्रिका में मिलरहा है। जलधर में तो बिजली रहती है, परन्तु यह तो स्थिर बिजली में नव जलधर विलीन हो गया। कांचन मणियों में मरकत मणि डूब गई। और अहा, अब तो उत्तुंग वक्ष ही कामधेनुओं के यूथ में परिवर्त्तित हो रहा है। और अब चन्द्रिका ही कबरी गायों का झुण्ड हो गया है। अब तो श्याम कबरी ही श्यामा गौओं का यूथ बनगई।

यही सत्य है, यही सत्य है। प्रियतमा ही तो प्रियतम का शरीर हैं, इन्द्रियाँ हैं तभी न ये प्रियतम रूप गौएँ निरन्तर प्रियतम के परमोच्च प्रेम में लहराती रहती हैं। तभी न इन्हें अपने श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य कुछ भी

न तो अपेक्षित है, और न चिन्तनीय है। वे निरन्तर श्रीकृष्ण की सेवा के लिये आकुल और उनकी सेवा में ही संलग्न रहती हैं उनके नेत्रों में सदा आठोंयाम श्रीकृष्ण ही नाचते रहते हैं और उनकी ही छवि छायी रहती है।

यही दशा इन बछड़ों की है। जहां गौएँ वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति हैं, ये बछड़े सख्य रस की। ये श्रीकृष्ण के साथ खेलते हैं, श्रीकृष्ण इनको तृण खिलाते हैं, श्रीकृष्ण इनको बांसुरी बजाकर सुनाते हैं। कभी-कभी इन बछड़ों के मुंह में अपनी बांसुरी रखकर कहते हैं बजाओ न, तुम भी बजाओ। और श्रीकृष्ण ने ही इन वत्सों के नाम रखे हैं, किसी का बरूथप, किसी का सुबक, किसी का सुदाम। और जब श्रीकृष्ण इनको अपने सखाओं का नाम लेकर पुकारते हैं तो सुदाम के साथ वह वत्स भी दौड़ा आता है। कितने आनन्दित हो नाचने लगते हैं, तब श्रीकृष्ण !

गौएँ वात्सल्यवती हैं। वे श्रीकृष्ण को स्तन्यपान कराती हैं। उन्हें अपनी जिह्वा से चाटती हैं और उनको मातृ सुख का अमृत दान देती हैं। तो प्रिया ही, इन्द्रियरूपा गायें हैं, गोवत्स हैं। तभी न ये अपने प्रियतम से ऐसा अनिर्वचनीय प्रेमप्रसाद पारही हैं, जो प्रसाद श्रीकृष्ण के पुत्र होने पर भी अनिरुद्ध और प्रद्युम्न को, आत्मरूप होने पर शंकरजी को, सम्पूर्ण सृष्टि का स्रष्टा होने पर भी ब्रह्माजी को, और वक्षस्थल पर विराजिता लक्ष्मीजी को भी प्राप्त नहीं हो सका है।

ठीकहै, प्रियतम श्यामसुन्दर का शरीररूपी वन भी प्रिया और प्रियतम की इन्द्रियाँ भी प्रिया, तो प्रिया होने के नाते ये श्रीकृष्ण का ही अन्वेषण करती हैं, उन्हें ही प्राप्त करतीहैं और उनके सुखमें ही सरसित होती रहतीहैं। फिर प्रियतम को प्रियतमा रूप शरीर से अपना आत्म आह्लाद प्राप्त हो रहा है—प्रियतम को प्रियारूप इन्द्रियों से अपना ही आत्म रस चखने को मिलरहा है। स्वरूपानन्द ही स्वरूपानन्द है–प्रिया कहां, प्रिया प्राप्ति कहां, प्रिया प्रेम विधान कहां ? सत्य है, सत्य है। इसीलिये प्रियतम निराश हैं। उनकी बुद्धि हतप्रभ है। उनका मन अचंचल है, उनके प्राण निस्पन्द है। वे कोई हल नहीं ढूंढ पारहे हैं। इस स्वरूप विलास का अन्तिम तट किनारा वे कैसे पावें। मुझे मेरा सुख ही मिल रहा है। मैं मेरे ही आनन्द में प्रमत्त हूँ तदानन्द कहां है ? प्रियानन्द कहां है ? मेरी प्रिया कहां हैं ? प्रियतम श्रीकृष्ण विचारने लगते

हैं:–"मेरी इन्द्रियाँ, बुद्धि, मन, आत्मा सब प्रिया रूपा हैं, यह सत्य है। परन्तु इनको मेरी ही अनन्त पिपासा है। ये सभी तो अनन्त-अनन्त रूपों में मुझे ही आस्वादित करना चाहती हैं। फिर ये मुझे मेरा अन्तःकरण बहिःकरण बन आत्मरस ही तो दे रही हैं। मेरे अपने स्वरूप सुख का आस्वादन ही तो मैं इनके द्वारा पारहा हूँ।"

सहसा सारिका बोल उठी—"बोलो शुक! फिर मेरी प्रिया का सुख कहां है? प्रियतम की प्रिया जो मात्र प्रेम स्वरूपा हैं उनका एवं उनके प्रेम विधान का आस्वादन कैसे हो? हो ही नहीं सकता शुकराज, चाहे जो साधना प्रियतम करलें, उन्हें प्रिया किसी साधना द्वारा प्राप्त नहीं हो सकतीं। उच्चातिउच्च साधना स्वरूपानन्द का ही प्रकाश करने में समर्थ है, प्रेमानन्द का कदापि नहीं।"

"यमेवैषवृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूᳪस्वाम्।"

यह भावरूप राधा, प्रिया तो उसी को प्राप्त होती हैं, जिसको जब वे स्वयं स्वीकार करती हैं। जब श्रीराधा के लिये, प्रिया के लिये उत्कट से उत्कट उत्कण्ठा होती है, जब उनके बिना रहा ही नहीं जाता, जब अपने साधन पर सर्वथा विश्वास न करके केवल उनकी कृपा से आश्रय से उनकी प्रतीक्षा होती है, तब उनकी यह कृपा निर्भरता ही प्रियाको साधक के सम्मुख प्रिया स्वरूप में प्रकट कर देती है। अन्यथा अनादि अनन्तकाल तक स्वरूपानन्द में भले ही बिलसते रहो, प्रिया का अनुभव नहीं होता, नहीं ही होता है।

देखो, ध्यान देना शुक, यहां एक और विलक्षण रहस्य प्रकाशित है। यह वात्सल्य रस और सख्य रस दोनों पर्यवसित कहां हो रहा है मात्र प्रियतम के आत्मस्वरूप में, प्रियतम के आत्मानन्द में ही, न। प्रिया में तो पर्यवसित नहीं ही हो रहा है, यह। यह प्रियतम को सुख देकर प्रियतम में ही तो स्वयं पर्यवसित होता जारहा है। और अत्यन्त सूक्ष्मता से विचार करना, यह प्रिया की प्रियतमरूप इन्द्रियों में ही होनेवाली अभिव्यक्ति का परिणाम है, न? और अगर प्रियतम की इन्द्रियों में प्रिया अभिव्यक्त न हों तो इस रस का अस्तित्व कहीं मिलेगा क्या? तो सख्य रस और वात्सल्य रस की उत्पत्ति का मूल कारण है—प्रियाभाव, और यह पर्यवसित होरहा है, प्रियतम में। तो इसका अर्थ क्या है? स्पष्ट है। जिस समय प्रियतम के विरह में प्रिया में प्रलयभाव उत्पन्न होगा उस समय सब सख्य रस और वात्सल्य रस और उनमें

लहराते जीव अनन्त आत्मानन्द में ही तो डूब जावेंगे ? इनका पर्यवसान प्रियतम में होने के कारण ये प्रियतम रूप में ही, प्रियतम में ही तदाकार हो जावेंगे। उनकी इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सब प्रियतम स्वरूप हो जावेंगी। लीलात्मक अशेष सत्ता तो उनकी ही रहेगी जो प्रिया से ही उद्गमित होंगे और प्रिया में ही पर्यवसित होंगे।

शुक—हां सारिका, लीलात्मक अशेष सत्ता तो उनकी ही है जो प्रिया से प्रकट हैं और प्रिया में ही पर्यवसित हैं ? बाकी सब शेष हो जाता है प्रियतम के स्वानुभव में, प्रियतम के स्वरूपानन्द में, ब्रह्म सुख में, आत्मानन्द में, परिपूर्ण आनन्द में।

सारिका—प्रिया के अतिरिक्त, जिन-जिन का श्रीकृष्ण के प्रति सीधा सम्पर्क है, प्रिया हीन सम्पर्क है, वे चाहे मधुर भावापन्न गोपियाँ हों, चाहे वात्सल्यवती गोपियाँ हों, चाहे प्रियतम का अभिन्न से अभिन्न सखा हो, परन्तु उसका पर्यवसान हो जावेगा स्वानुभव में, स्वरूपानुभव में। हां, जो-जो महाभाग्यवान प्रियतम से प्यार करके भी प्रिया की ओर उन्मुख हो जावेंगे तथा जिनके प्राण प्रिया में ही पर्यवसित होने की अभिलाषा से अभिलषित होंगे एवं प्रिया के नेत्रों से, प्रिया के भावों से ही प्रियतम को देखना चाहेंगे, अपने नेत्रों से नहीं, अपनी इन्द्रियों से नहीं, वे पर्यवसित होंगे प्रिया में, एवं अनन्त काल तक, अशेष काल तक, शाश्वत काल तक, वे नित्य प्रियतम का आस्वादन करते रहेंगे यह सत्य है, सर्वथा सत्य है।

शुक—सारिके, सत्य कहो, क्या महात्मानन्द एवं माता यशोदा भी पर्यवसित हो जावेंगी प्रियतमरूप स्वरूपानुभव में ही, स्वरूपानन्द में ही !

सारिका—हे शुक, इसे सत्य जानो भाव-भाव है, वह किसी नाम रूप के प्रति पक्षपाती नहीं है। बड़े से बड़ा नाम किंवा रूप क्यों न हो, भाव में डूबेगा तभी भाव रहेगा, रस में डूबेगा, तो रसरूप ही तो होगा, न ? इसलिये शुकराज, जब प्रियतम की मथुरा गमन की लीला होती है तो श्रीकृष्ण के चले जानेपर सब वात्सल्यवती गोपियाँ उनके बिना विरह जनित अति दारुण पीड़ा को न सह सकने के कारण अन्तिम श्रीकृष्ण स्मृति करती श्रीकृष्ण में ही मिल जाती हैं। कुछ एक भाग्यवान दासियाँ जो मात्र जगन्माता यशोदा की ही सौख्याभिलाषिणी रहती हैं, वे तत्सुख भावापन्ना होने के कारण जीवित रहती हैं और

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

जगन्माता यशोदा की ही सेवा करती रहती हैं। उन महाभाग्यवान दासियों की वृत्ति में प्रियतम श्रीकृष्ण के प्रति स्ववात्सल्य नहीं होता है। वे तो यशोदा रानी के वात्सल्य सुख को ही अपना सुख मानती हैं। इसलिये उनके प्राण यशोदा रानी में ही अटके रहते हैं। और माता यशोदा अपने नन्दनन्दन की प्रिया श्रीराधा के रोम-रोम में अनन्त-अनन्त नन्दनन्दन को देखकर ही जीवित रहती हैं। और इसीलिये महात्मानन्द एवं यशोदा श्रीकृष्ण के स्वधाम गमन के समय श्रीराधा के साथ ही स्वधाम गमन करती हैं।

श्रीकृष्ण नन्द यशोदा को प्यारे हैं। परन्तु हे शुकराज! ध्यान रखो, नन्द यशोदा स्वयं भाव भावी नहीं हैं। स्वयं भाव भावी तो महाराज वृषभानुजी और माता कीर्त्तिदा ही हैं। और वे अपनी पुत्री के रोम-रोम में अनन्त-अनन्त नन्दनन्दन को ही देखते रहते हैं। नन्द यशोदा तो वृषभानु एवं कीर्तिदा के भाव के ही प्रकाशक रस स्वरूप हैं, न? इसीलिये जब भी प्रियाको यशोदाजी देखती हैं, उनमें महारानी कीर्त्तिदा की आँख अभिव्यक्त हो जाती है और उन्हें राधा में अनन्त नन्दनन्दन भरे दृष्टिगोचर होते हैं। यही बात महात्मा नन्दराय में भी होती है। वे भी जब प्रिया को, राधारानी को देखते हैं, आशीर्वाद देते हैं, उस समय उन्हें दिखाई पड़ता है मानो अनन्त-अनन्त नन्दनन्दन इस प्रिया में, उसके रोम-रोम में अभिव्क्त हैं। तो महामना नन्दजी में यह आँख वृषभानुजी की ही है। हे शुक! नन्दराय, नन्दराय हैं ही नहीं, हैं वृषभानुजी ही, नाम भेद मात्र है। भगवती यशोदा, यशोदा हैं ही नही, हैं मात्र कीर्त्तिदा ही, नाम भेद मात्र से ही यशोदा हैं। और कीर्त्तिदा एवं वृषभानुजी का पर्यवसान अपनी पुत्री प्रिया में है, श्रीकृष्ण में न होने से वे अनन्त अशेष काल, शाश्वत काल, वात्सल्य भाव भावित रहेंगे, स्वरूपानन्द में विलय नहीं होंगे।

हे शुक! भाव के अतलतल में तो प्रिया परिनिष्ठित प्रियतम और प्रियतम परिनिष्ठित प्रिया ही रहती हैं सब लहरें पर्यवसित हो जाती हैं इन दोनों में ही। तब वृषभानु एवं कीर्त्तिदा पर्यवसित हो जावेंगे प्रिया में। शुकराज, जो प्रियतम में पर्यवसित होंगे, वे स्वरूपानन्द में विलय हो जावेंगे, और जो प्रिया में पर्यवसित होंगे, वे ही अनन्त-अनन्त लीला रसास्वादनार्थ, अनन्त-अनन्त काल पुनः-पुनः प्रिया की सत्ता से प्रिया के उद्‌गमन के साथ-साथ, उनका कार्यव्यूह स्वरूप बन उद्‌गमित होते रहेंगे।

शुक—हे सारिके ! मेरी एक जिज्ञासा की पूर्ति और करो। तुम कहती हो कि जो प्रियतम स्वरूप में पर्यवसित हैं वे तो स्वरूपानन्द में निमग्न हो जावेंगे, तब प्रियारूप में पर्यवसित होने वाले-फिर स्वरूपानन्द में क्यों नहीं निमग्न होवेंगे ? देखो, प्रिया के हृदय में तो प्रियतम विराजित रहते हैं, इसलिये होना तो यही चाहिये कि प्रिया में पर्यवसित होने वालों की गति प्रियमत होने से वे स्वरूपानन्द को प्राप्त हों एवं प्रियतम के हृदय में प्रिया का स्थान है इसलिये प्रियतम रस में पर्यवसित होनेवाले को लीला विलास की प्राप्ति होनी चाहिये।

सारिका हँस उठती है, एवं कहती है-(हँसती हुई) शुकराज ! इस तरह अटकल थोड़े ही चलती है। इसमें रहस्य क्या है ? इस पर ध्यान दो। हे शुक, जो स्वतन्त्र रूप से श्रीकृष्ण सुख चाहते हैं, उनमें लेश भाव में स्वसुख भोग की वृत्ति रहती ही है। है वह प्रियतम सुखमयी ही, परन्तु लेश मात्र ही सही वहां स्वसुख पाने की 'अहंमयी' इच्छा अवश्य है। अन्यथा वे प्रिया सुख सुखी, यशोदा सुख सुखी, नन्द सुख सुखी ही होतीं। जो सुख यशोदा को मिल रहा है, वह सुख श्रीकृष्ण आज मुझे भी दें, मेरे घर भी श्रीकृष्ण आवें, जो सुख श्रीराधा को मिलरहा है, वह सुख मुझे भी मिले, यह मत्सुख की ही वृत्ति है।

हे शुक, इसी मत्सुख भाव के लिये ही तो जीव को पशु संज्ञा दी गई है। इस मत्सुख भावापन्नत्ता के कारण ही आत्मा बहिर्मुखी होकर मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और इन्द्रिय संज्ञक होती है। अपने शुद्ध स्वरूप में नहीं रहती। जो जीव प्रियतम रस भावित हैं उनकी साध यद्यपि श्रीकृष्ण को सुख देने की है, परन्तु अपने तन-मन-धन रूप, यौवन, सबको श्रीकृष्ण की सुख सामग्री समझने वाले शुद्ध अनुरागवान् पवित्र गोपी भावापन्न इन जीवों में भी यह भाव आ ही जाता है कि अहा, आज श्रीकृष्ण मेरे कुंज में भी आवें। मैं भी वही सुख पाऊं जो श्रीराधा को ये देते हैं। मुझे भी श्रीकृष्ण वेणु बजाकर सुनावें। उनकी यह भावना प्रिया में प्रतिबिम्बित होती है और वे अपने प्रियतम को संकेत करदेती हैं-प्रियतम. आज तो इस गोपी को, इस सखी को सुख दो। और श्रीकृष्ण तो प्रेम देखते हैं, वे रसिक हैं, प्रेम देखते ही रस दान करने को वे आतुर हो जाते हैं। परन्तु स्वसुखमयी उनकी यह वृत्ति

अन्त में उनके विलय होने के समय उन्हें ब्रह्मानन्द में ही, आत्मसुख में ही विलय कर देती है।

प्रियतम में तो 'प्रिया ही प्रिया' हैं फिर भी 'भाव' की लहरें तनिक भी, संश्लेष मात्र स्वसुख का भाव वे पाकर उसे किनारे फेंक देती हैं! उनके लिये प्रिया का प्रेम विधान ऐसा संघटित हो जाता है कि जिससे वे अपार ब्रह्मानन्द, अनन्त अखण्ड आत्म सुख ही प्राप्त कर सकें।

हे शुक! चाहे वे महालक्ष्मी महिषी रुक्मिणी हों, चाहे सत्यभामा, चाहे नाग्नजिती हों, चाहे तुलसी, वृन्दा, जहां भी 'मत्सुख' संश्लेष हैं, वे सभी नित्य लीला पात्रायें नहीं हो सकतीं। नित्य लीला पात्रायें वे ही हैं जो मात्र प्रिया सिन्धु में लहराती रहती हैं। रस भोगी वे कदापि नहीं होंगी, रस उनके भोगार्थ, सेवार्थ सदा प्रस्तुत रहेगा। रस उनके चरणों पर न्यौछावर होता दृष्टिगोचर होगा। रस कृतकृत्यता अनुभव करेगा उनका संकेत पाने के लिये, परन्तु वे 'मत्सुख' की गंध से भी, उसके संश्लेष से भी सर्वथा-सर्वथा विवर्जित रहेंगी, अन्यथा भाव लहरें उन्हें किनारे फेंक देंगी। दूर ब्रह्मानन्द सिन्धु में उन्हें निमग्न कर देंगी। निश्चय ही निश्चय ही।

हे शुक, यही प्रियतम के "गाय चराता वन-वन भटकूं" और "ग्वाल बालकों के संग डोलूं खेलूं सदा गँवारू खेल" इन पंक्तियों का भाव है। गाय चराना, प्रियतम के लिये मात्र वन-वन भटकना है, और ग्वालबालों के संग डोलना, खेलना, उनका मात्र गँवारू खेल है। क्योंकि इस सब खेल में उनका स्वरूपानन्द ही लहराता है। इस सबका अन्तिम अर्थ मात्र स्वरूपानन्द ही स्वरूपानन्द है, स्वरूप विलास ही है, प्रेम विलास नहीं, लीला विलास नहीं। इसीलिये यह गँवारू खेल है, इसमें इतना ही सुख मिलता है जो भौंडे गँवारू खेलमें किसी को मिलता हो।

हे शुक, प्रियतम तो रसिक हैं, वे तो जहां कहीं भी थोड़ासा प्रेम देखते हैं, अपनी सारी भगवत्ता भूलकर उसके आधीन हो जाते हैं। प्रेम देखते ही वे उसके आस्वादनार्थ अपनी समस्त रसरूपता न्यौछावर कर देते हैं। वे समस्त श्रेष्ठ गुणोंकी खान हैं, परन्तु जहां कहीं भी प्रेम गुण देखते हैं, वहां अपने स्वरूप को भूलकर अपने को उस पर न्यौछावर कर देते हैं। यह उनकी प्रेमाधीनता ही है, रसरूपता, गुणज्ञता, हृदय की विशालता, और उदारता

ही है कि थोड़े से भी प्रेमरस को, दिव्य गुण को, वे भुलाते नहीं हैं, और तुरन्त अपने समग्र को लेकर उसके सामने खड़े हो जाते हैं। दिनरात उसके ही साथ उनका खेल प्रारम्भ हो जाता है।

बताओ शुक ! कौन ऐसा ग्वाल बाल, प्रियतम का सखा, है जो प्रियतम के सम धर्मा हो ? यदि प्रेम का ठीक-ठीक विश्लेषण किया जाय तो प्रियतम के प्रेम स्वभाव के एक कण की भी तुलना में किसी सखा के प्रेम का समतोलन नहीं हो पायेगा। फिर भी प्रियतम उन पर अपना सब रस न्यौछावर कर देते हैं। सदा उनके पीछे फिरते हैं। सब ओर से इन सखाओं को अपार ममता देते हैं। इन सखाओं के पीछे इनके प्रेम के सम्मुख वे माता यशोदाजी की भी अवहेलना कर जाते हैं। वे अपने स्वभाववश उनमें दोष तो देखते ही नहीं गुण ही गुण देखते हैं। कभी कोई सखा पीठ दे देता है, तो वे उसकी रो-रो कर चिरौरी करते हैं। उसे मनाये बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता। यह प्रियतम श्यामसुन्दर की महा प्रेमाधीनता ही है कि वे अतुलनीय समस्त गुणों के एक मात्र आश्रय होकर भी गँवार ग्वालबालों के साथ गँवारूपन खेल खेलने में ही अपना अधिकांश समय बिताते हैं। परन्तु उनको यह गँवारू खेल कोई भार थोड़े ही लगता है, हां वे अपनी प्रिया को अवश्य यह कह देते हैं कि इस निज इन्द्रिय सुख रूप व्यापार में, गाय चराने में उन्हें नीरसता, गंवारूपना ही अनुभव होता है। और वे अपनी प्रिया के परम प्रेम विधान की, उनकी कृपा की प्रतीक्षा कर रहे हैं जिससे उन्हें लीलानन्द प्राप्त हो।

प्रियतम को निश्चय है कि मैं स्वरूपतः प्रिया हूं मैं मात्र शाश्वत भाव रूप हूं सर्वथा-सर्वथा इस सब से विलक्षण हूं यह श्रीकृष्ण रसराज तो मात्र भाव सेवार्थ आभास है जो व्यवहारकर्त्ता के रूपमें प्रतीत होता है, वास्तव में तो श्रीकृष्ण न कर्त्ता है एवं न ही भोक्ता हैं।

ये ग्वालबाल, ये वन, नदी, ये गायें, बछड़े, ये गोपियां ये सब प्रिया की अनवधानता से ही सत्य की तरह प्रतीत हो रहे हैं। ये प्रियतम की मन बुद्धि और इन्द्रियादि के परिणाम स्वरूप ही हैं। प्रियानुभव होने पर इन सब का प्रत्यक्ष अभाव हो जायेगा प्रिया के, महाभाव के विस्मरण से ही उनकी इन्द्रियां, उनका देह, प्राण, मन और बुद्धि समस्त दृश्य का सृजन कर रहे हैं। ज्योंही प्रिया हृदय में अवतरित हुई यह सारा प्रपञ्च अदृश्य हो जायेगा।

अतः अवहित होकर क्यों न इस सत्वका पूर्ण निरसन करूं, जिससे प्रिया स्वयमेव हृदय में प्रतिभात हो जावें। यद्यपि प्रियतम को यह स्पष्ट दिखता है कि प्रिया का ही यह सब रूपान्तर है, फिर भी जैसे माला में रज्जु का भ्रम निषेध हो जाने पर माला धारण करने की इच्छा बलवती हो जाती है, उसी प्रकार यह प्रिया रूप ही है, यह अनुभव होते ही प्रियतम को यह सब गँवारू खेल लगने लगता है और कैसे अपनी प्रियारूप माला को धारण करूं उत्कण्ठा उत्पन्न हो जाती है।

हे शुकराज़, प्रियतम पूर्ण प्रिया हैं। उनमें भासक भास्य विभाजित है ही नहीं। फिर भी उनमें जो यह उत्कण्ठा प्रकाश है, वह मात्र रस पुष्टि के ही लिये है। तत्वतः और व्यवहारतः प्रियतम में और प्रियामें कहीं अप्राप्ति है ही नहीं। क्योंकि भावराज्य में तत्त्व और व्यवहार दो अलग वस्तु होती ही नहीं। लीला की नवीन, अति रसमयी भूमिका का प्रारम्भ ही यह महती उत्कण्ठा है जो प्रियतम में अभिव्यक्त हो रही है। फिर भी यह उत्कण्ठा इतनी तीव्र हो रही है कि वे कहते हैं:—

"प्रेम सुधा सरिता तुमसे मुझ तप्त धूलिका कैसा मेल"

हे शुकराज ! प्रियतम पूर्ण आनन्द हैं। इस पूर्ण आनन्द में से पूर्ण आनन्द निकालने पर भी पूर्ण आनन्द ही बच रहता है। अतः यह श्रुति सिद्ध है कि ऐसा कोई पदार्थ इस विश्व सृष्टि में नहीं है, जिसके सम्मुख पूर्ण आनन्द भी सूख कर तप्त धूलि बन जाय। प्रियतम पूर्ण तप्त हैं, पूर्ण काम हैं। ये पूर्ण निष्कामों के काम्य हैं परन्तु समस्त श्रुतियों ने अपने अथक परिश्रम के उपरान्त भी कोई ऐसे तत्त्व का अन्वेषण नहीं किया जो इन पूर्ण काम को अनन्त कामी बनादे और इन पूर्ण तृप्त में ऐसी अतृप्ति उदय करदे कि वे तप्त धूलि की उपमा वरण करने को तत्पर हो जावें।

इन्हीं पूर्णानन्द, पूर्ण भुक्, पूर्ण कर्त्ता, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण भा, पूर्ण शक्ति, पूर्ण ऐश्वर्य, पूर्ण वैराग्य, की कथा कहनेवाले वेदों की सारी शृंखला प्रियतम श्रीकृष्ण के ही शब्दों में उनकी प्राण प्यारी प्रियतमा श्रीराधा ने क्षण मात्र में तोड़ कर रखदी है। वे पूर्णआनन्द प्रियतम राधा रूपी सरिता के प्रवाहित होने के पूर्व ही पूर्णआनन्द थे, ज्यों ही राधारूपी प्रेम सरिता ने उनके हृदय को सरसित किया, सारा पूर्णआनन्द बह गया प्रेम सरितामें और वे तप्त धूलि

हो गये। "हे शुक, कैसा विलक्षण दैन्य है और कैसी विलक्षण उत्कण्ठा है। इसका आनन्द तो लो" सारिका के इतने कहते ही शुक एवं सारिका दोनों, अपने प्रियतम के हृदय की भाषा को अपनी अनुभूति, भाव में सुनने लगे:—(मानों प्रियतम कह रहे हों)

"हे प्रिये ! जैसे गले में विद्यमान होने पर भी मणि आदि वस्तुएँ नहीं पायी जाती–विद्यमान पदार्थ भी मानो खो गया हो इस प्रकार प्रतीत होता है, इसी तरह सर्वत्र मात्र तुम्हारे ही विद्यमान होने पर भी मैं अभागा तुमसे विरही बना यहां एकान्त में विरहाग्नि में जल रहा हूं। तुम प्रेम सुधा सरिता से मुझ तप्त धूलिका सर्वथा मेल नहीं हो रहा है।

"हे प्रिये, उचित ही है, मैं अवश्य ही इन गायों इन पशुओं का संग करते-करते पशु बुद्धि हो गया हूँ। सार एवं असार वस्तुओं के सम्बन्ध में विवेक ज्ञान को दृढ़ न करने से ही मेरी संज्ञा पशु है। मैं यह जानकर भी कि तुम ही मेरी प्रकाशक हो, तुमको अपना मात्र प्रेमास्पद नही मानता और पशु संस्कार से परिचालित होकर इन पशुपालन, गोचारण, ग्वालबालों के खेलों में ही रस लेता रहता हूं। इसका एक मात्र कारण यही है तुम जो मेरी ईप्सित हो, उसमें मेरी अनुरक्ति वास्तव में बलवती है ही नहीं। जिस विषय में रुचि प्रेम प्रबल होगा वहीं तो मन आकृष्ट होगा ? तो मेरा मन सर्वथा प्रेम शून्य है तभी न प्रेम सुधा सरिता तुमको न चाहकर तप्त धूलिवत् ज्वालामय इन इन्द्रिय प्रतीति मात्र पशुओं में ही मेरी प्रीति है, इन गोपालों में ही मेरी आस्था है। हे प्रिये ! यह सब दृश्य नीरस है, इसका अनुभव भी नीरस है, इसकी तज्जन्य स्मृति और इसके संस्कार भी नितान्त नीरस हैं। इन सबमें तुम्हीं एक मात्र जो इनकी अधिष्ठान और प्रकाशक हो, भावात्मा, भाव देह हो। तुम्हारे बिना सब तुच्छ आनन्द, अल्प सुख है।

"हे प्रिये, यह चित्त ही तो सब दृश्य की जागृति करता है, न ? इस चित्त में 'चित्त' मात्र भाव तो तुम हो, बाकी जो कुछ है, सब "त" अर्थात् ताप ही ताप है।

"हे प्रिये, निष्काम्य अनन्त सुखमयी मात्र तुम ही मेरी हो। मैंने तुम में ही केवल अपनी अरसिक वृत्ति के कारण यह सब कल्पित किया है। इन सबका अधिष्ठान तुम हो। अतः सब कुछ तुम ही हो। तुम्हारे सिवाय कहीं, कुछ

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

नहीं। हे प्रिये, मैं तुममें स्थित होकर ही रसराज, पूर्ण रसिक हूँ, अन्यथा मैं पूर्ण अरसिक, रस शून्य तप्त धूलि ही हूँ।

"हे प्रिये ! तेरे प्रेम रसाम्बुधि के सीकर का ही मुझे सहारा है। तेरी प्रेम सुधा अत्यन्त पावन है। हे प्रेम सुधामयी ! तू ही अत्यन्त पावन है, तूही मेरा जीवन है। हे कृपामयी ! यद्यपि मैं तेरे विमल प्रेम के सर्वथा अयोग्य हूं, फिर भी तू ही मेरी इन तन-मन इन्द्रियों की ज्वाला क्षण-क्षण में हरने वाली है। हे प्रिये ! हे उदार चूड़ामणि ! मेरा प्रेम अपावन है, मैं तो घर-घर डोलता रहता हूं। सत्य ही कितने घर द्वार मैंने बनाये हैं। नन्द भवन क्या मेरा घर है ? यह श्रीकृष्ण रूप देह भी क्या मेरा घर है ? ये सखा, गोपी, गोप, ग्वाल, गौ, खेत, वन, पहाड़, वत्स, कितने घर बना लिये हैं, मैंने ? अपनी इन्द्रियों के सब द्वारों से, इन घरों में ही मैं आता जाता रहता हूं। अतः प्रिये, मेरा प्रेम सर्वथा अपावन है। परन्तु तेरे नेत्र अदोष स्पर्शी हैं। उनमें मेरा दोष आता ही नहीं। तू तो मात्र अपनी ओर देखकर ही मुझे अपना संयोग देती रहती है। तू अनन्य है। एक मात्र तू ही तू है। तू परमसुख मूल है। तू मेरी भूलों को न देखकर मुझे अपने पावन पदकमलों में ही लगाये रखती है।"

प्रियतम की उत्कण्ठा तीव्र-तीव्रतर होने लगी। वे जोर से बोलने लगे—"हे प्राणाधिके ! मैं तेरे शशांक बदन को कभी नहीं भूल सकता। हे प्रियतमे, तेरी मधुमयी वाणी सुनने को मेरा चित्त लुब्ध हो रहा है। हे मधुमयी ! तेरी प्रेम सुधा के लिये मेरे होठ तप रहे हैं। हे प्रिये ! तुम्हारे प्रिय दर्शन के लिये मेरे नयन व्याकुल हैं। हे विधुवदनी, तू ही मेरी जीवन है। तू ही उसका मधुमय रस है। हे सर्वस्व, तेरे वियोग की शूल से मेरे हृदय में अपरिमित वेदना हो रही है।

सहसा सारिका बोल उठती है:—हे शुकराज, प्रिया प्रियतम नित्य मिले हैं। दोनो एक ही अभेद सत्ता हैं। प्रिया हैं ही नहीं, प्रियतम ही प्रियतम हैं और प्रियतम हैं ही नहीं, प्रिया ही प्रिया हैं। दोनों ही सदा शुद्ध, परम शुद्ध आनन्दरूप हैं। परन्तु यह भाव अनिर्वचनीय, अचिन्त्य है। कुछ पता नहीं, कब से यह अनन्त की ओर जा रहा है। किसका किसमें पूर्ण समर्पण है ? कौन आश्रय है और कौन विषय है कहीं कुछ छोर नहीं मिलता। प्रिया प्रेम सुधा सरिता हैं तो प्रियतम में तप्त धूलि के समान उत्कण्ठा का उदय है और प्रियतम

प्रेम-समुद्र हैं तो प्रिया में उत्कण्ठावश तप्त धूलि का भावोदय हो जाता है। जहां प्रिया प्रेमसुधा सरिता हैं, वे प्रियतम रूप तप्त धूलि की मरुभूमि को पूर्ण वेग से टकराकर अनादिकाल से चूरकर रही हैं। यह तप्त धूलि राधारूपी सरिता में डूबती जाती है। श्रीराधा रूप प्रेम सरिता इससे सूखती नहीं। उसका प्रवाह भी शिथिल नहीं होता। प्रियतम रूप अपार अतृप्ति का, तप्त धूलि भरी मरुभूमि का न तो अन्त है एवं न ही श्रीराधा की तृप्त करने की सामर्थ्य का अन्त है। जो मरुभूमि का भाग डूबता है, वह नित्य डूबा रहता है, पुनः कभी ऊपर नहीं आता। परन्तु प्रियतम हृदय की अपार अतृप्ति तो विशाल मरुभूमि के समान फिरभी सम्मुख है ही। उसे ही श्रीराधा को अपार अनन्त उदधि में परिवर्तित कर देना है। और अपने को उसी में विलीन करना है। प्रियतम कोई खारे जल के समुद्र थोड़े ही हैं, जिसमें गंगा मिलती हो, यमुना मिलती हो। प्रियतम तो प्रियात्व रूप सुधा सरिता के लहराते अनन्त सागर हैं, जिसमें मात्र एक ही नदी गिरती है। वह नदी ही उस सागर का स्रोत भी है और अपार जल भी है। सागर और नदी दो हैं ही नहीं। नदी ही नदी है। नदी ही सागर है और सागर ही नदी है। और नदी ही मरुभूमि भी है। नदी ही तप्त धूलि है। यह तप्त धूलि मात्र रस प्रकाशनार्थ तप्त धूलिवत् दिखलाई पड़ रही है। सागर ही, नदी ही, प्रेम सुधा ही तप्त धूलि हो गई है। हे सारिके! सुधा और ताप, मरुभूमि और नदी, समुद्र और नदी, ये सब भाषा भाव जगत की हैं ही नहीं। प्रकृति गत भाव यहां है ही नहीं। वह सर्व विलक्षण राज्य है। यहां मात्र भाव ही भाव है। भाव ही सुधा सरिता है और भाव ही तप्त धुलि है।

हे शुकराज! जल से बाहर निकाले जाने पर मीन छटपटाती है। उसमें इतना ताप उदय होता है कि उस असह्य ताप से वह छटपट करती है। परन्तु प्रिया एवं प्रियतम तो प्रेम सलिल में डूबे रहकर ही असह्य ताप से विकल होते रहते हैं। और वह विकलता मात्र दूसरों को ही विकलता के रूप में दिखती है। वस्तुतः वह विकलता होती है इतनी आह्लादमयी कि उपनिषद् प्रतिपादित अनन्त-अनन्त ब्रह्म सुखका आनन्द उस विकलता के एक छींटे के सामने तुच्छातितुच्छ हो जाता है।

हे शुकराज! दहन शक्ति की क्या सामर्थ्य है जो प्रियतम के हृदय को जला सके। प्रिया तो सब सुधा सरिताओं की, सुधा समुद्रों की एक मात्र

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

आश्रय हैं। अतः वह नाम मात्र की सुधा सरिता है। उसमें कहीं तप्त धूलि है ही नहीं। हे शुकराज! प्रियतम का अमन रूप निर्विकार मन भी इस प्रिया प्रेम सुधा सरिता के लिये नित्य मचलता रहता है। कैसी प्रेम सुधा सरिता है, उछलती, लहराती। प्रियतम की प्यारी मधुरतम मञ्जुल मूर्ति श्रीराधा तो उनके बाहर भीतर नित्य अनवरत बहती हैं, लहराती हैं, फिर भी प्रियतम का हृदय नित्य अत्यन्त तृषातुर है। हे शुकराज, रस निष्पत्ति ही यह तप्त धूलि है और रस निष्पत्ति ही यह सुधा रस सरिता है। अधिष्ठान तो मात्र भाव ही भाव है। न अग्नि है और न दहन शक्ति है। न सूर्य, चन्द्रमा हैं और न ही इनकी प्रभा, आभा है। न शक्ति है, न शक्तिमान है। मात्र आस्वादन, मात्र ज्ञान और मात्र आनन्द ही तो है। प्रेम ही जैसे अधिष्ठान है, उसी प्रकार परम विशुद्ध भाव ही इस सब रस में व्यक्त हो रहा है। यही भाव ही नित्य रसरास है, और यही उत्कण्ठा रूप ताप है। यह भाव ही लीलामयी बनकर प्रकट हो जाता है और यह रस सागर ही कभी भाव में विलीन भी हो जाता है। यही भाव का ललित लीलोत्सव है।

और देखो शुकराज! यही उत्कण्ठा अब विपर्यय स्वीकार करके कैसा विलक्षण रूप दिखा रही है, देखो। और शुक देखने लगा वे ही प्रियतम जो थोड़े से काल पूर्व अत्यन्त विरहातुर हो रहे थे अब उनके मनकी व्यथा का, उनके उर के दारुण पीड़ा का उमड़ता उद्रेक न जाने कहां विलीन हो गया है। वह सब भयानक व्यथा, वह मर्म घातिनी पीड़ा, अनुपम अनवद्य, निर्बाध शीतलता में परिणत हो गई है। वही पीड़ा, वही तप्त धूलि, मधुमय रस समुद्र के रूप में एक क्षण में ही परिवर्तित हो गई। उस अति गम्भीर अमल सुधा स्रोत में प्रिया के साथ प्रियतम अवगाहन कर रहे हैं। कहां गई वह विरह वाणी? वह विरह वेदना ही इस मधुर रस का आधार है। कोई अन्तर नहीं है, कहीं भी, तनिक भी भेद नहीं है, उत्कण्ठा में और सम्भोग में। एक ही भाव समुद्र है–उत्कण्ठा और सम्भोग। मिलन और वियोग। एक ही भाव है–ताप और शीतलता, दारुण पीड़ा और आनन्दोल्लास।

शुक देख रहा है–"प्रिया अपने प्रियतम से ऐसी मधुरवाणी में रसालाप कर रही हैं कि प्रियतम उसकी वचन माधुरी में डूबे जा रहे हैं। अहा! प्रिया कैसी मनोहर हैं क्या वे रमणी हैं? कदापि नहीं, क्योंकि वह तो निष्कंप हैं, वे स्व प्रकाश हैं, वे निज स्वरूप, निराभास हैं फिर रमणी कैसे?

रमणी तो रमण की अपेक्षा से रमणी है, ये तो सर्वथा निरपेक्ष हैं।

तो प्रियतम न रमण हैं, न प्रिया रमणी हैं। तो क्या ये प्रियतम स्वकीया प्रिया हैं ? ऐसा भी नहीं। क्योंकि यदि स्वकीया होती तो ये प्रियतम परतन्त्र होतीं। ये तो पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। प्रियतम विलाप करते रहते हैं, और ये अपने स्वरूप में ही खोये रहती हैं तो फिर क्या परकीया हैं ? परकीया भी नहीं। क्योंकि ये प्रियतममय हैं। प्रियतम में ये भरी हैं। और इनमें प्रियतम ही प्रियतम भरे हैं। तो क्या ये प्रकृति हैं ? प्रकृति भी नहीं—क्योंकि प्रकृति तो मिथ्या है, माया है, वह तो पुरुष का सेवक मात्र है। प्रिया भाव रूपा हैं, सत्य हैं, चित हैं, और आनन्द हैं। ये ब्रह्म की भी भाव हैं। ये प्रियतम का भी भाव हैं, उनका भी आधार हैं। तो क्या पुरुष हैं ? पुरुष भी नहीं। क्योंकि पुरुष तो एकमेव है, ये तो प्रिया-प्रियतम द्वैत सहित हैं। पुरुष अकर्त्ता, अभोक्ता, अव्यय है और ये तो लीला विलासिनी, क्रीड़ा कमनीया है। तो क्या ये निराकार हैं ? नहीं, कदापि नहीं। पिसे हुये स्वर्ण के समान कांचन गौर इनका वर्ण है। और इतना सुचिक्कण है कि मानो स्वर्ण धूलि को खूब पीसकर उसे अति सुचिक्कण कर दिया गया है। फिर इसमें सुधा के समान शीतलता,सरसता, मादकता, भी भरी है और ये सब इतनी मात्रा में हैं कि प्राणों को आप्यादित कर जावें। साथ ही पूर्ण लावण्य, पूर्ण माधुर्य का भी योग कर दिया गया है फिर भी प्रिया के वर्ण की उपमा इन्हें नहीं दी जा सकती। क्योंकि प्रिया तो स्व प्रकाश हैं। इनमें प्रकाश कहां से आवे ? ये तो प्रकाश हैं प्रिया की उपमा के लिये तो स्व प्रकाशता चाहिये। सम्पूर्ण उपमाओं को बटोर लो, हेममणि कहलो, कंचनलता कहलो, विद्युल्लता, विद्युल्लहरी कहलो, परन्तु इन सब उपमानों के गुण परिच्छिन्न हैं, ससीम हैं, अनन्त असीम कहां ? ये प्रिया तो माधुर्य एवं लावण्य की अपरिसीम समुद्र हैं। इनके अंगों में नीलाम्बर शोभित है। वक्षस्थल पर रंग-बिरंगी मालायें झूल रही हैं। अंग-अंग पर रत्न जटित आभूषण शोभा पारहे हैं। विविध अनन्त-अनन्त रसमयी लीलाओं की क्रीड़ाओं की अनुपम आकार हैं ये। लम्बी घुंघराली अलकें हैं। जिनसे विविध प्रकार का सुवास प्रसारित हो रहा है। केशपाश विभिन्न पुष्प मालाओं से गुंथे हैं। अहो ! कितनी मन मोहक बन गई हैं इनसे इनकी वेणी की कान्ति। चमकते ललाट पर कस्तूरी का शृंगार। बीच में लाल बिन्दी और दोनों ओर अलकावलि झूल रही हैं। लीलायुक्त चढी हुई भौंहों के विलास से

ये प्रियतम का चित्त अपहरण कर रही हैं।

इनके झूमते हुये कमनीय नेत्र, बीचमें नीले और प्रान्तों में लाल कमलों की छटा धारण किये हुये हैं। शुक-चंचु के समान नुकीली नासिका के अग्रभाग में नील मणि की वेसर है। इससे इनकी शोभा कितनी बढ गई है। दोनों कान स्वभाव से ही मनोहर हैं। विविध मणि जटित कर्ण भूषण उनमें शोभित हैं। उनका प्रतिबिम्ब प्रिया के दर्पण सदृश कपोलों पर पड़ रहा है। कपोल इन कर्ण भूषणों से कैसे दिपदिपा रहे हैं। लावण्य युक्त मुखारविन्द कोटि-कोटि शशधर की कान्ति बिखेर रहा है। ठोड़ी विविध हास्यरस की छटा से अत्यन्त मधुर एवं प्रकाशयुक्त प्रतीत हो रही है। कण्ठ देश में मुक्ता हार सुशोभित हैं। अहा, कितना लावण्य भरा है, इस कण्ठ में। कैसी प्रियतम मोहिनी भंगिमा है प्रिया की। प्रियतम कैसे मोहित हो रहे हैं इस रूप सुधा पर। ग्रीवा की मरोड़ कैसी आकर्षक है। वक्षस्थल तो लावण्य का आकार ही है। अपने प्रियतम को परमानन्द दान करने के लिये नित्य उत्सुक हैं, ये। मणि श्रेष्ठ कौस्तुभ को भी प्रतिहत कर दे रही हैं, चम-चम करती मणि मालायें, रत्न मालायें, हीरक मालायें, मुक्ता मालायें एवं पुष्प मालायें। भुजाओं में चूड़ियां और वलय शोभित हैं।

रक्त कमल के समान लाल लाल हथेलियां मेंहदी से सुरचित हैं। उदार अत्यन्त मनोमोहक है उस पर लावण्य अहर्निश क्रीड़ा करता रहता है। पृष्ठ देश और पार्श्व भाग भी अमृत के समान मधुर हैं। प्रियतम के साथ चिन्मय विहारार्थ सदा चंचल रहती हैं, ये। वर्तुल पृथुत्र नितम्ब भाग सुधा स्मृत कमल के समान मादक है। प्रियतम स्वयं मोहित हैं, इसे देखकर। दोनों उस मनोहर कदली स्तम्भों की शोभा को परास्त कर रहे हैं। प्रियतम का मन मुग्ध है, इन्हें देखकर। दोनों घुटने कितने लावण्य युक्त, कितने मनोहर चमकीले हैं। चरणकमल भी परम मनोहर एवं रत्न जटित नूपुरों से मण्डित हैं। जपा पुष्प के समान लाल-लाल चरणतल अनेक चिन्हों से सुशोभित हैं। अरुण चरणों की अंगुलियों के नख चन्द्रमाओं के समान प्रतीत हो रहे हैं। उनकी शोभा अपूर्व है। विलक्षण प्रेम एवं आनन्द की सिन्धु हैं ये प्रिया।

कैसी निराकारता है प्रिया की। तो फिर क्या प्रिया साकार हैं? शुक दृश्य देखता-देखता खिलखिला उठता है। अनन्त-अनन्त सौन्दर्य कभी किसी

एक आकार में बन्ध सकता है क्या ? आकार तो इदमित्थं सौन्दर्य को, परिच्छिन्न सौन्दर्य को ही व्यक्त कर सकता है। इसीलिये आकार सदा, सीमा निर्देश करता है।

अरे, ये प्रिया तो अनन्त सुन्दर, अनन्तमधुर, अनन्त कमनीय, अनन्त सुरभित, अनन्त मृदु, अनन्त आभायुक्त हैं, अनन्त आकर्षक, अनन्त सरस, अनन्त मादक, अनन्त सुचिक्कण, अनन्त प्रकाश हैं। इनमें अनन्त रंगत है। अनन्त मिठास है। फिर इसे कोई एक आकार कैसे व्यक्त कर सकता है ? ये तो सर्वाकार हैं, और सर्वाकार कोई आकार होता ही नहीं।

तब प्रिया क्या निर्विशेष हैं ? कैसी बात करते हो भाई ? कौनसा विशेषण इनकी सेवा नहीं कर रहा है। सर्व विशेषण इन्हीं की तो सेवा कर रहे हैं। दिव्य चिन्मय, लौकिक, पारलौकिक कहीं भी कोई भी विशेषण ऐसा है कहां, जो इस छवि में प्रतिभात नहीं हो रहा है। सर्व विशेषण निधि है यह छवि। सौन्दर्य है, माधुर्य है, सुगन्ध है, शोभा है, सुकुमारता है, प्रियदर्शिता है, रूप है, सरलता है, बुद्धिमत्ता है, प्रीती है, सेवा है, धैर्य है, कातरता है, उत्कण्ठा है, निरभिमानता है, वैभव है, विनय है, नम्रता है, त्याग है, कौशल है, साधु भाव है, सुशीलता है, चपलता है, गम्भीरता है, ऐश्वर्य है, ज्ञान है, श्री है, सब विशेषण तो यहीं, इनमें, अकेली में शोभा पारहे हैं। और सभी विशेषण अनन्तानन्त हैं।

तब क्या प्रिया सविशेष हैं ? अरे भाई, जो विशेषणों से परिच्छिन्न हों उसे ही तो सविशेष कहते हैं। ये तो सर्व विशेषों की अधिष्ठान हैं। सब इनमें प्रकाशित होते रहते हैं। ये विशेषणों से परिच्छिन्न सीमित थोड़े ही हैं। ये विभु है, भूमा हैं, अपरिच्छिन्न हैं तो ये न सगुण हैं, न निर्गुण हैं। न दो हैं, न एक हैं। न व्यक्त हैं, न अव्यक्त हैं। न रस हैं, न रसिक हैं। न सकाम हैं न निष्काम हैं। न आत्मा हैं, न बुद्धि एवं मन ही हैं।

कैसी विलक्षण छवि सरस रही है प्रिया की। प्रियतम मुग्ध हैं। उनके लिये भी, यह छवि ज्ञेय भी है और अज्ञेय भी। क्योंकि जब तक वे अपनी इन्द्रियों का प्रत्याहार नहीं कर लेते, सम्पूर्ण वहिर्दृश्य से चित्त को निर्विषय नहीं कर लेते, तब तक तो इस प्रिया के उदय होने का प्रश्न ही नहीं। जब प्रियतम के हृदय की तीव्रतम उत्कण्ठा सब वहिर्दृश्य का प्रत्याहार कर देती

हैं, उसी समय स्वरूपाकार हुये प्रियतम के चित्त में ही प्रिया का स्वप्रकाश रूप प्रतिभात होता है, परन्तु उस समय भी ये लीलामयी कृपा करके ही पधारें तो भले पधारें। सूर्य को देखने के लिये आँख खोलना ही तो मात्र आवश्यक नहीं। आँख खोलने से आकाश की निराकारता का दर्शन तो हो जावेगा परन्तु सूर्य मण्डल तो प्रभात होने पर ही अपनी कृपा से ही उदय होगा, न ? फिर यह प्राकृत सूर्य तो स्वच्छन्द नहीं है, वह तो प्रकृति के बन्धन में है यह तो निश्चित अवधि पर उदय होगा ही। परन्तु प्रिया तो पूर्ण स्वतन्त्र हैं, वे तो मात्र कृपा से ही उदय हों तो भले हों। इसीलिये प्रियतम में प्रिया की अपार कृपा का, कृपा निलय स्वरूप का स्फुरण होने लगता है, और वे गा उठते हैं:—

"तुम स्वामिनि अनुरागनि जब देती हो प्रेम भरे दर्शन ।
तब अति सुखपाता मैं मुझ पर बढता अमित तुम्हारा ऋण" ।।

तो प्रियतम की स्वामिनी, उनकी जीवन मूला, उनकी आत्मा, उनकी स्वरूपनिधि, उनकी प्राणाधिका उनकी सर्वस्वा, प्रिया अत्यन्त अनुराग और प्रेम से भरी उनको दर्शन दे रही हैं। कैसा परम नवीन अतुल रस रंग उमड़ रहा है। कहां गई सब उत्कण्ठा, वेदना। कुछ पता ही नहीं। किसी की कोई स्मृति, संस्कार भी शेष नहीं। न गायों की स्मृति है, न गोपालों की। न सख्य की अनुभूति है, न वात्सल्य की। न वत्स हैं, न वन है। न घास है, न गँवारू खेल है।

प्रिया के प्रेम भरे विग्रह के उदित होते ही सब दृश्य ऐसे विलुप्त हो गया जैसे शश-शृङ्ग। और नवीन रसमय दृश्य सम्मुख आ गया। भाव ही तो अनन्त-अनन्त रस है। अनिर्वचनीय सुखमय रस की आगार हैं प्रिया। "कैसा सुमधुर वृन्दावन है। सुन्दर विकसित सुमनावली से सुरभित एवं सज्जित नवल निकुंज हैं। प्रत्येक निकुंज समस्त रस साधनों से आपूरित हैं। मधुर मनोहर सुषमा का पुंज ही मानो उन सब पर अवतरित हो गया हो। कैसी सुकोमल शय्या बिछी है। ललित लीलास्थली, कालिन्दी सलिल की कलित तरंगें, मलय समीर, शारदीय पूर्णिमा की शुभ्र रजनी, सुधामयी किरणावली, मधुर सुधा रस की सरिता मुरली, सुन्दरी सखियां, मंजरियाँ, नित्य नवीनकेलि, परम मधुर नित्य नव रसमय नित्य विहार, सब लीला रस प्रिया के अनुराग भरे दर्शन के साथ ही एक साथ प्रादुर्भूत हो गया।"

प्रियतम के सम्मुख प्रिया की प्रेम छलकती आँखें हैं, और प्रियतम अपने मन की सब बातें कह रहे हैं। कैसा मधुरालाप हो रहा है दोनों में। प्रिया उन्हें आलिङ्गित कर रही हैं, सुख दे रही हैं, और गलबैयाँ देकर मिल रही हैं। वे उनके हृदय में समायी हैं और एक पल के लिये भी वहाँ से सर्वथा नहीं हट रही हैं। वे कभी परमातिपरम सुमधुर संगीत सुनाती हैं। कभी हँसाती हैं, और कभी हँसती हैं। कभी नयनों से प्रेम कटाक्ष करती हैं, एवं कभी उनके मन में ही समा जाती हैं। कभी मनोहर अति रसमय तीव्र व्यंग करती हैं। कभी प्रीति विवश सला देती हैं। कभी अत्यंत आतुर होकर दयनीय बनी चरणों में गिर जाती हैं, कभी अपने चरणों में गिरे को उठाकर हृदय से लगा लेती हैं। कभी प्रेम कलह करने लगती हैं, कभी इतना संतोष दिला देती हैं, जिससे मन की सब व्यथा नष्ट हो जाती है। कभी हाथ जोड़कर अत्यंत करुणापूर्ण मधुर विनती करने लगती हैं, कभी विनती सुनकर, हँसकर उसे अनसुनी कर देती हैं। कभी अत्यंत भोली भाली छवि से अति मनोहर सूरत बनाकर सम्मुख आती हैं और कभी अति बुद्धिमती चतुरा हो तर्क विवाद करने लगती हैं। कभी सरल हृदया हो अति ही सीधी सादी बातें करती हैं, कभी इतने कला नैपुण्य का प्रदर्शन करती हैं मानो अनन्त-अनन्त ज्ञान उनमें भरा हो। कभी अतिशय भीरु, डरपोक हो जाती हैं, और तनिक सी आहट से डरकर प्रियतम के पीत आँचल में मुँह ढँक लेती हैं, और कभी निडर होकर ऐसा साहस प्रदर्शन करती हैं, मानो इनके समान निर्भय कोई न हो। कभी मुरली चुरा लेती हैं, कभी उसे लेकर छिप जाती हैं। कभी मोर मुकुट छुपा लेती हैं और ऐसी भोली बन जाती हैं मानो इन्हें पता ही नहीं, कभी ऐसा छल वेश धारण कर लेती हैं जिससे प्रियतम पहचान ही न पावें। कभी हृदय से हृदय सटाकर मधुमय रसालिंगन दान देती हैं कभी अति सुख दायक अधर सुधारस पान कराती हैं। इस प्रकार प्रियतम का चित्त अपनी प्रिया के शुभ दर्शन में अत्यंत तल्लीन हो रहा है। उनके सारे अंग-अंग, रोम-रोम, प्रिया संस्पर्श से पुलकित हैं, प्रेम रस में मग्न हैं, शोक रहित हैं, और चिन्मय परम रसमय हर्ष विकार से रोमाञ्चित हैं।

शुक सारिका दोनों देख रहे हैं। प्रिया प्रियतम को वर्जित करती बोल रही हैं—"हे छलिया, हे जादूगर, हे निष्ठुर, हे शठराज, तुमने मेरा हृदय छीन लिया, अब यों मुझे रुलाते लज्जा भी नहीं आती ? तुम्हारा मधुर मोहन वेश मात्र ऊपरी ही है, यह मैं अब तक समझ नहीं सकी थी, परन्तु अब मुझे स्पष्ट

पता चल गया कि तुम्हारा वज्र हृदय है। तुममें तनिक करुणा का लेश मात्र नहीं है। मैं दिन रात विरह ज्वाला में जल रही हूँ, व्याकुल, विह्वल होकर पल भर भी मुझे चैन नहीं पड़ता। फिर भी तुम्हें मेरी तनिक सी भी चाह क्यों होने लगी। हे कितव, तुम तो सदा सुख सागर में डूबे रहते हो, तुम्हें मेरी अब क्या परवाह है? यदि तुम्हें यही करना था तो मुझ से स्नेह जोड़ा ही क्यों था? मेरे मन में तो यही इच्छा है कि अभी यह देह तुरन्त त्याग कर भस्म कर दूँ।"

प्रिया की इस फटकार पर भी प्रियतम का हृदय आनन्द से भर रहा है। इस प्रकार के कटु सम्बोधन भी उन्हें कितने मीठे लग रहे हैं। उनका मन कर रहा है कि अनन्त-अनन्त काल तक इसी प्रकार के संबोधन सुनता रहूँ।

कैसा प्रिया-प्रियतम का मिलन है; परन्तु शुक देख रहा है—यह सब मात्र भाव मिलन ही चाहे यह अन्तर्मिलन हो, चाहे बाह्य मिलन हो, है यह भाव परिनिष्ठित रस ही। भाव ही भाव है, मात्र भाव है। इस सब रस का अधिष्ठान मात्र भाव है। इसीलिये प्रिया प्रियतम का नित्य ऐक्य है, सतत संयोग है। प्रिया प्रियतम कभी न्यारे, विलग हैं ही नहीं। किसी परिस्थिति में, किसी स्थान में, कदापि वियोग संभव ही नहीं। खाते-पीते, सोते-जागते सदा संयोग नियत है। निस्संकोच मिलन–कोई भेद नहीं कोई दुराव नहीं–पूर्ण एक–रूपता ही एकरूपता। प्रिया प्रियतम एक तन हैं, एक मन हैं, एक रस हैं, एक आकार हैं। बस, बने हैं दो और इस उनके दो बनने का उद्देश्य मात्र पावन प्रीति सुधा रस धारा बहाना ही है। वियोगी होना दो बनने का उद्देश्य थोड़े ही है? उनमें सदा मधुर ललित लीला होती रहती है, नित नवीन रस रंग उछलता रहता है। नित्य मधुर रस से उज्ज्वल, नये नये चाव से मधुर चित्त रस में प्रवाहित होता रहता है। उन्हें सदा परम निर्मल, अति सुखमय विश्रान्ति मिलती रहती है। अपने प्रियतम को अविचल आनन्द, अनन्त आनन्द, सर्व प्रकार से आनन्द-आनन्द ही आनन्द प्रिया देती हैं और अपनी प्रिया को अनन्त रस से उनके प्रियतम सदा भरे रहते हैं। उनमें इस आनन्द में डूबने की नित्य नयी क्षमता बढती जाती है। नित्य नये अथाह उल्लास से दोनों के मन थिरकते रहते हैं। दोनों-दोनों के शृंगार हैं, दोनों-दोनों की आत्मा हैं और दोनों-दोनों के आधार हैं। दोनों ही दाता हैं, दोनों ही नित्य संगी, नित्य दोनों-दोनों के हिय हार है। दोनों दोनों इस प्रकार एक दूसरे को भूले हैं जिससे उन्हें न शुक्ति की स्मृति है, न

मुक्ति की। परिपूर्ण आनन्द—अनन्त अखण्ड भाव ही भाव। मात्र भाव—मात्र भाव ......।

सारिका बोल उठती है— "हे शुकराज! सख्य रस में, सखा श्रीकृष्ण को कहता है— मुझे कन्धे पर चढ़ालो, श्रीकृष्ण उसके मनोरथ को पूर्ण करने कन्धे पे चढा लेते हैं। कभी स्वयं उसके कन्धे पर चढ जाते हैं। वह जैसा कहता है, श्रीकृष्ण वैसा कर देते हैं। मुक्ति कामको, निष्काम भक्त को वे मुक्ति दे देते हैं। सकाम की इच्छा पूरी कर देते हैं। दास्य को भी मन चाहा सुख दे देते हैं। उसे सायुज्य देते हैं, सालोक्य देते हैं, सामीप्य देते हैं और अनन्त-अनन्त सेवा सुख प्रदान कर देते हैं। वात्सल्यवती गोपियों को माखन खाकर तृप्त कर देते हैं। नाचकर वेणु बजाकर उनके संकल्पानुसार बाल्य मधुर मुद्रायें रचकर उनका सुख बढा देते हैं, परन्तु प्रिया उन्हें जो दर्शन देकर सुख देती हैं, उसका प्रियतम उसे क्या प्रतिदान करें? यदि प्रिया में कोई कामना होती तब तो प्रियतम वह कामना पूरी कर देते, परन्तु प्रियतमा में तो मात्र प्रियतम को सुख देने का ही भाव है आत्म समपर्ण ही आत्म समपर्ण है। कुछ भी स्वयं की चाह नहीं। 'स्व' है ही नहीं मात्र प्रियतम सुख का भाव ही उनका मन, तन है। हाँ, प्रियतम उन्हें क्या दें? वे तो मात्र ऋणी हो कर यह कह ही सकते हैं—

कैसे ऋण का शोध करूं मैं, नित्य प्रेम धन का कंगाल।
तुम्हीं दयाकर प्रेम दान दे मुझको करती रहो निहाल॥

"शुकराज! प्रिया में प्रथम तो कोई कामना ही नहीं है। और यदि कोई कामना है तो मात्र प्रियतम सुख ही सुख की कामना है। इस अपनी प्रिया की प्रेम कामना की पूर्ति करते जाने पर उनको पुनः स्वयं को ही अधिक सुखी होना पड़ता है। क्योंकि प्रिया तो उनको सुखी देख कर ही सुखी हैं। अतः इस कामना पूर्ति के ऋण शोध से उनका ऋण और बढ़ता ही जाता है। शुकराज, प्रेम में स्वसुख कामना ही उपाधि है। परन्तु प्रिया का प्रेम इस उपाधि से सर्वथा शून्य निरुपाधि प्रेम है। प्रिया का अपने प्रियतम से मिलन स्व सुखमय मिलन नहीं है वह आत्मिक संयोग है। आत्मा का अखण्ड, अनन्य एकत्व ही प्रिया प्रियतम का एकत्व है, अद्वितीयत्व है एवं पूर्ण मिलन है। वह प्राकृतिक, देवी किंवा चिन्मय देहों का भी मिलन नहीं है। वह भाव मिलन है। विशुद्ध

मिलन है। देखो शुकराज, अपने ही नेत्रों से प्रिया के निरुपाधि प्रेम की झाँकी देखो, और शुक एवं सारिका दोनों देखने लगते हैं—

"उद्धव जी श्री कृष्ण के भेजे हुये व्रज में आये हैं वे प्रिया से मिलने आये हैं। गोवर्धन परिसर में राधा कुण्ड से कुछ दूरी पर प्रिया अवस्थित हैं। प्रिया को तो वाह्य होश ही नहीं है। वे तो अपने भाव में ही ललिता को कह रही हैं- "ललिता देखो ! तुम कहती थी कि श्याम सुन्दर चले गये, तो उन्हें चले ही जाना चाहिये था, वे मुझ सद्‌गुणहीना, कुरूपा पर क्यों अपना जीवन सुख बलिदान करें। मेरे पास है ही क्या, उनको सुख देने को ? मैं तो मात्र शरीर से ही गोरी हूं, मन से तो बड़ी काली हूं। मेरे प्राण तो पूरे पातकों से भरे हैं। मेरे मन में त्याग है ही नहीं, जरासे अपने सुख का त्याग हुआ, केवल दो दिन प्रियतम का मथुरा जाना हुआ और अपने सुख के लिये मेरा रोना प्रारम्भ हो गया। कैसा अपार अभिमान है मुझ में ? जरासा प्रियतम का अभाव सताया कि दुःख के कारण अश्रुजल बहाने लगी। यह भी कोई प्रेम का कारण है ? क्या ललिता ऐसे ही प्रेम के आँसू होते हैं ? मैं तो सदा हृदय के स्वार्थमय भावों को छुपाकर कपट प्रेम दिखाती हूं। अपने दुःख और अभावों से आने वाले आँसूओं को प्रेम के आँसू बता कर भोले-भाले प्रियतम को छलती हूं। जान बूझ कर स्वांग रचती हूं। मेरे भोले-भाले प्रियतम मुझे परम प्रेमिका मानकर विमुग्ध हो, मेरा निर्मल गुण गान करते हैं, और मेरे प्रेम की अतिशय प्रशंसा करते हैं। ललिता, तुम सब भी मुझको प्रेमिका मानने लगती हो। और उस मिथ्या प्रेम स्वरूप की रक्षा के लिये मैं छल छद्म और प्रपंचों का विस्तार करती हूं। दिन रात प्रियतम को ठगने वाली मुझको प्रियतम छोड गये, यह परम उत्तम ही हुआ। धिक्कार है, मेरे इस कलुषित जीवन को और धिक्कार है मेरे इस मिथ्या मान को और यह कह कर प्रिया भावाविष्ट हो जाती हैं। उन्हें मूर्च्छा आ जाती है।"

ललितादि सखी किसी तरह होश में लाती हैं उसे, तो वे उठ बैठती हैं और हँसने लगती हैं। कहती हैं:- देखो कैसी पगली हूं मैं, ललिता।

देखो, ललिता एक दिन, मैं प्रियतम को पत्र लिखने लगी। लिखते-लिखते मैं प्रियतम ही बन गई। और विरह विकलता से। हा प्राणेश्वरी, हा प्राणेश्वरी, कह कर रोने लगी—और तुमको पत्र दे दिया। उस पत्र में इतना ही

लिखा था "हे प्रिये ! हे हृदयेश्वरी, हे सुमधुरे, मैं नेह कलह में हार गया और तुम जीत गई, अब आजाओ, मैं कुंज में तुम्हारी राह देख रहा हूं" लाओ, बहिन, वह मेरा पत्र मुझे तुरन्त लौटा दो। कहीं प्रियतम को तुम दे दोगी तो वे ठठाकर हँसेंगे।

तुरन्त ही पुनः कहने लगतीं— "ललिता देखो, उधर देखो, उस कदम्ब के मूल में प्रियतम खड़े, कैसी निर्निमेष दृष्टि से मेरी ओर देख रहे हैं, और मन्द-मन्द मुसकरा रहे हैं। देखो तो, मेरे मुख को कमल समझ कर मेरे प्राण प्रियतम के नेत्र-भ्रमर कैसे मतवाले होकर मधुर रस पान कर रहे हैं। देखो बहिन ! प्रियतम मुझे कुंज में आने का संकेत कर रहे हैं। वे अत्यन्त आतुर होकर मुझे बुला रहे हैं, बहिन ललिता, शीघ्रता से मेरा श्रृंगार करो। देखो, मेरे अंग एवं वस्त्र कितने मलिन हो गये। चलो बहिन, शीघ्र करो। ललिता ! तुम भौंचकी सी उधर क्या देख रही हो ? क्या तुम प्रियतम श्यामसुन्दर को देख कर स्वयं प्रेम में डूब रही हो ? देखो बहिन ! तुम तो सदा मेरे सुख में ही सुख मानने वाली रही। इस समय तुम यह कैसा आचरण कर रही हो ?"

"हा ललिता, तुम्हारे विलम्ब करने से प्रियतम निराश होकर चले गये दिखते हैं। क्या किसी और सखी के कुंज में चले गये क्या ? परन्तु इतनी शीघ्र कैसे चले गये ? तब क्या मेरा यह मिथ्या दर्शन ही था। प्रियतम क्या सचमुच मुझ को छोडकर चले गये ?"

'ललिता, तुम्हीं बताओ क्या सचमुच प्रियतम मुझे अभागिनी बना कर चले गये क्या ? ललिता तुम तो साक्षी रही प्रियतम पल-पलमें मुझे अपलक नेत्रों से देखा करते थे– स्तुति–निन्दा, हानि–लाभ, सुख–दुःख, सब सहकर उन्होंने मेरे दुःख को ही अपना दुःख और मेरे सुख को ही अपना सुख माना है। मेरा सुख ही जिनके लिये आत्यन्तिक सुख और मेरा दुःख ही जिनके लिये आत्यन्तिक दुःख रहा, वे मुझ दुखिया के लिये केवल रोना शेष छोड़कर चले जावें, यह कैसे सम्भव है ? असम्भव है ललिता, उनके चरण उनसे विद्रोह कर जावेंगे, उनके मन, प्राण सब विद्रोह कर देंगे वे मुझको छोड़कर कदापि नहीं जा सकते।

ललिता के नेत्र अपनी प्राण सखी की दशा देखकर झर झर झरने लगते हैं। किन्तु कुछ क्षण में ही प्रिया का भाव पुनः बदल जाता है वे अत्यन्त

उल्लसित होकर कहने लगती हैं—"दुःखी मत होओ ललिता ! तुम क्यो दुःखी होती हो। तुम रोती हो ? किस लिये ? वे मुझे परम सुख देने के लिये ही मथुरा में जाकर वसे हैं। मैं इसका रहस्य समझ गई। ललिता ! तुम्हें पता नहीं है। मुझे सब पुरानी बातें याद आरही हैं, जो मेरे एवं उनके मध्य हुआ करती थीं।" मैं सुखी होंगयी। उनके मथुरा जाने का कारण मैं जान गई। वे मुझे सुखी बनाने के लिये ही गये हैं। इसी से देखो, मैं कैसी प्रफुल्लित हूं तुम भी प्रसन्न होओ।

देखो ! ललिता—प्रियतम की मेरे प्रति इतनी आसक्ति हो गई थी कि यह बुद्धिमान चतुर नायक के लिये कदापि शोभनीय नहीं कही जा सकती। ललिता, प्रियतम का मुझे सदा प्राणेश्वरी, हृदयेश्वरी, कहना, बारम्बार मुझे हृदय में लगाते रहना सदा कण्ठहार की तरह मेरे गले से ही लगे रहना, मुझ महा-कुरुपा, रसहीना के प्रति जो उन्हें किसी प्रकार का भी रस एवं सुख देने में असमर्थ थी, इस प्रकार आसक्ति करना, बहिन मुझे बहुत लज्जा, संकोच में डाल देता था मैं बारम्बार विधाता से प्रार्थना करती थी कि उनका मोह शीघ्र दूर करदो। और यह तो मेरा अत्यन्त सौभाग्य है कि विधाता ने मेरी पुकार सुनली। मेरे प्राणनाथ का मोह दूर हो गया। आखिर उनका भ्रम नष्ट तो हुआ। यह तो प्रसन्नता की ही बात है न ? देखो, अब वे मथुरा की अनन्तानन्त सुन्दरिओं के साथ अपार आनन्द प्राप्त कर रहे होंगे। मेरे प्राणाराम किसी नगर निवासिनी चतुर सुन्दरी को प्राप्त करके अनुपम सुख भोग रहे होंगे। मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। आज मैं परम सुखी हो गयी। आज मेरे भाग्य खुल गये, बहिन ! प्रियतम मुझे त्याग कर परम सुखी हैं। इससे बढकर आनन्द मंगल मय जीवन को सजाने वाला, सुखकी खान, मेरे लिये और क्या संदेश हो सकता है ?

अब उद्धव उनको क्या सन्देश दें ? उनके पास बचा ही क्या है, कहने को। वे प्रिआ की चरणरज भी नहीं ले सकते। क्योंकि प्रिया का अनुपम महा भाव विक्षेप को प्राप्त करे ऐसी कोई क्रिया वे कैसे करें ? अतः वे जहां हैं, उसी रज में लोटने लगते हैं। उद्धवजी अपने सारे अंगों को उस रज में स्नान करा रहे हैं। और प्रिया, उन्हें कहां ज्ञान है, उद्धव का। वे तो अपने भाव में ही प्रवाहित हैं।

"देखो ललिता ! प्रियतम फिर प्रकट हो गये मैं कहती थी न, वे मेरे विना रह ही नहीं सकते। मुझ से पृथक् होना प्रियतम के लिए सम्भव ही नहीं।

मेरा और उनका ऐसा ही परम सुन्दर प्रिय एवं अनन्य सम्बन्ध है। जो कभी मिट ही नहीं सकता मुझे छोड कर 'वे' और उनको छोड़कर 'मैं' विलग रहूं, यह सम्भव ही नहीं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही नहीं। वे मैं हूं और मैं वे हैं। दोनों एक तत्त्व हैं और दोनों सब प्रकार से एक रूप ही हैं।

देखो ललिता, वही मनोहर रूप वही सुन्दर प्रेम पूर्ण दृष्टि है। अधरों पर मृदु मुस्कान खेल रही है। ललित तृभंग मूर्ति है। घुंघराले कुटिल केश हैं। सिर पर मोर मुकुट, कानों में कमनीय कुण्डल झलमला रहे है, मुरलीधर ने मुरली अधर पर रखी है। और उससे मधुर तान छेड़ रहे हैं। देखो ललिता, क्या तुम उनकी बन्शी भी सुन नहीं रही हो! फिर स्थिर क्यों हो? जाओ, प्रियतम को मनाकर ले आओ, या मुझे ही उनके पास क्यों नहीं ले चलती?

और सारिका बोल उठी, शुकराज! क्या देकर प्रियतम ऋण चुकायेंगे प्रिया का? क्या स्वयं अपने को देकर? प्रिया अपने प्रियतम के सुख के सम्मुख प्रियतम को कहां चाहती हैं, प्रियतम को सुखी करने के लिये वे प्रियतम को सदा सदा के लिये मथुरा भेज देने के लिये भी तत्पर हैं जो युवती अपने प्राणनाथ को पर रमणी रत देखकर सुखी है, उसका ऋण उसका प्रियतम कभी नहीं चुका सकता, और शुक, कहीं ऋणदाता और ऋण लेने वाला दो हों तब न? वे दोनों एक हैं। एक हैं एक हैं। न प्रिया हैं, न प्रियतम हैं दोनों मात्र भाव के विग्रह हैं। भाव ही प्रिया है, प्रियतम है। भाव ही ऋण है। भाव ही ऋणिया प्रियतम हैं और भाव ही ऋण देने वाली प्रिया हैं। जब भाव सिन्धु ही लहरा रहा है फिर भाव अपने आपको क्या दे सकता है?

भाव समस्त अभावों को दूर कर सकता है। इसीलिये भाव के सम्मुख जिसकी जो कामना आयेगी, काल प्रवाह में वह अवश्य-अवश्य पूरी हो जावेगी। किसी की कोई सुखेच्छा भाव के सम्मुख आयी अधूरी रह ही नहीं सकती क्योंकि भाव-भाव ही है, अभाव नहीं है। अभाव वहां उसके सम्मुख रह ही नहीं सकता। भाव के सम्मुख अभाव की सत्ता ही नहीं है।

हे शुकराज, "कैसे ऋण का शोध करूं" इन दो पंक्तियों में प्रियतम सम्पूर्ण सृष्टि रहस्य का तत्त्व वर्णन कर रहे हैं। जरा ध्यान से विचार करो।

विश्व में न सृष्टि है, न भगवान है, न भगवत्ता है, न ज्ञान है, न ज्ञाता है, न विधान है, न विधाता है, कहीं कुछ नहीं, मात्र भाव सत्ता ही भाव सत्ता

है। यही भाव ही सम्पूर्ण सत्ता का सत् है चेतन का चित् है और आनन्द का भी सार प्रेम है। इस भाव का प्रकाश रस है–जो आस्वादनमय है। इसलिये रस ही मात्र भाव भोक्ता है। यदि भाव सत् है तो यह रस सत्ता बन कर सबको उसका आस्वादन कराता है। यदि भाव चित् है तो रस चेतन होकर थिरक रहा है। भाव प्रेम है तो रस आनन्द होकर उसे स्वरूप प्रदान कर रहा है।

हे शुकराज, इस भाव में अनन्त शक्तियां निहित हैं, समाहित हैं, यह अनन्तानन्त शक्तियों की योनि है। इसी भाव में सर्व ज्ञान की महाभाव शक्ति सरस्वती हैं, सर्वैश्वर्य की महाभाव शक्ति महालक्ष्मी हैं, सर्व विलय की भाव शक्ति महादुर्गा हैं। इसी भाव में सर्व काम की महाभाव शक्ति त्रिपुरा हैं—इन्हें ही प्रेम शक्ति भी कहते हैं। सर्व सृजन की महाशक्ति योग माया हैं। इस प्रकार इस महाभाव समुद्र में अनन्त-अनन्त शक्तियां ओत प्रोत हैं, समाहित हैं, अव्यक्त हैं और यह महाभाव समुद्र ही महाभाव समुद्र, एक मात्र सत्य है। यह रस राज श्रीकृष्ण, माधव तत्त्व ही इस महा महाभाव समुद्र का एक मात्र प्रकाश है। इसीलिये यह सर्वैश्वर्य निधान है, सर्व ज्ञान निधान है, सर्व प्रेम निधान है, सर्व सौन्दर्य निधान है, सर्व शक्ति निधान है, सर्व चैतन्य का आश्रय है मात्र रस है, सर्व रस है। अतः इसमें और इसके भाव में कहीं कोई अन्तर नहीं।

हे शुकराज, यह रस राज ही ब्रह्म का ब्रह्म है, नारायण का नारायण है, ब्रह्मा का ब्रह्मा है, रुद्र का रुद्र है, काल का काल है, ईश्वरों का ईश्वर है, सर्व कर्त्ता, सर्व भोक्ता सर्वेश्वर है। यही विभु है, भूमा है, महान है। यह भाव का प्रकाश होने से सर्व शक्ति निधान है। हे शुकराज ! इस रस राज की उपासना करने से ही नारायण नारायणी शक्ति से शक्तिमान होते हैं, ब्रह्मा को ब्रह्माणी मिलती है, इन्द्र को इन्द्राणी, रुद्र को दुर्गा, महाकाल को महाकाली स्रष्टा को सृष्टि, विधाता को विधान, देवताओं को अनन्तानन्त देवियां—ये सब शक्तियां मात्र इस रसराज की दी हुई हैं जिनसे सर्व अहंकार, सर्व बल, सर्वैश्वर्यमय यह विश्व प्रपंच दृष्टि में आ रहा है।

अब बताओ शुकराज—यह रसराज, कीट से लेकर महानारायण तक की सब की सेवा, फल, कामना की पूर्त्ति कर सकता है, परन्तु अपने आधार महाभाव को यह क्या दान करेगा ? क्योंकि उसके दान से ही तो इसकी सत्ता है।

हे शुकराज, इसी उपरोक्त पद की पूर्व पंक्तियों में प्रियतम कहते हैं:—

"तुम स्वामिनी अनुरागिनि जब देती हो प्रेम भरे दर्शन, तब अति सुख पाता मैं मुझ पर बढ़ता अमित तुम्हारा ऋण।"

अब बताओ, जो स्वामिनी है, उसे सेवक क्या दे सकता है ? हे शुकराज, प्रिया प्रियतम शब्द सुन कर साधारण नारी पुरुष के सम्बन्ध की दृष्टि रखने वाले ही प्रियतम को मालिक पति और प्रिया को दासी, स्त्री, सेविका मान लेते हैं। प्रिया नारी पुरुष के समान प्रियतम की प्रिया नहीं है। प्रिया का अर्थ है, प्रियतम का सम्पूर्ण प्रियतमत्व जिसका निजस्व है, जिसकी शक्ति से प्रियतम सर्व प्रियतम हैं, सर्व आत्मा हैं–ब्रह्म हैं, ईश्वर हैं, महेश्वरों के महेश्वर हैं, सर्वैश्वर्य निधान हैं, सर्व शक्तिमान हैं, उन प्रियतम की सम्पूर्ण प्रियत्व शक्ति जो है, वह प्रिया है।

बताओ, शुकराज ! प्रियतम में प्रियत्व के अतिरिक्त और क्या है ? प्रियतम शब्द प्रियता का ही तो वाची है। तो जिस प्रियत्व ने प्रियतम को प्रियतम बना रखा है, उस प्रियत्व की मूल उद्गम, उसका सागर ही तुम प्रिया को मानो। कृष्ण का कृष्णत्व प्रिया हैं। इसीलिये वे श्यामा हैं, कृष्णा हैं, प्रिया हैं, राधा हैं।

शुकराज, केवल अनुराग वश ही इन श्रीकृष्ण के दर्शन होते हैं, किसी साधना वश नहीं। शुकराज ! प्रिया आश्रय हैं और श्रीकृष्ण विषय हैं। श्रीकृष्ण, प्रियतम, प्रेम–धन के कंगाल हैं क्योंकि वे रसराज हैं, प्रेम–प्रकाश हैं। प्रेम से ही उनका वपु निर्मित है। वे प्रेम से निर्मित हैं। परन्तु प्रेम तो उनका भाव है। वे अपने भाव के अतिरिक्त सब को सब दे सकते हैं। परन्तु उनकी भाव प्रिया इतनी अनन्त हैं, कि उनके रोम–रोम में अनन्त–अनन्त श्रीकृष्ण प्रकाशित होते रहते हैं। इसीलिये प्रिया श्रीराधा का सैन्दर्य ऐसा विलक्षण है कि अनन्त श्रीकृष्ण उसके रोम–रोम में छविमान हैं। यह कोई साहित्य नहीं अतिरंजित वक्तव्य नहीं, परम सत्य परम सत्य है। अनन्त, अनन्त, संख्या रहित श्रीकृष्ण प्रिया के रोम–रोम में नित्य अभिव्यक्त हैं, नित्य रस परिस्नात हैं और नित्य तिरोधान करते रहते हैं। ऐसी महा भावमयी प्रिया हैं। यही इनका मादन स्वरूप है। उन मादन भावमयी राधाको प्रियतम क्या देकर ऋण चुकावेंगे ? वे तो अपनी प्रिया से दया की ही भीख मांग सकते हैं। प्रिया दया कर के ही प्रियतम को बस निहाल करती रहें। यह कहती कहती सारिका भावाविष्ट हो गई।

❀ राधा राधा राधा राधा राधा राधा ❀

सातवाँ अध्याय

(रति, प्रेम, मान एवं प्रणय)

शुक—सारिके ! नेत्र मूँदकर शान्त क्यों बैठी हो ? जिनके सौन्दर्य और माधुर्य ने बड़े-बड़े महात्मा ब्रह्म ज्ञानियों का मन बरबस खींच लिया, जिनका आनुकूल्य प्राप्त करने के लिये ब्रह्मविद्या तपस्या कर रही है, उनकी भी आश्रया आश्रयतत्व महाभावरूपा प्रिया की, उनके प्रेम की कोई तत्त्व रहस्यमयी बात सुनाओ, न ? अच्छा लो एक बात याद आ गई। सारिके ! तुमसे पूर्वराग का रहस्य सुन चुकी हूँ अब प्रिया में 'प्रणय' नामक भाव किस प्रकार उदय होता है, उसका कैसा प्रकाश होता है। यह दिव्य भाव, रति, स्नेह, भावरूप महाभावों में से विकसित होकर 'प्रणय' रूप में कैसे प्रगाढ़ता प्राप्त करता है। इस गंभीर विषय पर प्रकाश डालो। सारिका, महारानी, मुखर होओ, बोलो !

सारिका—शुकराज परम धन्य, परम धन्य, अवश्य कहूँगी—अवश्य कहूँगी। परन्तु शुक है यह विषय परम गंभीर यह प्रगाढ़ अनुभूति का ही विषय है, वाणी का कथन है नहीं। फिर भी चेष्टा करूँगी, अवश्य करूँगी, सावधान होकर सुनना। संभव है तुम्हें यत्किञ्चित् अनुभव करा सकूँ।

हे शुकराज ! देखो, अग्नि में दाहिका शक्ति को हटादो तो अग्नि का रूपान्तर होकर वह वायुरूप हो जावेगी, न ? इसी प्रकार वायु में स्पर्श शक्ति को हटादो तो वह आकाश हो जायगी। परन्तु इन सबकी ये भाव शक्तियाँ भाव होकर भी मूल भाव नहीं है। शरीर में से प्राण चले जाने पर शरीर शव रूप रह जाता है, प्राण उसका भाव है परन्तु वह प्राण मूल भाव नहीं है। सबका मूल भाव आत्मा है। इसलिये सब आत्मा को ही प्यार करते हैं। स्नेह, प्रेम, मान, एवं प्रणय सभी आत्मा के ही भाव वाची नाम हैं। इस प्रेम से हीन कहीं किसी का अस्तित्व ही नहीं मिल पाता। जब प्रेम ही मात्र अस्तित्व है, आधार है, आश्रय है, भाव है, जिस पर सम्पूर्ण सृष्टि अभिव्यक्त है, इस आकाश, वायु, अग्नि, जल, थल सब का भाव, अस्तित्व, आधार मात्र प्रेम है, तो शुकराज बताओ ! भगवान शेष इस पृथ्वी को धारण क्यों किये हैं ? प्रेम से ही, न ? देखो,

भगवान ने जब जीव को वैयक्तिक स्वतंत्रता दे रखी है कि मुकुट उतारकर रख दो, उत्तरीय उतारकर रखदो, अच्छे से अच्छा अथवा बुरे से बुरा काम करलो फिर भी ईश्वर जब हाथ नहीं पकड़ता, तब भगवान शेष भी यदि पृथ्वी को फैंक दें तो उनका भी हाथ कोई नहीं पकड़ेगा, कदापि नहीं पकड़ेगा ।

हे शुकराज ! छोटे से बालक के लालन पालन में, उसको गर्भ में धारण करने में माता को अत्यंत कष्ट होता है, फिर भी माँ उसको धारण करती है, पालन करती है। शिशु तो अत्यंत शक्तिहीन होता है, माता चाहे तो उसे तुरंत मार डाल सकती है, परन्तु उस बालक की रक्षा के प्रति माता में अत्यधिक जागरुकता रहती है। सभी जीव सृजनकाल में अत्यंत बुद्धिमानी से अपने शिशुओं की रक्षा और उनका पालन करते हैं, तो इस सब कौशल के पीछे मात्र एक प्रेम ही कारण है प्रेम ही पिता द्वारा माता में गर्भाधान कराता है, प्रेम ही माता द्वारा गर्भ की रक्षा कराता है, गर्भ को बढाता है, प्रेम ही जन्म देता है एवं प्रेम ही पालन करता है। शुकराज, यह परम सत्य है, स्पष्ट, है, प्रत्यक्ष है, प्रेम ही भगवान शेष को प्रतिबद्ध कर रहा है कि वे इस सृष्टि का भार वहन करें। भगवान नारायण में भी ब्रह्मा को सृजन करने की इच्छा यह प्रेम ही उत्पन्न करता है। प्रेम ही से ब्रह्मा उनकी नाभि से उत्पन्न होता है। प्रेम से ही ब्रह्मा अपने स्रष्टा के प्रति जिज्ञासु होता है और प्रेम ही इस जिज्ञासा के उत्तर में ब्रह्मा में वह ज्ञान शक्ति देता है जिससे वे सृष्टि रचना में समर्थ होते हैं। शुकराज! गंभीर विचार करो, प्रेम ही भाव है सबका मूल भाव है। प्रेम ही महाभाव है। सबका अस्तित्व, सबका आश्रय सबका पालक और सबको अपने मे विलीन करने वाला प्रेम ही है। इस पर ब्रह्म परतत्त्व की परमात्म स्वरूपा, महाभावरूपा पराशक्ति प्रेम ही है। सच्चिदानन्द घन सर्वातीत तत्त्व भी सच्चिदानन्द शक्ति से युक्त है तभी वह सच्चिदानन्द है। यह सच्चिदानन्द शक्ति सच्चिदानन्द घन का भाव प्रेम ही है यह प्रेम ही संवित् है, संधिनी है एवं ह्लादिनी है। इस महाभाव में, महाप्रेम में, अनन्त सत्ता , अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द है। हे सारिके ! यह प्रेम ही प्रिया और प्रियतम है। प्रेम भाव घन विग्रह ही प्रिया और प्रेम रसघन मूर्ति ही प्रियतम हैं।

हे शुकराज ! विष्णु मात्र प्रेम से ही विष्णु हैं। विष्णु को विष्णुत्व से प्रेम है तभी तो वे विष्णुत्व अध्यास से अध्यस्त हैं। अन्यथा वे तुरन्त या तो अपने अधिष्ठान में विलीन हो जावेंगे या जिसमें प्रेम होगा उसके अध्यास में

अध्यस्त हो जावेंगे। इसी प्रकार काम को जिस क्षण अपने रामत्व से प्रेम नहीं रहेगा वे या तो अपने भाव में अधिष्ठान में विलीन हो जावेंगे या जिस अन्य अध्यास में चाहेंगे अध्यस्त हो जावेंगे। तो प्रेम ही शिव को शिवत्व से और श्रीकृष्ण को श्रीकृष्णत्व से युक्त किये है। यह प्रेम ही सबकी निज स्वरूप सत्ता है, इसके बिना किसी का, कहीं, कोई स्वरूप, उपलब्ध नहीं हो पाता। हे शुकराज, कोई कहे कि मैं राम की उपासना करता हूँ, ब्रह्म की उपासना करता हूँ, काली को पूज रहा हूँ, गणेश की आराधना करता हूँ परन्तु प्रेम को नहीं पूजता—तो वह मिथ्या वादी है, मात्र भ्रम में है। चाहे उपासना में कोई राम के साथ प्रेम का विग्रह रखे या न रखे, जो उपासना कर रहा है, उसका अस्तित्व प्रेम है, जो उपास्य है उसका अस्तित्व प्रेम है और जो उपासना है वह भी स्वरूपतः प्रेम ही है शुकराज ! राम और हनुमान के मध्य सम्बन्ध क्या है ? शंकर और रावण के सम्बन्ध के मध्य में कौन-सी कड़ी है, जो दोनों को एक दूसरे से जोड़े हुए हैं ? इसी प्रकार राम और विभीषण के सम्बन्ध के मध्य में भी आधार मात्र प्रेम है, प्रेम है, प्रेम ही है।

हे शुकराज, यह प्रेम सदा आस्वादनमय है। यह मात्र सत्ता ही नहीं, प्रिय ही नहीं, उसका आस्वादन ज्ञान भी है। इसीलिये यह प्रवहमान है, तरल है, उच्छलित है, गतिमान है, लहराता है, घन होकर भी लहराता है, निराकार लहराता है, अपने आप में ही स्वयं अवकाश हो जाता है, और लहराता है, यही इसका परस्पर विरुद्ध धर्माश्रयत्व है।

हे शुक, यदि कोई चाहे कि मैं तो केवल भाव पूजा करूंगा, केवल प्रेम की पूजा करूंगा, तो यह भी सम्भव नहीं। यह प्रेम रस-प्रकाश है। अतः रस सहित ही इसकी पूजा सम्भव है। शक्ति का नित्य निवास जैसे शक्तिमान में है, वैष्णवी का नित्य निवास विष्णु में ही है, शिवा का निवास जैसे शिव में है, जलत्व का नित्य निवास जल में है उसी प्रकार प्रेम का सदा निवास रस राज प्रियतम में और महाभावमयी प्रिया में है। जैसे कोई चाहे कि मैं जलत्व की उपासना करूँगा तो उसे स्वाभाविक ही जल की उपासना करनी पड़ती है, उसी प्रकार प्रेमोपासक को प्रिया और प्रियतम की उपासना करनी ही पड़ती है। हे शुकराज, प्रिया प्रेमाधार है और प्रियतम प्रेम प्रकाश है। अतः यह प्रेम प्रिया और प्रियतम के बीच ही लहराता है। हे शुकराज, जब प्रेम पूर्ण हृदय

प्रिया और प्रियतम के मध्य लहराता है, प्रिया से प्रियतम की ओर प्रवाहित होता है और प्रियतम से प्रिया की ओर प्रवाहित होता है तो हृदय की उस मसृणता को, प्रेम-प्रवाह की दशा को ही रस-शास्त्र स्नेह कहते हैं।

हे शुकराज ! जब तक मोक्ष, ज्ञान, ऐश्वर्य, ऋद्धि, सिद्धि या महान कीर्ति कुछ भी चाहिये, कुछ भी कामना जब तक शेष है अपितु जब तक यह भी कामना है कि मुझे प्रेम मिले, तब तक प्रियतम रसराज उस कामना की ही पूर्ति करेंगे, प्रेम शिखर तक साधक को नहीं पहुंचावेंगे। हे शुकराज, प्रियतम तो जीव के, साधक के आत्मा हैं उनमें साधक के प्रति शत्रुता थोड़े ही है जो उसे विषय रूप, अवस्तु रूप इच्छाओं में भटकाते हों, परन्तु यह भाव स्वरूपतः इतना उदार है, क्योंकि यहाँ अभाव तो है ही नहीं, इसलिये इसकी छाया से ही जो भी अन्तः चेतना में इच्छाएँ, कामनाएँ चाहे वे अतिसुप्त ही क्यों न हों, उनकी पूर्ति स्वतः हो जाती है, उनका अभाव समाप्त हो जाता है, और कामनाओं की पूर्ति होने पर साधक स्वयं उस कामना-पूर्ति की सुखमय स्थिति में अटक जाता है।

हे शुकराज ! कीर्ति नामक कोई वस्तु शुद्ध रस में किंवा भाव राज्य में है ही नहीं। ऋद्धि नाम की कोई वस्तु, सिद्धि नामक कोई वस्तु, ऐश्वर्य नामक कोई पादार्थ, जब भाव राज्य, रस जगत् में है ही नहीं, मुक्ति नामक कोई स्थिति जब उस रस जगत् में है ही नहीं, तब भाव राज्य में, रस राज्य में, जो पूर्ण भावमय है वहाँ इन इच्छाओं को लेकर, इन इच्छाओं के सहित किसी का कैसे पदार्पण होगा ?

अतः भाव की छाया मात्र से ही, रस छाया से ही मुक्ति एवं मुक्ति रूपिणी सभी इच्छाएँ अपने आप पूर्ण हो जाती हैं। परन्तु यहाँ कठिनाई यही है कि जैसे ही साधक की भुक्ति मुक्ति की कामना पूर्ण होती है, वह उस कामना की पूर्तिरूप सुख में ही अटक जाता है, उसे ही परास्थिति मान कर, वहीं अटक जाता है। स्नेह का स्वरूप तो उसे ही समझ में आता है जो अहं के सर्व कल्याण की, उसके सुख की, कामना का पूर्ण त्याग कर सब प्रिया प्रियतम के चरणों में समर्पित कर प्रिया प्रियतम से तदाकारता प्राप्त कर लेता है।

फिर भी हे शुकराज, यह 'प्रेम' सर्व सुलभ है। यह प्रेम त्रिसत्य है। यह कायिक (तन से) सत्य है, वाचिक (वाणी से) सत्य है एवं मानसिक (मन से) सत्य है। यह लौकिक सत्य है, पारलौकिक सत्य है ओर पारमार्थिक सत्य है।

यह प्रेम तीनों लोकों में सत्य है, तीनों कालों में सत्य है, और तीनों गुणों में भी सत्य है। यह सतोगुण में सत्य है, रजोगुण में सत्य है, और तमोगुण में भी सत्य है। यह साधन करते हुए अपरिपक्वावस्था में सत्य है, साधन की परिपक्वावस्था में सत्य है और सिद्धि काल में भी सत्य है।

हे शुक! इस प्रेम की छाया भी सत्य है, इसका आभास भी सत्य है, और इसका स्वरूप तो सत्य है ही। इस प्रेम की नकल भी सत्य है, इसका दाम्भ भी सत्य है और इसकी वास्तविकता तो सत्य है ही। इसका प्रारम्भ सत्य है, मध्य सत्य है और अनन्त होने के कारण इसका अन्त तो है ही नहीं।

शुकराज! किसी भी भाव से, अभाव से अथवा कुभाव से भी श्रीकृष्ण को भजने से, उनसे सम्बन्धित मात्र हो जाने से ही कालान्तर में पूर्ण प्रेम प्राप्त होता ही है, होता ही है, होता ही है। जो लौकिक भोगेच्छा रखते हैं, उन्हें श्रीकृष्ण भोगेच्छा की पूर्ति किंवा उसका नाश कराके, जो पारलौकिक समृद्धि की इच्छा करते हैं उन्हें उसकी पूर्ति किंवा उसका नाश कराके और जो मुक्तिकामी हैं उन्हें उसकी भी प्राप्ति किंवा उसकी असारता बोध कराके प्रियतम श्रीकृष्ण कालान्तर में अपना पूर्ण प्रेम देते ही हैं—यह सत्य है, सत्य है, सत्य है।

हे शुक, प्रियतम श्रीकृष्ण तो इतने उदार हैं कि मात्र "मैं तुम्हारा हूँ" इतना शब्द भी जो उच्चारण करता है, उसे भी अपना स्वरूप दान कर देते हैं। भगवान तो 'फलूग्वपि भूरिकारी' हैं, उन्हे यत्किंचित् जो भी निवेदन किया जाय उसे भी अधिकतम मानकर भक्त को पूर्ण सन्तोष दान देने वाले हैं। और यह प्रेम तो उनसे भी बढ़ कर फलूग्वपि पूर्णकारी है। यह तो जो कुछ यत्किंचित् भी सम्मुख आता है उसे 'पूर्ण' ही मानता है, पूर्ण ही देखता है, और फलरूप में अपना पूर्णत्व ही उसे प्रदान कर देता है।

हे शुकराज! प्राकृतिक भोगों की तो सत्ता ही नहीं, मुक्ति की भी सत्ता नहीं है। देखो! जो माया है ही नहीं जो असत् है, जिसकी सत्ता ही नहीं है, उस भ्रान्ति में मुक्ति क्या, और भ्रान्ति से मुक्ति क्या? भ्रान्ति मात्र ही असत् है, मिथ्या है तो भ्रान्ति मुक्ति भी असत् है और भ्रान्ति से मुक्ति तो स्वतः ही प्रतिपादित है। और यह भ्रान्ति भी किसी अन्य द्वारा आरोपित हो, तब न मुक्ति हो। यह तो अपने ही द्वारा अपने पर ही आरोपित भ्रान्ति है। अतः

इसे मिटाने में न किसी भी साधन की अपेक्षा है, न ही प्रयास की। अपनी भ्रान्ति मिटाओ और सत्य तो अपरोक्ष है ही।

देखो शुक, रसराज प्रियतम श्रीकृष्ण भी प्रेम विग्रह हैं और महाभावरूपा प्रिया भी प्रेम स्वरूपा हैं, फिर इन दोनों में अन्तर क्या है, इसे भी समझलो।

प्रियतम श्रीकृष्ण का सौन्दर्य, उनका शील स्वभाव, उनकी सुकुमारता, रसिकता, मन्दहास्य, प्रेमालाप और चारु चितवन इतनी सुन्दर है कि साक्षात् कामदेव भी उनके यदि दर्शन करलें तो उनमें भी रमणी भाव उदय हो जायगा। वे कामदेव भी श्रीकृष्ण को वल्लभ रूप में वरण करने के लिये स्त्री रूप धारण करना स्वीकार कर लेंगे। शरीर के अनेक भागों से टेढ़ी कुब्जा श्रीकृष्ण का दर्शन करते ही जो उनके दुपट्टे का छोर पकड़कर कहने लगी कि हे वीर, अब घर चलो, मैं आपको नहीं छोड सकती, आपने मेरे चित्त को मथ डाला है, यह सब श्रीकृष्ण के प्रेम का ही जादू है।

हे शुक, इसमें कुब्जा का दोष सर्वथा नहीं है। यह तो प्रियतम श्रीकृष्ण के प्रेम की भुक्ति रूप उपाधि का जादू है। कुब्जा तो साधारण मानवी थी—क्षीरसागरोद्भवा लक्ष्मी जो भगवद्विग्रह चिन्मय देह थी, उन्होंने भी उत्पन्न होते ही, जो बड़े-बड़े इन्द्रादि देवताओं की ओर देखा ही नहीं, और इन श्रीकृष्ण को वरण करने दौड़ पड़ी, यह इन श्रीकृष्ण के प्रेम का ही तो चमत्कार है।

हे शुक, यह श्रीकृष्ण के प्रेम समुद्र में भुक्ति रूपा उपाधि है। इसी उपाधि के कारण कुब्जा अत्यन्त निर्लज्ज होकर श्रीकृष्ण का मथुरा के राजमार्ग में पीताम्बर पकड़ लेती है, इसी उपाधि के कारण रामावतार में शूर्पणखा रावण की बहिन अपने नाक-कान कटाती है। हे शुक, इन प्रियतम रसराज को मथुरा नगरी में घूमते ज्योंही मथुरा की कुमारियाँ, रमणियाँ देखती हैं वे झटपट अटारियों पर चढ जाती हैं। वे श्रीकृष्ण के दर्शन की त्वरा वश अपने गुरुजनों के सम्मुख ही निर्लज्ज सी उलटे आभूषण पहने भागने लगती हैं। किसी के सिर पर लहँगा है तो ओढनी साड़ी की जगह है। कई एक भोजन कर रही होती हैं तो हाथ का कौर फेंक कर चल पड़ती हैं। कोई उबटन लगाती-लगाती ही दौड़ने लगती है एवं कोई बिना स्नान किये दौड़ पड़ती है। कोई सोई हुई उठकर चल देती है तो कोई स्तन पीते बच्चे को छोड़ कर वक्षस्थल बिना ढ़के

ही निकल पड़ती है। यह सब क्यों होता है ? यह सब श्रीकृष्ण के प्रेम की भुक्ति उपाधि का ही जादू है। और देखो शुक, इन श्रीकृष्ण की कैसी शोभा है। वे उन स्त्रियों से आवृत मथुरा के राजपथ में गजराज के समान बड़ी ही मस्ती भरी चाल से चल रहे हैं। वे अपनी विलास पूर्ण प्रगल्भ मुस्कान, प्रेम भरी चितवन से सबके मन चुरा ले रहे हैं। मथुरा की ये सभी रमणियाँ उन्हें नेत्रों के द्वारा अपने हृदय में बैठाती हैं, और उन्हे मन ही मन आलिंगित करती हैं। इनके मुख कमल खिल जाते हैं। वे अपने मन रूपी सुमनों को श्रीकृष्ण के ऊपर न्यौछावर करती–करती अपने आपको ही उन्हें सौंप देती हैं। वे आपस में बातें करती हैं:– "बहनों, व्रज की उन गोपियों के भाग्य की क्या कह कर सराहना की जाय, जो इस मनोहर श्याम छवि को निरन्तर अपने नयनो में धारण किये रखती हैं।"

शुकराज ! यह सब इस प्रेम की भोग रूपा उपाधि का ही जादू है। देखो, इस जादू से रुक्मिणीजी भी पागल हैं वे तो मात्र श्रीकृष्ण का गुण-श्रवण करके ही अपना सर्वस्व उन्हें सौंप देती हैं और मन ही मन प्रार्थना करती हैं:—"हे अच्युत ! मेरा चित्त लज्जा, शर्म सब कुछ छोड़कर आपके ही चरण कमलों में प्रवेश कर गया है। प्रेम स्वरूप श्याम सुन्दर ! चाहे जिस दृष्टि से देखें, कुल, शील, स्वभाव, सौन्दर्य, विद्या, अवस्था, धन, धाम सभी में आप अद्वितीय हैं, एकमेव हैं।" मनुष्य लोक में जितने भी प्राणी हैं, सब का मन आपको देखकर आनन्दित होता है। अब पुरुष-भूषण आप ही बतावें, ऐसी कौनसी कुलवती, महागुणवती और धैर्यवती कन्या होगी, जो विवाह के योग्य समझ आने पर भी आपको पति के रूप में वरण नहीं करेगी ? मैंने आपको पति रूप में वरण कर लिया है। आप अन्तर्यामी भी हैं, मेरे हृदय की बात आपसे छिपी नहीं है। प्राणनाथ, यहाँ आकर मुझे स्वीकार करें।

शुकराज ! प्रेम के इस उपाधि भोग के जादू से केवल मानवी स्त्रियां ही पागल हों सो भी नहीं, जाम्बवान ऋक्ष की पुत्री जाम्बवती नामक ऋक्षणी भी पागल हो जाती है, इस जाम्बवती का ऋक्ष पिता तो श्रीकृष्ण से युद्ध करता हुआ उनके घूंसों की चोट सह-सह कर पीड़ा आतुर होता है, और जाम्बवती इनके नयनों के कटाक्ष सह-सह कर मोहित होती रहती हैं। यही दशा सत्रजित की पुत्री सत्यभामा की भी थी। हे शुकराज ! भगवान सूर्य की पुत्री कालिन्दी

तो देव योनि की थी। उसने अपने पिता को कह कर यमुना जल के भीतर अपना निवास बनवाया। और वह जब ये श्रीकृष्ण यमुना में विहार, स्नानादि करते उनका अंगोदक लेकर कठोर तपस्यारत रहती। उसकी भी मात्र एक ही आशा थी कि कैसे ये श्रीकृष्ण उस पर प्रसन्न हों और उसे पत्नी रूप में वरण करें। और मित्रविंदा तो उनकी बुआ की लड़की बहिन थी। वह तो उनकी सगी बुआ राजाधिदेवी की कन्या थी। वह भी सब स्मृति मर्यादा त्याग कर इन परम पुरुष के प्रति मोहित हो गई। शुकराज, राजा नग्नजित् की कन्या सत्या के लिये इन श्रीकृष्ण को सात बैल नाथने पड़े। श्रीकृष्ण लड़ने गये भौमासुर से और वहाँ भौमासुर के द्वारा बल पूर्वक रखी हुई सोलह हजार राजकुमारियाँ इन्हें देख कर मोहित हो गयीं और इन्हें उनसे एक ही नहीं पूरे सोलह रूप रख कर विवाह करना पड़ा।

यह तो उस प्रेम की भोग उपाधि हुई, अब भोग रूप उपाधि भी सुनो। प्रियतम ने जब शारदीय रात्रियों में अभिसारार्थ वंशी-वादन किया, उस समय उनका वंशी-वादन उनके मिलन की लालसा को अत्यन्त बढ़ाने वाला था। इस वंशी-वादन ने गोपियों का भय, सँकोच, धैर्य एवं मर्यादा आदि की सब वृत्तियाँ छीन लीं। गोपियाँ अकेली हीं एक दूसरी को सूचना देकर चल पड़ीं श्रीकृष्ण से मिलने। वे इतनी वेग गति से चलीं कि उनके कानों के कुंडल झौंके खा रहे थे। पिता और पतियों ने, जाति बंधुओं ने उन्हें रोका, परन्तु वे इतनी मोहित थीं कि रुक ही न सकीं। उनके प्राण एवं मन आत्मा सबका सब प्रियतम द्वारा अपहृत था उस समय कुछ गोपियाँ घरों के भीतर थीं और उनके घर वालों ने उनके प्रवेश द्वार रोक दिये। अपने परम प्रियतम श्रीकृष्ण के असह्य विरह की तीव्र वेदना से उनके हृदय में इतनी व्यथा हुई कि उससे सब पाप भस्म हो गये। उन्हें प्रियतम का ध्यान लग गया मन ही मन वे श्रीकृष्ण का आलिंगन करने लगीं। उस समय उन्हें इतना सुख हुआ कि उनके सब पुण्य नष्ट हो गये। और उन्होंने पाप और पुण्यमय कर्म के परिणाम से बने हुए गुणमय शरीर का परित्याग कर दिया। और वे प्रियतम में मिल गईं तो शुकराज, यहाँ भी अवश्य स्वसुख और स्वदुःख था। स्व सुख भोग था। यदि यह 'स्व' यहाँ नहीं होता और मात्र तत्सुख सुखिया भाव ही होता तो उनका शरीर कभी नहीं छूटता और न ही वे मुक्त ही होतीं।

हे शुकराज, मैं इसे क्या नाम दूँ ? इसीलिये इसे प्रेम की भोग उपाधि

एवं मोक्ष उपाधि ही कह रही हूं। प्रेम में तो भोग एवं मोक्ष सम्भव ही नहीं है। भोगासक्ति अहंकार के रहने पर ही तो रहती है और प्रेमोदय अहंकार रहते सम्भव ही नहीं। इसीलिये इसे प्रेम तो कहा भी नहीं जा सकता। है यह प्रेम में भोग रूप एवं मोक्ष रूप उपाधि ही, फिर भी कहने का इतना ही तात्पर्य है कि इसका त्याग अत्यन्त कठिन है।

हे शुक, जहाँ 'स्व' है वहीं बन्धन है और जहाँ 'स्व' वहीं मुक्ति भी है। जहाँ 'स्व' है वहीं उत्पत्ति है और जहाँ 'स्व' है वहीं प्रलय है। जहाँ 'स्व' है वहीं जन्म है और जहाँ 'स्व' है वहीं मृत्यु भी है।

इस मिथ्या भ्रान्ति जनित संसार के योग मोक्ष तो तभी तक हैं जब तक प्रियतम रसराज की छाया की भी झांकी न हो। जैसे ही जीवन में प्रियतम रसराज रूप प्रेम की छाया भी छू जाती है उसी क्षणमें जागतिक भोग मोक्ष तो रहते ही नहीं, इस संसार का भी पता ही नहीं चलता वह कहाँ गया? परन्तु उस समय भी, सर्वत्र श्रीकृष्ण के दर्शन होते हुए भी, ये प्रेम रूप उपाधियां बच ही जाती हैं।

हे शुकराज! इन मथुरा की नारियों में अपने नयनों की सुख स्पृहा ही मुख्य थी। वे मात्र सौन्दर्यकामा थीं। वे प्रियतम प्रेम मतवाली सर्वथा नहीं थीं। प्रियतम रसराज की रूप वशीकृता हुई ही वे अपने तन की स्मृति भूल गई थीं, प्रेम वशीकृत होकर नहीं। इसी प्रकार कुब्जा में ही 'स्व' इन्द्रिय भोग वृत्ति ही बलवती थी। इसीलिये कुब्जा के प्रियतम-प्रेम को तो प्रेम कहा ही नहीं जा सकता, यह तो साधारण रति की छाया की छाया मात्र है। हे शुकराज, भगवती लक्ष्मी भी अपने 'स्व' सुखार्थ, स्वानन्दार्थ ही प्रियतम श्रीकृष्ण की चरण सेवा करती हैं। भगवती रुक्मिणी में यदि प्रेम होता तो वे कभी शिशुपाल आदि महारथियों के बीच श्रीकृष्ण को अकेले नहीं बुलातीं। नाग्नजिती कदापि ऐसे दुर्धर्ष बैलों के बीच श्रीकृष्ण को नहीं झौंकती। और कालिन्दी को तप करने की क्या आवश्यकता थी? श्रीकृष्ण सुखार्थ श्रीकृष्ण को वरण करने की भावना इन सब में कहाँ रही? इन सभी में तो स्व सुख भोग की उपाधियाँ मात्र हैं इसलिये इनका प्रेम निरुपाधि प्रेम नहीं है। और जो निरुपाधि प्रेम नहीं है, वह प्रेम ही नहीं। इनके भावों में एवं प्रेम में सामंजस्य है। महाभाव से इनका सभी का मात्र सामंजस्य है। परन्तु भाव स्वयं इनसे कोसों दूर है। इसीलिये इनके भाव को समंजसा रति भले ही कहदें। यह विशुद्ध रति नहीं है। रति से इनका सामञ्जस्य मात्र है। यह

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सामंजस्य उपाधि से युक्त रति है ।

इसीलिये शुकराज ! शास्त्रों में स्पष्ट वर्णन आया है :—

स्यामावलोक लवदर्शित भावहारी, भ्रूमंडल प्रहित सौरत मंत्र शौण्डैः ।
पत्न्यस्तु षोड़श सहस्र मनङ्ग बाणैं, र्यस्येन्द्रियंवि मथितुं करणैर्न शेकुः ॥

अपनी सोलह सहस्र पत्नियों की मन्द मुसकान युक्त चितवन से प्रदर्शित मन को हर लेने वाले भावों द्वारा, उनके भ्रूमंडल रूपी धनुष से चलाये गये कामबाणों द्वारा एवं उनकी सुरत सम्बन्धी मन्त्र से प्रगल्भता को प्राप्त हुई कामकला की विविध रीतियों से-श्रीकृष्ण तनिक भी न क्षुब्ध हुए एवं न ही मोहित हुए ।

हे शुकराज ! इन रुक्मिणी आदि द्वारिका महीषियों की प्रेम रति भावरूप विशुद्ध रति, विशुद्ध प्रेम है ही नहीं, है ही नहीं । इसीलिये इसमें प्रिया परिनिष्ठित प्रियतम के दर्शन नहीं है अकेले प्रियतम के ही दर्शन है । इसीलिये श्रीकृष्ण इसके द्वारा मोहित नहीं होते और प्रिया श्रीराधा के प्रति कैसी कृतज्ञता व्यक्त होती है:—

"तेरा ही रस तत्व जानना करना उसका आस्वादन ।
इसी हेतु दिन रात घूमता मैं करता बंशी वादन ॥"

और—

"तेरी रूप शील गुण माधुरी मधुर नित्य लेती चित्त चोर ।
प्रेम गान करता नित तेरा रहता उसमें सदा विभोर ॥"

प्रियतम श्रीकृष्ण का चित्र तो एक चित्रकार भी बनाता है, परन्तु वह चित्र प्रियतम श्रीकृष्ण का होते हुए भी, प्रिया के प्रियतम श्रीकृष्ण का है क्या ? नहीं । इसी प्रकार मूर्तिकारों के द्वारा अभिव्यक्त श्रीकृष्ण के मूर्ति विग्रह, वैदिक मंत्रों द्वारा प्राण प्रतिष्ठित किये गये श्रीकृष्ण के अर्चा विग्रह, विभिन्न-विभिन्न लौकिक पारलौकिक कामनाओं से युक्त साधकों के ध्यान पथ में आये श्रीकृष्ण के मानस-विग्रह, अवतारादि के समय दृश्य रूप में सबके सम्मुख आये तपस्यादि कर्मफल जनित अवतारविग्रह, एवं अन्यान्य स्तरों में देवविग्रह, और चिन्मय भगवद्विग्रह भी क्या प्रिया के रसराज प्रियतम श्रीकृष्ण के विग्रह हैं क्या ? कदापि नहीं, कदापि नहीं । तब बताओ शुकराज, मथुरा की रमणियों

की रूपासक्ति से अनुभूत, उनकी कागविष्ठावत् देहेन्द्रिय संयोग जनित प्राकृतिक मायावी कंस की मथुरा नगरी में अभिव्यक्त श्रीकृष्ण का यह विग्रह क्या विशुद्ध भाव परिरंभित रसराज विग्रह था क्या ? कदापि नहीं। बोलो शुकराज ! फिर इसी मायावी कंस की नगरी में अभिव्यक्त कामातुरा कुब्जा के मायिक देह को चमत्कार से सीधाकर सुन्दर बना देने वाला, उसके इन्द्रियों की काम चरितार्थता को उद्दीपित कर देने वाला और कुब्जा की कागविष्ठावत् देह का संकल्प, कुब्जा का दृश्य श्रीकृष्ण विग्रह क्या विशुद्ध भाव परिरंभित रसराज तत्व था क्या ? कदापि नहीं, कदापि नहीं।

तब अवश्य ही भगवती, भगवद्देहा, चिन्मय देहा, लक्ष्मीजी एवं रुक्मिणीजी के भी स्व सुखार्थ, स्व आनन्दार्थ—प्रकट रुक्मिणी दृश्य प्रियतम श्रीकृष्ण प्रिया के प्रियतम नहीं हैं, एवं न ही जाम्बवती प्राणनाथ, सत्या प्राणनाथ एवं कालिन्दी—प्रियतम श्रीकृष्ण भी प्रिया परिरंभित प्रियतम हैं।

हे शुकराज ! यद्यपि यह सत्य है कि प्रेम परमार्थतः एक मात्र सत्य है परन्तु क्या आकाश स्वरूपतः प्रेम है क्या ? नहीं। फिर इस आकाश रूप देश एवं काल को धारण करने वाले शेष भगवान भी स्वरूपतः प्रेम है क्या ? नहीं। हे शुक, परात्पर परतत्त्व ब्रह्म भी विशुद्ध प्रेम नहीं है। विशुद्ध भावमय प्रेम यद्यपि ब्रह्म की प्रतिष्ठा आधार है, परन्तु स्वरूपतः ब्रह्म भी प्रेम नहीं है।

हे शुकराज ! सच्चिदानन्द परब्रह्म परतत्त्व में बताओ राम का, नृसिंह का, शिव का, शिवा का, नारायण का, लक्ष्मी का, कहीं अनुसन्धान मिलता है क्या ? तब बताओ शुकराज ! जिस ब्रह्म में, नृसिंह का, शिव का, शिवा का, लक्ष्मी का, नारायण का, किसी का अस्तित्त्व ढूँढे नहीं मिलता, तो ये सब विशुद्ध ब्रह्म स्वरूप कैसे हैं ! नहीं होने चाहियें। और शुकराज, सत्य बताना भाव परिरंभित रसराज में जो ब्रह्म की प्रतिष्ठा है, कहीं ब्रह्म ढूंढने से मिलता है क्या ? वैष्णव शास्त्र कहते है कि श्रीकृष्ण की मुसकान सच्चिदानन्द ब्रह्म है, उनकी चरण नख चन्द्रिका परब्रह्म है, परन्तु इस चरण नख चन्द्रिका को इस मुसकान को भी, जब प्रिया परिरंभित करती है उस समय ब्रह्म का अस्तित्व कहीं रसराज में मिलता है क्या ? नहीं। सब ब्रह्म का ब्रह्मत्व इस में विलीन हो जाता है। इसके अतिरिक्त स्वतंत्र ब्रह्म सत्ता कहीं रहती ही नहीं। तब बताओ शुकराज ! मादन महा भावमयी राधा में संयोग की परमोच्च लहर में जब रस-

राज परिरंभित रहते हैं, जब प्रिया श्रीराधा का रोम-रोम अनंतानन्त रसराज को अपने में परिनिष्ठित, परिरंभित और तिरोहित किये रहता है, उस समय प्रिया में कहाँ, किस रोम में, रसराज तिरोहित है, कुछ अन्वेषण होता है क्या? नहीं। तब बताओ फिर प्रेम का निवास किसमें है! ये मादन महा भावमयी राधा जब अपने प्रकाश प्रियतम को ही अपने में तिरोधान कर लेती हैं, उस समय ये किसके द्वारा प्रकाशित होंगी और इनका विशुद्ध प्रेम किसके द्वारा अभिव्यक्त होगा।

इसीलिये शुकराज! ये प्रिया और उनका प्रेम अनिर्वचनीय है, अचिन्त्य है, मात्र अनुभव रूप है और प्रतिक्षण बढने वाला है उत्तरोत्तर पूर्व-पूर्वक्रम से विशुद्ध-विशुद्ध होता जाता है। यह प्रक्रिया अनन्त है। पूर्ण होकर भी प्रेम पूर्णतर, पूर्णतम होता ही जाता है। यह प्रतिक्षण अनन्तता की ओर प्रवाहित होता हुआ बढ़ता ही जाता है।

शुकराज! इस राग रूप विशुद्ध प्रेम का इसीलिये त्रिसत्य स्वरूप है। इसकी छाया भी सत्य है, इसकी किरण, इसकी ज्योत्सना भी सत्य है और इसका प्रकाशमय स्वरूप भी सत्य है। इस प्रेम का मंद से मंद अंश भी पूर्ण सत्य है। इस प्रेम की आत्मा मात्र प्रिया है, इसका आश्रय मात्र श्रीराधा प्रिया हैं। और सर्वत्र अतः प्रिया के अतिरिक्त अन्यत्र सर्वत्र इसकी छाया का ही प्रकाश दृष्टि गोचर है, विशुद्ध प्रेम का प्रकाश नहीं है।

हे शुक, यह भाव किंवा रागरूप विशुद्ध प्रेम मात्र प्रिया श्रीराधा की कृपा से ही प्राप्त है। यह किसी दूसरी साधना का, शुभ कर्म का, तपस्या का सर्वथा-सर्वथा फल नहीं है। साधन द्वारा इस भाव का साक्षात्कार तो हो ही नहीं सकता। हाँ, साधन द्वारा यह कालान्तर में क्रमशः कृपा को अभिव्यक्त कर भले ही प्राप्त हो जाय। इसीलिये जो ब्रह्मविद्यादि द्वारा तपस्या एवं साधना की जाती है, वह मात्र कृपा की अभिव्यक्ति के लिये ही है। साधन परिपक्वता भी प्रिया की कृपा का अवश्यम्भावी कारण नहीं है। प्रिया तो इतनी कृपामयी हैं कि उनकी कृपा तो मात्र एक बार राधा नाम ले लेने वाले पर भी सुनिश्चित हो जाती है। अतः साधनादि तो मात्र मार्ग की गति हैं, जो कृपा के द्वारा संचालित, गतिमान होती है और प्रिया कृपा में ही उसका अवश्यम्भावी पर्यवसान होता है। सम्पूर्ण साधन तो प्रेम की अतिमन्द से भी मंद छाया, प्रेम के अंकुर का ही दान करके

पर्यवसित हो जाते हैं। उसके पश्चात् जब प्रेम-समुद्र की लहर अपने आप उमड़ती है तभी साधक डूबता है।

हे शुकराज ! तुम्हें पूर्वतः जितने 'पद' मैंने सुनाये हैं, वे सब विशुद्ध प्रेम समुद्र की लहरें ही हैं, जो अनन्तान्त सृष्टि के जीवों को प्रेम सागर में शाश्वत काल तक डूबाते रहेंगे।

आओ शुक, हम दोनों प्रिया-प्रेम समुद्र के पावन तट पर खड़े होकर प्रिया रूप अगाध एवं विशुद्ध प्रेम की, इस विशुद्ध भाव की, अनन्तानन्त लहरियों का आनन्द लें—जिससे तुम्हें विशुद्ध रति (भाव) क्या है, वह रति किस प्रकार प्रगाढ़ प्रगाढ़तर, उच्च उच्चतर होती हुई स्नेह, मान, प्रणय, राग में पर्यवसित होती है, इसका आस्वादन मिले। "चलो शुक" और इतना कहते ही शुक एवं सारिका दोनों के सम्मुख परम रसमय दृश्य प्रकाशित हो उठा।

निकुंज में प्रिया अपने प्रियतम के मधुरतम चिन्तन में सब कुछ विस्मृत किये बैठी हैं। अभी-अभी सायंकाल हुआ है। आकाश में तारे उग आये हैं और चांदनी छिटक रही है। बेला पुष्पों की सुन्दर गन्ध से मतवाले होकर भौंरे इधर-उधर गुन गुना रहे हैं। जलाशय में खिली हुई कुमुदिनी की सुगन्ध लेकर वायु मन्द-मन्द चल रही है। प्रिया को अपने शरीर की स्मृति नहीं है। उनकी ओढ़नी उसके मस्तक से खिसक आयी है। वेणी से बिखर कर पुष्प धरती पर गिर रहे हैं। प्रिया का चित्र तो अपने प्रियतम के पास है। वाणी उनका गुणगान अपने आप उच्चारण कर रही है।

सुन्दर श्याम कमल-दल लोचन दुख मोचन ब्रजराज-किशोर।
देखूं तुम्हें निरन्तर हिय-मन्दिर में हे मेरे चित चोर।।
लोक-मान-कुल मर्यादा के शैल सभी कर चकना चूर।
रक्खूं तुम्हें समीप सदा मैं, करूं न पलक तनिक भर दूर।।
पर मैं अति गंवार ग्वालिनि, गुण रहित कलंकी सदा कुरूप।
तुम नागर गुण आगर अतिशय कुल भूषण सौकर्य-स्वरूप।।
मैं रस-ज्ञान-रहित रस वर्जित तुम रस निपुण रसिक-सिरताज।
इतने पर भी दया सिन्धु तुम मेरे उर में रहे विराज।।

हे कमल-जैसे नेत्रों वाले श्यामसुन्दर ! हे दुःख से छुड़ाने वाले व्रजराज किशोर ! हे मेरे चित्त चोर ! मैं तुमको अपने हृदय रूप भवन में निरन्तर-बिना बाधा निहारती रहूँ ॥१॥

मेरा मन चाहता है कि लोक-लाज, मान-प्रतिष्ठा तथा कुल की मर्यादा रूपी समस्त पर्वतों को चकनाचूर करके मैं तुमको सदा ही अपने समीप बनाये रखूँ, एक पलक भी और तनिक भी दूर नहीं रहने दूँ ॥२॥

परन्तु मैं तो निरी गँवार ग्वालिनी हूँ, गुणों से रीती, कलङ्किनी, और सदा ही कुरूपा हूँ। इसके विपरीत तुम अत्यन्त चतुर, अनन्त गुणों के भण्डार, कुल के महान् भूषण तथा सुन्दरता के स्वरूप ही हो ॥३॥

कहाँ मैं रस के ज्ञान से सर्वथा शून्य, रसहीन और कहाँ तुम रस के मर्मज्ञ तथा रसिकों के सिरमौर हो। इतने पर भी तुम दया के सागर (मुझ पर दया करके ही) मेरे हृदय में सदा विराजित रहते हो ॥४॥

'सुन्दर श्याम' का भाव:—

प्रिया, श्रीराधा रानी के चिदाकाश से एकात्म्य हुए शुक एवं सारिका देखते हैं, प्रिया के सम्मुख जो कुछ दृश्य है, सब सुन्दर श्याम रसराज में परिणत हो गया है। वह रस अजन्मा है, वह अपने आप में अपने आपका सृजन करता है, और अनन्तानन्त प्रवाह से नित्य निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। प्रिया को इस रस का कहीं अन्त ही दिखता नहीं। ऐसा मायालेशशून्य, विशुद्ध केवल ज्ञानस्वरूप, अन्तरात्मा के रूप में यह रस उनमें अवस्थित है; जो त्रिकाल सत्य है, पूर्ण है, अनादि है, अनन्त है, निर्गुण है, नित्य है, अद्वय है, ऐसा सौन्दर्य प्रिया के चिदाकाश में पूर्ण प्रवाह से लहरा रहा है।

प्रिया को न विराट का ज्ञान है, न काल का ज्ञान है, न स्वभाव का ज्ञान है, न मन का, न इन्द्रियों का, न ही उनके कार्यों का, न कारण का, न पंच भूत का, न अहंकार का, न त्रिगुण का, न ब्रह्माण्ड शरीर का, न अनन्त स्थावर जंगम जीव का, न ब्रह्मा का, न शंकर का, न विष्णु का, न दक्ष, न नारद का, कोई कल्पना ही नहीं कर सकता, अनुमान के पंख लगाकर चाहे जितना उड़ले, प्रिया के सम्मुख कुछ नहीं, मात्र सौन्दर्य है, विलक्षण सौन्दर्य है, और वह सौन्दर्य बस श्यामाकृति है, प्रियतमाकृति है। प्रिया को सब कुछ श्याम ही

गया है। स्वर्ग और आकाश, नृलोक और पाताल, अतल, वितल, सुतल की समग्र सृष्टि, गंधर्व, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, सर्प, नागपति, महर्षि, पितृपति, दैत्येन्द्र, दानवेन्द्र, सिद्धेश्वर, तथा प्रेत पिशाच भूत, कुष्माण्ड, जल, जन्तु, मृग, विहंगम, सब कहीं कुछ नहीं, मात्र श्याम छवि, अनन्त सुन्दर, एक मात्र सुन्दर, अद्वितीय सुन्दर, अमृत स्वरूप, मात्र भावमय, प्रेममय। जगत् की जितनी वस्तुएँ हैं, जो, जहाँ, जैसा भी ऐश्वर्य, तेज, इन्द्रिय बल, मनोबल शरीर बल से युक्त है, सौन्दर्य, लज्जा, विभूति से समन्वित है, सुन्दर, असुन्दर वर्ण वाला है, वे सब का सब प्रिया के हृदय को इस महामहा नील सौन्दर्य, श्याम प्रियतम रस में विलीन हो गया है। सब अनेक, सब द्वैत अपनी सत्ता को विलुप्त कर न जाने कहाँ मुँह छुपा चुका है, कुछ पता नहीं।

ऐसा सौन्दर्य जो त्रिकालाबाधित सत्य है, स्वप्रकाश है, अनन्त है, देश कालादि परिच्छेद रहित है, आनन्द स्वरूप है, एक रस है, जिस सौन्दर्य के अचिन्त्य अनन्त माहात्म्य की उपलब्धि आत्मज्ञानी, ब्रह्म ज्ञानियों के लिये भी सम्भव नहीं, जिस सौन्दर्य की रश्मि-रश्मि से आत्मज्ञानियों को, ब्रह्म ज्ञानियों को परब्रह्म का बोध हो रहा है, ऐसा महाबोध स्वरूप सौन्दर्य प्रिया के नेत्रों की पुतली का निजस्व हो रहा है। इस सौन्दर्य सिन्धु की उच्छलित लहरियों में अहंता, ममता का संश्लेष भी नहीं ढूंढा मिल रहा है। ऐसा अनन्त, पारावार सौन्दर्य है।

सौन्दर्य सिन्धु उमड़ता जा रहा है। असंख्य सुन्दरातिसुन्दर, और सुन्दर, पूर्ण, पूर्णतर, पूर्णतम, पूर्णतम के उपरान्त भी और पूर्णतमोत्तर, पूर्णतमोत्तम सौन्दर्य लहरियाँ इस सुन्दर को रंग दे रही हैं। उस विलक्षण नील सौन्दर्य के अधर पुटों पर सुन्दर रसमय वाणी की लहरें हों, सुन्दर कपोलों पर लावण्य की लहरें हों, सुन्दर वक्षस्थल पर वनमाला की उज्ज्वल लहरें फैली हों, सुन्दर कर्ण युगल पर पीत कुण्डलों की लहरें हों, नयनों पर अतिशय चंचलता की लहरें हों, ग्रीवा के समीप बंकिमता की लहरें हों, सुन्दर विशाल भुजा को सुपुष्टतारूप लहरें आवृत कर रही हों, सस्मित मुख पर सुन्दर बांसुरी का आश्रय लिये सुमधुर स्वर की लहरें खेल रही हों, उस सुन्दर श्यामाकृति के समस्त अंगो में उन्मादी सौन्दर्य लहरियाँ उछल रही हैं। और इस सौन्दर्य सिन्धु की स्वामिनी, आश्रय हैं मात्र प्रिया-और उनका अनन्त विशुद्ध भाव स्वरूप यह भाव स्वरूप ही अनन्त सौन्दर्य बन कर लहर रहा है।

सहसा सारिका बोल उठी, "देखो शुक, यह है रति, प्रिया रूप रति, विशुद्ध भाव लहरी रति, जो इतनी समर्थ है कि अनन्तानन्त ब्रह्म का भी जहाँ अन्वेषण नहीं मिलता, रसराज प्रियतम को पराधीन कर जो प्रिया की नेत्र पुतलियों में बंद कर देती हैं। जो इतनी समर्थ हैं कि प्रिया की इन पुतलियों से ब्रह्म के भी जीवन प्रियतम रसराज बाहर न छलक सकते हैं, न ढुलक सकते हैं। महा समर्था रति है यह। यह प्रिया स्वरूपिणी है। प्रिया ही यह रति है और रति ही प्रिया है। यह महाभावमयी है। महाभावस्वरूपिणी है। परम परम विशुद्ध है। किसी भी उपाधि का इसमें संश्लेष भी नहीं है। निरुपाधि प्रेम इसी का नाम है। निरुपाधि रति ही निरुपाधि प्रेम है, शुक!

यह रति किसी भी तपस्या का फल नहीं है। इस अपनी प्रियतम छवि के लिये प्रिया में न लोभ है, न काम है। न उन्होंने इसके लिये किसी भी ब्राह्मण द्वारा अपने प्रिययम को पत्र भेजा है, न शिशुपाल और रुक्मी से प्रियतम का युद्ध कराया है, न बैलों को नथवाया है, एवं न ही यह मित्रविन्दा की तरह स्मृति श्रुति शासन की विरोधिनी है। इस छवि को प्रिया ने अपने नेत्रों की पुतली में बंद कर रखा है, और उसकी वे एक मात्र स्वामिनी हैं। और प्रिया की इस अनमोल निधि का किसी को कुछ पता नहीं है। प्रिया के नयनों में ऐसी विलक्षण छवि भरी है, इसका ज्ञान सर्वज्ञाता शक्ति से प्रियतम को भले हो जाय, इस प्रिया भाव में प्रियतम सान्निध्य की भी अपेक्षा नहीं है। इस छवि को प्राप्त करने के लिए प्रिया को किसी कर्म की, कर्तृत्व की आवश्यकता नहीं है। यह किसी साधना की, तपस्या की फलसिद्धि भी नहीं है। इसके लिए प्रियतम को कछुआ बनाकर मन्दराचल पर्वत धारण नहीं कराया गया है। यह तो मात्र प्रिथा का अपना विशुद्ध प्रेम स्वरूप ही है। अपना निज का भाव, निज की आत्म रति मात्र हैं। यह रति ही इस प्रियतम रूप सौन्दर्य में परिणत है। इसमें कुछ भी किया नहीं गया है, सब हो गया है। सब अहं विसर्जित हो गया है। सब मम समर्पित हो गया है। अनन्त काल से जो जगत् में जितना डेरा था, सब सदा के लिए इस रति ने उठा दिया है। सारी ममता सदा के लिए रति में विलीन हो गई है और इस ममता के साथ न कहीं प्राणियों की, न पदार्थों की एवं न परिस्थितियों की किसी की भी सत्ता रही है। सम्पूर्ण संसार मात्र प्रियतम का सुन्दर श्याम स्वरूप ही बनकर रह गया है। जहाँ कहीं भी प्रेम, विश्वास और आत्मीयता थी वह सब मिटकर एक ही जगह सुन्दर श्याम

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

छवि बनकर सिमट गई है। समस्त प्रेम केन्द्रित होकर ही मात्र रति रूप में लहरा रहा है। यही भाव है, महाभाव है।

हे शुकराज ! यही रति है जिसे श्री नारदजी ने अमृतस्वरूपा कहा है और जिसके बारे में कहा है—

यल्लब्धा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतोभवति, तृप्तो भवति। यत्प्राप्य न किंचिद् वाञ्छति, न शोचति, न द्वेष्टि, न रमते, नोत्साही भवति। यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति, स्तब्धो भवति आत्मा रामो भवति॥

हे शुकराज, प्रिया में कैसा अनन्य प्रेमोदय हो रहा है, इस छवि को देख कर। अनन्य प्रेम का समुद्र लहरा रहा है। एक लहर की तरह यह छवि आई थी परन्तु इसने समुद्र की तरह प्रिया का सब कुछ आच्छादित कर लिया। प्रिया के सर्वस्व को, सब कुछ को उसने अपने में डुबा दिया है। यह सब स्पृहाओं को सदा-सदा के लिए उदरस्थ कर गई है। इसने अहं को ही जब उदरस्थ कर लिया तो लोक, परलोक एवं मोक्ष बचे ही कहाँ ? और इसीलिए अमृत हो गई हैं प्रिया, उनके प्रियतम जब उनमें पूर्ण रूप से परम मधुर प्रेमामृत बने सरस रहें हैं, तो उनको पीकर वे अमृत ही तो होतीं। भीतर आत्म रूप में मात्र प्रियतम प्रेमामृत, इन्द्रियों में भी वही प्रियतम प्रेमामृत, बुद्धि भी प्रियतम प्रेमामृत रूपा, शरीर भी प्रियतम प्रेमामृत, मन प्रियतम प्रेमामृत, फिर इनके विषय आकाश वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी प्रियतम प्रेमामृत के अतिरिक्त सम्भव ही कैसे हो सकते हैं ?

सब मात्र अमृत—यह कोई प्राकृतिक अमृत नहीं हैं जो स्वर्ग में देवताओं के पानार्थ उपलब्ध हुआ था, यह तो एक अभिनव चिन्मय प्रीतिरस है जिससे प्रिया का अणु-अणु निमग्न है। और इस चिन्मय, परम अमृत रस में डूबी प्रिया चिन्मय भाव समाधि बन सिद्ध हो गई हैं, तृप्त हो गई हैं। यहाँ सिद्ध शब्द का अर्थ अणिमा महिमादि सिद्धियों से सम्पन्न कोई सिद्ध जीव सर्वथा नहीं है, इस प्रेम में तो मोक्षरूप सिद्धि भी रोग लगने लगती है।

शुकराज ! बताओ सिद्ध क्या है ? जिसके भय से पवन संचारित होता है, सूर्य प्रतिदिन पूर्व क्षितिज पर प्रकाशित होकर, चार पहर ताप देकर पश्चिम क्षितिज में विलिन हो जाता है, सुरराज जिसके भय से वर्षा की धारा दान

करते रहते हैं, अगणित तारिका राशि चमकती रहती हैं, जिससे भयभीत होकर असंख्य तरु-वल्लरियाँ, वनस्पतियाँ, पुष्पित होती हैं, वे फलभार वहन करती हुई जगत् को सुस्वादु मधुर रस वितरण करती हैं, जिसके डर से सरिताएँ प्रवाहित होती हैं, सागर अपनी मर्यादा त्याग नहीं सकता, जिससे भयभीत अग्नि प्रज्वलित होती है, और भूधरों को वक्षस्थल पर धारण करने वाली पृथ्वी जल में निमग्न नहीं होती, जिसका शासन मानकर आकाश जीवित प्राणियों को श्वास-प्रश्वास के लिये अवकाश देता है, ब्रह्मा जिसके भय से सृजन करते हैं, विष्णु पालन एवं रुद्र संहार करते हैं, जो काल के भी महाकाल हैं एवं जिनके उदर में अनन्त-अनन्त काल नित्य उत्पन्न होता है एवं तिरोधान होता है, जिसके संकल्प से अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं, और एक ही क्षण में पिस जाते हैं, त्रिपादविभूति वैकुण्ठ धाम के नैः श्रेयस नामक वन में अनल प्रभ नित्यकुमार सनक, सनन्दन, सनातन, एवं सनत्कुमार ऋषि जिनको, 'दयामय, करुणासिन्धो, जगत्पते नारायणाखिलगुरो, भगवन्नमस्ते,' कहकर स्तुति करते रहते हैं, जिनके रोम-रोम में अनन्त विराट है, उन प्रियतम श्रीकृष्ण को जो अपने नयनों की पुतरी में बन्द किये हैं, उस प्रिया के अतिरिक्त अन्य कौन सिद्ध है। हे शुकराज ! प्रिया अनादि सिद्ध हैं। भाव ही सिद्ध है। भाव के अतिरिक्त और कुछ सिद्ध नहीं है। बाकी सब असिद्ध है। सन्मात्र ही तो सिद्ध है। चिन्मात्र ही तो सिद्ध है। आनन्द ही सर्व सिद्ध है। प्रेम पूर्ण सिद्ध है। प्रिया ही एकमेव सिद्ध हैं। शेष ही सिद्ध हैं, प्रिया ही शेष हैं। प्रिया से ही सब सिद्ध हैं। प्रिया ही स्वाभाविक रति हैं। रति ही प्रिया है। प्रिया में और रति में कहीं कुछ भी पृथकता नहीं है।

'दुखमोचन' शब्द का भाव:—

सहसा शुक ने प्रश्न किया—हे सारिके ! एक शंका है, इसी पद में प्रिया कहती हैं— "सुन्दर श्याम कमल दल लोचन, दुख मोचन व्रज राज किशोर।" ये पंक्तियाँ स्पष्ट संकेत कर रही हैं कि प्रिया के मन में दुःख से मुक्ति का भाव तो है ही। प्रिया को श्रीकृष्ण से सुखाशा भी है ही। और प्रिया में जब 'स्व' की सुखाशा है, फिर आदर्श पतिव्रता महासती रुक्मिणी एवं लक्ष्मीजी में एवं प्रिया में क्या अन्तर है ? रति नामक भाव में भी फिर समञ्जसा और समर्था का भेद कहाँ रहा ?

सारिका— ठीक है शुक ! तुम्हारा प्रश्न उचित है, परन्तु तुमने प्रिया के चिदाकाश से एकात्म्य करके भी जो सर्व विलक्षण प्रिया का स्वरूप है, उस पर ध्यान ही नहीं दिया। हे शुक, प्रिया को जब प्रियतम के दर्शन होते हैं, उस समय प्रिया को तुमने कहीं भी देखा है क्या ? प्रिया तो उस समय मात्र दर्शनेच्छा, दर्शन रति में ही अपने आपको एकात्म्य कर चुकी होती हैं। वे जब अपने अहं को सर्वथा रत्याकार कर चुकीं होती हैं तब उनमें यदि कोई भी इच्छा दिखाई पड़ रही है, तो वह प्रिया की स्वयं की कोई इच्छा है, यह कैसे माना जाय ?

जरा ध्यान से विचार करो। जहाँ अहंकार पूर्ण सक्रिय है, रति रूपता है ही नहीं। उसमें सुखेच्छा प्रमुख है ऐसा माना जा सकता है। अहंकार की सक्रियता में तो रति भी भोगेच्छा की सेवार्थ ही उत्पन्न होती है। वहाँ सुखाशा ज्योंही हटी, रति भी लुप्त हो जाती है। परन्तु प्रिया में जहाँ अहंता है ही नहीं, मात्र रति ही रति है, उसमें यदि सुखेच्छा दिखती भी है तो वह रतिरूप ही तो है।

हे शुकराज ! सूक्ष्म बुद्धि से विचार करो, जब प्रिया के अहंकार के रूप में मात्र प्रियतम ही प्रियतम हैं, तब यदि वहाँ प्रिया का भी अस्तित्व है तो वह प्रियतम का ही अहमाभास तो हैं, जो अपने स्वसुखार्थ 'प्रिया' नामक दृश्य निर्माण कर रहा है। अब प्रिया यदि प्रियतम से कहती है—"हे विरह रूप महा दुःख से मुक्त करने वाले दुःख मोचन प्रियतम, नेत्रों को रूप विषय का, कानों को शब्द विषय का, नासिका को गंध विषय का, त्वचा को स्पर्श विषय का एवं अधरों को रसामृत का संयोग कराने वाले रसराज !" तो उसका यही अर्थ है कि या तो रति स्वयं लहराकर स्वसुख की लालसा रूप में विकसित हो रही है किंवा प्रियतम की सुख लालसा ही प्रिया के माध्यम से अभिव्यक्त हो रही है—क्योंकि प्रियात्व तो वहाँ कहीं है ही नहीं, वह तो मात्र रतिरूप ही हो गया है।

हे शुक, जब प्रिया है ही नहीं मात्र प्रियतम हैं और प्रियतम रूपा ही प्रिया की रति है, तब जो भी विकास एवं ह्रास हो रहा है वह या तो रति में हो रहा है या प्रियतम में ही। सुखेच्छा एवं दुःख मोचन की वृत्ति यदि उत्पन्न हो रही है, तो या तो वह स्वयं रति का ही कोई स्वरूप जादू है या मात्र प्रियतम का ही कोई खेल है। प्रिया तो रति रूप होकर प्रियतम में पूर्णतया तल्लीन, तदाकार,

तद्भाव हो गयी हैं। हे शुक, ऐसी स्थिति लक्ष्मीजी की कहां है? लक्ष्मीजी यदि रति रूप हो जातीं, न तो वे माला लेकर श्रीकृष्ण की ओर बढतीं, न उनमें स्पृहा ही होती कि श्रीकृष्ण मेरा वरण करें। उस समय श्रीकृष्ण अपने आप ही दौड़कर उनको गले लगाते। इसी प्रकार रुक्मिणीजी को भी पत्र देने की, ब्राह्मण से संदेश कहलाने की आवश्यकता नहीं थी। वे तो निषेध करतीं, नाथ! मुझ पापिनी का इस कागविष्ठावत् देह का जो भी परिणाम होगा, हो जायगा। यह देह आपके द्रोही इन शिशुपालादि द्वारा स्पर्शित तो कदापि नहीं होगी। इसके पूर्व ही कि वे इसे स्पर्श करें मैं योगाग्नि से इसे आपका स्मरण करती भस्म कर दूँगी, परन्तु प्राणनाथ! मेरी यही विनय है, आप वीर हैं, आप मेरे शरीर के मोहवश उसकी रक्षा के निमित्त इनसे युद्धकर कहीं अपना अनिष्ट मत करियेगा। आपको इन पापियों से घिरा हुआ संकट में पड़ा मैं कदापि नही देख सकूंगी, उस स्थिति में तो न मेरा जन्म ही सफल हो जावेगा एवं न ही मेरी मृत्यु भी।

हे शुक! अहंकार के पूर्ण समर्पण पर तो 'स्व' कुछ भी नहीं बचता। जब प्रिया में 'स्व' है ही तब प्रियतम द्वारा अनन्त बार संभुक्ता होकर भी प्रिया नित्य कुमारी नित्य ब्रह्मचारिणी ही रहेंगी क्योंकि जो भोगी गई हैं वे भोगकाल में प्रिया थी ही नहीं। हे शुक, गोपाल तापनीय उपनिषद् का यह प्रसंग सुनोः-

एक समय की बात है, सदा प्रियतम मिलन की ही अभिलाषा रखने वाली श्रीराधा एवं व्रज सुन्दिरियों ने प्रियतम के साथ रात्रि व्यतीत की। वे प्रातः श्रीकृष्ण से बोलीं–हे प्रियतम! हमारा तुम्हारे साथ जैसा इस रात्रि को मिलन निर्विघ्न सम्पूर्ण हुआ है, वैसा ही भविष्य में भी बराबर होता रहे, इस हमारी अभिष्ट सिद्धि के लिये हमें किस उत्तमोत्तम ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये? तब प्रियतम ने विचार कर कहा–"महर्षि दुर्वासा को भोजन कराना उचित है।" गोपियों ने पूछा "प्यारे, श्री दुर्वासा का आश्रम तो यमुना के उस पार है। यमुना का जल अगाध है, उसे पार हम कैसे करेंगीं और पार किये बिना हम वहाँ कैसे जावेंगी?"

तब प्रियतम श्रीकृष्ण बोले–तुम लोग यमुनाजी के तट पर जाकर कहना-श्रीकृष्ण नाम से प्रसिद्ध हमारे श्यामसुन्दर पूर्ण ब्रह्मचारी हैं यों कहने पर यमुनाजी तुम्हें पार जाने के लिये मार्ग दे देगी। गोपियो! मैं वह हूँ जिससे अथाह की भी थाह मिल जाती है, मैं वह हूँ जिसका स्मरण करने से अपवित्र

या पवित्र हो जाता है, व्रतहीन भी व्रतधारी हो जाता है, अवनत सर्व उन्नति को प्राप्त कर लेता है, एवं वेद ज्ञान से रहित वेदज्ञ हो जाता है।

भगवान का यह कथन सुनकर गोप सुन्दरियाँ श्री महादेवजी के अंशभूत दुर्वासा का स्मरण करके-उन्हीं को लक्ष्य करके चलीं। वे श्रीकृष्ण के वचन को यमुना के तट पर यमुनाजी के सम्मुख दुहराकर सूर्यकन्या यमुना के पार हो गईं, एवं मुनि के परम पवित्र आश्रम पर जा पहुँचीं। फिर उन्होंने उन सर्व श्रेष्ठ मुनि को, जो रुद्र के ही अंश थे, प्रणाम करके, उन ब्राह्मण देवता को दूध और घी के बने हुए मीठे प्रिय पदार्थ खिलाये। श्री दुर्वासाजी श्रीराधा पर बहुत संतुष्ट हुए। प्रसिद्ध महर्षि दुर्वासा ने भोजन करके उच्छिष्ट अन्न का यथा-स्थान त्याग करके गोपियों को यथेष्ट आशीर्वाद दिया एवं तत्पश्चात् अपने अपने घर लौट जाने के लिये आदेश दिया। तब गोप सुन्दरियों ने पूछा— हे महर्षे! हम सूर्यकन्या यमुना को कैसे पार करके जावेंगी? तब मुनि ने कहा— "मैं केवल दूब का ही भोजन करने वाला हूँ, इस रूप में मेरा स्मरण करने से यमुना जी तुम्हें मार्ग दे देंगी।"

गोपियों में सर्व श्रेष्ठ जो गान्धर्वी राधा थीं, उन्होंने दुर्वासाजी के कथन पर बहुत आश्चर्य किया एवं गोपियों के साथ विचार विमर्श करके मुनिवर दुर्वासा से इस प्रकार पूछा:—"हे ऋषे! हमारे साथ नित्य विहार करने वाले श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण ब्रह्मचारी कैसे हैं और अभी-अभी इतना पक्वान्न भोजन करने वाले आप केवल दूर्वा ही भोजन करते हैं, यह किस प्रकार संभव एवं सत्य है?

हे शुक, श्री दुर्वासाजी ने हँसकर जो अत्यंत सार गर्भित उत्तर दिया उसे सुनो—दुर्वासा जी कहने लगे, जो शब्द और आकाश से भिन्न है, जो स्पर्श और वायु दोनों से भिन्न है जो रूप और तेज दोनों से भिन्न है, जो रस और जल दोनों से भिन्न है और जो गंध एवं पृथ्वी दोनों से भिन्न है, वह विशुद्ध परमात्मा ही मैं हूँ। यह आकाश वायु, तेज, जल और पृथ्वी ही क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप रस और गंध गुणों से युक्त है। मैं परमात्मा इन उपरोक्त गुणों वाले—आकाश, वायु, तेजादि में अन्तर्यामी आत्मा होकर निवास करता हूँ परन्तु ये आकाशादि मुझ परमात्मा को नहीं जानते। फिर मैं इनका भोक्ता कैसे हो सकता हूँ? यह मन ही आकाशादि के विषय में संकल्प विकल्प करता है। यही इनके विषयों को भी ग्रहण करता है। जहाँ सब कुछ आत्मा ही हो गया है, वहाँ किस विषय का

आश्रय लेकर यह मन संकल्प-विकल्प करे। मैं वही विशुद्ध आत्मा हूँ, अतः मैं सर्वथा भोक्ता नहीं हूँ।

इसी प्रकार श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण, जो तुम लोगों के प्रियतम हैं, वे व्यष्टि और समष्टि के स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरों के कारण हैं। सदा साथ रहने वाले दो पक्षियों की भाँति जीवात्मा और परमात्मा एक दूसरे के नित्य-सहचर हैं। इनमें जो परमात्मा का अंशभूत इतर जीव है, वह तो भोक्ता है, और उससे भिन्न साक्षात् परमात्मा श्रीकृष्ण साक्षी मात्र हैं। वृक्ष के समान धर्म वाले नाशवान् शरीर में वे दोनों रहते हैं। इनमें एक भोक्ता है और दूसरा अभोक्ता। जीव भोक्ता और परमात्मा अभोक्ता है। ये श्रीकृष्ण ही परमेश्वर, पूर्ण अभोक्ता हैं। हे गोपियो, जिनमें मोक्ष एवं बन्धन दोनों का अस्तित्व ही नहीं है जो चिन्मात्र हैं, सर्व विद्यामय हैं, वे श्रीकृष्ण विषयी कैसे होंगे ?

जो भोगों की कामना, अभिलाषा करता है वही भोगी होता है, वही कामी होता है, परन्तु जो निश्चय ही कामना के बिना ही केवल प्रेमी प्रियतमाओं के प्रेमवश उनके द्वारा अर्पित भोगों को भोगता है वह सब कुछ भोगता हुआ भी अभोक्ता है। वह सब कामनाओं में रहता हुआ भी सर्वथा निष्काम है। इसीलिये तुम्हारे प्रियतम पूर्ण निष्काम ब्रह्मचारी हैं।

अब बताओ शुक, प्रिया श्रीराधा जो मात्र रति रूप प्रेमस्वरूपा हो गई हैं एवं जिनका 'अहं' सर्वथा विलीन होकर मात्र प्रियतम रति रूप ही है, वे कैसे संभुक्ता होंगी। अतः तुम्हारी ये शंका सर्वथा निरर्थक है। हे शुकराज, प्रिया तो मात्र भाव है जो रस रूप में प्रकाशित हो रही हैं। वे सर्व रस साक्षी होकर मात्र आनन्द को, रस को ही अनन्त-अनन्त लहरों में प्रकाशित कर रही हैं, यह सत्य है, परम सत्य है।

'कमल दल लोचन' का भाव:—

हे शुक, अब पुनः ध्यानस्थ होओ और इन शंकाओं को किनारे कर रस सागर का परम विशुद्ध निर्मल अनुभव करो। सारिका के इतना कहते ही शुक एवं सारिका दोनों समाविष्ट हो गई प्रिया के परम विशुद्ध रसमय चिदाकाश में। शुक-सारिका प्रिया के चिदाकाश से एकात्म्य अनुभव करने लगीं—"प्रियतम श्यामसुन्दर के नेत्रों की शोभा नव कमल-दलों जैसी है। उनका मुख भी पूर्ण

प्रस्फुटित अरविन्द है, और दोनों नेत्र दो विकसित अम्बुज हैं। दोनों हाथ भी दो उत्फुल्ल कमल हैं। और नाभि, नाभि नहीं है, वह भी है मात्र एक अरुणाम्भोज तथा ये दोनों चरण भी पूर्ण विकसित पङ्कज ही हैं। प्रियतम का सब अंग कमलों की ही शोभा को अपना उपमेय बना रहा है। शुक एवं सारिका ने ही क्या अब तक किसी ने भी ऐसे विलक्षण कमलों की, कल्पना नहीं की थी। यदि कोई अनन्त-अनन्त पद्मों को एकत्रित करले और उस ढ़ेर में सम्पूर्ण 'श्री' भी मिला दें, फिर भी प्रियतम नेत्र रूपी कमल की, शोभा को वह ढेर पा नहीं सकेगा।"

इन नेत्र कमलों के सौन्दर्य के एक कण मात्र के सम्मुख त्रिलोकी का सौन्दर्य भी नगण्य, हेय, तुच्छ प्रतीत होता है। एक ब्रह्माण्ड की ही नही, अनन्त अनन्त ब्रह्माण्डों की शोभा की जो एक मात्र अधिष्ठात्री श्रीदेवी हैं वे भी इन प्रियतम के नेत्र कमलों की शोभा को अपलक निहारती रह जाती हैं। शुक एवं सारिका अनुभव कर रहे हैं कि प्रियतम के कमल-दल-लोचनों की ऐसी शोभा है कि श्रीदेवी अपना सब कुछ विस्मृत, विसर्जित कर देती हैं और इच्छा करने लगती हैं कि अपने अस्तित्व की सम्पूर्ण अवधि तक अपलक नेत्रों से नन्दनन्दन के कमल-दल-लोचनों को ही निहारती रहूँ। वे इन कमल-दल-लोचनों की शोभा को ही अपने हृदय में अपना आराध्य मान धारण करनें के प्रयास में ध्यानस्थ हो जाती हैं और मन ही मन विधाता से प्रार्थना करने लगती हैं कि उनकी अन्तिम गति ये चरण कमल ही हैं।

प्रियतम श्यामसुन्दर के चरण कमलों की अचिन्त्य शोभा का दर्शन करते-करते ही शुक एवं सारिका अनुभव करने लगे कि रति रूपा प्रिया-भाव समुद्र में मानो ज्वार आने जा रहा है। भाव समुद्र में मानो कोई तूफान खड़ा होने जा रहा हो, इस प्रकार भाव सौन्दर्य उच्छलित हो रहा है। प्रतिक्षण नवीन उच्छलन, प्रतिक्षण पूर्ण, पूर्णतर, पूर्णतम, पूर्णतमोत्तर, पूर्णतमोत्तम पुनः पूर्णतमोत्तमोत्तर और पूर्णतमोत्तमोत्तम।

उत्तरस्माद्युत्तर स्मापूर्व पूर्वा श्रेयाय भवति।

जो उत्तरोत्तर क्रम से पूर्व पूर्व क्रमगत अधिक अधिकतर, श्रेष्ठ श्रेष्ठतर, श्रेयस्कर होता जाता है।

"प्रतिक्षणवर्द्धमानम्" प्रतिक्षण बढने वाला ही तो यह भाव है। हाँ,

तो यह उमड़ता अनन्त शोभा का प्रवाह संकेतित करता है कि भाव भी प्रगाढ़, प्रगाढ़तर, प्रगाढ़तम हो रहा है।

"लोक मान कुल मर्यादा के शैल सभी कर चकनाचूर
रखूँ तुम्हें समीप सदा मैं करूँ न तनिक पल भर दूर" का भाव:—

और सारिका बोल उठी, "देखो शुक, प्रिया में उनके अंगों में भाव के उच्छलन के चिन्ह दृष्टिगोचर हो रहे हैं। स्तब्ध, आत्माराम, तृप्त और अमृतप्रिया जो अब तक "यत्प्राप्य न किंचित् वाञ्छति, न शोचति, न द्वेष्टि न रमते, नोत्साही भवति।" इस श्रुति का उदाहरण थीं, अब चंचल हो रही हैं। प्रिया का रोम-रोम एक अभिनव भाव माधुरी से परिप्लुत हो रहा है।"

अहा! प्रिया अनुभव कर रही हैं कि इन कमल-दल-लोचनों से प्रियतम उनकी ओर सतृष्ण देख रहे हैं। कैसा मधुमय संकेत है, कैसा मधुमय प्रेम निमंत्रण है, प्रिया को। परन्तु प्रिया के सम्मुख लोक है, मान, है, कुल है, कुल की मर्यादा के बड़े-बड़े शैल जैसे अपने आप खड़े हो गये हैं। अभी तो प्रिया ही नहीं थी। न लोक था, लोकान्तर था। रति रूप हुई प्रिया सब को उदरस्थ कर गई थीं। परन्तु यह क्या हुआ? पुनः लोक आगया, मान भी आ गया, कुल भी आ गया, और इस कुल की मर्यादा भी आगई। सम्पूर्ण भेदात्मक अज्ञान खड़ा हो गया। परन्तु आश्चर्य है कि लोक की, मान की, कुल की, एवं मर्यादा की तो एक संकल्प लहर से ही बड़े-बड़े योगियों का ध्यान विचलित हो जाता है। फिर ये सब के सब प्रिया के हृदय को भरे रहने पर भी प्रिया का हृदय इस अप्रतिम विश्वविमोहन प्रियतम छवि, से भी साथ ही साथ भरा कैसे है? मन की तो सामर्थ्य ही नहीं कि इस अचिन्त्य छवि को छाया भी छूले।

अरे! आश्चर्य, विलक्षण आश्चर्य है नेत्रों की मुसकान? मुसकान तो अरुण अधरों पर अभिव्यक्त होती है। नहीं, ये नेत्र भी मुस्काते हैं। ये नेत्र तो बोलते भी हैं, निमंत्रण भी देते हैं-स्पर्श भी करते है, रोम-रोम को आलिंगित भी कर लेते हैं। ऐसे नेत्र कमल कैसे हैं? प्रत्यक्ष तो हैं। देखो, हँस रहे हैं। और इन नेत्र-कमलों में ही बिम्बफल के सदृश अधर भी व्यक्त हो गये हैं। नेत्र-कमल और बिम्बाधर दो हैं ही नहीं। नेत्र-कमल ही बिम्बाधर हैं और उन पर मन्द मुसकान भी छायी है और आश्चर्य, इन नेत्र कमलों से सजल जलद की

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सी कान्ति वाले प्रियतम श्यामसुन्दर के सब अंग भी, उनका कलेवर भी प्रकट हो रहा है। मानों ये नेत्र-कमल ही सब अंग हों। पर अंग तो सजल जलद सम है और लोचन दल कमल के समान हैं। नेत्रों में एक कण भी धूलि गिर जाय तो नेत्रों को कितनी पीड़ा हो जाती है, फिर ? ये सजल जलद अंग नेत्रों से कैसे निकलेंगे ? अरे भाव सर्व समर्थ है। वह कर्त्तुम् अकर्त्तुम् अन्यथा कर्त्तुम् समर्थ है। भाव ही तो रसोच्छलन कर रहा है। रस की क्या मजाल जो भाव के संकेत के अनुसार आकश को पाताल न कर दे और आकाश में ही पाताल न न दिखा दे ? युगपत् दोनों की एक ही साथ सत्ता न प्रकाशित कर दे ?

तो, सजल जलद की कान्ति वाला यह वपु परम मधुर परम सुन्दर गति से चलने भी लगा। जब कमल-दल के समान नेत्रों की सुषमा से, मुस्कान निकली बिम्बफल के समान अधर निकले, नेत्रों द्वारा वाणी संभव हो गई, उनके द्वारा स्पर्श भी संभव हो गया, रोम-रोम नेत्र आलिंगन भी करने लगे, नेत्रों द्वारा अभिसार भी संभव हो गया—नेत्रों द्वारा सजल जलद वर्ण का वपु प्रकाश में आगया जब सब आकाश पाताल एक हो गया, तो नेत्र कमलों के ही द्वारा यह लोक, कुल, मान और मर्यादा भी आ गई तो इसमें आश्चर्य क्या है ? कुछ भी आश्चर्य नहीं।

तो प्रिया के हृदय में जो यह लोक उत्पन्न हुआ है, वह न अहंकार की सृष्टि है, न यह कुल ही अहंकार की सृष्टि है, न मान अहंकार की सृष्टि है एवं न ही मर्यादा ही अहंकार की सृष्टि है। सब भाव के संकेत से रस-रूप हैं। वही रस नेत्रों जो में कमल-दलों की अनन्तानन्त शोभा अभिव्यक्त कर रहा है, वही रस जो वपु को परम चिन्मय और अनन्तानन्त सुन्दर सजल जलद की शोभा से समलंकृत कर रहा है, वही रस जो नेत्रों की वपु और वपु को नेत्र, नेत्रों को अधर और अधरों में नेत्रत्व दे रहा है, वही कर्त्तुम् अकर्त्तुम् अन्यथा कर्त्तुम् समर्थ रस-भाव संकेतित हो, यदि कुल, मान, मर्यादा, और लोक की बाधाएँ भी खड़ी कर रहा हो तो आश्चर्य क्या है ? जो निमंत्रण है, वही, अवरोध भी है। द्वैत एवं भेद कहाँ है ? कहाँ अज्ञान है, एवं माया है। पूर्ण अद्वैत, पूर्ण अभेद सत्ता ही तो सर्वत्र लहरा रही है।

और प्रिया की दृष्टि में कहाँ लोक है ? वहाँ तो लोक भी प्रियतम, कुल भी प्रियतम, मान भी प्रियतम और मर्यादा भी प्रियतम ही प्रियतम हैं।

प्रिया यही तो अपने भाव में प्रियतम से कह रही हैं:—

'हे प्रियतम ! तुम ही मेरा लोक हो, तुम ही कुल हो, मान हो और मर्यादा हो। तुम चाहे कितने ही महान् अवरोधों का पहाड़ बनकर मेरे सम्मुख खड़े होओ, मेरे तो मात्र तुम ही प्रेम हो, तुम ही प्रेमास्पद हो और तुम ही मेरे प्रेमावरोध भी हो। मेरे लिये यह प्रेमावरोध कोई अर्थ ही नहीं रखता। मैं इन प्रेमावरोध के शैलों को इस प्रकार चकनाचूर कर दूँगी, मानों कोई चिकनी मिट्टी का कण है। परन्तु इसमें भी मेरा हेतु नहीं है। मेरा यह सामर्थ्य भी तुम ही हो रस जो इन अवरोधों को खड़ा कर रहा है वही भाव संकेत पाते ही इन अवरोध शैलों को चकनाचूर कर प्रवाहित भी हो ही जायेगा। इन दुर्गम दुस्तर शैलों को जब भाव-संकेत से रस चकना चूर कर देगा तो ये खड़े ही क्यों किये गये हैं ? स्पष्ट है, भाव समुद्र उच्छलन के पहले गम्भीर जो हो रहा है। तीव्रतम वेग से वह उच्छलित हो उसके पहले प्रतिसर्पित भी तो होगा वह। यही तो इसकी विशेषता है रस एवं भाव दोनों ही अपने स्वरूप में कभी उच्छलन करते हैं—कभी वक्र गति हो जाते हैं और कभी प्रतिसर्पण भी करते हैं, यह तो इनका अनादि नियम है।

तो भाव की इसी गम्भीरता का ही नाम 'प्रेम' है। यह "सर्वथा ध्वंस रहित सत्यपिध्वंस कारणे" है। सम्पूर्ण ध्वंस के कारण उपस्थित होने पर भी जो ध्वंस न हो- वही तो प्रेम है। रति प्रगाढ होकर प्रेम में पर्यवसित हो रही है। भाव संकेत से ही रस ध्वंस के कारण उपस्थित कर रहा है। यह रस ही प्रिया का कुल, बन गया है, यह रस ही लोक है, मान है, और रस ही कुल मर्यादा हो गया है। परन्तु इसने तो रति रूप एकाग्र प्रियतम-स्मृति में विघ्न खड़ा कर दिया। परन्तु चिन्ता क्या है, यह विघ्न भी तो है रसरूप ही।

सब कैसा रसमय हो रहा है। प्रिया का चिदाकाश प्रीतम के कमल दल लोचनों की चिन्मय सुगन्ध रस से मुँह-मुँह महक रहा है। उनके नयनों की शोभा से प्रिया का सारा चिदाकाश अनुराग मय हो रहा है। क्योंकि इन नयनों की शोभा भी तो अनुरागमयी ही है। सम्पूर्ण चिदाकाश में अमृत का समुद्र ही जैसे लहरा रहा है। इन नयनों ने रस उद्दीपन की पूरी तैयारी करली है। तभी तो मन को हरण करने वाली काम बीज 'क्लीं' की स्पन्दनात्मक भाषा में वे प्रिया को निमन्त्रण दे रहे हैं। नेत्रों का यह निमन्त्रण ही प्रिया हृदय में

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

मिलन में अभिनव मिलन की लालसा को पल्लवित कर देता है। सम्पूर्ण धैर्य, भय, संकोच, मर्यादा सब वृतियाँ ये नेत्र रसमय कटाक्ष संकेत कर करके छीन ले रहे हैं। विभिन्न गति हो रही है, प्रिया की।

इधर अनेक रसमय विघ्न खड़े हैं, पिता, भाई, पितामह, माता, मातामही, पितृव्य, मातृव्य, सब कुल सम्मुख राह रोके खड़ा है। पिता परम धर्मनिष्ठ हैं, वे धर्म सूर्य ही हैं, उनकी धर्मनिष्ठा की कितनी महान् प्रतिष्ठा है! महासती माता कुलीनता की सीमा है, दुर्वासा, गर्ग, भागुरि आदि बड़े-बड़े ऋषि, तपस्वी सब सम्मान करते हैं महात्मा वृषभानु जी का। कैसा अखण्ड शील एवं चरित्र है उनका! कैसी विशद लोक प्रतिष्ठा है उनकी प्रिया के उन्मुक्त प्रियतम मिलन पर तो यह प्रतिष्ठा नष्ट होगी ही। उनका सारा कुल गौरव सम्मान नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। जाति बन्धु उनका तिरस्कार करेंगे? तो प्रिया के सम्मुख परिवार वालों का सौहार्द, उनकी अप्रतिष्ठा का भय, आदि वृत्तियों के शैल चारों ओर खड़े हैं, और बीच में हैं प्रियतम के कमल-दल-लोचन, उनकी प्रेम भरी चितवन, चिन्मय रसमयी भाव भंगिमा, उनकी उज्ज्वल, उज्ज्वल मुसकान, और उन नयनों में ही प्रतिबिंबित प्रियतम का मुखकमल। देखो, नयनों ही नयनों में प्रियतम अपने परमोज्ज्वल प्रेम भाव को प्रिया के हृदय में बढाते जा रहे हैं। अब प्रिया के सम्मुख एक प्रश्न खड़ा हो जाता है।

क्या प्रिया इन लोक, सम्मान, कुल एवं मर्यादा की रुकावटों के कारण अपने प्रियतम के कमलदल-नयनों द्वारा दिये गये प्रेम आमन्त्रण को अस्वीकार कर दे? प्रिया तो कभी की इन शैलों को नष्ट कर चुकी हैं। अपने प्रियतम के अप्रितम अनिंद्य सुन्दर रूप का, उनके माधुर्य का, इस लोक मान कुल मर्यादा से सन्तुलन करना ही उनके लिये पापवत् है। जिस अतुलनीय रूप माधुरी का आज तक कोई कवि वर्णन विस्तार नहीं कर सका, जो परम मधुर मनोहर रूप, प्रापंचिक जगत् में कभी प्रकट नहीं हो सका—जो त्रिगुण से परे है, उसके मार्ग में त्रिगुणात्मक कोई वस्तु बाधक हो ही कैसे सकेगी? चाहे स्वयं रस ही उस त्रिगुणात्मक प्रपंचात्मक दृश्य का निर्माण कर रहा हो, वह बाधक कैसे होगा? क्योंकि उस अवरोध के कण-कण में भी तो वह माधुरी भरी ही है।

सारिका बोल उठी—हे शुकराज! प्रिया का वैराग्य कैसा है, उनमें किस प्रकार का हर्ष उत्पन्न होता है, किस प्रकार का शोक होता है, उनमें अपने कुल के प्रति, लोक के प्रति, सम्मान के प्रति एवं कुल की मर्यादा के प्रति, किस

प्रकार की आसक्ति है, वासना है, उनमें प्रियतम के मिलन में बाधारूप किस प्रकार का भय आता है, उनके संकोच का क्या स्वरूप है, उनकी विकलता एवं उनकी कामना कैसी है, उनका मान उनका अपमान एवं तिरस्कार कैसा है, उनकी चुगली भी कैसी है, उनका तंग होना, सताया जाना किस प्रकार का है, इसे लौकिक बुद्धि समझ नहीं सकती।

हे शुक प्रिया के वैराग्य में इस प्रापंचिक जगत् की विरक्ति की गंध भी नहीं है। वह तो इतना रागमय वैराग्य है जिसकी कल्पना भी किसी को नहीं हो सकती इस प्रापंचिक विश्व का बड़े से बड़ा विरक्त भी जिनकी विरक्ति के एक परमाणु की छाया की छाया से विरक्ति का बोध कर रहा है, जहाँ सर्वथा निज सुख वाञ्छा विरहित हर्ष है, जिनका शोक भी त्रिभुवन के पावनतम अनन्त-अनन्त कल्याण का स्रोत है, जो शोक भी विश्व ब्रह्माण्ड का पवित्रतम परमाराध्य है, जिनके शोक में प्रियतम श्रीकृष्ण के अनन्त-अनन्त आनन्द का सार छिपा है, और जिनका कुल, रसराज एवं महाभाव का कुल है, अर्थात् वे स्वयं ही अपना कुल और उसकी मर्यादा हैं, न जिनका अन्य कुल है एवं न ही कोई मर्यादा, जिनका सब सम्मान अभिमान रहित है जिनकी सब वासना आसक्ति अतिशय निर्मल है, अनस्रोत पवित्र रस की ही जो उद्गम स्थली हैं, जिनकी आसक्ति और वासना से अविरत नित नूतन मिठास लेकर रसराज नित्य लोलुप हुए उछलते रहते हैं, वे महाभावमयी प्रिया मात्र धन्य हैं।

शुकराज, यह प्रिया के हृदय रूप रस निधि का अति सरस बाह्य लीला विलास मात्र है। भाव में जैसे-जैसे रस–कपाट लगे रहते हैं, इसी प्रकार प्रिया प्रियतम रूप लज्जा, प्रियतम स्वरूपशील, प्रियतम रूप ही धर्म कपाट, और प्रियतम रूप ही कुल सम्मान के कक्ष में बन्द रहती हैं।

शुकराज, यह सत्य, परम सत्य, मात्र सत्य है कि रस ही वह देश है जहां भाव रूप प्रिया रहती हैं। इसीलिये प्रिया सदा प्रियतम देश, कृष्ण देश है। रस ही वह काल है, जिसमें प्रिया का अस्तित्व प्रकाशित होता है, अतः प्रिया प्रियतम काल, कृष्ण काल है। रस ही प्रिया का जन्म है, रस ही प्रिया का मरण है, रस ही प्रिया का संरक्षण है, और रस ही घात है। इसलिये प्रियतम ही प्रिया का जन्म है, प्रियतम ही उनका मरण है, प्रियतम ही उनका संरक्षण है, और वे ही उनकी हानि–घात हैं। शुकराज ! प्रिया के अतिरिक्त, भाव सिन्धु के अतिरिक्त, कहीं कोई अन्यत्र है ही नहीं। मात्र भाव सिन्धु ही

भाव सिन्धु है। इसीलिये वे महामहा भाव सिन्धु हैं। यह भाव सिन्धु अपने में ही अपनी लीला कर रहा है। वही रसमयी है, वही रस तथा वही रसिक सिरमौर है। भाव रस-प्रकाश होने से प्रिया के सर्वस्व मात्र प्रियतम हैं। प्रिया के दुःख प्रियतम, सुख प्रियतम, उनका तम प्रियतम और प्रकाश भी प्रियतम हैं।

इसीलिये प्रिया का घोर से घोर दुाख इतना सुखमय है कि उसकी छाया की छाया के कण मात्र से सम्पूर्ण विश्व का अनन्त, अखण्ड, नित्य, आनन्द अस्तित्व पा रहा है। उनका तम इतना स्व प्रकाश है कि उसकी छाया की छाया के कण मात्र से सम्पूर्ण विश्व का अनन्त, अखण्ड नित्य प्रकाश अस्तित्व पा रहा है। इसी प्रकार प्रिया की हानि की छाया की छाया में समस्त ब्रह्मांडों का समस्त लाभ लहरा रहा है। और प्रिया के विलय की छाया की छाया से समस्त ब्रह्मांडों का नित्य उदय हो रहा है। प्रिया के काम से उसकी छाया की छाया से, अनन्त विश्व ब्रह्माण्ड प्रेमान्वित हो रहे हैं, प्रेम पल्लवित हो रहे हैं। प्रिया के क्रोध में ही अखिल विश्व ब्रह्माण्डों की अनन्तानन्त अखण्ड नित्य घन शान्ति समायी हुई है। प्रिया के लोभ की छाया की छाया से अखिल विश्व ब्रह्माण्डों को अनन्त–अनन्त त्याग की शिक्षा, अनन्त अकिंचनता की शिक्षा मिल रही है। प्रिया के मोह की छाया की छाया अनन्त–अनन्त विश्व ब्रह्माण्डों की सम्पूर्ण निर्मोहता की स्रष्टा है। उनके शोक के कण की छाया की छाया से सब अशोकता को प्राप्त कर रहे हैं। उनके दम्भ, दर्प एवं द्रोह के कण की छाया मात्र से सम्पूर्ण प्रपंच निर्दम्भता निर्दयता एवं निर्द्रोहता की शिक्षा ले रहा है। उनके अपमान की छाया से विश्व प्रपंच सम्पूर्ण रूप से सम्मानित है।

प्रिया के ग्रहण करने और उसकी छाया के कण मात्र से ही सम्पूर्ण विश्व प्रपंच के दान की, भूमिका का प्रारम्भ होता है। प्रिया की निन्दा की छाया के कण मात्र से समस्त स्तुति उद्भव हो रही है प्रिया के घोर विपकुण्ड की छाया का कण मात्र ही विश्व का मधुरतम अमृत उत्स है। प्रिया के पतन की छाया का कण ही समस्त उन्नतियों, परमातिपरम उन्नतियों का मूल है। उनकी अज्ञता का कण और उनकी छाया ही सम्पूर्ण पराज्ञान की चरम स्थिति है। उनके पाप की छाया का कण मात्र ही सम्पूर्ण पुण्य राशि की सत्ता है और उनकी अकिंचनता के कण से ही सम्पूर्ण परावैभव सत्तान्वित है। प्रिया की माया संबद्धता के कण की छाया मात्र से सम्पूर्ण नित्य सहज मुक्ति है और

प्रिया के दण्ड की छाया के कण मात्र से सम्पूर्ण विश्व प्रपंच का पुरस्कार सत्ता पाता है। प्रिया का तथाकथित कुलटात्व एवं उसकी छाया का कण मात्र ही सम्पूर्ण सतीत्व की उत्पत्ति भूमि है, उनकी कठोरता की छाया के कण से ही सम्पूर्ण मधुमय रस राग है।

तो शुकराज, उनका जो लोक है, उसकी छाया के छाया का कण ही सम्पूर्ण दृश्य की असत्ता का बोध कराने वाली वृत्ति का मूल है। अब तो बताओ उनके लोक के मान का क्या स्वरूप होगा और कुल की मर्यादा का क्या स्वरूप होगा? सब मात्र रति रूप रस समुद्र का लहराना है। सरसना है और कुछ नहीं है।

शुकराज, जब विशुद्ध रति का परिपाक होता है, तो यह रस परिपाक ही विघ्न बाधा का एक परमरसमय दृश्य निर्माण कर देता है। यह है भाव सिन्धु की अनन्त वेग से तरंगायित होने की मात्र पूर्व भूमिका ही, और उसी भाव सिन्धु का सिमट कर प्रगाढ़ होना ही प्रेमावृत्ति कहलाना है। और शुकराज यही प्रेमावृत्ति अपने उद्दाम रस-ताण्डव नर्त्तन से इन सब लज्जा, धर्म गुरुजन के सम्मान, शील, गृहमोह के शैलों को भूमिसात् करती जाती है और उस भूमि को भी थेई-थेई की पग पटकन से पाताल में धँसाकर उस रसमय पातालस्रोत का उद्भव करती है, जो सम्पूर्ण प्रेम भूमि को सरस, सरसतर, सरसतम करता जाता है, और यह सरसता ही इस प्रेम को स्नेह नाम से समलङ्कृत कर देती है।

हे शुकराज, यह प्रेमावृत्ति लोक के, कुल के, मान के, मर्यादा के, सम्पूर्ण शैल चकनाचूर कर देती है, सो बात भी नहीं है, वह तो स्वरूपतः सर्व बाधाविनिर्युक्त है क्योंकि इसमें स्वसुख-वासना का लेश ही नहीं है। यहाँ तो मात्र प्रियतमरूप रति के लिये सहज ही सम्पूर्ण हो गया है। लोक, परलोक, मान, मर्यादा, कुलशील, ये सब मात्र 'स्व' के ही तो पीछे हैं, जब 'स्व' ही नहीं मात्र प्रियतम रति ही है, जब प्रिया में और प्रियतम रति में कहीं कुछ भी भेद नहीं तो फिर किसी भी बाधा का बाधकत्व कैसे बाधित करेगा?

हे शुकराज! इसीलिये पल-पल में बढने वाली इस सदा सर्वदा प्रियतम सुखप्रद रति में उसके प्रगाढ़ भाव प्रेमावृत्ति में किसी भी बाधा को बाल भर भी स्थान नहीं है संयोगावस्था में प्रिया को जब प्रियतम रूप-माधुरी का प्रत्यक्ष दर्शन होता है, उस समय तो वे उनको अपने सामने प्रत्यक्ष निरखती रहती हैं ही, उनको हृदय से लगाकर अपने मन को परमानन्द सागर में डुबो

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri

देती हैं ही, परन्तु जब प्रियतम को वे देख नहीं पातीं, साथ ही प्रियतम का ऐसा रूखा व्यवहार पाती हैं जिसमें प्रेम भङ्गके प्रत्यक्ष हेतु रहते हैं, उस समय भी प्रिया की रति प्रिया के लिये विलक्षण अनुकूलता का सृजन कर देती है। प्रियतम प्रिया को त्यागकर दूर चले जाते हैं, वर्षों तक उनकी सुधि ही नहीं लेते। कोई प्रेम संवाद भी प्रेषित नहीं करते, यद्यपि उस समय विरहाग्नि की ज्वाला प्रिया को अत्यंत घोर संताप देने वाली होती है, उस ज्वाला से उनका रोम-रोम विरहाग्नि की तीव्रतम लपटों से जलने लगता है, उस समय भी उन ज्वाला की लपटों में से एक सुस्पर्श सुशीतल सुधा की ऐसी अजस्र धारा निकलती है, जो रति के वेग को भाव सागर को, पहले तो प्रतिसर्पित करती हैं, उसके पश्चात् वह रति रूप भावसागर तीव्रतम वेग से उमड़ता है एवं उस समय प्रियतम के स्मृति सुख की ऐसी सुस्पर्श सुशीतल सुधा धारा बहती है जो अपार आनंद की बाढ़ उपस्थित कर देती है। वह आन्तरिक रसास्वाद वह आन्तरिक सुमिलन, सम्पूर्ण बाधाओं को एक दम चूर-चूर कर देता है, और विरह वेदना की सम्पूर्ण अन्तर्ज्वाला बुझ जाती है उस समय सर्वत्र अमृतरस की अपरिमित धारा ही बहने लगती है। उस धारा से सब क्रन्दन एवं हाहाकार ऐसा मधुर सुख-रस का सागर बन जाता है, जिसका न यह छोर दिखता है न वह छोर। हे शुक, इस अपरिमित रतिरूप भाव-सागर का गंभीर होना ही प्रेमावृत्ति है और उसका सर्वत्र सुख-रस का सागर बन प्रवाहित होना ही उसका स्नेह में अति सरस पर्यवसान है।

हे शुकराज, यह निश्चय मानलो, न प्रिया नामक कोई आकार है, जिसका कोई भौतिक देह हो, जिसमें प्राण हों, जिसमें प्राकृतिक मन हो, बुद्धि हो, अहंकार हो। न ही प्रियतम कोई आकृति हैं जिनका कोई इदं इत्थं देह हो, प्राण हों, मन हों, बुद्धि हो, अहंकार हो। मात्र भावसिन्धु है। वह रसप्रकाश है, और उसका आस्वादन रतिरूप रस है। यह रति ही निर्गुण रस आनन्द में अनन्त-अनन्त सौन्दर्य का सृजन कर उन्हें रस सज्जा से सजाती है, यह रति ही निराकार रस, आनन्द को कृष्णाकार, प्रियतमाकार, सुन्दर शेखर, रसिकशेखर ललित तृभङ्ग रूप देती है। यह रति ही निर्विशेष आनन्द को, रस को, अनन्तानन्त वैशिष्ट्य से चमत्कृत करती है। यह रति ही उन्हें अनन्त-अनन्त करुणासागर बना देती है। इस रति से ही वे श्यामसुन्दर हैं, नन्दनंदन हैं, यशोदा नंदन, गोपीनायक, राधानायक हैं, कृष्ण हैं, प्रियतम हैं। और यह रति ही उन्हें,

असुन्दर, गुणविहीन, द्वेषी, मन-तन के काले, परमनिष्ठुर पैरों पर पड़ी हुई को कुचलने वाले, अदर्शन द्वारा मर्माहत करने वाले, लम्पट, सर्वस्व चोर, चित्त वित्त चोर, मनचोर तथाकथितजार बना देती है।

हे शुकराज, यह रति ही रस रूप विघ्नों को एवं अन्तरायों को खड़ी करती है। और रसरूप इन अत्यंत सुविशाल अन्तरायों के आने पर भी जब यह मधुर रति अभेद्य, अखण्ड, अक्षुण्ण, और अविचलित ही नहीं वरन् प्रेम स्नेह मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव रूप में उत्तरोत्तर विकसित होती हुई, उच्च से उच्च स्तर पर चढ़ती चली जाती है, तभी तो यथार्थ 'प्रेम' विलसित होता है। प्रेम सूर्य के प्रखर ताप से नवचित्र नवनीत के समान द्रवित हो जाता है, उस समय जो रस स्रोत का जो उद्वेलन होता है वह सरसना ही तो स्नेह है। और इस सरसने के पश्चात् ही तो वह अनन्तानन्त सागर रूप उत्कर्ष को प्राप्त होकर महाभाव रूप तक लहराता है।

हे शुकराज! श्रीराधा नित्य हैं, निर्गुण हैं, निर्विशेष हैं, निराकार हैं, अखण्ड हैं, अपरिच्छिन्न हैं, विभु हैं, अद्वितीय हैं, महाभाव हैं, और रसाधार हैं। प्रियतम श्रीकृष्ण भी नित्य निर्गुण, निर्विशेष, निराकार, अखण्ड, अपरिच्छिन्न, विभु, भूमा, अद्वितीय रसराज हैं और भावप्रकाश, भावविषय हैं। वे राधा भाव समुद्र में नित्य निमज्जित हैं, सरसित हैं।

यह महाभाव समुद्र नित्य लीलामय, परम प्रेममय, पूर्ण परमानन्द स्वरूप है। यह महाभाव रूप अनन्त अगाध उदधि रतिरूप ही है, और वह रति अतुल असमोर्ध्व दिव्यातिदिव्य अनन्त अप्राकृत सौन्दर्य, रस रूप में लहराती है, माधुर्य सौशील्य, सौगन्ध्य, आदि स्वरूप गुणों से सुशोभित है। इस रतिजन्य सौन्दर्य लेश की छाया की छाया से अनन्त अनङ्गों के सौन्दर्य का उद्भव, विकास एवं विस्तार है। इस रतिजन्य माधुर्य–लेश की छाया की छाया के कण से ही अनन्तानन्त विश्व ब्रह्माण्डों में अनादि काल से अनन्त काल तक नानाविध मधुरता की सत्ता रहेगी। इस रति जन्य सौशील्य की छाया की छाया के कण से ही अनन्त विश्व ब्रह्माण्डों में सुशीलता का आदर्श स्थिर है और उनके सुगन्ध की छाया की छाया के लेश स्पर्श से अनन्त विश्व ब्रह्माण्डों में परम आनन्दवर्धक विविध विचित्र सौरभ की सत्ता है। हे शुकराज, इस महासमर्था रति को ही श्रीराधा के विग्रह मानो। इसीलिये ये समस्त

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

सौन्दर्य, माधुर्य सौशील्य, और सौगन्ध्य की एक मात्र मूर्त्तिमान विग्रह है।

ये अपने नेत्रों की श्री से ही प्रियतम श्रीकृष्ण को परमातिपरम सुन्दर मधुर, सुशील और गन्धवाही बनाती हैं। प्रियतम का सब कुछ रूप, गुण आकार, चरित्र, शील, सौरभ, माधुर्य, लीला सब इन श्रीराधा की नेत्र श्री का ही प्रताप है। ये प्रियतम की वरद वल्लभा हैं। ये प्रेमानन्दमयी राधा ही श्रीकृष्ण के प्रेमस्वरूप की आधार हैं। ये महाभावमयी राधा ही रसराज के लिये भी परम लोभनीय हैं। 'प्रियतम रसराज को ये ही सदा लुब्ध रखती हैं। हे शुक, यह महाभाव ही नित्य दिव्य, नित्य मधुर, नित्य ओजस्वी, नित्य प्रसादादि गुणों का एकमात्र निधान हैं, यह अनन्त रस-सुसम्पन्न, अनन्त-रस-सुविभूषित, समस्त उज्ज्वलता का निधान है। इसीलिये हे शुकराज, महाभाव विग्रहा राधा ही रसराज प्रियतम प्रेमोद्यान की स्वर्ण केतकी हैं, वे ही रसराज-परमानन्द-ज्योति-सुधामय शशधर की दिव्य ज्योत्सना हैं, वे ही रस रूप लावण्य समुद्र की सार श्री हैं और रसमय वसन्त गर्व की हास्य सुषमा हैं, सम्पूर्ण रसमय दिव्य ललित कलाओं की अनन्त आकार हैं और समस्त सरस सद्गुण समूहरूप दिव्यातिदिव्य मणियों की अनन्त असीम खान हैं।

हे शुकराज, ये राधा नित्य अनादि होकर भी नित्य किशोरी हैं। इनमें यह कैशोर प्राकृतिक देह जनित वय जनित आकार नहीं है, वरन इनका महाभाव कैशोर है जिससे संयुक्ता ये किशोरी हैं। ये तन से गौरी होने के कारण गौरी नहीं है, ये अनन्तानन्त गौरी पार्वतियों की अपेक्षा भी अनन्तानन्त गुनी अधिक उत्कर्षमय सर्वश्रेष्ठ अनुपम चिन्मय रमण भाव से युक्त होने के नाते गौरी हैं। ये नित्य स्वतन्त्र असमोर्ध्व भाव सौन्दर्य, भाव माधुर्य की निधान होने के नाते ही सुन्दरी, सुरूपा सुमधुरा हैं। इसीलिये रसराज, प्रियतम, प्रेमानन्द घनविग्रह श्रीकृष्ण इनके लिये नित्य पिपासु और लालायित हैं।

हे शुकराज ! बताओ दुःख किसको कहते हैं और सुख किसको कहते हैं ? जो दुरित को प्रतिकूल वेदनीयं क्षय करने वाले फल का कारण है वही तो दुःख है और सुख भी सुकृत को क्षय करने वाला फल ही है। ये दुःख एवं सुख दोनों कर्मज हैं, दुष्कृत एवं सुकृत कर्मों के ही फल हैं। तब बोलो महाभाव रूपा प्रिया जो कर्म संस्पर्श शून्या हैं उनमें कौनसा दुष्कृत दुरितोदय है जिसका फल उन्हें दुःख होगा। यदि उनमें दुष्कृत-क्षय फल रूप दुःख एवं सुकृत क्षय

रूप सुख है, तब तो वे सर्वथा नश्वर, कर्म परवश, प्राकृत गुणों से आबद्ध विषय रस लुब्धा यथार्थ रस से सर्वथा शून्या हैं। कृमि, विष्ठा और भस्म ही जिस शरीर के परिणाम हैं, उस शरीर में ही तो दुःख सुख उदय हो सकते हैं। ऐसी कर्म शरीर वाली राधा के नामक भी अखण्ड, अभेद्य, नित्य, निरवद्य भगवत्स्वरूप चिन्मय रसराज कदापि नहीं हो सकते और न ही ऐसी कर्म शरीर वाली राधा की आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति ही सम्भव है जिसके लिये वे अपने नायक को 'दुःख मोचन' उपाधि देती हैं।

हे शुकराज, इस 'दुःखमोचन ' का क्या अर्थ है ? दुःख से आत्यन्तिक निवृत्ति तो मात्र मुक्ति में ही संभव है, जिसकी रस के साधक भक्त गण भी भक्ति पिपासु भी कभी वाञ्छा नहीं करते। इन रसिक भक्तों को यह मुक्ति यदि कोई दे तो वे उसे देने पर भी स्वीकार नहीं करते। भागवतलोकादि की प्राप्तिरूप प्रेम सेवोत्तरा मुक्ति को स्वीकार करना भी अपने प्रेम में कलङ्क ही मानते हैं। वे भक्त सदा यह कहते हैं कि इस पवित्र भगवत्प्रेमरूप परम धर्म में किसी प्रकार के भी मोक्ष की अभिसंधि रखना कैतव (कपट) है। क्योंकि मुक्ति में भी 'स्व' को दुःखमुक्त बन्धन, मुक्त करने की इच्छा के रूप में स्वसुख वासना ही तो रहती है जो इस पवित्र प्रेम के क्षेत्र से सर्वथा बहिष्कृत है। हे शुकराज ! विशुद्ध दिव्य रस से अनभिज्ञ ही निर्वाण रूप निम्बफल चूसते हैं। प्रियतम नामक रस तत्व को जानने वाले हम लोग तो अप्राकृत भावावेश में मन्थर गति से चलती हुई प्रिया के नेत्र रूपि अञ्जलि के द्वारा पान करते समय गिरे हुए उच्छिष्ट प्रियतमामृत का ही पान करेंगे।

हे शुकराज ! 'दुःख मोचन' तो किसी का कोई ऐश्वर्य सम्पन्न प्रियतम ही करेगा न ? जहाँ प्रिया प्रियतम की मधुरतम प्रिया वृत्ति से सेवा करती हैं वहाँ तो प्रतिपल प्रिया ही प्रियतम का दुःख मुक्त करती हैं। उन्हें सुखी करती हैं।

प्रियतम श्रीकृष्ण का ऐश्वर्य ज्ञान प्रिया के गोप सुन्दरियों के एवं हम सबके देहातीत प्रेम को किसी काल में किञ्चित् भी स्पर्श नहीं कर सकता। प्रिया तो अपना सारा प्रेम, अपनी सारी ममता, प्रियतम को समर्पित कर प्रियतम सुख के लिये ही अपने प्रियतम का सेवन करती हैं। न वे किसी भी ऐश्वर्य को जानती हैं, न ही मानती हैं, न उसे देखने की कभी उनमें इच्छा ही जागती है। उन्हें अपने प्रियतम के अनन्तानन्त ऐश्वर्य की कोई स्मृति ही नहीं है। और

प्रियतम स्वयं भी अपनी प्रिया के सम्मुख ऐश्वर्य का किञ्चित् भी प्रकाश नहीं कर सकते। प्रियतम का सब वैभव, ऐश्वर्य उनके लिये तो मात्र उनका प्रियतमत्व ही रहता है।

हे शुक, एक अत्यन्त मधुर लीला का आस्वादन करो—और इतना कहते ही शुक एवं सारिका दोनों एक अभिनव लीला माधुरी में डूब गये—

"वसन्तकाल है। प्रिया प्रियतम गोवर्धन पर समस्त गोप सुन्दरियों के साथ रास विहार कर रहे हैं। सहसा प्रियतम के मन में प्रिया के साथ एकान्त रमण की स्वरूपमयी स्फुरणा होती है। वे प्रिया को अपना अभिप्राय संकेत करते हैं और रासस्थली से सहसा अन्तर्धान हो जाते हैं वे एक निभृत निकुंज में जाकर प्रिया की प्रतीक्षा करने लगते हैं। गोपियाँ प्रियतम को आकुल होकर ढूंढने लगती हैं। ढूंढते-ढूंढ़ते गोपाङ्गनाएँ उसी निकुञ्ज में आजाती हैं, जिसमें प्रियतम अवस्थित रहते हैं। अब तो उन्हें एक कुंज में प्रियतम श्रीकृष्ण बैठे दिखायी दे जाते हैं। गोपाङ्गनाएँ इतनी निकट आजाती हैं कि प्रियतम को दूसरे कुञ्जमें जाकर छुपने का भी अवकाश नहीं रहता है। प्रियतम एक चाल चलते हैं और अपने स्वरूप को चतुर्भुज रूप में प्रकट कर देते हैं। जब गोपाङ्गनाएँ वहाँ पहुचती हैं और कुञ्ज में अपने प्राणवल्लभ नवीन नीरद कान्ति द्विभुज मुरलीमनोहर के स्थान पर चतुर्भुज नारायण को देखती हैं तो संकुचित हो जाती हैं। उनका कान्ता भाव तो विलुप्त हो जाता है और वे श्रीनारायण की स्तुति विनती कर उनसे अपने प्रियतम की मंगलकामना करने लगती हैं। वे अपने प्रियतम को ढूंढने पुनः दूसरे निकुंज की ओर चली जाती हैं।

"इसके पश्चात् पूर्व संकेतानुसार प्रिया पहुँचती हैं। प्रियतम निर्विघ्न एवं निर्बाध एकान्त में प्रिया को देखकर प्रफुल्लित हो जाते हैं। वे सोचने लगते हैं कि क्यों न अपने चार हाथों वाले रूप के सहित ही प्रिया से विनोद करूँ? प्रियतम विनोदी तो हैं ही। परन्तु यह कैसा आश्चर्य है? प्रियतम की सम्पूर्ण भगवत्ता ऐश्वर्य सत्ता किनारा कर जाती है प्रिया के सम्मुख। प्रियतम का संकल्प अपूर्ण ही रह जाता है कि वे चतुर्भुज रूप में बने रहें। वे विवश हो जाते हैं चतुर्भुज रहने का प्रचुर प्रयास भी वे करते हैं पर ज्यों-ज्यों प्रिया समीप आती हैं प्रिया की दृष्टि उन पर पड़े उसके पूर्व ही उनके दोनों हाथ अन्तर्धान हो जाते हैं और वे पूर्ववत् द्विभुज हो जाते हैं।"

सारिका बोल उठती है—हे शुकराज ! महा भावस्वरूपा प्रिया का प्रेम चमत्कार देखा ? उनके सामने भगवानों के भगवान श्रीकृष्ण की ऐश्वर्य शक्ति का दिवाला निकल जाता है। जो ऐश्वर्य-शक्ति गोप सुन्दरियों के सम्मुख टिकी रही वह प्रिया के अत्यंत प्रबल भाव के सम्मुख तत्क्षण विलुप्त हो गयी। जैसे करोड़ो सूर्यों के उदय होने पर सामान्य जुगनू का कहीं भी पता नहीं लगता वैसे ही प्रिया के माधुर्य पूर्ण-प्रेम के सामने तत्काल ही ऐश्वर्य का अस्तित्व विलुप्त हो जाता है। हे शुकराज ! तुम तो पंडित हो, प्राकृतिक दुःख सुख सर्वथा मिथ्या असत् भ्रान्ति जन्य ही तो हैं जिन प्रिया के सम्मुख जब प्रियतम श्रीकृष्ण का सत्स्वरूप, नित्य, स्वरूपभूत, स्व प्रकाश कर्त्तुम् अकर्त्तुम् अन्यथा कर्त्तुम्-समर्थ ऐश्वर्य भी विलुप्त हो जाता है-उन प्रिया के सम्मुख किसी भ्रान्त माया का अस्तित्व ही कैसे रह सकता है। हे शुकराज ! प्रिया के लिये तो सर्वत्र वेणुकर धारी गोपवेश नवलकिशोर नटवर प्रियतम के सिवा अन्य किसी न सुख की सत्ता है और न ही दुःख की। फिर स्वाभाविक प्रश्न होता है कि यह दुःखमोचन किस भाव का वाची है ?

हे शुकराज ! यह दार्शनिक सत्य है कि प्राकृतिक जगत् में जहाँ भी मिलन है, वहां अमिलन है ही। प्रत्येक संयोग अपनी विपरीत स्थिति वियोग को भी साथ ही साथ सत्ता दिये ही है। सत्य स्वयं किसी असत्य को उसकी उपस्थिति को प्रकाशित कर ही रहा है अनुकूलता और प्रतिकूलता, ज्ञान और अज्ञान, चेतन और जड़, बंधन एवं मुक्ति, सब भाव अपने अभाव की अपेक्षा में ही प्रकाशित होते हैं।

फिर यह महाभाव राज्य भी क्या अभाव निषेध की अपेक्षा से युक्त भाव है क्या ? अगर इस महाभाव राज्य में भी महा अभाव की सत्ता स्वयं प्रकट हो जायेगी तब तो फिर सब आनन्द ही दुःख के भय से, दुःख के आगमन की आशंका से दुःख रूप हो जायगा। हे शुकराज, यदि कोई भी ज्ञान सदा अज्ञान का निषेध ही करता रहे तो वह ज्ञान कहाँ है ? यदि सदा सुख दुःख के अभाव को ही प्रकाश देता रहेगा तो वह दुःख सापेक्ष ही तो हो जायेगा। सदा मुक्ति बंधन का ही निषेध करती रहेगी तब वह नेति नेति ही मुक्ति होगी सर्वत्र सत्ता तो बंधन की ही बनी रहेगी। हे शुकराज, सम्पूर्ण वेदब्रह्म का निर्वचन इसीलिये नहीं कर सके क्योंकि वे प्रकृति का निरसन करते-करते ही निरसन

में ही विलीन हो गये। निरसन से अतीत अभाव से अतीत भाव को प्रकाशित कर ही नहीं सके। तब तो बताओ शुकराज दुःख मुक्ति कहाँ हुई ? दुःख मोचन कहाँ हुआ ? हे शुकराज ! प्रिया कमलदललोचन नेत्रों को देखकर यही अनुभव कर रही हैं कि इन कमल जैसे नेत्रों से निकलनेवाला जो प्रेम है वह सर्वथा-सर्वथा विशुद्ध है वह पूर्णतया निरपेक्ष है। वह किसी भी अपने अभाव रूप वैपरीत्य कृष्णाभाव का निषेध प्रेम नहीं है। अतः अवश्य ही ये प्रियतम के, व्रजराज किशोर के कमलदलनेत्र ही सच्चे दुःख मोचक हैं। जब संयोग में प्रतिक्षण वियोग का भय बना ही रहा, तब संयोग का अखंड, नित्य, अभेद्य, निरवद्य सुख कहाँ रहा ? इसी प्रकार सुख के नाश और दुःख की संभावना भी जहाँ है, वहाँ वह दुःखमय सुख को अखंड, नित्य, अभेद्य कहाँ रहने देगा ? दुःख की संभावना सुख को छिन्न-भिन्न तो कर ही रही है न, दुःख की संभावना की आशंका सुख अनन्त, अखंड, नित्य तो नहीं है—और जो अनित्य सुख है, जो अनित्य संयोग है, वह सुख है ही नहीं। संयोग है ही नहीं सत्ता तो वहाँ दुःख की ही है, वियोग की ही है, सुख तो मात्र एक दुःख से नये दुःख की करवट मात्र है। संयोग तो एक वियोग से दूसरे वियोग के बीच की एक अवधि मात्र है।

तो शुकराज ! प्रियतम के ये कमलदल-लोचन एवं उनका प्रेम ही ऐसा है जो निरपेक्ष प्रेम है। वह किसी भी गुण की, भाव की अपेक्षा नहीं रखता। इन नयनों के प्रेम में प्रिया सुख के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसीलिये वह निर्मल है, विशुद्ध है। यह प्रेम नित्य है, अखंड है, अनन्त है अस्तु, यह शाश्वत दुःख निवर्त्तक सुखदायक है, नित्य संयोगदायक है, अखंड भावात्मक है, अनन्त रसात्मक है। अतः इन नेत्रों के प्रेममिलन में रति रूप प्रिया स्वरूपतः परम शीतल आत्यंतिक सुखमय, आत्यान्तिक संयुक्त हो गई हैं। जैसे जल जब द्रव्यरूप में होता है तो उसमें अवकाश की संभावना है। परन्तु जब वह जमकर घन हो जाता है तो फिर किसी भी प्रकार खंडित नहीं होता, जल ही जल हो जाता है। इसी प्रकार इन प्रियतम के कमलदल-लोचनों के प्रेम में मिलनानन्द की ऐसी शीतलता अखण्ड, नित्य, अभेद्य शीतलता की धारा प्रिया को प्राप्त होती है कि उनका तरल प्रेम जो 'स्नेह' भावधारा में सरस रहा था अब जमकर घन प्रगाढ हो रहा है। शुकराज ! मिलनानन्द में मुग्ध, महान् मोद से प्रमुदित आत्यंतिक मोद में, माधुर्य में, आनन्द में, सुख में विभोर प्रिया केवल माधुर्यमयी घन माधुर्यमयी हो गयी हैं।

हे शुकराज ! स्नेह भाव का इस प्रकार घनीभूत होना ही उसका प्रणय में रूपान्तर है। परन्तु इसके पूर्व रसस्नेह और प्रणय के संधिकाल में ही प्रिया में,प्रियतम दोनों में एक रसमय कौटिल्य प्रकाश होता है और उसे मान कहते हैं। शुकराज, प्रिया का 'स्नेह' प्रगाढ़ हो किस प्रकार 'मान' भाव में विकास पारहा है, इसे गंभीर होकर सुनो। स्नेह और प्रणय इन दो वरिष्ठ भावों के बीच में संधिकाल में ही इस मान की स्थिति है। इसकी उत्पत्ति संयोग में भी होती है और विप्रलंभ में भी होती है। हे शुकराज ! इस मान की रस-शास्त्रों में अनेक कोटि हैं। परन्तु इस मान की वाक्यता में दो ही भाव मूलरूप से क्रियाशील रहते हैं (१) स्नेह जनित अनिष्ट का भय एवं (२) प्रणय जनित अति उत्कृष्ट मदीयता। यह प्रणय जनित अति उत्कृष्ट मदीयता ही महाभावगत दैन्य में परिवर्तित हो स्वयं में दोषों की स्फूरणा कराती है और मेरे प्रियतम सुख पावें, वे मुझ से विरक्त हो जावें, और मुझ से विरक्ति करके अन्य रमणी गणों के प्रति आकृष्ट हों, एतदर्थ मैं उनसे अति वामाचरण करूँ वक्र होऊँ–आदि भावोदय कराती हैं जो मान के हेतु हैं।

इसी प्रकार स्नेह जनित अनिष्ट आशंका में भी अपने प्रियतम के प्रति आत्यन्तिक स्नेहोदय और स्वयं में आत्यन्तिक दोष बुद्धि ही बनी रहती है। हे शुक ! प्रिया के मुख से निकली ये पंक्तिया इस महा भावगत दैन्य का कैसा प्रकाश कर रही है:–

पर मैं अति गँवार ग्वालिन गुण रहित कलंकी सदा कुरूप।
तुम नागर गुण आगर अतिशय, कुल भूषण सौन्दर्य सुरूप ॥

शुकराज ! यह महा भावगत दैन्य प्रियतम सुख वृत्ति से भरकर सम्पूर्ण मानगत कौटिल्य का किस प्रकार सृजन कर रहा है, इसे अब अपने हृदय में स्वयं अनुभव करो। और सारिका के इस कथन के साथ ही एक अभिनव सुन्दर दृश्य शुक के सम्मुख स्फूर्त हो उठता है। दोनों शुक एवं सारिका का चिदाकाश प्रिया के चिदाकाश से एकात्म्य हो जाता है और वे अनुभव करने लगते हैं :–

"मध्यातन काल है। प्रिया गिरिराज परिसर में कुंज विहारार्थ आई है। प्रियतम ने संकेत द्वारा 'गोविन्द स्थल' ही तो कहा था। अतः प्रिया गोविन्दकुण्ड के समीप इस कुंज में बैठी प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही है। प्रियतम के चिन्तन

मात्र से ही प्रिया का हृदय अत्यन्त मसृण हो प्रवाहित सा हो रहा है उन्हें अनुभव हो रहा है मानों चित्त है ही नहीं। वन, उपवन, नद, नदी जैसे सरस हैं उसी तरह सरसित प्रिया प्रियतम स्मृति में विलीन होती जा रही हैं। अहा, प्रिया की सघन कुन्तलराशि जैसे है ही नहीं, मानों स्नेहिल, सजल, घने मेघ ही अपने कृष्णांचल उड़ा रहे हों। मुखचन्द्र पर बिखरी हुई अलकावली की लटें, ये विशाल नेत्र, यह मृदु वाणी, ये मधुस्रावी अधर युग्म, ललित वदनारविन्द, यह चंचल भ्रूभंगिमा, महामयी प्रिया को जो निहारे वही जान सकता है कि प्रिया का सम्पूर्ण सौन्दर्य किस प्रकार सरसित हो बहने लगता है प्रियतम स्मृति के प्रगाढ होने पर। प्रिया के रोम-रोम से मानों आनन्द झर रहा है। प्रियतम रूप-छवि तो प्रिया के नयनों में नित्य भरी रहती हैं परन्तु न जाने इस छवि के साथ ही साथ प्रिया के हृदय में इतना परमानन्द कहाँ से आ जाता है? कौन उत्तर दे? "ये अनन्त सुन्दर मेरे प्रियतम हैं, ये मेरे रमण हैं, ये मेरे प्राणवल्लभ हैं। ये तन, मन, धन, यौवन सब मुझे अर्पित कर चुके हैं। मेरा ही सुख साध रहे हैं। इनका धर्म मैं हूँ, इनका लोक मात्र मैं ही हूँ, इनकी स्वजन भी मैं ही हूं ये सब प्रकार से मेरे हैं। इनका सर्वस्व मेरा है। अहा ये रसमय किस प्रकार आतुरता से मेरा मुख जोह रहे हैं। सोचते-सोचते प्रिया का तन स्वेद से पसीज जाता है। हृदय के सरस आनन्द ने जैसे सब अंगो को गीला कर दिया हो—नेत्र झर रहे हैं, नख से लेकर शिखा तक सब पसीज गया है. मन, बुद्धि, चित्त सब प्रियतम प्रेम रस में एकदम मसृण होकर बस प्रवाहित है।

"यह प्रवाह भी दो प्रकार का है। एक नवनीत की तरह और दूसरा मधु की तरह। नवनीत शर्करा के संयोग से सुमिष्ट होता है, एवं मधु स्वाभाविक प्रत्येक परिस्थिति में सुमिष्ट। इसी प्रकार प्रियतम आदर दें, सम्मान दें, तब स्नेह मधुर आस्वादनमय होकर प्रवाहित हो, वह तो घृत स्नेह है। क्योंकि उसमें प्रियतम के मधुर अनुकूल व्यवहार रूपी शर्करा के संयोग की अपेक्षा है। परन्तु प्रिया कुंज में प्रतीक्षा कर रही हैं, वे कुंज में दूसरे पहर के प्रारंभ में आई थीं, और अब तीसरा पहर प्रारंभ होने जा रहा है, चार घटिका बीत गयी, फिर न प्रियतम आये, न कोई संदेशा भेजा इतने विपरीत व्यवहार के उपरान्त भी जो स्नेह तनिक भी न घट कर प्रतिपल बढ ही रहा है, और प्रियतम की स्मृति में हृदय को अत्यंत शीतल करता हुआ कभी प्रगाढ हो जाता है, कभी तरल इस प्रकार उछल रहा है वह तो मधु स्नेह ही है। यह स्नेह स्वरूपतः मधुर है। इस

स्नेह में प्रियतम के वाह्य अनुकूल व्यवहार की तनिक भी अपेक्षा नही है।"

प्रिया सोच रही हैं :- "प्रियतम तो मेरे हैं, वे मेरी उपेक्षा कर ही नहीं सकते फिर यह विलम्ब क्यों हो रहा है"- बस, इस विचार के साथ ही प्रिया में स्नेह जनित अनिष्ट आशंका का उदय हो आता है - और प्रिया सखियों के मना करने पर भी कुंज के बाहर आ जाती हैं। वे बाहर आकर देखती हैं यहाँ तो सर्वत्र भीषण ग्रीष्म ऋतु के कारण लू चल रही है। उन्हें अब तक कुञ्ज की शीतलता के कारण इस लू का पता ही नहीं चला था। अब तो प्रिया का हृदय अत्यंत परिताप से भर जाता है। महाभावगत दैन्य हृदय में छा जाता है। अपने भीतर अनन्त दोष ही दोष दिखाई पड़ने लगते हैं। वे सोचने लगती हैं "हाय, हाय ! मैं कैसी महा गंवार हूँ ?" इस निदाघ की मध्याह्न बेला में चिल चिलाती धूप में मैंने प्रियतम को अपने सुख के लिये यहाँ बुलाया। मेरे पाप का तो अन्त ही नहीं है। महास्वार्थरूप कलंक से भरा है समग्र जीवन मेरा। कैसी कुरूपता है मुझ में देह तो मन के सुन्दर होने से ही सुरूप होती है। जब मन में इतनी मलिनता इतनी स्वार्थ पूर्ण कर्कशता भरी है, तो क्या उसकी छाया मेरे देह पर नहीं आवेगी ? निश्चय ही मेरी सर्वाकृति अत्यंत घृणित एवं कुरूप है।"

पर मैं अति गंवार ग्वालिन गुण रहित कलंकी सदा कुरूप।
तुम नागर गुण आगर अतिशय कुल भूषण सौन्दर्य सुरूप ।।

"वे मेरे प्रियतम सच्चे अंश में नागर हैं। वे मेरे प्रेम के लिये बड़े से बड़ा त्याग करने को सदा प्रस्तुत रहते हैं। उन्हे मेरे प्रेम में अपने कष्ट का अनुभव ही नहीं होता। वे तो जाग्रत में, स्वप्न में, सुषुप्ति में और तुरीया में चारों अवस्थाओं में ही सदा मुझ से प्रेम ही प्रेम करते हैं। वे प्रेम गुणों के मूर्तिमान रूप हैं। अनन्त प्रेम है उनमें। उनका कुल ही प्रेमावतार है। तभी तो वे अपने कुल के भूषण हैं। वे अपनी कुल-परम्परा के अनुसार प्रेम गुणों से ही भूषित हैं। प्रेम ही उनका अप्रतिम सौन्दर्य है, और इसी सुन्दरता से वे सदा सुरूप हैं। वे रस स्वरूप हैं। विशुद्ध प्रेम रस ही तो सच्चा सौन्दर्य है। वे रसलीन हैं, रसरत हैं, रसिक हैं, रस ही रस है उनमें।"

प्रिया ने तुरन्त एक सखी को प्रियतम को निषेध करने के लिये भेज दिया कि अब वे कुंज में नहीं आवें। परन्तु प्रियतम ने प्रिया की बात अति

प्रेमवश नहीं मानी और वे चले आये। अपनी प्रिया को प्रेम चकित कर देने के लिये उन्होंने कुंज के बाहर से ही वंशी ध्वनि छेड़ दी। ज्योंही प्रिया ने वंशी ध्वनि सुनी उन्होंने अपनी सखी को बुलाया सखी ने उत्तर दिया कि मेरे निषेध करने पर भी प्रियतम माने नहीं। प्रिया के मन में सखि का यह उत्तर सुनते ही एक अपूर्व रसमय दाह उत्पन्न हो जाता है। वे सोचने लगती हैं :– मेरे प्रियतम में मेरे प्रति बहुत अधिक मोह पैदा हो रहा है। इसी मोहवश वे अपने इष्ट अनिष्ट का भी ध्यान नहीं करते। अवश्य ही भविष्य में इसके भीषण परिणाम हो सकते हैं। यह मोह तो उनके लोक–परलोक दोनों के सुख का नाश कर सकता है। निश्चय ही मैं पूर्णतया अमंगल रूप हूँ। मुझे प्रियतम की अवहेलना करनी चाहिये। उनकी इस बढती मोह भावनाओं को अत्यन्त निर्मम हो मुझे कुचल देना चाहिये, उनका अनादर करना चाहिये, उन्हें उनके इस हानिकर मोह के लिये उत्साहित कदापि नहीं करना चाहिये। यह उनके लिये किसी भी प्रकार श्रेयस्कर नहीं, सुखकर नहीं, आनन्द दायक नहीं। "और यह सोचते-सोचते प्रिया में अति उत्कट मानोदय हो जाता है।"

प्रिया में कैसा सुमधुर स्नेहोत्तर मान भाव व्यक्त हो रहा है? मान भाव-भावित प्रिया का कैसा सुन्दर चित्र है? अब तक जिनके हृदय में अनन्त अनन्त आनन्द का समुद्र लहराता रहता है, वे अब ऊपर से विषण्ण वदना हो गयी हैं। उनका मुख मण्डल अति म्लान हो रहा है। जिनके अन्तस्तल में अनन्त विश्व ब्रह्माण्डों को रस स्नान कराने वाला रसमय कृष्ण नाद हो रहा है, एवं जिनके हृत्तल के सब कोनों में प्रियतम की मधुरातिमधुर सर्वमन मनोहारी मुसकान भरी है, वे ऊपर से तनी जा रही हैं, अत्यन्त ही विषाद की सुमूर्ति बनी, दुःख की खान बन कर बैठी हैं। जिनके अन्तःकरण में मधुप्रवाही अनन्त-अनन्त सुशीलता के रसस्रोत फूट रहे हैं, वे ऊपर से क्रोध प्रकाश कर रही हैं। जिनका एक-एक पल भी प्रियतम संयोग से युक्त है वे 'प्रियतम को कुंज में प्रवेश मत करने दो' ऐसा निर्देश कर रही हैं। जिनका हृदय सदा प्रेमामृत से भरकर छलकता रहता है, वे मानों प्रेम से शून्य हों ऐसी कठोर मुद्रा धारण किए बैठी हैं। जिनका हृदय चिन्मय सरस स्नेह से पूर्ण रूप से भरा है, जिनके देह में सदा प्रियतम प्रेम छवि का समुद्र ही लहरा रहा है, मान जन्य विषाद ने उनके उस स्वरूप को और समलङ्कृत ही कर दिया है। अनन्तानन्त सुन्दर प्रियतम श्यामसुन्दर जिनके रोम-रोम में सत्य-सत्य पूर्ण रूप से भरे हैं, इसीलिए

जो श्यामा कहलाती हैं, उन प्रिया के रोम-रोम का सौन्दर्य रोष–नाट्य करने पर कितना लावण्यमय हो उठा है। लावण्य किसको कहते हैं ? जिसमें किंचित् लवणता हो तभी तो वह लावण्य होता है तो अत्यन्त मधुरता का सागर प्रिया का विशाल हृदय, दया से नित्य आपूरित उनका मधुर चित्त, कृपा की निलय उनकी बुद्धि, जो प्रतिक्षण मात्र कृपा ही कृपा वर्षा करती रहती है, अनन्त-अनन्त अपराधों को जिनका चित्त कभी अपने अन्दर रेखाङ्कित भी नहीं करता, वे प्रिया प्रियतम की अपने प्रति की हुई अवज्ञा न सहकर कोप से लवणता युक्त हो रही हैं, इस लवणता से उनका भाव माधुर्य कैसा निखर उठा है ? जिनकी सुमधुर वचनावली सदा रसामृत की ही वर्षा करती रहती है जिनके अधरों में चिन्मय रससुधा का सदा वास है, एवं जिनकी अधरामृत संस्पृष्ट वाणी से ही अनन्तानन्त विश्व ब्रह्माण्डों में माधुर्य की सत्ता है, जो वाणी माधुर्यामृत की निर्झरिणी है, वे रसामृत स्रावी प्रिया के अधर–दंशित हो रहे हैं, और उनकी वाणी में रोष भरा है। जो फुल्लकमलमुख, मधुर चिबुक, सदा मधुरातिमधुर हास छटा से आलोकित रहता है, जो मधुरातिमधुर दसनावली सदा सुषमा सरसाती रहती है, वही विषाद और कोप से मलिन हो रही हैं। प्रिया के कपोलों का सब शृंगार अश्रुधारा से बह गया है। उनके नयनों का काजल बहकर इतस्ततः मुख को मलिन कर रहा है। श्रवणों में न कर्ण भूषण हैं, न नासिका में मुक्ता। मधुर झनकार करने वाले नूपुर और कटि-किंकिणी भी प्रिया ने उतार दी है। ललितादि सखियों द्वारा प्रिया के अंगो में की गई प्रेम चित्र रचना जो प्रियतम को अति प्रिय लगती है–प्रिया ने पोंछ कर धो डाली है।

प्रियतम प्रेमरूप पद्मों द्वारा निर्मित वह पद्महार जिसे प्रियतम ने अपने हाथों रचकर प्रिया को समर्पित किया था तथा जिसे प्रिया कभी एक क्षण के लिये भी अपने हृदय देश से पृथक् नहीं करती हैं, आज उनके द्वारा अपने हृदय देश से उतार दिया गया है। अलङ्कारों की तो बात ही क्या आज तो प्रिया ने अपनी श्याम साड़ी उतार कर फेंक दी है, और रोष मुद्रा प्रकट करने वाली कसूंभी रंग की लाल साड़ी अंगों पर पहन ली है। उनका अंग-अंग रोष उद्दीप्त है। वे दीर्घ श्वास–प्रश्वास ले रही हैं। अपनी हथेली में मुख को टेक कर, नयन मूंद कर चुप चाप बैठी हैं।

परन्तु यह सब रोष मात्र ऊपरी ही है। प्रियतम की मधुरातिमधुर

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

स्मृति उनके हृदय में पूर्ण-पूर्ण आपूरित है। प्रिया द्वारा यह अपने प्रियतम का त्याग भी प्रियतम सुखस्पृहार्थ ही है।

प्रियतम खड़े हैं। अनन्तानन्त रसैश्वर्य लेकर वे प्रिया के चरणों में लुट पड़ने को आतुर हैं। केवल प्रिया का संकेत भर हो जाय, वे अपना अनन्तानन्त रस भोग ऐसा सरस विलास जिसके सम्मुख कैवल्यमोक्ष तुच्छातितुच्छ है, न्यौछावर करने को तत्पर हैं।

प्रिया की अपने अनन्तानन्त रस सदन प्रियतम की ओर दृष्टि ही नहीं है। छवि समुद्र प्रियतम मुखारविन्द के प्रति लालसान्वित होना तो दूर रहा, वे तो अपने प्रियतम का तिरस्कार कर रही हैं। और वे रसनिकेत प्रियतम प्रिया के रोष से इतने डर गये हैं कि वे अपनी प्रिया के चरण रज का भी स्पर्श करने का साहस नहीं कर रहे हैं।

सारिका बोल उठी—हे शुक, प्रेम का आधार त्याग ही है। परन्तु त्याग भी किसी अन्य अपेक्षा से युक्त नहीं। सापेक्ष त्याग-त्याग कहाँ है? यदि त्याग से मोक्ष मिलने की इच्छा है, मोक्ष भोगार्थ त्याग है तो वह सच्चा त्याग नहीं है। वह तो भोग ही है क्योंकि उस त्याग का विक्रय भोगार्थ है। ऋषि, मुनि, शिव सनकादिक सब त्याग करते हैं, "तप बल शंभु करहिं संहारा, तप बल शेष धरहिं महि भारा।" तप त्याग ही है, परन्तु यह सब तप एवं त्याग सापेक्ष ही है। यह त्याग किसी महत्पद, महत्स्थिति, महत्प्राप्ति के ही लिये है। हे शुकराज! जगत् के भोगासक्त, विषयी लोग मोक्ष का परित्याग कर देते हैं, परन्तु वे श्रीकृष्ण का परित्याग नहीं कर सकते। श्रीकृष्ण का असमोर्ध्व रूप सौन्दर्य, उनकी लीला माधुरी, उनकी वेणु माधुरी, उनकी प्रेम माधुरी इतनी आकर्षक है कि वह शुकदेवादि महाज्ञानियों के त्याग को भी विध्वंस कर देती हैं। परन्तु प्रिया के सर्व निरपेक्ष त्याग का कैसा स्वरूप सर्व माधुर्य धुरीण प्रियतम को देखती तक नहीं। प्रियतम सर्व कला चातुरी से प्रिया के कानों में किसी प्रकार अपनी वेणु ध्वनि प्रवेश कराना चाह रहे हैं, परन्तु प्रिया ने ऐसे कान मूंदे हैं कि उनकी वेणु ध्वनि उनके कानों के विवरों में प्रवेश ही नहीं कर पा रही। प्रियतम हार जाते हैं, और अपनी वेणु रख देते हैं प्रिया के चरणों में।

किन्तु कैसी त्यागोन्मादिनी हैं प्रिया, वे वंशी की ओर से भी अपनी दृष्टि हटा लेती हैं। चकोर के नेत्र जैसे चन्द्रमा की ओर लगे रहते हैं, उसी

प्रकार प्रियतम श्रीकृष्ण के नेत्र प्रिया की रूप माधुरी पर लगे हैं। जैसे चातक अनन्य निष्ठा से मात्र मेघ को ही निहारता है, उसी प्रकार असीम सौन्दर्य-माधुर्य के सागर, अनुपम परमानन्द के धाम प्रियतम अनन्य निष्ठा से प्रिया मुख को जोह रहे हैं, पर प्रिया नेत्र मूँद कर प्रियतम प्रति पूर्ण विरक्त हैं।

जिस अपनी रूपमाधुरी को किसी मणि की दीवाल में या दर्पण में प्रतिबिंबित देखकर श्रीकृष्ण स्वयं आश्चर्य के साथ कहने लगते हैं– "कैसी श्रेष्ठ मधुर और चमत्कारी है यह माधुरी, जिसे देखकर स्वयं मेरा चित्त लुब्ध हो गया है," उस माधुरी का जादू प्रिया के चित्त पर प्रयत्न करने पर भी नहीं हो रहा है। परम चिन्मय सौन्दर्य रस सुधा समुद्र की तरङ्गों से जो ललनाओं के चित्तरूप पर्वत को पूर्ण रूप से प्लावित कर देते हैं, जिनके चिन्मय परिहास पूर्ण मनोहर रसमय सुवचन कर्ण कुहरों को आनन्द से परिपूर्ण कर देते हैं, जिनके रस भी अङ्ग कोटि-कोटि शरदिन्दु की ज्योत्स्ना के सदृश शीतल हैं, जिनका परम चिन्मय अधरामृत साक्षात् दिव्यातिदिव्य पीयूष है, जिनके अधरों के सौरभ रूप सुधा समुद्र से अनन्त-अनन्त विश्व ब्रह्माण्ड सम्प्लावित है जो बड़े से धीरों के धैर्य को ध्वस्त कर देते हैं, जिनके दर्शन मात्र से बुद्धि लुप्त हो जाती है जो ज्ञान वैराग्य द्वारा मिटे हुए नाम रूपों को पुनः जीवित कर देते हैं, ऐसे रस घन सुन्दर प्रियतम हार गये हैं वे हत बुद्धि विकल हैं, उनकी प्रिया उनसे मनायी मान नहीं रही हैं। कैसा उत्कट त्याग है, प्रिया का? अद्वैत पथ के स्वराज्य सिंहासन पर आरूढ हुए बड़े-बड़े ज्ञानी महारथियों को जिस शठ गोपीवल्लभ ने हठपूर्वक अपना दास बनाया है, वे इस राधा ग्वालिन के तो चरणों पर दृष्टि गड़ाये हाथ बांधे विनीत खड़े हैं।

ज्योंही प्रिया को यह पता लगता है कि मेरे चरण प्रियतम देख रहे हैं, वे अपने चरणों को भी ओढनी से छुपा लेती हैं, उन्हें भी देखने नहीं देतीं प्रियतम को।

क्या कारण है, शुकराज! जो प्रिया विधाता से मनाती है, हे विधाता! मेरे शरीर के पाँचो तत्त्व अलग-अलग होंगे ही, अतः आप इतना कर दीजियेगा, मेरे शरीर के जल का भाग उस सरोवर या बावड़ी में जाकर मिल जाय, जिसके जल को मेरे प्रियतम नहाने और पीने के काम में लेते हों, अग्नि तत्त्व उस दर्पण में जा मिले, जिसमें प्रियतम अपना मुख देखते हों, पृथ्वी तत्त्व उस मार्ग में

मिल जाय, जिस मार्ग में प्रियतम आते जाते हों, वायु तत्त्व उस भाग्यवान पंखे में मिल जाय जिससे प्रियतम हवा लेते हों, और आकाश तत्त्व उस आँगन के आकाश में मिल जाय, जिसमें प्रियतम बैठते हों। उन प्रिया के चरखनख चन्द्रिका को ललचाकर प्रियतम देखना चाहते हैं परन्तु प्रिया देखने नहीं देतीं। हृदय में कितना दृढ निश्चय करके बैठी हैं, प्रिया! मैं जीवन भर उनके विरह वाप से जलती रहूँगी, परन्तु उनसे मिलूँगी नहीं।"

मिलौं न तिन सौं भूल, अब जौलौं जीवन जियौं।
सहौं विरह को सूल, वरू ताकी ज्वाला जरौं॥
मैं अब अपने मन यह ठानी। उनके पँथ पिऊँ नहिं पानी।
कबहूँ नैन न अंजन लाऊँ। मृगमद भूलि न अंग चढ़ाऊँ।
सुनौं न स्रवननि अलि पिक बानी। नील जलज परसौं नहिं पानी॥

बोलो शुक! जिन श्रीकृष्ण के द्वारा वेणु बजाते उनके उस अनङ्गवर्धक गान के कानों में पड़ते ही प्रिया का मन प्रियतममय हो जाता है, वे जिस अवस्था में भी होती हैं उसी अवस्था में दौड़ पड़ती हैं, और इतने वेग से जाती हैं वे अपने प्रियतम के पास कि उनके कानों के कुंडल हिलने लगते हैं, जो अपने प्रियतम से प्रार्थना करती हैं कि हे मुरारे! मेरे रसोई बनाते समय तो तुम कृपा करके मुरली की तान न छेड़ा करो, क्योंकि उस ध्वनि के आते ही मेरी आग बुझ जाती है, शीतल हो जाती है, जिससे रसोई बन नहीं पाती, वे प्रिया प्रियतम के सब निमंत्रणों को आह्वानों को सर्वथा अस्वीकार कर दे रही हैं, इसका कारण क्या है? कारण एक ही है, प्रिया मात्र प्रियतम सौख्याभिलाषिणी हैं।

हे शुकराज! यह सत्य है, परम सत्य है, अपरोक्ष सत्य है, कि प्रिया मात्र प्रियतम सुख-स्पृहा भाव है। प्रिया कोई लौकिक, अलौकिक, पारमार्थिक चिन्मय देह वाली ग्वालिन नहीं हैं। उनमें कहीं कोई स्थूलत्व नहीं है। प्रियतम सुख-स्पृहा ही उनकी स्थूलता है उनमें न कोई पांच भौतिक परमाणु हैं। उनमें न पार-लौकिक परमाणु हैं, न पारमार्थिक परमाणु हैं और न निर्गुण परमाणु हैं। वे कोई भी आकार वाली नहीं हैं। उनका न कोई क्षुद्र आकार है, एवं न ही स्थूल आकार। उनमें मात्र प्रियतम सुख-स्पृहा के ही परमाणु हैं, और वे केवल प्रियतम सुख-स्पृहाकार हैं। प्रियतम सुख-स्पृहा ही उनकी क्षुद्रता है और वही

उनकी विशालता है। वे न अरुण हैं न पीत हैं, वे मात्र श्याम प्रियतम सुख स्पृहा हैं। वे न द्रव हैं, न कठोर हैं प्रियतम सुखार्थ वे सदा पूर्ण रूपेण दया द्रवित हैं, प्रेम द्रवी भूता हैं, स्नेह आर्द्र हैं, और प्रियतम सुख स्पृहार्थ ही वे पूर्ण कठोर हैं, कठोर से कठोर हैं। इतनी घन कठोर हैं कि दया का, द्रवता का बाल भर भी उनमें प्रवेश नहीं कर सकता। वे न छाया हैं, न माया हैं, वे तो प्रियतम सुख छाया हैं और प्रियतम सुखरूपमाया हैं। वे न तम हैं न प्रकाश हैं, वे न वायु हैं, न आकाश हैं, वे न सङ्ग हैं, न असङ्ग हैं, वे न रस हैं, न गन्ध हैं, न शब्द हैं, न स्पर्श हैं, प्रियतम सुख-स्पृहा प्रकाश हैं। वे प्रियतम सुख-स्पृहा वायु हैं और प्रियतम सुख–स्पृहाकाश हैं, वे प्रियतम सुख संग हैं और प्रियतम सुख में ही असंग हैं। वे प्रियतम सुख–स्पृहा रस हैं, प्रियतम सुख-स्पृहा गंध हैं, प्रियतम सुख–स्पृहा शब्द हैं, एवं प्रियतम सुख-स्पृहा स्पर्श हैं वे न नेत्र हैं, न कर्ण हैं, वे न वाणी है, न मन है, न बुद्धि हैं, न प्राण हैं। वे प्रियतम सुख–स्पृहा नेत्र हैं, प्रियतम सुख–स्पृहा कर्ण हैं, प्रियतम सुख–स्पृहा वाणी हैं, । प्रियतम सुख-स्पृहा मन हैं प्रियतम सुख–स्पृहा बुद्धि हैं एवं प्रियतम सुख–स्पृहा प्राण हैं प्रियतम सुख–स्पृहा ही उनका मुख है, वही उनका माप है, प्रियतम सुख–स्पृहा ही उनका अन्तर है, प्रियतम सुख–स्पृहा ही उनका बाहर है।

वे मात्र भाव हैं। प्रियतम श्रीकृष्ण तो प्रिया के भाव का ही प्रकाश हैं। वे मात्र भाव हैं और प्रियतम उनका रस हैं। प्रिया अपने रस से वे पूर्णतया अभिन्न हैं। उनमें प्रियतम का तिरस्कार कहाँ ? तिरस्कार और सत्कार दोनों तो द्वैत में होता है। स्वीकार और अस्वीकार दोनों द्वैत से ही होता है। मिलन और अमिलन भी द्वैत बोधक शब्द हैं। इसी प्रकार सद्व्यवहार और असद्व्यवहार, शील, मर्यादा, संकोच, संभ्रम सब द्वैत में होता है। महाभावरसराजाद्वैत है। रसराज महाभावाद्वैत है। प्रियतम में जो भी भाव हैं या अभाव है, कार्य एवं कारण रूप में जो कुछ प्रियतम हैं, वे प्रिया से कुछ भी, कहीं भी भिन्न नहीं। तब वे कहाँ, कब, किसको रिझावेंगे और किसको रिझा सकेंगे ? प्रियतम प्रिया के संकल्प हैं। प्रिया प्रियतम के आदि में स्थित हैं, मध्य में स्थित हैं, और पूर्ण रूप से वे ही प्रियतम हैं। वे प्रियतम की सब कला की, चातुरी की, माधुरी की, सौभाग्य की, सौन्दर्य की, रूप की, प्रेम की, लीला की, सब की एक मात्र स्वामिनी हैं।

हे शुकराज, प्रिया गोपी हैं। गोपी की व्युत्पत्ति है—"गोपायति गोपी:।" जो मात्र श्रीकृष्ण का भाव है और जो अपने भीतर पूर्ण रूप से प्रियतम को गोपन रक्षित रखती हैं वे ही तो गोपी हैं। तो शुक! प्रिया का सम्पूर्ण रोष तो मात्र उनके प्रेम का अनुमान मात्र ही तो है। अतः प्रिया द्वारा किये गये इस सम्पूर्ण प्रियतम के तिरस्कार में उनका पूर्ण प्रेम सत्कार ही तो है। प्रियतम सुख स्पृहार्थ ही जब उनका शेप है तो वह प्रेम को उद्दीपित ही करने वाला है। हे शुकराज! जैसे नील मेघ में चमकने वाली बिजली उस मेघ की शोभा बढाती है उसी प्रकार यह प्रियतम के प्रति किया हुआ रोष प्रिया में प्रियतम के प्रति भावोत्कर्ष का ही कारण है।

प्रियतम ही प्रिया का शरीर हैं। प्रियतम ही प्रिया की आत्मा हैं। प्रियतम ही प्रिया की इन्द्रियाँ हैं। इस अनुभूति के बिना प्रियतम पर होने वाले विघात को प्रिया अपने पर हुआ विघात कैसे मान लेती? प्रिया को जो रोष है वह स्वार्थ विघात का ही तो परिणाम है और प्रियतम ही उनका मात्र स्वार्थ हैं। कैसी विलक्षण एकात्मता है प्रिया की? और यही एकात्मता प्रियतम में अनन्तानन्त गुण गौरवत्व और अपने में हीनता का बोध कर रही है। हे शुकराज! रस–शास्त्रों में जितने मान वर्णित हैं, सब का मूल यही प्रिया का महाभाव गत दैन्य है—

पर मैं अति गँवार ग्वालिन गुण रहित कलंकी सदा कुरूप।
तुम नागर गुण आगर अतिशय, कुल भूषण सौन्दर्य सुरूप॥

हे शुकराज! मैं तुम्हें मान के और भी प्रसङ्ग सुनाती हूँ, तुम सबके मूल में इसी भाव की लहराती छाया पाओगे। देखो शुकराज, मान का यह एक और प्रसंग देखो–और शुक एवं सारिका दोनों देखने लगे:—

"प्रियतम श्रीकृष्ण गोचारण करके आरहे हैं—महामरकत श्यामल सुकुमार श्री अंगों के अन्तराल से एक अभिनव माधुर्य, लावण्य एवं सौन्दर्य की धारा प्रस्फुटित हो रही है। अपने प्रियतम की इस शोभा को अपने महल की अटारी से सखियों सहित प्रिया देख रही हैं। कैसी कैशोर मेधा का सुन्दर विकास हुआ है प्रियतम के अंग-अंग में, उनके अंग-अंग से ही नहीं अपितु रोम-रोम से उल्लास मानो फूटा पड़ रहा है। अपरिसीम उल्लास की लहरियों से सब सखा, गोप, गौएं, सिक्त हो रही हैं। नील सुन्दर गौओं से आवृत हुए उल्लास के

आवेश में कैसी कैशोर-भंगिमाओं का प्रकाश कर रहे हैं। गोपाङ्गनाओं की दशा तो देखने ही योग्य हो रही है। वृन्दाकानन के चर-अचर स्थावर-जंगम सब एक साथ ही किसी अनिर्वचनीय परमानन्द सिन्धु अतल तल में मानों समा गये हैं ऊपर आकाश में सुर-समुदाय आनन्द मूर्च्छित है, और उनकी चिर सङ्गिनी सुर-वनिताएँ भी आनन्द विवश होकर वाह्य चेतना शून्य हो गयी हैं।

प्रिया का तो कहना ही क्या ? निर्निमेष-नयन स्पन्दनहीन अवयव, जो जहाँ जैसे अवस्थित हैं, वहाँ वैसे ही रह गया है, प्रिया के प्राण तो बस वही हैं, उसी स्थल पर हैं, जहाँ प्रियतम हैं। उनकी समस्त वृत्तियाँ भी सिमट कर आ गई हैं वहीं अपने अनोखे गोपाल प्रियतम के सस्मित मुखकमल पर। उनके प्रियतम गोपाल सखाओं से परिवृत विविध विचित्र क्रीड़ा में संलग्न हैं, और उन विचित्र क्रीड़ाओं को देखकर प्रिया के रोम-रोम से आनन्द निर्झर झर रहा है। प्रिया सुख समुद्र में निमग्न हैं।

सहसा प्रियतम नन्दनन्दन चुपके से गोप बालकों के झुंड से सरके और गोपाङ्गनाओं के बीच घिरी अपनी प्रिया से मिलाप करने चले आये। प्रियतम को प्रिया के पास देख सब सखियाँ खिसक गईं। प्रिया की दृष्टि ज्योंही उठी उन्होने देखा-प्रियतम सम्मुख खड़े हैं, मुसका रहे हैं। उनके नेत्र अश्रु-धारा बहाने लगे। प्रेम से हृदय अत्यन्त मसृण जो हो गया है, रुकता ही नहीं है प्रवाह, चाहे प्रियतम दूर से निहारे चाहे अति निकट आकर कण्ठहार बनाले—नयनों की धारा तो बहेगी ही। चित्त अतिशय द्रवित जो हो रहा है, भाव धारा प्रवाहित हो रही है।

"कितने अपरिसीम सुन्दर हैं मेरे प्रियतम। सब व्रज के एक मात्र-चर अचर, जड़-चेतन सबके प्राण सार सर्वस्व हैं मेरे प्रियतम। और कहाँ मैं अतिशय गँवार ग्वालिन, गुणशून्या, प्रतिहीन हृदय वाली, प्रेम के नाम पर कपट व्यवहार करने वाली, प्रेमशून्या, स्वार्थ की पुंजीभूत पिटारी, प्रेम कलंकिनी, अत्यन्त कुत्सित आचरण वाली, परम कुरूपा। और कैसे अनन्त गुण निवास, सर्व कला निधान, सौन्दर्य—माधुर्य के मात्र आगार हैं मेरे प्रियतम। एक ही भावधारा है:-

पर मैं अति गंवार ग्वालिन गुण रहित कलंकी सदा कुरूप।
तुम नागर गुण आगर अतिशय कुल भूषण सौन्दर्य सुरूप ॥

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और प्रिया के नेत्रों से इस प्रकार आँसू देखकर प्रियतम उन्हें हृदय से लगा लेते हैं। अपने पीताम्बर से उनके अश्रु पोंछते हैं। अत्यन्त ही प्रेम भरे शब्दों में इस अश्रुपात का कारण पूछते हैं। बस प्रिया अत्यन्त उपालंभ भरा उत्तर दे देती हैं:—"हे गोपवीर! तुम्हारी गौओं की उड़ती गोखुर-रेणु ने ही मेरे नयनों में इतनी अश्रु-राशि भर दी है—अब क्या तुम मुख से फूँक द्वारा मेरे अश्रुपात का निवारण कर पाओगे? बस, अपना प्रेम रहने दो।" और प्रिया मान में आकर अपने प्रिमतम से रूठ जाती हैं।

सारिका बोल उठी—वही एक ही भावधारा है, शुकराज! प्रिया में यहाँ भी जो कौटिल्य प्रकाश हो रहा है, उसका भी वही कारण है कि प्रिया अपने प्रति प्रियतम की विरक्ति बढ़े, इसीलिये उनकी इतनी अपेक्षा कर रही हैं। "प्रियतम तो सर्वोत्तम के भोक्ता है। मैं अनुत्तम हूँ अतएव प्रियतम को अपने से विरक्त करूँ जिससे वे अन्यत्र सर्वोत्तम प्रेमास्वादन कर पावें।" प्रिया के अन्तःकरण में ये भाव ही तरंगायित हो रहे हैं।

आओ, शुक, मान के और भी उदाहरण देखें— सारिका के इतना कहते ही पुनः शुक के सम्मुख एक सुन्दर दृश्य आ गया।

"अहा! चन्द्रावली कुंज की कैसी शोभा है! सर्वत्र चन्द्रज्योत्स्ना छिटकी है। ज्योत्स्ना में कुंज जैसे नहाया हुआ है। प्रियतम चन्द्रावली सखी के पास उनकी जंघा में सिर रख कर शयन कर रहे हैं। अर्ध निमीलित हैं नेत्र उनके। पार्श्व में ही अत्यन्त मन्द-मन्द परन्तु परम मधुर स्वर लहरी में पद्मा वीणा बजा रही है। कुछ सखियाँ कुछ दूरी पर सेवार्थ आवागमन कर रही हैं। उनकी किंकिणी और नूपुर ध्वनि का अत्यन्त मनोहारी सुमधुर स्वर वातावरण को झंकृत कर रहा है। सहसा प्रियतम के मुंदे नेत्र खुलते हैं। प्रियतम को जाग्रत जानकर चन्द्रावली संकेत करती है। एक सखी शीघ्रतापूर्वक मधुपानार्थ पेय प्रस्तुत करती है। सहसा अंग मोचन करते-करते प्रियतम श्रीकृष्ण पूर्वाभ्यासवश राधे, राधे, प्रिये, प्रिये सम्बोधन कर उठते हैं। चन्द्रावली आदि सब सखियाँ इस सम्बोधन से पूरी तरह समझ जाती हैं कि इनके हृदय में निद्रा के समय भी एवं स्वप्न में भी एक छत्र श्रीराधा प्रिया का ही अधिकार है। परन्तु इससे चन्द्रावली तनिक भी रोष प्रकट नहीं करती। उसके मुख की आभा द्विगुणित आनन्दित हो उठती है। वह प्रियतम को पूर्ववत् ही अत्यन्त स्नेह से

जाग्रत कर मधुपान कराती हैं। और द्विगुणित उत्साह से, मधुर वचनावली के द्वारा अपने प्रियतम का अभिनन्दन ही करती हैं।

सारिका पुनः बोल उठी—शुकराज ! यह सखि चन्द्रावली का मान ही है, जो दाक्षिण्य भाव से युक्त है। परन्तु इसमें भी यही भाव निहित है कि प्रियतम प्रिया श्रीराधा के स्नेह के ही सच्चे अधिकारी हैं। मैं (चन्द्रावली) उन्हें कदापि प्रिया श्रीराधा के सम्मान स्नेह नहीं कर पायी, इसीलिये उनके हृदय में प्रिया श्रीराधा सदा विराजित हैं। यही उचित है। अस्तु, मुझे प्रियतम के प्रति रोष नहीं करना चाहिये अपितु उन्हें अधिक प्रेम, स्नेह, आदर ही देना चाहिये। अपने प्रति हेय-बुद्धि एवं प्रियतम के गुण गौरव की भावना ही इसमें भी हेतु है। और देखो, इसी कुंज में पाशक्रीड़ा में विजयी होने पर ज्योंही प्रियतम पद्मा का आलिंगन करते हैं, वह विमुखी होकर यही उत्तर देती है—

"नाथ, मुझे स्पर्श नहीं करें। मैं किसी भी प्रकार से आपके योग्य नहीं हूँ। आपने मुझे पाशक्रीड़ा में जीत अवश्य लिया है। इसलिये मैं जीवन पर्यन्त आपकी दासी हूँ यह स्वीकार करती हूँ। परन्तु आलिंगन-सुख आपको श्रीराधा आदि अन्य रमणीगण ही देंगी जो मुझ से रूप में, गुणों में, प्रेम में अनन्त गुणी अधिक सुख दायिनी हैं।"

शुकराज ! कहीं भी कैसा ही मान हो तुम्हें एक ही भावधारा प्रवाहित होती दृष्टि गोचर होगी अपने प्रति अत्यधिक दैन्य और प्रियतम के प्रति अनन्य गौरवत्व। अपने प्रियतम को सर्वोतम अर्पण करने की इच्छा ही इस मान भाव का उत्स है जिसे प्रिया इन दो पंक्तियों में व्यक्त कर रही हैं—

पर मैं अति गंवार ग्वालिन गुण रहित कलंकी सदा कुरूप।
तुम नागर गुण आगर अतिशय कुल-भूषण सौन्दर्य सुरूप॥

शुकराज ! भाव में न बाहर है, न भीतर है वह जो भाव प्रिया में है, वह भाव यदि चन्द्रावली में है, पद्मा में है, किसी में भी है, भाव तो भाव ही है। पात्रगत परिच्छिन्नता उसमें नहीं है। इसी प्रकार राधा भाव चाहे गोलोक में हो, चाहे स्वर्ग में, नरक में, पाताल में, बैकुण्ठ में, असुर में, सुर में, नर में, पिशाच में और मुनि में, ऋषि में हो, उसमें देशगत परिच्छिन्नता कालगत परिच्छिन्नता कदापि नहीं है। प्रिया-भाव ही प्रियतम का आधार है। प्रिया—

भाव ही प्रियतम का प्रकाश है। यही भाव की, प्रेम की त्रिकाल सत्यता है। यह भाव अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के सृजन के पूर्व भी नित्य विराजित था, और अनन्त ब्रह्माण्डों के विलय के पश्चात् भी ज्यों का त्यों विराजित रहेगा। यह भाव ही अनन्त ब्रह्माण्डों के अन्तराल में वर्तमान में भी अवस्थित है, एवं उनके बाहर भी मात्र भाव ही भाव है। हे शुकराज! यह भाव ही प्राकृत, अप्राकृत, समस्त विश्व ब्रह्माण्ड बना दृष्टिगोचर है।

हे शुकराज! समस्त विश्व का चित्त आकर्षित करने वाले, कार्य कारणात्मक समस्त परिदृश्यमान जगत् रूप, भूतों के स्वामी, सर्वशक्तिमान्, काल के काल, ब्रह्म के ब्रह्म, सर्व व्यापक, सर्व नियन्ता, सत्वरजस्तमोमयी प्रकृति के भी अधिष्ठाता पुरुष प्रियतम रसराज श्रीकृष्ण इसी भाव के बन्धन में नित्य बँधे हैं।

हे शुकराज! इस बात को अकाट्य रूप में मानलो कि रति, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव एवं महाभाव कोई ऐसे स्तर एवं कक्षाएँ नहीं हैं, जिनमें नीचे से ऊपर चढा जाता हो। इसी प्रकार भाव की प्रगाढ़ता कोई ऐसी नहीं है जैसे वस्तु द्रव गाढ प्रगाढ़ होती हो। हे शुकराज, रति ही महाभाव है और महाभाव ही रति है। जिसे मादन महाभाव कहते हैं—जो सर्वोच्च भाव स्तर है वह रति ही है, अन्य कुछ नहीं। प्रियतम सुख स्पृहा रति के अतिरिक्त क्या है? रति ही स्नेह है। स्नेह ही महाभाव है। इसी प्रकार यह रति ही मान है और मान ही रति है। रति ही प्रणय है और प्रणय ही रति है। बताओ शुक! ग्रीष्म में जो सूर्य की किरणें हैं, वही वही तो शिशिर में भी सूर्य की किरणें हैं। किरणों में उनके प्रकाश में कौनसी प्रगाढ़ता आ गई है? किरणों की संख्या में न बढोतरी है, न किरणों के स्वरूप में ही कोई अन्तर है उनका प्रकाश भी वैसा ही हैं। परन्तु सूर्य की गति के उत्तरायण एवं दक्षिणायण हो जाने से जैसे ऋतु परिवर्तन हो जाते हैं, उसी प्रकार भाव-सागर का सरसित होना ही उसका लहराना ही भाव वैशिष्ट्य को प्रकाशित कर देता है। हे शुकराज! मादन महाभाव तो प्रिया श्रीराधा किशोरी का नित्य भाव है। फिर उनमें जो रत्युदय होता है, स्नेहोदय होता है, मानोदय होता है, प्रणय प्रकाशित होता है तब यह क्या है? इस प्रश्न का यही उत्तर है कि यह मादन प्रिया का ही स्वरूप है। मादन ही प्रिया की रति है। मादन ही प्रिया का मान है, मादन ही प्रिया

का प्रणय है। मादन ही प्रिया का महाभाव भी है और मादन ही प्रिया का पुनः मादन है। प्रिया इस तरह अनन्त मादन हैं।

शुकराज ! यही इस भाव राज्य की विशेषता है कि वह नित्य अपूर्ण है, परिपूर्ण अपूर्णता है इसमें। प्रिया नित्य मादनमयी हैं फिर भी वे प्रियतम का नित्य प्रथम दर्शन करती है :- नित्य ही उनमें पूर्व रागोदय होता है। वे प्रियतम को पहचानती ही नहीं। नित्य उनमें नवीन रति उदय होती है। नित्य नवीन सब कुछ उनमें सरसित होता है। परिपूर्ण होकर भी प्रेम पुनः नवीन बन परिपूर्णता की ओर प्रवाहित होता है और सदा अपूर्ण ही रह जाता है, परिपूर्णता की ओर वह मात्र गतिशील ही होता रहता है, परिपूर्णता को उपलब्ध नहीं हो पाता।

मैं रसज्ञान रहित रस वर्जित, तुम रस निपुण रसिक सिरताज।
इतने पर भी दया सिन्धु तुम मेरे उर में रहे विराज ।। का भाव–

इसीलिये शुकराज, प्रिया रस ज्ञान से सर्वथा रहित हैं। उन्हे प्रियतम श्रीकृष्ण का नित्य ज्ञान है और नित्य अज्ञान है। वे प्रत्येक क्षण श्रीकृष्ण को नवीन ही देखती हैं। यद्यपि प्रियतम इनके रोम-रोम में भरे हैं, प्रियतम का जो कुछ आदि एवं मध्यान्त है सब प्रिया ही हैं, मात्र प्रिया ही है, एकमेव प्रिया हैं। फिर भी ज्योंही प्रियतम पर इनकी दृष्टि पड़ती है, एक भाव का झोंका-सा आता है और जैसे तड़िल्लहरी छू जाती है, सब कुछ पूर्व विस्मृत हो जाता है, उच्छलित हो उठता है, भाव सिन्धु। फिर कुछ पता नही रहता। महाभाव में प्रवाहित प्रिया पुनः अनुराग में बहेंगी कि मान में, मान में प्रवाहित प्रिया पुनः किस भाव कक्षा में प्रवेश करेंगी, कौनसी भाव लहरी प्रिया को आत्मसात् करेगी कुछ, कहीं, कोई निश्चित विधान नहीं है। भाव में सब मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियाँ और शरीर सब नवीन हो जाते हैं। सम्पूर्ण पूर्व स्मृति समा जाती है, मात्र भाव में सम्पूर्ण वृत्तियां डूब जाती हैं, विशुद्ध भाव के अतलतल में। पूर्व सब घुल मिल जाता है और पुनः प्रकाशित होकर सम्मुख आता पुनः नवीन। परन्तु वह नवीन होता है वैसा ही पूर्व के समान ही। परन्तु होता है सब नवीन। नवीन प्राण पुनः नाचते हुए प्रियतम को अङ्क में भर लेने के लिये दौड़ पड़ते हैं। पुनः नवीनता से प्राणों में आर्त्ति उदित होती है, अनन्त उत्कंठा लहराने लगती है। यह उत्कण्ठा प्रियतम से पुनः प्रिया का मिलन कराती है प्रियतम को अङ्क में धारण किये प्रिया पुनः आत्म विस्मृत हो जाती हैं। कुछ पता नहीं रहता उन्हें। आगे क्या करना

है, क्या पाना है, और क्या देना है, कुछ अनुसंधान नहीं रहता उन्हें वे पूर्णतया रसज्ञान रहित हैं। रस से जैसे पूर्णतया वर्जित हैं, प्रिया। मात्र प्रिया के प्रियतम ही रस निधान है, रस निपुण हैं। वे ही अपनी अचिन्त्य प्रेरणावश उनसे जो कुछ कराते रहते हैं, वे करती जाती हैं। वे ही रसराज हैं, वे ही उनमें रस भरते रहते हैं और अपना रस स्वयं पीते रहते हैं। प्रियतम ही उनमें अनन्त प्रेम समृद्धि बनकर उदय हो जाते हैं और वे ही अपार अनन्त उत्कंठा सृष्ट कर उसका उज्जवलतम निदर्शन कराते हैं।

हे शुकराज! 'दुःख मोचन' शब्द का भाव समझे? कितना स्पष्ट भाव है? परन्तु कितना गूढ़ है? कितना गंभीर है? 'प्रणय' भाव किसको कहते हैं शुकराज? समझ में आया? पूर्ण तदीयता और पूर्ण मदीयता जहाँ एक भूमि में, मिल जाये, एकाकाश हो जावें। मैं प्रियतम की, और प्रियतम मेरे अत्यन्त सूक्ष्मता से विचार करो, ये दो भिन्न-भिन्न धाराएँ हैं। प्रत्येक बूँद कह सकती है मैं सागर की हूँ। प्रत्येक घटाकाश कह सकता है, मैं महाकाश का हूँ। प्रत्येक जीव कह सकता है मैं परमात्मा का हूँ। प्रत्येक शरीर कह सकता है मैं विराट का हूँ। परन्तु बूँद नही कह सकती, समुद्र मेरा है। घटाकाश नहीं कह सकता महाकाश मेरा है। जीव नहीं कह सकता परमात्मा मेरा है। शरीर नहीं कह सकता विराट मेरा है। जीव का ब्रह्म से 'अहं ब्रह्मास्मि' के तत्त्वज्ञान द्वारा नित्य योग तो हो जाता, पूर्ण विलय तो हो जाता है परन्तु यह कहना बनता ही नहीं कि ब्रह्म मेरा है। हाँ, कोई ऐसी अनुभूति हो कि जिससे यह अनुभव हो सके कि ब्रह्म भी, सर्व भी मुझ में सन्निहित है, तो वह वेदानुभूति में, ब्रह्मज्ञान में, अद्वैतवाद में तो असंभव है, असंभव है, सर्वथा असंभव है।

हे शुकराज! इसीलिये ब्रह्मज्ञान में 'अहम्' के, अनुभवकर्त्ता के मिथ्यात्व का ही बोध होता है। जहाँ अहम् ही नहीं है वहाँ दुःख, सुख कैसे रहेंगे। परन्तु अनुभवकर्त्ता के रहने पर दुःख-सुख का मोचन वहाँ नहीं हो सकता। अनुभवकर्त्ता है तो दुःख भी ज्यों का त्यों है सुख भी ज्यों का त्यों है। सम्पूर्ण तत्त्व ज्ञान, वेदान्त खड़ा है मात्र इसे प्रतिपादित करने कि यह 'अहम्' है ही नहीं यह माया है, मिथ्या है, भ्रान्ति है और इस भ्रान्ति का नाश ही ज्ञान है। अहम से मुक्ति ही मुक्ति है।

परन्तु शुकराज! यह प्रियतम राज्य यह प्रिया राज्य, यह रस राज्य,

यह भाव राज्य, इससे भी और विलक्षण है। यहाँ 'अहम्' के आत्यन्तिक नाश के उपरान्त कहो, चाहे अहम् के आत्यन्तिक समर्पण पर कहो, उस दिव्य उस अलौकिक, उस विलक्षण, उस अनिर्वचनीय, उस ज्ञानातीत् 'अहम्' की स्फूर्ति होती है, जो अहम् यह कहने में पूर्ण समर्थ है कि 'मैं ब्रह्म की प्रतिष्ठा हूँ।' मैं ब्रह्म का ब्रह्म हूँ। और वेद भी प्रतिपादित कर जाते हैं निश्चय ही, रस ही (वह) ब्रह्म है और तदुपरान्त रसराज श्रीकृष्ण को भी यह महाभाव कह देता है— "श्रीकृष्ण मेरे हैं।" और शुकराज! इस महाभाव की भी उच्चतम लहरें मंजरियाँ कह देती हैं 'प्रिया मेरी हैं,' महाभाव 'मेरा' है। हे शुक, यह कथन मात्र मिथ्या प्रलाप नहीं है, सत्य अनुभूति है। परम सत्य है, एक मात्र सत्य है। वेदान्त का कोई सूत्र चाहे इसे समझा नहीं सके, परन्तु यह तर्क संगत न होकर भी अनुभूति संगत, अवश्य है। यह प्रेम की, भाव की, ज्ञानातीत सत्यता है। भाव अज्ञान में सत्य है, ज्ञान में सत्य है और ज्ञानातीत सत्य है। जो अज्ञानी हैं, मात्र प्रकृति में, माया में, भ्रान्ति में हैं, उनके लिये भी भाव सत्य है। जो ज्ञानी हैं, ब्रह्मविद् हैं वे भाव को नहीं जानते हैं, फिर भी भाव उनको जानता है, इसलिये भाव सत्य है। और जो ज्ञान से भी अतीत हो 'भावराज्य' में डूबे हैं उनके लिये तो यह सत्य है, सत्य है, सत्य है ही।

इसीलिये यह भाव राज्य अहं राज्य है, त्वं राज्य है, इदम् राज्य है, अयम् राज्य है, परन्तु फिर भी सर्व प्रियामय सर्व प्रियतममय है। सब प्रिया ही है, प्रियतम ही है। जहाँ प्रिया के प्रियतम हैं और प्रियतम की प्रिया हैं और दोनों अनुभूतियाँ, मैं प्रियतम की एवं प्रियतम मेरे, एक ही भूमि में, एक ही आकाश में, एक साथ प्रकाशित हो रही हैं उसी महा भावसिन्धु का नाम 'प्रणय' है, शुकराज! और यह प्रणय ही आत्यन्तिक दुःख का नाश करता है। यही सच्चा दुःख मोचन है। यह प्रणय ऐसा महाभाव है, जो भाव सर्वथा अभाव निरपेक्ष है। यह ऐसा आनन्द है, जो सर्वथा–सर्वथा दुःख निरपेक्ष है।

परन्तु शुकराज, इसे भी मत भूलना इस महाभाव राज्य में कोई कक्षा नहीं है। रति ही महाभाव है और रति ही प्रणय है। प्रणय ही अनुराग है, राग है और भाव एवं महाभाव है। प्रणय ही मान भी है, स्नेह भी है, एवं रति भी है।

इसीलिये शुकराज! यहाँ इस महाभावराज्य का प्रत्येक 'अहं' विभक्त होकर भी पूर्ण है; अखंड है, नित्य है, युक्त है, भक्त है, और पूर्ण है। सबसे

सब अभिन्न हैं। सबसे सबकी पूर्ण अभिन्न सत्ता है। यहाँ का पत्ता-पत्ता प्रिया है, प्रियतम है। कीट, भृंग, सब प्रिया हैं, प्रियतम हैं, सभी प्रिया से प्रियतम से पूर्ण अभिन्न हैं। यहाँ महात्मानन्द प्रिया से अभिन्न हैं और महासती यशोदा भी राधा से प्रिया से अभिन्न हैं। यहाँ माता कीर्त्तिदा राधा से, प्रिया से, महाभाव से अभिन्न हैं और महात्मा वृषभानु भी प्रिया से महाभाव से पूर्ण अभिन्न हैं। केवल भाव सिन्धु ही अनन्त लहरियों में उच्छलित है। वह रसको, रसराज को अनन्त-अनन्त रूपों में प्रकाशित कर रहा है। परन्तु शुकराज, अनन्त रस प्रपंच को, इस अनन्तानन्त रस प्रकाश को प्रिया ज्ञान में रखेंगी तो यह ज्ञान ही दुःख हो जायेगा। इसलिये प्रति क्षण अनन्त विरह और अनन्त संयोग का अनन्तानन्त दुख और सुख भोगने वाली प्रिया प्रति क्षण रस संस्पर्श को भी अज्ञात कर देती हैं। यह रस ही उन्हे रसज्ञान से रहित कर देता है। यह रस ही, ये रस निपुण, रसिक सिरताज, रसराज ही उन्हें रस ज्ञान रहित, रस वर्जित कर देते हैं। इसलिये अनन्तानन्त दुःख पूर्ण वियोग भी रसज्ञान रहित होने से प्रिया को नित्य विस्मृत रहता है। नित्य स्मरण और नित्य विस्मृति का युगपत् एक ही साथ प्रकाश है, प्रिया में। यही तो रस निपुणता है। यदि रस निपुण प्रियतम अपनी प्रिया के अनन्तानन्त दुःख का मोचन न करें तो वे फिर रस निपुण कैसे, रसिक सिरताज कहाँ रसराज कहाँ? अतः प्रिया में प्रियतम रस-संस्पर्श की एक ऐसी विद्युल्लहरी सदा संस्पृष्ट होती है कि प्रिया सब कुछ पुरातन को विस्मृत कर पुनः नवीन भाव लेकर इस सागर को आत्मसात् करने उमड़ पड़ती हैं, लहरा उठती हैं। प्रतिपल नवीन भाव, प्रतिपल नवीन रस, नित नूतन रस वर्षा, नित नूतन भाव सिन्धु।

कैसी सुन्दर उक्ति है:—

मैं रसज्ञान रहित रस वर्जित, तुम रस निपुण रसिक सिरताज।
इतने पर भी दया सिन्धु तुम मेरे उर में रहे विराज॥

प्रिया में सत्यांश में रस ज्ञान नहीं है, वे रस वर्जित हैं वे तो मात्र अपने ही भाव में हैं। इस निपुण रसिक सिरमौर प्रियतम अपनी सम्पूर्ण रसाभिव्यक्ति से उनके हृदय में व्यक्त हो रहे हैं। वे मात्र प्रिया हृदय में ही व्यक्त हो रहे हैं। अन्यत्र कहीं नहीं। परन्तु प्रिया में अपना निज का यह संकल्प सर्वथा-सर्वथा नहीं है कि प्रियतम रसराज उनके हृदय में अभिव्यक्त

हों। उनको सुख हो उनकी रुचि हो, अभिव्यक्त हो। न रुचि हो, अनन्तानन्त काल उनका हृदय रस शून्य, रस वर्जित ही रहे। शुकराज! यह सत्य-सत्य जानों मिथ्या अहंकार के नाश होते ही इन अनन्त विश्व, ब्रह्माण्डों का कहीं पता ही नहीं चलता। ये ऐसे विलुप्त हो जाते हैं जैसे वन्ध्या पुत्र, या शशशृंग। जैसे यह सम्पूर्ण विराट भ्रान्ति पूर्ण, मिथ्या, सर्वथा असत् अहं को लेकर ही, उसके अध्यास पर ही प्रतीत हो रहा है, क्रियाशील हो रहा है, ठीक उसी प्रकार यह सम्पूर्ण अनन्तानन्त पूर्ण सत्य, रसराज्य भी प्रिया के अस्तित्व पर ही प्रकाशित है। जहाँ प्रिया हैं वहीं यह रस राज्य है। प्रिया राधा जिस क्षण, जिस काल, जिसभूमि से चली जाती हैं उसी क्षण, उसी काल, यह सब महारस राज्य भी प्रिया के साथ ही उनके हृदय के साथ ही साथ चला जाता है। फिर अन्यत्र कोई कहीं इसका अस्तित्व ढूँढना चाहे तो यह उसे किसी काल में, किसी अवस्था में, किसी देश में, किसी वेश में, नहीं प्राप्त हो सकता, नहीं मिल सकता। यह मात्र प्रिया का अहं राज्य है, प्रियतम का अहं राज्य है। यही कारण है, शुकराज! कि ब्रह्मादि देवता भी प्रियतम श्रीकृष्ण के धाम गमन के समय उनकी गति को नहीं जान सके।

सौदामन्या यथाऽऽकाशे यान्त्या हित्वाभ्रमण्डलम् ।
गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः ।। ११-३१-९ ।।

ब्रह्म रुद्रादयस्ते तु दृष्ट्वा योग गतिं हरेः ।
विस्मितास्तां प्रशंसन्तः स्वं स्वं लोकं ययुस्तदा ।। ११-३१-१० ।।

ब्रह्माजी और शंकरजी यह प्रतीक्षा कर रहे थे कि श्रीकृष्ण जब नित्य धाम जावेंगे तो वहाँ से जाते हैं पता लगावेंगे। वे इस मनोरथ में थे कि श्रीकृष्ण के साथ वे सब भी उनके नित्य धाम का दर्शन करलें, परन्तु उन्हें निराश ही लौटना पड़ा। वह कौनसा धाम है जहाँ प्रियतम श्रीकृष्ण अपने सम्पूर्ण परिकरों और नित्य लीला पात्रों सहित सदेह गये। किस प्रकार किस गति से गये यह उन सब के लिये अज्ञात रहस्य ही रह गया। शुकराज! प्रियतम श्रीकृष्ण की सत्ता मात्र प्रिया में ही है। प्रिया के अवतरण से ही उनका अवतार है। प्रिया का हृदय ही उनका नित्य धाम है, जिसमें वे सदा निवास करते हैं। अन्यत्र उनका कोई, कभी भी अन्वेषण न कर पाया है, न

कर पाया था, और न कर पावेगा।

प्रिया हृदय ही प्रियतम का सम्पूर्ण निवास है। प्रियतम सम्पूर्ण है, अपनी प्रिया के हृदय में। भाव ही रस का मात्र निवास है, आदि मध्यान्त निवास है। रस सम्पूर्ण है, भाव में। केवल भाव ही रस रूप प्रकाशित हो रहा है, भाव ही भाव है। मात्र भाव है। रस भाव में पूर्ण निमग्न है।

❀ राधा राधा राधा राधा राधा राधा ❀

॥ श्रीराधा ॥

आठवाँ अध्याय

(महिमा एवं गुणावली)

शुकराजः—हे सारिके ! तुमने प्रिया प्रियतम की कैसी मधुरातिमधुर सारमयी रस चर्चा की है। मेरी देह में अनन्तानन्त कर्णपुट होते तब भी मैं तुम्हारी वाणी का परम मधुर रसपान करने में असमर्थ ही रहता। देखो, आकाश के नेत्र झर रहे हैं। बिना बादलों के ही यह आकाश कैसी शीतल सुखद अश्रुवृष्टि कर रहा है। यह पावन वृन्दावन भूमि परम भावमयी होने के कारण इस प्रकार की प्रेमाश्रुवर्षा से ही सदा सिंचित होती है। इसे कोई प्राकृतिक सुरेन्द्र वर्षा बरसाकर आर्द्र नहीं करता। यहाँ का वन प्रान्तर प्रिया प्रियतम की नित्यनव प्रेम वर्षा से नित्य सिक्त रहता है।

हे सारिके ! यद्यपि तुम मुझ से ही रस चर्चा कर रही हो परन्तु देखो, यह भूमि, यह तृणराजि, ये पाषाण, यह विहंगम कुल, यह मृग यूथ, सभी तुम्हारे मुख से निःसृत प्रेमामृतवारिधारा का पान करने को कितने उत्कण्ठित हो रहे हैं ! देखो, इनमें कैसी मधुर आनन्दजन्य जड़ता आगई है ! इनके अंग अवश हैं तथापि ये कितने तृषित, उत्कण्ठित हैं ! देखो, यह हंसिनीयूथ, यह हंसकुल अपने चंचुपुटों में मृणाल खण्ड धारण किये तुम्हारे प्रति अपनी श्रद्धा का प्रकाश कर रहे हैं। अतः मैं इन सभी की ओर से पुनः-पुनः तुम से यही निवेदन करता हूँ—'और सुनाओ, सारिके, इस पुलिन को प्रिया प्रियतम के महिमागान से सदा निनादित करती रहो। यह सदैव तुम्हारे द्वारा प्रिया प्रियतम के महिमा बखान से गुंजित होता रहे।'

सारिकाः—सत्य, सत्य, शुकराज, यही सत्य है। परन्तु बताओ शुकराज, क्या स्वप्नावस्था में जाग्रत ज्ञान की महिमा कही जा सकती है ? क्या परमार्थ दृष्टि से कैवल्य भाव प्राप्त ज्ञानयोगी का व्युत्थान संभव है ? और जो व्युत्थित है क्या वह कैवल्य भाव की महिमा कह सकता है ? व्युत्थान दशा में

ब्रह्मात्मज्ञान अथवा प्रत्यग्ब्रह्मैक्य विषयक स्मृति जैसी जिस प्रकार सम्भव होती है, व्युत्थान काल में आत्मब्रह्म की निज रूप में प्रत्यभिज्ञा या अभेदानुभव का स्मरण जैसा एवं जिस प्रकार सम्भव है उसी प्रकार मेरे द्वारा प्रिया की महिमा का किंचित् कथन सम्भव है ।

हे शुकराज ! प्रियतम–अतिरिक्त सर्व विषयों से परावैराग्यपूर्वक पूर्ण परावृत मन की प्रत्यक् प्रियतमात्मा के आकार में निर्विकार स्थिति का नाम ही तो 'प्रेम' है । इस तुरीय अवस्था में किसी को किसी भी रूप, शक्ति या दृश्य का अवभास कहाँ रहता है ! देश–काल आदि सभी परिच्छेदक उपाधियों का अभाव होने से अनवच्छिन्न चिति उस समय मात्र प्रिया अथवा प्रियतम–इन दो रूपों में ही तो भासित होती है । प्रिया एवं प्रियतम मात्र प्रत्यक् वस्तु का तो कभी और कहीं भी अभाव हो ही नहीं सकता । अपना स्वरूप होने से प्रिया एवं प्रियतम की नित्यता और प्रकाशरूपता तो स्वयं सिद्ध है ।

हे शुकराज ! प्रिया प्रियतम के अतिरिक्त देह, अहंकार और वासनाएँ अनित्य, आगमापायी हैं–ऐसा पूर्ण निश्चय होने पर अत्यंत निर्वासनिक परिणाम शून्य होकर प्रिया–प्रियतम रूप में स्थित हो जाने पर यही अनुभव होता है कि प्रिया आनन्दचन्द्र हैं और प्रियतम आनन्दचन्द्र की कौमुदी हैं । महाभाव प्रेम ही आनन्दचन्द्र है और प्रेमाकार प्रियतम रसराज ही इस आनन्दचन्द्र की कौमुदी हैं । प्रेमस्वरूपा प्रिया और प्रेमाकार प्रियतम शक्ति एवं शक्तिमान की अभिन्नता के कारण पूर्ण अभिन्न हैं । महाभावरूपा प्रिया अपनी सुषमा से प्रियतम को मुग्ध कर रही हैं । कैसी अप्राकृत सुन्दरी हैं प्रिया !

हे शुकराज ! ध्यान करो, प्रिया के अंगों का परमाणु-परमाणु अनंत श्रीकृष्ण–मोहन है । उससे प्रियतम ही प्रियतम की मधुरिम वर्षा होरही है । प्रिया का अंग-अंग प्रियतमानन्द रसराजानन्द, पूर्णरसानन्द से संप्लावित है । वे प्रियतम रसराज के नेत्रों की नेत्रता हैं । उनके भीतर अनन्तानन्त प्रियतम समुद्र लहरारहा है । वे अपने भीतर और बाहर पूर्ण प्रियतम परितृप्त हैं । कैसा महान् आश्चर्य है । उनका मुखमण्डल अपने प्रियतम रस में सुप्रसन्न, अपने प्रियतमरस में सुमधुर, अपने प्रियतम रस में ही परम सौम्य है । इसीलिये प्रिया अनन्तानन्त शोभामयी हैं । हे शुकराज, प्रिया इन भ्रान्तिपूर्ण, असद् ब्रह्माण्डों की सृष्टि, पालन तथा संहारकर्त्री महाशक्ति नहीं हैं, यह उपाधि तो उनके लिये

कलंक है । प्रिया की तो छाया की छाया भी प्रेम ही है । प्रिया ऐसी विशुद्ध हैं । उनकी छाया की छाया में भी अशुद्धि नहीं आ सकती । उनकी छाया से भी असत् वस्तु-भ्रान्ति का विकार संभव नहीं । उनकी छाया तो हैं रसराज प्रियतम तथा अपने प्रियतम की छाया हैं वे, पुनः उनकी छाया प्रियतम एवं प्रियतम की छाया वे-इस प्रकार उनकी अनन्तानन्त छायाएँ भी परम विशुद्ध रस ही हैं । उनके अणु-परमाणु प्रियतम ही प्रियतम हैं । वे तो लीलासर्जिका, लीलापालिका तथा लीलासंवरणकर्त्री महाशक्ति हैं वे परमानन्द सन्दोह, विशुद्ध प्रियतम-स्वरूपभूत, परमप्रेममय, महाभावमय गोलोकधाम की सृजन, पालन एवं संवरणकारिणी महाभावमयीदिव्य चिन्मयी माया हैं । प्राकृतिक ब्रह्मा, रुद्र तो उनकी महिमा भी नहीं जानते फिर उन्हें स्वयं को जानना तो उनके लिए असंभव ही है। प्रिया का वैभव तो स्वयं प्रियतम रसराज श्रीकृष्ण हैं । प्रिया की महिमा स्वयं प्रियतम रसराज श्रीकृष्ण हैं । प्रियतम की सम्पूर्ण इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति मात्र प्रिया ही तो हैं ।

हे शुकराज ! जिस देश में प्रियतम रूप तमाल नहीं है और प्रिया रूप कनकलता उसे सर्व ओर से आच्छादित नहीं किये है, किंवा जिस देश में प्रियारूप कंचनवर्ण पारिजात नहीं है और प्रियतम रूप श्यामलता उसे सर्व ओर से आवेष्टित नहीं किये है वहाँ कोई प्रेमीजन एक पल के शतांश परिणाम के काल को भी क्यों यापन करना चाहेगा ? जिन्होंने विशुद्ध भावस्वरूप प्रेम का अवलम्बन करके प्रिया एवं प्रियतम को एकरस, परिणाम शून्य, अपरिच्छिन्न प्रत्यक् चैतन्य रूप में जान लिया है, जो प्रिया प्रियतम को भिन्न-भिन्न नहीं जानते, प्रिया प्रियतम के अतिरिक्त अन्य किसी की भी सत्ता नहीं देखते हैं, नहीं जानते हैं, नहीं मानते हैं-वे ही सद्दर्शी हैं और हे शुक, उनका ही संग सब प्रकार से स्पृहणीय है ।

हे शुकराज, शून्यता कहाँ है ? दुःखादि कहाँ हैं ? मृत्यु कहाँ है ? सर्वत्र प्रिया प्रियतम रस समुद्र, भावसागर ही तो अनन्तानन्त लहरें ले रहा है । परन्तु प्रेमविहीन के लिये ये ही दिशाएं शून्य प्रतीत होने लगेंगी । यही देह यही इन्द्रियाँ तथा यही अन्तःकरण है किन्तु प्रेम के बिना सब सर्वथा निष्फल है । प्रेम होने पर सब कुछ महाभावमय अनन्त आनन्द स्वरूप है, समस्त आनन्दों का मूल स्रोत है । ये देश-ग्राम, चन्द्र-सूर्य, समस्त विश्व तीर्थ क्षेत्र

देवता और कर्मानुष्ठान यदि प्रिया प्रियतम और उनके प्रेम समागम से शून्य हैं तो सभी असत्, मृत्युमय, विनाशी तथा क्षणिक हैं, माया, भ्रान्ति तथा स्वप्नवत् हैं। सर्वात्मा प्रेमात्मा प्रिया प्रियतम के बिना ये सब शून्य अनुभूत होते हैं। प्रिया के चरणों की लालिमा के संस्पर्श होते ही सब कुछ तत्क्षण पूर्णातिपूर्ण, परिपूर्ण-सम्पूर्ण है। प्रिया के चरण सरोरुहों की लालिमा रूप राग ही प्रेम है। उसका संस्पर्श सर्वसद् है, अविनाशी है, स्वप्रकाश है। प्रेम संस्पर्श से एक क्षण में सर्व प्रपञ्च प्रिया प्रियतम रूप में महाभाव रस सिन्धु रूप में प्रतिभात होने लगता है। प्रेमीजनों को तो सर्वत्र प्रिया प्रियतम ही विराजित दिखते हैं-सर्वत्र प्रेमयमुना प्रेमसरिता ही लहराती दिखाई पड़ती हैं- सर्वत्र प्रेमशैल गिरिराज ही प्रकाशित अनुभूत होता है। प्रेम के प्रभाव से इन्द्रियों का असत् ज्ञान विलुप्त हो जाता है और दिव्य चक्षु जाग्रत हो जाते हैं। प्रेम-प्रबोध दशा में मृत्यु का आगमन भी प्रियतम का आलिंगन ही प्रतीत होता है। प्रेम ही सत् है। प्रेम ही यथार्थ है, नित्य है, अखण्ड है, बोध है, आनन्द है तथा पूर्ण चैतन्य है। प्रेम ही भाव है, प्रिया है और प्रियतम है। यही प्रिया की महिमा है।

हे शुकराज, यदि किसी की चित्तवृत्ति निरुद्ध नहीं होती है तो क्यों नहीं वह वृन्दावन में विहरण करती हुई वृषभानुनन्दिनी रासेश्वरी प्रिया के नीले वसनाञ्चल में अपने चित्त को बाँध देता है। यह दिव्य वसनाञ्चल ही तो विशिष्ट चिन्मय रससत्ता है जो सब को कृत कृत्य करती नित्य लीला रत है। इस वसनांचल के द्वारा स्पर्शित धन्यातिधन्य जो प्रेमपवन है उस का समीरण जिसके अंग से स्पर्श भी हो जाता है वह निश्चय ही योगीन्द्र-मुनीन्द्र-दुर्गम गति प्रियतम को भी कृतार्थ करने वाले गोपी भाव को प्राप्त कर ही लेता है-प्रेम भाव को प्राप्त कर ही लेता है यही प्रिया की महिमा है।

हे शुकराज, यदि किसी की आँखों में मायामल भरा है तो वह महान्ध क्यों नहीं इस गिरिराज परिसर में विहारशीला अनन्त शक्ति प्रिया की चरणरेणु को नयनाञ्जन की भाँति अपने नेत्रों में अंजित कर लेता है? जो सबके हृदयान्तराल में नित्य निरन्तर साक्षी एवं नियन्ता रूप से अवस्थित हैं, जो सर्वनियमातीत, बन्धनविमुक्त परमनिरन्कुश हैं, जिनका सम्यक् ज्ञान महतो महीयान् भी नहीं जान सकते, जिनके बल के सम्मुख सभी हार कर मौन हैं

उन नित्यस्ववश परात्पर को भी वह अंजन नेत्रो में आँजे जाने पर तत्क्षण दृष्टि का विषय बना देता है। फिर मायामल भला कैसे रह पायेगा ? हे शुकराज, प्रिया की यही महिमा है !

हे शुकराज, प्रिया प्रियतम के मिलन के पूर्व ही, परस्पर दृष्टि विनिमय के पहले ही उन दोनों की दिव्य अंग गंध एक दूसरे के रोम-रोम को उत्फुल्ल बना देती है। वह गन्ध ही दोनों को प्रेमावेश से निस्पन्द कलेवर कर देती है। उस गन्ध के आघ्राण मात्र से दीर्घकाल तक उनकी कमनीय मूर्ति घनशान्त, स्तम्भित खड़ी रह जाती है। तत्पश्चात् मानों प्रेमताप से गलने लगती हो इस प्रकार उन दोनों के नेत्रकोण अश्रुपूरित हो उठते हैं, रोम-रोम स्वेद-श्लथ हो उठता है और जिस भूमि पर वे अवस्थित हैं वह भूमि भी आर्द्र होने लगती है। हे शुकराज, उस समय कठोर से कठोर शिलाखण्ड भी प्रिया प्रियतम की भूमि बना हो तो वह भी प्रेमार्द्र हो जाता है। उनकी वह प्रेम छवि देख कर निरभ्र आकाश अश्रु-विन्दु गिराने लगता है। वृक्षावलि रोमाञ्चित होकर कम्प प्रकाश करने लगती है। पक्षीगण हर्षाकुल होकर आनन्द कलरव करने लगते हैं तथा दिशाएं भी विकलचित्त हुई अट्टहास करने लगती हैं हे शुकराज, यमुना स्थिरता, अचलता ग्रहण कर लेती है और वनराजि यमुना की भाँति बहने लगती है। अहा, आश्चर्य, महा आश्चर्य उस समय दोनों प्रिया प्रियतम को परस्पर प्रेम विगलित छवि अश्रु प्रवाह के माध्यम से ही दिखलाई पड़ती है।

हे शुकराज, प्रिया प्रियतम में परस्पर कैसी प्रेमासक्ति कैसा प्रेमावेश है ! युगल की यह प्रेमार्द्रता ही सातों रसों की अनन्त अगाध उदधि रूप उत्पत्ति है। नित्य आनन्द-रसमय वैदग्ध्यभाव-समुद्र, अनुरागभाव-समुद्र, वात्सल्य भाव-समुद्र, कृपाभाव-समुद्र, लावण्यभाव-समुद्र, सौन्दर्यभाव-समुद्र और माधुर्यभाव-समुद्र-इसप्रकार सप्त समुद्रवती प्रिया आनन्दकन्द प्रियतम के नित्य दिव्य रमणानन्द में अनादि काल से ही उन्मादिनी हैं।

हे शुकराज, यदि कोई अश्रुतपूर्व सौभाग्य का अभिलाषी है तो क्यों नहीं 'प्रिया-प्रिया' 'राधा-राधा' रटकर उनके नाम सुधासागर में डूबा रहता है, क्यों नहीं उनकी चरण चिह्नांकित वृन्दारण्य वीथियों में भटकता है, क्यों नहीं अपने हाथों से कुञ्जों की धूलि मार्जन करता है और क्यों नहीं अपने चित्त को उनके चरण पद्मों के ध्यान में ही निमग्न रखता है। अहा, इन भावोत्सवों

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

के परिणामस्वरूप उसे निश्चय ही प्रियतम प्राणनाथ के चरणों की परम समर्था रति प्राप्त होगी जो उसके अश्रुतपूर्व सौभाग्य के लिये उसे प्राणनाथ की प्रणयिनी बनने का अधिकार प्रदान कर देगी। यही प्रिया की महिमा है।

हे शुकराज, हम सभी पक्षीगण वृक्षों में लगी मंजरियों को तो चखते ही हैं। ये मंजरियाँ ही तो इन वृक्षों के प्रेम रूपी फलों की उत्पत्ति एवं विकास की हेतु हैं। ये मंजरियाँ वृक्ष के सार–उसके रस से सदा उद्भासित रहती हैं। हे शुक, इसी प्रकार इस वृन्दावन रूपी भाव वृक्ष में भी मंजरियाँ है। ये मंजरियाँ भी इस प्रेमवृक्ष के साररस से सदा मत्त बनी प्रेम-गन्ध से सुवासित रहती हैं। इनको अहं तथा अहंजनित परिदृश्यमान अखिल प्रपंच की कभी स्मृति ही नहीं होती। सर्वत्र एकमात्र अद्वितीय स्वप्रकाश, चिन्मय रस आनन्द और भाव ही भाव इनमें लहराता रहता है। यही इनकी अनुभूति है। इनके संपूर्ण संस्कार पूर्ण प्रेमानुकूल हैं। इनकी देहादि में एवं देहान्तर्गत दृश्य रूप समस्त विषयों में पूर्ण प्रिया–प्रियतमात्मक दृष्टि और रसबुद्धि है। इनमें इन्द्रियजनित विषयों एवं परिच्छिन्न अहंभाव का आत्यन्तिक अभाव है और ये अपने को तथा अपने सम्पूर्ण दृश्य वर्ग को सहज रूप में प्रिया प्रियतम ही रसराज एवं महाभाव ही मानती हैं। हे शुकराज, इसीलिये ये मंजरियाँ प्रिया प्रियतम की लीलाप्रकाशिका महाशक्ति हैं। इनकी कृपा के बिना बुद्धि का स्वसुख में निवेश रूप दोष, स्वसुख वृत्युदय रूप विक्षेप और स्वसुख–रमणीयता रूप कषाय का नाश नहीं हो सकता। यह स्वसुखबुद्धि रूप लवण पिण्ड जब तक प्रिया प्रियतम के प्रेम–रसामृतमहासमुद्र में पूर्णतया विलीन नहीं होता तब तक स्वप्रकाश प्रिया प्रियतम हृदय में अखण्ड, नित्य, पूर्ण रूप से अपनी प्रेमाभिव्यक्ति करते ही नहीं।

हे शुकराज, क्या तुमने कभी ऐसा कुञ्ज देखा है जिसमें अनादि मोहान्धकार का आत्यन्तिक नाश कर देने वाला ब्रह्म रूप रत्न प्रदीप प्रकाशमान हो? परात्पर तत्वप्रतिपादक समस्त उपनिषदों का प्रामाण्य ही जहाँ भूमि हो और सम्पूर्ण सौभाग्य रूप कल्पतरु कानन के मूलभूत पुष्प ही जहाँ प्रस्फुटित हो रहे हों। इनकी सुवास से वह महक रहा हो और शास्त्र प्रसिद्ध संतोद्घोषित आनन्दसुधा के निर्झर जहाँ कलकल ध्वनि करके बह रहे हों। अहा, जिसे कुछ लोग ब्रह्म कहते हैं, कुछ मनिषी जिसका जगत्कर्त्ता कहकर परिचय देते हैं, कुछ प्राणी जिसे परमात्मा बतलाते हैं, कुछ श्रेष्ठ पुरुष जिसे भगवान् कह

कर प्रतिपादित करते हैं, जिसकी महिमा देशकाल से परिच्छिन्न नहीं है, जो देश काल की सीमा में बद्ध नहीं है—वही देव जहाँ परिच्छिन्न, सीमाबद्ध हुआ भ्रमर की गुन गुन— किसी का यशगान करता हुआ अविराम झंकार करता हो। हे शुक, वह प्रिया-हृदय ही ऐसा परम आश्चर्यमय कुंज है—निकुंज है।

सुनो शुक, प्रिया रूप निकुंज में प्रेम रूप सुगन्धित पुष्प मकरन्द का सेवन करते हुए प्रियतम कैसा सुमधुर गान कर रहे हैं? क्या तुम्हारे कान सुन रहे हैं?

—और सचमुच ही शुक एवं सारिका के कानों में प्रियतम का दिव्य गान श्रवणगोचर होने लगा :—

हे प्रियतमे राधिके! तेरी महिमा अनुपम, अकथ, अनंत।
युग-युग से गाता मैं अविरत नहीं कहीं भी पाता अंत॥
सुधानन्द बरसाता हिय में तेरा मधुर वचन अनमोल।
बिका सदा के लिये मधुर दृग कमल, कुटिल भृकुटी के मोल॥
जपता तेरा नाम मधुर, अनुपम मुरली में नित्य ललाम।
नित्य अतृप्त नयनों से तेरा रूप देखता अति अभिराम॥
कहीं न मिला प्रेम शुचि ऐसा, कहीं न पूरी मन की आस।
एक तुझी को पाया मैंने जिसने किया पूर्ण अभिलाष॥
नित्य तप्त निष्काम नित्य में मधुर अतृप्ति मधुरतम काम।
तेरे दिव्य प्रेम का है यह जादू भरा मधुर परिणाम॥

हे प्रियतमे राधिके! तेरी महिमा उपमारहित, अवर्णनीय और अनंत है। मैं युग-युगान्तर से बिना विराम लिये उसका गान करता आरहा हूँ, तब भी उसका कहीं अंत-ओरछोर नहीं मिलता॥१॥

तेरे मधुर अनमोल बोल मेरे हृदय में आनन्दामृत बरसाया करते हैं। तेरे मधुर कमल से नेत्र तथा बांकी भौहों के मोल मैं सदा के लिये बिक चुका हूँ॥२॥

अपनी मुरली में मैं तेरे उपमा रहित मधुर एवं श्रेष्ठ नाम की रात-दिन

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

रट लगाया करता हूँ और अतृप्त नेत्रों से तेरे अत्यंत मनोहर रूप को नित्य निहारता रहता हूं ॥३॥

तेरे जैसा निर्मल पवित्र प्रेम मुझको कहीं नहीं मिला कहीं भी मेरे मन की आशा पूर्ण नहीं हुई। एकमात्र तू ही मुझ को ऐसी मिली है जिसने मेरी अभिलाषा पूरी की है ॥४॥

मैं (अपने ही आनन्द से) नित्य तृप्त रहने वाला और सदा निष्काम-कामनाहीन हूं। ऐसे मुझ में मधुर अपरिमित अतृप्ति और अत्यंत मधुर अपरिमित कामना जगा देना यह तेरे अलौकिक प्रेम का ही जादू भरा मधुर फल है ॥५॥

देखो शुक, प्रियतम की कैसी प्रेमपूर्ण उक्ति है! उपर्युक्त पंक्तियों में प्रियतम ने अपनी प्रिया की महिमा और गुणावली का कैसा विशद वर्णन किया है। इस पद में प्रयुक्त 'प्रियतमे' तथा 'राधिके' सम्बोधनों के विषय में मैं अपने मन के भाव प्रकट करती हूं।

बताओ शुक, कौन प्रियतम है और कौन प्रियतमा है! कौन आराध्या है और कौन राधिका है? यह महिमा क्या है और किसकी है जिसे पूर्ण सच्चिदानन्दघन परतत्व अनुपम अकथ एवं अनन्त बता रहा है।

शुकराज! यह परम सत्य है कि इस अक्षर सच्चिदानन्दघन परतत्व के ही प्रशासन में सूर्य-चन्द्र विधृत है, स्थित हैं और नियम से उसकी आज्ञा पालन करते हैं। द्युलोक एवं पृथ्वी-दोनों इसी अक्षर तत्व में विधृत हैं, स्थित हैं। इस अक्षर के द्वारा निश्चित मर्यादा का कोई, कभी, कहीं अतिक्रमण नहीं करते। इस अक्षर के ही प्रशासन में निमेष, मुहूर्त्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, अयन, ऋतु, संवत्सर विधृत हैं, स्थित हैं। सर्व समर्थ काल भी अक्षर द्वारा निश्चित कर्त्तव्य की अवहेलना नहीं कर सकता। यह अक्षर ही जो प्रियतम श्रीकृष्ण हैं, इन्हीं में समग्र ऐश्वर्य, समग्र धर्म, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण श्री, समस्त ज्ञान, समस्त वैराग्य नित्य वर्त्तमान रहते हैं। ये स्वयं भगवान् हैं। इनके लिये कुछ भी कहीं असंभव नहीं। इन्हीं ने सृष्टि के आदि में लोक सृजन की इच्छा की थी और इच्छा होते ही इन्होंने महत्तत्व, अहंकार, पञ्चतन्मात्रासम्भूत एकादश इन्द्रियों तथा पंच महाभूतों से समन्वित विराट पुरुष रूप ग्रहण कर लिया था।

ये ही कारणार्णवशायी बने थे। कारण समुद्र में सोते हुए इन्होंने ही योग निद्रा का विस्तार किया था। इन्हीं के संकल्प से इनके नाभि सरोवर में एक पद्म की अभिव्यक्ति हुई एवं उस पद्म से ही प्रजापतियों के अधिपति ब्रह्मा उत्पन्न हुए थे जिनसे समस्त प्रजा सृष्ट हुई।

यह सत्य है इस साँवरे सलौने प्रियतम की लीला अमोघ है। अपनी लीला से ही यह अपने ही द्वारा अपने में विशाल विश्व की रचना कर लेता है, उसका पोषण करता है, और उसे संहार भी कर देता है। ऐसा करके भी यह इसमें आसक्त नहीं होता, यही इसकी विलक्षणता है। समस्त प्राणियों के अंतःकरण में इसका निवास है। परन्तु यह इतना छिपा रहता है कि इसे बिरले ही जान पाते हैं। छिपे रहकर भी सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों एवं मन का यह नियन्ता रहता है उनके विषयों को ग्रहण करता है, परन्तु ग्रहण करके भी उनसे लिप्त नहीं होता। यह परम स्वतंत्र है, सबका शासक है। इसका शासक कोई नहीं। जैसे नट के अभिनय संकेत को, उसके संकल्प को अनजान मनुष्य नहीं जान सकते वैसे इन श्यामलवपु प्रियतम के संकल्प को इससे रचित इन विविध नाम रूपों को इनकी विविध विचित्र लीलाओं को कुबुद्धि से भरे जीव तर्क लगाकर नहीं जान सकते। इसकी लीला अत्यन्त दुर्विज्ञेय है।

शुकराज, यही अक्षर कहता है :

अहमात्माऽऽत्मनां धातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि।
अतो मपि रतिं कुर्याद् देहादि यत्कृते प्रिय : ॥

श्रीमद्भागवत ३-९-४२॥

"मैं ही आत्माओं का आत्मा हूँ, प्रियों का भी प्रियतम हूँ। मेरे लिये ही देहादि भी प्रिय हैं और मुझसे प्रेम करने में ही जीवन की परम सार्थकता है।"

परन्तु यह सब महिमा जीवों को सुनाने के लिए है। सम्पूर्ण ऐश्वर्य, ईश्वरता एवं उसकी महिमा जीवभाव धारण किये प्राणियों के लिये ही तो है। देहेन्द्रियादि समूह में 'यह वह है' 'यह मैं हूँ' आदि रूप में जिस अज्ञान युक्त आत्मा का स्फुरण है, जिसकी देहादि जगत्पदार्थ में सत्य बुद्धि है अथवा जो अपने को देहादि विशिष्ट मानता है उसी के लिए ईश्वर है, विराट है और इस ऐश्वर्य–चमत्कार का महत्व है। उसी के लिए ऐश्वर्य है, धर्म है, यश है, श्री है,

ज्ञान है, वैराग्य है। बताओ शुक, प्रियतम के स्वयं के लिए भी इस माया का कोई महत्व है क्या? और हम सबके लिए भी यह ऐश्वर्य कोई महिमा है क्या? जब यह मिथ्या जगत् ही मात्र भ्रान्ति है तो इस भ्रान्ति का स्रष्टा, मिथ्या का ही तो स्रष्टा है। और किसी मिथ्या क्रिया कलाप का सृजन कर मिथ्या महिमा से महिमान्वित होकर प्रफुल्लित होना किसी प्रकार से भी शोभनीय गुण कैसे कहा जा सकता है! हे शुकराज, स्वप्न का विराट हिरण्य गर्भ और ईश्वर भाव यदि कुछ अर्थ रखता हो तो जाग्रत का विराट, हिरण्य गर्भ और ईश्वर भाव कुछ अर्थ रखेगा? विराट, हिरण्य गर्भ और ईश्वरभाव सम्यक् ज्ञान आत्मस्वरूप में नितान्त नहीं है।

बताओ शुकराज, प्रियतम किसी की आत्मा के आत्मा हैं? "मैं ही आत्माओं का आत्मा हूँ"—यह उपदेश भी वे अपनी ही मिथ्या उत्पत्ति ब्रह्माजी को ही तो दे रहे हैं—जो मात्र उनकी संकल्पसृष्टि हैं। अपनी संकल्पसृष्टि को यह कहना कि मैं सत्य हूँ, तू मिथ्या है, मैं तेरी आत्मा का आत्मा हूँ, मैं तेरे प्रियों का प्रियतम हूँ। मेरे लिए ही तुझे ये देहादि प्रिय हैं। मुझ से प्रेम करने से ही तेरे जीवन की परम सार्थकता है—यह स्वयं में स्वयं का प्रलाप मात्र ही तो है। जब यह संकल्प सृष्टि ही असत् है, मिथ्या है, आभास मात्र है, वैषयिक है, अज्ञान है और स्वयं द्वारा स्वयं में स्वयं से विनिर्मित है तो बताओ शुकराज, जो प्रियतम कहते हैं कि "मैं आत्माओं का आत्मा हूँ, प्रियों का प्रियतम हूँ" उनका भी स्वरूप क्या है? उनका न बाहर है, न भीतर है, वे मात्र सर्वत्र व्याप्त हैं उनमें देशगत, कालगत परिच्छिन्नता नहीं है। उनका न आदि है, न अन्त है। वे न स्थूल हैं, न अणु हैं, न क्षुद्र हैं, न विशाल हैं, न अचल हैं, न द्रव हैं, न छाया हैं, न तम हैं, न वायु हैं, न आकाश हैं, न संग हैं, न रस हैं, न गन्ध हैं, न नेत्र हैं, न कर्ण हैं, न वाणी हैं, न मन हैं, न तेज हैं, न प्राण हैं, न मुख हैं, न माप हैं। तब बताओ, इससे उनका क्या स्वरूप निर्दिष्ट होता है? कुछ भी नहीं। फिर जब वे कुछ भी नहीं हैं तो उनकी महिमा भी क्या हो सकती है?

अब बताओ, शुकराज, जो स्थूल है न सूक्ष्म, जिसका बाहर है न भीतर, जिसका आदि है न अन्त, उस सर्व दृश्य रहित, सर्व प्रतीति रहित की प्रियतमा भी कैसी? जिसमें मन ही न हो, जिसमें प्राण ही न हों, जिसमें आँख न हो, न कान हो, न मुख हो, न वाणी हो वह किसे प्रेम करेगा और उसे कौन

प्रेम करेगा ? वह न तो किसी का प्रियतम है, न ही उसकी कोई प्रियतमा है।

हे शुकराज, इसीलिए प्रियतम की वेदों में, शास्त्रों में सर्वत्र ऋषियों ने, मुनियों ने, देवताओं ने, दानवों ने, मानवों ने जो भी स्तुति की है वह निस्सार है क्योंकि उन्होंने प्रियतम को असत् चक्षुओं से देखकर महिमावान माना है। उनकी बड़ी से बड़ी महिमा इतनी ही है कि वे विलक्षण जादूगर हैं। उनके जादू में अनन्तकाल है, अनन्त देश हैं, अनन्त जीव हैं और अनन्त शक्ति लिए वे सब का सृजन पालन एवं संहार कर रहे हैं। वे सब के भीतर भी हैं और सब से पृथक् भी हैं, सबके संग होकर सबसे असंग हैं, सब कुछ वे ही होकर कुछ भी नहीं हैं। परन्तु वे क्या हैं इसे कोई वर्णन नहीं कर सका, कोई जान नहीं सका, सब यही कह पाये कि वे अचिन्त्य हैं, अदृश्य हैं, अग्राह्य हैं, अगम्य हैं, अगोचर हैं, अतीन्द्रिय हैं, सर्व विलक्षण हैं। वे निर्विशेष हैं, निराकार हैं, निर्गुण हैं मात्र सच्चिदानन्द हैं। परन्तु वह सत्-सत्ता नामक गुण नहीं है, वह आनन्द-आनन्द नामक गुण विशेष कदापि नहीं है, और वह चेतन भी चिन्तन का विषय सर्वथा नहीं है।

हे शुकराज, स्वप्न में की हुई किसी की बड़ी से बड़ी महिमा जैसे कोई अर्थ नहीं रखती, इसी प्रकार जाग्रत में भी ये स्तुतियाँ, सुन्दर से सुन्दर कवियों द्वारा अनेकानेक भाषाओं में रचित स्तुतियाँ कोई अर्थ नहीं रखतीं।

प्रियतम श्रीकृष्ण यदि किसी सत्य की सृष्टि करते, किसी ऐसे स्थूल की, ऐसे विशाल की रचना करते जो नित्य होता, अखण्ड होता, ऐसे अणु की, ऐसे क्षुद्र की भी रचना कर देते जो सत्य होता, नित्य होता, आनन्दमय होता तब तो वह उनकी महिमा गाता कि हे महिमावान्! तुमने मेरा निर्माण किया। वे कोई ऐसा काल रचते, ऐसा देश रचते, ऐसा द्रव्य रचते, ऐसा पीत, अरुण रंग रचते, ऐसी वायु रचते, आकाश रचते, ऐसी गन्ध रचते, रस रचते, ऐसे नेत्र, कर्ण, वाणी, मन, प्राण का निर्माण करते, ऐसे मुख की, हृदय की सत्ता उत्पन्न करते जो नित्य होता, अखण्ड होता, सत् होता, आनन्द होता, चिन्मय होता तब तो उनकी महिमा भी सत्य होती, और जो कोई महिमा गाता उसका यह गान भी सत्य होता, नित्य होता।

इसीलिए हे शुकराज ! प्रियतम ने 'प्रियतमे' शब्दोच्चारण करते ही मानो अपनी भूल जानली। वे समझ गये कि न मैं प्रियतम हूँ और न मेरी कोई

प्रियतमा ही सम्भव है। क्योंकि 'मैं प्रियतम किंवा मेरी प्रियतमा' यह कथन ही परिच्छिन्नता में ही सम्भव है। जो अपरिच्छिन्न है, सर्व है, वह किस को मेरी कहेगा ? और उसकी प्रिया, प्रियतरा, प्रियतमा यह कथन बनता ही नहीं। फिर जिसके वाणी ही नहीं, मुख ही नहीं, आकार ही नहीं, जो विशेष ही नहीं, सगुण ही नहीं, वह कैसे बोलेगा, कैसे अभिव्यक्ति करेगा ? अतः 'प्रियतमे' कहते ही, अपनी भूल समझ कर तुरन्त 'राधिके' शब्द भी बोले। क्योंकि, 'कृष्णं समाराधयति सदेति राधिका'–राधिका ही वह समाराधन है जिससे न देखा जा सकने वाला निराकार पूर्ण साकार,—मायामय साकार नहीं, असत् आकार नहीं, भ्रान्त्याकार नहीं—नित्य साकार, अखण्ड अभेद्य, सत्य नित्य साकार हो जाता है। वह साकार भी दृष्टि का, नेत्र का विषय हो सके इसलिए ऐसी दिव्य नित्य सत्य शाश्वत पूर्ण नेत्रेन्द्रिय को प्राप्त करना भी इन राधिका के ही समाराधन से सम्भव है। तो शुक, राधिका के ही समाराधन से अग्राह्य परतत्व ग्राह्य श्रीकृष्ण हो जाते हैं। इन राधिका की ही समाराधना से अगोत्र परतत्व नन्द पुत्र, पर्जन्य-प्रपौत्र–इस प्रकार गोत्र वाले हुए हैं। इन श्रीराधिका की ही समाराधना से अवर्ण परतत्व कृष्ण वर्ण का, परम सौन्दर्य निकेतन बन गया है। श्रीराधिका की ही समाराधना से अव्यक्त परतत्व 'प्रियतमे' इस प्रकार कुछ व्यक्त करने योग्य बन रहा है।

श्रीराधिका ने नित्य, सत्य, शाश्वत, स्थूलता का निर्माण किया। उसने नित्य सत्य अणु की रचना की, नित्य सत्य क्षुद्र की रचना की, नित्य सत्य विराट की रचना की। उसी ने नित्य सत्य वर्ण की, द्रव की, छाया की, तम की। तेज, वायु, आकाश की, रस-गन्ध की, नेत्र, कर्ण, वाणी, मुख, मन, प्राण की, माप-तौल, अन्तर-बाह्य, सभी की रचना की तथा श्रुति प्रतिपाद्य सिद्धान्त को संदेहास्पद बना कर रख दिया। हे शुकराज इतना ही नहीं, उसने श्रीकृष्ण को अनन्त गुणों से, अनन्त रूप सौन्दर्य से समलंकृत किया। उनका स्वभाव बनाया, उनकी रुचि–अरुचि निर्माण की। उन्हें पति बनाया तथा लोक कथित उपपति बनाया अनुकूल दक्षिण बनाया, धिरोदात्त बनाया, धीरललित, धीरशान्त साथ ही साथ धीरोद्धत भी बनाया। श्रीराधिका ही अपने प्रियतम को शठ एवं धृष्ट भी बनाती है। हे शुकराज, श्रीराधिका ने ही यह सम्पूर्ण रस जगत निर्माण किया है। उसने ही श्रीकृष्ण के सखा बनाये तथा श्रीकृष्ण को सख्य रस प्रदान करने हेतु उन सखाओं को नित्य, शाश्वत, पूर्ण रस गुणों से समलंकृत किया।

उसने अपने प्रियतम श्रीकृष्ण की नायिकाएं बनाईं तथा श्रीकृष्ण को मुनिजन-वल्लभ, उपनिषत्वल्लभ और ब्रह्म विद्यावल्लभ विशेषणों से विभूषित कर दिया। उसने स्वयं अपने में ही अपने द्वारा अनन्तानन्त रस गुणों को चित्रित किया। और ऐसा रस विस्तार किया जिसका पूर्ण वर्णन सम्भव ही नहीं।

उसने वयस बनाई, गुणावली बनाई, वयः सन्धि बनाई। उसने नव यौवन का, मध्य कैशोर का, पूर्ण यौवन का माधुर्य निर्माण किया। उसने रूप लावण्य, अंग लावण्य, सौन्दर्य तथा अनन्त अभिरूपता निर्माण की। उसने मार्दव की संरचना की। उसने नाम, चरित रास, क्रीड़ा, लास्य, वेणु, वेणु वादन, गोदोहन, गमन, मण्डन, भूषा, माल्यानुलेपन, वंशीरव, शृंगीरव, गीत, सौरभ, भूषण, भूषण ध्वनि, पदाङ्कादि, शिल्प कौशल, निर्माल्य, बर्हा, गुञ्जा, एवं अद्रि धातुओं की संरचना की। उसने नन्द, यशोदा, मातृवर्ग की अनन्तानन्त गोपियाँ पितृवर्ग के गोप, दास दासी, नन्द भवन, ग्राम नगर पथ बनाये। उसने गोधुलि वृन्दावन, वृन्दावनाश्रित खग, भृंग, मृग, कुञ्ज, लता, कर्णिकार कदम्ब, गोवर्धन, यमुना रासस्थली, चन्द्रिका मेघ विद्युत, वसंत, शरद, पूर्णचन्द्र गन्धवाह, खग पिक आदि निर्माण किये। उसने भाव, हाव, हेला शोभा, कान्ति दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य, धैर्य, लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किल किञ्चतादि अलंकार बनाये। उसने सात्त्विक भावों की संरचना की। उसने स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वर भंग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय आदि विकार निर्माण किये। उसने निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शंका, त्रास, आवेग, उन्माद, व्याधि, मोह, मृति, आलस्य, जाड्य, व्रीड़ा, अवहित्था, स्मृति, वितर्क, चिन्ता, मति, धृति, हर्ष औत्सुक्य, औग्र्य, अमर्ष, असूदा, चापल्य, निद्रा, सुप्ति, बोध, भावोत्पत्ति आदि अनेकानेक उपभावों का निर्माण किया। उसने रति प्रादुर्भाव के कारण, रति के भेद, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव एवं रूढ-अधिरूढ भावों को उत्पन्न किया। उसने शृंगार-भेद, पूर्वराग, पूर्वराग की दश दशायें, मान विप्रलम्भ, प्रेमवैचित्य, सुदूरप्रवास, प्रवासोपरान्त चिन्ता, जागर, उद्वेग, तानव, मलिनाङ्गता, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, मोह, मृत्यु करुण विप्रलम्भ, संयोग-वियोग-स्थिति, संभोग, संक्षिप्त एवं संकीर्ण संभोग, गौण संभोग, स्वप्न संभोग, वृन्दावन क्रीड़ा, रास, यमुनाजल केलि, नौका विहार, वस्त्र चोरी, लीलाचौर्य, पुष्प चोरी, दानघाटी-मिलन, कुञ्जादि मिलन, मधुपान, वधूवेषधृति, कपटसुप्ति, द्युतक्रीड़ा, पटकर्षन, परिरंभणादि सम्पूर्ण

रस क्रियामें निर्माण कीं और इन सबकी संरचना विशुद्ध सत्वमयी भूमि में विशुद्ध सम्त्रमय पात्रों में की।

हे शुकराज, तुम्हें जो यह नित्य, पूर्ण, परात्पर गोलोक धाम, वृन्दावन, निकुञ्जादि दिखाई पड़ रहे हैं–सभीकी आत्मा, सत्ता, चेतनता एवं प्रियता मात्र प्रिया ही हैं। इसीलिए वे सबकी तथा प्रियतम की भी प्रियतमा हैं। उन श्रीराधिका देवी की महिमा सत्य ही अकथनीय है, अनंत है।

परन्तु शुकराज, एक बात पूर्ण सावधानी से सदा स्मरणीय है। प्रिया प्रियतम की सम्पूर्ण लीला में, लीला– परिकरों में, इस परम चिन्मय स्वप्रकाश धाम में, उनकी नराकृतियों तथा नारी आकृतियों में माया, प्रकृति, लौकिकता, मिथ्यात्व, वैषयिकता सर्वथा नहीं है। श्रीकृष्ण स्वयं अपने मुख से कहते हैं :–

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धय :।
परँ भावमजानन्तो ममाव्यय मनुत्तमम ॥
अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषी तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तौ मम भूत महेश्वरम् ॥

श्रीमद्भगवद्‌गीतोपनिषद् ७-२४-एवं-९-११)

“बुद्धिहीन लोग मेरे श्रीकृष्ण स्वरूप में सन्निहित ‘परमभाव’ को तो जानते नहीं और मुझ अव्यक्त को व्यक्तिभावापन्न मनुष्य मान लेते हैं।”

“इसी प्रकार प्रिया प्रियतम की इस लीला में भी एवं इस लीला के परिकरों में भी सन्निहित परमभाव को न जानकर लोग उसे प्राकृत भावापन्न लीला एवं व्यक्ति भावापन्न परिकर परिकर मानलेते हैं–यही उनकी महामूढता ही है। हे शुकराज, परम भाव ही प्रिया हैं, यही उनकी महामहिमा भी है।”

शुक कहने लगा—“हे सारिके, महा कृपामयी, परमोदार स्वरूपे, दयामयि, कृपा करो और अत्यन्त कृपापूर्वक इस सब रसजगत् का, भावजगत् का जिसका कि तुमने संकेत मात्र किया है, चाहे अत्यन्त सूक्ष्मता पूर्वक ही सही, परन्तु तात्विक विवेचन अवश्य करो। यह तत्व ही ऐसा है जिसमें प्राकृतिकता आ ही जाती है। हे सारिके, इस सम्पूर्ण रस जगत का उदाहरण सहित तात्विक विवेचन सुनकर विशुद्ध भावमय रस का यत्किञ्चित् आभास मुझे तुम्हारी कृपा से अवश्य होगा। मैं सत्य ही पूर्ण कृतकृत्य हो जाऊँगा।”

सारिका बोली :—अवश्य कहूंगी शुक, यद्यपि यह विषय वाणी द्वारा कथन का नहीं है तथापि अपनी ओर से पूरी चेष्टा करूंगी। संभव है प्रिया प्रियतम की अनन्त कृपा से मेरे द्वारा इस रस का यत्किञ्चित् प्रकाश तुम्हारे सम्मुख हो जाय। प्रिया प्रियतम तो सर्व भवन समर्थ हैं। उनकी कृपा भी सर्व भवन समर्थ है। यह कृपामात्र ही प्रिया की सच्ची महिमा है।

हे शुकराज, प्रिया की सबसे बड़ी महिमा स्वयं प्रियतम हैं। वे परब्रह्म, अजन्मा हैं। वे ही समस्त जगत् की उत्पत्ति के कारण हैं। उन्हीं से समस्त जगत् की स्थिति प्रलय एवं क्रिया है। वे ही इस विकारमय भ्रान्तिरूप असत् जगत् को अपनी माया द्वारा घुमा रहे हैं। परन्तु यह इनकी कोई विशेषता नहीं है इनकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि भावसमन्वित परमार्थ तत्व की धारणा से युक्त हुई गोपाङ्गनाएं इन्हें अपने प्रियतम रूप में भजती हैं।

इन श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कहीं कुछ भी नहीं है। ये ही ब्रह्म की, परम प्रेमामृत की, अव्यय जगत् की, शाश्वत धर्म की, और एकान्तिक सर्वसुख की प्रतिष्ठा हैं। ये ही अच्युत श्रेष्ठतम तथा पूज्यतम हैं। ये ईश्वरों के भी महेश्वर हैं। ये पूर्ण ब्रह्म ही हैं। इनमें सारे भूत भविष्य के सब ऐश्वर्यमय अवतारों का समावेश है। ये ही विष्णु हैं, नरनारायण हैं और ये ही सनातन परब्रह्म हैं। ये सर्वव्यापी आत्मा हैं। ये विश्वात्मा हैं एवं विश्वातीत हैं। भूत भविष्य एवं वर्त्तमान में जो कुछ है–सब कुछ यही हैं। जो इनमें नहीं है वह कुछ भी, कहीं, न था, न है और न होगा। जो कुछ है सब ये ही हैं।

हे शुकराज, प्रिया तो माधुर्यभाव–समुद्र हैं। वे सदैव माधुर्यभाव के साधनों से उत्पन्न प्रेम विशेष ही अनुभव करती हैं इसीलिए उन्हें अपने माधुर्य रसास्वादन में प्रियतम श्रीकृष्ण के इन ऐश्वर्यादि गुणों का ज्ञान ही नहीं होता है। हे शुक, प्रिया श्रीराधारानी की यही महिमा है कि वे समग्र ऐश्वर्य, समग्र धर्म, समग्र यश, समग्र वैराग्य, समग्र श्री और समग्र ज्ञानस्वरूप श्रीकृष्ण को सर्व भगवत्ता विरहित, सर्व ऐश्वर्य विरहित करके मात्र 'निजजन' 'प्रियतम' बना देती है। प्रिया के प्रियतम भगवदाकृति भगवान् नहीं, नराकृति प्रियतम हैं। वे अखिल ब्रह्माण्डाधिपति परमेश्वर नहीं, अपितु प्रिया के निजजन प्रियतम हैं। वे नरवपु में प्रेमलीला कर रहे हैं। यह सदा स्मरणीय है कि वे कर्मजनित पाञ्च भौतिक जड़ देह सम्पन्न मनुष्य नहीं हैं। इन नराकृति प्रियतम की लीला नित्य,

सत्य, सच्चिदानन्द परब्रह्म की स्वरूप लीला है। यहां जड़ माया का राज्य नहीं, यह तो भावस्वरूपा प्रिया का प्रेमराज्य है। विशुद्ध प्रेम, अनन्य प्रीति, परम विशुद्ध माधुर्य का पूर्ण भावराज्य है। इस नरभाव में प्राकृत मनुष्य के कर्मों की कोई कल्पना भी नहीं है। वह तो मात्र भाव की मधुर चिन्मयी परम रसमयी लीला है। ऐश्वर्ययुक्त भगवत्सत्ता से विहीन केवल नरभाव को भले ही वह कितना ही पवित्र क्यों न हो, शुद्ध माधुर्य नहीं कहा जा सकता। इसीलिये इसकी भूमि कर्ममय मनुष्य शरीर न होकर चिन्मय ब्रह्मभूमि है। वह चिन्मय रसभूमि है यह चिन्मय रसयुक्त 'नरभाव' है।

इन नराकृति प्रियतम की स्वरूपभूत सम्पूर्ण क्रिया में, उनके गुण उनसे नित्य अभिन्न मात्र स्वरूपभूत चिदानन्दघन हैं, अप्राकृत दिव्य हैं और उनमें देह-देही का भेद नहीं है। फिर भी इनमें ऐश्वर्यबोध न होने से एवं प्रियतम भाव होकर समजातीयता रहने से निर्बाध निस्संकोच मिलन संभव है। यहाँ सर्वथा मान, संभ्रम, भय तथा संकोच नहीं है।

हे शुकराज, प्रिया के माधुर्यभाव ने प्रियतम का सम्पूर्ण ऐश्वर्य तो हरण कर ही लिया है, साथ ही, उस ऐश्वर्य के स्थान पर उन्होंने उनके स्वरूप को जिस अशेष अचिन्त्य रससाज से सज्जित किया है वह अनुपम है। अतुल सौन्दर्य, अशेष लालित्य, अचिन्त्य सौशील्य, अनन्त औदार्य और असीम वैदग्ध्य आदि गुण प्रियतम के ब्रह्मस्वरूप में तो नहीं है। प्रिया मायागत, प्रकृतिगत, भी नहीं हैं, जिनसे अज्ञानी, वैषयिक प्राणी आकर्षित होते हों। ये गुण तो ऐसे हैं जिनसे अन्य ज्ञानी मुक्ति-कामी किंवा मुक्त पुरुषों की तो गणना ही नहीं स्वयं प्रियतम श्रीकृष्ण का चित्त भी पूर्णतया आकर्षित एवं विमोहित हो जाता है। हे शुकराज ! प्रिया की यही सच्ची महिमा है।

हे शुकराज ! वैसे तो प्रिया ने अपनी समाराधनारूप महिमा से प्रियतम को अनन्तानन्त स्वरूप गुणों से समलंकृत किया है, परन्तु रसिक भक्तों ने इनमें मुख्यतया २५ गुण परिलक्षित किये हैं:—

(१) अङ्गों की अपूर्व रमणीयता (२) रुचिरता किंवा अपूर्व माधुर्य (३) अङ्गों और गुणों में अभिव्यक्त भगवदीय चिन्मय सत्लक्षण (४) अनुपमेय सर्वजित बल (५) नित्य कैशोर वय (६) मनोज्ञ वाचालता (७) अमृतमय प्रिय वाणी (८) अनन्त बुद्धि (९) प्रतिभा (१०) अनुपम धैर्य (११) वैदग्ध्य (१२) चतुरता

(१३) अनन्त सौख्य (१४) कृतज्ञता (१५) दाक्षिण्य (१६) प्रेमवश्यता (१७) गम्भीरता (१८) वरीयान् (१९) अनन्त कीर्ति (२०) त्रिजगन्नारीमोहनता (२१) नित्य नूतनता (२२) असमोर्ध्व लीला-माधुरी (२३) असमोर्ध्व रूपमाधुरी (२४) प्रेम-माधुरी (२५) वेणु-माधुरी।

हे शुक ! अब तुम स्वयं एकाग्र होकर देखो, प्रियतम श्रीकृष्ण में इन गुणों की कैसी अभिनव सुन्दर अभिव्यक्ति हो रही है !

सारिका के यह कहते-कहते ही शुक एवं सारिका दोनों के सम्मुख एक अभूत पूर्व दृश्य प्रकट होता है। उन्हें स्पष्ट अनुभूति होती है मानों सम्पूर्ण सृष्टि चिन्मात्र भाव है। जीव सत्ता, ईश्वर सत्ता और जगद् सत्ता सब कुछ लुप्त हो जाता है और मात्र प्रेम स्वरूप भाव ही शेष रह जाता है। अपरिणामी अद्वैत-भाव ही भाव रहता है। जैसे तीनों लोकों में सूर्य का प्रकाश सर्व व्यापक विभु है, परन्तु उसका केन्द्र सूर्यमण्डल है, और उस मण्डल में रहने वाले अधिदेवता रूप भगवान आदित्य हैं तथा जैसे यह सूर्यमण्डल भी उनमें केन्द्रित है, उसी प्रकार परमार्थ, सत् स्वरूप चिन्मात्र भाव में ही यह गोलोक भी केन्द्रित है। इस अनन्तानन्त गोलोक रूप महाभाव के बीच उसकी मूल स्वरूपा प्रिया विराजित हैं।

सहसा एक विलक्षण चमत्कार होता है। वह अनन्तानन्त महाभाव लहराने लगता है। घन शान्त, अचल महाभाव में पूर्ण निर्गुण किन्तु साथ ही स्वरूप भूत, भाव भूत तरंगें उठने लगती हैं। ये तरंगें अनन्त हैं, अनन्तानन्त हैं। परन्तु अनन्तानन्त तरंगें अनन्त-गुणमयी हैं, अनन्त आकारमयी हैं। इन अनन्तानन्त तरंगों में कभी अमित सौन्दर्य-भाव की लहर उछलती है और तब ऐसा लगने लगता है मानों सम्पूर्ण महाभाव समुद्र सौन्दर्य ही सौन्दर्य है। तत्क्षण ही दूसरी तरंग आती है—अतुल, अनन्त माधुर्य की तरंग—और तब ऐसा लगने लगता है मानों सम्पूर्ण सौन्दर्य इस माधुर्य की ही प्राथमिक भूमि मात्र थी। समुद्र तो पूर्णरूपेण माधुर्य ही माधुर्य है। तत्क्षण ही माधुर्य में सौन्दर्य अति विचित्र शोभा दिखाने लगता है। ऐसा दिखाई देने लगता है मानों सौन्दर्य और माधुर्य युगपत् महाभाव स्वरूप के दो स्वरूप तत्व हों। तत्क्षण तीसरा चमत्कार होता है। पवित्र सौरभ की एक लहर और आती है, और सम्पूर्ण महाभाव समुद्र सौन्दर्य-माधुर्य से सौरभमय हो उठता है। यह ऐसी सौरभ है जो सुन्दर भी है, मधुर भी है और अनन्तानन्त ब्रह्माण्डों के

सम्पूर्ण सौरभ की आश्रय भी है। इस सौरभ के कण मात्र की छाया की छाया से जगत की सम्पूर्ण सौरभ सत्ता पा रही है। यह ऐसी विलक्षण सौरभ है कि इसने महाभावमय रस समुद्र के समग्र सौन्दर्य को, सम्पूर्ण माधुर्य को सुरभित कर दिया है।

आश्चर्य ! महा आश्चर्य !! एक और भाव लहर आती है। यह लहर मुस्कान की है। इस लहर के साथ एक आश्चर्य घटित हो जाता है। अनन्त सुन्दर, अनन्त मधुर, अनन्त सुरभित भाव सागर मुस्काने भी लगता है। सुधा वर्षिणि दृष्टि से वह देखने भी लगता है। चंचलता और तनुता से युक्त हो जाता है। उसमें सुकुमारता आजाती है। सहज सुषुमा आजाती है। अत्यन्त प्रियता आजाती है और विलक्षण रूप आजाता है।

इसमें आश्चर्य क्या है ? भाव ही तो है। महाभाव समुद्र में यदि सौन्दर्य भाव नहीं रहेगा, माधुर्य भाव नहीं रहेगा, सौरभ नहीं रहेगी, मुस्कान नहीं रहेगी, सुधा वर्षिणि दृष्टि नहीं रहेगी, चंचलता नहीं रहेगी, वक्रता नहीं रहेगी, सुकुमारता नहीं रहेगी, श्री शोभा एवं सुषुमा नहीं रहेगी, प्रियत्व नहीं रहेगा और विलक्षण रूप नहीं रहेगा, तो क्या तिमिङ्गल, महामत्स्य, घोंघें और सींप रहेंगे ? सब भाव ही तो हैं। अनन्त भाव लहरें उमड़ रही हैं। सभी इस महाभाव समुद्र को चमत्कृत कर रही हैं। सब एक साथ अपनी विलक्षण छटा दिखा रही हैं। सर्वव्यापी सर्वभवन समर्थ, सर्व लीलामय, सर्वगुणसम्पन्न, प्रत्यक् भाव से, परमात्व भाव भी उसी प्रकार उत्थित हो रहा है जैसे जल में तरंगें उत्थित होती हैं।

भाव तो सर्वशक्ति सहित है। इस भाव में शक्तियाँ विरहित कहाँ हैं ? यहाँ कुछ भी पृथक् नहीं है। सब महाभाव स्वरूप हैं। अनादि अनन्त सब महाभाव हैं। कोई ज्ञाता चाहे कितना ही महान् हो और ज्ञेय चाहे कितना ही श्रेष्ठ हो, वह ज्ञान से कैसे पृथक् हो सकता है ? ज्ञान ही ज्ञान तो है ! ज्ञान ही सर्वमहान्, सर्वश्रेष्ठ है। ज्ञान में जैसे सब ज्ञातृत्व ज्ञेयत्व सन्निहित है, उसी प्रकार महाभाव में सर्वज्ञान भी सन्निहित है। ज्ञान भी भाव ही है और भाव भी ज्ञान ही है। आस्वादन ज्ञान ही है और भाव आस्वादन ही है। सब ब्रह्म है। भाषा उसे कुछ भी कहदे—ब्रह्म कहदे, महाभाव कहदे, प्रिया कहदे, रस कहदे, सुन्दर कहदे, मधुर कहदे, सौरभ कहदे, मुस्कान कहदे, सुधा-समुद्र कहदे,

चंचल कहदे, वक्र कहदे, श्रीशोभा, सुषमा कहदे, प्रियता कहदे, सर्व-विलक्षण-अभिरूपता कहदे, सब प्रत्यक् महाभाव ही हैं। सब प्रत्यगानन्द स्वरूप हैं। विक्षेप विकल्पवर्जित अन्तःकरण में स्वयं प्रकाशानन्द परिपूर्ण हो जाता है, प्रतिबन्ध रहित स्वप्रकाश ज्ञान स्वावरक अज्ञान को निवृत कर उदय हो जाता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण आविर्भाव एवं तिरोभाव वृत्ति से शून्य, शान्त, सर्वदृश्य रहित, निर्विकार, निर्दृश्यदृक् में ही देह भाव लहरें स्पन्दित हो रही हैं। सभी मात्र महाभाव समुद्र है। वही अपनी लहरों में अनन्त–अनन्त स्वरूप भूत गुणों को प्रकाशित कर रहा है। अनुपम सरलता, परमबुद्धिमत्ता, सहज सेवा, अनुपम धैर्य, विरह जन्य कातरता, मिलन की तीव्रतम उत्कण्ठा, नित्य मिलन की अनुभूति, निरभिमानता, महान् रूपता, वाम्य भावना, अनन्तानन्त विभूतियाँ सब उन्हीं लहरों में प्रकाशित हो रही हैं।

लो देखो, यह लहर विनयशीलता की है। यह सर्वोत्कृष्ट सूची विनम्रता की लहर आई। अब यह अनन्तानन्त पवित्र सर्वत्यागमयता की लहर उठी। इस अत्यन्त विशाल लहर ने तो सब को परिस्नात करा दिया। अहा! कैसी करुणामयता, कैसी उदारता, कैसी रसमयी कर्म कुशलता, कैसा साधुभाव, कैसा परम् सौशील्य, कैसा मधुर चापल्य और कैसी अपार सुगम्भीरता लहरा रही है। सर्व कौशलभाव की इस लहर में ही गीत की, वाद्य की, नृत्य की, अनन्त ललित कलाओं की कुशलता सन्निहित है। मुखरता भाव में प्रिय गुण वर्णन की अत्यधिकता विद्यमान है। मौनभाव में वाणी का, मन का, सर्वइन्द्रिय का मौन सन्निहित है।

लो यह उद्दीपन भाव की लहर है। लहरें पर लहरें आ रही हैं। यह स्वसुखभाव शून्यता की लहर है, यह मात्र प्रियतम सुखेच्छा की लहर है। यह सहज प्रेम की उद्दाम लहर है और यह कैसी विलक्षण भाव लहर है कि इसमें नित्य, प्रेमशून्यता ज्ञानरूपी अति दैन्य महाभाव सिन्धु लहरा रहा है। यह आत्मनिवेदन रूपी भाव लहर आई और इसके साथ ही साथ यह समर्पण स्मृति अभिमान शून्यता की लहर आई। यह प्रेमवश्यता की लहर आई। इसमें सब सखी–सहचरियों के प्रति प्रेम विवशता का भाव भरा है। यह गुण महिमा की लहर आई, इसमें सर्वत्र गुण महिमा दर्शन का भाव सन्निहित है। यह लहर सबके सुख में सुखी होने की है। तत्क्षण ही यह दूसरी लहर आई जो निज

सुख के सहज त्याग की है। यह लहर प्रियतम सुख सम्पादनार्थ सपत्नियों के भी प्रति भी प्रियतायुक्त सुखमय सेवा की है। यह अतिशय धन्यता की है और यह तरंगसमूह—अति गहरी भँवर हैं—रति, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभाव, रूप प्रेम विकास की। लो, यह लहर आई, इस महाभाव के भी आगे मोहन और मादनभाव की। और लो, यह लहर आई सर्व प्रामुख्यभाव की, अभिसार प्रियता की, निकुञ्ज भाव की, और यह पदकमल ममतामयी भ्रमरीरूपता की लहर आई, और यह लहर आई "मैं प्रियतम की अभिन्न प्रियतमा हूँ" इस अभिमान की। कैसी परमोच्च लहरें इस महाभाव सिन्धु में उठ रही हैं !

सारिका एवं शुक दोनों देख रहे थे कि इन सब गुणों की जो मूलसत्ता है वह सर्व व्यापक, निर्मल, निर्लेप, दुर्ज्ञेय, अविनाशी एवं परम मंगल स्वरूप है। प्राकृतिक गुणों का जो आत्मा में निरसन है वह मात्र इसीलिये है क्योंकि वे गुण देश गत, कालगत, वस्तुगत परिच्छेद के जनक हैं। परन्तु ये अनन्त गुण तो सर्वदेश, सर्वकाल और सर्ववस्तु परिच्छेद रहित हैं। ये सजातीय, विजातीय और स्वगत भेदों से भी रहित हैं। इनका जन्म और नाश सम्भव ही नहीं। ये सर्वथा एवं सर्वदा विद्यमान हैं। इनकी न कहीं उत्पत्ति है और न ही विनाश ही है। इनका यदि देहादि जगत् से सम्पर्क हो, ये उनमें परिच्छिन्न हों तभी तो मायामल युक्त हो सकेंगे। ये तो परम निर्मल गुण हैं जो समस्त प्राकृतिक—अप्राकृतिक देहों के, समस्त प्राकृतिक, अप्राकृतिक ब्रह्माण्डों के प्रकाशक हैं। ब्रह्माण्ड क्या हैं, देह ही हैं, जैसे एक ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत अनन्त देह हैं वैसे ही विराट् के अन्तर्गत अनन्त ब्रह्माण्ड हैं। ब्रह्म में तो अनन्तानन्त विराट हैं तब विराट् भी देह ही तो हैं। एक विराट के महाप्रलय से सब विराटों का महाप्रलय थोड़े ही हो जाता है। ब्रह्म में इतनी अनन्त उत्पत्ति है, कि एक विराट के प्रलय का तो वहाँ ज्ञान ही नहीं है कि कहीं प्रलय हो गया है। जिस प्रकार स्वप्न में एक मुहूर्त में सौ वर्षों का अनुभव भ्रम हो सकता है उसी प्रकार इस अनन्तानन्त महाभाव समुद्र में एक क्षण में अनन्त-अनन्त विराटों का उद्भव और विलय ज्ञान स्फूर्त्त हो जाता है। और जिस ज्ञान के आलोक में यह सब प्रतिभासित होता है वह ज्ञान भी महाभाव सिन्धु में उठती ज्ञान नामक भाव लहर की एक उर्मि मात्र ही तो है। मरुभूमि में दिखाई पड़ने वाला जल जैसे मिथ्या ही है, उसी प्रकार महाभाव सिन्धु में उठती ज्ञान नामक लहर की

एक उर्मि में ही प्रतिभासित इन अनन्त विराटों की कोई सत्य सत्ता नहीं है। जब इन विराटों का महाभाव तरंगों में स्थित एक उर्मि में मात्र क्षणिक प्रकाश है, तब किस ईश्वर की, किस महाकाल की, किस देश की सत्ता सम्भव है। फिर इनके अन्तर्गत परिच्छिन्न ईश्वरीय, दैवी, लौकिक गुणों की भी कहाँ, कैसी सत्ता सम्भव है ? फिर भी इन अनन्तानन्त विराटों में जो अनन्तानन्त गुणों का नित्य प्रकाश हो रहा है, वह इन भाव लहरों में सन्निहित भावमय गुणों की प्रातिभासिक चमक ही है।

शुक को अनुभव हो रहा था, ये सब गुण ज्ञेय रूप में भिन्न-भिन्न प्रतीत मात्र ही हो रहे हैं–परन्तु ज्ञान रूप में सब गुणों की एक ही 'प्रिया' किंवा महाभाव ही सत्ता है। इस महाभाव में अनन्तानन्त लहरें हैं। परन्तु सब में सत्तत्व मात्र भाव ही भाव हैं। भाव में कहीं किसी अन्यत्व का स्पर्श ही सम्भव नहीं है। समाधि में जैसे अहंकार आदि सब वासनाओं से रहित अति सूक्ष्म बुद्धि की अखण्ड ब्रह्माकार वृत्ति में आरुढ़ केवल चिदात्मा ही प्रकाशित होती है, उसी प्रकार इन गुणों में भी, गुण रूप महाभाव समुद्र की लहरों में भी, सब स्वसुख वासना से रहित परम विशुद्ध प्रेमाकार वृत्ति में आरूढ केवल प्रियात्मा प्रिया ही, महाभाव ही प्रकाशित हो रहा है। प्रेम स्वरूप प्रिया के अतिरिक्त कोई भास्य भिन्न नहीं है, कोई ज्ञेय भिन्न नहीं है। सर्व निरपेक्ष, निराभास, स्वयं प्रकाश प्रिया सब गुण लहरियों में, सब भिन्न–भिन्न ज्ञेयों में, भास्य में, ज्ञान रूप में अत्यन्त प्रत्यक्ष हैं। वे ही ज्ञाता हैं, वे ही ज्ञान हैं और वे ही ज्ञेय हैं। शुक ही प्रिया है, शुक ही ज्ञाता है, शुक ही ज्ञान है एवं शुक ही ज्ञेय है। अतः इन सब गुणों में, सब लहरों में सर्वातीत, एक रस निर्विकल्प, अपरोक्ष प्रियाभाव महाभाव ही जाज्वल्यमान होने से ये सब अनन्तानन्त गुण स्वरूपतः एक दूसरे से पूर्ण अभिन्न है।

शुक अनुभव कर रहा था कि मात्र प्रिया सत्य हैं, यह महाभाव ही पूर्ण सत्य है। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी भासित है, वह असत्य है। सब ब्रह्माण्ड देह, सब विराट् देह विनश्वर हैं। भाव ही सत्य है, भाव के अतिरिक्त सब अभाव है, असत् है। ये सब नारायणादि अवतार मात्र प्रिया हैं। प्रिया ही प्रत्यगात्मा हैं।

सहसा शुक देखता है प्रिया रूप इस महाभाव समुद्र में पुनः एक

विशेष लहर उठती है। अनन्तानन्त गुणरूपी लहरें अपने गुणों सहित आकार निर्माण करने लगती हैं। समग्र ऐश्वर्य भाव महालक्ष्मी के रूप में परिणत हो जाता है। परम विचित्र वैकुण्ठ का दर्शन होने लगता है। ज्ञानभाव की लहर महा सरस्वती के आकार में परिणत हो जाती है, और परम विलक्षण ब्रह्मलोक के दर्शन होने लगते हैं। ये महाशान्ति देवी आ गयीं। ये ब्रह्मविद्या ब्रह्मशक्ति खड़ी हैं। ये महाकामशक्ति श्रीसुन्दरी मुसका रही हैं। कैसी ज्ञान मयी छटा है इनकी! ये अनन्त सिद्धियाँ सिद्धेश्वर कपिल की सेवा कर रही हैं। ये भारती हैं। ये सीता हैं। ये रुक्मिणी हैं। ये द्रौपदी हैं। ये सत्यभामा हैं। अनन्त-अनन्त शक्तियाँ अपने-अपने लोकों सहित इसी महाभाव समुद्र में प्रगट होकर दर्शन देने लगती है। पुनः सब सहसा विलीन हो जाता है और फिर एक अभिनव अभूतपूर्व दर्शन शुक को होने लगता है:—

"प्रिया अपने प्रियतम का शृंगार कर रही हैं। कैसे सुरम्यांग हैं प्रियतम के। प्रिया ही, महाभाव ही, रस रूप में प्रकाशित जो हो रहा है। प्रिया ही प्रियतम के सब सुरम्यांग जो बन रही हैं। सुरम्यता महाभाव समुद्र की एक उर्मि होता है। शास्त्रकारों ने सुरम्यता की परिभाषा देकर लिखा है–जिसमें श्लाघ्य अंगो का सन्निवेश हो वे सुरम्यांग कहलाते हैं।

"श्लाघ्याङ्ग सन्निवेशो यः सुरम्याङ्गः स कथ्यते।"

परन्तु चिन्मय स्वरूप के मुख को चन्द्राकार कहना किंवा उनके कर युगल को सरसिज की उपमा देना श्लाघ्य नहीं कहा जा सकता। उनकी चिन्मय अंगद्युति से सब श्लाघ्य उपमेय भी म्लान हो जावें चिन्मय रसराज के सुरम्यांग काव्य में ऐसे ही होने चाहिये। शुक गा उठा—

शारदीय पूर्णिमा सुनिर्मल स्निग्ध सुधावर्षी द्युतिमान
ज्योत्स्ना-स्मित-समूह विकसित शुचि शीतल अगणित चन्द्र महान्
जिनकी विश्व मोहिनी अंग द्युति से सब हो जाते म्लान
परमोज्ज्वल नीलाभ श्याम वे अनुपम विमल दीप्ति रसवान
(पू० हनुमानप्रसादजी पोद्दार के स्वरचित काव्य से)

अहा! कैसे सुरम्यांग हैं? सुनिर्मल, सर्वथा प्राकृतिक मलरहित। परम विशुद्ध भाव प्रकाश रसस्वरूप जो शारदीय पूर्णिमा है, वह भी

सुनिर्मल, प्राकृत मल रहित विशुद्ध प्रेम सुधा की स्निग्ध वर्षा करती है। उस सुनिर्मल भाव-द्युति से, प्रेम-प्रकाश से चमकता भाव-प्रकाश रसराज प्रियतम का परम रसमय मुख मंडल है। और महा आश्चर्य, पूर्णिमा को तो चन्द्रमा ही चमक कर पूर्णिमा बनाता है, परन्तु इस महामरकत श्यामाभ रसमय मुख मंडल से जो स्मिति-समूह, हास छटा रूप परम पवित्र अत्यन्त सुशीतल ज्योत्सना विकसित हो रही है, उससे तो अगणित चन्द्रमाओं को सत्ता प्राप्त हो रही है। और ये अनन्त-अनन्त चन्द्रमा जिनकी विश्व मोहिनी अंगों की महामरकत श्यामाभ छटा से म्लान हो जा रहे हैं, ऐसे परमोज्ज्वल, नीलाभ, अनुपम, विमल दीप्ति से देदीप्यमान, रसवान प्रियतम के सुरम्य अंग हैं। प्रियतम के अंगों में इस प्रकार का सुरम्यता नामक गुण प्रकाशित हो रहा है। अब रुचिरता का उदाहरण लें। शास्त्रकार कहते हैं:—

"सौन्दर्येण दृगानन्दकारी रुचिर उच्यते"

"जो सौन्दर्य नेत्रों को आनन्दकारी आनन्द देने वाला हो, वह रुचिर कहलाता है।" फिर कैसे रुचिर है प्रियतम ? प्रिया ही तो अपने प्रियतम की सम्पूर्ण रुचिरता है। रुचिरता भी तो महाभाव समुद्र की माधुर्य लहर की उर्मि ही है। शुक पुनः गा उठा—

सुर मुनि मनुज—दनुज पसु—पंछी को अस जो जग जायो।
लखिकै छवि—माधुरी ललनकी सुधि बुधि नहिं बिसरायो।।
जोगी परम तपस्वी, ज्ञानी जिन निज निज मन मार्‌यौ।
तनिक निरखी मुसक्यान मधुर तिन बरबस जीवन वार्‌यौ।।
बिसर्‌यौ सहज विराग, ब्रह्मसुख, थकित विलोचन ठाड़े।
तनु पुलकित दृग प्रीति सलिल, द्रुत हृदय प्रेमरस बाढ़े।।

(पू० हनुमानप्रसादजी पोद्दार के स्वरचित काव्य से)

कैसी रुचिरता है ? पदार्थ की सारी रुचिरता तो अनुभव, स्मृति और संस्कार का परिणाम है। स्मरण से ही उस रुचिरता का दर्शन सम्भव है। परमर्थ बोध की दशा में इन सब रुचिरताओं का आत्यन्तिक नाश हो जाता है। जीव, जगत एवं सुख में जो भी रुचिरता हम देखते है, सुनते हैं, वह सब तत्रत् वासना या अविद्या का विलास मात्र है। वस्तुभूत वह कहीं कुछ भी नहीं

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

है। यह सब वासना—विजृम्भण मात्र है। इसीलिये सुर, असुर, मानव, दानव, मुनि, ऋषि, पशु-पंछी सबको अपनी-अपनी वासनानुसार अलग-अलग प्रकार की सुन्दरता रुचिर लगती है। सुरगणों को सुरबालाओं में सुन्दरता बोध होता है, मनुष्यों को मानवी सौन्दर्य प्रिय है, मुनियों को मानसिक, ऋषियों को ज्ञानात्मक, परन्तु जो सौन्दर्य सबको रुचिर लगे, वह तो भावात्मक रसमय विशुद्ध चिन्मय सौन्दर्य ही सम्भव है। तो ऐसी अपूर्व चिन्मय रुचिरता से प्रियतम की सज्जा प्रिया कर रही हैं जो भी सृष्टि में सृजन है, चाहे वह देव का हो, चाहे दनुज का, मुनिका हो चाहे मनुज का, पशु का हो चहे पंछी का, जड़ का हो चाहे चेतन का, सब सृजन प्रियतम के रूप की रुचिरता को देखकर सुध-बुध भूल जाता है। वे योगी, वे तपस्वी, वे ज्ञानी जो अपने मनों को मार चुके हैं वे भी उनकी तनिक-सी मुसकान लखकर बरबस अपना जीवन न्यौछावर कर देते हैं, वे अपने सब वैराग्य को भूल जाते हैं। वे ब्रह्म सुख भी भूल जाते हैं, और एकटक अपलक नेत्रों से प्रियतम की रुचिर मधुरता का पान करते हैं। उनके नेत्र थक जाते हैं परन्तु फिर भी पलक गिरते नहीं। शरीर पुलकित हो उठता है, नयनों में प्रेमाश्रु छलछला आते हैं, प्रेमरस बढने से उनका हृदय अत्यन्त द्रुत गति से स्पन्दित हो उठता है। "तनौ गुणोत्थ मङ्कोत्थमिति सल्लक्षणद्विधा" के जितने सल्लक्षण कहे जाते हैं-वे दो प्रकार के शास्त्रों में वर्णित हैं-दोनों प्रकार के सल्लक्षण पूर्ण विद्यमान हैं प्रियतम में गुणोत्थ एवं अङ्कोत्थ सल्लक्षणों की शास्त्रों में यही तो परिभाषा है-गुणोत्थं स्याद् गुणै र्योगं। रक्तता तुंगताद्भिभिः एवं रेखामयं रथाङ्गादि स्यादङ्कोत्थं करादिषु। सत्यांश में तो सम्पूर्ण सद् और शुभ तो प्रिया ही हैं तब प्रिया प्रेमाभार में सर्वसद् और सर्व शुभ तो हैं ही। शुक पुनः गा उठता है—

श्री विग्रह का वर्ण नील-श्यामल, उज्ज्वल आभा से युक्त।
कमल-नीलमणि-मेघ सदृश कोमल चिक्कण रस से संयुक्त॥
काले घुंघराले अति चिकने घने सुशोभित केश कलाप।
मुकुट मयूर-पिच्छ का मनहर मस्तक पर हरता हृत्ताप॥
मधुकर सेवित कल्पद्रुम के कुसमों का विचित्र शृंगार।
नव कमलों के कर्ण फूल, जिन पर भौंरे करते गुञ्जार॥
चमक रहा सुविशाल भाल पर गोरोचन का तिलक ललाम।
चित्त-वित्तहर धनुषाकार भृकुटियाँ अतिशय शोभाधाम॥

मुख मण्डल की कान्ति शरद्-शशि सदृश पूर्ण अकलंक अतोल।
नेत्र कमल दल से विशाल, निर्मल दर्पण से गोल कपोल॥
दीप्त रत्नमय मकराकृति कुंडल की किरणों से सविशेष।
कीर चंचुमय सुन्दर नासा हरती जन मन का सब क्लेश॥
अरुण अधर बन्धूक सुमन से चन्द्र कुन्द जैसी मुसकान।
सम्मुख दिशा प्रकाशित करती दिव्य छटा से अति द्युतिमान॥
वन के कोमल पल्लव पुष्पों से निर्मित निर्मल नवहार।
मनहर शंख सदृश ग्रीवा की शोभा बढ़ा रहे सुखसार॥
कंधों पर घुटनों तक लटका पारिजात पुष्पों का हार।
मंत्र मधुप मँडराते उस पर करते मधुर-मधुर गुंजार॥
हार रूप नक्षत्रों से शोभित वक्षस्थल पीन विशाल।
कौस्तुभ मणि रूपी भास्कर है आसमान उसमें सबकाल॥
शुचि श्रीवत्स चिन्ह वक्षस्थल पर शुभ उन्नत सिंह स्कंध।
सुन्दर श्री विग्रह से निस्सृत विस्तृत विमल मनोहर गंध॥
भुजा गोल घुटनों तक लम्बी नाभि गंभीर चारु विस्तार।
उदर-उदार, त्रिवलि रोमावलि, मधुप पंक्ति सम शोभा सार॥
दिव्य रत्न-मणि-निर्मित भूषण श्री विग्रह पर रहे विराज।
रहे विराज अंगद, हार, अंगूठी कंकण, कटि करधनी मनोरम साज॥
दिव्य अंगरागों से रंजित अंग सकल माधुर्य निवास।
विद्युद्वर्ण पीत अम्बर से आवृत रम्य नितम्बावास॥
जङ्घा-घुटने उभय मनोहर, पिंडली गोलाकार सुठार।
परम कान्तिमय उन्नत श्री पादाग्र भाग सुषमा-आगार॥
नख-ज्योति निर्मल दर्पण-सम, अरुण-वर्ण माणिक्य समान।
अंगुलि-दल से परम सुशोभित उभय चरण-पङ्कज सुख-खान।
अंकुश-चक्र-शङ्ख-यव-पङ्कज वज्र ध्वजा चिह्नों से युक्त॥
अरुण हथेली, तलवे सुन्दर करते जन को बन्धन-मुक्त॥
शुचि लावण्य-सार समुदाय विनिर्मित सकल मधुर श्री अंग।
अनुपम रूप-राशि करती नित अगणित मारों का मद भंग॥
मुख सरोज से मुरली मधुर बजाते, गाते नन्दकिशोर।
दिव्य राग की सृष्टि रहे कर आनन्दार्णव मुनि-मन चोर॥

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुरली ध्वनि से आकर्षित हो वन का जीव जन्तु प्रत्येक।
निरख रहा श्री मुख को अपलक बार-बार शुचि मस्तक टेक।।
(पूज्य श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार के स्वरचित काव्य से)

जितने भगवान के अनाद्यनन्त कालों में लीलावतार, पुरुषावतार, अंशावतार, कलावतार, गुणावतार, युगावतार, आवेशावतार, विभवावतार, अर्चावतार हुए हैं, जो सब नित्य-शाश्वत, हानोपादान रहित अप्राकृत हैं, जन्म-मृत्यु सर्व दोषों से रहित सर्वगुणनिलय, पूर्ण, ज्ञानस्वरूप, परमानन्द सन्दोह हैं उन सब में जितने अंगोत्थ, किंवा गुणोत्थ सल्लक्षण विद्यमान होते हैं वे सब सल्लक्षणों की वारिधि तो मात्र प्रिया ही हैं, फिर वे जब अपने प्रियतम को सजावेंगी तो किसी भी लक्षण को छोड़ेंगी थोड़े ही जो सर्वसल्लक्षण वारिधि स्वयं हैं वे ही प्रिया प्रियतम को सजा रही हैं।

प्रिया में सर्वशक्ति है, सर्वगुण है, तब वे अपने प्रियतम को किसी भी शक्ति एवं गुण से अभावी कैसे रख सकती हैं! पूर्ण महाभाव है प्रिया फिर पूर्ण महाभाव का प्रियतम पूर्ण रसराज होना चाहिये, किसी भी शक्ति का किसी भी प्रकाश का किसी भी गुण का अभाव उसमें सम्भव ही नहीं। यहाँ तो कोई लीला क्षेत्र नहीं है-कोई लीला क्षेत्र होता, तब तो उसके अनुरूप शक्ति का प्रकाश होता- यहाँ तो पूर्ण महाभाव की पूर्ण अभिव्यक्ति पूर्ण रसराज प्रियतम हैं। इसीलिये सर्व सल्लक्षण पूर्ण विद्यमान हैं प्रियतम में। साक्षात् परात्पर पूर्ण ब्रह्म, पूर्ण पुरुषोतम, सर्व व्यापक, सर्व कर्त्ता, सर्वमय, सर्वातीत, अप्रमेय, दिव्यानन्दस्वरूप, स्वरूपभूत दिव्यातिदिव्य कल्याण गुणगणवारिधि, आनन्दाकार सर्वशक्ति विशिष्ट, सर्वकला पूर्ण, पूर्णानन्द, पूर्ण भोक्तृत्व, पूर्ण कर्तृत्व, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण ज्योति, पूर्ण शक्ति, पूर्ण ऐश्वर्य, पूर्ण विरुद्ध शक्तित्व और पूर्ण अदोष स्पर्शित्व विद्यमान है प्रियतम में। नील वर्ण का श्यामश्री विग्रह है प्रियतम का, सर्वत्र उल्लास और उत्सवमयी जाज्वल्यमान ज्योत्सना आभा से स्वप्रकाशित है वह। पूर्णानन्द, परमानन्दसन्दोह ज्योति स्वप्रकाशित है प्रियतम के अंग-अंग से। उज्ज्वल आभा तो प्रिया की है फिर प्रियतम के अंगो से जो उज्ज्वल आभा प्रसरित हो रही है वह प्रकट कर रही है कि प्रिया ही इस श्यामाभ प्रियतम की मूल हैं, उत्स हैं। वे ही इसकी मूल प्रकाशिका महाशक्ति हैं। ये कमल के समान सुकोमल हैं, नीलमणि के समान स्वप्रकाश हैं, मेघ के सदृश विभु हैं। कमल की कोमलता नीलमणि की चिक्कणता और

मेघ की सरसता भी तो विद्यमान है इनमें। केश कलाप काले हैं, घुंघराले हैं, अति चिकने हैं, घने हैं साथ ही घनी शोभा से भी युक्त हैं। और उनके ऊपर मयूर पिच्छ का मुकुट अत्यन्त मनोहर शोभा पा रहा है। यह सम्पूर्ण हृदय के ताप को तुरन्त हरण करने वाला है। यह मयूर पिच्छ का मुकुट तो है परन्तु इस पर कल्पद्रुम के कुसमों का शृंगार भी किया हुआ है–ये सब प्राकृतिक स्वर्ग के कल्पद्रुम नहीं हैं जो मात्र प्राकृतिक मिथ्या शरीर गत वासनाएँ ही पूर्ण करते हैं, ये तो प्रिया का कृपा भाव गुण है जो कल्पवृक्ष रूप में गोलोक में सर्वत्र प्रकट है। यहाँ की तो प्रत्येक लता कल्पलता है और प्रत्येक वृक्ष कल्प वृक्ष है। तो प्रिया की कृपा ही मस्तक पर मयूर पिच्छ के मुकुट के भी ऊपर शोभा पा रही है। तभी यह मुकुट समस्त हृताप का हरण करने वाला है। स्वसुख वृत्ति रूप काम भाव ही तो हृत्ताप है। इससे बढ़कर कोई ताप हो ही नहीं सकता। और इसका पूर्ण निषेध मात्र प्रिया कृपा ही है। यही तो स्पष्ट संकेत है। और कानों में नवकमलों के कर्णफूल शोभा दे रहे है। कानों में कमल के कर्णफूल क्यों ? जैसे ये कर्ण भूषण बने कमल प्रतिक्षण प्रियतम के कानों में चेतावनी देते रहते है–अपने किसी गुणों का रूप का अभिमान मत कर लेना तुम्हारी समस्त सत्ता प्रिया हृदय का प्रेम भाव मात्र है। कमल तो भाव का ही प्रतीक है–अस्तु उन्हें कानों में इसीलिये प्रियतम ने धारण कर लिया है मानों ये कमल सदा स्मृति कराते रहेंगे रसराज तुम्हारी सब सत्ता तुम्हारा सब विकास प्रकाश मात्र महाभाव है–वही तुम्हारा मूल है, उत्स है उत्पत्ति भूमि है। और सुविशाल भाल पर जो तिलक है यह गोरोचन का है, प्रिया का चरण चिन्ह ही तिलक रूप में प्रियतम सदा मस्तक पर धारण किये रहते हैं। गोरोचन तो ग्वालिन के चरणों की धूल है। गोमूत्र से सनी धूलि ग्वालिन के ही चरण कमलों में लगी रहेगी।

और प्रिया का वाम्य–भाव ही तो धनुषाकार भौहों के रूप में व्यक्त है। प्रिया में जो मानरूपता नामक भाव है वही तो भौहों की धनुषाकृति है तभी तो ये चित्त भौहें चित्त रूपी वित्त का हरण करने वाली हैं और साथ ही साथ अतिशय शोभाशालिनी हैं। शरद शशि के समान मुख मंडल की कान्ति है। यह शशिरूपता भी नित्य पूर्ण है, चन्द्रमा की तरह घटने बढ़ने वाली नहीं, और पूर्ण निर्मल है, प्राकृतिक चन्द्र की तरह कलंक कालिमा से युक्त नहीं, और अतोल, अनन्त, अपार, कान्तिमय है, कहीं किसी भी प्रकार के अभाव से युक्त

नहीं, पूर्ण भावमय है। यह कान्ति क्या है ? क्या प्राकृतिक तेज है ? कदापि नहीं। यदि स्वप्रकाशता है तब तो अणु-अणु में होनी चाहिये। मुख मण्डल में ही यह विशेष चमक किसकी है ? इसकी उपमा भी शरद ऋतु के पूर्ण शशि को दी गई है। हा, प्रेम ही परम शीतल है। मुख मण्डल पर प्रेम की ही कान्ति शरद-शशि की कान्ति की उपमा पा सकती है। प्रेम ही नित्य पूर्ण है, कभी घटने बढ़ने वाला नहीं है, वही अकलंक पूर्ण निर्मल है, और वही नित्य वर्धनशील होने से अनन्त, अतोल, अपार है। नेत्र भी प्रेममय हैं प्रेममय दृष्टि से युक्त हैं तभी पूर्ण विकसित कमलाकृति हैं विशाल हैं। और गोल कपोल इतने निष्कलंक हैं कि उन्हें दर्पण की उपमा दी जा सकती है। प्रेम ही कपट रहित है, इसीलिये प्रेम में दोष का कुछ भी छिपाव नहीं रहता-यही दर्पण का भाव है। ये कपोल निष्कपटता से युक्त हैं तभी मकराकृति कुण्डलों की किरणों से विशेष रूप से झलमलाते रहते हैं। मकराकृति कुण्डलों की क्या विशेषता है ? कुण्डल कानों में तो यह संदेश देते हैं कि:—

देखो मकर जब तक जल में डूबा रहता है उसे कोई क्षति नहीं होती, उसका जीवन सुरक्षित रहता है। और जल से निकल कर बाहर नदी के किनारे आने पर ही उसे शिकारियों द्वारा शरीर क्षति, अंग क्षति होती है उसके उपरान्त तो न उसे जल में शान्ति मिल पाती है एवं न ही स्थल में। जल में कछुए आदि जलचर उसे नोंच नोंच कर काटते हैं और पृथ्वी में आने पर कीड़े लग जाते हैं-और वे इसे अतिशय पीड़ा देते हैं। ठीक इसी प्रकार प्रियतम श्याम सुन्दर प्रिया प्रेमरूप-जल में जब तक निवास करते हैं उन्हें प्रेम की शीतलता और विहार रूप सर्व सुखमय जीवन उपलब्ध रहता है परन्तु ज्यों ही वे प्रेम स्वरूप को त्याग कर ऐश्वर्य भूमि स्वीकार करते हैं, त्यों ही स्वसुखकामी भक्त गणों की कामनाएँ उनको क्षत करने लगती हैं, कहीं धर्म संस्थापना का प्रश्न उठ खड़ा होता है, कहीं पृथ्वी देवी भार ग्रस्त होकर पुकारती सम्मुख आ जाती है, कहीं मुक्ति कामी लोग मुक्ति याचना करने लगते है, कहीं कोई पतित पावनादि विरद उच्चारण करने लगता है-अब तो सर्वत्र कामनाओं एवं उनकी पूर्ति करने का श्रम ही कछुओं और कीड़ों की तरह काटने लगता है। और यह प्रेम महिमा ही तो इन कुण्डलों की ज्योत्सना है जिससे ये निष्कपट कपोल सदा आभान्वित द्योतित रहते हैं। कीर चंचु जैसे शीघ्र पक्व मिष्ट फल को पहचान लेती है उसी प्रकार प्रियतम की नासिका भी इतनी रसमयी है कि वह तत्क्षण

शुद्ध भाव को पहचान लेती है और प्रियतम भाव परबश हो जाते हैं परन्तु कहीं भी यदि तनिक भी स्वसुख लालसा रहती है, वह चाहे कितनी ही छिपी हुई क्यों न हो, उनकी नासिका उसे सूंघ लेती है। और प्रियतम को वह वशीकृत नहीं होने देती। अवश्य ही यह नासिका 'यो यथा मां प्रपद्यन्ते ता स्तथैव भजाम्यहम्' के सिद्धान्तानुसार सबके क्लेश सबकी कामना की पूर्ति कर दूर कर देती है। बन्धु जीव वृक्ष के सुमन ही तो बन्धूक सुमन हैं–प्रियतम की बंधु तो प्रिया ही हैं–वे ही ऐसी बंधु हैं जो उनका जीवन भी है और उनका सुमन प्रेम के अतिरिक्त क्या है–अत्यन्त रसमय प्रेम ही तो प्रियतम के अधरों का अधरामृत है वही उसकी अरुणाई है। और मुसकान चन्द्रमा की कौमुदी किंवा श्वेत कुंद पुष्प के समान है। चन्द्रमा एवं कुंद दोनों प्रिया वाची ही है और चन्द्रमा की ज्योत्स्ना और कुंद पुष्प का विकसित हास दोनों प्रिया का प्रेम ही है।

तो यह प्रेम ही अपनी दिव्य छटा से प्रेम दिशा का प्रकाश करता है और महाभाव सागर का पथ निर्देश करता है। वन ही वृन्दावन है इस वृन्दावन के अति कोमल पल्लव पुष्प तो प्रेम के परम निर्मल अनेकानेक भाव ही है इन्हीं का नवहार प्रियतम धारण करते हैं एवं शंख तो धर्मवाची है धर्म के आधार पर ही तो प्रेम रूपी मुसकाता मुख टिका है–इसीलिये शंख सदृश ग्रीवा है जो समस्त आनन्दों का, सुखों का सार प्रेम है उसकी शोभा बढ़ा रही है। पारिजात तो प्रिया की कृपा भाव का ही प्रतीक है अतः उसके पुष्पों की माला प्रियतम के घुटनों तक लटक कर उद्घोष कर रही है कि प्रियतम कन्धो से घुटनों तक कृपामय हैं और कृपाकांक्षी भक्तगण ही भ्रमर हैं जो गुंजार कर रहे हैं। अनन्तानन्त ऐश्वर्य शक्तियां नक्षत्र हैं जो पीन वक्षस्थल पर हार रूप से सुशोभित हैं और इन शक्तियों के मध्य कौस्तुभ मणिरूप में साक्षात् श्रीदेवी ही सूर्य के समान निरन्तर चमक रही हैं। श्रीदेवी के साथ ही साथ श्रीवत्स का चिन्ह भी अंकित है। शौर्य के प्रतीक उन्नत स्कंध हैं जो अनन्त बल का सन्निवेश प्रकट कर रहे हैं। प्रियतम के श्रीअंगों से विशुद्ध निर्मल अपरिच्छिन्न सर्वव्यापिनी मनोहर गन्ध निकलती रहती है। गोल–गोल भुजाएँ हैं जो घुटनों तक लम्बी हैं। गंभीर नाभि है जिसका विस्तार अत्यन्त चारु प्रतीत हो रहा है। उदर उदारता रूपी भाव का प्रतीक है। उसमें त्रिवलि हैं–यह त्रिवलि ही सच्चिदानंद हैं मधुप पंक्ति सम ज्ञानी भक्तों की मुनियों ऋषियों की टोली मानो रोमावलि है जो शोभा बढा रही है। अनन्तानन्त ऐश्वर्यावतार, वैभवावतार, अंशावतार, ही रत्नमणि निर्मित भूषण

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

हैं–यह अंगद बल का प्रतीक है, हार ऐश्वर्य का प्रतीक, अंगूठी, कंकण, कटिमेखला आदि मच्छ के कच्छ के अवतारों के प्रतीक हैं मनोहर सज्जाओं से सब प्रियतम में सज्जित विराज रहे हैं। सम्पूर्ण अंश अङ्गरागों से रंजित हैं यह अंगराग प्रेम का विकसित भाव है और उनसे अनुपम माधुर्य का प्रकाश हो रहा है। कटिभाग दिव्य पीतवस्त्र से आवृत है। जङ्घा घुटने उभय अत्यन्त मनोहर हैं और गोलाकार पिंडलियाँ भी परम सुन्दर हैं। चरणों का अग्रभाग परम कान्तिमय, उन्नत है और शोभा का निवास है। अत्यन्त निर्मल दर्पण के समान नखज्योति चमक रही हैं, दोनों चरण पंकज के समान हैं और सुख की खान हैं। चरण तलों में अंकुश, चक्र, शंख, यव, पङ्कज, वज्र और ध्वजा आदि चिन्ह सुशोभित हैं, अरुण हथेली एवं तलवे इतने सुन्दर हैं कि सर्वजन को ध्यान मात्र से बंधन-मुक्त करने वाले हैं। अनुपम रूप राशि अगणित काम का मद भंग कर रही है। वे नन्दकिशोर अपने मुख कमल से वेणु बजाते हैं, गाते हैं और मुनिमन चोर दिव्याति दिव्य रसमय रागों की सृष्टि का आनन्दार्णव रूप हो रहे हैं।

इस मुरली ध्वनि से प्रेमवन वृन्दावन का प्रत्येक जीव जन्तु आकर्षित है और उनके प्रेममय मुख को अपलक निहार रहा है। वह बारम्बार उनके चरणों मे न्यौछावर हो रहा है ऐसे सर्वसल्लक्षण सम्पन्न प्रियतम हैं। यहाँ जो वर्णन है प्रियतम के स्वरूप का उसमें उनके नेत्र प्रान्त में कमल की रक्तता, नखज्योति का अरुणवर्ण, चरणों में भी पंकज के समान रक्तता, करतलों हथेली भी अरुण है, अधरोष्ठ बधूक के समान अरुण हैं। यह रक्तता रूप सल्लक्षण है। इसी प्रकार भाल की विशालता, नेत्रों की विशालता, वक्षस्थल की विशालता है। फिर वक्षस्थल में, कंधे में, नासिका में तुंगता है। नाभि में गंभीरता इसी प्रकार नासिका भुजा, नेत्र, ठोड़ी और जंघाएँ इनमें दैर्घ्य है। संक्षेप में यह सम्पूर्ण सौन्दर्य महापुरुषों के ३२ शुभ लक्षणों से युक्त है। इसी प्रकार इनके हथेली में और चरणों में अंकुश, चक्र, शंख, यव, पङ्कज, वज्र, ध्वजा, आदि जो चिन्हों में अंङ्कोत्थ शुभ लक्षण हैं। अतः यह रूप सर्व लक्षणों से सब सल्लक्षणों से सम्पन्न हैं। और प्रिया श्रीराधा ही जिनका बल हैं प्रेम ही जिनका बल है ऐसे सर्व बलनिधान प्रियतम का अनुपमेय सर्वजित् बल कैसा है ? बलवान की यही तो परिभाषा है 'प्राणेन महता पूर्णो बलीयानिति कथ्यते'। महान् पौरुष एवं प्राणशक्ति से परिपूर्ण ही तो बलवान है।

शुक पुनः गाउठा—

दैत्य-दानवों का वध करके, किया सहज उनका उद्धार।
लघु अंगुली पर गोवर्धन धर इन्द्र-दर्प का किया संहार॥
मुरली मधुर बजा सबको कर मोहित हरी चित्त-सम्पति।
दावानल पी-कालिय वशकर व्रज की दारुण हरी विपत्ति॥

× × × × × × ×

मथुरा पहुँच किया धोबी का, कुब्जा का मंगल उद्धार।
मार कुवलया को, मुष्टिक-चाणूर मल्लका कर संहार॥
पापी कंस क्रूर का वध कर देकर उग्रसेन को राज।
करने लगे विविध लीला फिर ज्ञान-शक्ति लीला रसराज॥

(पू० श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार के काव्य संग्रह से)

कैसा सर्वजित बल है। कोई बल किसी का सदा के लिये वध नहीं कर सकता। किसी के शरीर को मार देना कहाँ सच्चा बल है। किसी के शरीरत्व को मार देना ही सच्चा बल है। शरीर तो प्रतिक्षण आप मर रहा है उसे मारना तो अपने आप ही संघटित हो रहा है। शास्त्रों में कहा है—

नित्यदाह्यंग भूतानि भवन्ति न भवन्ति च।
कालेनालक्ष्य वेगेन सूक्ष्मत्वात्तन्न दृष्यते॥

श्रीमद्भागवत॥ ११-२२-४२॥

सऽयं वीपोऽर्चिसां यद्वत् स्त्रोतसां तदिदं जलं।
सोऽयं पुमानिति नृणाँ मृषा गीर्धी मृषा युषाम्॥

॥ ११-२२-४४॥

प्रियतम में ही मात्र ऐसा प्रेम बल है कि वे किसी को मारते हैं तो फिर उसका समूचा अहंकार भी मार कर स्वयंरूप कर लेते हैं। दैत्य दानवों को वध किया तो उन्हें अपने स्वरूप में लय कर लिया, इन्द्र पर कृपा की तो उसे अपने मधुरातिमधुर गोपवेश का व्रजभाव का दर्शन कराया। गोवर्धन को अँगुली पर धारण किया तो उसे अपनी विहार-स्थली बना ली। वेणु वादन उनके प्रेम बल का सबसे बड़ा चमत्कार है। सर्व तापी दावानल को तो वे पी जाते हैं— प्रेम बल इसी का नाम है जो सर्व ताप को पीनेवाला ही

सच्चा प्रेमी है विग्रह कालियनाग को भी जो वशीकृत करले वही सच्चा प्रेमबली है। मथुरा जाकर कंस के मलिन वस्त्र धोने वाले निकृष्ट धोबी का भी जिन्होने उद्धार कर दिया–पूर्ण अमंगल स्वरूप कुब्जा को मंगलमय बना दिया। कुवलया कुत्सित बंधनों से बन्धे मदमसरावतार हाथी जैसे असुर को भी उन्होंने सदा के लिये मार दिया, मुष्टिक चाणूर जैसे बलवानों को भी परास्त कर दिया। ऐसी चिन्मय शक्ति का प्रकाश उन प्रेमात्मा प्रियतम में नित्य है। कैसा प्रेमबल प्रिया ने उन्हें दिया है!

शुक स्पष्ट देख रहा है। प्रियतम मात्र प्रिया का रस हैं। वे अवशेष विशेष शून्य हैं– प्रिया ही प्रियतम रूप दृश्य में भावान्वित हैं अतः उनका ही रस प्रकाशित होकर प्रियतम रूप में दृष्टिपथ में आ रहा है। प्रिया भी अशेष दृश्य रहित प्रत्यगात्मा भाव हैं वे भी रस रूप ही प्रकाशित हो रही हैं। शुक एक मात्र प्रिया चिन्तन में निरत हो रहा है–उसका निर्विकार, निर्वृत्तिक अखण्ड प्रियाकार में आकारित चित्र ही निज भाव समुद्र में उठती अनन्त भावमयी गुणरूप तरंगो में ही प्रियतम के सर्वगुणों को आकार प्रदान कर रहा है। इस गोलोक में प्रियतम रसराज से लेकर वृक्षादि अचल पदार्थों तक सम्पूर्ण दृश्य में एक मात्र प्रिया ही भाव ही विभिन्न पदार्थों के आकार में भासमान है। प्रिया के अतिरिक्त भाव के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं है, कुछ भी नहीं है। शुक का परिच्छिन्न शुक अहंभाव सर्वथा प्रिया में विलीन है। वह देहात्मबुद्धि रहित निर्मल प्रेममय प्रियाभाव में ही सन्निविष्ट है।

शुक अनुभव कर रहा है प्रिया ही प्रियतम की वयस है। प्रेम ही वयस है। आयु के अनेक भेद होने पर भी कैशोर ही नित्य नाना विलासों से युक्त यहाँ सब प्रकार के मधुर भाव का प्रकाशक है। शुक पुनः गा उठा—

नव किशोर नटवर मुरलीधर मधुर मयूर मुकुटधरलाल।
कटि पट पीत करघनी कूजित कुटिल भ्रकुटि मधुनयन विशाल॥
अतुलनीय सौन्दर्य निकेतन द्विभुज, कंठ मणि–मुक्ता–माल।
गोल कपोल अरुण नीलाभायुत गोरोचन–तिलक सुभाल॥
भूषण–भूषण अङ्गललित अति तन तृभंग सुषमा आगार।
मुख शरदिन्दु–सुभग, सुषमानिधि, राधा तन–मन सुख आधार॥
देख रूप निज हुए चमत्कृत मोहन मन्मथ–मन्मथ श्याम।
जाग उठा तुरंत मन में शुचि निज सौन्दर्य स्वादन काम॥

प्रियतम नव कैशोर वयस के हैं। उन नटवर में कैशोर मानो अंग प्रत्यंग में नर्तन कर रहा है श्री अंगो में। इस प्रकाशमान दिव्य कैशोर के नित्य रसमय नर्तन से ही मानो वे नटवर हैं। मधुर मुरली धारण किये हैं और मयूर का मुकुट पहने हैं, कटि पर पटपीत शोभित है और करधनी शब्द कूजन कर रही है। इस कैशोर वय ने उनकी भृकुटियों को कुटिलता प्रदान कर दी है और नयनों में विशालता एवं मधु की मादकता भी भरदी है। वे द्विभुज प्रियतम अतुलनीय सौन्दर्य के धाम है—उनके कंठों में मणिमुक्ता मालाएँ झूल रही हैं। उनके कपोल गोल हैं, और नीलाभा से युक्त अरुणा हैं।

उनके सुन्दर भाल पर गोरोचन का तिलक है। भूषणों को भी भूषित करने वाले उनके सुन्दर अंग हैं जो इस कैशोर वय के कारण अति लालित्य प्रकाश कर रहे हैं और इस कैशोर के रस की उन्मत्ततावश ही उनका तन सुषमा का निकेतन तृभंग हो रहा है। मुख की शोभा शरद के चन्द्रमा की तरह सुभग है वह सब शोभाओं का सुषमाओं का मानो निधि है, और प्रिया श्री राधा के तन एवं मन के सम्पूर्ण सुख रूप प्रेम का आधार है। वे श्यामसुन्दर ऐसे मोहन हैं कि मन्मथ कामदेव के भी मन को मथ रहे हैं और स्वयं ही अपने रूप से चमत्कृत हैं। उनके मन में अपने सौन्दर्य के आस्वादन की कामना जाग उठी है।

अब प्रियतम का बावदूक नामक गुण कैसा है ? बावदूक को शास्त्रों में निम्न प्रकार का कहा है—(१) कानों को सुन्दर लगने वाली वाणी कहने वाला और (२) वाणी के समस्त गुणों से युक्त वचन बोलने बाला, यह दो प्रकार का बावदूक विद्वान् लोगों ने बताया है। "श्रुति प्रेष्ठोक्ति वाग्गुणान्वित वागपि इति द्विधा निगदितो वावदूको मनीषिभिः।" शुक पुनः गा उठाः—

राधिके ! तुम सौं होड़ लगी।
हौं अनुरक्त रहौं या तुम नित रहौ सनेह-पगी।
ठगौ मोय तुम प्रेम अमिय दै, तुम ही जाउ ठगी।
लगन लगै मोमें, या मेरी तुम में रहै लगी॥
सग बग सदा रहौं तुम में, या तुम ही रहौ रँगी।
रहौं सचेत प्रीति में हौं, या तुम नित रहौं जगी॥

मैं जीतूं या तुम ही जीतौ, अब तौ बात दगी ।
जो हारै सो स्वामि बनै, दे पद-रज समुद सगी ।

सरल और कोमल पदावलियों से मनोहर और जिसके प्रत्येक अक्षर से प्रचुर मात्रा में सुधारस प्रकट हो रहा है । सब लोगों के कानों के लिये रसायन के समान प्रियतम की वाणी है । इस वाणी को सुनकर किसका मन हृत नहीं हो जाता !

इसमें वाणी के समस्त गुण भी विद्यमान हैं । यह कथन युक्तियों द्वारा प्रिया को आनन्दित कर उसे अपने अनुकूल परिवर्त्तित करने वाला है, चित्त में प्रेम की उत्कृष्टता को स्थापित करने वाला है, संशय नाश करने वाला है, स्वल्प अक्षर वाला है, फिर अनेक सरस अर्थों से युक्त है जो चित्त को प्रसन्न करता है । और प्रिय की प्रियवाणी कैसी है ?

अपराधी के प्रति भी अपराध न मान कर अत्यन्त मधुर वाणी बोलने वाला ही प्रियंवद है "जने कृतापराधेऽपि सान्त्ववादी प्रियंवदः"

और शुक गाने लगा—

जब मैं नहीं बोलता कुछ, तब तुम उत्तेजित हो जाती
प्रणय कोप में हरदम मुझको युक्त अयुक्त सुना जाती
पर मुझको होता प्रमोद अति भर उठता मनमें उल्लास
विनय विनम्र मनाने लगता करने लगता हास विलास...।

प्रणय कोप में युक्त अयुक्त सुनाने पर भी प्रमोद मान कर उल्लसित हो विनय विनम्र वाणी में बोलना ही तो प्रियंवद गुण है । और उनकी बुद्धिमता नामक गुण कैसा है ? शुक गा उठा—

सहज चतुर-चूड़ामणि चिन्मय सहज महामतिमान ।
सहज ज्ञान-आधार, ज्ञाननिधि, आप स्वयं रसवान ।।

और वे प्रतिभान्वित कैसे हैं—शुक गाने लगा—

श्रीमती छमा करौ तजिमान ।
हौं तो सदा तिहारौ सेवक, तुम स्वामिनी सुजान ।।

बेर भई या कारन मोकूं, करत रह्यौ तव ध्यान।
देखत रह्यौ निरन्तर अति समीप तुम कूं रसखान॥
करत रही नव-नव नानाविधि लीला तुम मो संग।
अति प्रत्यच्छ मिलन माधुरी अति, रसमय कथा प्रसंग॥
मधुर अमिय रस बरसी वचन, मनोहर मधुरालाप।
सुनत निहारत रूप-माधुरी, देखत क्रिया कलाप॥
आनन्दामृत परम दिव्य पाकर हौं भूल्यौ मान।
रह्यौ तिहारे सुख-सेवारत, तुमहिं निकट निज ज्ञान॥
टूट्यौ ध्यान, छिपी मन मूरति, उदयौ बाहर ज्ञान।
तब हौं दौरि चल्यौ आतुर ह्वै, मन महँ अतिमय मान॥
छमहु छमा मन्दिर! मेरौ यह मोह जनित अपराध।
बाहर-भीतर सदा रहौं हौं तो तव दिग निर्बाध॥

सद्यो नवनवोल्लेखित ज्ञानः स्यात्प्रतिभाऽन्वितः ॥४६॥

तुरन्त नवीन–नवीन बातों को कहने की कला जानने वाला प्रत्युत्पन्नमति ही तो प्रतिभान्वित कहलाता है। और प्रियतम की प्रतिभा का स्पष्ट उदाहरण सम्मुख है। विलम्ब से आने का कोई उत्तर न बनने पर भी कैसा उत्तर दिया है। वे ध्यान कर रहे थे। और ध्यान में जो प्रिया से प्रत्यक्ष मिलन हो रहा था। अब फिर प्रिया के पास और उपालम्भ देने के लिये है ही क्या? ध्यान टूटनेपर तो वे उपस्थित हो ही गये हैं? कैसा तत्क्षण सटीक उत्तर है?

और कैसे धृतिमान हैं प्रियतम? धृतिमान के निम्न प्रकार के लक्षण शास्त्रकारों ने बताये हैं—प्रथम कोटि का वह धृतमान है जिसकी सम्पूर्ण इच्छाएँ पूर्ण हो चुकी है, जो पूर्ण स्पृहा है वह धृतिमान है, दूसरा जो क्षोभ का कारण उपस्थित होने पर भी क्षुब्ध न हो। शुक गा रहा है—

तुम अपनी असमोर्ध्व अतुल महिमा में करते नित्य निवास।
कौन तुम्हें पा सकता प्यारे! कौन पहुँच सकता है पास!
क्या देकर तुमको, कैसे है कोई दे सकता आल्हाद।
स्वयं अमित आल्हाद सुधानिधि स्वयं सदा आस्वादन-स्वाद।

प्रियतम अपनी असमोर्ध्व अतुल महिमा में ही नित्य निवास करते

हैं, उन्हें कौन तो पा सकता है ? एवं कौन उनके समीप भी पहुँच सकता है ? इतने महिमावान वे हैं। जब वे स्वयं अमित आल्हाद निधि है तब कोई क्या देकर उनको आल्हाद देगा ? वे स्वयं आस्वादन भी हैं और स्वाद भी हैं। इस प्रकार समग्र आनन्द को, सम्पूर्ण आल्हाद को धारण करने वाले होने के नाते वे धृतिमान हैं।

और दूसरे प्रकार का उदाहरण है—

निन्दितस्य दमघोष सूनुना संभ्रमेण मुनिभिः स्तुतस्य च ।
राजसूय सदसि क्षितीश्वरैः काऽपि ना ऽस्य विकृतिर्वितर्किता ।।२६२।।

राजसूय सभा में शिशुपाल के द्वारा निन्दा किये जाने पर और मुनियों के द्वारा आदरपूर्वक स्तुति किये जाने पर दोनों ही अवस्थाओं में राजाओं ने इनमें कोई परिवर्त्तन नहीं पाया। और प्रियतम में वैदग्ध्य गुण का चमत्कार कैसा है ? प्रिया के वैदग्ध्य भाव का प्रकाशक ही तो है यह प्रियतम का वैदग्ध्य रस मय भुजी कला विलास दिग्धात्मा विदग्ध इति कीर्त्यंते। जो गीतवाद्यादि विविध कलाओं के विलस से युक्त हैं वे ही विदग्ध कहलाते हैं।

शुक गा उठता है—

बजावत मुरली श्याम सुजान ।
बनि संगीत रूप, रसमय प्रिय, छेड़त मीठी तान ।
धन्य भई सब राग रागिनी, बड़भागिनी महान् ।
हरि मुख बसीं, निकसि मुरली-छिद्रन ते सुधा-समान ।।

प्रियतम मुरली बजा रहे हैं। रसमय प्रियतम संगीत रूप ही हो गये हैं तथा मीठी तान छेड़ रहे हैं। सब राग रागिनी अत्यन्त भाग्यशालिनी हैं। वे प्रियतम के मुख पर निवास करके महान् धन्य हो गई हैं। वे सब यथा आह्वान मुरली छिद्रों से अमृत के समान निकल रही हैं। ये राग रागिनी भी पूर्ण भाव ही हैं इसीलिये प्रेम सुधा की समानता इन्होंने प्राप्त की है। अब प्रियतम में चतुरता नामक गुण कैसा है ? इस चतुरता नामक गुण की उत्पत्ति भी प्रिया की चतुरता भावलहरी से ही है। जो अनेकों का एक साथ समाधान करदे शास्त्रों में उसे ही चतुर कहा जाता है।

"चतुरो युगपद् भूरि समाधान कृदुच्यते।"

शुक गा उठा—

राजनीतिविद् कुशल, राज्य निर्माता, नित्य पूर्ण निष्काम।
सबके दुखहर्त्ता, सुखदाता सबके, सबके नित्य सहज हितधाम॥
परम सखा प्रिय, परम प्रियतम, परम पिता, गुरु बन्धु ललाम।
सहज चतुर, शरणागतवत्सल, परम वदान्य आत्माराम॥

प्रियतम राजनीतिविद् हैं, राज्य निर्माता हैं फिर भी स्वयं में पूर्ण निष्काम हैं, वे सबके दुखहर्त्ता हैं, सबको सुखदाता हैं और सबका सहज हित करने वाले हैं, वे सखाओं के परम सखा हैं, हजारों पत्नियों के प्रियतम हैं, लाखों संतानों के परमपिता हैं, अनेकानेकों के गुरु एवं बन्धु हैं। यह उनकी सहज चतुरता ही है कि वे इतने सबसे अपने सम्बन्ध यथायोग्य निर्वाह करते हैं। वे शरणागतों के वत्सल हैं, परम उदार दानी हैं और आत्माराम हैं। और प्रियतम में अनन्त सौख्य नामक गुण कैसा है? शास्त्रों में सुखी दो प्रकार का बताया है। "भोक्ता च दुःख गन्धैरप्यस्पृष्टश्च सुखी भवेत्।" ॥ ५६॥ जो सब सुख को भोगने वाला और दुःख के सम्पर्क से सर्वथा रहित रहने वाला हो, वही सुखी है। शुक गा उठता है—

मैं हूँ पूर्णानन्द, परम शुचि, मैं हूँ नित्य सच्चिदानन्द।
मैं रसमय, रसराज, सदा रसपूर्ण, रसिक जन मन आनन्द॥

× × × × × × ×

मुझ से भी हो जिसमें निर्मल शत-शत गुना अधिक आनन्द
एक वही बस दे सकता है मेरे मन को परमानन्द।
ऐसी एक राधिका ही है, जो मुझको देती आह्लाद
लेता रहता हूं अतृप्त मैं मधुर निरन्तर उसका स्वाद।

प्रियतम भोक्ता हैं, किसके? उस सुख के जो पूर्णानन्द से भी शत-शत गुना अधिक है। जो सच्चिदान्द से भी बढकर है। वह सुख तो मात्र भावमयी प्रिया राधिका में ही है, इसलिये वे अतृप्त रहकर उसका स्वाद लेते रहते हैं। निरन्तर स्वाद लेते रहते हैं। और प्रियतम में दुःख-गन्ध के प्रति भी पूर्ण अस्पृष्टता है तभी न वे नित्य सच्चिदानन्द है। और प्रियतम में कृतज्ञता नामक गुण कैसा है? शास्त्रों ने कृतज्ञता की परिभाषा की है—

"कृतज्ञः स्यादभिज्ञो यः कृत सेवादि कर्मणाम ।"

जो अपने प्रति किये गये सेवा आदि कर्मों को मानने वाला होता है, उसी को कृतज्ञ कहते हैं। शुक गा उठता है—

गोपिका (प्रिया सब) हौं नित रिनी तिहारो।
नव-नव बढ़त जात रिन छिन छिन, नहिं घटिबे कौ बारौ ॥
घटै तबहिं, जब तुम गोपिन हौं सुख विशेष दै पाऊँ।
तुम्हारे सुख विशेष कौ साधन, हौं निज सुखहि बढ़ाऊँ ॥
ज्यौं ज्यौं बढैं तिहारे द्वारा मेरौ नवसुख प्रति छिन।
त्यौं-त्यौं बढतौ रहै तिहारौ रिन मोपै नित नूतन ॥

× × × × × ×

या रिन तैं नहिं उरिन कबहुं ह्वै सकौं न होनौ चाहौं।
नित नव सेवा को अवसर लहि नित नव मनहि उमाहौं ॥
कबहुँ शोधि पाऊँ न तिहारौ रिन अति मधुर मनोहर।
बँध्यौ रहौं तुव प्रेम दाम सौं, भूलि सबहिं जागेश्वर ॥
खेलूँ सदा तिहारे सँग हौं नित नव रास रचाऊँ।
तुम्हरे रसतैं परम सुखी बनि तुम्हारौ सुख सरसाऊँ ॥

प्रीतम में कैसी कृतज्ञता है ! वे अपनी प्रियाओं गोपिकाओं के नित्य रिणी हैं इन गोपाङ्गनाओं का ऋण क्षण-क्षण नव-नव वेग से बढ़ता ही जाता है, घटने की बारी ही नहीं आती। घटै तो तब जब वे इनको कुछ विशेष सुख दे सकें। उनके सुख का तो मात्र यही अर्थ है कि प्रीतम स्वयं सुखी होवें। क्योंकि इनको तो प्रियतम स्वयं सुखी होकर ही सुखी कर सकते हैं। इनमें अपना सुख तो कुछ है नहीं। ये सब तो प्रियतम सुख से ही सुखी होती हैं, इसलिये इनके ऋण शोधन का कुछ भी उपाय करना, इनका और ऋण बढना ही है। इसलिये न तो प्रियतम इनके ऋण से उऋण हो सकते हैं न होना ही चाहते हैं। बस उनकी सेवा का जो भी अवसर पाते हैं, अवसर आते ही नव-नव उमंग से मन मात्र उमड़ ही उठता है। वे कभी इनके अति मधुर मनोहर ऋण को चुकता नहीं कर पाते। इसीलिये वे योगेश्वर सब कुछ भूलकर प्रेमदाम से बँधे भर रहते हैं। वे सदा इन गोपाङ्गनाओं के साथ खेलते हैं नित्य नव-नव रास रचाते हैं। इस प्रकार उनके रस से परम सुखी हो उनका सुख सरसाते हैं। कैसे

अमित कृतज्ञ है प्रियतम ! और प्रियतम में दाक्षिण्य नामक गुण कैसा है ? शास्त्रों में वर्णित है–"सौशील्य सौम्य चरितो दक्षिणः कीर्त्यते बुधैः" उतम स्वभाव वाला कोमल चरित वाला दक्षिण कहलाता है। और शुक गाने लगा—

अखिल रसामृत सिन्धु, नित्य सौन्दर्य परम माधुर्य निधान ।
परम स्वतन्त्र, प्रेमवश लेते प्रेमी को निज प्रियतम मान ॥

वे अखिल रसामृत सिन्धु हैं। नित्य सौन्दर्य और परम माधुर्य के निधान हैं परन्तु परम स्वतन्त्र होते हुए भी वे दूसरों की तनिक सी सेवा, दूसरों के तनिक से प्रेम को बहुत मानकर स्वीकार करते हैं। किसी की लघुता को लघुता नहीं समझते। और अपने प्रेमवश दक्षिण स्वभाववश अपने प्रेमी को अपना प्रियतम मान लेते हैं।

और प्रियतम में प्रेमवश्यता नामक गुण की क्या, कैसी शोभा है ? "प्रियत्वमात्र वश्यो यः प्रेमवश्यो भवेदसौ" यही तो शास्त्रों की परिभाषा है। जो केवल प्रेम के द्वारा वशीभूत हो जाय वह प्रेमवश्य कहलाता है। शुक गानेलगा-

जन्म अजन्मा, अविनाशी का हुआ आज अति मंगल धाम ।
कंश क्रूर के काराग्रह में नन्द घर में प्रकटे अभिराम ॥
परम स्वतन्त्र अखिल लोकों के एक मात्र जो ईश महान ।
भक्तो के हो पराधीन वे प्रकटे प्रेमवश्य भगवान ॥

उन अविनाशी अजन्मा का प्रेम वशीभूत होने के कारण क्रूर कंस के कारागृह में तथा वात्सल्य रसधन मूर्ति प्रेमावतार महात्मा नन्दजी के घर में प्राकट्य जन्म होता है। वे परम स्वतन्त्र, अखिल लोकों के एक मात्र महान् ईश्वर भक्तों के पराधीन हो प्रकट होते हैं यह उनकी प्रेमवश्यता ही है। प्रेमवश्यता का दूसरा उदाहरण निम्नलिखित है— शुक पुनः गाता है—

नहीं चुक सकता मैं बदला, कर सकता न कभी ऋण शोध ।
बंधा प्रेम-बन्धन, मैं करता स्वतन्त्रता का कभी न बोध ॥
सहज स्वतन्त्ररूप मैं रहता स्वयं वरित सुखमय परतन्त्र ।
नहीं छूटता कभी चाहता नहीं चाहता बनूँ स्वतन्त्र ॥
मधुर प्रेम परवशता मेरी प्रभुता पर प्रभुत्व करती ।

रस स्वरूप सुख में यह पलपल मधुर नित्य नव रस भरती ॥

प्रियतम की कैसी प्रेमवश्यता है जो उनके प्रभुत्व पर भी पूर्ण शासन करती है। उन परम स्वतन्त्र को परतन्त्रता स्वयं वरित हो जाती है मात्र प्रेमवश्यता के कारण। और प्रियतम का गाम्भीर्य गुण कैसा है ?

"दुर्विबोधाशयो यस्तु स गम्भीर इतीर्यते"

जिसके मन की बात बहुत कठिनाई से समझ में आवे उसको गम्भीर कहा जाता है। शुक गाता है—

रहता पुरी द्वारका मैं, करता हूँ सबका शासन।
सभी सदा अनुगत रह मेरा सतत मानते अनुशासन॥
विविध प्रचुर ऐश्वर्यों से युत सुन्दर भव्य राज-प्रासाद।
रमणी-रत्न सहस्रों से जगमग, उपजाते अति आल्हाद॥
तन मन से सेवा-रत विनय विभूषित गलित-गर्व सारी।
एक एक से बढकर शुभ गुण रूपवती निर्मल नारी॥
राज काज करता सब अनलस, शत्रु मित्र से सदा सचेत।
राष्ट्र नीति की रक्षा करता, सदा सतर्क, धर्म समवेत॥
ये सब, और अनेकों अति दायित्वपूर्ण सब करता काम।
पर क्षण भर भी नहीं भूल सकता मैं तव मुख चन्द्र ललाम॥
स्वप्न राज्य में भी प्यारी! मैं पाता सदा तुम्हारा संग।
दर्शन-मिलन-विलास विविध होते, बढ़ता नूतन रस रंग॥

(पू० हनुमानप्रसादजी पोद्दार के स्वरचित काव्य से)

किसे बताऊँ मैं मन की स्थिति, किससे करूँ प्रिय फरियाद।
किसे सुनाऊँ हृदय दाह का भीषण ज्वालामय संवाद॥
जलता हृदय वियोगानल से, झूर रहे दृग दर्शन-हेतु।
चाह रहा मिलना अति सत्वर, तोड़ सभी मर्यादा सेतु॥
कैसे देखूँ तुम्हें इसी क्षण, बीत रहा युग तुल्य निमेष।
छूट रहा सब धैर्य, बचा कुछ नहीं हृदय में धृतिका शेष॥
बसा दूर मैं पुरी द्वारका, घेरे रहते अगणित लोग।
विविध विचत्र विषय मनहारी, लोक दृष्टि के सुख कर भोग॥

(पू० हनुमानप्रसादजी पोद्दार के स्वरचित काव्य से)

प्रियतम की कैसी विचित्र दशा है ! वे द्वारिकापुरी में हैं । सबका शासन अनुशासन कर रहे हैं । सहस्रों रमणी-रत्नों से जगमग प्रचुर ऐश्वर्यों से युक्त भव्य राजप्रासादों में रहते हैं । वे अनलस सब राजकाज करते हैं, शत्रु मित्र से यथा योग्य सचेत व्यवहार करते हैं । सदा सतर्क धर्म समवेत राष्ट्रनीति की रक्षा करते हैं, परन्तु उनके हृदय में कैसी स्थिति है, इसे किसी को नहीं बताते । उनके हृदय में कैसा दाह है, इसे वे किसी को नहीं सुना सकते । वे अपनी प्रिया के वियोगानल में जल रहे हैं, उनके नेत्र दर्शनार्थ झूर रहे हैं उनके लिये एक-एक निमेष युग तुल्य बीत रहा है, परन्तु फिर भी वे अति दायित्वपूर्ण सब काम करते हैं और कोई उनकी मनःस्थिति को नहीं पहचान पाता । यही उनका अनुपम गाम्भीर्य है । और प्रियतम में वरीयान् गुण कैसा है ?

शास्त्रों में उल्लेख है—"सर्वेषामाभिमुख्येयः स वरीयानि तीर्य्यते" ।

जो सबके अभिमुख्य में विराजित रहता है, जिससे मिलने के लिये सब उत्सुक रहते हैं—उसे वरीयान् कहते हैं । शुक गा उठा—

काल हो गया अतिशय शोभन, सर्व शुभ गुणों से सम्पन्न ।
विधु रोहिणि-गत हुए ऋक्ष-ग्रह-तारे सभी सौम्यतापन्न ।।
हुईं दिशाएँ अति प्रसन्न सब तारे चमक उठे आकाश ।
धरती के सब नगर-ग्राम व्रज, आकर हुए मङ्गलावास ।।
नदियाँ थी सब निर्मल जल निशि खिले ह्रदों में कमल अपार ।
वृक्ष लदे सुमनों से, पिक-अलि करने लगे चहक-गुंजार ।।
सुख-स्पर्श शुचि, शीतल, मन्द सुगन्ध बह चली मधुर बयार ।
असुर-विरोधी साधु मनों में हुआ तुरत सुख का संचार ।।
सुर दुन्दुभियां मधुर वज उठीं सहसा भर आनन्द अपार ।
जन्म अजन्मा का सुन सुर सब बने स्वयं आनन्दाकार ।।
शुचि गन्धर्व-सुकिन्नर गाने लगे, छेड़ अति मधुमय तान ।
करने लगे सिद्ध-चारण सब प्रमुदित मन पावन स्तुतिगान ।।
नाच उठीं निशीथ में विद्याधरी अप्सरायें सब. आज ।
समुद्र सराह रहा धरती का भाग्य परम देवर्षि समाज ।।

(पू० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार के स्वरचित काव्य से)

यहां प्रियतम सब के अभिमुख्य में विराजित हैं । उनके धराधाम में

पदार्पण करते ही काल उनके अभिमुख होता है सर्व गुणों से सम्पन्न होकर। विधु, ऋक्ष, ग्रह, नक्षत्र सभी अभिमुख होते हैं सौम्यतापन्न होकर के। दिशाएँ प्रसन्न मुख हैं। तारे चमकते हैं धरती के नगर, ग्राम, व्रज-मण्डल सब मंगल के आवास हो उठते हैं। नदियाँ निर्मल हो जाती हैं सरोवरों में कमल प्रस्फुटित हो उठते हैं। वृक्ष सुमनों से लद जाते हैं। सप्रसन्न पिक-अलि गुंजार करने लगते हैं। शीतल वायु सुख-स्पर्श हो उठती है। वह मन्द गति से सुगन्ध युक्त हो बह चलती है। साधुमनों में सुख संचार हो उठता है। सुर दुन्दुभियां बजा उठते हैं। सुर देवता आनन्दाकार हो उठते हैं। पवित्र गंधर्व-किन्नर मधुमय तान छेड़कर गाने लगते हैं। सिद्धचारण सब स्तुति गान करने लगते हैं। विद्याधरी अप्सराएँ नाच उठती हैं। और देवर्षि समाज धरती का भाग्य सराह उठता है। प्रियतम का धरा-धाम में पदार्पण होते ही उनके प्रति सबकी अभिमुखता ही उनके वरीयान् गुण का प्रकाशक है। और वे कीर्तिमान कैसे हैं ?

शास्त्रों में "साद् गुण्यै निर्मलैः ख्यातः कीर्त्तिमानिति कीर्त्त्यते।" यह कीर्त्तिमान की परिभाषा उल्लिखित है। उज्जवल शुभ गुणों के कारण विख्यात कीर्त्तिमान कहा जाता है। शुक गा उठा—

सर्वातीत, सर्व विरहित, जो सर्व सर्वमय, सर्वाधार।
सर्वव्यापक, सर्वात्मा जो स्वयं सृष्टि-स्रष्टा संहार।।
मायामति नित मायाविरहित, ब्रह्म, ब्रह्ममय ब्रह्माधार।
निर्गुण, सगुण निराकृति, नित्य निरञ्जन, दिव्य सगुण साकार।।
प्रकृति-विकृतिमय व्यक्त, प्रकृतिगत पुरुष, विश्वमय विश्वाकार।
अपरिवर्त्तन रूप, एक रस, नित वैचित्र्य पूर्ण संसार।।
ब्रह्मा विष्णु महेशरूप से करते जो लीला विस्तार।
सरस्वती लक्ष्मी काली के विविध अनन्त प्रकट आकार।।
देश काल बन्धन विरहित, जो देश कालमय कालातीत।
कालरूप विकराल सुनाते नित विनाश के भैरव गीत।।
अवतारी सब अवतारों के सबके अंशी नित्य अनादि।
सभी ईश्वरों के ईश्वर सब लोक महेश्वर सबके आदि।।
षोड़श कला पूर्ण सच्चित् घन षडैश्वर्य सम्पन्न, उदार।
अज अविनश्वर, चिन्मय भगवद्देह रूप नित विगत विकार।।

लीलामय, लीला, लीला के दर्शक दिव्य सच्चिदानंद।
अखिल प्रेमरस सिन्धु, प्रेमघनमूर्ति प्रेम वितरक स्वच्छन्द॥
(पू० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार के स्वरचित काव्य से)

और प्रियतम श्रीकृष्ण की यही महाकीर्त्ति सर्व विख्यात है वे सब से अतीत सबके शेष और साथ ही साथ, सर्वमय सर्व और सबके आधार हैं। वे ही सर्वव्यापक हैं, सर्वात्मा हैं, वे ही सृष्टि हैं, सृष्टा हैं और उसके संहारक भी हैं। वे मायापति हैं और नित्य माया से विरहित हैं। वे ही ब्रह्म हैं, ब्रह्ममय हैं और ब्रह्माधार हैं। वे निर्गुण हैं, सगुण हैं, निराकार हैं, नित्य हैं, निरञ्जन हैं, दिव्य हैं सगुण साकार हैं। प्रकृति की विकृति से भी युक्त, जो कुछ व्यक्त है वह भी वे ही हैं–वे प्रकृतिगत पुरुष हैं एवं विश्वमय विश्वाकार हैं। वे स्थिर परिवर्त्तन हीन परिणाम विहीन एक रस हैं सौर उनसे ही यह वैचित्र्य पूर्ण संसार सत्ता पा रहा है। वे ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप से लीला विस्तार करते हैं। वे ही सरस्वती, लक्ष्मी, काली रूप में अनन्त त्रिविध आकार प्रकट कर रहे हैं। वे देशकाल के बन्धन से विरहित हैं। वे कालातीत कालमय भी हैं एवं काल रूप में वे ही नित्य विनाश के भैरवगीत सुना रहे हैं। वे सब अवतारों के अवतार हैं, सबके अंशी हैं और नित्य अनादि हैं। वे ही सब इश्वरों के ईश्वर हैं सबके आदि लोक महेश्वर हैं वे षोड़शकलापूर्ण सत् चित् घन हैं और षडैश्वर्य सम्पन्न उदार हैं। वे ही अज, अविनश्वर, चिन्मय भगवद्देह रूप है। वे सर्वथा नित्य विकार विगत हैं। वे लीलामय हैं, वे ही लीला हैं, लीला के दर्शक हैं तथा दिव्य सच्चिदानन्द हैं। वे ही अखिल प्रेमरस सिन्धु हैं प्रेमघन मूर्ति हैं तथा स्वच्छन्द प्रेम वितरक हैं। यही उनकी नित्य कीर्त्ति है चिन्मय कीर्त्ति है, सत् कीर्त्ति है और उनका त्रिजन्नारी मोहन स्वरूप कैसा है ? नारीगण मनोहरी उसे ही कहते हैं जो सुन्दरियों के समूह को मोहन करने वाला हो 'नारीगण मनोहारी सुन्दरीवृन्दमोहनः' शास्त्रों की यही परिभाषा है। शुक गाने लगा—

बटाऊ वा मगतैं मत जइयो।
गली भयावनि भारी जामें सवरौ माल लुटइयो॥
ठाढ़ौ तहाँ तमाल-नील इक छैल छबीलो छैयो।
नंगे बदन मदन–मद मारत मधुर–मधुर मुसकैयो॥
देखन कौं अति भोरौ छोरा, जादूगर बहु सैयो।
हरत चित्त–धन सरबस तुरतहिं, नहिं कोऊ ताहि रुकैयो॥

× × × × × ×

शब्द एक निकला नहिं मुख से, नेत्र एक टक रहे निहार।
विगलित हुआ हृदय क्षण भर में, बही आँसुओं की शुचिधार॥
अङ्ग-अङ्ग आकुलता छाई, सबके एक यही अभिलाष।
कर स्वीकार हमें सेवा में देते रहें नित्य उल्लास॥
(पू० हनुमानप्रसादजी पोद्दार के स्वरचित काव्य से)

कैसा रूप है प्रियतम का ? व्रज की स्त्रियाँ परस्पर वार्त्ता करती हैं तथा बटाऊ के मिस अपना हृदयोद्गार प्रकट करती है। जिस पथ पर प्रियतम श्यामसुन्दर खड़े हों उस पथ से किसी तरुणी स्त्री का आवागमन सर्वथा उचित नहीं है, भूलकर भी उचित नहीं है। वह गली ही भारी भयावनी है, वहाँ जाते ही हृदय का सर्वस्व सब धन लुट जाता है।

वहां एक तमालनीलवर्ण का छैल छबीले रूप वाला किशोर खड़ा है- उसका बदन बहुत कम वस्त्रों से अलंकृत है, वह साक्षात् कामदेव के भी गर्व को खर्व करता हुआ मंद-मंद मुसकाता रहता है। वह देखने में बालवत् सरल है परन्तु अत्यन्त जादूगर है. तुरन्त चित्तरूपी वित्त और सर्वस्व हर लेता है और उसे कोई निषेध नहीं कर सकता, रोक नहीं सकता।

× × × × × ×

मुख से एक भी शब्द नहीं निकलता, नेत्र उसे एकटक देखने लगते हैं-हृदय क्षण भर में ही विगलित हो जाता है और आँसुओं की पवित्र प्रेम धारा बहने लगती है। अंग-अंग में आकुलता छा जाती है और सब देखने वाली, रमणियों में एक ही अभिलाषा मूर्तिमान रहती है कि वह कब हमें स्वीकार कर सेवा-प्रदान करें और हम उसे उल्लास आनन्द दे पावें।

कैसा नारी मोहन रूप है प्रियतम का ! और प्रियतम की नित्य नूतनता कैसी है ? शास्त्र कहते हैं —

सदानुभूयमानोऽपि करोत्यननु भूतवत् ।
विस्मयं माधुरीभिर्यः स प्रोक्तो नित्य नूतनः ॥

सदा अनुभूत होने पर भी जो अपने सौन्दर्य के कारण अननुभूत के समान आश्चर्य को उत्पन्न करता है वह 'नित्यनूतन' कहलाता है।

शुक गा उठता है—

सखिरी यह अनुभव की बात।
प्रतिपल दीखत नित नव सुन्दर नित नव मधुर लखात ।।
छिन छिन बढत रूप गुन माधुरि, छिन छिन नूतन रंग ।
छिन छिन नित नव आनन्द-धारा, छिन छिन नई उमंग ।।
नित नव अलकनि की छवि निरखत अलि-कुल नित नव लाजै ।
नित नव सुकुमारता मनोहर अंग-अंग प्रति राजै ।।
नित नव अंग सुगंध मधुर अति मनहि मत्त करि डारत ।
नित नव दृष्टि सुधामयि जन के ताप असेप निवारत ।।
नित नव अरुनाई अधरन की, नित नूतन मुसक्यान ।
नित नूतन रस सुधा प्रवाहिनी मधु मुरली की तान ।।
नित नूतन तारुण्य ललित लावण्य नित्य नव विकसै ।
नित नव आभा विविध बरन की प्रिय के तनुतैं निकसै ।।
कछु वै बासी होत न कब हूँ-नित नूतन रस बरसत ।
देखत देखत जन्म सिरान्यौ, तऊ नैन नित तरसत ।।
(पू० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार के स्वरचित काव्य से)

कैसा नव नवायमान सौन्दर्य है प्रियतम का ? वे प्रतिपल नित नव सुन्दर, नितनव मधुर दिख रहे हैं। उनका रूप, गुन, माधुर्य क्षण-क्षण नूतन रंग लेकर बढ़ रहा है। नित्य नवीन आनन्द धारा नई-नई उमंग से क्षण-क्षण बढ़ रही है। कुछ भी बासी नहीं। नित्य नूतन रस वर्षा हो रही है। देखते देखते जन्म बीत जाय फिर भी नैन इस नित्य नवीन सौन्दर्य के कारण तरसते ही रहेंगे।

और प्रियतम असमोर्ध्व माधुरीर्य चतुष्टयी कैसी है ? उनकी प्रथम लीलामाधुरी का आस्वादन कैसा है ? शुक गा उठता है—

थके पर छके न रस के प्यासे।
रहत सतत रस पान निरत नित नूतन भाव विकासै ।।
ज्यौं ज्यौं पियत प्यास त्यौं बाढत, मधुर स्वाद उदभासै ।
महाभाव रसराज सिरोमनि दोउ प्यारी दोउ प्यारे ।।
लीला-रस-रत लखि सखि प्रमुदित भूली अग-जग सारे ।
(नित्य लीलालीन पू० हनुमानप्रसादजी पोद्दार के स्वरचित काव्य से)

कैसी लीलामाधुरी है। प्रिया प्रियतम दोनों इस रासलीला से थक गये हैं परन्तु फिर भी अतृप्ति ज्यों की त्यों है। वे सतत रस पान निरत हैं, परन्तु फिर भी उनको नित्य नूतन लीला उद्भव के भाव विकसित हो रहे हैं। कैसा मधुर स्वाद उद्भासित है कि ज्यों-ज्यों पीते हैं प्यास त्यों-त्यों बढ रही है। वे महाभाव रसराज शिरोमणि दोनों ही एक दूसरे के प्यारी एवं प्यारे हैं। वे लीलारस में रत हैं और उनकी लीला जो भी सखि देखती है वह प्रमुदित हो अत्यधिक आनन्दवश सम्पूर्ण अग-जग को विस्मृत कर देती है। अब प्रियतम की प्रेम माधुरी का स्वरूप कैसा है ? शुक गा उठता है—

काम गन्ध से शून्य सर्वथा, निज सुख की इच्छा से हीन।
कृष्ण सुखेच्छा ही जीवन है, नित्य कृष्ण-सुख-दर्शन-लीन ॥
कृष्ण प्रेम रस-सार विनिर्मित है उनका अति दिव्य शरीर।
नव-नव कृष्ण सुखाभिलाष से रहता उनका चित्त अधीर।
यदि श्रीकृष्ण सुखी हों तो अति दुःख उन्हें हो अति सुखरूप।
दुःखोदधि में रहकर भी वे सुख का अनुभव करें अनूप ॥
निज सुख वाञ्छा लेश न उनके, मन में तनिक न काम विकार।
तो भी कृष्ण सुखेच्छा से वे करतीं निज सुख को स्वीकार ॥
सुख उपभोग काल में भी वे नहीं भूलतीं प्रिय-सुख-काम।
इसीलिये वे निज सुख में नित रहतीं अनासक्त निष्काम ॥
गमन-आगमन, शयन-जागरण, वस्त्राभूषण, तन-शृंगार।
सभी कृष्ण सुख-हेतु, प्रेम रस पूर्ण नित्य आहार-विहार ॥
यदि श्रीकृष्ण सुखी होते हों, उनमें देख क्रोध, मद, मान।
तो वे अति उल्लास सहित करतीं हैं क्रोध, महामद, मान ॥
रूठ बैठतीं, परुष बोलतीं, करतीं तिरस्कार-अपमान।
लोक वेद से कभी न डरतीं यदि सुख पाते प्रिय भगवान ॥
है आसक्ति कृष्ण सुख में अति, है मन अमित कृष्ण सुख काम।
कृष्ण सुखेच्छामय जीवन है परम पवित्र दिव्य सुख धाम ॥
भुक्ति-मुक्ति की नहीं पिशाची इच्छा का उनके मन बीज।
प्रेमानन्द सुधा रसमय दुर्लभ नित रस समाधि निर्बीज ॥

(नित्य लीलालीन पू० हनुमानप्रसादजी पोद्दार के काव्य से)

प्रियतम के प्रति प्रेम कामगन्ध से शून्य है। उसमें निज सुख इच्छा है ही

नहीं। कृष्ण सुखेच्छा–प्रियतम सुखेच्छा ही जीवन है। नित्य प्रियतम सुखदर्शन में लवलीन रहना ही तो प्रेम है। शरीर क्या है? प्रियतम प्रेम रस सार विनिर्मित ही शरीर है। और नई–नई प्रियतम सुखाभिलाषा से ही चित्त नित्य अधीर है। प्रियतम सुखी हों तो घोर दुःख भी अत्यन्त सुखरूप लगते हैं और दुखोदधि में भी रहकर अनुपम सुख का ही अनुभव होता है। न काम विकार है–न सुख वाञ्छालेश है। केवल प्रियतम सुखार्थ ही सुख की स्वीकृति है। सुखोपभोग काल में भी प्रिय सुखकामना का अन्त नहीं होता। इसीलिये वे निज सुख में अनासक्त हैं, निष्काम हैं। आना, जाना, सोना, जगना, वस्त्र, आभूषण, तन का शृंगार, सब प्रियतम सुख हेतु हैं। सारा आहार व्यवहार प्रेमरस से पूर्ण है। यदि प्रियतम सुखी हों तो क्रोध, मद, मान भी पूर्ण स्वीकार्य है। रूठना, कटु बोलना. तिरस्कार अपमान करना भी प्रियतम को सुखी करने के लिये है। न लोक से भय, न वेद से भय। केवल प्रियतम में आसक्ति और उनके ही अमित सुख की कामना, ऐसा प्रियतम सुखेच्छामय जीवन ही जो परम पवित्र सुख का धाम है, यही तो प्रेम जीवन है। न भुक्ति की इच्छा का, न मुक्ति की इच्छा का बीज ही है–केवल प्रेम का सुधा रसमय आनन्द है और अति दुर्लभ नित्य निर्बीज रस समाधि है। और प्रियतम की वेणु माधुरी कैसी है? शुक गा रहा है—

मुरलिया बाजी रे बाजी।
जो जँह जैसैं रही, तहाँ तैं तैसैं ही उठि भाजी॥
तन–मन असन–बसन, पति–सुत–घर सबकी सुधि बिसराई।
चली वेग आतुर सरिता ज्यौं, श्याम–समुँद कौं धाई॥
कोउ काहू की बाट न जोई, काउए संग न लीनी।
खिंचि चलि गई लोह चुंबक ज्यौं भद्र प्रेम–रँग भीनी॥
जाइ मिली पिय सौं, मन भावनि अलौकिक पाई।
भुक्ति मुक्ति, मैं मेरी, सगरी हरि महँ जाइ समाई॥

× × × × × ×

जोगी, परम सिद्ध, तापस मुनि, ज्ञानी जीवन्मुक्त महान।
सुनि मुरली, अवलोकि मधुर छबि, रखि नहिं सकत चित्त अवधान॥
चकित–थकित, उर–द्रवित स्रवत दृग, बरबस तजि विराग अरु ज्ञान।

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

डूबत मधुर प्रेमरसनिधि अति भजत अहै तुम मन रसवान ।।
(नित्यलीलालीन पूज्य हनुमानप्रसानजी पोद्दार के स्वरचित काव्य से)

और प्रियतम की रूप माधुरी कैसी है ? शुक पुनः गा उठा—

नव नीरद नीलाभ श्याम तन, पीत वसन वर रहा विराज ।
वय किशोर, कमनीय कान्ति सच्चिन्मय वपु, सब सुन्दर साज ।।
मधुर, मनोहर, दिव्य, सौरभित, अति सुकुमार अंग-प्रत्यंग ।
अतुल रूप रस सिन्धु-विन्दु से रूप समन्वित असित अनङ्ग ।।
ललित तृभङ्ग कमल दल-लोचन मोचन माया रचित विधान ।
(नित्यलीलालीन पूज्य हनुमानप्रसादजी पोद्दार के स्वरचित काव्य से)

सारिका पुनः बोल उठी । हे शुकराज ! देखा तुमने प्रियतम की कैसे असमोर्ध्व गुण गरिमा है । परन्तु इसे सत्य मानो कि इन सब गुणों की मूल उत्स प्रिया की भाव गुणावली ही है । इसीलिये ये गुण नित्य हैं । ये सच्चिदानन्दमय हैं । इनका न प्रियतम द्वारा ग्रहण हैं एवं न ही प्रियतम इनका त्याग ही कर सकते हैं । गुण तो वही होता है जिसे मनुष्य स्वीकार करता है और त्यागता है । परन्तु प्रियतम का रूप कभी त्यागा जा ही नहीं सकता । प्रियमम किसी भी प्रकार कुरूप हो ही नहीं सकते । जैसी उनकी रूप माधुरी है वह असमोर्ध्व रूपमाधुरी उनका स्वरूप है । वह शरीरगत नहीं है—आत्मगत है । इसी प्रकार उनका वेणुवादन, कभी बेसुरा हो ही नहीं सकता—उन्होंने न वेणुवादन को ग्रहण किया है एवं न ही वे त्याग सकते हैं । उनके सब गुण उदयास्त स्वभाव वाले नहीं हैं । वे नित्य हैं, सत्य हैं, कालातीत हैं, निर्विकार हैं, भाव लहरें ही हैं जो रसरूप से प्रियतम के रूप में प्रतिभात हो रही है ।

हे शुक, ये सब गुण चिदानन्द रसात्मक हैं । ये सब गुण आनन्दकन्द स्वरूप हैं । ये गुण स्वयंप्रकाश हैं, ये उपाधिरहित, अनन्त और सर्वव्यापी हैं ।

हे शुकराज, प्रियतम का सम्पूर्ण स्वरूप ही अनन्तानन्त गुणों से ओत प्रोत है । ये गुण ही प्रियतम हैं । वे अनन्त तेज हैं, अनन्त प्रभाव हैं । वे विविधाद्भुत भाषाविद् हैं । वे जो कुछ बोलते हैं, संकल्प करते हैं, सब सत्य है, इसीलिये वे सत्य संकल्प हैं । वे महा पंडित हैं । वे विद्वान् हैं, नीतिज्ञ हैं । वे समस्त विधाओं को जानने वाले हैं साथ ही यथोचित कार्य करने वाले हैं । वे मेधावी हैं और सूक्ष्म धी हैं । वे दक्ष हैं । वे दुष्कर कार्य को भी अनायास कर देने वाले

हैं। वे सुदृढव्रत हैं, वे सत्य प्रतिज्ञ हैं तथा सत्य नियम हैं। वे देशकाल सुपात्रज्ञ हैं। वे सर्वदेश, सर्वकाल और सर्वपात्रों के अनुरूप क्रिया करने वाले हैं। वे शास्त्र चक्षु हैं। उनके नेत्र ही शास्त्र हैं। वे महा पावन हैं, वे सर्वदोषों से निर्मल परम विशुद्ध हैं। वे सर्वपावन हैं—उनके नाम रूप ऐसे सूर्य हैं जिनके किरणों के आभास मात्र के हृदय में उदय होते ही महा पातक रूप अन्धकार का सदा-सदा के लिये नाश हो जाता है। वे सर्ववशी हैं। वे स्थिर हैं। वे महादानी हैं। वे दान्त हैं, उचित होने पर दुःसह क्लेश भी सह जाते हैं। वे महाक्षमाशील हैं। वे रागद्वेष विमुक्त पूर्ण सम हैं। यदि उनका शत्रु भी शुद्ध है तो वे उसका भी सत्कार करते हैं और उनका पुत्र भी दुष्ट है तो वे उसको भी दण्ड देनेवाले हैं। वे पक्षपात रहित सदा सम व्यवहार करते हैं। प्रियतम में इतनी दानशीलता है कि चिन्तामणि, कामधेनु और कल्पवृक्ष सब तुच्छ हैं। वे महा धार्मिक हैं। धार्मिक उसे ही कहते हैं जो स्वयं धर्म का अनुष्ठान करता हुआ दूसरों से भी करवाता है। धार्मिक के लक्षण में शास्त्रों ने 'कुर्वन्' और "कारयते धर्मः" ये दो पद दिये हैं। वे शूर हैं। युद्ध में उत्साह रखनेवाले और अस्त्र-शस्त्रों में निपुण हैं, वे महाकरुण हैं। वे किसी का भी दुःख नहीं सह सकते। वे मान्यमान कृत हैं। गुरु, ब्राह्मण, वृद्ध सब उनका मान करते हैं। वे महा विनयी हैं। वे ह्रीमान हैं—स्तुति किये जाने पर शालीनता के कारण सदा संकोच में पड़ जाने वाले हैं। वे शरणागतपालक हैं। वे भक्त सुहृद हैं। वे सर्व शुभङ्कर हैं। वे महा प्रतापी हैं। वे सब जनों के अनुराग के पात्र हैं इसीलिये उनको विद्वान् रक्तलोक कहते हैं। वे साधुसमाश्रय हैं। वे महा समृद्धि मान हैं। वे ईश्वरों के ईश्वर हैं। परम स्वतंत्र हैं। पूर्णमुक्त हैं। वे सब समर्थ हैं। सर्व भवन सामर्थ्य है इनमें। वे सदा स्वरूप सम्प्राप्त हैं। उनके सर्व गुण भी उनके स्वरूप भूत ही हैं। उनसे पृथक् सर्वथा नहीं हैं। वे सर्वज्ञ हैं। उनके लिये कोई पर है ही नहीं। इसलिये सब के चित्त मे स्थित होने के कारण वे सबके देश, काल आदि से व्यवहित अतीत और अनागत की समस्त वस्तुओं को जानने वाले हैं। वे सच्चिदानन्दसान्द्राङ्ग हैं। वे सर्व सिद्धि निषेवित हैं। अचिन्त्य महाशक्तिशाली हैं। उनमें दिव्य स्वर्गादि को भी निर्माण करने की सामर्थ्य है। वे ब्रह्म रुद्रादि मोहन हैं। वे भक्त प्रारब्ध विध्वंसक हैं। वे कोटि ब्रह्माण्ड विग्रह हैं। वे सर्वावतारावली बीज हैं। वे हतारि गति दायक हैं। वे आत्माराम गणाकर्षी हैं।

हे शुकराज उपरोक्त प्रियतम के गुणों में जहाँ एक गुण का वर्णन है

वहाँ मात्र एक गुण का प्राधान्य भर है, उसके अन्तराल में अन्य सब गुण भी पूरे निहित हैं। उनकी सुन्दरता रुचिर है, सर्व सल्लक्षण समन्वित है, सर्वजित बलशालिनी है, वावदूक है धृतिमान है, गंभीर है, वरीयान, है, सर्वावतार बीजावली है, हतारिगतिदायक, आत्माराम गणाकर्षी है इसी प्रकार उनका प्रत्येक गुण अनन्तानन्त गुण समन्वित है। ये कोई गुण प्रियतम से पृथक् हैं ही नहीं और प्रियतम प्रिया से पूर्ण अभिन्न हैं। वे प्रिया ही हैं। प्रिया प्रेम हैं और प्रियतम प्रेम रस हैं। अतः यह सब प्रिया की ही महिमा है।

हे शुकराज ! यह परम सत्य है महाभाव समुद्र प्रिया में अनन्त-अनन्त प्रियतम तरंगों की तरह व्यक्त हो रहे हैं। समग्र महाभाव समुद्र प्रियतम ही प्रियतम रूप में प्रकाशमान है। प्रिया के नेत्र निर्मल आकाश में जैसे ही उठते हैं अनन्त-अनन्त प्रियतम उस आकाश में भर जाते हैं। वे पत्तों में, वृक्षों में, अणु-परमाणु में प्रियतम ही प्रियतम अनगिनत प्रियतम खड़े करती रहती हैं। उनकी नासिका पृथ्वी के कण-कण में प्रियतम सूंघती है। उनकी त्वचा वायु के परमाणु-परमाणु से अनन्त प्रियतमों का सुशीतल सुस्पर्श प्राप्त करती रहती है।

प्रिया तो सत्य संकल्प हैं। वे तो कोई मिथ्या काल्पनिक नहीं हैं तब यह प्रियतम निर्माण क्या केवल मिथ्या कल्पना है, कदापि नहीं। प्रियतम अनन्तानन्त ही इस महाभाव-समुद्र में लहरारहे हैं-यह परम सत्य है। और सब प्रियतम श्रीकृष्ण अनन्त रसगुण समन्वित हैं, कैसी विचित्र महाभाव की महिमा है !

हे शुकराज प्रकृति के तीन गुण सत्व, रज, और तम जब, अपार और अनन्त चित्र-विचित्र सृष्टि का निर्माण कर रहे है तो जिन महाभाव समुद्र में अनन्त प्रियतम श्रीकृष्ण लहरा रहे हैं उसकी महिमा कितनी अनुपम, अकथ, और अनन्त होगी इसकी कल्पना तो करो। एक श्रीकृष्ण अपनी वाणी से उस प्रिया की क्या महिमा गावेंगे जिसके नेत्रों की दृष्टि से अनन्त रसराज नित्य व्यक्त हो कर अनन्त नितनवीन गुण सज्जा से सज्जित हो उठते हैं।

हे शुकराज ! सम्पूर्ण वेद वेदांग, श्रुति स्मृति किसकी महिमा से भरी हैं ? मात्र ब्रह्म की। वेदो ने, स्मृतियों ने, पुराणों ने, प्रियतम श्रीकृष्ण की सबसे बड़ी यही महिमा गाई है कि वे सच्चिदानन्द परतत्व परब्रह्म हैं। इससे बड़ी

महिमा उनकी कुछ भी किसी ने नहीं की। परन्तु यह उनकी महिमा है क्या ? जरा विचार करो शुक ! तमोगुण प्रकृति से परे ही वह सिद्ध लोक ब्रह्म है जहाँ ब्रह्म सुख में निमग्न सिद्ध लोग और श्रीकृष्ण के द्वारा मारे हुए, उनके द्वारा ही नहीं वरं उनके अंशावतारों द्वारा मारे हुए दैत्य भी निवास करते हैं। अब बताओ ज्ञानमार्गी सिद्धों को जो सबसे बड़ी गति मिलती है वह तो प्रियतम श्रीकृष्ण के प्रति शत्रु भाव रखने वालों को भी मिल जाती है। तो जो गति शत्रु भाव रखनेवालों को दी जाय, वह तो सर्वथा उपेक्षणीय गति ही है, तब उस गति को उनकी स्वयं की स्वरूप महिमा बताना कितनी अल्प और छोटी बात है ! और शुकराज ! शेष नाग के समान बलशाली भुजाओं वाले इन श्रीकृष्ण में मन को लगाकर इनके चरणों की जो निरन्तर भक्ति करते हैं वे भी इनसे क्या पाते हैं- सायुज्य, सालोम्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य, ही पाते हैं फिर वे इनकी महिमा कैसे जान पावेंगे ? क्योंकि इनकी मूल उत्स सत्य महिमा महाभाव से तो वे लोग भी अछूते अज्ञात ही हैं। जैसे क्षुद्र कीट किसी वृक्ष के पत्ते पर चिपक कर उसके रस से ही तृप्त हो जाय उस प्रकार ये प्रिया रूप महाभाव के एक पत्र प्रियतम श्रीकृष्ण के दिव्य स्वरूपभूत गुणों में ही रम जाते हैं। इस प्रिया रूप-वृक्ष के मधुरातिमधुर प्रेमफलों से उसके परम सुमिष्ट प्रेमरस में ये प्रियतम भक्त भी वंचित ही रह जाते हैं। हे शुकराज ! इसीलिये मेरी तो यही विनम्र प्रार्थना है, अपने मूल भाव प्रिया में ही सर्वदा अटल रहो। अपने अन्तःकरण में प्रिया एवं महाभाव के अतिरिक्त कहीं द्वैत बुद्धि जागृत मत होने दो। महाभाव से ही यह सारा रस विलास सत्य है।

हे शुकराज ! अव्यक्त तेज में जो सर्वत्र व्याप्त है, अनन्त सूर्य हैं उसी प्रकार इस प्रियाभाव में अनन्त प्रियतम हैं। सदेह दिखाई पड़ने पर भी सद् दृष्टि वाले जानते हैं कि रसराज प्रियतम की महिमा सब प्रिया ही प्रिया हैं।

हे शुकराज ! जो न स्थूल हैं, न अणु फिर भी जो सब ओर से स्थूल और अणु हो गये हैं- जो निर्गुण हैं, निराकार हैं फिर भी जो अनन्त गुण, नितनूतन गुणावली से युक्त हो श्यामसुन्दराकार हो गये हैं-जो वर्ण-परिच्छिन्न न होकर भी श्याम वर्ण हैं और रक्त नेत्र प्रान्तवाले हैं- जो सर्वातीत सर्व असंग होकर भी प्रिया संग हैं और जो सर्व-बन्धन विमुक्त होकर प्रिया की भुजा परिरम्भण में बँधे रहते हैं वे प्रियतम रसराज प्रिया के प्रेम के ही कारण

नायक शिरोमणि-गुण समलंकृत भी हैं।

हे शुकराज! प्रिया के सब गुणों का प्रकाश प्रियतम में है। इन अनन्तानन्त गुणों की गणना भी सम्भव नहीं। यदि कोई रस-शास्त्र या रसिक वर इनकी गणना भी करे तो भूमि में धूलिकणों के समान तथा आकाश में तारकों के समान प्रियतम में अनन्त अपरिसंख्येय गुण मिलेगें। फिर भी इन प्रियतम में धीरोदात्त, धीरललित, धीर प्रशान्त और धीरोद्धत चारों नायकों के गुण पाये जाते हैं। अनन्त प्रकार के गुणों और क्रियाओं के आधार होने पर भी जो यहाँ उनकी चतुर्विधता कही गई है उसकी स्वतः सिद्ध बहुविविधता के साथ कोई विरोध नहीं होता।

हे शुकराज, धीरोदात्त नायक में शास्त्रों ने जो गुण बताये है वे निम्न प्रकार के हैं:— गम्भीर, विनयी, क्षमाशील, दयावान, दृढ़प्रतिज्ञ, आत्माश्लाघा न करने वाला, अपने अभिमान को छिपाकर भीतर रखने वाला, बाहर से उसे प्रकाशित न करने वाला और उत्तम शक्ति को धारण करने वाला नायक धीरोदात्त नायक कहलाता है।

गंभीरो विनयी क्षन्ता करूणः सुदृढवतः।
अकत्थनो गूढ़गर्वो धीरोदात्तः सुसत्त्वभृत्॥

प्रियतम श्रीकृष्ण में ये सब गुण समग्र रूप में विद्यमान हैं। अब देखो धीरललित नायक में शास्त्रकारों ने कौन-कौन से गुण बताये हैं—

विदग्धो नवतारुण्यः परिहास विशारदः।
निश्चिन्तो धीरललितः स्यात्प्रायः प्रेयसीवशः॥

जो ललित कलाओं में चतुर है, नवकैशोर से युक्त है, परिहास करने में पारंगत है, चिन्ताओं से सर्वथा रहित है, और प्रेयसीगणों के वशवर्ती है वह धीरललित नायक है। हे शुकराज प्रियतम श्रीकृष्ण में ये सब गुण भी पूर्णतया विद्यमान हैं। अब धीर प्रशान्त नायक के गुण देखो।

शम प्रकृतिकः क्लेश सहनश्च विवेचकः।
विनयादि गुणोपेतो धीरशान्त उदीर्य्यते॥

जो शान्त प्रकृति का हो, क्लेश सहने में समर्थ हो, विवेचक हो, विनयादि गुणों से सम्पन्न हो, वह धीरशान्त नायक कहलाता है।

प्रियतम श्रीकृष्ण में ये गुण भी नित्य विद्यमान हैं। हे शुकराज ! सर्वोपरि सद्गुणों के रूप में शास्त्रों में मंगलालंकार रूप पुरुषनिष्ठ आठ प्रकार के सत्त्व भेद अर्थात् अन्तःकरण की विशेषवृत्तिरूप सद्गुण बताये हैं। वे निम्नलिखित हैं– शोभा, विलास, माधुर्य, मांगल्य, स्थैर्य, तेज, लालित्य और औदार्य। प्रिया ने अपने प्रियतम में इन सब गुणों का पूर्ण समावेश किया है। परन्तु साथ ही साथ शास्त्रों में जो अठारह प्रकार के महादोष बताये हैं उन्हें भी प्रिया ने अपने प्रियतम में गुण रूप से सज्जित किये हैं। ये महादोष निम्नलिखित हैं—

(१) मोह, (२) तन्द्रा, (३) भ्रम, (४) रुक्ष रसता, अर्थात् प्रेम के बिना राग, (५) काम, (६) चंचलता, (७) मद, (८) मात्सर्य, (९) हिंसा, (१०) खेद, (११) अतिपरिश्रम, (१२) असत्य भाषण, (१३) क्रोध, (१४) आकांक्षा, (१५) आशंका, (१६) जगत्पालन इच्छारूप आवेश, (१७) विषमता, (१८) दूसरे की अपेक्षा रखना।

हे शुकराज ! वैष्णवतन्त्रों एवं विष्णुयामल में इन्हें श्रीकृष्ण में सर्वथा नहीं बताया है—

अष्टादश महा दोषै रहिता भगवन्तनुः।
सर्वैश्वर्य मयी सत्य विज्ञानानन्द रूपिणी।।

(वैष्णव तन्त्र)

भगवान का शरीर अठारह प्रकार के दोषों से रहित, सब ऐश्वर्यमय और सत्य विज्ञान से युक्त आनन्द स्वरूप है। परन्तु प्रिया ने अपने प्रियतम को इन दोषों से भी उन्हें भाव गुण बना कर प्रेम गुण रूप में सजा दिया है। यही प्रिया की महिमा है। इसीलिये प्रियतम में धीरोद्धत नायकत्व भी दृष्टिगोचर होता है जिसमें मत्सर है, अहंकार है, छल है, प्रपञ्च है, क्रोध है, चित्त का चांचल्य है और आत्मश्लाघा है। इसमें कहीं कोई आश्चर्य नहीं है। माधुर्य तो प्रियतम की मुग्धता ही में है। हे शुक, बताओ प्रियतम श्रीकृष्ण आप्तकाम, पूर्णकाम, जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति से अतीत हुए नित्य तुरीयावस्था में नेत्र

मूँदे ध्यानस्थ यशोदारानी के पालने में झूलते रहें इसमें माधुर्य है या वे स्तन्य काम होकर रुदन करें—नेत्र कमलों से मकरन्द सदृश अश्रु विन्दु कपोलों पर लुढ़का दें इसमें माधुर्य है ? हे शुक ! बताओ माधुर्य उनके पूर्ण ज्ञानी बनकर सर्व अतीत, आगत और वर्तमान को सर्वज्ञ की तरह जानने वाला बनने में है या माखन के मोहवश मन्द-मन्द पदचालन करते हुए किसी गोपी के नवनीत भण्डार में सखाओं के साथ चुपचाप प्रवेश करने में है ? बताओ शुक ! माधुर्य उनका सदा जाग्रत रहकर प्रहरी की तरह खड़े रहने में है या मैया से तन्द्रिल नेत्रों से कहानी सुनाने का आग्रह करने में है ? बोलो माधुर्य उनका सदा भ्रम-शून्य होकर रहने में है या मैया को खोजते हुए भ्रमवश किसी गोपी को अपनी माँ यशोदा समझ कर पीछे से उसकी वेणी पकड़ कर लटक जाने में है ?

बताओ माधुर्य उनका प्रेमी जनों को ही प्रेम करने में है, भक्तों पर ही, योगियों पर ही कृपाकर अपने दर्शन देने में व्यक्त होता है, या प्रेम-पथ से सर्वथा अपरिचित व्रज में नवागता किसी भी तरुणी को अपने मद विघूर्णित नेत्रों की कटाक्ष से प्रेममत्ता बनाकर पगली बना देने में व्यक्त होता है ? हे शुक ! प्रियतम श्रीकृष्ण के नेत्र स्थिर निमीलित हों तब मधुर लगेंगे या पूर्ण चंचल होने पर माधुर्य का प्रकाश करेंगे ? इसी प्रकार उनका चित्त योगियों की तरह एकाग्र होने पर प्रिय लगेगा या चंचल होकर सर्वरसग्राही होने पर प्रिय लगेगा ? इसी प्रकार उनके हस्त कमल चंचल होकर जब बाँसुरी बजायेंगे-किसी पनघट पर आयी गोपी का जल भाँड फोड़ेंगे या किसी की ओढनी छीनेंगे तब प्रिय लगेंगे या निस्पन्द अवयव हुए वे योगियों की मुद्रा में बैठे रहेंगे तब माधुर्य प्रकाश करेंगे ? बताओ शुक ! प्रियतम का माधुर्य जब उनके नेत्र प्रेम मद से विघूर्णित होते हैं—उनके ललाट पर मदमत्त कुंजर की तरह प्रेम मद की बूँदे छलकती हैं, उनकी चाल मद से डगमगाने लगती है और वे मदमत्त हुए जब झूमते मत्त गजराज की गति से चलते हैं तब पूर्ण विकसित होता है कि वे शान्त स्थिर योगी की तरह आनन्द मुद्रा में बैठे हों तब विकास को पाता है ? हे शुकराज ! हमारे प्रियतम का माधुर्य सिन्धु तो तभी एक से एक विलक्षण तरंगें लेता है जब उनमें प्रेमियों के हृदय को प्रेम भरे नयन कटाक्षों से हिंसा करने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है प्रिया विरह के खेद से जब उनका मुख म्लान हो उठता है, जब प्रिया का मान मनाने में उन्हें अति परिश्रम होता है, वे जब विलम्ब से कुंज में आगमन पर असत्य भाषण कर अपनी प्रिया को अति

रसमयी नई-नई रीति से सान्त्वना देते हैं-व्रजवासियों पर आयी किसी विपत्ति के निवारणार्थ जब वे क्रुद्ध हो उठते हैं, प्रिया मिलन की अतिशय आकांक्षा से उनका चित्त जब व्याकुल हो उठता है, कुंज में आगमन के समय जब उनका मन अमिलन की आशंका से बारंबार आशंकित हो उठता है, किंवा जब वे अपने प्रेमीजनों के प्रति विषम व्यवहार करते हैं एवं जब वे प्रेम अधीर होकर अपनी प्रिया से मिलन की अपेक्षा से आकुल रहते हैं।

हे शुक! जब पूर्णकाम प्रियतम श्रीकृष्ण स्तन्य काम हुए अनन्त क्षुधा से पीड़ित होकर रोने लगते हैं, एवं तब उनका रुदन यदि अति रसमय माना जा सकता है तो वे ही प्रियतम जब प्रिया काम होकर अनन्त प्रेम से विरह विह्वल हो रुदन करते हैं तब उनका रुदन भी अवश्य अनन्त-अनन्त रसमय ही होगा। जब नित्य-तृप्त प्रियतम श्रीकृष्ण में वात्सल्यभाव नित्य अतृप्ति और क्षुधा को जागृत कर सकता है और वे परात्पर जब मातृस्तन्य हित अतृप्त क्षुधित हो सकते हैं तो अवश्य ही प्रिया का मधुर भाव भी उनमें प्रेम की अनन्त क्षुधा को जागृत कर सकता है और वे ही परात्पर प्रिया की चरण रज पलोटने अतृप्त प्रेम क्षुधित हो कुंज-कुंज दौड़ सकते हैं। हे शुक! जिन श्रीकृष्ण की शुभ स्मृति समस्त विश्व के सम्पूर्ण क्रोध को नाश कर सब दोष को हरण करने में समर्थ है. वे ही माता के दूध न पिलाने पर क्रोध वरण कर होठ काटने लगते हैं, और उनमें क्षमा का लेश भी नहीं दिखाता, वे काम प्रतिहत हो विचारे दधिभाजन पर रोष प्रकट कर उसे फोड़ डालते हैं, श्रीकृष्ण का यह क्रोध यदि उनके माधुर्य की सरसता को सीमा रहित तरंगायित कर सकता है तो वे यदि प्रिया की महाभाव की परम मधुर उपेक्षा से काम प्रतिहत हुए क्रोध प्रकाश कर परमोच्च रस और माधुर्य का सीमोल्लंघन कर जावें इसमे क्या आश्चर्य है! पूर्णैश्वर्ययुक्त और स्वराज्य श्री के परम आधार प्रियतम श्रीकृष्ण जब लोभवश माखन चोरी करने भंडार गृह में घुस सकते हैं तो वे प्रेम चोरी करने भी छद्मवेश में योगिनी आदि बनकर प्रिया गृह में प्रवेश भी कर ही सकते हैं। जब वे चौर्य विशंकित नेत्र जननी के द्वार पर आने पर जननी के हाथ की छड़ी देखकर भयभीत हो जाते हैं तो प्रिया के अपराधी होने पर उनके भय से भी भयभीत हो सकते हैं। हे शुकराज! जिन सर्वातीत को, जिन्हें वेद भी, पकड़ सकना तो दूर स्पर्श भी कर नहीं सकते, जब मैया पकड़ लेती हैं और डाँटकर वानर सखा, धृष्ट, अदान्तात्मन् कहकर तर्जती हैं और वे आँख मलमलकर रोते हैं, तो उन्हें प्रिया भी चतुराई का सारा

अभिमान चूरकर प्रेमापराध करते पकड़ सकती हैं और कपटी कितव, लंपट, लबार, छलिया कहकर तर्ज सकती हैं, उस समय भी उनका नीचा मुखकर आँसू बहाना अपार शोभामय ही लगेगा।

हे शुकराज ! प्रिया का प्रेम शुद्ध सच्चिदानन्द है, उनका प्रेम ऐश्वर्य महा–महा अपार है–प्रियतम उस प्रेमैश्वर्य के एक बिन्दु में ही डूबे रहते हैं उसे लाँघ नहीं सकते कभी उसे पार नहीं कर सकते। प्रिया का प्रेम बिन्दु भी पूर्ण असीम सिन्धु है। उसकी बिन्दु सीमा का भी निर्देश नहीं हो सकता–क्योंकि पूर्ण प्रेम का बिन्दु भी पूर्ण प्रेम ही है—वह नित्य अनन्त पूर्ण चिद्घन हैं उसका कहीं शेष नहीं–प्रिया इन सब मोह तन्द्रादि अठारहों दोषों को निज प्रेम सागर में डूबाकर जब अपने प्रियतम को इनकी मालाधारण कराती हैं तब इन्हें प्रियतम का निज स्वरूप ही बनाकर उन्हें समलंकृत करती हैं। हे शुकराज ! प्रियतम की जिन गुण सज्जाओं से प्रिया शृँगार करती हैं वह गुणराशि न कल्पना है, न भावना है, न माया है, न नाट्य है, न दम्भ है, न अभिनय है और न वे अनित्य हैं। वे सब गुण प्रेम रस हैं, ये भाव ही हैं जो रसरूप प्रियतम का स्वरूप हैं। प्रियतम में कर्त्ता और उसका कर्म ऐसा भेद कहीं नहीं है। प्रियतम ही कर्त्ता हैं और प्रियतम ही कर्म हैं। हे शुकराज ! लीलाकर्त्ता, लीला और लीला–पात्र यह भेद प्राकृतिक जगत मे ही है। कर्त्ता, कर्म और करण ये प्राकृतिक जगत मे ही भिन्न–भिन्न हैं। रसजगत में एक ही प्रिया सर्वलीला कर्त्री हैं और वे ही सर्वलीला हैं और वे ही लीलापात्र प्रियतम हैं। गुण और गुणी का भेद भी प्राकृतिक जगत में ही है–यहाँ रस जगत में भाव ही गुण है और भाव ही गुणी है। हे शुकराज इसलिये प्रियतम का मोह सर्वथा एवं सर्वदा प्रिया तत्व से पूर्ण अभिन्न उनका स्वरूप गत भाव ही है। प्रियतम की तन्द्रा, भ्रम उतनी ही प्रिया है जितनी प्रियतम की वेणुमाधुरी, रूप माधुरी प्रिया हैं। हे शुक ! प्रियतम का काम, उनकी चंचलता उनका, मद, मात्सर्य, उनकी हिंसा, खेद, उनका क्रोध और असत्य भाषण भी उतना ही मुनिजन मनमोहन, ब्रह्म विद्या मोहन है जितना उनका, हास्य, लास्य और विलास है। हे शुकराज ! प्रियतम का क्रोध पूर्ण पूर्णतम प्रेम ही है। वह उतना ही मधुर, मधुरतर, मधुरतम है जितना उनका परिरंभण और रस रास विलास है।

और शुकराज ! यह सब पूर्णतया उपनिषद् प्रतिपाद्य भी है। वेद कहते हैं—तुरीयमतुरीयमात्मानमनात्मानमुग्रमनग्रं वीरमवीरं महान्तममहान्तं

विष्णुमविष्णुं ज्वलन्तमज्वलन्तम् सर्वतोमुखमसर्वतोमुखम् ।

वे विराट, हिरण्यगर्भ, कारण से अतीत, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति से अतीत तुरीय हैं साथ ही अतुरीय भी हैं। वे आत्मा भी हैं और अनात्मा भी हैं, वे अनुग्र हैं तो वे उग्र भी हैं, वे वीर भी हैं और अवीर भी हैं। वे महान् भी हैं तो वे क्षुद्र अमहान् भी हैं। वे विष्णु हैं तो वे एकदेशीय अविष्णु भी हैं। वे ज्वलन्त हैं तो वे ही परम स्निग्ध, शान्त, नयनानन्द दाता भी हैं और सर्वतोमुख है तो दो हाथ, पैर, नेत्र और एक मुखवाले भी हैं।

हे शुकराज ! और उनकी यह अतुरीयता कोई मायाजनित नहीं है उनका स्वरूपगत जितना एवं जैसा तुरीयत्व है उतना ही स्वरूपगत उनका अतुरीयत्व भी है। जितना स्वरूपगत उनका आत्म स्वरूप होना है उतना स्वरूपगत ही उनका अनात्मक रूप होना भी है। उनकी उग्रता और अनुग्रता दोनों ही स्वरूपभूत ही हैं। उनका सब कुछ स्वरूपभूत ही है। उनका सब कुछ स्वरूपभूत प्रिया ही हैं, भाव ही है। वे तो महाभाव प्रकाश महा रस हैं। यही प्रिया की महिमा है।

हे शुकराज ! इसे और विस्तार से कहती हूँ, सुनो। देखो प्रियतम श्रीकृष्ण ने यह जो सम्पूर्ण प्राकृत प्रपंच रचा है, वह सब गुणों के क्षोभ से बना है। सत्व, रज और तम ये गुण अपने क्षोभ से अनेकों प्रकार की भेदवृतियाँ, जन्म मरण, वृद्धि ह्रास एवं विकार उत्पन्न करते हैं। इनका यद्यपि विस्तार असीम है परन्तु इस सम्पूर्ण विकारात्मक सृष्टि को तीन भागों में बाँट सकते हैं। ये तीन भाग हैं (१) अध्यात्म, (२) अधिदैव और (६) अधिभूत। देखो ! नेत्र अध्यात्म है, उसका विषय गुण, रूप या सौन्दर्य किंवा उसका विषय अवगुण कुरूपता दोनों अधिभूत हैं और नेत्र गोलक में स्थित सूर्यदेवता का अंश अधिदैव है। अब यह स्पष्ट हो गया कि प्राकृतिक रूप, सौन्दर्य, नेत्र किंवा उसकी अधिदैविक सत्ता की अपेक्षा से ही सत्तान्वित है, अन्यथा रूप नामक गुण की किंवा कुरूपता नामक अवगुण की कोई सत्ता ही नहीं। इसी प्रकार सुशीतलता आदि गुणों का, सुस्पर्श आदि गुणों का अध्यातम त्वचा है और अधिभूत सुस्पर्श और वायुदेवता का अंश ही इनका अधिदैव है।

इसी प्रकार मधुरता नामक गुण का अध्यात्म जिह्वा है अधिभूत रस है और अधिदेव वरुण हैं। सुगन्ध, सौरभ नामक गुण का अध्यात्म नासिका है, अधिभूत सौरभ है और अधिदेव अश्विनीकुमार हैं। सुमधुर ध्वनि,

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गान संगीत, सुमधुर वचनावली, वेणु ध्वनि, वीणावादन आदि सब शब्दनाद सबंधी गुणों का अध्यात्म श्रवणेन्द्रिय है अधिभूत शब्द है और अधिदेव दिशा हैं। इसी प्रकार चिन्तन जनित जितने गुण हैं उन सबका अध्यात्म चित्त है अधिभूत चिन्तन है और अधिदेव वासुदेव हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण मानसिक विषयों का अध्यात्म मन है अधिभूत तद् विषय हैं और अधिदेव चन्द्रमा हैं। अहंकार जनित जितने गुण हैं उन सबका अध्यात्म अहंकार अधिभूत तद्विषय और अधिदेव रुद्र हैं। बुद्धि जनित जितने गुण हैं उन सबका अध्यात्म बुद्धि है अधिभूत तद्विषय समझना और उन सबका अधिदेव ब्रह्मा है। हे शुकराज! इनकी सबकी मूल उत्पत्ति सत्व, रज और तम इन तीन गुणों का पारस्परिक क्षोभ ही है जो अहंकार का सृजन करता है—और इन गुणों से आवृत सात्विक, राजसिक, तामसिक, अहंकार ही सम्पूर्ण सृष्टि की विविधता का मूल कारण है।

हे शुकराज—गुण-अवगुण, सुन्दर-असुन्दर, सुरुप-कुरुप, अस्ति-नास्ति, सगुण-निर्गुण, सत्य-मिथ्या, रमणीयता-अरमणीयता, सुरुचि-कुरुचि, सल्लक्षण-कुलक्षण, शुभ-अशुभ, मंगल-अमगल, बल-अबल, कैशोर-जरा, वाचालता-मूढ़ता, प्रियता-अप्रियता, सुबुद्धि-कुबुद्धि, तीक्ष्णता-मंदता, धैर्य-अधैर्य, सुख-दुख, कृतज्ञता-अकृतज्ञता, दाक्षिण्य-ग्राम्य, वश्यता-स्वतंत्रता, गंभीरता-चचंलता, श्रेष्ठत्व-अश्रेष्ठत्व, सुकीर्ति-अपकीर्ति, नूतनता-पुरातनता, राग-द्वेष, तेजस्विता-तमोमयता, सत्य संकल्पता-मिथ्या संकल्पता, पांडित्य-अपांडित्य, विद्वत्ता-अविद्वत्ता, सम्पूर्ण-ज्ञाती एवं अज्ञता, शुचिता-अशुचिता, पाप-पुण्य, क्षमा-अक्षमा, त्याग-लोभ, समता-विषमता, धार्मिकता-अधार्मिकता, विनय-अविनय, शत्रुता-सुहृदता, सामर्थ्य-असामर्थ्य, ऐश्वर्य-दरिद्रता, जितने भी वाद किंवा विवाद हैं सब का मूल कारण भेद दृष्टि-पूर्ण अज्ञान हैं। ये सब गुण-विवाद निष्प्रयोजन सर्वथा-सर्वथा व्यर्थ हैं-जो भाव बिमुख हैं वे कदापि इस विवाद से मुक्त नहीं हो सकते, नहीं हो सकते। हे शुक जो लोग आत्म ज्ञान से रहित हैं वे इस विषय को ठीक-ठीक सोच भी, विचार भी नहीं सकते।

हे शुकराज! जीव का मन कर्म संस्कारों का पुञ्ज है। पांच इन्द्रियों से युक्त होने पर इसका नाम लिंग शरीर हो जाता है। प्रियतम श्रीकृष्ण में न लिंग शरीर है और न उनका मन कर्म संस्कारों का समूह है। प्रियतम का मन न

देखे हुए, सुने हुए विषयों का चिन्तन करने लगता है एंव न ही क्षण भर में ही उनमें तदाकार हो जाता है। प्रियतम श्रीकृष्ण का किसी शरीर विशेष में न तल्लीनता है न ही वे किसी भी शरीर को अभेद भाव से मैं के रूप में स्वीकार ही किये हैं।

हे शुकराज। जब इन्द्रियों के आश्रय मन या शरीर की सृष्टि से ही आत्मा में उत्तम, मध्यम और अधम की त्रिविधता भासती है तो प्रियतम में उत्तम गुण, मध्यम गुण और अधम अवगुण यह त्रिविधता कैसे प्रतिलक्षित हो सकती है?

हे शुकराज! यह सत्य, सत्य, सत्य, परम सत्य है कि प्रियतम में न उत्तम गुणों का आवास है, न मध्यम गुणों का आवास एंव न ही अधम अवगुणों का आवास है। फिर ये गुण क्या हैं? हे शुक! गर्भाधान, गर्भ वृद्धि, जन्म बाल्यावस्था, कैशोर, यौवन ये सब अवस्थाएँ शरीर की ही हैं। जब प्रियतम शरीर नहीं हैं तो उनमें ये अवस्थाएँ कहाँ से आवेंगी? फिर बताओ प्रियतम की कैशोर अवस्था क्या है?

हे शुकराज! विचार करो–प्रियतम पुल्लिग शरीर नहीं हैं, न ही प्रिया स्त्रीलिंग शरीर हैं। प्रिया मात्र भाव हैं और प्रियतम भाव प्रकाश रस हैं। भावगत सत् चित् आनन्द ही माया के आवरण से सत्व, रज और तम त्रिगुण रूप में भासित होते हैं। हे शुकराज! यदि इन तीनों गुणों को माया संश्लेष से विशुद्ध कर दिया जाय तो विशुद्ध सत्व आनन्द रूप में, विशुद्ध रज, चिति, चिन्मय ज्ञान रूप में और विशुद्ध तम सत् सत्ता सन्धिनी भाव में परिणत हो जायगा। हे शुकराज! जैसे माया त्रिगुणात्मिका है उसी प्रकार महाभाव भी त्रिशक्ति युक्त है ये तीन महाशक्तियां हैं सन्धिनी सत् शक्ति, चिच्छक्ति और ह्लादिनी शक्ति।

हे शुकराज! इन तीनों का एक रूप सम्मिलन ही महाभाव है और इनका प्रकाश रसराज प्रियतम रूप में होता है। इसलिये रसराज प्रियतम ही महाभाव प्रिया हैं और महाभाव प्रिया ही रसराज प्रियतम हैं। हे शुकराज! जैसे असीम विकारात्मक सृष्टि को, अध्यात्म, अधिदैव, और अधिभूत इन तीन भागों में बाँट सकते हैं उसी प्रकार इस असीम अनंत गो लोक लीला क्षेत्र को भी तीन भागों में बाँट सकते हैं। ये तीन भाग हैं–प्रिया–प्रियतम और

उनकी लीला। अब उदाहरणार्थ देखो–नेत्रेन्द्रिय चाहे जिस किसी की हो, गोपी की हो, ग्वाल की हो, शुक की हो, सारिका की हो-सम्पूर्ण नेत्रेन्द्रिय भावरूप प्रिया हैं यही उसका अध्यात्म रुप है उनका विषय रूप मात्र भावमय लीला है यही उसका अधिभूत है उनका—अधिदैव प्रिया रूप भाव के नेत्र गोलक में स्थित रसराज प्रियतम हैं। इसी प्रकार यहाँ की प्रत्येक त्वचा भाव रूप प्रिया हैं. स्पर्श उनकी लीला है और उसका अधिदैव रसराज प्रियतम श्रीकृष्ण हैं। यहाँ की प्रत्येक जिह्वा भाव रूप प्रिया हैं उसका माधुर्य रस प्रिया की लीला है और उसका अधिदैव रसराज प्रियतम श्रीकृष्ण हैं। यहाँ की प्रत्येक नासिका भावरूप प्रिया हैं, गंध लीला है और अधिदैव श्रीकृष्ण रसराज हैं। यहां का अहंकार भाव रूप प्रिया है—अहंकार का विषय लीला है और अधिदैव प्रियतम श्रीकृष्ण चित्त भावरूप प्रिया हैं–चिन्तन लीला और अधिदैव श्रीकृष्ण मन प्रिया हैं–मनन लीला और अधिदैव श्रीकृष्ण मन प्रिया हैं–मनन लीला और अधिदैव श्रीकृष्ण बुद्धि प्रिया हैं समझने का विषय लीला और अधिदैव श्रीकृष्ण।

हे शुकराज! इस असीम विकारात्मक सृष्टि और प्रिया की भावरूप गोलोक सृष्टि में इतना ही अन्तर है कि विकारात्मक सृष्टि में सभी त्रिविध तत्वों से आत्मा का कोई संबंध नहीं रहता आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका इन पदार्थों से कोई संबंध नहीं है। विकारात्मक सृष्टि के गुण–अवगुण सुन्दर–असुन्दर, सुरूप–कुरूप, अस्ति–नास्ति, भाव–अभाव, सगुण–निर्गुण, सत्य–मिथ्यादि का मूल कारण मात्र सात्विक, तामस और राजस गुणों का क्षोभ अहंकार है। यह अहंकार अज्ञान मूलक होने के कारण निष्प्रयोजन है, मिथ्या है–व्यर्थ है। परन्तु भावरूप गोलोक सृष्टि में महाभाव प्रिया–उनकी लीला और रसराज प्रियतम श्रीकृष्ण स्वयं आत्मा के आत्मा ब्रह्म के ब्रह्म, ज्ञान के ज्ञान हैं। अतः यहाँ के समस्त गुण–अवगुण, सुन्दर–असुन्दर, सुरूप–कुरूप, अस्ति–नास्ति, सगुण–निर्गुण सत्य-मिथ्या मात्र प्रिया हैं और प्रियतम हैं। प्रिया में और उनकी लीला में और उनके रस प्रियतम में पूर्ण अभिन्नता, अभेद दृष्टि है। यहाँ सबमें अभिन्नता है कहीं भेद दृष्टि नहीं है।

हे शुकराज! इसीलिये यहाँ के प्राणियों का मन कर्म संस्कारों का पुञ्ज नहीं है– मात्र प्रिया प्रियतम की लीला संस्कारों और उनके प्रेम संस्कारों का पुञ्ज है। यहाँ के लीला पात्रों के साथ जो उनकी–ज्ञानेन्द्रियां कर्मेन्द्रियां लगी

हैं वे विषय भोग प्राप्त करने के लिये नहीं हैं अपितु प्रिया प्रियतम के अनन्त सुख विहार में निमित्त बनने के लिये हैं। इसीलिये यहाँ का कोई शरीर लिङ्ग शरीर नहीं हैं, भाव शरीर है, भक्ति शरीर है, प्रेम शरीर है, रस शरीर है, सच्चिदानन्द शरीर है। यह निज कर्मों के अनुसार एक शरीर से दूसरे शरीर में आने जाने वाला नहीं है यह नित्य है, विभु है, विष्णु है, अखण्ड है, अज है और अविनश्वर है। इस शरीर और इसकी आत्मा में कहीं कोई पृथकूता नहीं है। यह आत्मरूप ही है। इसमें निज का कोई अहंकार नहीं प्रिया प्रियतम ही इसके यंत्री हैं और यह उनका प्रेम यन्त्र हैं, लीला यन्त्र है। इसीलिये शुकराज यहाँ के प्रेम में और काम में कहीं कोई अन्तर नही है। यहाँ के मोह में, तन्द्रा में, भ्रम में, चंचलता में, मद में, मात्सर्य में, हिंसा में, खेद में, अतिपरिश्रम में, क्रोध और असत्य भाषण में भी पूर्ण शोभा है, पूर्ण माधुर्य है, पूर्ण मंगलमयता है, पूर्ण औदार्य और लालित्य है। यहां कोई दोष है ही नहीं गुण ही गुण हैं। और गुण भी भाव रूप हैं, प्रेम रूप हैं, भक्ति रूप हैं, रसमय हैं, रस स्वरूप हैं।

हे शुकराज ! अब देखो-प्रियतम की धीरोदात्त, धीरललित, धीर प्रशान्त और धीरोद्धत नायक रूप में कैसी विचित्र शोभा हो रही है ! सारिका के इतना कहते ही शुक एवं सारिका के सम्मुख एक अभिनव सुन्दर दृश्य आ गया।

गिरिराज परिसर में प्रिया राधाकुण्ड कृष्णकुण्ड के पास एक कुंज में अवस्थित हैं। प्रिया के इतस्ततः सेवा परायण अनेक सखियाँ हैं वे सब अपनी-अपनी अवस्था में अनन्त लक्ष्मियों से भी विशिष्ट शोभायुक्त हैं, परन्तु प्रिया अपनी स्वर्ण के गुण को भी जीत लेने वाली अंग द्युति की अपने अनन्त अपरिसीम माधुर्य से और उद्दीपित करती हुई सबको मानों निष्प्रभ कर दे रही हैं। प्रिया की शोभा मानों सबकी कीर्ति को लुप्त कराती हैं। कोई कवि उत्प्रेरणा कर सकता है मानों चन्द्रमा भी प्रिया की सुख ज्योत्स्ना के सम्मुख मलिन लग रहा है, बिम्बफल भी अपनी अरुणाई से रहित ही दृष्टिगोचर हो रहा है, स्वर्ण लता भी मानों मुरझासी गई हैं, सबकी माधुरी मानो विकल हो, कहीं अन्यत्र मुख छिपाना चाह रही है-ऐसा अप्रतिम शोभा सिन्धु प्रिया का वदन है। आश्चर्य है कनकवर्णी अंगद्युति वाली प्रिया के रोम-रोम से जो शोभा सौन्दर्य-माधुर्य, अभिरूपता का प्रवाह तरंगायमान हो रहा है वह श्याम प्रभा युक्त है। और मात्र श्याम प्रभा ही नहीं-किसी भाग्यशाली के प्रेम चक्षु यदि

निहारते हों तो उसे स्पष्ट परिलक्षित होगा कि यह श्याम प्रभा मात्र निराकार प्रभा ही नहीं है इसमें से अनन्त सुन्दर, अनन्त मधुर, अनन्त गुण समूह शाली, अनन्तानन्त प्रियतमा कृतियाँ स्पन्दित हो रही हैं और सर्वत्र सम्पूर्ण आकाश में भर रही हैं। प्रियतम हैं क्या ? प्रेम–घन–विग्रह ही तो प्रियतम हैं। वात्सल्य-रस–घन–विग्रह यशोदोत्संगलालित नीलमणि हैं तो माधुर्य रस घन विग्रह, प्रिया प्रेम परिरम्भित नव किशोर रसराज प्रियतम हैं । प्रेम महाभाव ही तो इनका अध्यात्म है और महाभाव प्रकाश रस ही इनका परम असमोर्ध्व सौन्दर्य माधुर्य सद्गुण सदन लीलावपु है, यही लीलामयवपु ही तो इनका अधिभूत है और ये स्वयं ही महान् से महान् अधिदैव, देवदेवाधिपति हैं।

ये महाभाव प्रकाश रसराज अनन्तानन्त हैं, एकमेव हैं और मात्र महाभाव ही महाभाव हैं ये हैं ही नहीं। एक और अनेक परिसंख्या से अतीत इनका रसराज स्वरूप है। ये सब संख्याओं के आदि भी हैं और अन्त भी हैं। संख्या इनकी सीमा निर्देश नहीं कर सकतीं। इसी प्रकार अस्ति और नास्ति भी इनकी सीमा नहीं हैं। अस्ति भी ससीम है और नास्ति भी ससीम है, ये असीम हैं इसलिये इनका स्वरूप निर्धारण असम्भव है।

प्रिया महाभाव समुद्र हैं। प्रिया के रोम–रोम से जो शोभा, सौन्दर्य और माधुर्य का प्रवाह तरंगायित हो रहा वह सब महाभाव ही महाभाव है। महाभाव ही रसराज है। इसीलिये इन रसराज का रोम–रोम अत्यन्त मधुर स्वर में गा रहा है—युग–युग से गा रहा है—"हे प्रियतमे राधिके ! तेरी महिमा अनुपम अकथ अनन्त" हे प्रिये, तुम्हारी महिमा अकथ है, अनन्त है— मैं प्रियतम हूँ और तू मेरी प्रियतमा है- यह कहना तो मात्र किंवदन्ती है, तू मेरे प्राण है और मैं तेरा प्राण हूँ- यह कहना भी प्रलाप ही है 'तू मेरी है और मैं तेरा हूँ'- यह भी कोई शुद्ध प्रयोग नहीं है। हम दोनों में कभी तू और मैं का भेद सम्भव ही नहीं। प्रिये मात्र तू ही तू है, तू ही मैं हूँ, मैं तू है। यही सत्य है। इसीलिये तू भाव है और मैं तेरा प्रकाश हूँ। यही उचित है।

शुक एवं सारिका दोनो देख रही हैं-धीरोदात्त नायक में गूढगर्वत्व ही तो प्रधान गुण है। गूढ गर्वी वही है जिसे अपनी अलौकिकता का गर्व अवश्य हो, किन्तु वह विनय वश उसे स्वयं प्रकाश न करे अपने आप उसकी विलक्षणता सबके गर्व को हत करती हुई स्वप्रकाशित होती हो। जो व्यक्ति अकथ अनन्त

महिमा को गाने की सामर्थ्य रखता है, उस महिमा को युग-युग से कल्पों-कल्पों से गाता रह सकता है, वह अवश्यमेव स्वयं भी अकथनीय सामर्थ्य रखने वाला, अनुपम अनन्त सामर्थ्यवान ही होगा। अकथनीय, अनन्त सामर्थ्य का प्रकाश भी अकथनीय अनन्त समर्थ व्यक्ति के सम्मुख ही हो सकता है। अन्यथा उस महिमा का प्रकाश ही बिना योग्य पात्र के सम्भव नहीं है 'नहीं कहीं भी पाता अंत' पंक्तियां यह प्रकाश कर रही हैं कि उस महिमा सागर में जो अनुपम है, अकथ है, अनन्त है, रसराज प्रियतम युग-युग से खूब विहार कर रहे हैं, वे स्वयं भी अनन्त होकर अनन्त काल से उसमें रमण कर रहे हैं परन्तु उसमें खूब सुखस्नात होकर भी उसका आदि अन्त नहीं पा रहे हैं तो उसमें युग-युग से वे सुखस्नात जो हो रहे हैं यह उक्ति ही उनके गूढ़ गर्वत्व को प्रकाशित करने वाली है।

इसी प्रकार अन्तिम पक्तियाँ तो उनके गूढ गर्वी होने का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत कर रही हैं–"नित्य तृप्त निष्काम नित्य में, मधुर अतृप्ति मधुरतम काम" जो नित्य तृप्त है, नित्य निष्काम है, वह गौरवशाली एवं गुणी ही है– यह तो अपूर्ण विलक्षणता ही है। संसार में विरले ही नित्य तृप्त होते हैं, नित्य निष्काम होते हैं। इसी प्रकार प्रियतम अपने स्वयं के मुख से कहते हैं– जपता तेरा नाम मधुर अनुपम मुरली में नित्य ललाम–जो 'मधुर' अनुपम मुरली बजाने वाला है वह विलक्षण गौरवशाली अवश्य है। तो यह सब भाषा उनके गूढ गर्वत्व नामक गुण को ही प्रकाशित कर रही है।

दूसरे जिसका हृदय मधुर अनमोल वचनों से सुधास्नात है, जिसके नेत्र नित्य अतृप्त एकटक अतिअभिराम रूप में डूबे हैं–जिसकी सम्पूर्ण–अभिलाषाएँ किसी अलभ्य पद की प्राप्ति से पूर्ण हो चुकी हैं– और जिसकी साधन प्रारम्भ भूमि भी नित्य निष्काम, नित्य तृप्त की है–ये सब लक्षण उसकी हृदय की महान् गम्भीरता के भी प्रकाशक हैं।

फिर यह कथन 'हे प्रियतमे ! राधिके !' अपनी आराधिका को भी प्रियतमे बना लेना उनकी महान् विनयशीलता को भी प्रकाशित कर रहा है। और अपनी प्रियतमा की अनन्त महिमा का पार न पाते हुए भी युगों–युगों तक अनवरत गान करते हुए उस अकथनीय महिमा को भी कथन करने का प्रयास करना उनके सुदृढव्रती होने का भी प्रमाण है।

दूसरे 'कहीं न मिला प्रेम शुचि ऐसा'। स्पष्ट उद्घोष कर रहा है कि

उन्हें अपने प्रेम के अनुरूप प्रिया के अतिरिक्त कहीं कोई नहीं मिला। सभी ने उनके प्रेम का तिरस्कार ही किया होगा– तभी तो किसी के प्रति उनकी प्रेम आशा पूरी नहीं हुई। फिर भी उन्होंने सबको प्रेम ही दिया यह उनकी अपूर्व क्षमाशीलता का प्रकाशक है, और 'एक तुम्ही को पाया मैंने जिसने किया पूर्ण अभिलाष'– यह कथन प्रगट करता है कि वे उत्तमोत्तम प्रेम शक्ति को धारण करने में समर्थ हैं, यह उनके 'सुसत्वभृत्व' गुण का प्रकाशक है।

फिर इतनी महिमाशालिनी प्रियतमा उनकी 'आराधिका' है यह 'राधिका' शब्द प्रकाशित कर कर रहा है कि वे स्वयं भी पूर्ण महिमा के भण्डार हैं परन्तु वे अपनी आत्मश्लाघा नहीं कर रहे हैं। यह उनके 'अकत्थन' गुण का द्योतक है। उनका निज महिमा–अभिमान भीतर है छुपा है उसे वे प्रकाशित नहीं कर रहे है।

इस प्रकार प्रियतम द्वारा प्रिया महिमा के इस गायन में प्रियतम के धीरोदात्त नायक के सब गुणों का पूर्ण प्रकाश है। साथ ही जपता तेरा नाम "मधुर अनुपम मुरली में नित्य ललाम" उनके सर्व कलाओं में चतुर होने का भी प्रकाशक है। जो सर्व कलाविद् होगा वही किसी के नाम मधुर अनुपम मुरली में जपेगा वे नित्य मुरली वादक हैं और उनकी मुरली नित्य ललाम है, अभिनव रस है उसमें, तभी वह नित्य ललाम बजनी है कितना बड़ा कलाविद् है उसका बजाने वाला जो मुरली को नित्य बजावे और नित नूतन सरलता उसमें भरता रहे। इसलिये ऐसा मुरलीवादक अवश्यमेव सर्व कलाओं में विदग्ध है।

'नित अतृप्त नयनों से तेरा रूप देखता अतिअभिराम।' यह कथन प्रकाशित कर रहा है कि कहने वाला स्वयं नव यौवन से युक्त है। रूप देखने की पिपासा किशोरावस्था की ही प्रकाशिका है। अतृप्त नयनों से रूप देखने की पिपासा एवं रूप में इतनी अभिरामता का अनुभव होना किशोरावस्था का ही प्रकाशक हैं। अतः यह कथन सिद्ध करता है नायक नव किशोर वय है। वह अपनी प्रियतमा के वश में रहने वाला भी है क्योंकि वह उसके रूप का अतृप्त नयनों से पान करता रहता है।

"कहीं न मिला प्रेम शुचि ऐसा कहीं न पूरी मन की आस"–एक तुम्ही को पाया मैंने जिसने किया पूर्ण अभिलाष–यह कथन भी प्रकाशित कर रहा

है कि नायक अपनी प्रेमिका के पूर्णतया वशीभूत है उसे अन्यत्र कहीं न रूप मिला है–न प्रेम ही दिखाई पड़ा है वह अन्य सब चिन्ताओं से भी मुक्त है तभी वह केवल निरन्तर अपनी प्रिया का नाम ही मुरली में बजाता रहता है–उसी के रूप को अतृप्त नयनों से देखता रहता है–उसी की प्रेम परवशता में सर्व सुख की सर्व कृतार्थता की उपलब्धि करता रहता है।

इसी प्रकार 'विकासदा के लिये मधुर दृग–कमल कुटिल भृकुटी के मोल' यह वाक्य रचना ही यह प्रकाशित कर रही है कि नायक अत्यन्त रसिक है और उत्तमोत्तम शिष्ट परिहास करने में भी पूर्ण कुशल है।

अतः यह प्रियतम का गान प्रियतम में धीर ललित नायक के सब गुणों को भी प्रकाशित कर रहा है।

इसी प्रकार प्रियतम का 'हे प्रियतमे राधिके! तेरी महिमा अनुपम अकथ अनन्त' यह कथन प्रकाशित कर रहा है कि प्रियतम रसराज अत्यन्त विनय से मनोहर स्वरूप वाले हैं– उनके प्रिया प्रेम से भरे अति स्निग्ध नेत्र हैं– जो प्रेम ही प्रेम उसकी उच्चतम अवस्था देखने समझने में समर्थ हैं– वे युग–युग से अविरत महिमा गाते रह सकते हैं अतः प्रेम साधना के सब क्लेश भी सहने में समर्थ हैं तथा सब प्रेम के मनोभावों को उसकी सूक्ष्मतम अनुभूतियों के विवेचक हैं, वे शान्त प्रकृति के हैं तभी नित्य तृप्त हैं, नित्य निष्काम हैं, पूर्ण अभिलाष हैं अतः ये सब गुण उनके धीर प्रशान्त नायकत्व के भी पूर्ण प्रकाशक हैं।

प्रियतम के धीरोद्धत नायकत्व का इस प्रसंग में यद्यपि अत्यन्त क्षीण प्रकाश है, फिर भी उसका भी मंद प्रकाश प्रियतम की प्रिया महिमा रूप वाणी में सन्निहित है ही। धीरोद्धत नायक का मुख्य भाव आत्मश्लाघा करने का ही है। 'नित्य तृप्त निष्काम नित्य में मधुर अतृप्ति मधुरतम काम' यह उक्ति छिपी–छिपी संकेत कर ही रही है कि नायक आत्मश्लाघी भी है ही।

साथ ही साथ 'कहीं न मिला प्रेम शुचि ऐसा' भी प्रकट कर रहा है कि प्रियतम चंचल चित्त हैं। वे अनेक के भोक्ता रह चुके हैं और चंचलतावश उनमें प्रेम न देखकर अनेकों से विरक्त भी हो ही चुके हैं। वे उत्तमोतम प्रेम के भोक्ता हैं, यह उनकी चंचल चित्तवृत्ति का ही प्रकाशक है। वे तनिक भी प्रेम में कमी

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

देखने पर क्षुब्ध होकर विरत भी हो सकते हैं। यह उनमें किंचित क्रोध का भी प्रकाशक है। वे प्रेम में कसौटी लगाते हैं सब का व्यवहार परखते हैं अतः उनका स्वभाव अहंकारी भी अवश्य है।

अतः इस कथन में छिपा हुआ-सा अप्रकट-सा उनका धीरोद्धत स्वभाव भी प्रकाशित हो रहा है।

शुक प्रत्यक्ष देख रहा है किसी की महिमा का अनुभव सीमित बुद्धि ही तो करती है, वह बुद्धि अकथनीय अनंत महिमा का अनुभव कर ही नहीं सकती वह तो अपनी सीमा में जितनी परिकल्पना हो सकती है उतनी ही सीमा तक किसी की महिमा का अनुभव करेगी फिर जितनी महिमा बुद्धि अनुभव करेगी उसका प्रकाश वाणी कर ही नहीं सकती। वाणी की अभिव्यंजना—सामर्थ्य अत्यन्त ससीम है—इसीलिए किसी की सम्पूर्ण महिमा की प्रकाशिक उसकी वाणी हो ही नहीं सकती।

यहाँ प्रियतम जो प्रिया की महिमा युग–युग से गा रहे हैं वे मात्र वाणी से नहीं गा रहे हैं। प्रियतम की बुद्धि अपनी प्रिया की महिमा का गान कर रही है, प्रियतम का मन अपनी प्रिया की महिमा का गान कर रहा है। उनका सर्वांग अपनी प्रिया की महिमा का गान कर रहा है। युग–युग से वे रोम–रोम से सर्वांग से अपनी प्रिया की महिमा ही गा रहे हैं। सबसे अधिक किसी वस्तु की रूप महिमा को प्रकाशित करने वाला मुकुर होता है। उसमें जैसा रूप प्रतिबिंब सामने आता है ज्यों का त्यों प्रकाशित हो जाता है, परन्तु वह मात्र तेज तत्व को ही प्रकाशित कर सकता है–किसी की शकगत महिमा का वह सर्वथा प्रकाश नहीं कर सकता–किसी की मनोगत महिमा का भी वह प्रकाश नहीं कर सकता। परन्तु प्रियतम अपनी प्रिया के सर्वरूप सर्वभाव के प्रकाशक हैं–प्रिया में अनन्त भाव हैं और इसीलिये वे अनन्तरूप होकर रसराज होकर सब भावों को अपने स्वरूप में प्रकाशित कर रहे हैं। प्रिया जितनी अनन्त हैं प्रियतम भी उतने ही अनन्त रूपों में अनन्त रस धारण कर प्रिया को प्रकाशित कर रहे हैं इसीलिए वे अपनी प्रिया की महिमा के एकमात्र सत्यांश में गायक हैं। फिर भी प्रिया इतनी शेष रह जाती हैं कि उन्हें यह कहना पड़ता है तेरी महिमा अकथ है, अनन्त है, मैं कहीं भी उसका पार नहीं पा रहा हूँ।

शुक एवं सारिका दोनों देख रही हैं— प्रियतम प्रिया की शोभा का

प्रकाश कर रहे हैं। प्रिया तो मात्र प्रेम भाव-घनसाकार विग्रह ही है। अतः उनकी शोभा प्रेम शोभा ही है।

शोभा की परिभाषा शास्त्रों ने की है—

नीचे दयाधिके स्पर्द्धा शौर्योत्साहौ च दक्षता ।
सत्यं च व्यक्तिमायाति यत्र शोभेति तां विदुः ॥

अपने से दुर्बल के प्रति दया, अपने से सबल के प्रति स्पर्द्धा, शौर्य, उत्साह, दक्षता और सत्य ये छः गुण जिसमें प्रकट होते हों उसको शोभा नामक सद्गुण कहते हैं।

प्रिया की अनुपम शोभा का प्रकाश प्रियतम इस महिमा गीत को गाते हुए अति स्पष्ट भाषा में कर रहे हैं। वे कैसी महिमामयी है? —इतनी महिमामयी हैं कि उनकी अनुपम अकथ और अनन्त महिमा का प्रकाश साक्षात् परम पुरुष, सर्वप्रकाशक, सर्वशास्त्र समुद्र और सर्वज्ञान निधान स्वयं प्रियतम रसराज भी युग-युग से अविरत प्रयास करने पर भी नहीं कर सकता, वह स्वयं को उन प्रिया की महिमा के सम्मुख नगण्य अनुभव करने लगता है, परन्तु प्रिया इतनी प्रेम- शोभामयी हैं कि अपने से महिमा में लघु के प्रति भी कैसी दया दिखाती हैं!

वे उसके हृदय में अपनी मधुर-मधुर वचनावली से अपार आनन्दमयी प्रेम सुधा की वर्षा करती हैं। उसे ऐसा प्रेम देती हैं जैसा उसे कहीं एवं कभी नहीं मिला।

उनमें स्पर्द्धा और शौर्य कैसा है? वे प्रियतम को जो नित्य तृप्त हैं, नित्य निष्काम हैं, पूर्णानन्द हैं, नित्य सच्चिदानन्द हैं, रसमय हैं, रसराज हैं, सदा रसपूर्ण हैं और सर्व रसिक जन-मन-आनन्द हैं, उनसे स्पर्द्धा करती हैं और उन नित्य तृप्त, नित्य निष्काम में अपने अमित प्रेम शौर्य से ऐसी मधुरतम अतृप्ति और मधुरतम कामना भर देतीं हैं जिससे वह सदा-सदा के लिए बिक जाता है। यह उनमें प्रियतम के भी आनन्द से भी शत-शत अधिक आनन्द होने का ही प्रमाण है कि वे पूर्ण परमानन्द को भी परमानन्दित कर देती हैं यह उनका प्रेम शौर्य प्रेम पराक्रम ही तो है।

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और उत्साही वे कैसी हैं कि अनवरत उनका प्रेम-दान अनन्त काल तक चलता ही रहता है, कभी उसका अन्त नहीं आता।

और यही उनकी दक्षता है कि वे अपने प्रियतम को जो नित्य निष्काम हैं, नित्य तृप्त हैं तथा जिन्हें अपने अनुरूप पावन विशुद्ध प्रेम कहीं नहीं मिला तथा जो अपने मन की आशा को पूरा नहीं कर सके, उन्हें यह कहने को विवश कर देती हैं 'एक तुम्ही को पाया मैंने जिसने किया पूर्ण अभिलाष' और सत्य, पूर्ण सत्य, पूर्ण भाव की तो वे मूर्तिमान विग्रह ही हैं, वे सत्य की सत्य हैं उसका भी भाव हैं। यह प्रिया की शोभा प्रियतम इस महिमागान में स्पष्ट उद्घोष कर रहे हैं।

इसी प्रकार प्रियतम उनके विलास गुण का भी प्रकाश इसी ज्ञानद्वारा कर रहे हैं। शास्त्रकार कहते हैं—

वृषभस्येव गंभीरा गतिर्धीरं च वीक्षणम्।
सस्मितं च वचो यत्र स विलास इनीर्य्यते ।।६५।।

जिसकी अति गम्भीर गति, धीर दृष्टि और सस्मित वचनावली हो, वही विलासवान है। प्रिया में अपार प्रेममयी धीर दृष्टि है तभी तो रसराज प्रियतम कहते हैं 'बिका सदा के लिये मधुर दृग-कमल कुटिल भृकुटी के मोल' यहाँ जो दृगों को कमल की उपमा दी गई है एवं उसके आगे मधुर विशेषण दिया है-यह उनकी प्रेम से भरी माधुर्य से भरी दृष्टि का ही वाचक है। जो प्रेम से भरी, माधुर्य से भरी दृष्टि होगी वह चंचल नहीं होगी। चंचल दृष्टि तो गुणों से रिक्त हल्की होती है। माधुर्य से भरी दृष्टि स्वाभाविक ही गंभीर हो जायगी। इसी प्रकार 'सुधानन्द बरसाता हिय में तेरा मधुर वचन अनमोल' उपरोक्त कथन स्पष्ट झलका रहा है कि प्रिया की प्रेम भरी वाणी अत्यन्त सस्मित है तभी उससे सुधा की सी मधुरता का प्रकाश होता है। यद्यपि इस पद में प्रिया की गति का वर्णन नहीं है परन्तु जिसमें विलास के अन्य अधिकांश लक्षण प्राप्त हैं, उसकी गति भी अवश्यमेव पूर्ण विलासमयी ही होगी यही मानना उचित एवं यथार्थ है। प्रियतम इस गान में प्रिया के माधुर्य नामक गुण का भी प्रकाश कर रहे हैं—

माधुर्य की परिभाषा शास्त्रों ने की है—

'तन्माधुर्यं भवेद्यत्र चेष्टाऽऽदेः स्पृहणीयता'।

जहाँ सम्पूर्ण चेष्टाएं आदि स्पृहणीय हों उसको माधुर्य कहते हैं।

प्रिया की सम्पूर्ण चेष्टाएँ प्रियतम के लिए पूर्ण स्पृहणीय हैं उनकी महिमा पूर्ण स्पृहणीय है तभी वे युग-युग से अविरत उसे गाते हैं—उनकी वचनावली स्पृहणीय है, तभी वह हृदय में अमृतोपम आनन्द की वर्षा करती है, उनकी दृष्टि, भ्रूकुटि, भंगिमा पूर्ण स्पृहणीय है तभी प्रियतम सदा के लिये बिक गये हैं। उनका नाम भी पूर्ण स्पृहणीय है तभी वे उसको निरन्तर मुरली में जपते रहते हैं। उनका प्रेम पूर्ण स्पृहणीय है तभी उसने प्रियतम को जो नित्य तृप्त हैं, नित्य निष्काम हैं अतृप्त और मधुरतम कामना से युक्त बना दिया है। उनका रूप पूर्ण स्पृहणीय है तभी प्रियतम अतृप्त नेत्रों से उसे सदा देखते रहते हैं और वे स्वयं पूर्ण स्पृहणीय हैं तभी वे उनको पूर्ण-अभिलाष कर दे रही हैं। और प्रिया पूर्ण मंगलमयी भी हैं यह भी-यह गान प्रकाशित कर रहा है।

मंगलमयता की परिभाषा शास्त्रों ने की है—

'मंगल्यं जगतामेव विश्वासास्पदतामता'।

सबका विश्वासपात्र होना ही मंगलमयता का लक्षण है। इसी प्रकार प्रिया में अनन्त स्थैर्य, अनन्त तेज, अनन्त लालित्य, अनन्त औदार्य है यह भी यह गान प्रकाशित कर रहा है। स्थिरता के सम्बन्ध में शास्त्र कहते हैं—'व्यवसायादचलनं स्थैर्यम् विघ्नाकुलादापि' जो सैंकड़ों विघ्न उपस्थित होने पर भी अविचलित रहे वह स्थिर कहलाता है।

तेज की परिभाषा है—

'तेजो बुधैरवज्ञाऽऽदे असहिष्णुत्वमुच्यते'।

जो अवज्ञा को न सहे, उसे विद्वान् लोग तेज कहते हैं।

इसी प्रकार लालित्य की परिभाषा है—

'शृंगार प्रचुरा चेष्टां यत्र तं ललितं विदुः'।

जिसमें शृंगार बहुल चेष्टाएँ होती है उसे ललित कहते हैं।

औदार्य की परिभाषा है—

'आत्माद्यर्पणकारित्वमौदार्यमिति कीर्त्यते।'

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

जो अपने को अपने प्रियजनों को अर्पित करदे वही उदार कहलाता है।

प्रिया में ये सभी लक्षण हैं। प्रिया अपने प्रियतम की पूर्ण विश्वासपात्री हैं। विश्वासपात्रता के बिना प्रेम कहाँ सम्भव है? अविचल विश्वास तो प्रथम भूमि है जिस पर प्रेम टिकता है, बिना विश्वास के प्रेमपात्री होना संभव ही नहीं।

इसी प्रकार भाव ही स्थिर है बाकी तो सब कुछ अस्थिर है। रस भी पूर्णतया स्थिर नहीं क्योंकि वह तो मात्र भाव का प्रकाश है। भाव उसे नचाता है तरंगायित करता है। भाव एकमात्र स्थिर है– उसी से सम्पूर्ण अस्थिरता भी स्थिरता पा रही है वह सर्वाधार है।

और भाव की अवज्ञा संभव ही नहीं। जिसकी अवज्ञा हो सके वह सच्चा तेजस्वी कहाँ? वह तो तेजस्विता का मात्र नाट्य है, उसकी अवज्ञा तो हो ही रही है, तब उसमें जो असहिष्णुता प्रकट हो रही है वह तेजस्विता को प्राप्त करने की अभिलाषा है, तेजस्विता सत्यांश में वह है जिसकी अवज्ञा संभव ही न हो। भाव की अवज्ञा संभव ही नहीं। भाव सबका अस्तित्व है? अपने अस्तित्व की, सत्ता की कोई अवज्ञा कर ही नहीं सकता, प्रिया की अवज्ञा संभव ही नहीं।

इसी प्रकार जो सर्व शृंगार का आधार है वही जिस प्रिया के रूप पर मुग्ध है उस प्रिया की शृंगार बहुलता का वर्णन कैसे संभव है? उनका रोम-रोम अनन्त शृंगारों को शृंगार कर दे रहा है।

प्रिया में सर्वार्पण की भावना है तभी प्रियतम ने उनको पाया है अन्यथा ऐसी अपार महिमामयी को उसकी स्वेच्छा के बिना कौन पा सकता है? अपनी स्वेच्छा से ही वे अपने को किसी को प्राप्त करा सकती हैं। उनका स्वयमर्पण ही उनकी प्राप्ति है।

'यमेवैषवृणुते तेन लभ्यः' श्रुतियाँ कहती हैं– वे तो उसी को प्राप्त होती हैं जिसको वे स्वयं स्वीकार कर लेती हैं।

शुक एवं सारिका स्पष्ट देख रहे हैं—"यह तो वरण करने वाले की इच्छा पर निर्भर है कि वह अपने किस स्वरूप में किसका वरण करे? वह तो सर्वतंत्र स्वतंत्र है, किसी नियम की सीमा में नहीं हैं, वह श्रुतियों की ही सीमा में नहीं

हैं, फिर श्रुतिगत, स्मृतिगत साधन सीमा का तो प्रश्न ही नहीं है। इसीलिये वह चाहे जिस किसी के भी, जिस पर कृपा करे, उसके मन इन्द्रियों में अपना चिदानन्दमय रस भर कर क्रीड़ा करने लग जाता है। प्रियतम की भी यही दशा है। वे तो स्वंय चित्सरोवर ही हैं–नित्य निष्काम, नित्य तृप्त हैं अतः अपने परम शुचि पूर्णानन्द में ही नित्य निमग्न हैं–परन्तु न जाने क्यों उन्हें किस विलक्षण महाभाव कृपा से अनुभूति होती है––मैं हूँ, मेरी एक देह भी है, मन भी है, बुद्धि भी है मुझ में प्राण भी है। ये देह, मन, प्राण एवं बुद्धि आदि हैं क्या ? चिदानन्द सरोवर की लहरे हैं, इतना ही कहना सम्भव है, वस्तुतः अचिन्त्य हैं, अतर्क्य हैं, अनिर्वचनीय हैं। अस्तु, वे अनुभव करते हैं– "हैं, मैं तो प्रियतम रसराज हूँ मेरा नाम श्रीकृष्ण, श्यामसुन्दर, माधव, प्रियतम, प्राणनाथ है। और यह कौन है ? यह किसकी वाणी है ? क्या किसी अनन्तानन्त सुधामयी वाणी ने ही मुझ में नाम रूप का आभास संचारित किया है ? अहा ! आज तक मैं अपने सच्चिदानन्दमय नाद से शब्दात्मक संकल्प करता हूँ— 'एकोऽहं बहुस्याम्' और वह नाद ब्रह्म जो शब्द ब्रह्म का बीज है, वेदों के प्रादुर्भाव का कारण हो जाता है। इस नाद से ही बिन्दु उत्पन्न होता है जो प्रणव है, और बीज है। इसी बीज रूप–बिन्दु से अव्यक्त और व्यक्त शब्द प्रकट होते हैं। इसी नाद से महाभूत आकाश का गुण शब्द प्रकट होता है जिससे पंचतत्वों की उत्पत्ति मानी गयी है इसीलिये जगत को नादात्मक कहते हैं। तो जिस नाद द्वारा मैं श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत की सृष्टि करता हूँ परन्तु स्वयं उससे सर्वथा निर्लिप्त रहता हूँ वह नाद आज मुझी को किसी अभिनव माधुरी से युक्त हो अपनी पूर्णानन्द, सच्चिदानन्द स्वरूपावस्था से व्युत्थित कर दे रहा है। व्युत्थित ही नहीं कर दे रहा है, मुझे भगवान होने को, प्राणवान होने को, सर्व इन्द्रिय धारी होने को, बुद्धि युक्त होने को और सदेह होने को बाध्य कर दे रहा है।"

यह नाद और कुछ नहीं प्रिया की सुधानन्द वरसाती वचनामृत माधुरी ही है।

शुक एवं सारिका स्पष्ट अनुभव कर रही है—प्रिया कैसी हैं ? प्रिया भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों से अबाधित भाव है। उनका किसी भी काल में अभाव नहीं होता है, किसी भी अवस्था में अभाव हो नहीं सकता।

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वे अभाव निषेध रूप भाव नहीं, पूर्ण निरपेक्ष भाव हैं। वे समस्त कालों से अनवच्छिन्न हैं। वे सगुण रूप से शुक एवं सारिका के सम्मुख अनन्त सौन्दर्य माधुर्य निधि, सर्व सद्गुण निधि रूपमें विराजित हैं और निर्गुण भाव रूपमें वे ही शुक हैं, सारिका हैं, प्रियतम हैं, उनके सम्पूर्ण गुणभाव सर्वत्र व्यक्त हो रहे हैं। वे ही गोलोक हैं, दृश्य है और अदृश्य हैं सब कुछ प्रिया ही हैं। प्रिया ही आदि, मध्य से रहित हैं, मात्र प्रिया ही प्रिया हैं। यह सब दृश्य एवं अदृश्य गोलोक प्रिया ही हैं। वे मायातीत हैं, गुणातीत हैं, साथ ही। महा महामाया वे ही हैं और अनन्तानन्त गुण भी वे ही हैं। वे अनन्त हैं, सर्व प्रमाणों से अज्ञेय हैं, अखण्ड और परिपूर्ण हैं। वे अद्वितीय हैं, परमानन्द हैं, शुक हैं, बुद्ध हैं, मुक्त हैं, सत्य स्वरूप हैं, व्यापक हैं, भेदहीन हैं एवँ अपरिच्छिन्न हैं। वे सच्चिदानन्द स्वरूप स्वतः प्रकाश हैं। वे सब प्रमाणों से अतीत, सबसे परिच्छेद हीन, सब प्रकार परिपूर्ण हैं। वे तुरीय स्वरूप निराकार अद्वितीय, सब द्वैत के साथ अवर्णनीय, प्रणव की भी आत्मा हैं। उन प्रिया के चार पाद हैं। अविद्यापाद, सुविद्यापाद, आनन्दपाद और तुरीयपाद।

ये चारों पाद ही अनन्त प्रेममय हैं और सब में प्रिया अपने प्रियतम के साथ नित्य विहार कर रही हैं। प्रिया का तुरीय पाद जो गोलोक धाम है, वह तुरीय का तुरीया है। वह सम्पूर्ण विद्याओं की विद्या है। यहाँ जो प्रिया प्रियतम हैं वे भी तुरीय के तुरी हैं, परन्तु साकार नराकृति नारी आकृति वाले हैं। वे सर्वथा ऐश्वर्य्य बोध विस्मृत पूर्ण विशुद्ध प्रेममय हैं। वे तुरीय ब्रह्म होते हुए भी अतुरीय ही हैं। वे विष्णु होकर भी अविष्णु हैं। सर्व व्यापक होकर भी एक देशीय हैं। वे मायातीत होते हुए भी मायामय, गुणातीत होते हुए भी सगुण, कालातीत होते हुए भी काल परिच्छिन्न देश परिच्छिन्न हैं। वे ईश्वरों के ईश्वर होते हुए भी सर्व ऐश्वर्य विरहित मात्र प्रेममय विशुद्ध भावमय रसात्मक हैं। यहाँ दिन है, रात्रि है, काल हैं, संवत्सर है, दिशाएँ हैं, आकाश है, भूमि है और पूर्ण प्रपंचातीत सम्पूर्ण प्रेम सृष्टि है।

यह ज्ञान का भी महाज्ञान अनन्तानन्त ज्ञानस्वरूप है। सम्पूर्ण ज्ञान का ज्ञान है। यह आनन्द का भी महा आनन्द है, अनन्त आनन्द है। इस तुरीयपाद से ही आनन्दपाद और सुविद्यापाद एवं अविद्यापाद भी प्रकाशित है। इन चारों पादों में सबसे नीचे का अविद्यापाद ही अविद्या मिश्रित है ऊपर

के तीनों पाद विशुद्ध प्रेम ज्ञान और प्रेम आनन्द स्वरूप है तथा नित्य प्रेमामृत स्वरूप है। ये तीनों पाद अलौकिक प्रेमानन्द स्वरूप, अखण्ड, अमित प्रेमराशि के रूप में प्रकाशित रहते हैं। ये तीनों पाद अनिर्वचनीय, अनिर्देश्य, अखण्ड प्रेमानन्दैकरसात्मक हैं।

यह जो सर्वोपरि तुरीयपाद गोलोक धाम है यहाँ सर्व ऐश्वर्य शून्य मात्र प्रेमाकार प्रिया प्रियतम का नित्य निवास है। यह मात्र प्रेमभाव सिन्धु रूप है और यहाँ जो कुछ प्रपंच है वह सब पूर्ण विशुद्ध रसात्मक है। इससे नीचे जो आनन्दपाद है इसमें आनन्द प्रधान प्रेम है। इसमें साकेतादि लोक भी हैं जो दास्य रति प्रधान हैं—इसी प्रकार यहाँ वैकुण्ठादिलोक भी हैं जो शान्त भक्ति रस प्रधान हैं। यहाँ जो गोलोक धाम है वही तुरीय ब्रह्म है। यह गोलोक विष्णु, सर्वव्यापी है। वह तुरीयातीत है। वह समस्त ब्रह्म वाचक शब्दों का वाच्य है यह गोलोक ही परम ज्योति स्वरूप है। वह मायातीत है, त्रिगुणातीत है। कालातीत है, यह समस्त कर्मों से परे है। वह ही मात्र पारमार्थिक सत्य है और सर्व उपाधि रहित है। यहाँ इस गोलोक में जो श्रीकृष्ण रहते हैं वे ही ईश्वरों के ईश्वर परमेश्वर भगवान ब्रह्म के ब्रह्म, सर्व संचालक हैं। ये ही परम तत्व पुराण पुरुष हैं। ये प्रणवादि समस्त मन्त्र रूप वाचकों के वाच्य, आदि अन्त रहित आदि-आदि देश-काल-वस्तु तथा तुरीय संज्ञा वाले (इन सबके वाच्य) एवं नित्य परिपूर्ण, सब प्रकार से पूर्ण, सत्य संकल्प, आत्माराम, तीनों कालों से अबाधित स्वरूप वाले, स्वयं ज्योति, स्वयं प्रकाशमय अपने समान वस्तु से रहित अर्थात् सर्वथा अद्वितीय, जिनके समान कोई भी नहीं है फिर अधिक की तो बात ही क्या, जिनमें दिन रात्रि के विभाग नहीं है, जिनमें संवत्सरादिकाल विभाग नहीं है, निजानन्दमय अनन्त- अचिन्त्य ऐश्वर्य वाले आत्मा के भी अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा, तुरीयात्मा, आदि शब्दों के वाच्य, अद्वैत परमानन्द स्वरूप, विभु, नित्य, निष्कलंक, निर्विकल्प, निरञ्जन, संज्ञारहित, शुद्ध देवता है। इन श्रीकृष्ण की सब शक्तियों की एक मात्र शक्ति प्रिया श्रीराधा हैं। इन श्रीकृष्ण की आह्लादिनी सन्धिनी, ज्ञान, इच्छा, और क्रिया आदि बहुत सी शक्तियाँ हैं। उनमें आह्लादिनी श्रीराधा ही प्रधान हैं। ये ही परम अन्तसाभूता श्रीराधा हैं। ये ही कायव्यूह रूप से साकेत लोक में श्रीसीता हैं तथा वैकुण्ठादि में महालक्ष्मी रूप से प्रख्यात हैं। श्रीकृष्ण परमदेव, छहों ऐश्वर्यों से पूर्ण भगवान जो गोप, गोपी सेव्य हैं श्री वृन्दा (तुलसी) देवी

से आराधित और दिव्य गोलोक धाम के अधीश्वर हैं, वे एक काम सर्वेश्वर इनकी आराधना करते हैं इसलिये ये राधा हैं। ये भी श्रीकृष्ण की सम्यक् आराधना करती हैं– इसलिये राधिका कहलाती हैं। इन श्रीराधा का एक नाम गान्धर्वा भी है। व्रज की अनन्त गोपाङ्गनाएँ, द्वारका की समस्त श्रीकृष्ण महिषियाँ इन्हीं श्रीराधिका की कायव्यूह रूपा (अंश स्वरूपा) हैं। ये श्रीराधा और श्रीकृष्ण शरीर से शक्ति एवं शक्तिमान की तरह दो हैं–वैसे पूर्ण अभिन्न हैं। ये श्रीराधिकाजी भगवान श्रीकृष्ण की सर्वेश्वरी, सम्पूर्ण सनातनी विद्या हैं और श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हैं। वेद एकान्त में इनकी स्तुति किया करते हैं। जिस पर इनकी कृपा होती है, यह परमधाम उसी को मिलता है। श्रुतियों में इन श्रीराधा के निम्न नाम गान किये गये हैं।

राधा रासेश्वरी रम्या कृष्णमंत्राधिदेवता ।
सर्वाद्या सर्ववन्द्या च वृन्दावनविहारिणी ॥
वृन्दाराध्या, रमाशेष गोपीमण्डल पूजिता ।
सत्या सत्यपरा सत्यभासा श्रीकृष्णवल्लभा ॥
वृषभानुसुता गोपी मूलप्रकृतिरीश्वरी ।
गान्धर्वा राधिकाऽऽरम्या रुक्मिणी परमेश्वरी ॥
परात्परतरा पूर्णा पूर्णचन्द्र निभानना ।
भुक्तिमुक्तिप्रदा नित्यं भवव्याधिविनाशिनी ॥

इनकी जो कायव्यूहरूपा संधिनी शक्ति है वही धाम, भूषण, शय्या और आसनादि तथा मित्र और भृत्यादि के रूप में परिणत होती है और मृत्युलोक में इसी धाम का अवतार भी हुआ करता है। उस समय अवतार काल में माता–पिता के रूप में यही सन्धिनी शक्ति परिणत हो जाती है। यही अनेक अवतारों की मूल है कारण है। यह संधिनी ही विशुद्ध सत्वरूपा है। जो ज्ञान शक्ति है उसे क्षेत्रज्ञ शक्ति कहते हैं। यही योगमाया है।

इससे नीचे सुविद्यापाद है। यहाँ ब्रह्मविद्यादि का निवास है। यहाँ अनन्तानन्त सिद्ध लोक हैं। और ब्रह्म इसी सुविद्यापाद का अव्यक्त, निराकार, निर्विशेष स्वरूप है। सम्पूर्ण देवताओं में जो देवत्व शक्ति है वह यहाँ के गोलोक धाम में विराजित श्रीराधा की शक्ति से है। देवताओं से लेकर क्षुद्र प्राणियों तक सभी जीव श्रीराधीकाजी की शक्ति से स्थित और चेष्टायुक्त हैं। ये सब इन्ही

श्रीराधारानी से अभिव्यक्त है। सब श्रुतियाँ इन राधाजी को नमस्कार करती हैं।

देवताओं के निवास पञ्चभूत, इन्द्रियों आदि में इन्ही सुविद्यापाद गोलोकेश्वरी श्रीराधिका की प्रेरणा से कम्पन (चेष्टा) होती है। उन्ही की प्रेरणा से वे हँसते हैं, उल्लास प्राप्त करते हैं और नाचते हैं क्रियाशील होते हैं। सबकी अधिदेवता श्रीराधिकाजी ही हैं। अपने सम्पूर्ण पापों के नाश के लिये भूः भुवः स्वः या श्री 'क्ली' 'ह्री' आदि व्याहृतियों द्वारा हवन करके इन्ही श्रीराधाजी को प्रणाम किया जाता है।

इन श्रीराधिका के दिव्य शरीर की कान्ति के पड़ने से इन्द्रनीलमणि के समान वर्णवाला शरीर भी घन सत्व गौरवर्ण का हो जाता है तथा जिनकी कान्ति पड़ने से भौंरे, कौए, कोयल विषयरसलोलुप, कटुभाषी, एवं मधुरभाषी परस्वरूप से कृष्ण, अर्थात् योग ज्ञानादि साधक जिनका बाह्यरूप नीरस एवं अनाकर्षक है भी सत्वगुणी और भक्ति युक्त हो जाते हैं वे विश्वपालिका श्री राधिका सबकी नमनीय हैं।

ये सुविद्यापाद स्थित गोलोक धामेश्वरी श्रीराधा ही हैं जिनका श्रुतियाँ, सांख्य योग शास्त्र और उपनिषद् परब्रह्म की अभिन्न शक्ति कह कर प्रतिपादन करते है। ये सब देवताओं की पालिका हैं और जिनका स्वरूप भली प्रकार पुराण भी नहीं जानते।

इन श्रीराधा को सम्पूर्ण संसार के अधीश्वर त्रिभुवन मोहन श्रीकृष्ण चन्द्र प्राणों से अधिक मानते हैं, वृन्दावन में स्थित अपनी श्रुतियों की इष्ट आराध्यदेवी ये ही उस दिव्य वन की पालिका हैं। विश्वभर्ता श्रीकृष्णचन्द्र एकान्त में अत्यन्त प्रेमार्द्र होकर इनके पद-कमलों की धूलि अपने मस्तक पर धारण करते हैं तथा इनके प्रेम मे इतने निमग्न रहते हैं कि इनके हाथ से गिरी वंशी और बिखरी अलकों का भी स्मरण उन्हें नहीं रहता तथा वे क्रीत की भाँति जिनके वश में रहते हैं। इन श्रीराधिका की रास क्रीड़ा देख कर चन्द्रमा और विवश देवपत्नियों को अपने शरीर का भान नहीं रह जाता और श्री वृन्दावन के समस्त जड़ एवं जंगम प्राणी विमुग्ध हो जाते हैं। कमलोद्भवा लक्ष्मी और हिमालय पुत्री पार्वती इन्ही श्रीराधाजी की अंशरूपा हैं।

इसी प्रकार इन श्रीराधा के पलकों के उन्मेष से इनके सबसे नीचे के

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

पाद में मूल कारण रूप अव्यक्त प्रकृति का अविर्भाव होता है। इस अव्यक्त प्रकृति से संस्कार का और मूल प्रकृति की उत्पत्ति होती है। इससे जीव ब्रह्म भी व्यक्त होता है। इसीसे महत्तत्व, महत् से अहंकार, अहंकार से पाँचों तन्मात्राएँ, पाँचों तन्मात्राओं से आकाशादि पञ्चमहाभूत और पाँचों महाभूतों से अविद्यात्मक अण्ड उत्पन्न होता है। उस अविद्याण्ड में तत्वतः गुणातीत, शुद्ध सत्वमय तथा लीला के लिये निरतिशय आनन्दरूप धारण किये मायोपाधिक गोलोकधाम है। यहाँ भी शुद्ध सत्वमय श्रीकृष्ण और राधा प्रिया प्रियतम हैं। इस अविद्यापाद में गुणातीत शुद्ध सत्वमय प्रिया प्रियतम का लीला के लिये धारण किया हुआ निरतिशय आनन्दरूप मायोपाधिक स्वरूप ही है। तत्वतः इन प्रिया प्रियतम में और सुविद्या आदि पाद में स्थित प्रिया प्रियतम में कोई अन्तर नहीं–परन्तु महाप्रलय में यह धाम मायोपाधिक होने के कारण सुविद्यापाद में विलय हो जाता है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति, स्थिति, और प्रलयादि समस्त कार्य एवं कारण समूहों के (प्रकृति रूप) परम कारण प्रिया प्रियतम ये ही हैं। इन्ही से स्थूल विराट् स्वरूप उत्पन्न होता है। यही विराट् स्वरूप समस्त कारणों का मूल है। यही वह विराट् है जिसे श्रीकृष्ण ने दुर्योधनादि को, अर्जुन को दिखाया था। यह अनन्त मस्तकों तथा अनन्त नेत्रों, हाथों और पैरों से युक्त पुरुष है। वह अनन्त कानों वाला सबको घेर कर व्याप्त करके स्थित है। वह सर्वव्यापक है। वह सगुण और निर्गुण स्वरूप है। वह ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, शक्ति, तथा तेज स्वरूप है। नाना प्रकार के अनन्त विचित्र जगत के आकार में वही स्थित है। वही निरतिशय आनन्दमय, अनन्त परमविभूति के समुदाय से सम्पन्न विश्वरूप परमात्मा है। वह निरतिशय निरंकुशता (परम स्वतंत्रता) सर्वज्ञता, सर्व शक्तिमता, सर्वनियन्तृत्व, आदि अनन्त कल्याणकारी गुणों का आकार है। वह अवर्णनीय अनन्त दिव्य तेजोराशि के रूप में स्थित है। वह अविद्या के पूरे अण्ड में व्यापक है। वह महामाया के अनन्त विलासों का अधिष्ठान विशेष एवं निरतिशय अद्वैत परमानन्दस्वरूप परब्रह्म का विलास विग्रह है।

इस विराट् पुरुष के एक–एक रोमकूप–छिद्र में अनन्त कोटि ब्रह्मांड और उनके स्थावर भी उत्पन्न होते हैं। उन सब अण्डों में से प्रत्येक में गोलोक और वहाँ भी प्रिया प्रियतम का एक-एक स्वरूप है जिसका अवतार और तिरोधान है। इन्ही प्रिया प्रियतम से प्रत्येक में क्षीर सागर है और नारायण का एक–एक

अवतार होता है। उन नारायण से फिर हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) उत्पन्न होते हैं। नारायण से ही सब लोकों के स्रष्टा प्रजापति उत्पन्न होते हैं। फिर अखिल लोक, इन्द्र, समस्त देवता उत्पन्न होते हैं। बारह आदित्य, आठोंवसु, सभी ऋषि, सम्पूर्ण प्राणी और समस्त छन्द उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार प्रिया ही प्रवृत्त हो रही हैं, वे ही विलीन हो रही हैं। वे ही नित्य, अविनाशी. सर्वश्रेष्ठ, स्वयंप्रकाश हैं। वे ही ब्रह्मा, शिव, नारायण, इन्द्र, दिशाऐं, विदिशाऐं, काल, कर्म, मूर्त्त और अमूर्त्त हैं। वे ही समस्त कारण और कार्य हैं। इन सबसे विलक्षण भी वे प्रिया ही हैं। परमज्योति स्वयंप्रकाशमय, ब्रह्मानन्दमय, नित्य, निर्विकल्प, निरञ्जन, अवर्णनीय, शुद्ध एक मात्र भाव ही है। दूसरा कोई नहीं। न वे किसी के समान हैं–और न किसी से अधिक हैं। उनके सिवा दूसरा कोई है ही नहीं।

शुक सारिका देख रही हैं--प्रिया प्रियतम का साकार विग्रह भी अनेक प्रकार का है। प्रथम उसके दो भेद हैं--उपाधि सहित और उपाधि रहित। अविद्यापाद में जो प्रिया प्रियतम हैं वे मायोपाधिक शुद्ध सत्व की मूर्ति हैं। ये समस्त विशुद्ध सत्वमयी मूर्ति होने पर भी सावयव हैं और इनका इनके विराट् के साथ ही अवतार और विलय होता रहता है। अब निरुपाधिक साकार तीन प्रकार के हैं। सुविद्यापाद में गोलोक का स्वरूप और प्रिया प्रियतम का स्वरूप प्रेम आनन्द एवं ज्ञान–ब्रह्मविद्या साकार हैं–आनन्दपाद में स्थित गोलोक तथा प्रिया प्रियतम का स्वरूप प्रेम आनन्द साकार है, वहाँ ज्ञान का तिरोधान आनन्द में हो जाता है एवं तुरीयपाद मे यह आनन्द भी मात्र प्रेम में तिरोधान हो जाता है अतःव हाँ मात्र प्रेमाकार ही सब गोलोक और प्रिया प्रियतम हैं। इनमें कोई किसी से अधिक महान् हो सो बात नहीं है, सब विद्या, आनन्द और तुरीय प्रेमतत्व मात्र भाव ही है अतः सब अभेद है। यहाँ सर्वत्र भाव की ही प्रधानता है अतः सब भेद भी मात्र भाव है। भाव भेद कोई भेद नहीं है। अखण्ड अद्वैत प्रेमानन्द ज्ञान स्वरूप भाव के लिये साकार और निराकार कोई दो विरोधी धर्म सर्वथा नहीं है। जैसे सर्वव्यापी निराकार वायु का और उसी के स्वरूप भूत त्वक् इन्द्रिय के अधिष्ठाता रूप में प्रसिद्ध साकार महावायु देवता का अभेद ही सब कहीं सुना जाता है—जैसे पृथ्वी आदि व्यापक शरीर वाले देव विशेषों के व्यापक रूप से विलक्षण किन्तु उस व्यापक से अभिन्न तथा अपरिच्छिन्न होते हुए भी अपनी–अपनी मूर्त्ति के आकार के देवता होते हैं— पृथ्वी के अधिष्ठाता देवता भौतिक शरीर और देव शरीर दोनों से युक्त हैं

वैसे ही सर्वात्मक परब्रह्म भाव से भी साकार एवं निराकार का भेद होने पर भी अभेद ही है। परब्रह्म भाव में विविध प्रकार की अनन्त विचित्र शक्तियाँ हैं अतः विरोधी धर्मों का विरोध असंगत नहीं है—केवल ज्ञान के अभाव से ही यह विरोध दिखाई पड़ रहा है।

शुक एवं सारिका दोनों देख रही हैं प्रिया का कैसा मधुर स्वर है। प्रिया का यही मधुर स्वर है जो स्थूलरूप होकर इस तुरीयपाद गोलोक का आकाश हो रहा है। इसी नादात्मक आकाश से, यहाँ की वायु, तेज, जल और पृथ्वी उत्पन्न हो रही हैं। दिशाएं विदिशाएं निर्माण हो रही हैं एवं स्थिति पा रही हैं। यह प्रिया की सुधानन्दमयी प्रेमानन्दमयी अमृतवाणी ही सब कुछ है। यही सुधानन्दमयी वाणी ही यहाँ का काल कर्म, मूर्त्त और अमूर्त्त सब कुछ निर्माण कर रही है।

यह प्रिया की अमृतवाणी ही संकल्पात्मक होकर प्रियतमाकार हो रही है। प्रिया जिस समय "प्रियतम, प्रियतम" कहती उनकी स्मृति करती हैं ठीक उसी समय उनकी स्मृति की भावनानुसार ही रूप, गुण, अवयव, स्वभाव, संस्कार और अलंकारों से युक्त हो प्रियतम उनके सम्मुख उपस्थित हो जाते हैं। प्रिया की यह वाणी ही सब भाव संस्कारों को व्यक्त कर रही है फिर इन भाव संस्कारों से ही भाव संकल्प उत्पन्न हो रहे हैं इन संकल्पों से समस्त रस जगत उत्पन्न हो रहा है। यह प्रिया की वाणी ही सम्पूर्ण वर्णों की उत्पत्ति कर रही है। वर्ण से पद तथा पद से वाक्य बन रहे हैं। यह सुधामयी अत्यन्त अमृत मधुर वाणी ही सम्पूर्ण स्वरों की प्राण है जिससे छोटे से छोटे जीव भी अपनी बोली बोल रहे हैं, भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं, पक्षी अत्यन्त सुमधुर काकली कर रहे हैं सम्पूर्ण वन जो संगीत और परम मधुर स्वर से गुञ्जित हो रहा है– इस सबका अस्तित्व प्रिया की मधुरतम वाणी ही है। इस प्रिया की वाणी का अनन्तानन्त माधुर्य इतना विलक्षण है कि प्रियतम का चित्त भी सुनते–सुनते नहीं अघाता और लाखों करोड़ों कानों से वे इस मधुर ध्वनि को सुनना चाहते हैं फिर भी उन्हें तृप्ति नहीं होती। प्रिया की यह सुमधुर सुधामयी आनन्दमयी वर्षा करने वाली वाणी प्रिया के मुख से निकल कर प्रियतम के हृदय में अनन्त प्रेमानन्द की वर्षा करती है, उसे सुशीतल कर देती है और फिर वहीं बस जाती है। प्रियतम के हृदय की सम्पूर्ण मधुरता, सुकोमलता की वही स्रष्टा है।

यह प्रिया की अमृत मधुर वाणी ही चिदानन्दमय प्रियतम में मधुरनाद का पूर्णावतार करती है और सच्चिदानन्दमयी यह अमृत वाणी ही सुमधुर वेणु का निनाद बन कर प्रेममय व्रज धाम में जड़ को चेतन और चेतन को जड़ वना देती है। इस तुरीयपाद गोलोक के वृन्दावन के प्रत्येक आबालवृद्ध में, प्रत्येक पशु पक्षी में, स्थावर जंगम में, पत्र-पत्र में, कण-कण में, और अणु-अणु में यह अमृतरसमयी प्रियावाणी ही वेणु नाद रूप में प्रेमानन्द भर दे रही है। यही प्रिया के प्रेमामृत वर्षिणी वाणी ऐसी है जो इस तुरीय गोलोक धाम को वेणुनाद के माध्यम से पहले प्रेमानन्द में भरती है और तब यही प्रेमानन्द आनन्दपाद गोलोक का सृजन करता है और वेणुनाद वहाँ अनन्त आनन्द का सृजन करता हुआ अनन्त ज्ञानमय होकर सुविद्यापाद का निर्माण करता और सुविद्यापाद से यह ज्ञानानन्द अविद्यापाद में पहुँच कर विमानों पर चढ़ी हुई सुरबालाओं के धैर्य का बन्धन तोड़ देता है। वे मुग्ध हो जाती हैं- उनकी कबरियों में खौंसे हुए नन्दन कानन के कमनीय कुसुम हठात् वहाँ से खिसक कर मर्त्य भूमि में गिर जाते हैं। इस सुमधुर नाद से गन्धर्व कन्याएँ संगीत भूल कर मतवाली सी झूमने लगती हैं। सुविद्यापाद में यह सुधानन्दमय नाद जब प्रसरित होता है तो वहाँ नित्य ज्ञान समाधि में विलय हुए ऋषि, मुनि, तपस्वी, परमहंस, योगियों की परम समाधि भङ्ग हो जाती है। बरबस उनका मन वेणु नाद से विमोहित मृग की भाँति इस परम रसमय ध्वनि में निमग्न हो जाता है। सुधाकर की चाल बन्द हो जाती है। कामदेव मोहित हो नारीभाव ग्रहण करने को बाध्य हो जाता है। गौएं चरना भूल जाती हैं। बछड़े स्तन पान छोड़ देते हैं। विहंग काकली त्याग कर वंशीरव से झरने वाले अनिर्वचनीय आनन्द का उपभोग करने के लिये आँखें मूँद लेते हैं और श्रवण पात्रों का मुख उस सुध-धारा के प्रवाह में लगा देते हैं। सिंह मृगादि वनचर प्राणी भय और हिंसा भुला कर कानों से अति अतृप्त हुए इस रसीली ध्वनि में ही आत्म विस्मृत हो जाते हैं। महिषी कालिन्दी भी अपनी उर्मि भुजाओं को फैलाकर जैसे इस रसध्वनि का आलिंगन करने उमड़ उठी हों-उमड़ उठती हैं और स्तम्भित हो जाती हैं, स्थिर अचल हो जाती हैं। इस तुरीय गोलोक वृन्दावन धाम की समस्त धरा आर्द्र और परम मधुरता को उद्दीपित करती हुई बह चलती है, चेतन जीव भी जड़ होकर बहने लगते हैं तथा जड़ वस्तुएँ गतिमान होकर वंशीध्वनि के निकट दौड़ आती हैं। वृक्षों लताओं और पत्रों से तो रस झरता

ही है–सूखा काठ तक रसवर्षा करने लगता है। आसमान नीचे झुक आता है और वह भी द्रवित होकर रसवर्षा करने लगता है। अग्नि शीतल हो जाती है–आकाश घन होने लगता है–वायु स्थिर हो जाती है–कैसी प्रिया की सुधानन्द वर्षा करती मधुर वचनामृत माधुरी है !

यह मधुर वचनामृत माधुरी रूप जो नाद है, वह प्रिया का स्वरूप ही है महाभावरूप है जो प्रिया की ब्रह्मग्रन्थि में सदा निवास करता है, यही उनका असित प्रेम को धारण करने वाला प्राण है। यह प्राण ही उनके शरीर में प्रेम रूपी अग्नि का उत्पादक है। यह अग्नि ही उनके शरीर को प्रेम रूप शक्ति से शक्तिमान बनाये है। प्रिया की प्रेमात्मा ही इस शक्ति को प्रेम–प्रेरणा, प्रेम संस्कार देती है, यह प्रेरणा ही, प्रेम संस्कार ही उनका प्रेमभाव युक्त चित्त है। यह प्रेम भावमय चित्त ही जब प्रेम संस्कारों से चलायमान होता है तो वह प्रेमाग्नि से प्रेरित होकर "प्रियतम प्रियतम" नाद करता है। यह नाद नाभि में अतिसूक्ष्म, हृदय में सूक्ष्म, कण्ठ में पुष्ट और मस्तक में अतिपुष्ट होकर वदन में आकार ग्रहण करता है।

तो प्रिया के प्राण जिस भावमयी अग्नि का निर्माण करते हैं, यह अग्नि ही प्रेम शक्ति है और यह प्रेम शक्ति ही प्रिया के नेत्रों में, भौंहों में गति देती है। प्रिया का भूचालन इसी प्रेम शक्ति भाव शक्ति से ही होता है। तभी प्रियतम इस महाभावमयी भूभंगिमा पर सदा के लिये बिक जाते हैं।

शुक एवं सारिका देख रही हैं प्रिया की सुधानन्दमयी वचन माधुरी क्या बोलती है ? क्या काम का प्रकाश करती है या क्रोध का ? क्या अभिमान बोलती है या स्वार्थ ? वह क्या कर्णेन्द्रियों को सुन्दर शब्द विषय से सुखी करती है ? नहीं। तो इसका उत्तर यही है कि प्रिया की सुधानन्दमयी वचन–माधुरी ह्लादिनी भाव के अनिर्वचनीय आनन्द की बीज है जो प्रियतम के हृदय में, रसराज के हृदय क्षेत्र में, उचित पात्र प्रियतम–हृदय–रूपी–क्षेत्र में सरसित होती है, और अनन्तानन्त रस बन कर वेणु ध्वनि के रूप में विकसित हो प्रवाहित होने लगती है। इसीलिये प्रियतम की वेणु माधुरी सर्वत्र ह्लादिनी सुधा का अनिर्वचनीय रस, आनन्द ही सबको वितरित करते हैं ? निर्बीज समाधिनिष्ठ परमहंसों की समाधि को भला कोई विषय शब्द चाहे कितना ही उत्कृष्ट हो तोड़ सकता है क्या ? प्रियतम श्रीकृष्ण के धैर्य को जो ज्ञानियों में

महाज्ञानी सिद्धों के महासिद्ध हैं उनके हृदय को कोई शब्द माधुर्य उतेजित कर अधीर कर सकता है क्या ? कदापि नहीं कर सकता। तो प्रियतम श्रीकृष्ण के हृदय में जो आनन्द है, अनन्त आनन्द है, उस आनन्द को भी फीका कर देने की सामर्थ्य तो ह्लादिनी भाव में ही है, यह अनिर्वचनीय भाव ही रसराज के आनन्द को तुच्छीकृत करके उसके भी हृदय को प्रेम रस से भर देता है इसीलिये यह भाव सुधा वर्षिणी प्रिया वचन माधुरी सर्व विजयिनी है। जो वंशी सर्वत्र विजय दुन्दुभी बजाती है उसकी भी यह मूल उत्स है। यह प्रिया की वचन माधुरी प्रियतम को भी प्रियतमत्व प्रदान करने वाली है। यह महाभावमयी होने के कारण ही पूर्ण काम में कामना और तृषाहीन में तृष्णा उदय कर देती है। और यह प्रिया वचन माधुरी उनकी रसमयी तृष्णा को पूर्ण करने में भी सदा संलग्न रहती है।

प्रियतम की वेणुध्वनि भी है क्या ? पूर्ण नित्य अखण्ड आनन्द ही तो है। इस महा महाआनन्द का तारतम्य ही तो इस महाभाव के, प्रिया के चुतुष्पाद हैं। अविद्यापाद में जो आनन्द है, वह आनन्द माया की उपाधि के कारण उतना अनन्त नहीं है जितना सुविद्यापाद में ज्ञानमय आनन्द है। 'ज्ञान' कोई दुख का ज्ञान थोड़े ही है। सुविद्या तो वही है जो आनन्द का ज्ञान करावे। अतः सुविद्या में ज्ञान प्रधान आनन्द है, वहाँ भी आनन्द ज्ञान द्वारा तिरोहित रहने के कारण परम उद्दाम और पूर्ण विशुद्ध नहीं है। आनन्दपाद में आनन्द ही आनन्द है परन्तु वहाँ इसकी प्रधानता है। भाव रसानन्द में सन्निहित है इसलिये आनन्द अनन्त होते हुए भी इस आनन्द का मूल उत्स यहाँ अप्रकट है। तुरीयपाद ही सम्पूर्ण आनन्द का मूल महा महाभावमय है। प्रियतम पूर्ण आनन्द हैं परन्तु वे भी अपनी आनन्द स्पृहा की पूर्ति के लिये प्रिया के नितान्त वशीभूत और सर्वथा अनुगत रहते हैं। प्रिया में प्रेम ही प्रेम है। उनकी वचन माधुरी प्रेम है इसीलिये प्रियतम के हृदय में भी सुधानन्द वर्षा करती है-उनकी कुटिल भृकुटि भंगिमा भी प्रेम ही है इसीलिये प्रियतम उस पर बिके रहते हैं। प्रेम के बिना आनन्द रह ही नहीं सकता। प्रेम ही आनन्द का जीवन है। प्रेम ही भोग्य है आनन्द भोक्ता है और प्रिया भोग्या। भोग्या सदा आनन्द की आश्रय होती हैं। इसीलिये प्रियतम 'प्रिया प्रिया' रटते हैं। उनकी मधुर मुरली ही नहीं उनका प्राण प्रिया प्रिया जपता है। प्रत्येक क्षुधित सुभोज्य पदार्थ को भजता है। रूप तृषित नेत्र रूप का भजन करते ही

हैं। सुमधुर वाणी का कर्णेन्द्रिय जप करती ही है इसी प्रकार प्रियतम श्रीकृष्ण का हृदय भी अपनी प्रिया का निरन्तर सतत जप करता है।

सहसा सारिका बोल उठती है—

हे शुकराज! इस पंक्तिकी मधुरता पर दृष्टि डालना। प्रियतम कहते हैं– "बिका सदा के लिये मधुर दृग कमल कुटिल भृकुटि के मोल।" मधुर-दृग-कमल पर कुटिल भृकुटी है। प्रिया के दृग क्या हैं? वे प्रियतम का प्रेम ही है। प्रेम ही तो प्रियतम को देख सकता है। चिच्छक्ति की वृत्ति ही प्रिया के नेत्र हैं जो प्रियतम को देखती है। प्रिया का प्रेम चिच्छक्ति की वृत्ति ही है। चिच्छक्ति विभु है-पूर्ण है। वह असीम है, सर्वव्यापक है। इसीलिये प्रिया का प्रेम उनकी दृष्टि भी विभु है, पूर्ण है. असीम है, सर्वव्यापक है। इसीलिये उनके नेत्र विशाल हैं। विशालता विभुता की ही प्रतीक है। तो प्रिया की सुमधुर नेत्रता पूर्ण होने पर भी सदावर्धनशील है। प्रिया के नेत्रों में प्रेम का चरम विकास है-इसीलिये वे प्रियतम श्रीकृष्ण का नित्य वर्धनशील रूप देख सकती हैं। मादन महाभाव ही प्रेम का चरम विकास है और प्रिया के नेत्र इसी मादन के पूर्ण प्रतीक हैं। इनके नेत्रों में स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग आदि की तथा इनके अन्तरस्थ अनन्त विचित्र भावों की अचिन्त्यानन्त रससुधामयी विविध विचित्र तरंगें उठती रहती हैं। यही इन नेत्रों की मधुरता है यही इनके दृग-कमल होने का भाव है। प्रिया के नेत्र इतने श्रेष्ठ गौरवशाली होते हुए भी न तो गौरव चाहते है, एवं न ही किसी अहंकारादि का उनमें लेश ही है। उनमें श्रेष्ठत्व का अभिमान है ही नहीं। उनकी तो सर्वतो-भावेन प्रियतम सुख विधान देखने की ही सहज चेष्टा है-फिर भी प्रेम में जो वामता है या वक्रता है-वह इन नेत्रों के केवल ऊपर ही ऊपर रहे जाती है। इन नेत्रों मे तो मधुरता ही मधुरता है, कमल की सरसता, सुकोमलता ही सुकोमलता है। भृकुटियों की जो कुटिलता है, वक्रता किंवा वाम्यता है वह नेत्रों के प्रेम की निर्मलता से भिन्न जातीय कोई पृथक् वस्तु नहीं है। समुद्र में तरंगे जैसे होती हैं-वे समुद्र ही होती हैं-इसी प्रकार प्रिया की वक्रता, भृकुटियों के कुटिल नर्तन से प्रिया के नेत्रों के प्रेम की निर्मलता मलिन नहीं होती वरं उसकी उज्जवलता, आस्वादन चमत्कारिता और भी बढ़ जाती है।

प्रिया के नाम जो प्रियतम सदा अपनी मधुर मुरली में नित्य ललाम

स्वर में बजाते हैं वे नाम क्या हैं ? प्रिया के अनन्त नाम हैं। संसार में जितने नाम हैं वे सब प्रियता के ही वाच्यार्थ हैं। कोई ऐसा एक भी नाम किसी भी भाषा में ऐसा नहीं है जो भाववाची नहीं है। अभाव का कोई नाम थोड़े ही होता है सब नाम भाव के ही हैं। अतः सम्पूर्ण वाणी ही प्रिया का नाम है। परन्तु फिर भी शास्त्रों में जो उनके नाम हैं उनमें प्रमुख नाम 'राधा' है। यही नाम सर्वप्रचलित भी है। जो सहज ही कृतकृत्य हैं, सिद्ध हैं, वे ही राधा हैं। 'रा' शब्दश्च महाविष्णु र्विश्वानि यस्य लोमसु। विश्व प्राणिपु विश्वेपु धा धात्री मातृवाचकः। 'रा' शब्द का अर्थ है जिनके एक-एक लोम कूप में सम्पूर्ण विश्व भरे हैं, वे महाविष्णु तथा उनके अन्दर निवास करने वाले विश्व के प्राणी और सम्पूर्ण विश्व। 'धा' शब्द धात्री का माता का वाचक है। अतएव अविद्यापाद में 'राधा' का भक्तजन यही अर्थ लेते हैं कि वे ही महाविष्णु, विश्व के सम्पूर्ण प्राणी तथा समस्त विश्व की धात्री माता, एकमात्र जननी ईश्वरी मूल प्रकृति हैं। प्रिया श्रीराधा देवी जगत की रचना करने वाली, उसके पालन में तत्पर रहने वाली और प्रलय के समय संहार करने वाली हैं ये ही सम्पूर्ण जगत की प्रसविनी, जननी, आदिशक्ति हैं। यह इनके राधा नाम का 'अविद्यापाद' में अर्थ किया जाता है।

सुविद्यापाद में इसी 'राधा' नाम का निम्न अर्थ होता है—

'रा' इत्यादान वचनो 'धा' च निर्वाण वाचकः।
यतोऽवाप्नोति मुक्ति च सा च राधा प्रकीर्त्तिता॥

'रा' का अर्थ है पाना और 'धा' का अर्थ है मोक्ष भक्तजन जिनसे ज्ञान प्राप्त कर निर्वाण मुक्ति प्राप्त करते हैं वे राधा कहलाती हैं—

इसी प्रकार आनन्दपाद में इनके इसी 'राधा' नाम का भक्तजन निम्नलिखित अर्थ लेते हैं।

रेफो हि निश्चलां भक्ति दास्यं कृष्ण पदाम्बुजे।
सर्वेप्सितं सदानन्दं सर्वसिद्धोगमीश्वरम्॥
ध कारः सहवासं च तत्तव्य काव्यमेवच।
ददाति सार्ष्टिसारूप्यं तत्व ज्ञानं हरे! समम्॥

'रा' कार के उच्चारण मात्र से मनुष्य श्रीकृष्ण चरण कमल में निश्चला भक्ति और श्रीकृष्ण के दासत्व की प्राप्ति करता है। 'ध' कार का उच्चारण उसे सार्ष्टि, सारूप्य, और समानकाल उनके साथ रहने की स्थिति प्रदान करता है।

और जो अपने प्रियतम द्वारा नित्य प्रेमाराधिता हैं इसीलिये वे 'राधा' हैं यह नामार्थ उनका तुरीयपाद में प्रचलित है। श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं।

"राधाकृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मको ध्रुवम्।
वृन्दावनेश्वरी राधा राधैवाराध्यते मया॥"

प्रिया श्रीराधा का नाम कोई जगत के नाम रूप की तरह मिथ्या नाम तो है नहीं, वह तो प्रिया की ही तरह परात्पर प्रियतम रसराज का परमाराध्य, सम्पूर्ण दिव्य मधुर लीलाओं को प्रकाश करने वाला 'परा' शक्ति सम्पन्न है। 'राधा' नाम प्रेमास्पद प्रियतम की सब प्रकार की इच्छाओं को पूर्ण करने में सर्वथा समर्थ है। राधा नाम प्रियतम की जिह्वा द्वारा उनके अन्तस्तल में ज्योंही जाता है वहाँ तत्क्षण उन्हें अनन्त आनन्द देने वाली द्युति से समन्वित परमा-सुन्दरी प्रिया को प्रकट कर देता है। वह उनकी जिह्वा में आते ही उन्हें प्रेम मकरन्द रस का ऐसा स्निग्ध पान कराता है कि उनकी जीभ उस स्वाद को भुला ही नहीं पाती–वह उनके रोम–रोम में जाकर ऐसा सुख स्पर्श देता है कि इस स्पर्श की चाह कभी समाप्त होती ही नहीं।

वन उनके मन को मोहित कर लेता है। वह उनकी चित्त की प्रत्येक वृति को उनके प्रत्येक अवयव अंग–उपाङ्ग की प्रत्येक क्रिया को मधुरतम प्रेम मकरन्द से सिक्त कर देता है। श्रीराधा नाम ही प्रेम की पराकाष्ठा महाभावना बीज है। वह सच्चिन्मय ह्लादिनी शक्ति स्वरूप है। वह मादनाख्य प्रेम परिभावित है। वह ऐसा महान् तत्व है जिसके द्वारा निजमनमोहन, भुवनमोहन, मदनमोहन, प्रियतम भी पूर्णरूप से मोहित है रञ्जित है। वह माधुर्य रस के सार का भी सार है। राधा नाम प्रिया प्रियतम दोनों का नाम है। वह युगलतत्ववाची है। इन दिव्य युगल प्रिया प्रियतम की समस्त शक्तियाँ, समस्त लीलाएँ, इनका समस्त सौन्दर्य, माधुर्य वैदग्ध्य, इनके सम्पूर्ण गुण इस श्री'राधा' नाम के ही वशीभूत है। राधा नाम के आधार पर ही इन सबका प्रकाश और

निवास है। श्रीराधा नाम ही प्रिया का निज स्वरूप है। राधा नाम प्रेम का पवित्रतम समुद्र है। इसका उच्चारण करते ही प्रियतम श्रीकृष्ण उसके पीछे-पीछे चलने लगते हैं। यह श्री'राधा' नाम प्रियतम को ही नहीं स्वयं प्रिया को भी मोहित करने की सामर्थ्य से युक्त है।

प्रिया केवल अपनी नाम सुषमा से ही पूर्ण वशीकृता हैं। व्रजचन्द्र चन्द्रिका प्रिया जिनको श्रुतियाँ भी पकड़ नहीं सकती–जो सर्वतंत्र स्वतंत्र प्रियतम की भी पराधीन नहीं हैं वरं प्रियतम ही जिनके पराधीन हैं–वे महाभाव मयी ह्लादिनीसार प्रिया मात्र निज नाम से वशीकृता हो जाती हैं। प्रिया भी अपने नाम गान से परमानन्दित होती हैं। प्रिया के नाम से अव्रती व्रती हो जाते हैं। प्रिया के नाम की ध्वनि वायु द्वारा जहाँ–जहाँ जाती है सब ओर प्रेम की विशुद्ध पवित्रता भर जाती है। प्रिया के नाम माहात्म्य महा से महा पापी भी परमदुर्लभ प्रेम प्राप्त करते हैं। जो नाम गान करता है वह अवश्य ही प्रिया प्रियतम की महाकृपा को प्राप्त करता है–उसकी दृष्टि भी जहाँ पड़ती है वहाँ तक सब पवित्र हो जाते है। यह उपनिषद् है। हे शुक ! प्रिया के एक नाम नहीं अनन्त नाम हैं। फिर भी जो शास्त्रों में उनके नाम हैं वे निम्नालिखित हैं—

प्रिया के ये अट्ठाईस नाम राधिकोपनिषद् में हैं—

(१) राधा (२) रासेश्वरी (३) रम्या (४) कृष्णमन्त्राधिदेवता
(५) सर्वाद्या (६) सर्ववन्द्या (७) वृन्दावनविहारिणी (८) वृन्दाराध्या (९) रमा
(१०) अशेष गोपी मण्डल पूजिता (११) सत्या (१२) सत्यपरा (१३) सत्यभामा
(१४) श्रीकृष्णवल्लभा (१५) वृषभानुसुता (१६) गोपी (१७) मूल प्रकृति
(१८) ईश्वरी (१९) गन्धर्वा (२०) राधिका (२१) आरम्या (२२) रुक्मिणी
(२३) परमेश्वरी (२४) परात्परतरा (२५) पूर्णा, (२६) पूर्णचन्द्र निभानना,
(२७) भुक्तिमुक्तिप्रदा (२८) भवव्याधि विनाशिनी।

वृहद् गौतमीपतन्त्रमें प्रिया के निम्न नामों का उल्लेख है—

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता।
सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा॥

ब्रह्माण्ड पुराण में प्रियतम स्वयं कहते हैं—

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मको ध्रुवम् ।
वृन्दावनेश्वरी राधा राधैवाराध्यते मया ।।

पुराणों में श्रीराधारानी के निम्नलिखित १६ नामों का भी उल्लेख है:-

(१) राधा, (२) रासेश्वरी (३) रासवासिनी (४) रसिकेश्वरी (५) कृष्ण प्राणाधिका (६) कृष्णप्रिया (७) कृष्णस्वरूपिणी (८) कृष्णा (९) परमानन्द-रूपिणी (१०) कृष्णवामाङ्गसम्भुता (११) वृन्दावनी (१२) वृन्दा (१३) वृन्दावन विनोदिनी (१४) चन्द्रावती (१५) चन्द्रकान्ता (१६) शतचन्द्र निभानना ।

हे शुकराज ! प्रिया अनन्त महिमाशालिनी हैं. इसी प्रकार प्रिया के नाम भी अनन्त महिमावान है । नाम एवं नामी में परमार्थतः कोई भेद नहीं है। प्रिया ही मूर्तिमान कृपावतार हो नाम बन कर सबकी जिह्वा में सहज सुलभ हैं ।

हे शुकराज ! यह परम सत्य है सत्य का सत्य है कि प्रिया श्रीराधा ही ब्रह्म हैं, परमात्मा हैं, भगवान हैं, सच्चिदानन्द, स्वप्रकाश, अद्वय ज्ञान स्वरूप हैं। इसीलिये इनके जितने भी नाम हैं, रूप हैं, लीला हैं, लीलापात्र हैं, धाम हैं, विग्रह हैं, सब सर्वमय, सर्वातीत, सर्वज्ञ, सर्वग, अनन्त, विभु हैं । वे सभी सर्वलोक महेश्वर और सर्वशक्तिमान हैं । इसीलिये श्रीराधा नाम भी अनन्त शक्तियों का परमाधार और एकाधार है । राधा नाम सगुण है, निर्गुण है, निराकार, साकार, सबकी प्रतिष्ठा, सबका आश्रय तत्व है । यह नाम अपार करुणामय है । यह राधा नाम आनन्द-चिन्मय-रस-समुद्र है, रस स्वरूप है, यह प्रियतम-आस्वाद्य है, और रसिक शेखर प्रियतम को भी सर्व रसदाता है । वह असमोर्ध्व सर्व चित्ताकर्षक है- प्रियतम चित्तहर है । वह अद्वितीय सर्वोपरि महिमावान है । श्रीराधा नाम श्रीराधा की सम्पूर्ण स्वरूपाशक्ति है । वह श्रीराधा से अभिन्न महिमा है । यह महा रसमधुर नाम पूर्ण सत्य, सत्य का सत्य और नित्य है । तत्व और नाम एक ही स्वरूप की मात्र दो दिशाएँ हैं । नाम एवं नामी पूर्ण अभिन्न हैं । तत्व में जो अव्यक्त है वह नाम में सर्वोपलब्ध है । नाम साकार है । तत्व में जो बीज है नाम उसका, प्रकट आकार है । नाम तत्व का प्रकट विग्रह रूप है । तत्व की समग्रता नाम है । नाम का निगूढ़ रहस्य ही तत्व है । एक ही परम नित्यानन्द रसब्रह्म तत्व नित्य अखण्ड नाम और नामी दो रूपों में अभिव्यक्त है लीलायमान है । नाम नामी की सबसे कृपामयी लीला

है। नाम सम्पूर्ण लीलाओं का लीलामय की सम्पूर्ण [illegible] का बीज है। राधा नाम ही प्रिया राधा की सबसे बड़ी महिमा है।

हे शुकराज! श्रीराधा नाम अधिरूप महाभाव, मादनामहाभाव की सजीव प्रतिमा है। वह सर्वश्रेष्ठ महाभाव की चरम परिणति का नामाकार विग्रह है। प्रियतम इस राधा नाम को सोल्लास आत्मसमर्पित हैं। यह नाम ही श्रीकृष्ण प्रियतम की आत्मा उनके अखिल चिन्मय रसामृत स्वरूप का बीच आधार है।

हे शुकराज! श्रीराधा नाम इस काम राज्य की वस्तु सर्वथा-सर्वथा नहीं है, यह नाम इस काम राज्य का अत्यन्त विरोधी हैं। श्रीराधा नाम काम का पूर्ण प्रलय है। वह काम कलुष को सदा-सदा के लिये ग्रास कर जाने वाला है। फिर भी वह शुष्क एवं नीरस नहीं है, चित्त में खिन्नता, निदारुण विर्वेदजनक नहीं है। वह रसमय है, आनन्दमय है, छविमय है, मधुरिमामय है, और मोक्ष तिरस्कारी प्रिया स्वरूपभाव को दान देने वाला महान् उदारता का समुद्र है।

इस राधा नाम में आत्यंतिक विषय वैराग्य है, परन्तु फिर भी यह महा महारागमय है। हे शुकराज! प्रेमी साधक और प्रियतम श्रीकृष्ण ही इस नाम, प्रिया नाम राग के सच्चे अर्थों में रसिक हैं।

हे शुकराज! काम रूप अन्धकार का प्रभाव तभी तक है जब तक दिव्य राधा नाम का जिह्वा में निर्मल भास्कर उदय नहीं होता। राधा नाम का परमोज्वल रस साम्राज्य जैसे ही जिह्वा पर स्थापित हुआ नहीं कि काम का प्रवेश समाप्त। अतुलनीय सौन्दर्य माधुर्य राशि, रोम-रोम-मधुर प्रियतम श्रीकृष्ण अपने समग्र सौन्दर्य माधुर्य को लेकर उसके हृदय में तुरन्त तत्क्षण निवास करने को परमातुर हो उठते हैं जैसे ही यह राधा नाम जिह्वा पर नर्तन करने लगता है।

हे शुकराज! यह राधा नाम अनन्त विश्व ब्रह्माण्ड के 'समष्टिमन' रूप प्रियतम श्रीकृष्ण के भी मन को मोहित तथा रञ्जित करने वाला है। इसकी महिमा का सत्य अनुभव तो प्रियतम श्रीकृष्ण के महाकृपापात्र इस प्रेम राज्य में प्रवेश करने वाले परम भाग्यवान लोग ही कर सकते हैं एवं उनकी कृपा से ही इसकी यत्किंचित् अनुभूति भी सम्भव है। यह श्रीराधा नाम ही श्रीकृष्ण का सच्चा भजन है। हे शुकराज! यह राधा नाम देहाशक्ति का नाश

करके देह सुख को भस्म कर देता है, फिर लोकाशक्ति का नाश करके लोक सुख प्रतिष्ठादि को भस्म कर देता है, तब सम्पूर्ण लोक वेद की परम्पराओं का नाश कर लज्जा, धैर्य आर्यपथ को भी भस्म कर देता है तथा मोक्ष कामना का भी नाश कर आत्म सुख का स्वयं भक्षण कर जाता है। तब मात्र 'राधा' नाम और इसका मूल भाव 'प्रियतम सुख' शेष रहता है, यही इसकी विशेषता है।

हे शुकराज ! जहाँ काम है वहाँ नाम नहीं है, और जहाँ नाम है वहाँ काम सर्वथा ही नहीं है। जहाँ तनिक भी स्वसुख कामना है वहाँ प्रिया का नाम नहीं है, यह सत्य है। प्रिया का नाम प्रियतम को इतना प्रिय है कि किसी के द्वारा निज प्रिया का नाम सुनते ही उनके मुखमण्डल पर, उनके अङ्ग प्रत्यंग में उनके रोम-रोम में प्रफुल्लता की बाढ़ आजाती है, प्रियतम का हृदय अभिनव महान् उल्लास से भर जाता है। बस फिर उनके हृदय में से भी नाम समुद्र उमड़ उठता है। इससे उनके प्रत्येक अंग की, मुख की प्रेम कान्ति और समुज्जवल एवं सुमधुर हो जाती है। और वे भक्त हृदय में प्रवेश करने को संकल्पित हो उठते है। अब क्या है ? नाम और सरसित होकर भक्त मुख में नाच उठता है। ज्यों-ज्यों राधा नाम का यह रास नर्तन भक्त हृदय में होता है-प्रियतम भी अपने परम मधुर आनन्द ज्योति-प्रसरित-मुखश्री से उसके हृदय में प्रतिबिंबित होने लगते हैं। इस प्रकार नाम से प्रियतम और प्रियतम से नाम पुनः नाम से प्रियतम और प्रियतम से नाम-इस प्रकार यह लड़ी इतनी तीव्र गति से चलती है कि फिर कुछ भी शेष नहीं रहता-रह जाता है मात्र नाम महा भाव और प्रियतम रसराज।

यह नाम प्रियतम श्रीकृष्ण को प्राणों से अधिक प्रिय है यह प्रियतम के समस्त आनन्द का, विनोद का, प्रेम का, उत्स, मूल है यह प्रियतम का सम्पूर्ण आह्लाद है यह प्रियतम की आत्मा उनका ध्यान है, यह उनको सम्मोहित करने का महामन्त्र है यह नित्य श्रीकृष्ण ही हैं-यह उनका सम्पूर्ण केलि सुख है, यही उनकी प्रिया है, यही उनकी कान्ता है, यही उनका सेव्य है, सेवक और सेवा हैं, यह प्रियतम प्रेम समुद्र है, तरंग है। उनके चित्त को हरने वाला है, उनका देवता है, यही वह पद्म है जिस पर प्रियतम लुब्ध हैं। यह प्रियतम का मुख है-यह उनके मुख की सम्पूर्ण प्रसन्नता है, यही उनकी बुद्धि की जिज्ञासा है, यही उनका अनुराग है, यही नाम उनका परम वल्लभ है। प्रियतम मात्र नाम

कामी है, यही उनका परम वन्दनीय है, यह प्रियतम की सम्पूर्ण कामना है। प्रियतम श्रीकृष्ण इसी नाम के प्रेमी हैं। यही नाम उनके लिये परम कल्याण प्रद है। यही उनकी समस्त माधुरी है। यह उनकी संजीवनी विद्या है। यह उनके हृदय में सदा अवस्थित रहता है। प्रियतम श्रीकृष्ण इसी के प्रेम में नित्य मदोन्मत्त हैं, यह श्रीकृष्ण प्रियतम के संग नित्य विलासी है, यही ऐसी रमणी जो प्रियतम के साथ नित्य रमणरत है, यह राधा कृष्ण प्रेम रूपी कलंक को धारण किये हैं। यह नाम प्रियतम की जितने प्रेम पात्री हैं उनमें सबसे अधिक मुख्य है, यह राधा नाम ही प्रेमकर्त्ता है यही प्रियतम की सच्ची भक्ति है। यह राधा नाम इतना सरस है कि प्रियतम की मुख की सब प्रियवादिता इसी के कारण है– प्रियतम श्रीकृष्ण की सब शक्ति राधा नाम ही है। यह श्रीकृष्ण की प्रिया है और उनकी सत्य सत्ता है। यही उनके प्राणों का आराध्य है, यही उनका धैर्य है, यह उनकी केलिग्रह है, कुञ्ज है, निकुञ्ज है। यही उनका चित्त और सर्वस्व है।

यह नाम प्रियतम श्रीकृष्ण के हृदय कमल में नित्य विराजित रहता है। प्रियतम श्रीकृष्ण नाम–पाश में बंधे एक लव के लिये भी नहीं हट सकते। यह तो उनके नाम प्रेम की नगण्यसी महिमा है। इसी से बड़े–बड़े ऋषि मुनि, ब्रह्मर्षि भी, वेद–ऋचायें और ब्रह्म विद्या आदि सब नाम प्रेम प्राप्त करने की चेष्टा करती रहती है। जो इस 'राधा' नाम की शरण नहीं लेते वे श्रीकृष्ण को प्राप्त नहीं ही कर सकते। अतएव सब प्रकार के इस राधा नाम की शरणापन्नता लेकर इसकी ही आराधना करनी चाहिये।

हे शुकराज ! जैसे पति परायणता रमणी दीर्घकाल से विदेश गये हुए एक मात्र पति में ही अनुरक्त रहती है, केवल पति के ही संग की आकांक्षा करती हुई उसी के नाम गुण का चिन्तन करती है—उसी का गुणगान, गुण श्रवण करती रहती है, इसी प्रकार इतनी ही उत्कंठा से 'राधा नाम' में आसक्त चित्त होकर निरन्तर काम स्मरण, गान तथा श्रवण करते रहना चाहिये।

हे शुकराज ! मछली जल को ही सब कुछ मानती है, जैसे चातक मेघ को ही जानता है, जैसे सती एकमात्र पति के प्रति अनुरक्त रहती है–इसी प्रकार प्रियतम का मन निरंतर प्रिया नाम में ही लगा रहता है।

हे शुकराज, प्रियतम श्रीकृष्ण स्वयं अपने मुख से कहते हैं—

राधा से भी लगता मुझको अधिक मधुर प्रिया राधा नाम।
राधा शब्द कान पड़ते ही खिल उठती हिय–कली तमाम॥
मूल्य नित्य निश्चित है मेरा प्रेम–प्रपूरित राधा नाम।
चाहे जो खरीदले, ऐसा, मुझे सुनाकर राधा नाम॥

(पू० हनुमानप्रसादजी पोद्दार द्वारा स्वरचित काव्य से)

है शुकराज, प्रिया का नाम प्रियतम के हृदय में महाभाव समुद्र उमड़ाता है। यह महाभाव समुद्र ही प्रिया का रूप है। प्रियतम का सम्पूर्ण रसमय देह एक विलक्षण प्रेम सागर में डूब जाता है। प्रियतम का सब कुछ उनका सब आनन्द इस महाभाव समुद्र में विलीन होने लगता है। उनके पास कुछ भी नहीं बचता। वे सभी दृष्टियों से, सभी प्रकार से परम अकिंचन हो जाते हैं। तब प्रिया नाम अपनी कृपा से उन्हें भुक्ति मुक्ति की सहज विस्मृति से समन्वित मधुर मनोहर दिव्य सुधामयी, महा आनन्दमयी छवि, अभीरूपता वैभव का दान करता है। इस छवि की एक झाँकी पाते ही प्रियतम में अनन्त व्याकुलता उत्पन्न हो जाती है। हे शुकराज, यह परम मधुरातिमधुर व्याकुलता भी प्रिया का रूप ही है। हे शुकराज, श्रीराधा कोई किसी भी लौकिक, अलौकिक, किंवा भगवदीय, चिन्मय देह की भी नेत्रेन्द्रिय तृप्ति का साधन रूप विषय नहीं है, सर्वथा नहीं है। वे तो प्रियतम के भी नेत्रों की नेत्रता है। वे प्रियतम का भाव हैं। प्रियतम आश्रय हैं उनका विषय नहीं है। यह सत्य है प्रियतम के नेत्रों के सम्मुख यह राधा नाम विलक्षण भाव रूप भी उपस्थित करता है जिसके मुख–मंडल पर कोटि–कोटि चन्द्रों की द्युति झलमल–झलमल करती है। जिसके नीलवसन भूषित अंग हैं–श्री अङ्गों पर काञ्ची, कंकण, हार, अङ्गद, अंगुरीयक, मञ्जीर, यथा स्थान सुशोभित हैं, चंचल कर्णकुण्डलों तथा दिव्यातिदिव्य रत्न चूड़ामणि से किरणें झर रही हैं, अंगों के तेज का तो कहना ही क्या, वृषभानु-कुमारी की अङ्ग प्रभा से प्रियतम का सम्पूर्ण हृदय आलोकित, उनका सम्पूर्ण नेत्राकाश आलोकित हो जाता है परन्तु इस अभिरूपता के साथ ही साथ उनका अन्तर्हृदय प्रेमावेश से भी विह्वल हो जाता है। हे शुकराज! प्रिया की अभिरूपता उस परम मधुर, परम विशद, समुज्ज्वल भाव सुधाधारा का मूल स्रोत है जिसकी प्रत्येक भावधारा, प्रत्येक भाव सुधाकण नित्य प्रवाही रस समुद्र को उत्पन्न करता है, तरंगायित करता है और अपने में ही पर्यवसित कर लेता है। हे

शुकराज ! महारसराज प्रियतम का शरीर रस है अतः जैसे ही यह महाभाव समुद्र उमड़ता है–उनका शरीर रूप रस भाव में खो जाता है, उनका प्राण रूप रस भी भाव में विलीन हो जाता है—उनका मन रूप रस भी भाव में डूब जाता है उनकी रस बुद्धि भी भाव में डूब जाती है। फिर उनमें कर्म, अभिलाषा, आसक्ति, कामना, आशा और तृष्णा, माया, मोह, अहंता, ममता और उनकी प्रेरणा से होने वाले सब आचरण, लोक के, परलोक के, परमार्थ, स्वार्थ के ऊँचे नीचे सारे व्यवहार–व्यापार मात्र प्रिया में ही डूब जाते हैं। प्रियतम को न धन की, न जन की, न जीवन की, न स्वजनों की सात्विक कीर्त्ति की, सुन्दरयश की श्रेष्ठ आदर सम्मान किसी की स्मृति नहीं रहती। न लोक, न वेद, न विवेक, न देह के ही धर्म, न अन्य धर्ममात्र, उनके धर्मी, धर्म के आत्मा, अतुलित भुक्तिसुख और ब्रह्मानन्द कुछ भी स्मृति में नहीं रहता। यहाँ तक कि उनमें जाग्रत–स्वप्न सुषुप्ति और तुरीय–ये चारों अवस्थाएँ तथा भूत भविष्य और वर्त्तमान ये तीनों काल भी बिना किसी अहंकार के समर्पित हो जाते हैं। फिर इस सर्व समर्पण की स्मृति भी समर्पित हो जाती है। अर्पण या त्याग का तनिक भी अभिमान नहीं बचता। अब केवल प्रियतम में केवल प्रिया रूप प्रेम सूर्य ही प्रकाशमान रहता है। तदनन्तर उनमें सबको पवित्र कर देनेवाला एक विलक्षण दैन्य प्रकट होता है–यही दैन्य उनके मुख से ये शब्द बनकर प्रकट हो जाता है–'कहीं न मिला प्रेम शुचि ऐसा, कहीं न पूरी मन की आश, एक तुम्हीं को पाया मैंने जिसने किया पूर्ण अभिलाष'। हे शुकराज ! अपनी प्रिया का अनन्य स्मरण और अपनी प्रिया के भावों का अपने स्वरूप में प्रकाश ही मधुरतम रसराज है। यह रसराज ही परम पवित्र श्रेष्ठ अमूल्य प्रेमरत्न की निर्मल और विलक्षण ज्योत्स्ना है जिससे प्रेमरत्न जगमग–जगमग होते हैं। यह प्रेम ज्योत्स्ना नित्य अगाध, पल-पल में अपरिमित रूप से बढ़ती रहती है। प्रीति, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभाव इन आठ प्रकार के प्रेम का प्रकाश प्रियतम हैं–प्रेम के भाव के मूर्त्तिमान प्रत्यक्ष रूपरस हैं।

हे शुकराज ! प्रियतमात्मस्वरूपा ही तो राधा है। प्रियतम चित्त-वित्ताकर्षिणी ही प्रिया है। जैसे सुरसरी अनादि काल से समुद्र को आत्मदान करती रहती है उसी प्रकार अनादिकाल से अनन्तकाल तक प्रिया में प्रियतम मिलते जाते हैं और प्रिया प्रियतम रूप में पुनः–पुनः प्रकाशित होती जाती है। हे शुकराज ! प्रिया पूर्ण शक्ति है और प्रियतम शक्तिमान। दोनों अभेद हैं।

इस अभेदरूप में प्रिया श्रीराधा और प्रियतम श्रीकृष्ण अनादि, अनन्त, नित्य, एक हैं। परन्तु यह लीला ही है कि वे एक होते हुए भी दो रूपों में विराजित हैं। यह लीलारस की विशेष पुष्टि के ही लिये है प्रिया में प्रेमभाव की पूर्णतम अभिव्यक्ति है और प्रियतम में प्रेम शोभा रस की, प्रेम प्रकाश रस की पूर्णतम अभिव्यक्ति है। प्रेम भाव और प्रेम शोभारस, किंवा प्रेम प्रकाश रस कोई दो वस्तुऐं नहीं ही कही जा सकती हैं–सूर्य और उसका प्रकाश एक होते हुए भी द्विविध सत्ता रखता है उसी प्रकाश मात्र समझने के लिये ही यह शाखाचन्द्रवत् कहा जा सकता है– वैसे सब मात्र अनुभवगम्य, अचिन्त्य, अकथनीय है।

हे शुकराज, प्रियतम दिव्य रसरूप, अचिन्त्यानन्त–रस–सदन, अखिल रसामृतमूर्त्ति हैं। वे प्रेम में उन्मत्त रहते हैं।

कहत श्याम निज मुख सदा, हौं चिन्मय परतत्व।
पूर्ण ग्यानमय, पैन लखि पायौ प्रिया महत्त्व॥
रहैं सदा बरबस लग्यौ राधा में मनमोर।
रहौं प्रेम विह्वल सदा लखि राधा चितचोर॥
राधा प्रेम अगाध निधि परयो रहौं दिनरात।
विविध विचि सँग मधुर नित नाचौं प्रमुदित गात॥
रहत लोभ मो मन सदा, पाऊँ राधा प्रेम।
दुर्लभ दोष रहित परम सुचि ज्यौं निर्मल हेम॥
राधा प्रेमास्वाद की महिमा अमित अपार।
मो सुख ते कोटिन गुनौवा में सुख–विस्तार॥
(पू० हनुमान प्रसादजी पोद्दार के स्वरचित काव्य से)

हे शुकराज! चिन्मय परतत्व ज्ञान स्वरूप को भी प्रिया के महत्व का पता नहीं है। उनका मन निरनन्तर राधा में लगा रहता है वे सदा राधा प्रेम में विह्वल रहते हैं। वे दिनरात राधा के अगाध प्रेम समुद्र में पड़े रहते हैं। उनके मन में सदा यह लोभ लगा रहता है कि वे भी राधा के सदृश 'प्रेम' भाव को प्राप्त करलें। कैसी प्रेम निर्मल, स्वर्ण की भाँति विशुद्ध दुर्लभ पावित्र्य की मूर्त्ति है प्रिया! इसी प्रियतम से करोड़ों गुनी सुखमयी आनन्दमयी राधा का प्रियतम को दर्शन होता है। भावरूपमयी राधा की प्रियतम के सम्मुख

छवि आती है।

हे शुकराज ! प्रिया का लावण्य, सौन्दर्य एवं माधुर्य यद्यपि नित्यनूतन, नित्य नवनवायमान एवं नित्य अभिवृद्धि को प्राप्त होता रहने वाला है—परन्तु यह सब है केवल उनके आन्तरिक भाव माधुर्य, भाव सौन्दर्य और भाव लावण्य के ही कारण। वे सम्पूर्ण लावण्य भाव की समुद्र होने से अनन्त लावण्यमयी हैं वे वैदग्ध्य भाव समूह की, कलाकलाप की एक मात्र आकरभूमि उत्पत्ति स्थान रूपा होने के कारण परम सुन्दरी हैं—वे करुण्यादि गुणरूप भावों की रत्नों की खान होने के कारण परम सुकोमल हैं। हे शुकराज, प्रिया का श्वेत चम्पा के कुसुम सदृश जो वर्ण है उनका मुख शारदीय शशि का गर्व हरण करता है, उनका श्रीविग्रह असंख्य चन्द्रमाओं की कान्ति के सदृश झलमल करता है, उनके नेत्र शरद ऋतु के खिले कमल के समान हैं—यह सब उनके आन्तरिक मधुरिमा भाव का ही वाह्य प्रकाश है। वे महा-महा माधुर्य समुद्र हैं—मधुरिमा रूपी जल की वे निधि हैं—कैशोर महाभाव की अगाध सिन्धु हैं वे। उनकी स्थूल श्रोणि और क्षीण कटि, उन्नत उरोज, अंग प्रत्यंग की सुकुमारता सब कैशोरभाव ही है। सम्पूर्ण अंगश्री सुन्दर सौभाग्य रेखाओं से युक्त है। सम्पूर्ण अंगों से दिव्य अंग सौरभ झर रही है यह सौरभ उनकी परम दिव्य भावगंध है। वे संगीत शास्त्र में पूर्ण निष्णात हैं, अनन्त मधुर कोकिल कंठी है। उनकी श्रुति मनोज्ञ वाणी, उसमें नर्म पाण्डित्य अर्थात् परिहास वाक्यों की कुशलता रहती है। यह सब उनका वैदग्ध्यादि भाव ही है। क्षीण कटि प्रदेश दिव्य करधनी से अलंकृत है और दिव्य नीलपट्ट वस्त्र इन्होने धारण कर रखा है। कुन्द कुसुम के सदृश स्वच्छ दंतपंक्ति सुशोभित है। इनके प्रसन्न मुखारविन्द पर मृदु मुसकान की छटा छायी रहती है। दिव्य रत्नमय आभूषणों से विभूषित ये देवी नित्य बाला रूप में अल्पवर्षीय ही प्रतीत होती हैं। इनमें सहज विनयशीलता है, पूर्ण करुणा है, पूर्ण कर्त्तव्य कुशलता है, अमित लज्जाशीलता है, सुमर्यादा है और अपने प्रियतम के प्रति अनन्त गौरव बुद्धि है। ये परम धैर्यवती हैं। इनके कुंचित केश मल्लिका और मालती की मालाओं से सुशोभित हैं अंग-प्रत्यन्ग अत्यन्त सुकुमार हैं, इनका श्री विग्रह मानो शोभाश्री का लहराता अनन्त सागर है। आदर्श गम्भीरता इनके अंग-प्रत्यंग पर खेलती रहती है, उससे ये परम शान्तस्वरूपा हैं। कैसी लीलामयता है, कैसी परमोत्कर्षमयी महाभावरूपता है। ये सम्पूर्ण इन्द्रिय समूह की प्रेमपात्री हैं। समष्टि इन्द्रिय

समूह ही तो प्रियतम हैं। समष्टि मन प्रियतम हैं, समष्टि इन्द्रिय समूह रसराज प्रियतम–समष्टि सौन्दर्य उनका कलेवर और समष्टि बुद्धि ही उनकी बुद्धि है, समष्टि चित्त ही उनका चित्त है, समष्टि आत्मा ही तो वे परमात्मा परब्रह्म हैं। इसीलिये प्रिया का यश जब प्रियतम के चिदाकाश में व्याप्त है तो वह अनन्तानन्त सर्व ब्रह्माण्डों में व्याप्त और उद्दीप्त है। वे समस्त गुरुजनों की स्नेहपात्री हैं। और निज सखियों के प्रति प्रेम परवश हैं। वे प्रियतम प्रियाओं की सिरमौर है और प्रियतम को सर्वदा अपने अधीन रखने की मधुर शक्ति हैं।

प्रिया की कैसी शोभा है—प्रियतम स्वयं अपने मुख से कहते हैं—

कनक–गौर अनुपम वर तन पर नीलवसन वर रहा विराज।
अङ्ग–अङ्ग अति मधुर मनोहर सजे सकल विधि सुन्दर साज॥
वदन–सरोज प्रफुल्ल, सौरभित, नवपीयूष, मधुर मकरन्द।
रहते सदा अतृप्त पान रत मधुलोभी मम नयन मिलिन्द॥
रासेश्वरि, रस रास विलासिनि मन मोहनि निर्मल सुख सार।
तेरी परम सुखद सुस्मृति ही है मेरी जीवन आधार॥

× × × × × × ×

बिम्बाधर अति मधुर सुधारस–भरित ललित शुचि गोल कपोल।
रत्नद्युति भासित. श्रुति रंजन परम सुशोभित कुण्डल लोल॥
कुटिल नयन कज्जल–अनुरंजित, अति विशाल, रस भरे ललाम।
बङ्किम भ्रकुटि पंचशर–शरसी सुघड़ नासिका शोभा धाम॥
परमाह्लादिनी ह्लादिनी श्यामा प्रेम सुधारस उदधि अपार।
तेरी परम सुखद सुस्मृति ही है मेरी जीवन आधार॥
मधुकर–कृष्ण मनोहर, चिक्कण चिकुर सुशोभित वेणि अनूप।
सुमन सुगंधित गुंथे मनोरम, मणिमय मुकुट विलक्षण रूप॥
नित नव अनुरागिनी, बड़ भागिनि, भूषण विविध विराजित अंग।
वक्ष उतुंग कञ्चुकी–शोभित, शीश चूनरी मोहन रंग॥
चिबुक–मनोहर, कम्बु–कण्ठ, कमनीय कुसुम मुक्ता–मणिहार।
तेरी परम सुखद सुस्मृति ही है मेरी जीवन आधार॥
मंद उदर रेखा त्रय–राजित, नाभि गंभीर मधुर अभिराम।

कृश कटि सुन्दर किङ्किणी शोभित, कर पद मेंहदी रची सुठाम ॥
सकल कलानिधि, गुणनिधि, गुण-वर्णन-अक्षम श्रुति-शारद-शेष।
मन्मथ-मन्मथ मानस मंथिनि सदा सुहागिनी सुन्दर वेश ॥
नित्य निकुंजेश्वरि नव-कुंज विहारिणि करती नित्य विहार।
तेरी परम सुखद सुस्मृति ही है मेरी जीवन आधार ॥
(परम पू० श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार के स्वरचित काव्य से)

हे शुकराज ! श्रीराधा भावोदधि अनेक धाराओं में उत्ताल लहरें होती है। ये भाव धाराएँ मात्र प्रियतम के आनन्द को अतिशय उत्कर्ष देने के ही प्रयोजनार्थ अस्तित्व में हैं। हे शुकराज, चाहे प्रिया की वचन माधुरी हो, चाहे नाम माधुरी हो, चाहे उनकी नेत्र भंगिमा द्वारा व्यक्त प्रेम माधुरी हो या रूप माधुरी या उनकी अनन्त लीला माधुरी हो, सबके अन्तराल में एक ही मूल भाव प्रवाहित रहता है, प्रियतम-रूप आनन्दोदधि अनन्त ऊर्ध्व उच्छलित होता रहे। और शुकराज, प्रियतम रूप आनन्दोदधि क्या है ? स्व-भाव-प्रकाश रस ही तो है। तो स्व-भाव-प्रकाश-रस कोई भाव सत्ता से अतिरिक्त स्वगत सजातीय, विजातीय किंवा भेदोत्पत्ति है क्या ? सर्वथा एवं सर्वांश में नहीं है। तब आत्म विलास के अतिरिक्त और है क्या ? आत्मानन्द ही आत्मानन्द है-वह घन आत्मानन्द ही उच्छलित है—तरंगित है—परम विभु होता हुआ भी, प्रेमाशेष सीमा-समन्वित होकर भी सर्वदा प्रेम वृद्धिशील है।

हे शुकराज ! अभी-अभी तुमने अनुभव किया प्रियतम के सम्मुख अपूर्वरूप-छवि है—कनक गौर अनुपम परम श्रेष्ठ उनका तन है, उनके अङ्गों-अङ्गों में अति मनोहर भाव माधुर्य छलछला रहा है। अब उनके भाव माधुर्य को भी देखो—सारिका के यह कहते ही प्रिया की अत्यन्त सुमधुर छवि शुक सारिका के सम्मुख आ गई।

प्रिया अपनी एक सखि से बैठी वर्त्तालाप कर रही हैं—वे अपने में कुटिलता और दम्भ के दर्शन करती अपने को धिक्कार रही हैं—वे अपनी उस अति अन्तरंग सखि से कह रही हैं—

सखिरी ! हौं अवगुन की खान।
तन गोरी, मन कारी, भारी, पातक पूरन प्रान।

नहीं त्याग रंचक मो मन में भर्‌यौ अमित अभिमान ।।
नहीं प्रेम को लेस, रहत नित निज सुख को ही ध्यान ।
जग के दुःख अभाव सतावैं, हो मन पीड़ा—भान ।।
तब तेहि दुःख दृग स्रवै अश्रुजल नहिं कछु प्रेम-निदान ।
तिन दुख अँसुवन कौं दिखारावौं, हौं सुचि प्रेम महान ।।
करौं कपट हिय-भाव दुरावौं, रचौं स्वाँग सज्ञान ।।

× × × × × × ×

भोरे मम प्रियतम, विमुग्ध ह्वै करैं विमल मन गान ।
अतिशय प्रेम सराहैं, मोकूँ परम प्रेमिका मान ।।
तुम हूँ सब मिलि करौं प्रसंसा, तब हौं भरौ गुमान ।
करौं अनेक छद्म तेहि छिन हौं, रचौ प्रपंच-वितान ।।
स्याम सरल चित ठगौं दिवस-निसि हौं करि विविध विधान ।
धृग जीवन मेरौ यह कलुषित धृग् यह मिथ्या मान ।।

(पू० हनुमानप्रसादजी पोद्दार द्वारा स्वरचित काव्य से)

देखा ! शुक, बताओ, बोलो क्या प्रिया विलासवती रमणी हैं–जिनके अङ्गों मे विलास माधुर्य छलछला रहा हो ? कैसा मधुर स्वभाव है उनका ? जो अचिन्त्य, अनन्तानन्त सद्‌गुणों की एक मात्र निधि होने पर भी अपने को सर्वसद्‌गुणहीन अनुभव कर रही हैं–जो परिपूर्ण प्रेम प्रतिमा होने पर भी प्रेम का सर्वथा अभाव देख रही हैं ? जो समस्त सौन्दर्य की एकमात्र निधि होकर भी अपने को सौन्दर्य रहित मानती हैं । सहज सरलता उनके स्वभाव की सहज वस्तु होने पर भी अपने में कुटिलता तथा दंभ के दर्शन करती हैं । यही उनका महा माधुर्य है जो उनके अंगों में सदा–सदा छलछलाता रहता है । हे शुकराज ! वे कोई नारी देह, पांच भौतिक स्वरूप नहीं हैं–न ही कोई चिन्मय, भगवदीय, देह है जिनका शृंगार साज किया गया हो । भाव गुण ही उनके सब सुन्दर शृंगार है । भावमय ही उनका परम सुन्दर मुख है जो सदा कमल के समान प्रफुल्लित ही रहता है । अहा भावमय मुख प्रेम सौरभ से पूर्ण सुवासित है, तथा उसमें नव–नव प्रेम पियूष रूपी मधुरतम मकरन्द पूर्ण है । उनके बिम्ब के समान अधर प्रेमामृत रस से भरे हुए परम मधुर हैं, और गोल–गोल कपोल क्या हैं ? पूर्ण प्रेम की पवित्रता, प्रेम शुचिता और लालित्य नामक महाभाव

ही गोल कपोल हैं। नेत्र भी प्रेम कृपा रस से भरे रहते हैं। कैसा प्रेम है इन नेत्रों में—

आँसू सलिल छाँडि नहिं कछु धन है राधा के पास।
जाके विनिमय मिलै प्रेम धन नीलकान्तमनि खास॥
जानि लेउ सजनी! निश्चै यह परम सारकौ सार।
श्याम प्रेम कौ मोल अमोलक सुचि अँसुवनकी धार॥

(पू० हनुमानप्रसादजीपोद्दार के स्वरचित काव्य से)

सर्वत्र प्रियतम दर्शन के कारण ही ये ललाम और बड़े-बड़े हैं। रस विशाल हैं ये। रस-वंकिम हैं, इसीलिये इन्हें कुटिल कहा गया है। प्रियतम का रंग श्याम काजल ही उन्हें अनुरंजित किये रहता है। भौहें बंकिम तथा टेढ़ी हैं-यह प्रियतम प्रेम माधुरी की वाम्यता का प्रकाश कर रही हैं-भाव समुद्र उच्छलित है, और वक्र भी है यही भ्रुभंगिमा का भाव है। नासिका परम शोभा की आकर हैं। प्रिया प्रेम रस की उदधि हैं। वे वह आह्लाद हैं जो परमाह्लाद प्रियतम को भी आह्लादित करता है। उनकी वेणी की अनुपम शोभा है, मनोरम वेणी में सुगन्धित सुमन गुँथे हैं। वे मणिमय चन्द्रिका धारण किये हैं। रसराज ही उनकी वेणी है भाव के ऊपर रस ही लहराता रहता है। रसमय केश श्रीकृष्ण ही हैं-उन रसराज का सर्वश्रेष्ठत्व ही उनकी चन्द्रिका है। उनका नित्य नूतन अनुराग सदा विकसित होता रहता है। विलक्षण रूप सम्पदा उनका शरीरगत सौन्दर्य नहीं, वरं उनका भाव ही है। महा-महा सौभाग्य भी उनका भाव है उनका उत्तुङ्ग वक्षस्थल, मनोहर चिबुक, गम्भीर नाभि, क्षीण कटि सब उनका कैशोर भाव है पुष्प हार और मणि मुक्तावलियों से वे सजी हैं। वे सकल कलाओं की निधि हैं यह सब उनका वैदग्ध्य भाव है। नव कुंजविहारिणी नित्य निकुंजेश्वरी सदा रसमय विहार करती रहती है।

हे शुकराज, प्रिया सच्चिदानंदघन स्वरूपिणी हैं-वे प्रिययतमात्म-स्वरूपिणी हैं, वे परम तत्वाभिरामिणी हैं, वे स्वेच्छा भाव विलासिनी हैं, वे महादिव्याह्लादिनी हैं, वे परमपराशक्ति स्वरूपिणी हैं, वे अखिल विश्व मोहन-मोहिनी परमातिपरम दिव्यातिदिव्य लीलामयी नित्य रासेश्वरी-प्रियतम प्राणेश्वरी हैं-यही उनका रूप है जिसे नित्य अतृप्त नयनों से प्रियतम देखते रहते हैं।

हे शुकराज ! प्रियतम तो स्वयं परात्पर परब्रह्म हैं–उनमें तो किसी भी प्रकार की माया का बन्धन नहीं है। तब उनमें अपने लिये किसी भी सुख प्राप्ति या दुःख निवृति की वासना होना सम्भव ही नहीं। मायिक गुणों से उत्पन्न होने के कारण, मायिक बन्धन के प्रभाव से ही देहावेश उत्पन्न होता है। सम्पूर्ण वासनाओं का हेतु किसी न किसी प्रकार का देहावेश ही है। अतः प्रियतम तो नित्य पूर्ण निष्काम हैं। वे काम क्षेत्र सीमातीत हैं। वे काम के क्षेत्र की सीमा से अतीत हैं। सम्पूर्ण अतृप्ति भी इस कामना से ही है। स्वमुख तात्पर्य ही अतृप्ति होती है। अतः प्रियतम पूर्ण सुखस्वरूप होने से पूर्ण तृप्त है–नित्य निष्काम हैं।

जब प्रियतम त्रिगुणात्मिका माया से पूर्ण तथा अतिक्रमित हैं–वे सर्वथा विशुद्ध, स्वयंप्रकाश, सर्वोपाधिरहित, अनन्त, अपरिछिन्न प्रकृति से अत्यन्त भिन्न, पूर्ण आनन्दस्वरूप हैं फिर उनकी कौनसी ऐसी अभिलाषा शेष रहती है जिसे मात्र प्रिया पूर्ण अभिलाष करती हैं ? यह प्रश्न विचारणीय है। ऐसा कौनसा आनन्द है जिसके लिये नित्य तृप्त, नित्य निष्काम में भी मधुर अतृप्ति और मधुरतम काम की उत्पत्ति हो जाती है और जो सब मायाओं से स्वयं अतीत है उसी पर किसी का जादू, माया, प्रभाव करने लगती है ?

वे स्पष्ट कहते हैं—

नित्य तृप्त निष्काम नित्य में, मधुर अतृप्ति मधुरतम काम।
तेरे दिव्य प्रेम का है यह जादू भरा मधुर परिणाम ॥

किसी भी जादू के परिणाम का आक्रमण प्रियतम श्रीकृष्ण पर कैसे सम्भव है ? वे तो सर्वथा अपरिणामी हैं। जिनके चरणाश्रम मात्र से सर्वमाया और उसको परिणाम वर्जित हो जाते हैं उन पर जादू का कैसा परिणाम क्रियाशील होता है ?

हे शुकराज ! आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति दूसरी वस्तु है और आत्यन्तिक सुख प्राप्ति दूसरी बात है। हे शुकराज ! सर्वमाया विनिर्मुक्त जो प्रियतम की स्थिति है वह आनन्द की शेष सीमा नहीं है। वह दुःख निर्वृत्ति की शेष सीमा तो अवश्य है परन्तु आनन्द की तरतमता में उसकी उपलब्धि की शेष सीमा नही हैं।

सुख—आस्वादन मात्र होना सुख आस्वादन की आत्यन्तिकता नहीं कहा जा सकता। आनन्द प्रियतम श्रीकृष्ण की स्वरूपा शक्ति अवश्य है परन्तु श्रीकृष्ण के शान्त आनन्द स्वरूप में वह स्वरूपाशक्ति क्रियाशील नहीं रहती है। वह निष्क्रिय, शान्त, समाहित, घन शयित रहती है, वह तरंगायमान, उच्छलित, गतिशील, उद्दाम रास नर्तन करती हुई दृष्टिगोचर नहीं होती है। जैसे निद्रा में भी सुखबोध होता है परन्तु वह सुखस्पर्श है सुख की आत्यन्तिक स्थिति नहीं है-उसी प्रकार यह मानना ही पड़ेगा, कोई इसका प्रतिकार नहीं कर सकता, कि आस्वादन की दृष्टि से प्रियतम का शान्त स्वरूप अपरिसीम शेष सीमा समन्वित, आनन्द आस्वादन नहीं है, इस आनन्द—आस्वादन की आत्यन्तिकता तो रस वैचित्री के आस्वादन से ही सम्भव है जो एकमात्र शुद्ध माधुर्यमय व्रज की प्रेम सेवा में ही है अन्यत्र कहीं नहीं।

हे शुकराज, भाव का अर्थ विद्यमानता भी होता है। जो कुछ विद्यमान है, वह सब भी भाव है। इसीलिये भाव ही ब्रह्म की भी आधार शक्ति है। यह भाव या विद्यमानता स्वाभाविक ही आत्म विद्या युक्त है एवं आह्लाद रूप ही है। अतः भाव आत्मविद्या का एवं ह्लादिनी का भी आधार है, उसकी भी सत्ता है। इसलिये यह एक मात्र मूर्त्त है। यही सबकी मूर्त्ति है। यह प्रियतम श्रीकृष्ण की भी आत्ममूर्त्ति हैं। इसीलिये वे सच्चिदानन्दघन विग्रह हैं। हे शुकराज! यह श्रीकृष्ण का निजस्वरूप है जो नित्य तृप्त है, निष्काम, अन्याभिलाषिता शून्य ह, अपने आप में पूर्ण है पूर्ण आनन्द है- पूर्ण तृप्त है। परन्तु शुकराज इसमें रस वैचित्री, चमत्कारिता, भाव का रास नर्त्तन नहीं है। इसमें प्रियतम की स्वरूपा शक्ति मूर्त्ति शान्त है, समाहित है, शयित है, वह वक्र नहीं है प्रतिसर्पण नहीं करती और उच्छलन नहीं करती। दधि का आस्वादन भी एक स्वाद है। इक्षुरस का आस्वादन भी एक स्वाद है। परन्तु इक्षु रसास्वादन आस्वादन की शेष सीमा नहीं है। इक्षु के पश्चात् उसका रस उसको अधिक अस्वाद्य है और गुड़, खण्डसार, शर्करा, शुद्ध मिश्री जब आस्वादित होती है तो उसकी चमत्कारिता से नेत्र, हृदय विस्फारित हो जाता है।

इसीलिये हे शुकराज! भाव का अर्थ मात्र विद्यमानता ही नहीं है यह अनन्त आनन्द चमत्कारिता से युक्त प्रेमाभिव्यंजक है। इसीलिये यह भाव मात्र प्रेम आधार ही नहीं है, प्रेम की विद्यमानता ही नहीं है- यह प्रेम का

अनन्तानन्त रस समन्वित उच्छलन भी है- यह उच्छलन ही इसके रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग और भाव में पर्यवसित होने का कारण है। हे शुकराज, जैसे दधि ही शर्करा, मधु, घृत, कपूर, प्रभृति वस्तुओं के संयोग से आनन्द चमत्कारिता से युक्त हो जाता है इसी प्रकार भाव, आनन्द की विद्यमानता ही जब उच्छलित होती है तभी उसकी निज तरंगें ही उसके आस्वादन को अधिरूप महाभाव के शिखर तक पहुँचाकर मोहन और मादन में प्रतिष्ठित कर देती है तब यही भाव आनन्द शेष सीमा का आस्वादन कराता है और इसकी अपूर्व आस्वादन चमत्कारिता रूप प्रकाश ही 'रस' कहा जाता है। यह रस ही प्रियतम श्रीकृष्ण हैं। प्रियतम श्रीकृष्ण ही इस आस्वादन चमत्कारिता के मूर्त्तिमान विग्रह हैं इसलिये एक मात्र वे ही भोक्ता हैं, और एक मात्र प्रियाभाव ही उनकी अनन्त आनन्द विचित्रताओं की आधार शक्ति भोग्या हैं।

हे शुकराज! यह प्रेम भाव से अतिरिक्त कोई सजातीय विजातीय किंवा 'स्वगत' भेद-युक्त रस सत्ता सर्वथा अलग नहीं है-वह भाव ही है। भाव स्वयं में आस्वाद्य है, वह पूर्ण आनन्द स्वरूप होने से वह आनन्द दान करता है। सूर्य तेज स्वरूप होने से जैसे तेज दान करता है- उसका तेज दान ही उसका प्रकाश है- इसी प्रकार भाव स्वप्रकाश है उसकी स्वप्रकाशिता ही रस है।

हे शुकराज—यह भाव रति स्वरूप है। प्रियतम में जो प्रिया रति है वह प्रियतम के अन्य स्वरूपानन्द जनित आनन्द से जाति में भी और स्वादाधिक्य में भी करोड़ों गुनी श्रेष्ठ है। फिर भी मात्र प्रिया रति ही उनके आनन्द की रस की, आस्वादन की शेष सीमा नहीं है। यह रति ही जब विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव और संचारी भावों से युक्त होती है तो इस प्रिया-रति के आस्वादन में जो आनन्द पाया जाता है वह प्रियतम के अन्य सब समष्टिभूत आनन्दों की अपेक्षा करोड़ों गुना अधिक अपूर्व और अनिर्वचनीय ऐसी एक आनन्द चमत्कारिता उत्पन्न करता है-जिसके फलस्वरूप प्रियतम की अन्तर इन्द्रियों और बहिरिन्द्रियों की समस्त अनुभव शक्ति सम्पूर्ण रूप से एक मात्र उसी अपूर्व आनन्द में, अनिर्वचनीय आनन्द चमत्कारिता में, केन्द्रीभूत हो जाती है।

हे शुकराज! प्रियतम की प्रिया-रति में स्थायी भाव माधुर्य है।

हे शुकराज ! प्रियता ही प्रेम का स्थायी भाव है। पूर्ण प्रेम को ही माधुर्य कहते हैं। हे शुक भाव शान्त है और शान्ति उसका रस है, भाव दास्य है और सेवा दासत्व उसका रस है, सख्य भाव है और सखापन उसका रस है-वात्सल्य भाव है और पुत्रत्व उसका रस है, इसी प्रकार प्रेम भाव है और माधुर्य उसका रस है।

यह प्रेम भाव और उसका माधुर्य रस सर्वरस समन्वित है। यह सर्वोतम है। मधुर भावापन्न प्रिया के लिये कहा गया है—

कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी ।
धर्मेषु पत्नी क्षमया च धात्री ॥
भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा ।
रङ्गे सखी लक्षण सा प्रिया मे ॥

हे शुकराज ! मधुर भावापन्न प्रिया प्रियतम की सर्व कार्यों में मन्त्रीवत् सहायिका हैं वे सेवा क्रिया के समय उनकी दासी हैं- धार्मिक कार्यों में उनकी पत्नी हैं और प्रियतम के अपराधी होने पर क्षमाशीलता के कारणधात्री हैं— भोजन कराते समय वात्सल्यवती माता है—शयन स्थल में रम्भा सदृश प्रिया हैं और रङ्ग स्थल में सख्य रस प्रधान सखी हैं। इस प्रकार सर्व रसमयी प्रिया हैं। हे शुकराज ! शास्त्रों में कहा है—

विभाव्यते हि इत्यादिर्यत्र येन विभाव्यते ।
विभावोनाम स द्वेधाऽऽलम्बनो द्दीपनात्मकः ॥

जिसके द्वारा एवं जिसमें रति आदि भावों का आस्वादन किया जाय उसको विभाव करते हैं। विभाव दो प्रकार का होता है— (१) आलम्बन (२) उद्दीपन ।

आलम्बन भी दो प्रकार का होता है—

(१) आश्रयालम्बन एवं विषयालम्बन ।

हे शुकराज, प्रियतम रसराज ही विषयालम्बन हैं और प्रिया आश्रयालम्बन हैं, परन्तु जब प्रियतम प्रिया रति में भावान्वित होते हैं तो प्रिया

विषयालम्बन और प्रियतम आश्रयालम्बन हो जाते हैं।

हे शुक ! जिनके द्वारा भाव उद्दीपित हो वे उद्दीपन विभाव कहलाते हैं। आलम्बन विभाव अर्थात् प्रिया एवं प्रियतम से सम्बन्धित क्रिया, मुद्रा, रूप, भूषण एवं देश-काल आदि भाव का उद्दीपन करते हैं इसलिये इन सबको भाव का उद्दीपन कहते हैं।

हे शुकराज ! रूप, यदि प्रियतय की स्मृति को उद्दीपित करदे, लावण्य, सौन्दर्य, नाम, चरित्र, रास, क्रीड़ा, वेणु, वेणुवादन, वंश, गोदोहन, गमनमण्डन, भूषा, माल्यानुलेपन, वंशीरव, शृंगीरव, गीत सौरभ, भूषण, भूषण ध्वनि पदाङ्कादि, शिल्पकौशल, निर्मात्य, बर्हा, गुंजा, आद्रि धातुएँ, गोधूलि, वृन्दावन, और वृन्दावनाश्रित खग, भृङ्ग, मृग, कुञ्ज, लतादि, कर्णिकार, कदम्ब, गोवर्धन, यमुना रासस्थली, चन्द्रिका, मेघ, विद्युत, वसन्त, शरद, पूर्णचन्द्र, गन्धवाह, पिक, ये सब उद्दीपन विभावों द्वारा रति रस्यता को प्राप्त कर प्रियतम के आनन्द स्वरूप को अपूर्व प्रोढ आनन्द चमत्कार काष्ठा में पहुंचा देते हैं। हे शुकराज, जब ये उद्दीपन विभाव आलम्बन में अपरिसीम आनन्द को तरंगायीत करते हैं उस समय जिन अनुभावों के द्वारा चित्त का भावानन्द अभिव्यक्त होता है वे सात्विक भाव कहलाते हैं।

अश्रु, कम्प, स्वेद, रोमाञ्च, स्तम्भ, स्वरभेद, वैवर्ण्य और प्रलयमूर्च्छा ये आठ सात्विक भाव हैं।

आत्यन्तिक हर्ष किंवा विरह जनित वेदना के कारण बिना यत्न के जो आँखों से जल निकलता है या नासिका स्राव होता है उसे अश्रु कहते हैं। प्रेमाश्रु सदाशीतल होते हैं। इसी प्रकार प्रेम जनित अति हर्ष से कम्प होता है, स्वेद शरीर पर आर्द्रता आ जाती है, रोमाञ्च हो आता है, स्तम्भ हो आता है, जिसमें कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों की क्रिया लुप्त हो जाती है वाक्यादि की शून्यता, शरीर की सर्वथा निश्चलता हो आती है। स्वरभेद वाणी की गद्गद अवस्था हो जाती है वर्ण विकार वैवर्ण्य हो जाता है इसमें मलिनता, कृशता, आ जाती है तथा प्रलय भूमि-पतन, चेष्टाशून्यता मूर्च्छा हो आती है। ये सब प्रेम की अतिशय आनन्दावस्था के परिचायक हैं।

हे शुकराज ! इसी प्रकार जो भाव विशेष रूप से स्थायी भाव की ओर

संचरण करें उन्हें संचारी भाव कहते हैं।

शास्त्रों ने कहा है—

विशेषणा भि मुख्येन चरन्ति स्थायिनं प्रति।
अथोच्यन्ते त्रयस्त्रिशद् भावा ये व्यभिचारिणः॥

ये संचारी भाव तैंतीस प्रकार के हैं—

(१) निर्वेद, (२) विषाद, (३) दैन्य, (४) ग्लानि, (५) श्रम, (६) मद, (७) गर्व, (८) शङ्का, (९) त्रास, (१०) आवेग, (११) उन्माद, (१२) अपस्मृति, (१३) व्याधि, (१४) मोह, (१५) मृति, (१६) आलस्य, (१७) जाड्य, (१८) लज्जा, (१९) अवहित्था, (२०) स्मृति, (२१) वितर्क, (२२) चिन्ता, (२३) मति, (२४) धृति, (२५) हर्ष, (२६) औत्सुम्य, (२७) औग्र्य, (२८) अमर्ष (२९) असूया (३०) चापत्य, (३१) निद्रा, (३२) सुप्ति, (३३) बोध,

हे शुकराज! इन भाव भेदों से युक्त प्रिया का प्रेम प्रियतम में अनन्त चमत्कारिता रस वैचित्र्यी उत्पन्न करता है, जिसके आस्वादन की कामना ही नित्य तृप्त की मधुरतम अतृप्ति है और निष्काम, पूर्णकाम में मधुरकाम है। यही प्रेम जादू है जिसका परिणाम प्रियतम के अनन्त आनन्द को भी अनन्तानन्त उच्छलित कर चमत्कारिक रसास्वादन कराता है।

हे शुकराज कहीं कुछ नहीं है—

चिदचिल्लक्षणं सर्वं राथाकृष्णमयंजगत्।

ये प्रिया प्रियतम ही सब भाव हैं, विभाव हैं, अनुभाव हैं, सबके अधिष्ठान हैं, सबमें हैं और सबसे विलक्षण हैं। यह प्रेम ही सुमेरुपर्वत की तरह सर्वोपरि अचल स्थित और अनन्त आनन्दमय है। प्रेम ही प्रिया है और प्रियतम है।

हे शुकराज! भावदेह न सगुण और न ही निर्गुण है। वह परात्मक देह है, जो प्रिया प्रियतम प्रेमस्वरूप की कृपा से प्राप्त होता है, और गोलोक धाम के अतिरिक्त और कहीं नहीं देखा जाता। इन भाव देहों का निर्वेद पूर्ण संविन्मय है। इनका विषाद सच्चिदानन्द रसमय है। इनका दैन्य महाभाव का

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri

पूर्ण उत्कर्ष है। इनकी ग्लानि, श्रम, मद, शारीरिक सर्वथा-सर्वथा नहीं है ये प्रेम की परमोच्च अति दिव्य अवस्थाएँ हैं। इनमें आनन्द अनन्त वेग से सम्मुल्लित होता है—

देखो शुक तुम स्वयं अपनी दृष्टि से देखो-यह सारिका के कहते एक दृश्य शुक एवं सारिका के सम्मुख आ गया- उद्धवजी प्रियतम श्रीकृष्ण के भेजे हुए ब्रज में आये हैं वे प्रिया से एकान्त में मिल रहे हैं- परन्तु प्रिया की महान् उच्च स्थिति को देख कर हतप्रभ हैं- और प्रिया तो अपने परमोच्च्य प्रेम स्वरूप में उस पदवी में प्रतिष्ठित हैं जहाँ प्रियतम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है-

वे उद्धव को कह रही हैं—

उद्धव राधासी अभागिनी दुःख भागिनी पापिन कौन ?
जिसको छोड़ मधुपुरी जाकर माधव मधुर हो गये मौन ?
ऐसी प्रिय वियोगिनी तरुणी मेरे सिवा न कोई और ।
प्रिय विछोह में शून्य दीखते जिसको सभी काल सब ठौर ॥
पलपल में बढ़ता जाता है, दारुण से दारुण उर-दाह ।
सूखे कण्ठ तालु सब जिसके, निकल न पाती मुख से आह ॥
प्रियतम के वियोग की ज्वाला में कैसा भीषण उत्ताप ।
कर न सकेगा उसका कोई, कभी कल्पना से भी माप ॥
मेरे मन की विषम वेदना रहती मन में ही अव्यक्त ।
भाषा नहीं पहुँच पाती है, शब्द नहीं कर पाते व्यक्त ॥
कैसे किसे सुनाऊँ, उद्धव ! मैं अपने मन की यह वात ।
कौन बोध देकर कर सकता, शीतल मेरे जलते गात ॥
दुखी न होओ देख मुझे तुम, जाओ उद्धव हरि के पास ।
झुलसा दें न कहीं वे मेरे तुम्हें घोर संतापी श्वास ॥

(पू० हनुमानप्रसादजीपोद्दार के स्वरचित काव्य से)

शुक सारिका दोनों देख रही हैं—

प्रिया में कैसा निर्वेद, कैसा विषाद है, कैसा दैन्य और कैसी अपरिसीम ग्लानि है। इस प्रिया के सदृश अभागिनी दुःखभागिनी तथा पापिनी भला और कौन होगी, जिसको छोड़कर उसके अनन्त मीठे, अनन्त सुखमय माधव

मधुपुरी चले गये। वहाँ जाकर जिन्होने राधा की सुधि लेना ही बंद कर दिया। प्रियतम का ऐसा वियोग सहने वाली तरुणी उनके सिवा और कोई नहीं है। कितनी प्रेमत्रासना है प्रिया को कितना प्रेमावेग है। कैसा प्रेमोन्माद है। उन्हें प्रियतम के विछोह में सभी देश सभी काल सूने दिखाई दे रहे हैं। पलपल में उनके हृदय का दाह भीषण से भी भीषण रूप में बढ़ा चला जा रहा है इस ताप से उनके कण्ठ तालु भी ऐसे सूख गये हैं कि मुख से आह भी नही निकल पा रही है। प्रियतम के वियोग की ज्वाला में कैसा भयानक ताप होता है इसका परिणाम तो कोई भुक्त भोगी ही जान सकता है-अन्य कैसे जानेगा? अपस्मृति, व्याधि एवं मृति, सब इस ताप के सम्मुख तुच्छ प्रतीत होते हैं। फिर भी इतनी विरह पीड़ा देनेवाले प्रियतम को कोई निष्ठुर कहे यह भी प्रिया को सहन नहीं है।

वे कह रही हैं-उद्धव! ऐसा मत कहो। मेरे प्राणनाथ, प्रियतम कदापि निष्ठुर निर्दय नहीं हैं। वे बड़े ही सदय सहृदय हैं। उनका हृदय अत्यन्त सुकोमल है। वे अपने प्रियतम के प्रेमगुण, उनका प्रेम व्यवहार विस्मृत भी नहीं कर सकतीं-वे उद्धव से कह रही हैं—

विसारूँ कैसे श्याम सुजान?
एक मात्र स्मृति ही है आत्मा, स्मृति ही जीवन प्रान।
एक मधुर अनन्य स्मृति प्रिय की नित्य अखंड बनी मम॥
प्रानि, पदार्थ, परिस्थिति, सबकौ सहजहिँ भयौ विसर्जन।
नित नव सुन्दरता, नव माधुरि, नित नव रूप विकास॥
नित नव प्रिति नित्य नव गौरव, नित नव रास विलास।
नित नव नेह, भाव नित नूतन, रात दिवस मन राजत॥
नित नव संगम की मधुर स्मृति, हिय मँह नित्य विराजत।
गुन गरिमा, महिमा, सुहाग-सुख, रस वर्षी मुसकान॥
आतुर मान-मनावनि बोलनि सुधा-मधुर रसखान।
चरन कमल मुखमण्डल, मधुमय केस सिंगार॥
विकट भृकुटि, दृगनलिन विसद, पग नूपुर की झनकार।
स्रवन मात्र मन होत प्रहर्षित, परस प्रफुल्लित देह॥
स्मृति में होत सुस्निग्ध आत्मा, उपजत नित नवनेह।

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

कोटि-कोटि सत मन्मथ जिनके पटतर लजावत ॥
ब्रह्मा, सिव, सनकादि गुननि के जिनके पार न पावत ।
एक बार सपने हूँ जिन्ह कीने रूप राशि के दरशन ॥
अग जग विसरि, कियौ तिन अपनौ सरबस विवस समरपन ।
जिनके मधुर मनोहर मंजुल गुन स्वरलहरी अतुलित ॥
पाहन काठ करत द्रवमय जल, मृत तरु करत सुमुकुलित ।
वायु-सूर्य की गति स्तंभित करि, अचल करत सब चेतन ॥
तिनकौं प्रियतम रूप पाइ पुनि कैसैं सुधि बिसरै मन ।
मेरे प्राननाथ वे प्रियतम मधुर-मधुर जीवन धन ॥
रात दिनों वे रहत हृदय में विलगत कहिँ एकहु छिन ।
ऊधौ तिन में मैं, वे मो में नहीं भेद कौ लेस ॥
प्रियतम ढिंग जाउ सिदौसी, मेटौ मन को कलेश ।
(पू० हनुमानप्रसादजी पोद्दार के स्वरचित काव्य से)

प्रिया प्रियतम का विस्मरण भी कैसे करें ? उन्हें विरह दुखमय प्रतीत ही नहीं होता। वह तो अति सुखरूप है प्रियतम कोई शरीर हों और प्रिया शरीर हों तो विरह हो और मिलन हो। विरह-मिलन एक ही आनन्द महाभाव सत्ता में क्या अर्थ रखते हैं ? विरह में घन आन्तरिक मिलन है और संयोग में घन बाह्य मिलन है।

शुक एवं सारिका स्पष्ट देख रहे थे—

प्रिया का लावण्य किंवा प्रियतम का लावण्य, प्रिया का सौन्दर्य किंवा प्रियतम का सौन्दर्य, उनका नाम, उनका चरित्र सब आनन्द महा समुद्र का उसके भाव प्रेम महा समुद्र का नर्तन मात्र है। आनन्द प्रेम का ही प्रकाश है, इसलिये आनन्द रस है और प्रेम भाव है। प्रेमानन्द ही प्रिया प्रियतम का रास है, उनकी क्रीड़ा है, उनका वेणु है, वेणुवादन है, उनका गोदोहन है उनका मद मस्त गमन है, उनका मण्डन है, उनकी भूषा है, सब प्रेम ही प्रेम है, आनन्द ही आनन्द है। उसकी उच्छ्वसित उर्मियाँ है। उनका माल्यानुलेपन प्रेम ही है। उनका वंशीरव, शृंगीरव, उनकी अमृतवचनावली, उनके गीत, नृत्य, हास, विलास, मुसकान, उनकी सौरभ सब मात्र आनन्द महाभाव समुद्र है और कुछ नहीं। उनके भूषण, भूषणों की ध्वनि, पदाङ्कादि, शिल्पकौशल, निर्माल्य, वहीं

गुंजा, आद्रि धातुएँ, गोधूलि, सब मात्र आनन्द महासमुद्र की उत्ताल तरंगें हैं। सब रस चमत्कार, रसोद्दीपन है आनन्द चमत्कार, आनन्द वैचित्री, आनन्दोद्दीपन है। आनन्दोद्दीपन ही वृन्दावन है, वृन्दावनाश्रित खग, मृग, भृंग, कुंज लतादि, कर्णिकार, कदम्ब, गोवर्धन, यमुना, रासस्थली, चन्द्रिका, मेघ, विद्युत, वसन्त, शरद, पूर्णचन्द्र, और गन्धवाह हैं।

आनन्द ही सब संचारी भाव है। आनन्द ही सुप्ति है, बोध है, निद्रा है। आनन्द, महा–आनन्द ही चापल्य, असूया और अमर्ष है। वही औग्र्य है। वही औत्सुक्य है धृति, मति, चिन्ता, वितर्क और स्मृति है। वही अवहित्था लज्जा, जाड्य और आलस्य है। वही, मृति, मोह, व्याधि, अपस्मृति, उन्माद, आवेग, त्रास, शंका, गर्व, मद, श्रम, ग्लानि, दैन्य, विषाद और निर्वेद है। सब आनन्द मात्र आनन्द, भाव ही भाव है। रस ही रस है। आनन्द, भाव, प्रेम, रस सब एक अभेद अभिन्न अद्वितीय आनन्द मात्र आनन्द है।

यह आनन्द ही प्रिया की प्रियतम श्रीकृष्ण स्मृति है, वही प्रिया का जीवन है, प्रान है। एक मधुर अनन्य स्मृतिरूप आनन्द नित्य है अखण्ड बना है। सब आनन्द ही प्राणि हैं, पदार्थ हैं, और परिस्थितियाँ हैं और सब की सहज विस्मृति विसर्जन है। वही आनन्द नित नव सुन्दरता है, वही नित नव माधुरी है और वही नित नव रूप है और वही महामहा उच्छलित आनन्द उसका नित नूतन विकास है। वह नित नवीन आनन्द ही प्रीति है, नित्य नव गौरव है और नित्य नव रास विलास है। वही नित्य नव नेह है, वही नित नूतन भाव है, और वह दिन रात मन में शोभायमान है। वही नित नूतन संयोग है और संयोग की स्मृति है, वही गुण गरिमा है, वही महिमा, वही सुहाग–सुख है और रसवर्षी मुसकान है जो नित्य हृदय में विराजित रहती है।

वही आनन्द ही वक्रोच्छलित होकर मान रूप में उपस्थित होता है, वही मान सनातन है और वही मरनोपरान्त मिलाप है। वही सुधामधुर वचनावली है जो रस की निधान है। वही महा आनन्द ही चरण कमल है, वही मुख मण्डल है और वह मधुमय रूप है, केश शृंगार है। वही आनन्द ही त्रिकट भृकुटि भंगिमा है, वही विशाल दृग कमल है, और वही पग के नूपुरों की झनकार है। यह आनन्द ही ऐसी रस वैचित्री युक्त है कि इसके श्रवण मात्र से मन प्रहर्षित हो जाता है, फिर स्पर्श होने पर देह की प्रफुल्लता का कहना

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

ही क्या ? इसकी स्मृति मात्र से आत्मा सुस्निग्ध हो उठती है, और नित्य नवीन-नवीन स्नेह रूप आनन्दवर्षा होने लगती है।

सहसा सारिका बोल उठती है—देखा शुक ! तुमने इन संचारी और सात्विक भावों को प्रिया में अभिव्यक्त होते देख लिया, न ? अब तो तुम्हें स्पष्ट ज्ञान हो गया कि कहीं प्राकृत अविद्या है ही नहीं।

शुक नाचने लगा—धन्य सारिके ! परम निर्मल प्रिया का स्वरूप है। मात्र आनन्द ही आनन्द है, ज्ञानोत्तर आनन्द है। भाव ही भाव है। प्रेम ही प्रेम है- ज्ञानोत्तर प्रेम आनन्दोत्तर प्रेम है- प्रेम ही प्रेम है- भाव और रस रस ही भाव और भाव ही रस।

❀ राधा राधा राधा राधा राधा राधा ❀

॥ श्रीराधा ॥

नवम् अध्याय

शुक– हे परावरदर्शी सारिके ! शान्त चुप क्यों हो ? क्या इस व्रज में छायी प्रेम वर्षा के मेघों ने तुम्हारे नेत्रों में भी अपना कृष्णवर्ण अन्धकार भर दिया है ? ठीक ही तो है, तुम्हारे अन्तःकरण रूपी आकाश में प्रियतम रूपी कृष्ण मेघ, प्रियारूपी विज्जु छटा से युक्त हो निरन्तर घनघोर प्रेम वर्षा कर रहा होगा तभी इस अशेष सन्तापहारिणी प्रेम वर्षा की वाढ इतनी अधिक है कि वह तुम्हारे नेत्रों से भी जल समूह के रूप में बहिर्गत हो जा रही है। अहा ! तभी तो तुम्हारे रोम–रोम मयूर पिच्छ की तरह ऊर्ध्व हुए प्रेम नर्तन कर रहे हैं–और अत्यधिक वर्षा से जैसे कदलीवृक्ष काँप उठते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे अंग–अंग क्षण–क्षण में कंप प्रकाशित कर रहे हैं। बोलो सारिके ! कुछ प्रेमरस वाणी के द्वारा भी प्रवाहित करो।

सारिका– क्या कहूँ शुक ! मैं तो अभी प्रिया के उस निर्मल भाव का दर्शन कर रही हूँ जहाँ मयूरों की मधुर ध्वनि सहित नृत्य माधुरी भी उनके नेत्रों के अनुसन्धान में नहीं आती। वे प्रियतम के मस्तक के मोरपंख की स्मृति से इतनी प्रियतम तदाकार हो गयी हैं कि उन्हें सर्वत्र मयूरों में प्रियतम ही प्रियतम दिख रहे हैं। हे शुक ! कैसी विलक्षण प्रिया की प्रियतम तदाकारता है कि वर्षाशील श्यामघन में आसक्त हुई चपला को देखकर वे प्रियतम के प्रेम कौतुक को याद करती हुई पूर्णतल्लीन हैं। हरे रंग को प्राप्त हरे भरे तृणादिमय स्थान ही उनकी नेत्रों की सम्पत्ति बन गये हैं। क्योंकि प्रत्येक तृण में उन्हें अपनी सर्वोत्तम विभूति प्रियतम ही प्रत्यक्ष दिख रहें हैं ? और ये 'नीरद' तो प्रेम नीर को देने वाले प्रियतम ही हैं और इनकी गर्जना भी कैसी प्रेम गम्भीर है– मानों प्रियतम की गम्भीर प्रेम वाणी ही हो। अहा ! प्रिया को यह कितनी प्रियतम स्फूर्त्ति करा रही है। अहा शुक ! मैं तो खुले नेत्रों से खञ्जन नयनी प्रिया के सुमधुर प्रेम दर्शन कर रही हूँ तुम भी करो। यह कहते–कहते शुक सारिका दोनों देखने लगे—

प्रिया अपने प्रियतम में पूर्ण मुग्ध, पूर्ण तन्मय हैं। और प्रियतम भी

अनाविल प्रेमानन्द रस का दान उन्मुक्त हस्त से कर रहे हैं। एक से एक बढी चढी, परम मनोहर लीलाओं का प्रकाश करते हुए माधुर्य रस को उच्छालित कर रहे हैं। रस पीयूष कल्लोलिनी भाव तट पर कैसा शंतम, सुखद, मधुर नर्तन कर रही है।

प्रिया स्पष्ट देख रही हैं–प्रियतम ही सम्पूर्ण पृथ्वी में स्थित हैं–पृथ्वी के अभ्यन्तर हैं–पृथ्वी प्रियतम के नील कलेवरत्व को ग्रहण कर ही श्यामल हरित्प्रभ प्रकाशित हो रही है श्रुतियाँ कहती हैं 'यं पृथिवी न वेद' परन्तु इस प्रेम राज्य की पृथ्वी के लिये तो प्रियतम अपरोक्ष हैं– इसीलिये प्रिया रस पृथ्वीत्व को स्वयं वरण करना चाहती हैं। यहाँ पृथिवी का कोई स्वतन्त्र अधिष्ठातृ देवता है ही नहीं– यहाँ तो सब देवी, देवता, एक प्रिया प्रियतम ही है। अतः प्रियतम ही सबका निथमन करते हैं प्रिया ही सबका नियमन करती हैं, प्रेम ही सब का नियमन करता है। अतः श्रुति में थोड़ा सा परिवर्त्तन ही श्रुति को प्रिया के भाव चरणों में डाल देता है, उसे कृतार्थ कर देता है—

यः पृथिव्यां तिष्ठन्, पृथिव्या अन्तरो यं
×××× यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयति ××

वही प्रियतम जल में स्थित हैं, जल के अभ्यन्तर हैं, जल ही श्यामल रंग धारण कर प्रियतम के रूप में उनके शरीर की स्मृति करा रहा है– प्रियतम ही जल का नियमन करते हैं– परन्तु यहाँ भी वही उपर्युक्त ही अन्तर है। प्रेमराज्य का जल प्रियतम को पूर्ण रूप से जान रहा है–देख रहा है–उन्हें स्नात करा रहा है अनन्त सुखदान दे रहा है।

योऽप्सु तिष्ठन्नद्भ्योऽन्तरो ×××
यस्या पः शरीरम् योऽपोऽन्तरो यमयति ×××

और वही प्रियतम सम्पूर्ण अग्नि में स्थित हैं अग्नि के अभ्यन्तर हैं। ×××अग्नि ही जिनका शरीर है– भीतर रह कर जो अग्नि का नियमन कर रहे हैं–वही प्रियतम अन्तरिक्ष में स्थित हैं–अन्तरिक्ष के अभ्यन्तर हैं ××× श्याम अन्तरिक्ष ही जिनका शरीर है जो भीतर रह कर अन्तरिक्ष का नियसन करते हैं, वही प्रियतम वायु में स्थित हैं वायु के अभ्यन्तर हैं×××वायु जिनका शरीर है, भीतर रह कर जो वायु का नियमन कर रहे हैं, वही प्रियतम ही द्युलोक

में स्थित हैं, द्युलोक के अभ्यन्तर हैं× × ×द्युलोक जिनका शरीर है, भीतर रह कर जो द्युलोक का नियमन करते हैं, वही प्रियतम आदित्य में स्थित हैं आदित्य के अभ्यन्तर हैं आदित्य जिनका शरीर है, भीतर रह कर जो आदित्य का नियमन करते हैं– वही प्रियतम दिशाओं में स्थित हैं दिशाओं के अभ्यन्तर हैं× × × ×दिशायें जिनका शरीर हैं जो भीतर रह कर दिशाओं का नियमन करते हैं, वही प्रियतम चन्द्र एवं तारावली में स्थित हैं, चन्द्र एवं तारावली के अभ्यन्तर हैं– चन्द्र एवं तारावली जिनका शरीर हैं– भीतर रह कर जो चन्द्र एवं तारावली का नियमन कर रहे हैं वही प्रियतम आकाश में स्थित हैं–आकाश के अभ्यन्तर हैं× × × × आकाश जिनका शरीर है और जो भीतर रह कर आकाश का नियमन करते हैं–वही प्रियतम तम (आवरणात्मक बाह्य तम), में स्थित हैं, तम के अभ्यन्तर हैं, तम जिनका शरीर है जो भीतर रह कर तम का नियमन करते हैं– जो तेज (तम से विपरीत प्रकाश सामान्य) में स्थित हैं, तेज के अभ्यन्तर हैं, तेज जिनका शरीर है जो भीतर रहकर तेज का नियमन करते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण अधिदैव प्रिया को मात्र प्रियतम ही प्रियतम दिख रहा है।

शुक सारिका दोनों प्रेम विभोर हैं। श्रुतियों ने जिस तत्व का प्रकाश किया है वहाँ पृथ्वी प्रियतम को नहीं जानती, जल प्रियतम को नहीं जानता, अग्नि प्रियतम को नहीं जानती, अन्तरिक्ष प्रियतम को नहीं जानता, वायु प्रियतम को नहीं जानता, द्युलोक प्रियतम को नहीं जानता, आदित्य प्रियतम को नहीं जानता, दिशाएँ प्रियतम को नहीं जानती, चन्द्र एवं तारावली प्रियतम को नहीं जानते, आकाश प्रियतम को नहीं जानता, तम प्रियतम को नहीं जानता, तेज प्रियतम को नहीं जानता—इस प्रकार सम्पूर्ण अधिदैव से वे परोक्ष हैं परन्तु प्रिया के इस प्रेम राज्य की पृथ्वी जल, अग्नि, अन्तरिक्ष वायु, द्युलोक, आदित्य, दिशाएँ, चन्द्र, तारावली, आकाश, तम, और तेज सब के लिये प्रियतम अपरोक्ष हैं। प्रिया की कृपा से आज वे सर्वान्तर्यामी सर्वनियामक प्रियतम माधुर्य रस सुधापान की उत्कट अभिलाषा से सर्व माधुर्य प्रेमावेश के अन्तराल में अपना अनन्त ऐश्वर्य अपनी अशेष नियामकता को छिपाये हुए–प्रेम में सब भूलकर इस प्रेम राज्य की विमल वसुधरा पर सबके लिये प्रत्यक्ष हैं–सबको अपने निर्मल दर्शन से धन्य–धन्य कर रहे हैं।

शुक एवं सारिका देख रहे हैं—कैसा निर्मल प्रिया का भाव है प्रिया को

सम्पूर्ण भूतों में प्रियतम स्पष्ट स्थित दिख रहे हैं–वे ही समस्त भूतों के अभ्यन्तर हैं–समस्त भूत प्रियतम को जान रहे हैं–देख रहे हैं–प्रिया के साथ ही साथ वे भी प्रियतम प्रेम में पूर्णरूपेण डूब रहे हैं–समस्त भूत प्रियतम के ही शरीर हैं और प्रियतम ही समस्त भूतों का नियमन कर रहे हैं–इस प्रकार प्रिया के लिये समस्त अधिभूत की सत्ता ही नहीं है–मात्र प्रियतम ही प्रियतम हैं।

और प्रियतम ही प्रिया के प्राण हैं, प्राण के अभ्यन्तर हैं, वे ही प्राण-वायु सहित प्रिया की घ्राणेन्द्रिय में आवागमन कर रहे हैं। उसे स्पर्श कर रहे हैं–प्रिया के प्राण इन प्रियतम से खूब अच्छी तरह से परिचित हैं–प्राण ही मानों प्रियतम का शरीर हैं–और प्राणों का सम्पूर्ण नियमन मात्र प्रियतम के ही द्वारा हो रहा है। प्रियतम ही प्रिया की वाणी में स्थित हैं, वे ही वाणी के अभ्यन्तर हैं, जिन्हे वाणी पूर्ण रूप से जानती है, वाणी जिनका शरीर है जो भीतर से वाणी का नियमन करते हैं–प्रियतम ही प्रिया के नेत्रों में स्थित हैं नेत्र के अभ्यन्तर हैं–नेत्र जिन्हे पूर्ण अपरोक्ष, प्रत्यक्ष, सम्मुख देखते हैं, जानते हैं–नेत्र ही प्रियतम के शरीर हैं जो भीतर रहकर नेत्र का नियमन करते हैं, प्रियतम ही प्रिया के श्रोत्र में स्थित हैं श्रोत्र के अभ्यन्तर हैं जिन्हे श्रोत्र अच्छी तरह जानते हैं–सुनते हैं–श्रोत्र जिनका शरीर है जो भीतर रहकर श्रोत्र का नियमन करते हैं। प्रियतम ही प्रिया के मन मे स्थित हैं, मन के अभ्यन्तर हैं प्रिया का मन प्रियतम को खूब अच्छी तरह जान रहा है, देख रहा है–प्रिया का मन ही जिन प्रियतम का शरीर है, जो भीतर रहकर मन का नियमन कर रहे हैं–प्रियतम ही प्रिया के त्वक् में स्थित हैं, त्वक् के अभ्यन्तर हैं–प्रिया की त्वक् प्रियतम को खूब अच्छी तरह से जान रही है–प्रिया का त्वक् ही प्रियतम का शरीर है, जो भीतर रहकर त्वक् का नियमन कर रहे हैं–प्रियतम ही प्रिया के विज्ञान बुद्धि में स्थित हैं–विज्ञान के अभ्यन्तर हैं प्रिया की बुद्धि प्रियतम को अच्छी तरह से जानती है, देखती है–विज्ञान ही प्रिततम का शरीर है–जो भीतर रहकर विज्ञान का नियमन करते हैं–और प्रियतम ही प्रिया के वीर्य हैं वीर्य के अभ्यन्तर हैं–प्रिया का वीर्य उन्हे अच्छी तरह से जानता है–वीर्य ही जिनका शरीर है जो भीतर रहकर प्रिया के सम्पूर्ण वीर्य का नियमन करते हैं–इस प्रकार प्रियतम ही प्रियतम प्रिया की समस्त अध्यात्म सत्ता हैं।

कैसा विलक्षण भाव है प्रिया का! ब्रह्मा से स्तम्ब पर्यन्त समस्त भूत

प्रियतम का प्रत्यक्ष रूप होकर सम्मुख खड़ा है। विद्युत् को देखती हुई प्रिया की भावना यह है–अहा–विद्युत्–बताओ तो सही–किस स्थान पर, कितने काल तक, कौनसा तप तुमने किया है? क्योंकि प्रियतम के वक्षस्थल के समान श्यामवर्ण वाले जलधर रूप में तुम प्रियतम को ही प्राप्त कर सदा क्रीड़ा करती रहती हो। और श्याम मेघ कहाँ है? सर्वत्र प्रियतम ही प्रियतम नर्तन कर रहे हैं–प्रिया के कानों में प्रियतम के नूपुरों की झनकार भर गई है–सम्पूर्ण आकाश-पथ प्रियतम से भरा है– उनके मुखारविन्द से कैसी सौन्दर्य मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही है–शत सहस्र धाराएँ फूट पड़ी हैं–माधुर्य भी–प्रिया के नेत्र इन धाराओं में डूब रहे हैं–डूबते जाते हैं–परन्तु फिर भी उत्कंठा बढ़ती ही जा रही है–और सौन्दर्य उमड़ता जा रहा है। प्रिया आनन्द से वेसुध हैं फिर भी न तो प्रियतम का नर्तन ही बंद होता है एवं न ही प्रिया की उत्कंठा। हाथ एवं अङ्गों में सात्विक कंपा हो रही है।

वे अस्फुट शब्दों में बोल रही हैं—अहा! पृथ्वी यह तो पूर्णतया प्रियतम मय ही है–अहा! ये वृक्षों की टहनियाँ हैं–या प्रियतम की भुजायें जो मुझे आलिंगन करने को औत्सुक्य प्रकाश कर रही हैं–और इस श्यामल तृणराजि ने तो मेरे नेत्रों की सम्पूर्ण सम्पत्ति को ही चुराकर अपने हृदय में छुपाली है। अहा! मेरा मन इनकी विभूति पाने को ललचा रहा है।

और चन्द्रमा कहाँ है? वह तो प्रियतम का चन्द्रमुख ही है। कैसी पुण्यशालिनी है पूर्वदिशा जो प्रियतम के चन्द्रमुख को उद्भासित करती है। यह वायु तो प्रियतम की अंगगंध उड़ाकर ला रही है–सदा उनकी अंगगंध से मत्त होकर ही यह संचरण करती है। सर्वत्र लोकोत्तर सर्वमोहक सौन्दर्य, सर्वमोहक माधुर्यमयी नीलिमा, वही ललित तृभंग किशोर श्याम छवि, वही लावण्य मनोहरता, सर्वत्र लीला विलास, सर्वत्र अमृत ही अमृत भरा है। पूर्ण भरा है। प्रिया को सर्वत्र प्रियदर्शन हो रहा है–आकाश में प्रियतम ही प्रियतम–सब दिशाओं प्रियतम—सम्पूर्ण देश ही प्रियतम, प्रियतम से भरा तो क्या प्रियतम एक हैं या अनेक? प्रिया निर्णय नहीं कर पा रही हैं–कोई असली या नकली की पहचान हो? सभी तो सम्पूर्ण नेत्रधारियों के नेत्रों के फलस्वरूप एक सरीखा सौन्दर्य, माधुर्य लिये सम्मुख हैं? और उनकी दृष्टि में से सम्पूर्ण दृश्य का अस्तित्व ही जो विलीन हो गया है? सम्पूर्ण अधिदैव, अधिभूत

और अध्यात्म जब प्रियतम ही प्रियतम तब दृश्य की सत्ता प्रतिपादित किससे होगी ? सर्वत्र एक सरीखे मुख–एक नहीं दो नहीं–सहस्रों अगणित, सबके एक सरीखे मुखकमल, उन सभी मुखकमलों में भी एक सी मुरली की शोभा, वही एक सी मुस्कान एक सरीखा वेष, एकसा चातुर्य–एक सरीखा मुरलीवादन–एकसा भ्रूचालन एकसा रस, एक सरीखा नव कैशोर–एकसे केशकलाप और एकसा मयूर पिच्छ–कर कमलों में सबके एक से कमल और उसे घुमाने की वही एकसी कला, एकसी कमनीय मधुमय प्रेम वर्षा करती दृष्टि नयनों की निपुणता–एक सरीखी वनमाला–और एक सरीखी अंगगंध–सब पर भ्रमरगणों की टोली चक्कर लगा रही है—और इन भ्रमरगणों का झंकार एक सरीखा स्तुति कर रहा है–और ये भ्रमर भी कोई प्रियतम के अतिरिक्त थोड़े ही हैं प्रियतम ही प्रियतम इनमें भी भरे हैं। वे ही चंचलता से सुशोभित–स्नेह से भरी मुस्काती नेत्र दृष्टि–कहीं किसी में किंचिन्मात्र भी अन्तर नहीं–फिर रसस्रोत में डूबती उतराती प्रिया के चित्र में भी तो वही माधुर्य बरसाती छवि है–रस की प्रबल लहरों से बुद्धि भी ढँक गई है–और रस प्रवाह में डूबी हुई बुद्धि से प्रिया वाणी द्वारा कुछ गुनगुना रही है—

सदा सोचती रहती हूँ मैं, क्या दूँ तुमको, जीवन–धन ।
जो धन देना तुम्हें चाहती, तुम ही हो वह मेरा धन ॥
तुम ही मेरे प्राण–प्रिय हो, प्रियतम सदा तुम्हारी मैं ।
वस्तु तुम्हारी तुमको देते पल–पल हूँ बलिहारी मैं, ॥
प्यारे तुम्हे सुनाऊँ कैसे अपने मन की सहित विवेक ।
अन्यों के अनेक पर मेरे तो तुमही हो प्रियतम एक ॥
मेरे सभी साधनों की बस एक मात्र हो, तुम ही सिद्धि ।
तुम ही प्राणनाथ हो बस, तुमही हो मेरी नित्य समृद्धि ॥
तन–धन–जन का बन्धन टूटा, छूटा भोग मोक्ष का रोग ।
धन्य हुई मैं प्रियतम पाकर एक तुम्हारा प्रिय संयोग ॥

मेरे जीवन धन ! मैं सदा सोचती रहती हूँ कि तुमको क्या दूँ ? जो धन मैं तुमको देना चाहती हूँ, वह धन तो तुमही ही हो ॥१॥

तुमही मुझको प्राणों से प्यारे हो, और हे प्रियतम ! मैं सदा तुम्हारी हूँ। तुम्हारी ही वस्तु तुमको देती हुई मैं पल–पल तुम पर बलिहारी–

न्योछावर हूँ ॥२॥

हे प्यारे ! मैं अपने मन की बात विवेकपूर्वक होशहवास में तुमसे कैसे कहूँ ? औरों के तो अनेक हैं, परन्तु मेरे तो हे प्रियतम ! तुम एक ही हो ॥३॥

अधिक क्या कहूँ, मेरे सम्पूर्ण साधनों की सिद्धि सफलता एक मात्र तुमही हो। तुम ही मेरे प्राणनाथ हो और तुमही मेरा नित्य ऐश्वर्य-स्थिर सम्पत्ति हो, केवल इतनी बात मैं जानती हूँ ॥४॥

देह, धन और परिवार का बन्धन टूट गया, भोग और मोक्ष का रोग भी मिट गया। एक तुम्हारा प्यारा संयोग-मिलन पाकर हे प्रियतम ! मैं धन्य-धन्य हो गयी।

(पू० श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार द्वारा हिन्दी अनुवाद)

प्रिया के सम्मुख प्रियतम हैं। प्रिया देख रही हैं सम्पूर्ण अन्तरिक्ष श्याम ज्योति से भर गया है ' जैसे सूर्य के प्रकाश में नक्षेत्रों की टिमटिमाहट या जुगुनू की चमक दिखाई ही नहीं पड़ती उसी प्रकार प्रियतम की अंगद्युति से ऐसी ज्योति निकल रही है जिससे सूर्य का प्रकाश भी, मंद ही नहीं लुप्त हो गया है। फिर जब सूर्य भी लुप्त हो गया तो सूर्य से प्रकाशित किसी प्रदार्थ की सत्ता कैसे दृष्टिपथ में आयेगी ? फिर अंगद्युति का प्रकाश की बात छोड़ें इन प्रियतम की अमृतस्राविणी मधुरातिमधुर मुखस्मिति का प्रकाश कैसा तीव्र है, यह तो अंगद्युति को भी प्रतिहत कर देता है, और जब वे अंग संचालन करते हैं तो अंगों का लावण्य उसमें और मिल जाता है और प्रेम से भरी दृष्टि से कटाक्ष करते जब भ्रूसंचालन करते हैं तो सब रस-सत्ता ही नाचने लगती हैं। प्रिया दर्शन जन्य मधुपान से भावोन्मादिनी हो रही हैं। प्रियतम का सौन्दर्य, नित्य नवीन लावण्य, मधुरिमा क्षण-क्षण बढ़कर कोटि-कोटि गुणित हो रहे हैं तथा प्रिया का आनन्द भी अपरिसीम बन गया है। अनन्त पारावार रहित आनन्द सागर में लहरियों की भाँति नाचती प्रिया सोच रही हैं मेरे पास है ही क्या जो इन रस सागर प्रियतम को देकर समर्पित कर सुखदान करूँ ? इस नवनीरद कान्तिधारी में क्या नहीं है जिसे प्रिया कुछ देकर उसकी पूर्ति करें। जब ये प्रियतम अमृतस्राविणी मधुरातिमधुर वाणी में 'प्राणेश्वरी-प्राणेश्वरी' कहते हैं-उस समय कर्णपुट तो मात्र उपकरण होते हैं सम्पूर्ण अन्तरिक्ष, सम्पूर्ण आकाश सारा का सारा जगत सुधा समुद्र में डूब जाता है। ऐसी सुधा इनके

ओठ पुटों से निकलती हैं, ऐसी मधुरातिमधुर मधु धारा निकलती है जिसमें सब कुछ डूब जाता है– फिर मन ही कहाँ बचता है ? क्या देने को बचता है उनके पास–परम अमनी भाव में भी आनन्द की ऐसी तरंगें उठती हैं–जो केवल आस्वाद्य ही हैं, बस इतना ही कहा जा सकता है ।

प्रिया की सम्पूर्ण नेत्रता ही सान्द्र नीलद्युति में डूब गई है, सम्पूर्ण विशुद्ध सत्व का आलोक ही नीलसुन्दर की चरण नख चन्द्रिका में आत्मग्रस्त हो गया है– और विशुद्ध भावात्मक 'रज' जो प्रिया में 'मैं' एवं 'मेरे' की क्षीण सी परिकल्पना को–उदय करता था, वह भी प्रियतम के मधुमय कण्ठ से निस्मृत मुरली स्वर में विलीन हो गया है– और विशुद्धतम जो अस्तित्व का सत्ता का आविर्भाव कराता था– वह भी इन पूर्ण निरञ्जन प्रियतम की नीली ज्योति में घुल कर उनके नेत्र सरोजों से निकले प्रेम प्रवाह में न जाने कहाँ बह गया–पता ही नहीं । अब तो उन्हें अपनी, अपने अस्तित्व की स्मृति भी प्रियतम ही कराते हैं– जब अनन्त मधुस्रावी सुधावर्षिणी–प्रियतम की वाणी उनके कानों में जाती है ।

हे अमृतद्युते ! हे सुधांशु सुधामुखि ! हे मधुरे ! हे मधुर भावे ! हे वसन्तमाधवीलते ! तब अतिशय अनुरागोद्रेकवश रोमाञ्च और कम्प प्रकाश के मध्य उन्हें क्षीण सी कल्पना होती है किसी राधा नाम्नी गोपी के प्रति यह प्रियतम–प्रेम प्रवाह हिल्लोलित हो रहा है । फिर सब कुछ एक ऐसे अद्भुत राग में डूब जाता है–जो राग प्रिया के अतिरिक्त न पहले कभी किसी ने आस्वादन किया है और न आगे के काल में भी प्रिया के अतिरिक्त कोई उसे आस्वादित कर सकेगा ।

सहसा मानो प्रियतम ही उन्हें स्मृति दिलाते हैं– उस शरद रात्रि की– जब कुमुदिनी नायक चन्द्र उदय हुआ था– और नदी श्रेणी की समानता वाली वह सखियों की श्रेणी–सिन्धु के उत्ताल तरङ्गों से युक्त अङ्गवाले श्याम तेज में विलीन होने उमड़ रही थी, तो क्या प्रिया वह परमातिपरम सुशोभन शरद राका रजनी का काल प्रियतम को समर्पित करके सुखी करें । बस ! इस क्षीण से प्रियतम सुख संकल्प ने प्रिया के सम्मुख सचमुच ही अनन्त रसमय काल के किसी एक अंश में संघटित 'महारास' को अभिव्यक्त कर दिया ।

प्रिया के सम्मुख दृश्य है, "कैसा शुभ वन है परम मनोहर यमुना की

कान्ति से परिव्याप्त, सर्वत्र प्रस्फुटित पुष्पावलियों की मुसकान से ज्योतित भ्रमर, कोकिलादि की रसमय गुंजन ध्वनि एवं काकली से भ्राजित, परम सुशीतल, सुस्पर्श्य, सुगन्धमय वायु से युक्त–और पूर्ण राका शशि की शोभा से व्याप्त, समस्त गुणों से परिपूर्ण, वह रास काल मानो चिर संचित रस का निधिरूप हो सरस रहा है। परन्तु साथ ही साथ प्रिया स्पष्ट अनुभव कर रही है– बेला मुसका रही है– उनके प्रियतम की सर्वजयी मधुर हास छटा का एक कण लेकर चमेली वन मँह मँह महक रहा है प्रियतम की अंग गंध के मात्र एक कणांश से। सम्पूर्ण वन श्री का समुल्लास मात्र प्रियतम का महा असमोर्ध्व माधुर्य ही है– उनकी प्रेम दृष्टि ने ही सम्पूर्ण काल में शोभा भर दी है–कुंज, निकुंज, नदी, नद, सर, गिरि भूमि, भवन–यह सब रस सृष्टि केवल उनके प्रियतम के प्रेम का ही आविर्भाव है। इस शरद राका के रूप में प्रियतम के प्रेम ने ही सब दिशाओं को अपने अनुराग रूपी लालिमा से रंजित कर रखा है। नूतन केशर के रूप में प्रियतम का अनुराग ही विकसित है, समुल्लसित है। इस चन्द्रमा की किरणों से वन थोड़े ही उद्भासित हो रहा है वन तो मात्र प्रियतम के प्रेम से संकल्प से अनुराग रंग में अनुरंजित है। चाँदनी में कहाँ सामर्थ्य है कि वह प्रियतम प्रेमामृत का समुद्र उडैल दे–प्रियतम ही स्वयं रस हैं, रस के आलम्बन हैं और वे ही उद्दीपन बन कर वन की शोभा के रूप में, शीतल राका शशि की ज्योत्सना के रूप में लहक रहे हैं तब उनको उनका ही अंश यह काल क्या सुख देगा? उनको उनका ही रसांश देश क्या सुख देगा? सर्वत्र प्रियतम ही प्रियतम हैं। प्रिया में नितान्त दैन्य का उदय हो आता है और प्रियतम के रस स्वरूप में स्वयं रस प्रकाशिका होकर भी मुग्ध हो जाती हैं।

सहसा सारिका बोल उठती है– हे शुकराज! ये प्रियतम हैं क्या? अनन्तानन्त प्रिया भाव सागर की ऋजु–कुटिल तरंगें ही तो हैं। प्रिया महाभाव को देखकर ही प्रियतम का आनन्द विवश हृदय–हृदय का सम्पूर्ण रस उच्छलित हो उठाता है। यह रस ही विशाल ऊर्मियों के रूप में व्यक्त होता है– फिर बड़े वेग से प्रिया भावसागर में विलीन होने उमड़ उठता है। कैसा अचिन्त्य सौभाग्य है इस रस सागर का– इसीलिये तो वह उन्नत होता है– परन्तु प्रिया कैसी मुग्ध हैं उन्हें अपनी महत्ता का बोध कहाँ है? वे तो महत्ता की भी महत्ता हैं– उन्हें अपनी महत्ता का ज्ञान होगा तब तो वे महत्ता के परिच्छेद से युक्त हो जायेंगी वे इतनी महान् हैं कि उनकी महानता में सब महत्ता खो जाती है

और उन्हें अपनी सब महत्ता विस्मृत हो जाती है–इसीलिये प्रिया ठीक अनुभव कर रही हैं–अपने अनन्त प्रेम समन्वित प्रियतम को वे कुछ भी दे सकें–ऐसा कोई धन अपने पास नहीं देखतीं। वे स्पष्ट देख रही हैं कोई धन ऐसा नहीं है जो प्रियतम को देने लायक हो। सब परमतुच्छ है। जब वे स्वयं परम तुच्छ हैं तो उनके धन में कहाँ से सामर्थ्य आजायेगी। न तन ही उनका ऐसा धन है–जो प्रियतम को समर्पण द्वारा सुख प्रदान कर सके। वह गोरा अवश्य है परन्तु केवल गोरापन होना कोई सौन्दर्य थोड़े ही है। सौन्दर्य के मूर्त्तिमान स्वरूप तो प्रियतम हैं तभी कालापन भी उनके सौन्दर्य से सिक्त हो कैसा रसमय, रस सागर हो उठा है। और जो प्रियतम के कृष्णत्व के सस्पर्श से भी शून्य है वह गोरापन किस काम का? वह तो सर्वथा विस्मरणीय है, त्याज्य है हेय है, कल्पना में लाने योग्य भी नहीं– हाँ, और 'मन' में भी तमोरूप कालापन भरा रहता है–उज्ज्वलता होती तो–प्रियतम मन में प्रतिबिंबित होते–अब भारी कालेपन के कारण यह मन प्रियतम के निवास के भी योग्य नहीं है। और प्राण तो पूर्णरूप से प्रेम शून्यता रूपी पातक से लदे हैं– अतः प्रिया सर्वथा अपने को प्रेमधन शून्य समझ रही है। अपने से अतिरिक्त वस्तुओं का सुन्दर रूप उन्हें दिखता है परन्तु साथ ही साथ उनके अन्वेषणपरक चित्र में यह बात स्पष्टतया समझ में आ जाती है कि प्रियतम के नेत्र सरोजों की सुषमा क्योंकि नवनवायमान रहती है, वैसे ही उनकी सुधा दृष्टि से सिक्त समस्त वस्तुओं का रूप नित्य नूतन बना रहता है। यह तारतम्य ही इनकी सुन्दरता का कारण है। क्योंकि ये नव–जलधर श्यामचन्द्र से प्रकाशित हैं इसीलिये सुन्दर हैं परन्तु इनका समर्पण श्यामचन्द्र के सुख को बढ़ाने वाला कैसे हो सकता है– नव जलधर द्युति प्रियतम स्वप्रकाश आनन्द से परिपूर्ण पूर्ण–पूर्ण परिपूर्ण हैं? उनका सुख कोई विषय सापेक्ष्य थोड़े ही है जो वस्तु रूप विषय उसको बढाने घटाने में कारण हो जायें। प्रियतम तो बस प्रियतम हैं।

प्रिया को किसी वस्तु में भी सारत्व समझ में नहीं आ रहा–वे स्पष्ट देख रही हैं ये चंचल केश कलाप मात्र प्रियतम द्वारा अत्यन्त स्नेह से कंघी करके उनकी प्रेम सुमनावली से गुँथे होने के कारण ही सौन्दर्य के धाम हैं, ये हिलते कर्ण फूल मात्र प्रियतम की सुखमयी दृष्टि से श्लाघा पाने के कारण ही शोभा दे रहे हैं– ये केश बन्धन से गिरते फूल प्रियतम द्वारा चयन किये गये

होने से ही शोभाशाली हैं– ये मीन के समान नेत्र मात्र प्रियतम रूपी सरोवर में सदा तैरते रहने के कारण ही चंचल एवं शोभायुक्त हैं–यह सुमन्द मदमत्त चाल मात्र प्रियतम की गति की अनुभूति ही है। यह हंस समूह के शब्द का अनुकरण करने वाली, कांची, कंकण की ध्वनि भी प्रियतम प्रियतम पुकारती है इसलिये सुमधुर रव वाली है– सब कुछ प्रियतम संस्पर्श से ही सुन्दर, मधुर, एवं प्रिय हो गया है– परन्तु है स्वरूपतः यह सब तुच्छ तुच्छातितुच्छ, अतः प्रियतम को देकर प्रियतम के सुखवर्धन का सचमुच कारण नहीं है। प्रियतम तो अपने असमोर्ध्व स्वरूप सौन्दर्य, माधुर्य में पूर्ण अनुपम हैं– वे तो बस वे ही हैं।

यह भूमि प्रियतम से संस्पर्श, उनके चरणों से अंकित होने के कारण ही शोभायमान है, यह हँस रही है, आह्लाद शोभा, एवं माधुर्य जैसे इसके रोम-रोम से फूट रहा है, यह जल-स्रोत, यह प्रपातों का कल-कल नाद, स्रोतों की अविराम झर-झर झंकृति सब हँस-हँसकर अपने प्राणों के देवता प्रियतम नील सुन्दर का स्वागत करने के लिये ही मनोरम साज सज्जित हैं— प्रियतम का संस्पर्श ही, उनका जल विहार ही, इनके अपरिसीम समुल्लास का कारण है–प्रियतम इनमें विहार जो कर चुके हैं–जब उनके श्री अंगों की श्यामल कान्ति इनमें पूरित हो चुकी फिर इनके उल्लास, शोभा, सौन्दर्य को कौन संतुलित कर पावेगा ? यह चन्द्र का प्रकाश, चन्द्र ही नहीं, समस्त ज्योतिष्क मंडल प्रकाशित है प्रियतम के श्री अंगों की नीली ज्योति से–सर्वत्र कण-कण में जहाँ-जहाँ जो भी प्रकाश एवं उद्भास है–यह सब व्रजेन्द्रकुलचन्द्र प्रियतम से है–किसी ज्योतिष्क में क्या सामर्थ्य है जो इस प्रियतम वन को उद्भासित कर सके–यहाँ व्रजपुर के चन्द्रमा तो नीलचन्द्र, प्रियतमचन्द्र, कृष्णचन्द्र ही हैं। यहाँ के सूर्य तो प्रेमसूर्य मात्र प्रियतम हैं प्रियतम ही हैं। वे और उनका प्रेम स्वप्रकाश हैं।

अहा ! कैसे प्रेममय हैं प्रियतम ! वे सभी को समुल्लसित देखना चाहते हैं, वे कभी किसी को उदास नही देख पाते इसीलिये वे अपना निजस्वरूपभूत आनन्द सर्वत्र वितरित कर रहे हैं–वे किसी के नेत्र कोणों में अश्रु की छाया भी नहीं देख पाते–वे किसी के मुखपर तनिक सी म्लानता की छाया भी नही देख सकते–सबको उल्लास से भरा नृत्य करता देखकर ही उनको अतिशय सुख होता है, बस उनका मन आनन्द मग्न होकर विसुध हो जाता है, सबको सुखी बनाने

का, सुखी देखने का ही वे प्रतिपल कार्य करते रहते हैं सबके तनिक-तनिक सुख दुख उनको अतिशय दुःख के कारण हो जाते हैं—कैसे पवित्रतम प्रेम रस के सागर हैं वे। वे सबको अपरिमित प्रेम दे चुके हैं, दे रहे हैं और देते रहेंगे। वे सबकी अपमान अवज्ञा सहकर भी प्रेम दान ही देते हैं—प्रेम के अतिरिक्त उनके पास अन्य वस्तु है ही नहीं—कोई उन्हें सच्चा प्रेम नहीं करता—सब अपना ही सुख देखते हैं—सब अपने सुखों के लिये उनको हँसाते रुलाते हैं—अहा! ऐसी कौनसी सुख की सामग्री कहाँ से आवे जो उनको सुखी कर सके—सारी आयु तो मन इन्द्रियों की तृप्ति के लिये चली गई—परन्तु उन्होंने दोष देखना जाना ही नहीं--उनके प्रेम में अन्यत्व है ही नहीं अतः उनके लिये कोई स्वार्थ पूर्ण कार्य है ही नहीं--वे सबके सुख में अपना सुख देखकर सबके स्वार्थ को अपना स्वार्थ मानकर सबके कार्यों को प्रेममय ही मानते हैं—उनके प्रेम को ठुकराने पर भी उनका प्रेम निरन्तर बढ़ता है। उनका प्रेम स्वतः सिद्ध है। उनका प्रेम सम्पूर्ण प्रमाणों का प्रमाण है। उनका प्रेम आकाश में, वायु में, तेज में, जल में, पृथ्वी में, सबकी सत्ता में, विकास में, विलय में, सर्वत्र नित्य प्रकाशित है नित्य मूर्त्तिमान है। उनके प्रेमरूपी दर्पण में ही सब कुछ आविर्भूत हो रहा है। किसी भी देश से, काल से, विद्या से, अविद्या से, मोह से, काम से, क्रोध से, लोभ से, वासना से, विकार से प्रियतम का प्रेम न रुकता है न घटता है न परिच्छिन्न ही हो सकता है। प्रियतम का प्रेम आकाश की तरह सर्वत्र सबको आत्मसात किये, सबका जीवन है। वह आकाश का भी जीवन है। प्रियतम का प्रेम ही सब रूपों में है, उनका प्रेम ही सब रसों में, सब गंधों में है, सब स्पर्श में है, सब शब्दों में है। प्रिया को स्पष्ट दिख रहा है प्रियतम का प्रेम ही सब की चेतनता है—वही चल है, अचल है—सबका प्रियतम प्रेम ही कारण है। वह सबको सब समय सर्वथा—सर्वथा प्राप्त है इतने उदार हैं प्रियतम कि उनके प्रेम की अप्राप्ति संभव ही नहीं—सबको पूर्ण प्रेम की प्राप्ति नित्य है। प्रिया को लग रहा है कोई प्रियतम का प्रेम खोजने चले, उसका मनन करने चले, विचार करे, चिन्तन करे, उसे ग्राह्य माने, उसके लिये तीर्थ जाय, तप करे, जप करे, सब उपहासास्पद है—सबसे सर्वाधिक सुलभ, नित्य प्राप्त, नित्य स्वरूपभूत प्रियतम का प्रेम है—उसमें कहीं कुछ करने न करने की शर्त नहीं—जो बेशर्त्त न हो, वह प्रेम होता ही नहीं। क्रिया विशेष से प्रकट होने वाला, और क्रिया विशेष से परिच्छिन्न हो जाने वाला उनके प्रियतम का प्रेम सर्वथा

नहीं है, वह तो पूर्ण. विभु, सर्वव्यापी, अखण्ड, अनन्त, अपरिच्छिन्न, भूमा, एकमेव, अद्वितीय है।

कैसा विलक्षण अपने प्रियतम का प्रेम प्रिया के सम्मुख है-वे देख रही हैं प्रियतम के स्वरूप गुण अचिन्त्यानन्त हैं। परम त्यागमय, परम समर्पणमय, परमरसमय, सर्वसुख तात्पर्यमय विशुद्ध प्रेम के प्रियतम उत्स हैं-प्रेम जनित समस्त भावों का उदय, उत्तरोत्तर विकास एवं उनके नित्य आस्वादक भोक्ता प्रियतम हैं समस्त दिव्य गुणावली, रसमय गुणों के अवान्तर भेद, रस का परमोच्चस्तर-जिनका चित्त के द्वारा चिन्तन भी हो सकता है-सब प्रियतम से उत्पन्न हैं प्रियतम ही उन सबके प्रकाशक हैं-फिर भी वे किसी के बन्धन से बँधे नहीं हैं—प्रियतम एक मात्र प्रेम के अतिरिक्त तत्वतः और कुछ नहीं हैं—प्रेम के ही वे मात्र ग्राहक हैं, भोक्ता हैं और प्रेम ही एक मात्र ऐसा धन है जो उनका सजातीय है। प्रियतम मात्र प्रेम भोक्ता हैं। प्रिया को प्रियतम के अतिरिक्त किसी भी रस की गुण की विशेष की सत्ता ही मान्य नहीं हो रही है-सब मात्र प्रियतम, प्रियतम, एक मात्र प्रियतम परन्तु यह क्या ? पुनः उनकी प्रियतम छवि अत्यन्त उत्कंठा से पुकार उठी प्रिये ! प्राणेश्वरी ! प्रिये ! प्राणेश्वरी और प्रिया की दृष्टि अपने आप पर केन्द्रित हो उठती है- 'मैं' कौन हूँ ? वे अपने प्रियतम से ही पूछती हैं प्रियतम ! जिसे तुम प्रियतमे, प्रिये ! प्राणेश्वरी कह कर पुकारते हो वह कौन है ?

प्रिया देखती हैं उनके प्रियतम के मुख पर सहज सौख्य की लहर नाचने लगी। और प्रिया प्रियतम की इस सुख धारा से अनन्त सुखी हो गयीं। और इसी बीच उनकी रसधारा में बहती उतराती बुद्धि ने निर्णय कर लिया मैं तो सदा-सदा से इन प्राण प्रियतम की ही हूँ। इन मेरे प्रियतम से मेरा अत्यन्त निर्मल सम्बन्ध है, वह सम्बन्ध ही प्रेम है-यह सम्बन्ध ही विशुद्ध आनन्द है। यह सम्बन्ध स्वतः प्रमाण है, परतः प्रमाण नहीं। हम सदा एक हैं। प्रियतम मेरे नित्य अनुपम परम सुहृद हैं, परम धन हैं, परम आत्मीय हैं और परम प्रेमास्पद हैं। और मैं उनसे नित्य बंधी हुई होने के कारण भली बुरी भी उनकी सुहृद हूँ आत्मीय हूँ और प्रियतमा हूँ। वे मेरे सौभाग्य हैं, महा महा सौभाग्य हैं और मैं उनकी दुर्भाग्य ही सही परन्तु हूं उनकी एक मात्र उनकी। वे मेरे हृदय में पवित्र उज्जवल रूप में सदा बसे रहते हैं और मैं भी

उनके हृदय की सीमा में ही रहती हूँ तभी न वे मेरी दृष्टि से कभी ओझल नहीं होते। मेरा अन्य किसी से कुछ भी लेना देना नहीं उनका भी मेरे अतिरिक्त यदि किसी से लेना–देना होता तो वे मेरी संगति त्यागकर पल भर तो अलग होते।

जब पल भर भी वे मुझ से अलग नहीं हो पाते तब अवश्य ही उनका भी किसी अन्य से न प्रयोजन है और न किसी से कुछ काम ही है। अहा! मेरे और मेरे प्रियतम का प्रेम रस कभी बासी नहीं होता कभी बिगड़ता नहीं वह नित्य नवीन परम सुमधुर है। दो बने हुए हैं मात्र आस्वादन के लिये वैसे एक ही हैं। अहा! प्रिया का मन कैसे सुमधुर प्रेम भावों में बह रहा है। वे सोच रही हैं जब सब गोलोक इन नील सुन्दर के सलोने दृगों से झरकर ही बना है, तब वे अतिरिक्त कहाँ हैं? हृदय का प्रेम स्रोत जब तक 'अहम्' को विदीर्ण नहीं करता तभी तक तो अनेक दिखाई पड़ रहा है। भद्र और अभद्र का का द्वैत बना है? एक बार इन प्रेम सिन्धु की प्रेम लहरों से संगमित भर हो जाये पर फिर तो बाहर भीतर प्रियतम ही प्रियतम तो रँगे हुए नजर आते हैं–प्रियतम ही अपने प्रेम पट पर अपनी प्रेम महिमा से ही अपनी रसाभिव्यक्ति से सबका आविर्भाव कर रहे हैं—प्रिया देख रही हैं "मैं" है ही नहीं सम्पूर्ण एक चैतन्य प्रियतम ही हैं जो उनके शरीर में प्रेम से प्रवाहित हो रहे हैं। यही प्रिया देख रही हैं यह कब से है? कुछ पता नहीं। यह सदा नित्य निरन्तर अनन्त की ओर जाता ही रहेगा–पर है यह सत्य प्रियतम मोहन की मंजुल मूर्ति ही उनकी देह बन गई है? गोरी काली जैसी भी हो। प्रियतम ने उससे अपने को पूर्ण एक रूप कर दिया है। मन में भी मन मोहन है अपने प्रेम स्वभाववश प्रविष्ट हो गये हैं हृदय में उनका ही दिया सब कुछ प्रेम–प्रसाद सरसने लगा है। निज देह की सारी कुरूपता को आत्मसात् कर प्रियतम ने उसे गौरवर्ण से श्यामवर्ण बना लिया है। रोम–रोम में नव नीरद नील विग्रह ही झाँक रहा है। उनके गले में झूलती माला भी प्रियतम के बाहुओं की आकृति धारण कर चुकी है, मानो प्रियतम ही उनके गले से माला बन कर लिपटे हैं–बारम्बार ताम्बूल सेवन करने पर भी ये अधर अरुण कहाँ हो पाते हैं–श्यामल छवि वहाँ भी रसरूप में तैरती रहती है। और प्राणों का संचार कहाँ हो रहा हैं—प्रियतम का ही तो बाहर भीतर संचार हो रहा है। जैसे रोम रोम से एक ही प्रेम संकल्प, एक ही प्रेमनाद, एक ही प्रेम स्पन्दन, स्पन्दित

हो रहा है, झंकृत हो रहा है, संकल्पित हो रहा है–तुम ही मेरे प्राणप्रिय हो, प्रियतम सदा तुम्हारी मैं। प्रिया को स्पष्ट प्रतीत हो रहा है मेरे नेत्र विकल्प रहित प्रियतम के हैं–उनकी नेत्र पुतरी ही प्रियतम में मिलकर प्रियतम रूप हो गई हैं। अतः जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में अन्तर्नेत्रों एवं बाह्य नेत्रों, दोनों से वे सब कुछ प्रियतमाकार ही देखती हैं। बस एक ही नील सुन्दर स्वरूप सर्वत्र लहक रहा है। ठीक इसी तरह श्रवणेन्द्रियों में भी निर्विकल्प मधुर–मधुर प्रियतम वचन रचना ही होती रहती है। उनके कानों में निरन्तर प्रियतम की मधुरातिमधुर वंशी ध्वनि गूँजती ही रहती है। कान उस रसार्पण में अपाततः डूब गये हैं सब 'मैं' एवं मेरे शब्द की गर्जना प्रियतम के मधुमय कण्ठ से निस्सृत मुरली के स्वर में विलीन हो गई है। अब तो एक ही शब्द उनके प्राणों को स्पन्दन–स्पन्दन में झंकृत होता रहता है–योगियों के अनहद नाद की तरह प्रियतम–प्रियतम–या प्रियतम के मधुमय कंठ की वचन रचना प्राणेश्वरी, प्रिये, राधा–राधा। प्रियतम उनको अन्य कोईश ब्द सुनने ही नहीं देते। इसी प्रकार प्रिया की स्पर्शेन्द्रिय बिना किसी व्यवधान के प्रियतम संस्पर्श पाती रहती है। एक क्षण के लिये इस त्वचा को उनका संस्पर्श प्राप्त न हो तो प्राणों में शत सहस्र दावानलों का ताप धक्–धक् जल उठता है। भीषण ज्वाला से त्वचा का रोम–रोम दग्ध होने लगता है। जीवन धारण करना ही उनके लिये कठिन हो जाय, यदि विकल्प रहित प्रियतम स्मृति संस्पर्श उनको सदा न मिले। और प्रियतम के पावन संस्पर्श से कैसा परमानन्दमयी शीतलता परिव्याप्त हो उठती है उनके रोम–रोम में अहा कैसा प्रेम है प्रियतम का! और यही दशा उनकी रचना की है। निर्विकल्प वह प्रियतम के मधुर प्रेम सुधा प्रसाद का रस चखती रहती है। यही दशा नासिका की है–वह उनके अंगगंध में प्रमत्त है।

अहा–शुक देखो! प्रिया अपनी एक अन्तरङ्ग सखी के सम्मुख अपने भावों की अभिव्यक्ति कर रही हैं–अपने नयनों से देखकर अशेष परितृप्ति का लाभ करो–सारिका के यह कहते ही–शुक एवं सारिका के सम्मुख एक सुमधुर दृश्य आ जाता है। "प्रिया एक कुंज में अपनी सखी ललिता को सम्बोधित कर रही हैं"—अहा! देखो सखि! वस्तुतस्तु जैसे भ्रमर कुछ काल तक सबलताओं का सेवन कर घूमते–घूमते पश्चात् कमलिनी के ऊपर ही जैसे चिरकाल तक स्थित हो जाता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण रूपी भ्रमर भी इतस्ततः घूमता हुआ

बाधा रहित अब अनन्त काल तक के लिये मेरे हृदय में ही स्थित हो गया है–वह सर्व प्रकार से मेरे हृदय का निजस्व उस की ही निधि है।

"अरी सखि ! ये प्रियतम तो शोभा की भी शुभदायिनी शोभा हैं, लक्ष्मी की भी परम लक्ष्मी हैं–कान्ति की परम कान्ति हैं, मनोज्ञता की मनोज्ञता हैं, उज्ज्वलता की उज्ज्वलता हैं—ये नव जल धर कान्ति प्रियतम विद्युन्माता से भी अधिक चमकीला मनोज्ञ पीताम्बर धारण किये हैं इनका वदन चन्द्र निर्मल शारदीय पूर्ण चन्द्रमा की अपेक्षा भी समुज्ज्वल तथा चित्र विचित्र मुरली के द्वारा सुशोभित हैं अहा–मयूर पिच्छ से सुशोभित गले में निर्मल कान्ति युक्त मोतियों की माला धारण किये—ये मेरे नेत्रों की सम्पूर्ण नेत्रता ही हैं। ये ही मेरी दर्शन शक्ति हैं– इनके बिना मैं अन्धी हूं। ये मेरे नेत्रों के भी प्राण हैं: प्रिय हैं–मेरे नेत्रों के सम्पूर्ण रूपेण निजस्व ये ही हैं। अरी सखी ! नव यौवन के श्रेष्ठ लावण्य की पुण्य सम्पति स्वरूप, सर्व लोकों की शोभा की मुकुट–मणि स्वरूप मेरी समस्त प्रेम कामनाओं की जीवनौषधिस्वरूप मेरे नेत्र चकोरों के लिये नवीन चन्द्रकला स्वरूप, ये प्रियतम ही 'मेरे' कहे जा सकने वाले एक मात्र धन हैं।

अरी सखी ! ये मेरे नेत्रों के ही नहीं सम्पूर्ण इन्द्रियों के एक मात्र धन हैं। सखि जिनकी कण्ठ ध्वनि मेघ–गर्जन के सदृश गम्भीर है, जिनके आभूषणों की झनकार, परिहास वचनों की भाव भङ्गिमाएँ, एवं मुरली ध्वनि मेरे कानों में मधुमादक मकरन्द के झरने बहा देती है, वे मदन मोहन क्या मेरे कानों के एक मात्र वैभव नहीं हैं ?

अरी सखि भुवन भास्कर के बिना दिन कैसा ? चन्द्र देव के बिना रजनी कैसी ? वारि हीन भी क्या कोई सरोवर होता है ? इसी प्रकार अरी बहिन ! प्रियतम के बिना जीवन कैसा ? यह देह उनके प्रेम से ही सौन्दर्य आदि गुणों से अलंकृत है वे ही मेरे समस्त प्राणों के सार सर्वस्व हैं।

अरी सखि ! आकाश का अप्रतिम सौन्दर्य, शीतल मन्द सुगन्ध वायु का सुख स्पर्श सौन्दर्य, अग्नि, जल पृथ्वी का विचित्रातिविचित्र सौन्दर्य, अनन्त विचित्र पुष्पों के विविध वर्ण सौरभ का सौन्दर्य, विभिन्न पक्षियों के रंग बिरंगे सुखकर स्वरूप और उनकी मधुर काकली का सौन्दर्य, बालकों की हृदयहारिणी माधुरी, ललनाओं का ललित लावण्य तथा माता, पत्नी–मित्र आदि का मधुर

स्नेह सौन्दर्य, इन सब सौन्दर्यों को कोई समष्टि भूत कल्पना करली जाय–उसके भी अहंकार को चूर्ण विचूर्ण कर देने वाला प्रियतम के श्रीअङ्गों का सौन्दर्य मात्र 'मेरा' है– इससे बड़ा सौभाग्य दान प्रियतम और मुझे क्या कर सकते है ? अतः वे ही मेरी समस्त सौभाग्य राशि हैं।

अरी सखि ! कस्तूरी, कर्पूर, उत्कृष्ट चन्दन, अगुरु आदि जगत के जितने सुगन्धिद्रव्य सम्भव हैं उनके सबसे अनन्त ढेरों से जो सुगन्धि का सार निकाला जाय–उसे भी महत् , महत्तर, महत्तम, और अनन्त वृहत्ता से संयुक्त कर लिया जाय फिर भी वह जिनके श्रीअङ्गों की सौरभ तरङ्ग से, क्षणार्ध के सहस्र सहस्रांश समय में ही हतप्रभ हो जाती है, वे मदनमोहन ही मेरी नासिका की मात्र विभूति हैं।

अरी सखि ! सब की मधुरता की कोई न कोई सीमा है, इक्षु की मधुरता, गुड़ की मधुरता, शर्करा, खाँड, बूरा, मिश्री, एवं फिर अनेकानेक पक्वानों का स्वाद कितना ही उत्कृष्ट क्यो न हो, सब ससीम हैं, परन्तु जिनकी सुमधुर अधर सुधा उपमारहित, असीम, अनन्तानन्त सम्पूर्ण रस समूह की स्पृहा का भी अपहरण करने वाली है, वे प्रियतम अपनी सम्पूर्ण माधुरी लेकर मेरे अधरों के मात्र आस्वाद्य हो रहे हैं, इससे बड़ी मेरी क्या कृतकृत्यता हो सकती हैं ? सखि प्रियतम ही मेरी सम्पूर्ण कृतकृत्यता हैं। अरी सखि ! कोई पूछे यह साँवरी सूरतवाला नीलसुन्दर कहाँ रहता है ? अरी सखि ! कोई इन्द्र–नीलमणि के कपाट के सदृश विशाल वक्षस्थल वाले, मनोहर चन्द्रमा, हरि चन्दन, कमल कर्पूर और बादल के सदृश सुशीतल प्रियतम का पता पूछे तो बताओ उसका निवास इस राधा नाम्नी रसहीना, परम कुरुपा, सर्वगुणहीना, ग्वालिनी के हृदय में है ? जो सदा अपने निखिल सौन्दर्य–माधुर्य–रस सुधा सार सर्वस्व से मेरे हृदय को जगमताते हुए निरन्तर मेरे हृदय में न्यौछावर हैं–उससे बढकर मेरा सुहाग, भाग, और क्या सम्भव है ?

अरी सखि ! मेरे नेत्र तो नित्य केन्द्रित हैं। मेरे प्रियतम के नील सुन्दर पदकमलों पर ही। और उन मृदुल चरणों की शोभा में ही मेरा सारा अहंकार चूर्ण–विचूर्ण होकर डूब गया है। अहा ! कैसे अतिशय अरुणिम अरुणिम हैं वे चरणाम्बुज ! अरी सखि ! किसलय कोमल इन चरणों में राग का ऐसा भार है, प्रीति की इतनी गुरुता है इनमें कि इस भार से मेरा अनादि

काल से फूत्कार करता अहंकार भी नमित हो गया, परम विनीत हो गया, दीन हो गया और ये स्वच्छन्द, अपनी सम्पूर्ण कला चातुरी से उस पर आरूढ होकर अब तो सर्वत्र सरसने लगे। रोम-रोम में ये अपने असाधारण प्रेम कौशल से ऐसे रस विलास की अवतारणा कर रहे हैं, जिसे मेरे अतिरिक्त और कौन जान सकता है ? क्योंकि यह सारा रस विलास और पूर्ण रसिक, विलासी प्रियतम की मात्र प्रिया मैं हूँ ये मेरे प्राण प्रियतम हैं।

अरी सखि ! जब मेरा मन, मेरी देह, मेरा चित्त, मेरा शरीर, मेरा इदम्, मेरा अयम्, सब प्रियतम ही प्रियतम या उनका प्रेम ही प्रेम है तो फिर मैं उनको कौनसा पृथक् धन दूँ-मुझे तो उनके समान मूल्यवान कोई सम्पत्ति ही नहीं दिखाई देती है जो मेरे पास है- अतः बस वे मेरे हैं और उनकी हूं- और उनकी वस्तु अपने आपको उनको देकर मैं पल-पल क्षण-क्षण न्यौछावर होती रहती हूं, बस इतना ही जानती हूं।

अरी सखि ! किसी के पास निर्भ्रान्त ज्ञान रूपी धन होता है, किसी के पास उत्कट त्याग धन होता है, किसी के पास वैराग्य रूप धन होता है, तो किसी के पास तपश्चर्या का, किसी के तन-मन के सौन्दर्य का, सद्गुणों का, सुन्दर शील का, किसी के पास बल का, ऐश्वर्य का, अपार जन शक्ति के नेतृत्व का, किसी के पास योगशक्तियों का, परन्तु सखि ! मेरे समस्त ज्ञान के आलोक को तो प्रियतम ने अपनी मुसकान माधुरी से निकली विचित्रतम रसलहरी में डुबा दिया है। मेरा सम्पूर्ण ज्ञान, वैराग्य, त्याग उस रसलहर में सदा-सदा के लिये डूब गया है। अरी सखि ! मेरी नेत्र नासिका, इन्द्रियाँ, मन प्राण सब प्रियतम से कुछ भी पृथक् नहीं रहे, ये समस्त पदार्थ प्रियतम रस स्वरूप के ही पृथक्-पृथक् सन्निवेश मात्र हैं। प्राकृत तन-मन से होने वाला त्याग वैराग्य तप एवं प्राकृत तन-मन का सौन्दर्य, सद्गुण, शील, बल, ऐश्वर्य, और उनसे प्राप्त चाहे जितनी परमोच्चसिद्धियाँ सब जड़ प्राकृत जगत के प्रयोजन को ही प्रतिपादित करने वाली हो सकती हैं—प्रियतम का दर्शन, मिलन तो मात्र प्रेम से ही सम्भव है। और सखि ! सच्ची बात तो यह है कि प्रियतम ही अनन्तानन्त उपासकों रूप रसों द्वारा अपने-अपने भावों से स्वयं ही आधारित होते रहते हैं, वे ही उपासक, उपासना और उपास्य तीनों हैं। वे ही प्रिया प्रियतम और प्रेम तीनों हैं। और सखि चाहे मैं कितनी ही मलिन से मलिन क्यों न होऊँ-

सचमुच जैसे नव जलधर विचार नहीं करता नीच उच्च का, मलिन पवित्र का, कुरूप सुरूप का, असद्‌गुणी सद्‌गुणी का सर्वत्र समान भाव से बरसकर वह ग्रीष्म का ताप शपित कर देता है वैसे ही ये श्रीकृष्ण जलधर भी कहां देखते हैं उज्ज्वल तमोमय भावों की ओर समान भाव से सब पर बरस रही है इनकी लीला सुधा की, प्रेमामृत की मधुर धारा। अरी सखि! जब वे बाल घातिनी पूतना को मातृ गति दे सकते हैं तो मुझ प्रेम घातिनी को प्रिया पद दे दें इसमें आश्चर्य क्या है? प्रेम तो इन नव जलधर श्यामल रूप का निजस्व है। बस, बस सखि! यह नव मेघ श्यामल विग्रह ही मेरा सर्वसार धन है। मैं तो मात्र उसकी ही हूं और वह मात्र मेरा है।

अरी सखि! यह आकाश में क्या चमक रहा है? तुम कहोगी चन्द्र? ठीक सखि, मेरे प्राण कृष्णचन्द्र ही हैं, ये आये हैं पूर्व दिशा को रञ्जित करते हुए पूर्वपथ से मेरा मुख देखने। अरी सखि! यह कुमुद, कल्हार, कुन्द एवं मन्दार पुष्पों से सुरभित बयार नहीं है जो मेरे अञ्चल उड़ा रही है, यह तो प्रियतम अंगगन्ध की वाहन वायु है- प्रियतम अंगगन्ध रूप में इसी को वाहन बनाकर मेरे अञ्चल को अपसारित करते रहते हैं। अरी सखि, प्रियतम के पद्मदलायत नयनों से झरती हुई सुधा धारा से मेरा अणु-अणु सिक्त है।

उनके चरण पंकज की छाया ही सर्व सखुनिधान है। उनका प्रेम ही सर्व श्रृंगार है, वही परमाद्‌भुत् अलंकार है-देखो! उनके प्रेम गीत और प्रेम नृत्य में मेरे शरीर का परमाणु-परमाणु रत है। अरी सखि! मकर कुण्डलों की ज्योति से उद्भासित उनके द्रवीभूत नील कान्त मणि से अमल कपोल, कालिन्दी नीर सी सुघड़ नासिका, नीलोत्पलों से सुन्दर नेत्र प्रचुर परिमाण में नवमकरन्दराशि का पान करती अतिशय मत्त निश्चल अवस्थित भ्रमर श्रेणी सी घन कृष्ण कुञ्चित केशराशि-मेरी सम्पूर्ण वृत्तियों को एक मात्र लुब्ध करने वाला यही धन है, वैभव है सौभाग्य है भाग्य है।

बताओ सखि! नीलमणि को देखते-देखते तो नेत्र थक ही जाते हैं परन्तु प्रियतम के अङ्गों को देखने से न नेत्र थकते हैं, न तृप्त ही होते हैं अरी सखि! रक्त राग मणि सुन्दर अवश्य है परन्तु सुमधुर भी है क्या? प्रियतम के अधर कैसे सुमधुर हैं प्रियतम के करतल, चरणतलों को हृदय में रखने से जो शीतलता मिलती है, वह पद्मरागमणि से सम्भव है क्या? अरी सखि! पक

दाड़िम बीज कभी दंत छटा की मुसकान माधुरी का प्रकाश कर सकते हैं क्या ? चरण नखावली से जो ब्रह्म ज्योति, सच्चिन्मयी आभा निकलती है, वह माणिक्य से प्रसारित हो सकती है क्या ? अरी सखि ! ऐसा रस विलास किसी भी धन से वैभव से सम्भव है क्या ? नील पद्म, बन्धूक पुष्प, जयाकुसुम, मल्लिका, सम्पूर्ण मिलकर भी जिनकी सुकोमलता को स्पर्श भी नहीं कर सकते–प्रियतम के अंग–अंग से कैसी शुचिता बरसाती है, कैसी आभा प्रसारित होती है–सब अनुपमेय है । बताओ ! त्रिभुवन में कहीं इतना बहुमूल्य धन कोई कभी निर्मित भी हुआ है ? अरी ! ऐसे प्रियतम धन से धनी मैं उनकी प्रिया हूं ।

अरी सखि ! मेरे प्रियतम की प्रत्येक स्मृति अमृत रस स्रोत लिये है, और प्रत्येक स्रोत से मेरे मन, इन्द्रिय एवं प्राणों में असीम प्रेमोल्लास का सञ्चार होता रहता है । सखि ! सौभाग्य श्री के नेत्रों में लगे सिद्धाञ्जन को तुम वैभव कहोगी या प्रियतम के कृष्णांगों की सुचिक्कणता को, सखि त्रैलोक्य-लक्ष्मी के भाल पर लगे कस्तूरी तिलक को सुरभित एवं आकर्षक मानोगी कि प्रिततमांगों की गन्ध को, वर्षणोंन्मुख नवजलधर के नवांकुरों को स्निग्ध मानोगी कि प्रियतम मुख की स्निग्धता को, अरी सखि ! तमाल तरुपल्लवों को स्निग्ध मानोगी कि प्रियतम चरण युगल को । अरी सखि ! जिनके चिन्तन मात्र से भाव की तूलिका क्षण मात्र में एक अनन्त अपरिसीम अनिर्वचनीय सुन्दर मूर्त्ति का निर्माण कर देती है और हृत्पट पर ऐसा प्रेममय सौन्दर्य प्रतिचित्रित होता है, कि बाह्य ज्ञान सर्वथा लुप्त-सा हो जाता है उन प्राण-प्रियतम से बढकर त्रिलोकी में मुझे तो कोई धन नहीं दिखाई पड़ता ।

अरी सखि ! आम्र प्रशाखाओं में छिपी कोकिल किसके लिये 'कुहू'-'कुहू' स्वर भर रही है, ये विहंगम किसके लिये कलरव कर रहे हैं, यह भ्रमरों की गुंजार किसके लिये है, सखि प्रियतम के मुख से जो एक अद्भुत आलोक फैला रहता है–उसी से सबका अन्तःकरण आनन्द उद्भासित होकर हर्ष से क्रियाशील होता रहता है । अरी सखि ! इनकी तो बात छोड़ो अनन्तानन्त रागजननी महामाया शैलेन्द्र नन्दिनी भी जो नित्य नवीन अनन्त रसमय राग सृजन करती रहती हैं, वे सब इसीलिये तो रचती हैं कि किसी राग की अवतारणा कहीं प्रियतम की वंशी ध्वनि में हो जाय तो उनका अनन्तकाल का प्रयास ही कृतकृत्यता को पा जाय । अरी सखि ! सब कुछ उनका है, उनके ही लिये

है उनकी वस्तु उनको ही न्यौछावर है।

अरी सखि ! देवताओं ने केवल सागर मन्थन किया और उससे पूर्ण चन्द्र उद्भूत हुआ, परन्तु सखि ! जब हृदय में प्रेम मंथन होता है उससे मेरे प्रियतम रूपी पूर्णातिपूर्ण कृष्णचन्द्र प्रकाशित हो जाते हैं। फिर ये ऐसा प्रकाश फैलाते हैं कि नेत्रों में, कानों में, प्राणों में, मन में, बुद्धि में आत्मा में इनके सिवा किसी का अन्य प्रकाश रह पाता ही नहीं। चिरकालीन अभ्यासवश किसी प्रकार व्यवहार निर्वाह भले ही हो जाय पर एक क्षण के लिये भी उससे भी छोटे से छोटे क्षण के लवांश के लिये भी इनका विस्मरण थोड़े ही हो सकता है। सब समय सर्वत्र ये ही ये छाये रहते हैं। अरि सखि ! सूर्य, वह्नि, वियत्, मरुत्, सब तो इनकी मुसकान से ही उद्भासित होते हैं। सखि ! इनकी मुसकान से ही अनन्त मस्तकों की बुद्धि को प्रतिभात करती है, इसलिये वही अनन्त मस्तक है वही अनन्त नेत्रों में प्रकाश प्रदान करती है अनन्तानन्त चित्र विचित्र रूप उसी से प्रकाशित हैं अतः वह अनन्त नेत्रा हैं-वह सब कर्म और क्रियाशीलता की जननी है अतः असंख्य हस्त एवं अनन्त पाद है वह-वही समस्त ब्रह्माण्डों की भूमि को सब ओर से व्याप्त तथा साथ ही इससे भी ऊपर है। अरी बहिन ! इस भूत भविष्य वर्त्तमान रूप, काल का भी कोई विभाग हो सकता है-सब काल इस मुसकान की महिमा में ही प्रकाशित हो रहा है-इस मुसकान का विभूति विस्तार तो अनन्त-अनन्त विराटों को भी अपने अन्दर समाये है। इसके एक अंश में ही जड़ चेतनमयी समस्त सृष्टि है। परन्तु सखि ! यह ऐश्वर्य भी कोई स्मृति में रखने की वस्तु है ? मेरे तो सभी साधनों की यह सिद्धि प्रियतम की मुसकान नित्य मेरे हृदय को भूरि-भूरि मुकलित करती रहे। इससे अतिरिक्त और कौन साधन सिद्धि मुझे अपेक्षित हैं ? बताओ सखि प्रियतम जब प्रेमातुर होकर मेरे अंचल को पकड़ कर ढीठ बने मुसकाते हैं—उस समय इन प्रियतम में कुछ भी विशेष रहता है क्या ? केवल एक ही विशेष इनके रोम-रोम में अभिव्यक्त रहता है और वह है अनन्त रसमयी प्रेम शोभा। अरी सखि ! जब ये झूम-झूमकर तृभंगी में वंशीवादन करते हैं उस समय किसका अन्तस्तल आनन्द धारा से वियुक्त रहता है ? अरी सखि ! अनन्तानन्त वेग से आनन्द की दो अति उच्च धाराएँ उस समय दो ओर से बहती हैं—मेरे नेत्रों से अथाह अश्रुजल के रूप में और मेरे प्रियतम के श्यामल अंगो में व्यक्त तृभंगी के लालित्य रूप में। अरी सखि ! देखो, प्रियतम नृत्य कर रहे हैं।

निराभरित नील अङ्गों से ज्योति झर रही है। वधूक वर्ण अधरों पर हास्य है-अनन्त प्रेम के भावों से सजे समस्त अंगों में प्रेमोउल्लास भर समस्त अंगों को कैसे माधुर्य से भरकर वे नाच रहे हैं-प्रियतम अधरामृत में स्नानकर वेणु समस्त आनन्दधारा को कैसा उच्छलन दे रही है। देखो-देखो सखि, मेरे नीलसुन्दर प्रियतम के विम्ब विडम्बी अधरों पर व्यक्त अनन्त प्रेम पूर्ण स्मित की रेखा कैसी स्फुट हो गयी है। देखो सलोने चंचल दृग मेरी ओर देखकर कैसी कटाक्ष माला फेंक रहे हैं अरी सखि-वर्जित करो-ये मेरे नेत्र हैं, मेरा हृदय है-कोई कालियफन थोड़े ही है जिस पर ये नृत्य करने की इतनी त्वरा व्यक्त कर रहे हैं। अरे ! इनको किसी मुख से प्रसरित थै-थै, तत, थैया थै, के मधुर रव की अपेक्षा थोड़े ही है। अनन्त आनन्द समुद्र ही तो इनका वाद्य है और आनन्द लहरें ही तालमय थाप हैं। अरी सखि ! मेरे हृदय में गन्धर्व, सिद्ध, सुर, चारण कहाँ प्रवेश करेंगे वहां तो एक मात्र प्रियतम ही का डेरा है। अनेक किन्ही अन्यों के लिये होंगे-मैं तो सर्व एकान्त रूप से मात्र मेरे प्रियतम की हूँ। अतः सखि ! मेरे प्रियतम की मैं ही ताल हूं। मैं ही गति हूं, मैं ही मृदङ्ग, पणव, आनक आदि वाद्य यंत्र हूँ,-बस मेरे प्रियतम मेरे भावों पर ही अपने चरण विन्यास से नृत्य करते हैं। अरी सखि ! देखो मेरे हृदय के सुकोमल भावों के पुष्प अंजलि भर-भर अपने आप प्रियतम के चरण प्रान्त में अविरल बरसने लगे। और हरिचन्दन, कुंकुम, आदि सौरभमय विविध चूर्ण तो मेरे प्रेम के सम्मुख तुच्छ हैं इनमें वैसी गंध कहां जो प्रेम में है अतः प्रेम ही सर्वत्र विकरित है और दिशाएँ कहाँ हैं-मेरा अन्तकरण तो दिशाहीन अनन्त है उसमें किसी त्रिभाग की भेद की कहां प्रतीति है उसी से आमोद ही आमोद बरस रहा है। सखी यही साधना है और यही सिद्धि है। मेरे तो सभी साधनों की एक मात्र मेरे प्रियतम ही सिद्धि हैं-अन्यों के लिये अनेक हो सकते हैं—मेरे तो एकान्त एकमेव वही-वही हैं।

अरी सखि ! इसे किसी प्रशस्ति की आवश्यकता थोड़े ही है, परन्तु है यह सत्य, मेरे प्रत्येक भाव स्पन्दन पर ही प्रियतम नील सुन्दर की सम्पूर्ण रस गति निर्भर है। वे मेरे भावों की स्तब्धता पर अखण्ड, अचल, घन नित्य, शान्त हो जाते हैं और मेरे भावोच्छलन पर ही इनकी सब रसरङ्गशालाएँ निर्मित होती हैं। अरी सखि ! मेरे सर्व रस मात्र नन्दकुल चन्द्र हैं। सखि

कोई कैसे भर सकता है वाणी के क्षुद्र पात्र में उस अपरिसीम आनन्द सिन्धु और उसमें उठती हुई असंख्य उर्मियों को जो मेरे प्रियतम के, उनके नित्य प्रेम विग्रह के चरण प्रक्षालन करती रहतीं है। अरी सखि, परिजात ग्रथित मालाओं में और राशि-राशि स्वर्गीय कुसुमों में वह शोभा कहां है जो शोभा जब मेरे प्रियतम के शोभाशाली कर मेरी ग्रीवा को परिरंभित कर मुझ पर न्यौछावर होकर मुझे समर्पित करते हैं।

अरी सखि! तप आदि के द्वारा ब्रह्मा आदि भी जिन लक्ष्मी की प्रसन्नता प्राप्त कर लेने की अभिलाषा करते हैं, वे श्रीदेवी भी जिनकी चरण रज के लिये तरसती रहती हैं—इस अदम्य लालसा से प्रेरित होकर वे अन्य समस्त कामनाओं का परित्याग कर विविध नियमों का पालन करती हुई दुश्चर तप में बहुत समय तक संलग्न रहीं हैं—ऐसी दुर्लभ वस्तु जिनके श्रीचरणों की रज है—परन्तु यहाँ तो बलिहारी है अयाचित प्रेम दान की—ये चरण मेरे हृदय पर से एक क्षण के अंश के लिये भी हटते नहीं। अब बताओ सखि! कौन सी साधना और उसकी सिद्धि शेष रही है? श्रीदेवी आदि के लिये भी जो दुर्लभ है वह सिद्धि तो मेरे नयनों में अंजन की तरह अंजित है। जीव की सर्वविध सम्पदा अपवर्ग भी जिसके सम्मुख तुच्छातितुच्छ है—वह अनिर्वचनीय सौभाग्योदय तो मेरे हृदय में कंठहार की तरह झूल रहा है? अरी सखि मैं तो देखने भर को राधा हूँ—बाकी मुझ में सब नील सुन्दर प्रियतम का स्वतः सिद्ध, स्वतः प्रमाण प्रेम ही प्रेम है। अब मेरे लिये न कोई साधना है एवं न ही सिद्धि। प्रियतम ही मेरी सम्पूर्ण साधना हैं और वे ही सर्व सिद्धि।

अरी सखि! जिनके भय से अग्नि तपता है, जिनके भय से सूर्य तप रहा है, इन्द्र वायु और काल निर्धारित कार्य करते हुए दौड़ते हैं वे ही कैसे प्रेमाकुल 'राधा'-'राधा' पुकार रहे हैं। सखि, जो क्षर से सर्वथा अतीत हैं, अविनाशी अक्षर से भी उत्तम हैं, सबके आदिकारण है, जिनके अतिरिक्त और कुछ भी नही हैं, जिनमें यह सब मणियों की भाँति गुँथा है—उस समस्त भूतों के सनातन बीज हैं, वे ही मेरे हृदय के सर्वोत्तम आभूषण बने हैं। अरी सखि! जो सबकी उत्पत्ति के कारण, पूर्व में बीते हुए वर्त्तमान में स्थित और भविष्य में होने वाले सर्व के ज्ञाता, परन्तु सर्व से अज्ञात, जो सबकी गति, सबके भर्त्ता सबके स्वामी सबके शुभाशुभ को देने वाले, सबके निवास, सबकी शरण,

सबके सुहृद, सबकी उत्पत्ति, सबके प्रलय, सबकी स्थिति के आधार निधान और अविनाशी बीज हैं, वे ही मेरे नयनों में अंजन की तरह आँजे हैं। अरी सखि ! जो समस्त भूतों की आत्मा, और सबके आदि, मध्य एवं अन्त सबको अपने एक अंश में धारण करके स्थित हैं, जो अजन्मा, अविनाशी, तथा ईश्वर हैं, जो सब यज्ञों के तपों के भोक्ता, सम्पूर्ण लोकों के महान् अविनाशी परब्रह्म, अमृत, नित्य धर्म और अखण्ड एक रस आनन्द हैं, जो परब्रह्म परम धाम, परम पवित्र हैं, जो पुरुषोतम हैं, ससस्त बुद्धियों के एक मात्र साक्षी हैं, समस्त क्रियाओं, गुणों और विकारों से रहित हैं—वे परम ज्योति स्वरूप ही सखि, मेरे सौभाग्य सीमंत हैं। वही मेरी सकल साधना और उसके फल हैं।

सखि ! बन्धन का क्या अर्थ है ? किसी सीमित ओर–छोर वाली वस्तु को उसकी अपेक्षा अधिक विस्तार वाली वस्तु से वेष्टित कर देना, लपेट देना। कोई तन में सीमित, वेष्टित और लपेट दिया जाता है, कोई धन में सीमित, वेष्टित लपेट दिया जाता है, कोई किसी जन, परिवार के मोह में सीमित वेष्टित, और लिपट जाता है, यही तो तन, धन, जन का बन्धन है ? परन्तु सखि किसी के बाहुओं के परिरम्भण में प्रियतम नील सुन्दर भी नित्य बँधे रह सकते है, वह किसी तत्वज्ञानी की बुद्धि में भले ही उतारे न उतरे पर है यह सर्वथा सर्वांश में अखण्ड, ध्रुव, अटल, सत्य। उन असीम को मैं उनके प्रेमवश ही नित्य बाँधे रखती हूं। सखि ! जिनके नामको छींकने, गिरने, फिसलने, के समय विवश होकर एक बार उच्चारण कर लेने मात्र से मनुष्य का अनादि भोग एवं मोक्ष का रोग तत्क्षण नष्ट हो जाताहै—जिनके नाम की इतनी महिमा है वे महामहिम मेरे हृदय में ऐसे बंधे हैं कि पल भर के लिये भी निकल नहीं सकते। सखि ! साथ ही साथ मुझे भी उन्होंने अपने में ऐसा लिपटाया है, कि उनकी बाहुओं के परिरंभण घेरे से बाहर मैं भी कहाँ निकल सकती हूं। अनाद्यनन्त यह हम दोनों का परस्पर निर्बन्ध प्रेम बन्धन कैसा प्यारा, कितना सुखकर, अचिन्त्य, अनिर्वचनीय है ? सखि ! जैसे काष्ठ पुत्तलिका अपने नचानेवाले से बँधी रहती है, वैसे मैं नित्य अपने प्रियतम की प्रेम रूचि से बन्धकर सर्व भुक्ति मुक्ति के रोगों से छूट गई हूं और सर्व तन, जन, धन की परिच्छन्नता से सदा–सदा के लिये असीम बन गई हूं।

अरी सखि ! वे मेरे नाथ हैं, रमण हैं, जीवन के आधार हैं, प्राणनाथ

हैं, प्राणवल्लभ हैं, वे मेरे परमानन्द सुधा के नित्य अनन्त, अगाध, अपार समुद्र हैं, वे मुझ गुणों की दरिद्र दोषों की आगार, नगण्य से मिलते हैं, मुझे हृदय से लगाते हैं, स्नेह देते हैं, नित्य निरन्तर मुझ पर प्रेम सुधा-रस की वर्षा करते हैं अपना पवित्रतम रस निरन्तर मुझे देते रहते हैं वे मेरे कण्ठहार हैं, प्रियतम हैं, परमानन्द संदोह हैं। मेरे कोटि-कोटि प्राण उन पर सदा न्यौछावर हैं। वे मेरे प्राणों की प्रतिभा हैं, मेरे आह्लाद है, मेरी तृष्णा, मेरे अनुराग हैं। वे सर्व आह्लाद सुधा समुद्र हैं। परमानिर्वचनीय रसमतता का नित्य आविर्भाव उनमें हैं सुख रस की अनन्तानन्त सन्निधि हैं। वे अशेष, अचिन्त्य, अतुल, सुन्दर, मधुर, ललित, विदग्ध, परम आकर्षक गुण समूह हैं। वे प्रेम मधुर, लीला मधुर, रूप मधुर, गुण मधुर, रस मधुर, नाम मधुर, सर्वांग मधुर हैं। वे पूर्णतम मधुर हैं। सखि, वे सब प्रकार से मेरे हैं, एक मात्र मेरे हैं। वे मेरे धन हैं, सर्व अमूल्य धन हैं, मेरी वस्तु हैं, एकान्ततः मेरे हैं, मेरी सिद्धि हैं और मेरे तन, धन, जन, भुक्ति हैं, मुक्ति हैं। वे मेरी सब असीम सीमा हैं।

अरी सखि ! प्रियतम मेरी उपलब्धि हैं, वे मेरे ग्राह्य हैं, मुझ में उनकी अभिन्न नित्य पूर्ण, निर्बाध, स्वतः सिद्ध विद्यमानता है और उनमें मेरी पूर्ण अखण्ड निर्बाध विद्यमानता है। अरी सखि ! प्रकाश और प्रलय, आविर्भाव और तिरोभाव सब अवस्थाओं में मेरे से वे परिरम्भित हैं और मैं उनमें परिरम्भित हूं:— मेरे द्वारा आलिंगित हुए ही उनसे, उनके मूल स्रोत से रस और आनन्द की नित्य धारा प्रवाहित है। मेरे से समन्वित ही प्रियतम सर्व रस विलास विलसित रसराज हैं-यही नित्य अन्वेषणीय परात्पर पूर्ण परिपूर्ण तत्व है। अरी सखि, जहाँ रमण और रमणी की भेद बुद्धि की कल्पना ही नहीं रह जाती वही मेरी और उनकी प्रेम विलास की असीम सीमा है निरवधि अवधि है।

अरी सखि ! मेरे व उन एक मात्र प्रियतम में जिससे सौख्य की किंचित् सी लहर भी उदय हो जाय, वही मेरा धर्म है, वही कर्म है वही श्रेष्ठ कर्त्तव्य है। जो मेरे प्रियतम मेरे मुख से सुनना चाहें और सुनकर प्रसन्न हों, वही ऋचा है, मन्त्र है, स्तुति है, जप है। अरी सखि ! मुझे चाहे सदा के लिये बन्धन मिले, चाहे अविलम्ब मोक्ष की प्राप्ति हो, चाहे घोर तमोमय अज्ञान में मैं डूबी रहूं, या अपरोक्षज्ञान में मेरी मन बुद्धि आलोकित रहे चाहे अनन्त-

कालीन स्वर्ग सुख हो, चाहे नरक यन्त्रणा हो, चाहे घोर अशान्ति के बादल छाये हों, या सब ओर नित्य शान्ति विराजित हो, अतिशय अनन्त दारिद्र्य हो, या अत्यन्त भोग विलास हो, कर्ममय जीवन हो या कर्म सन्यास हो, मेरा तन से सम्बन्ध है, न मन से, न बुद्धि से. सुख से, दुख से, आनन्द से, धन से, वैभव से, मुझे किसी प्राणी में परिस्थित में या पदार्थ में न कहीं तनिक राग है-और न वैराग्य ही है। एक मात्र मेरे प्रियतम ही मेरे जीवन हैं- वे ही सब भोग हैं मोक्ष हैं, अन्य भोग मोक्ष के सब रोगों से मेरा सदा के लिये छुटकारा हो गया है। वे एक मात्र प्रियतम ही मेरे सब सुहाग भाग हैं।

अरी सखि! वे प्राणनाथ, मेरे प्राणों में बसे हैं, वे मेरे जीवन के जीवन हैं। वे दूर कहां-अत्यन्त समीप हैं वस्तुतः वे मुझ से पल भर भी कभी पृथक् नहीं रहते। वे निरन्तर आठों पहर मेरे हृदय में बसे रहते हैं। कभी भी इधर उधर नहीं जाते। अरी सखि! फिर मेरे हृदय में यदि तनिक भी सन्ताप की रेखा भी आती है तो मेरे प्राण प्रियतम का सुकोमल शरीर पर ही तो उसकी छाया पड़ती है, अतः मैं दुःख को अपने पास कैसे फटकने दूँगी मेरे हृदय में सदैव मुदिता तथा शीतलता भरी रहती है, तभी न मैं अपने प्रियतम को सुखी रख सकती हूं। और उनके सुख से फिर मेरे उर में इतना सुख उमड़ता है कि वह वहाँ समाता नहीं। अरी सखि! मेरे हृदय में नित्य सुख सागर की लहरें उछलती रहती हैं।

अरी सखि! न मुझे किसी ऐश्वर्य का पता है, न ही धर्माधर्म का ही मेरे लिये कोई महत्व है। मुझे अपने भाव उत्पादन उद्दीपन के लिये न किसी रूप गुणादि की भी आवश्यकता है, एवं न ही उनकी कभी कोई स्मृति ही मुझे आती है। अरी सखि! मेरे हृदय में कभी स्वसुखानुसन्धान ही नहीं होता। जो रमण-रमणी बोध कान्ताभाव का जीवन स्वरूप है मेरे चित्त से तो उसका भी सर्वथा-सर्वथा आत्यन्तिक अभाव है। अरी सखि- मेरे हृदय में तो मेरे प्रियतम नील सुन्दर का ही बस महाप्लावन है। मैं तो नित्य निरन्तर उन्हीं में पूर्णतया निमग्न, सर्वथा अपने आपको खोई हुई हूं। मेरे प्रियतम की गति-विधि से उनकी प्रत्येक चेष्टा से प्रत्येक क्रिया से मेरे सुख की अभिव्यक्ति होती रहती है। अरी सखि, मेरे प्रियतम परमानन्द रस के एक मात्र मूर्त्त विग्रह हैं- वे अनन्त रसाकारों में प्रकट हो होकर अत्यन्त चमत्कार पूर्ण प्रेम प्रदान करते

रहते हैं– अनादि अनन्त काल से प्रियतम की यह मेरे प्रति अनुकूलता मुझे सुख दान की पराकाष्ठा उत्तरोतर वर्धमान रहती है। अरी सखि ! प्रियतम का मधुरतम लीलाविलास कोई कामोपभोग थोड़े ही है वह तो मेरे प्रति उनकी सर्व सुखमयी प्रीति का अनुभान मात्र है। अरी सखि ! प्रियतम मेरे आत्मा हैं, मेरे सर्वाधार हैं– उनका अनुराग ही मेरा जीवन है।

अरी सखि ! कोई अपनी जाने, मेरे लिये तो यदि ब्रह्मानन्द को परार्ध गुना कर दिया जाय तब भी वह मेरे प्रियतम प्रेम सुधा समुद्र की तुलना में एक परमाणु के तुल्य भी प्रतीत नहीं होता। अरी सखि ! जब वे सम्मुख होते हैं तो उनके सुख में निमग्न मैं ब्रह्मानन्द को गौ के खुर से बने गड्ढे के समान भी नहीं समझती।

अरी सखि ! अपने बिम्बविडम्बी अधरों पर कभी तो वे वंशी को धारण कर उससे अनेक रसमय अत्यन्त स्फुट स्वरों का सृजन करते हैं और कभी मधुर राग की एक ऊँची अतिशय मधुरतान छेड़ देते हैं। अरी सखि वे सदा उत्सवों में ही निमग्न रहते हैं। परमानन्द ही परमानन्द तो है उनके पास, अरी सखि ! सम्पूर्ण वन ही उनकी पवित्र कीर्त्ति का गान कर रहा है। प्रत्येक कण्ठ से ही उनकी प्रशंसा के गीत झर रहे हैं, सभी अपनी–अपनी प्रतिभा से रचित नन्दनन्दन के सुयश का ही वर्णन कर रहे हैं। अरी सखि ! उत्सव सुख से विभोर, अपनी नवीन–नवीन प्रेमिल चेष्टाओं से सब का उपलालन करने वाले प्रियतम के प्रति किसके नेत्र केन्द्रित नहीं होंगे–अरी सखि ! मेरे दृगों में तो वह श्याम ज्योति पूरित हो गयी है जिसने सब तन,धन, जन रूप परिस्थिति, पदार्थ एवं प्राणी का मोह सदा–सदा के लिये समाप्त कर दिया है। अरी सखि, मेरी आगे की दशा का इतना ही चित्रण समझलो कि मेरे सम्पूर्ण आनन्दवर्धन प्रियतम ही प्रियतम मेरे हृदय में हैं अन्य कहीं, कभी कुछ नहीं।

सहसा सारिका बोल उठी–देखो शुक ! बोलो बताओ, समस्त व्रज का ही क्या जगत् के समस्त प्राणी सब के प्रेम की धारा तो श्रीकृष्णचन्द्र की ओर ही बहती है– परन्तु इन प्रियतम के प्रेम का प्रवाह प्रिया राधा की ओर क्यों बहता है ? क्या इसमें सौन्दर्य निर्बन्धन हेतु है, या दैहिक सम्बन्ध कारण है ? क्या प्रिया का रमणीभाव रमण प्रियतम के प्रेम प्रवाह को उनकी ओर मोड़ने में हेतु है ? जहाँ आत्मज्ञान का आलोक नहीं वहां उस अन्तःकरण में तो

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

अज्ञात आत्मा के सुख के उद्देश्य से स्त्री, पुत्र, प्रियतम, प्रेयसी आदि के प्रति प्यार का प्रवाह सम्भव है ? परन्तु अखिलात्मा विशुद्ध सच्चिदानन्द विग्रह प्रियतम में अपने से अन्य के प्रति ऐसा आकर्षण कैसे सम्भव है ?

हे शुक ! प्रियतम का सौन्दर्य क्या है ? मुझे तो वह प्रिया की ओर देखने मात्र से प्रेमावेश का निखरा हुआ सौन्दर्य ही सदा समझ में आया है।

प्रेम समृद्धि एवं तदनुरूप उत्कण्ठा का उज्ज्वल निदर्शन प्रिया में प्रियतम के प्रति हो, यह तो उचित है। कदम्ब की छाया में प्रियतम नील सुन्दर, कदम्ब की ही डाल पर अपनी बाम भुजा टेके, अधरों पर वंशी रखे खड़े हों, उस समय प्रिया में, गोपी जनों में, गोपाङ्गनाओं में, प्राणि मात्र में, स्नेह, प्राणों की अनन्त आर्त्ति, अपार उकण्ठा का उदय हो, यह तो सम्भव है क्योंकि चिन्मय लीला-रससुधा का दान प्रियतम द्वारा सबको हो रहा है। परन्तु प्रिया द्वारा गायी इन पंक्तियों में प्रिया के अनन्तानन्त मौग्ध्य के पीछे लहराता निरपेक्ष प्रेम समृद्धि का कैसा गम्भीर भाव है, उसे आँखों ओझल मत होने देना, वही तो मात्र इस पद का विशेष है ?

हे शुकराज ! त्रिगुणमय संसार में ही सुख के आधार स्थिर नहीं, उनमें परिवर्त्तन होना अनिवार्य है, स्नेह के पात्र बदलेंगे ही। आज सुख का आधार कुछ और है, कल कुछ और ही रहेगा, आज जिसके प्रति प्राणों का स्नेह समर्पित करके भी तृप्ति नहीं होती, कल उसका स्थान कोई अन्य ग्रहण करेगा, परन्तु जिसने एक बार श्रीकृष्णचन्द्र में सुख का अनुभव किया, अपना सारा स्नेह प्रियतम नीलसुन्दर के चारु चरणों में अर्पित कर दिया, उसके लिये अनन्तकाल तक सुख का अन्य आधार सम्भव ही नहीं, उसका स्नेहास्पद अन्य बन सकता ही नहीं। अतः प्रिया के लिये प्रियतम ही प्रियतम सर्व सुख के आधार हैं यह तो ठीक है, परन्तु यहाँ तो वैषम्य संघटित हो रहा है ? यह प्रेम वैषम्य कितना विचित्र है ? इस पर विचार करो। हे शुकराज ! "वासुदेवः सर्वमिति" इस भाव में एवं "जो धन देना तुम्हें चाहती तुम ही हो वह मेरा धन" इस भाव में आकाश पाताल का अन्तर है ? हे शुकराज ! परिपक्व ज्ञान को प्राप्त हुआ ज्ञानी प्रत्यगात्मारूप वासुदेव को 'सब कुछ वासुदेव ही है" इस प्रकार अपरोक्ष रूप से जब प्राप्त होता है उस समय उसकी निर्विकल्प रूप से निर्दृश्य दृक्बोध स्वरूप आनन्द में ही स्थिति होती है और उसमें समग्र दृश्य

सत्ता का अनन्त जन्मों के संस्कारों सहित आत्यन्तिक अभाव हो जाता है, परन्तु प्रिया की स्थिति सर्वथा दूसरी है। प्रिया देख रही हैं, खुली आँखों से देख रही हैं प्रियतम, उनके प्राण प्रियतम ही परिदृश्यमान आकाश बनकर उनका अवकाश बने हैं, यह अवकाश, न ज्ञानाकाश है, न अज्ञानाकाश है, न ब्रह्म है, न माया है, यह आकाश, विशुद्ध सत्व है, न विशुद्ध रज है, न विशुद्ध तम है, यह है विशुद्ध प्रेम, विशुद्ध श्रीकृष्ण, मात्र श्रीकृष्ण-निर्विशेष श्रीकृष्ण-मात्र प्रेम विशेष श्रीकृष्ण प्रिया को आकाश दिख रहा है, सर्व प्रेम बरसाता दिखाई पड़ रहा है, परन्तु साथ ही साथ स्पष्ट दिख रहा है—उनके प्रियतम ही इस अनन्त परिदृश्यमान अवकाश के रूप में, उन्हें प्रेम देने, जीवन देने, आश्रय देने, आधार बने आकाश रूप में, वायु रूप में, तेजरूप में, जल रूप में, पृथ्वीरूप में, और भी असंख्य रूपों में, सर्व रूपों में, आत्म प्रकाश कर रहे हैं।

हे शुकराज ! यह सत्य है कि प्रियतम श्रीकृष्ण ही ब्रह्मा से आरम्भ कर स्तम्बपर्यन्त– वृहत्तम में, कीटाणुओं में अभिन्न निमित्तोपादान कारण रूप से परिव्याप्त हैं वे ही सर्वाधिष्ठान, सर्वान्तर्यामी हैं—परन्तु प्रिया को इन सर्वाधिष्ठान, सर्वान्तर्यामी और अभिन्न निमित्तोपादान कारण रूप से परिव्याप्त तत्व का दर्शन न तो हो रहा है एवं न ही इतने ज्ञान का उनकी रस बुद्धि में इस समय समावेश है। शुकराज ! उपनिषद् जिस स्थिति का वर्णन करते हैं कि ब्रह्म ही आगे है, वही पीछे है, वही ऊपर है, नीचे है उस विगत–माया की स्थिति भी प्रिया की नहीं है। प्रिया को जो दर्शन प्रियतम दे रहे हैं—उसकी स्पष्ट अनुभूति तो मात्र प्रिया को ही है अन्य कोई उसका अनुमान लगावे उसकी वह चेष्टा भी गगन मण्डल के परिमाण को मापने के लिये सातबित्ते मान की रस्सी फेंकने के प्रयास के समान उपहासास्पद ही है—परन्तु फिर भी यही कहा जा सकता है प्रियतम जो जैसे भी हैं—वे निरावरित रूप से सर्व परिच्छेद मुक्त होकर विशुद्ध रूप में उनके सम्मुख हैं। हे शुकराज ! नीहार–जन्य अन्धकार की घनता, वृक्ष, लता, वल्लरियों को तथा पशु, पक्षी, मानव, कीट, पतङ्ग, भृङ्ग, को आवृत कर सकती है पर वह प्रगाढ़ तमसाच्छन्न रजनी का आवरण नहीं बन सकती–इसी प्रकार प्रियतम के जितने भी परिच्छेद हों–चाहे वह ज्ञान हो, अज्ञान हो, ब्रह्म हो, माया हो, सत्ता हो, असत्ता हो, सत्य हो, मिथ्या हो, कोई भी वाणी हो, क्रिया हो, भाव हो, अभाव हो, काल हो, देश हो, विषय हो, प्रमाण हो, प्रकाश हो परोक्षता हो, वाणी हो, प्रतिपादन हो,

शंका हो, जिज्ञासा हो–भ्रांति हो, हेतु हो, फल हो, प्रिया के नेत्रों को आवरित नहीं कर सकते। उनके नेत्रों के सम्मुख तो प्रियतम को सर्व परिच्छेदों से मुक्त विशुद्ध प्रियतम रूप में आना ही पड़ता है। हे शुकराज! प्रबलतर अँधेर का संयोग होते ही जैसे नीहार जन्यतम अपनी आवरण शक्ति को उसी में विलीन कर देने के लिये बाध्य हो जाता है, स्वयं उससे आवृत हो जाता है, जैसे रजनी में नक्षत्राधिपति चन्द्र निर्मल ज्योत्स्ना से सर्व ओर प्रकाश फैलाता है, उसकी रश्मियां सबको आलोकित कर देती हैं परन्तु जैसे ही प्राची दिशि में दिनकर की रश्मियाँ उदय होती हैं, सम्पूर्ण चन्द्र–ज्योत्स्ना मन्दतर मन्दतम होती हुई अपने अस्तित्व को ही जैसे रवि के प्रखर प्रकाश में विलीन कर देने को बाध्य हो जाती है स्वयं उससे आवृत हो जाती है ठीक इसी प्रकार प्रियतम के सब देश कालादि परिच्छेद, सर्वविषय परिच्छेद प्रिया के सम्मुख सत्ता शून्य है वे प्रिया के प्रेम में अपने को पूर्णतया विलीन करने को बाध्य हैं और उनका अस्तित्व ही प्रिया के प्रखर प्रेम के सम्मुख नहीं रहता। प्रिया को प्रियतम के दर्शन हो रहे हैं और साथ ही साथ यह भी दिखाई पड़ रहा है, समस्त भूमि भवन, जल स्थल, तेज, वायु एवं आकाश उनके अन्तर्गत समस्त विषय प्रपंच, परिदृश्यमान सम्पूर्ण धाम नव नील नीरद वर्ण, पीतपट्टाम्बर परिशोभित, मयूरमुकुटधारी, मणिकुण्डल मुक्ताहार वनमाला परिशोभित, द्विभुज वनमाली ही हैं। चन्द्र ज्योत्स्ना सी प्रेम भरी मंद मुसकान अधरों पर नृत्य कर रही है। अरुणिम नेत्र प्रान्त की चितवन से प्रेम मधु झर रहा है। अरुण नयन प्रिया के अन्तस्तल में क्षण–क्षण में नवनव प्रेम मनोरथों, सुखदान मनोरथों का सृजन कर रहे हैं और उज्ज्वलहास्य अधरों पर नाचनाचकर प्रिया के सुख को आनन्द को मुद्रा को उत्ताल तरंगो में हिल्लोलित कर रहा है। और प्रिया देख रही हैं–अनन्त ब्रह्माण्डों के असख्य ब्रह्मा ही नहीं–उनसे लेकर तृणपर्यन्त समस्त सृष्टि सत्ता में–उनके प्रियतम ही साक्षात् उपस्थित हैं। अणिमादि सिद्धियाँ प्रियतम, माया, विद्या, आदि सब शक्तियां प्रियतम, महत्तत्व आदि चौबीसों तत्वों के अधिष्ठातृ देवता–प्रियतम ही प्रियतम–सब नव नीरद वर्ण द्विभुज ललित किशोर प्रियतम ही प्रियतम–वेणुवादन रत–रास नृत्यरत–उनके अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है। प्रकृति क्षोभ में हेतु काल, प्रकृति परिणाम में हेतु स्वभाव, वासनाओं के उद्बोधक संस्कार, काम कर्म, गुण, इन सबके अधिष्ठातृ देवता–सब मात्र नव जलधर श्यामल गुञ्जावतंस मयूरपिच्छ की

छटा से उल्लसित सौन्दर्य सुधा सिन्धु ही सौन्दर्य सुधा सिन्धु अन्य कुछ नहीं।

हे शुकराज ! प्रिया के संम्मुख अपने प्रियतम का अनन्त अपरिसीम माधुर्य सिन्धु उद्वेलित हो रहा है। हे शुकराज ! प्रियतम इस व्रज में सबको अनर्गल प्रेम रस का दान करते हैं—असंख्य गोप, गोपी, एवं गौ, गोवत्स, सखी, सखा परिसेवित वे सबको वंशी के छिद्रों से एवं अन्य लीलाओं के रूप में स्वरूपानन्द का वितरण करते हैं, इन सबके साथ लीला सिन्धु में निर्बाध संतरण करते हुए रूप माधुरी की उर्मियों से सबके हृदय सम्प्लावित भी करते हैं—वंशी से दिव्यातिदिव्य रस बरसाकर स्थावर जंगम को विमोहित करने की क्रिया भी होती ही रहती है—और क्या कहूं अपनी माता यशोदा एवं महात्मानन्द को अपने मुख में सम्पूर्ण सृष्टि का दर्शन भी वे करा चुके हैं—परन्तु प्रिया के सम्मुख जो यह उनका नित्य सर्व परिच्छेद निरावदित रहित दर्शन है यह अनिर्वचनीय है, परम विलक्षण है—सर्वथा—सर्वथा एकान्तिक ही है। प्रिया तो स्पष्ट देख रही है—काल नवनील नीरदवर्ण है वह पीतपट धारी है। वायु सजल श्यामघन वर्णलीन हो गयी है। और तेज अपनी सतत चंचलता त्याग कर कृष्ण जलधर के सम्पर्क में आकर स्थिर सौदामिनी सदृश हो उनका पीताम्बर ही बन गया है। सम्पूर्ण जल तो भानुनंदिनी के प्रेम ताप से नव नीरद वर्ण जल धराकार हो ही गया है धरा भी प्रियतम में अरुणिम चरणों में अपने को विलीन कर चुकी है—सदा—सदा के लिये। प्रिया के लिये प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र के अतिरिक्त कोई सत्ता है ही नहीं स्थावर—जंगम उन्हें श्रीकृष्ण स्वरूप दिखाई नहीं पड़ता है, उन पर श्रीकृष्ण दर्शन नामक वृत्ति आरोपित नहीं की जा रही है, श्रीकृष्ण स्थावर जंगम, अखिल जगत के रूप में ही नहीं, इससे परे भी ब्रह्म, परमात्मा, नारायणादि के रूप सब अन्य परिच्छेदों को उतारकर निरावरित पूर्ण निरावरित रूप में उनके सम्मुख आविर्भूत हैं तो प्रिया पूर्ण मुग्ध हैं अपने प्रियतम के प्रेम में एवं तन्मय हो रही हैं अपने लीला विहारी की प्रेम लीला की पराकाष्ठा पर।

हे शुकराज ! विशुद्ध प्रेम का यह स्वभाव है कि प्रेमी अपने प्रेमास्पद को सुख पहुँचाने के लिये अपने सुख का सहर्ष त्याग कर देता है। माधुर्य रस घनमूर्ति प्रियतम को अपनी प्रिया के दर्शन से, स्पर्श से, कितना सुख मिलता है—कैसा सुख मिलता है—यह प्राकृत मन की कल्पना में समा ही नहीं सकता।

अगणित योगीन्द्र मुनीन्द्र सहस्र-सहस्र वर्षों की साधना के उपरान्त केवल ध्यान में अपने जैव स्वरूपानन्द का स्पर्श सुख पाते हैं और पाकर सदा के लिये आनन्दमत्त हो जाते हैं–अब बताओ प्रियतम श्रीकृष्ण का भी तो स्वरूपानन्द है। प्रियतम में आत्मा है नहीं क्या ? प्रियतम श्रीकृष्ण की भी कोई मूल प्रकृति है ही, उनमें पञ्चप्राण जब स्पष्ट क्रियाशील हैं तो उनके पञ्चप्राण स्वरूपिणी भी कोई जीवनी शक्ति होती ही होगी। बताओ शुक ! अपने वक्षस्थल में धारण कर अपना पद्मसौरभवाला स्तन्य पिला-पिला कर मैया ने जिस नीलमणि के प्राण परिपुष्ट किये हैं–वे प्रियतम के प्राण भी किन्हीं परावरा, सारभूता, परमाद्या, सनातनी परमानन्दरूपा, परमाल्हादस्वरूपा श्रीकृष्णात्म स्वरूपिणी सुरसिका रासेश्वरी के परिरंभण में बँधने को लालायित होंगे ही। हे शुकराज ! फिर प्रियतम के लिये जिसमें प्रिया की तृप्ति होती है, वही तो सबसे बड़ा कर्त्तव्य है ? प्रियतम तो अपनी प्रिया के स्मित-समन्वित मुखको, उनके कपोलों आई चिकुर राशि की शोभा को निहारने में निरन्तर तन्मय हैं इस तन्मयता में वे सब अपना स्वरूप भूल जाते हैं और जहाँ जहाँ प्रिया की बुद्धि वृत्ति जाती है, वह सब धन, सब वस्तु, सब प्रीत्यास्पदों के रूप में स्वयं खड़े हो जाते हैं। और प्रिया इन प्रीत्यास्पदों के प्रति कोई स्वसुख भोगार्थ थोड़े ही निहारती है–वे तो अन्वेषण कर रही हैं–मेरे पास ऐसा कौनसा धन संभव है, जिसे देकर मैं मेरे प्रियतम का अधिक से अधिक सुख वर्द्धन कर सकूँ। वात्सल्य भाव में जननी यशोदा को भी ऐसा लगता ही है–मेरे स्तन्य की अपेक्षा पद्मगन्धा गौओं का परम सुमिष्ट दूध अत्यधिक सुस्वादु है, इस दूध में अधिक जीवनीशक्ति है–इस गो दुग्ध के नवनीत से मेरे नीलमणि के अंग अधिक सुपुष्ट होंगे–मेरा नीलमणि उसे पीकर अधिक तृप्त होगा–मैया को जिस प्रकार अपने स्तन पिलाना अधिक सुखकर न होकर नीलमणि की प्राणशक्ति अधिक पुष्टि और बल ग्रहण करे, यह अभिप्रेत है–ठीक इसी प्रकार प्रिया भी सोच सकती है कि कौन सा ऐसा 'धन' प्राणी, पदार्थ, परिस्थिति सम्भव है जिसके संयोग से, सर्वोत्तम संघटन से प्रियतम को अधिक से अधिक उल्लसित किया जा सके–उन्हें सुख समुद्र में निमग्न किया जा सके। इधर प्रिया में अपने प्रियतम को सर्वोत्तम सुखदान की मनोवृत्तिवश ऐसी वस्तु ऐसे धन के अन्वेषण का कार्य प्रारम्भ होता है जो प्रियतम को सुखी कर सके और उधर प्रियतम अपनी प्रिया को सुख देने के लिये प्रत्येक वस्तु को सर्वोत्तम

बनाने में तुल गये हैं ताकि प्रत्येक वस्तु ही उन्हें प्रियतम सुखदानार्थ समर्पण योग्य प्रतीत हो। प्रियतम अपने से बढकर श्रेष्ठत्व कहाँ से लावें अतः अपने आपको ही सब वस्तु रूपों में सब धन रूपों में प्रिया के सम्मुख रख देते हैं। इसीलिये सब वस्तुएँ नव नीरदवर्ण की बन गई हैं। प्रिया की जहाँ दृष्टि जाती है, जिस पर दृष्टि जाती है सर्वत्र किशोरवय के प्रियतम नील सुन्दर मुसकाते हुए प्रत्यक्ष खड़े हैं। सबके शरीरों से सौन्दर्य का स्रोत झर रहा है। विश्व-सृष्टि का समस्त सौन्दर्य मानो एकत्र हो गया है-ऐसा निराला सौन्दर्य प्रत्येक वस्तु से प्रवाहित हो रहा है- सर्वत्र मोहनरूप से सुसज्जित होकर प्रियतम ही प्रियतम प्रिया को आलिंगित करने, अपने नयनों में अपार प्रेम की शुचि स्मिति लिये खड़े हैं। प्रियारूप विद्युल्लता के चरण चूमने मानो सर्व ओर से नवनीरद उमड़ पड़े हों, किंवा अपनी चन्द्रिका को सुख देने चन्द्र ही चन्द्र सर्वत्र धरा पर उतर आये हों-प्रिया देख रही हैं जिधर भी वे दृष्टि मोड़ती हैं पलक उठाती हैं वह वस्तु चाहे भूमि हो, चाहे भवन, चाहे जल हो, चाहे तेज, चाहे नभ हो, चाहे वायु, चाहे प्रदणी हो किंवा पदार्थ. जड़ हो किंवा चेतन, पशु हो, पक्षी हो, कीट हो, सरीसृप हो, हार हो, भूषण हो. छत हो, खंभ हो, देव हो, देवता हो, ईश्वर हो, ऋषि हो, मुनि हो, पुष्प हो, सरोवर हो, नदी हो, नद हो, सर्वत्र लहराती केशराशि में मयूर पिच्छ गुम्फित किये- सुन्दर पीत वस्त्र से कटि प्रदेश आच्छादित किये, कर्ण कुण्डलों की आभा से कपोलों को दमकाते, होठों पर रम्य-रम्य मुसकान लिये, स्मित समन्वित वक्र कटाक्ष विक्षेप से मनहरण करते हुए-एक हाथ में वेणु लिये. तथा एक में कमल पुष्प घुमाते हुए-ललित तृभंग, प्रियतम खड़े हैं। जैसे कहीं भी आश्रय न मिलने पर प्रिया की नेत्रता को ही अपना सम्पूर्ण आश्रयत्व देने का निश्चय कर प्रिथतम प्रिया की नेत्रता में समा गये हों-प्रिया के श्रवणेन्द्रिय में श्रवण रूप बनकर बैठ गये हों-प्रिया के अधरों पर उनकी सब रसमयता लेकर समावेश कर गये हों-प्रिया मुग्ध हैं अपने प्रियतम की प्रेम शोभा की पराकाष्ठा पर।

अब तो प्रिया में प्रियतम के प्रति ममता की इतनी तेज बाढ़ आती है की उन्हें सर्वत्र प्रियतम अपने से पूर्ण अभिन्न ही दिखाई पड़ने लगते हैं। प्रिया के लिये प्राण. मन, बुद्धि शरीर तथा खान-पान, वस्त्राभूषण, सभी में प्रियतम से कुछ भी पृथक्ता नहीं रह जाती। प्रिया देख रही हैं उनके स्वयं के अंग के

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सौरभ पान के लिये परमातुर मदान्ध से प्रियतम भ्रमर बने 'गुन' 'गुन' गुञ्जन करते मँडरा रहे हैं–परन्तु प्रिया में अपने प्रियतम के प्रति इतनी ममता उमड़ रही है कि उन्हें लग रहा है इन प्रियतम का रोम–रोम तो मेरा है और यह 'मेरापन' प्रगाढ़ होता हुआ 'मैं' पन में समाहित हो जाता है। बस प्रिया भ्रमरावेश में उस 'गुन' 'गुन' गुञ्जन को स्वयं ही अपने मुख से अनुकरण करने लग जाती हैं। अब प्रिया के मुख से निकले इस मधुरतम गुञ्जन को सुनकर उसकी मधुरता से भ्रमर भी हतप्रभ हो जाते हैं। और प्रियतम कहीं अन्यत्र थोड़े ही हैं वे ही तो भ्रमर हैं। प्रियतम ही हतप्रभ हो रहे हैं भ्रमरों का तो अस्तित्व है ही नहीं, बस प्रिया के प्रियतम ही प्रिया की इस परम मधुर गुन–गुन शब्दावली पर अपनी सब वंशीवादन की माधुरी को भूल कर पाताल से प्रिया पर न्यौछावर हो जाते हैं।

अब क्या है ? अब तो प्रिया को लगता है एक क्षण के लिये तो कि प्रियतम ही अपनी श्यामकान्ति से इस उत्कृष्ट यमुना में भरे हैं इसीसे तो यह श्याम–प्रभा है। परन्तु दूसरे ही क्षण प्रिया को लगता है यह श्यामकान्ति और श्याम–प्रभा तो मेरी ही है प्रियतम जब मेरे हैं तो उनकी प्रभा मेरी कैसे नहीं हैं ? बस प्रिया को लग रहा है–मैं ही यमुना बन कर अपने प्रियतम के चरण पखारने बह रही हूँ। प्रिया को स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि मैं ही यमुना हूँ मेरा प्रेम ही प्रियतम के रंग में रंगा यह नीला जल है और उमड़–उमड़ कर प्रियतम के अंग–अंग को सुख दूँ। बस यही मेरे जीवन का एक मात्र सार कर्त्तव्य है।

अब तो आनन्द विभोर प्रिया के सम्मुख जो वस्तु आ जाय, जिस जिस पदार्थ पर उनकी दृष्टि पड़ जाय–प्रिया को दिखाई पड़ता है एक क्षण के लिये कि उनके प्रियतम श्रीकृष्ण ही इस वस्तु के रूप में खड़े हैं और दूसरे ही क्षण वे स्वयं उस वस्तु भाव से भावित हुई अपने आप को ही प्रियतम के चरणों में प्रस्तुत करने तत्पर हो जाती हैं। कैसा रस प्रवाह उमड़ रहा है ? कभी प्रिया कोकिल बनी कूजन की मधुर पंचम तान प्रियतम को सुना रही हैं, कभी अपने प्रियतम के कर्णपुटों में मधुर आलाप करते हुए शुक की, सारिका की, मनोहारिणी ध्वनि भरने लगती हैं। और प्रिया जब अपने सरस स्वरों में कीरका अनुकरण कर कोकिल का अनुकरण कर प्रियतम पर न्यौछावर होती

हैं उस समय सब शुक, पिक, मौन धारण कर लेते हैं। सबको लज्जा सी लगने लगती है–आह! कहाँ हमारी यह कर्कश ध्वनि और कहाँ प्रिया का मधुस्पन्दी स्वर! लो, आनन्द में भरी वे कल हंसों के पास पहुँच गईं। प्रिया को एक क्षण दिखता है कि प्रियतम ही प्रियतम तो हंसों के रूप में हैं और दूसरे क्षण उन्हें लगता है, नहीं–मैं ही अपने प्रियतम रूपी नीलाकाश में नील जल में हंस बनी विहर रही हूँ। अपने प्रियतम रूप श्यामल–श्यामल प्रेम जल में मैं डुबकी लगाती हूँ– और लो प्रिया हंसों के समान ही उड़ने का उपक्रम कर रही हैं वे उनके कूजन में ही अपना स्वर मिला चुकी हैं। और इन हंसों की कहाँ सामर्थ्य है, जो प्रिया के मधुरातिमधुर स्वर से स्पर्धा कर सकें या प्रिया की मरालानुकृति की शोभा को पा सकें। और इसी बीच लो, उनकी दृष्टि पड़ गई वनस्थली के विभिन्न भूभागों पर नृत्य करते हुए मयूरों की ओर। बस, प्रिया उधर ही दौड़ चलीं। अतिशय शीघ्रता से उन्होंने अपने नीलाम्बर को हाथों के सहारे पीछे से फैलाकर ऐसा बना लिया मानो किसी नृत्य परायण अभिनव मयूर का विस्तारित नील पुच्छ हो। अब तो देखने ही योग्य हो रहा है मयूरों के ताल बन्ध पर न हीं–अपने प्रियतम के ताल बन्ध पर उनकी प्रिया का मयूर नृत्य।

सम्पूर्ण वन मुग्ध है–और प्रियतम परमातिपरम मुग्ध होकर वंशीवादन कर रहे हैं एवं प्रिया नृत्य कर रही हैं। ऐसा सुन्दर नृत्य–ऐसा भाव नृत्य प्राकृत मन बुद्धि के अनुभव में थोड़े ही आ सकता है? अहा–प्रिया के प्रत्येक पद विन्यास पर किस अनिर्वचनीय पीयूष स्रोत का प्रवाह उमड़ रहा है। प्रियतम की आँखें छल–छल प्रेम से भरी हैं, वे आनन्द विभोर हैं। उनका हृदय भर आया है। प्रियतम के नेत्र प्रेम के उमड़ते वेग से सजल हो आये हैं। औरप्रिया तो अपने इन्द्रनील द्युति प्रियतम में अपनी वृत्ति का स्पन्दन–स्पन्दन न्यौछावर कर रही हैं–प्रिमतम का नित्य सान्निध्य उनके हृदय में है– और उनके चरण सरोरूहों में ही सब समर्पित हो रहा है। और प्रिया को स्पष्ट लग रहा है मैं ही अपने प्रियतम के सुख के लिये यह दिव्य बालुका बनी हूं, भाण्डीरवट बनी हूँ, हरित मृदुल तृणराजि बनी हूँ। मैं ही पर्वतों के रूप में अपने प्रियतम के प्रेम में स्तम्भ भाव ग्रहण कर खड़ी हूँ–मैं ही पीपल के वृक्ष बनी प्रियतम प्रेम के कम्प भाव को प्रकाशित कर रही हूं, मैं ही तृणांकुरों के रूप में सर्वतोभावेन रोमाञ्चित हो रही हूं। और सचमुच ही प्रिया के दिव्य भावों ने ब्रज के पत्ते

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

पत्ते में अभिनव रस भर दिया है। गोवर्धन, मानसीगंगा, कुण्ड, सरोवर, यमुना, सब प्रिया मय हो रहे हैं। और प्रिया सबके रूप में अपने को प्रियतम के चरणों में न्यौछावर कर रही हैं। कैसा सुमधुर प्रिया का भाव है—

"तुम ही मेरे प्राण प्रिय हो प्रियतम सदा तुम्हारी मैं
वस्तु तुम्हारी तुमको देते पल-पल हूँ बलिहारी मैं।"

अहा! प्रिया के प्राणों से जो श्याम-प्रभा का विस्तार हो रहा है उससे सब विशिष्ट भाव शोभायुक्त हो गया है। प्रिया देख रही हैं सर्वत्र नवनीरद वर्ण प्रियतम का ही विलास हो रहा है। सहसा प्रिया दिव्य उत्कण्ठा से भर जाती हैं। और उनकी उत्कण्ठा ने ऐसा जादू किया कि सर्वत्र दिखाई पड़ने वाले प्रियतम उनके सम्मुख आकर खड़े हो गये और वे अपने प्रियतम के चरणों में अपने भाव निवेदन करने लगीं। प्रिया को अब न चन्द्रमा दिखता है, क्योंकि प्रियतम मुसका जो रहे हैं न खञ्जन पक्षी की शोभा क्योंकि प्रियतम के नेत्र तो प्रिया के मुखचन्द्र में टिक जो गये हैं, उनके प्रियतम की अरुण अधरों के रस के सम्मुख अब किसी अन्य रस का उन्हें ज्ञान ही नहीं है। प्रियतम की माधुरी के सामने सब अन्य माधुरी विलीन हो गयी। प्रिया अत्यन्त प्रेम तृष्णा से अतुलनीय नील रत्न के समान चिकने एवं कोमल प्रियतम के विशाल वक्षस्थल की ओर देखती हैं और देखती हैं—उस वक्षस्थल में राधा ही राधा की छवि भरी प्रकाशित हो रही है। अहा! अपने प्रियतम के प्रेम में प्रिया के नेत्र छलछला आये हैं। वे अपने प्रियतम की ओर किस तृष्णा से देख रही हैं—उनका रोम-रोम उच्चारण कर रहा है—हे सम्पूर्ण व्रजमण्डल की शोभा को अपने ही स्वरूप में चित्रकला की तरह धारण करने वाले! हे मनोज्ञ पीताम्बर से निकलने वाली पीतद्युति से सर्वत्र अपनी नीली अंगद्युति के साथ साथ पीला-पीला प्रकाश फेंकने वाले! हे देदीप्यमान मणिमय हारों को भी अपनी मुसकान माधुरी से हतप्रभ कर देने वाले! हे दिव्यातिदिव्य अंगगध द्वारा सबके चित्त को लुब्ध कर लेने वाले! हे सर्वकान्ति समृद्ध! मेरे चित्त रूपी चकोर के लिये तो तुम एक ही चन्द्र हो चाहे अन्यों के लिये अनेक सुखकर हो सकते हैं।

हे तीनों लोकों की शोभा के मुकुट मणिस्वरूप, मेरी नेत्र-कुमुदावली के

लिये तो एक मात्र तुम्ही चन्द्रकला स्वरूप हो। अन्य अनेक की शोभा पर मुग्ध हो सकते हैं, मेरे नेत्र तो एकमात्र तुम्हारी शोभा से ही विकसित होंगे।

अहा! प्रिया का चित्तरूपी भ्रमर जो इतस्ततः केवल अपने प्रियतम के सुख वर्धनार्थ ही मकरन्द एकत्र कर रहा था अब गोपीरूप वृन्दावन को भूल कर अपने प्रियतम के नील कमल रूपी हृदय कपाट में बद्ध हो गया, स्थिर हो गया। उन्हें स्पष्ट लग रहा अन्यों के नेत्रों के लिये भूतस्ततः अनेक शोभास्थल हो सकते हैं, मेरे लिये तो एकमात्र मेरे प्रियतम सर्वसुख निधान सर्व शुभदायिनी शोभा हैं। अहा! प्रिया के नेत्रों में अपने प्रियतम के रूप के प्रति कैसा लोभ है—वे उन सर्व मनोहारी सौन्दर्य पर ऐसे चिपक गये हैं जैसे भ्रमरी विकसित कमल केसर पर। अहा, प्रिया कैसी टकटकी लगा कर अपने प्रियतम के दर्शन कर रही हैं—नेत्रों से अपने प्रियमत का स्पर्श प्राप्त कर कम्प रूपी सम्पत्ति उनके रोम-रोम में व्याप्त हो रही है। अहा! शरदऋतु में विकसित कमल जैसे मकरन्द के झरने बहा रहा हो, वैसे प्रिया के नेत्र प्रेमाश्रु से छलछला रहे हैं।

अहा! प्रिया के नेत्र ही नहीं, प्रिया की नासिका भी प्रियतम की अत्यन्त मनोहर अंगगंध से मत्त होकर कह रही है, हे प्रियतम! अन्यों के लिये अनेक सुगंध सुखकर हो सकती है—मेरे तो एक तुम्हीं सर्वसुखनिधान हो।

अहा! प्रिया के अत्यन्त प्रेमोद्रेकवश नेत्र निमीलित हो रहे हैं और उन्हें अनुभव हो रहा है जैसे पूर्णचन्द्र मध्यनिशा में आलोकित होकर सर्वाकाश में बिखरे नक्षत्रों को अपनी कौमुदी से परिस्नात कराता है—उसी प्रकार प्रियतम उनके हृदयाकाश में स्थित हो उनके सर्व अवयवों को अपनी प्रेम कौमुदी से परिस्नात कर रहे हैं। प्रिया के अन्तर्नेत्र प्रियतम के रूप के साथ उनके रस शब्द स्पर्श सबका अनुभव कर रहे हैं। इसी प्रकार प्रिया की समस्त इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी होकर सर्व विषयों का रस ले रही हैं मात्र अपने प्रियतम से और रोम-रोम से उच्चारण कर रही—अन्यों के अनेक रसस्रोत हो सकते हैं—हमारे तो एक मात्र अकेले तुम्हीं रसस्रोत हो।

अहा! प्रिया अनुभव कर रही हैं चन्द्रमा और नक्षत्रों में हास-विलास, ये प्रियतम तो मेरी सर्व इन्द्रियों से हास-विलास भी कर रहे हैं। अहा! ऐसा मिलन बाह्य शरीर से सम्भव ही नहीं।

अहा! जब तक द्वैत रहता है तभी तक लज्जा, भय, विषाद, मद एवं मान का अस्तित्व रहता है। प्रियतम तो हृदय में विराजित हैं-सर्वथा निज स्वरूप ही हैं फिर उनसे किसकी कैसी लज्जा-वहाँ कहाँ किससे किसका अवगुंठन ? प्रियतम की वेणु बज रही है हृदयाकाश में और वेणु का मधुरतम गीत गूंज रहा है सर्वांग में-उसने सर्वांग को, रोम-रोम को उन्नत बना दिया" प्रियतम की अंग-गंध महँक रही है हृदयाकाश में और उसने सर्वांग को सुगन्धि से भर दिया है। प्रियतम का रूप चमक रहा है-हृदयाकाश में और उसनें सर्वांग को ज्योतित कर दिया है-प्रियतम का अधरामृत माधुर्य कर रहा है हृदयाकाश में और उसने सर्वांग को माधुर्य रसस्नात करा दिया है। प्रियतम का स्पर्श हो रहा है हृदयाकाश में और उसने सर्वांग को प्रियतम परिरंभण का ऐसा सुख दिया है कि जिससे रोम-रोम पूर्णतया परितृप्त हो रहा है। और इसलिये प्रिया की वाणी ही नहीं रोम-रोम अपने प्रियतम से निवेदन कर रहा है-"हे प्रियतम ! अन्यों की इन्द्रियाँ बहिर्मुखी होकर सर्वत्र सुख के लिये भटक रही होंगी-मेरा चित्त तो आपके ही सर्व बन्धन समर्थ महामहा सुखस्वरूप गुणों में बँध गया है। मेरा चित्त तो आपके चरणमूल से एक चरण भी इधर-उधर नहीं चल रहा है। आपने मेरे चित्त का, मेरी इन्द्रियों का सर्व प्रतिगमन अवरुद्ध कर दिया है। अहा! आपके अमृत प्रवाही अधरों ने जो रसमय निर्झर बहाया है-उसने मेरे चित्त के सर्वताप को ऐसी रसमय शीतलता दी है कि वह केवल आप पर ही न्यौछावर है। अहा, मेरे चित्त ने जब से आपके चरणों की रज का संस्पर्श किया है तब से वह जगत के सब संस्पर्श ज्ञान को ही विस्मृत कर चुका है। अहा ! अन्य सभी जग जंजाल में रमते रहें-मैं तो अब आपके ही चरण धूलि में अपने रोम-रोम को परिस्नात करूँगी।

हे अलकावृत मुखवाले, हे मकराकृत कुंडलों के प्रकाश से अपने कपोलों को प्रफुल्लित करने वाले, हे पवित्र मुस्कान से नेत्रों को विभूषित करने वाले, हे सर्व अभयद भुजाओंवाले, हे वक्षस्थल पर स्वर्णरेखारूप में लक्ष्मी को आश्रय देने वाले, संसार में अन्यों के अनेक स्वामी हो सकते हैं-मेरे तो एक मात्र तुम्ही स्वामी हो, मेरा तो रोम-रोम तुम्हारे दासत्व के ही लिये लालायित है।

हे प्रियतम ! जिस प्रकार निर्धन व्यक्ति धन को स्पर्श करता हुआ भी तृप्ति का लाभ नहीं कर पाता वैसे ही मेरा रोम-रोम तुम्हारा सर्वांग संस्पर्श

करता हुआ भी तृप्त नहीं हो रहा है। अहा, आपके अंगों-अंगों से झरते हुए रूप प्रवाह से जड़ जाति भी पुलकांकुरों से व्याप्त हो जाती है फिर मेरा रोम धैर्य से रहित नहीं होगा-यह कैसे सम्भव है।

हे शुकराज! कैसा प्रिया का अनुपम भाव है

"प्यारे तुम्हें सुनाऊँ कैसे अपने मन को सहित विवेक।
अन्यों के अनेक पर मेरे तो तुमही हो प्रियतम एक॥"

ठीक ही तो है, कोई भी कुलशीलवती लज्जा मर्यादाशील नारी किस प्रकार विवेक रखकर अपने प्रियतम को यह निवेदित कर सकती है, कि सर्वभावों से तुम्हें ही समर्पित हो चूकी हूँ। प्रिया की लज्जाशीलता तो अपने भाव को छिपायेगी ही-परन्तु तारागण के प्रकाश में क्षीण-सी चन्द्रलेखा भी छिप नहीं सकती इसी प्रकार प्रियतम का प्रेम भी लज्जारूपी कपाट में बंद थोड़े ही हो सकता है। कस्तूरी की गंध किसी भी पात्र से ढक कर रख देने पर भी प्रस्फुटित होकर सर्व ओर प्रवाहित होगी ही-उसी प्रकार अपने प्रियतम के प्रेम को प्रिया कैसे अवगुंठित रख सकेंगी धैर्य, विवेक, लज्जा सब परिच्छेदों से मुक्त होकर प्रियतम प्रेम सर्वजयी हैं।

हे शुकराज! जब आत्मारामजन जिन प्रियतम के श्री विग्रह की दिव्य गंध के कारण ब्रह्मानन्द को विस्मृत कर देते हैं, वे परिपूर्णानन्द प्रियतम जब प्रिया के सम्मुख हैं-फिर लज्जा, धैर्य, विवेकादि के कपाट कहाँ रह सकते हैं?

और हे शुकराज-प्रिया की प्रार्थना कोई प्रियतम द्वारा उपेक्षणीय थोड़े ही है-"वैजयन्ती माला को धारण किये, नवीन यौवन श्री वाले, सर्वगुणशाली जैसे सुकोमल पुष्पों से युक्त प्रियतम वन में भ्रमण कर रहे हों उसी प्रकार सुकोमल प्रेमभाव से भरे प्रिया हृदय रूप वृन्दावन में भी विचरण करने लगे। प्रिया का रोम-रोम, परमाणु-परमाणु प्रियतम की प्रेम लीलाओं के गान में मत्त हैं, प्रेम और सौन्दर्य में विभोर हैं। सभी एक स्वर से कह रहे हैं-

हमारी सभी साधनाओं की एकमात्र सिद्धि नील सुन्दर! तुम्हीं हमारे प्राण प्रियतम हो-तुम ही हमारे प्राणनाथ हो और हमारी अनन्त-अनन्त काल तक रहने वाली शाश्वत, चिर, नित्य समृद्धि हों।

प्रिया का रोम-रोम सबको भूलकर मात्र प्रियतम-प्रियतम ही रट रहा

है। हे माधव ! आपकी जय हो, हे गोकुलवीर ! आपकी जय हो, हे कृष्ण ! हे हरे ! तुम्हारी जय–जय कार हो । हे मधुरूपी प्रेम को वहन करने वाले. हे इन्द्रिय कुल की प्रेम दान द्वारा रक्षा करने वाले, हे सर्वाकर्षक, हे सर्व चित्तवित्तहर, तुम्हारी जय हो, जय हो, नित्य जय हो । अहा ! प्रियतम अपनी परम मनोहर चेष्टाओं से प्रिया के हृदय में विराजित होकर उनके रोम-रोम का प्रत्येक इन्द्रिय का आनन्द वर्धन कर रहे हैं–प्रिया उन्हें अपने अंक में धारण किये. अपने कोटि–कोटि प्राणों का स्नेह देकर प्रेम संलालन कर रही हैं । प्रिया के हृदय पर्यंक पर कैसे सुख से प्रियतम शयन कर रहे हैं । अहा ! प्रिया के अन्तःकरण का कोना–कोना प्रियतम की छवि से भरा है। सर्वत्र रोम–रोम में कैसा उल्लास छाया है । नेत्र इधर अपने प्रियतम के सम्पूर्ण रूप को ही नहीं, समूचे प्रियतम को क्रोड़ में लेने मचल रहे हैं–तो उधर कान भी व्याकुल हैं । परन्तु सर्वव्यापी प्रियतम सबके स्नेह समर्पण को पूरा–पूरा स्वीकार कर रहे हैं । इन्द्रियों की सब गति अन्तर्मुख हो गयी है–अब बाह्य ज्ञान कहीं किसी को नहीं । न नेत्रों को बाहर के रूप की स्मृति है न कानों को शब्द की । जब उनकी सब साधनों की सिद्धि प्राप्त हो गई फिर चाहे जैसे उसका उपभोग करे वे बाहर किस सुख के लिये भटकेंगी ? अहा ! एक दो इन्द्रियां ही नहीं सर्वांग रोम–रोम सब अन्तर्मुख होकर उमड़ उठा है । सबको पूर्ण सुयोग मिल गया है अपने प्रियतम के साथ पूर्ण मन मानी करने का । अहा, जो प्रियतम कोटि–कोटि प्राणों से भी अधिक प्रिय रहे हैं उन्हीं को तो ये इन्द्रियाँ अब तक बाहर अन्वेषण कर रही थीं परन्तु अब जब अन्तस्तल में प्रियतम दृष्टिपथ में आगये तो बाहर का प्रवाह बन्द हो गया और भीतर ही भीतर असीम प्रीति लहरा उठी है । यह प्रीति बढ़ती ही जा रही है । प्रतिक्षण, प्रतिपल और छोर विहीन होती जा रही है । अहा ! प्रिया के हृदय में सर्वात्मस्वरूप प्रियतम का आत्म विहार इसी प्रकार अनादिकाल से चलता आ रहा है और अनन्त काल तक चलता जायेगा ।

हे शुकराज ! भूलना मत–प्रिया प्रियतम में कहीं कोई भिन्नता सर्वथा–सर्वथा नहीं है । प्रिया ही महाभाव ही पूर्ण रस है, रसराज है और वह महा भाव ही अपने आप द्वारा अपने आपका ही आविर्भाव करता है, संलालन करता है और अपने आपके ही साथ अपने–आप अनेक भुवन मोहन रमण करता हुआ अनन्तानन्त प्रेम कौतुक की रचना करता है–और सदा सुखसिन्धु

में ही डूबा रहता है। शाश्वत, नित्य, निरवधि, अखण्ड इस महाभाव का यह क्रीड़ा विलास निर्बाध होता ही रहेगा।

हे शुकराज ! प्रियतम तो प्रेमामृत की रसमयी धारा है। सुरसरी गंगा का पावन प्रवाह जैसे सुकृत नाशिनी कर्मनाशा की जलधारा को खींच लेता है, खींचकर अपने में मिला लेता है, अपना रूप देता है और मलिन धारा भी पवित्रतम हो जाती है-वैसे प्रियतम तो एक बार जो कोई भी सम्पर्क में आ जाय उसे ही अपने में मिला लेते हैं-फिर यह प्रिया अन्तःकरण और उनकी इन्द्रियाँ तो सदा-सदा का इनका निवास ही हैं। रसराज तो महाभाव निवास ही है—महाभाव ही उसकी आविर्भाव-भूमि है। अतः ये प्रिया की इन्द्रियाँ तो सदा प्रियतम से आलोकित रहती ही हैं। फिर भी रस निष्पत्ति के लिये भाव का नित्य नवनूतन प्रवाह ही उमड़ता है और सभी इन्द्रियों को प्रतिक्षण अनुभव होता रहता है प्रियतम के दर्शन से, मिलन से हम सभी युग-युग से वञ्चित ही रही हैं।

फिर भी आज तो सभी इन्द्रियों को यही अनुभव हो रहा है हम सबका अनन्त सौभाग्य उदित है-हमारी अनन्त-अनन्त की साधनाओं की सिद्धि-हमारी सर्वसमृद्धि हमारे प्राणनाथ हमारे पूर्ण परिरम्भण में हमें प्राप्त है। अहा ! कोई प्रिया श्रीराधारानी के अन्तःकरण में प्रवेश करने की सामर्थ्य पा जाय तो वह यही अनुभव करेगा-मानो चिदानन्द भाव सरोवर में एक परमाद्भुत, अपूर्ण, नवीन पूर्ण रस विकास से उद्भासित नील पद्म खिल रहा है-वह अभूतपूर्व अरविन्द जिसका आघ्राण किसी भी अन्य की इन्द्रिय कुल ने आज तक कभी नहीं पाया-यह तो प्रिया के ही इन्द्रिय कुल का सौभाग्य है, भाग्य, उन्हीं की सिद्धि है, समृद्धि है. कि इस कृष्ण पद्म के सौरभ का पूर्ण-पूर्ण उपभोग कर रही हैं। अहा ! ये राधा हृदय में स्थित प्राण ही हैं जो इस कृष्ण सौरभ से सुरभित होकर कृतार्थ है अन्यथा इस कृष्ण सौरभ का अपहरण करके कृतार्थ होने का अवसर किसी काल में किसी अनिल को प्राप्त नहीं हुआ है अरे ! यह राधा हृदय का स्नेह जल ही है जिससे यह अरविन्द उत्पन्न होता है, यह राधा हृदय के स्नेह जल का ही सौभाग्य है कि वह अपने में क्रीड़ा करती चंचल प्रेम तरंगों द्वारा इस नील सुन्दर कृष्ण पद्म को प्रकम्पित करने का गर्व कर सकता है, इस कमल को राधा हृदय के प्रेम

नेत्रों के अतिरिक्त और कौन नेत्र आज तक देख सके हैं ?

अहा ! इन्द्रनीलद्युति प्रियतम का कैसा विलक्षण सौन्दर्य है ? प्रिया के नेत्र अपलक उसी पर विजड़ित हो गये हैं। उन्हे किसी काल का अवधि का ज्ञान थोड़े ही है। काष्ठ पुत्तलिकाओं की जो दशा हो वैसी प्रिया की सब इन्द्रियों की दशा है। सब प्रियतम लुब्ध विजड़ित हो गयी हैं। आनन्दातिरेक में सब इन्द्रियाँ जैसे मूर्च्छित हैं परन्तु मात्र अन्य प्रवाह को ग्रहण करने के लिये ही। प्रियतम रस प्रवाह का तो पूर्ण जागरुक होकर वे सेवन कर रही हैं। बुद्धि कुछ भी निर्णय करे तब न इन्द्रियों को आदेश दे, वह निर्णय करने में असमर्थ हैं, बुद्धि वृत्ति एक ही निर्णय कर रही है–रस ही रस है आनन्द ही आनन्द है, अपार आनन्द है, अनन्त आनन्द है। सरस आनन्द है, मधुर आनन्द है, उच्छलित आनन्द है, हिल्लोलित आनन्द है–सुमधुर सुस्पर्श्य, सुस्वाद्य, सुदृश्य, सुकर्ण्य आनन्द है। मन तो अचेतन है। वह विकल्प रहित मात्र संकल्प ही संकल्प शेष हो गया है–वह संकल्पमूर्त्त है, सम्मुख है–प्रियतम–प्रियतम मात्र प्रियतम। चित्त बावला सा अनर्गल हो गया है–आनन्द में उछल रहा है–उसके उच्छलन को कोई नृत्य कहले–या भाव कहले–वह कभी काँप रहा है कभी चीत्कार कर उठता है–कभी रोमांचित हो उठता है, कभी जड़ हो जाता है—इस प्रकार वह विकार ग्रस्त हो गया है। कैसे अनिर्वचनीय भाव–प्रवाह में महारास हो रहा है प्रिया के हृदय में। हृदय का संचित स्नेह रस उमड़कर नेत्रों से झर रहा है। नेत्र कभी मुँद जाते हैं–कभी ऊर्ध्व होकर पलट जाते हैं, कभी दाहिनी ओर मुड़ जाते हैं–परन्तु नयनों की किसी ओर कैसी भी गति हो, प्रियतम का सौन्दर्य उनके सम्मुख ही है। अश्रु बिन्दु ढलक कर मालाकार बन जाते हैं। प्रिया के नेत्र मानो प्रियतम के चरणों में निर्मल मुक्ता हार की भेंट दे रहे हों। यह भेंट सर्वथा उपयुक्त ही है। क्योंकि सर्व सिद्धिस्वरूप प्रेम देव की आराधना ही तो आज सफल हुई है–देवाराधन का तो यह नियम ही है–पहले माला ही समर्पित होती है। सर्वोत्कृष्ट रागमयी आराधना के उपकरण कुछ भी हों, पर नियम का व्यतिक्रम क्यों हो। इसलिये नेत्र अश्रु बिन्दुओं की मनोहर माला अर्पण कर रहे हैं। और कानो में भी देखने की शक्ति आ गयी है–परन्तु फिर भी वे चारों ओर अमृत ध्वनि करते महासागर में ही डूब रहे हैं। यह प्रियतम की वेणु ध्वनि है कि प्रिये, प्राणेश्वरी, मधुर वचनावली—इसका निर्णय कान नहीं कर सकते–वे तो निमग्न हैं आनन्दमय शब्द मन्दाकिनी की धारा में जो धारा

क्या, महासागर ही है और जिसमें ऐसे प्रबल आवर्त उठ रहे हैं। जिनमें फँसकर ये कान निरवधि काल तक अब निकल नहीं सकेंगे। कानों को भी बाह्य ज्ञान नहीं है। वे अन्तःचेतना के जगत में हैं। और उनके सामने यही शब्द गूंज-गूंज रहे हैं-

'मेरे सभी साधनों की बस एक मात्र तुम ही हो सिद्धि।
तुम ही प्राणनाथ हो बस, तुम ही हो मेरी नित्य समृद्धि ॥"

कान शब्द ही नहीं सुन रहे—श्याम अंगों को, दीर्घ चंचल सुन्दरातिसुन्दर नेत्रों को देख भी रहे है और पूर्ण मुग्ध हो गये हैं। और मन तो भाव स्रोत में प्रवाहित है-मन का अनादि सिद्ध संकल्प जो सत्य सम्मुख है। वह विचित्र शोभा से आज सम्पन्न है। आनन्द प्रवाह में विवेक लुप्त होकर बुद्धि भी तो आज मन से एकाकार हो गयी है। विचार शक्ति मन से मिलकर आनन्द तरङ्गों से तरङ्गित हो रही है-वह भी मन की तरह चंचल हो गयी है। प्राण भी पूर्ण व्याकुल हैं वे चल रहे हैं मात्र इन्द्रियों के बुद्धि के मन के सुख के लिये क्योंकि प्राणों के बिना सबकी चेतना ही लुप्त हो जावेगी फिर यह अभूतपूर्व कैसे ग्रहण हो सकेगा-अतः वे किसी प्रकार चल रहे हैं परन्तु रह रहकर स्थिर हो जाते हैं। आज कैसी कृपा है कि प्राणों को भी देखने की शक्ति मिल गयी है-वे देख रहे हैं अनन्त-अनन्त जन्मार्जित पुण्य राशिरूप कल्पतरु उद्यान का प्रफुल्लित नील पद्म हो, समस्त उपनिषद् रूप कल्पलता-श्रेणी का मधुर फल हो प्राणों ने मधुरातिमधुर स्वर में जैसे सुरीली आनन्दध्वनि छेड़ दी-अहा! प्रिया के प्राणों की यह प्रेमास्फुट प्राणवाणी इतनी सुरीली है कि इससे तो प्रियतम की अगणित वंशीध्वनि ही हतप्रभ हो जाती है। और यह ध्वनि भी एक ही गीत पंक्ति उच्चारण कर रही है—

"मेरे साथी साधनों की बस एक मात्र तुम ही हो सिद्धि।
तुम ही प्राणनाथ हो बस, तुम ही हो मेरी नित्य समृद्धि ॥"

अहा, लीला विहारिन् तुम्हारी सर्व मोहनी रूप सुषमा की सदा जय हो, अहा! अनिर्वचनीय प्रिया प्रेम में खिले नीलकमल—तुम्हारी सदा जय, नित्य जय हो।

प्रिया के अन्तःकरण में आनन्दोन्माद उत्तरोत्तर बढता ही जा रहा है।

प्रिया को न तन का ज्ञान है, न धन का और न ही किसी सखी सखा आदि जन का। सब तन, धन, जन की स्मृति रूप वृत्तियाँ–प्रिया के हृदय का उनके अन्तःकरण का कोना–कोना जैसे इन प्रियतम नील सुन्दर ने झाड़कर अपनी प्रेम वारि से धो दिया है। फिर सर्वत्र अपनी अंगगंध रूपी प्रेम रससार छिड़क दिया है। प्रेम भावों की पतकाएँ फहरा दीं। सात्विक भावों की, अश्रु, कम्प, स्तम्भ, रोमाञ्चादि पुष्पमालाएँ लटका दी हैं।

प्रेम मुक्ता से चौक पूर दिये गये। अब तो मात्र प्रियतम ही अपनी इस रागिनी आलाप रहे हैं। वे ही अपनी मधुरतान छेड़ते हुए अकेले ही रस वर्षा कर रहे हैं। तन, धन, जन, भोग, मोक्ष सब परिच्छेद हैं जो प्रेम प्रवेश में, प्रियतम प्रवेश में कपाट एवं अर्गला लगाते हैं। प्रिया को तो तन निर्माण का फल, सम्पूर्ण साधनों का फल, एक प्रियतम रूप जन मिल गया–फिर अब प्रियतम ही उनके भोग हैं एवं वे ही मोक्ष हैं। तन की सृष्टि इन नील सुन्दर प्रियतम के ही लिये तो है–जब प्रियतम उपलब्ध हो गये तब तन की क्या आवश्यकता? धन रूपी साधन सम्पदा की आवश्यकता मात्र प्रियतम सिद्धि ही तो है जब वह उपलब्ध हो गयी तब धन का क्या प्रयोजन शेष रहा? सर्व भोग प्रियतम तो हृदय में विराजित ही हैं फिर अब प्रियतम से अतिरिक्त भोग कौन से? एवं इतने सुखद सुन्दर, अनुपम प्रियतम रूप जन को पाकर फिर किसी अन्य जन की स्मृति ही कहाँ–और सर्व बन्धन तो प्रियतम ने तोड़ ही दिये अब मुक्ति का मोक्ष का अस्तित्व ही कहाँ रहा? प्रिया तो अपने धन, आनन्द को लुटा रही हैं कोई ले जाये–इससे आश्चर्य क्या है? [illegible] श्री समस्त सम्पत्ति लक्ष्मी जिनकी चरणसेविका, आंशिक विभूति हैं–वे प्रियतम प्रिया के धन हैं–एक मात्र प्रियतम हैं–फिर उन्हे प्राकृत भण्डार धन की अपेक्षा कहाँ रही। उन्हें न तन की स्मृति है एवं न ही किसी जन की! बस प्रियतम [illegible] प्रियतम–प्रिया के हृदय में आनन्द सागर प्रेम सागर, रस–सागर उत्ताल [illegible]मान है–वे सब परिच्छेद विमुक्त होकर, मुक्ति के परिच्छेद से भी मुक्त होकर उद्दाम भाव नृत्य के रत हैं। प्रिया के हृदय में प्रेम की अति उच्च भाव लहरें प्रवाहित हो रही हैं– ये ही लहरें हैं, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग अनुराग, भाव महाभाव की। बस, सब अनिर्वचनीय है।

❀ राधा राधा राधा राधा राधा राधा ❀

आबू पर्वत

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, कचौड़ी
वाराणसी-1